ओ३म्

देश भक्तों के

बलिदान

स्वामी श्रद्धानन्द

श्यामजी कृष्ण वर्मा

लाला लाजपतराय

वीर सावरकर

महर्षि दयानन्द सरस्वती

सुभाष बोस

अश्फाक उल्लाखाँ

रामप्रसाद बिस्मिल

चन्द्रशेखर आजाद

सरदार भगतसिंह

ऊधमसिंह

लेखक एंव सम्पादक

स्वामी ओमानन्द सरस्वती

ओ३म्

देशभक्तों के बलिदान

[भारतीय स्वतन्त्रता की एक शताब्दी की अपूर्व गाथा]

सम्पादक

श्री स्वामी ओमानन्द सरस्वती

श्री वेदव्रत शास्त्री व्याकरणाचार्य

प्रकाशक

हरयाणा साहित्य संस्थान

गुरुकुल झज्जर, जि० रोहतक

द्वितीय संस्करण २००० } चैत्र २०४३ वि० अप्रैल १९८६ {
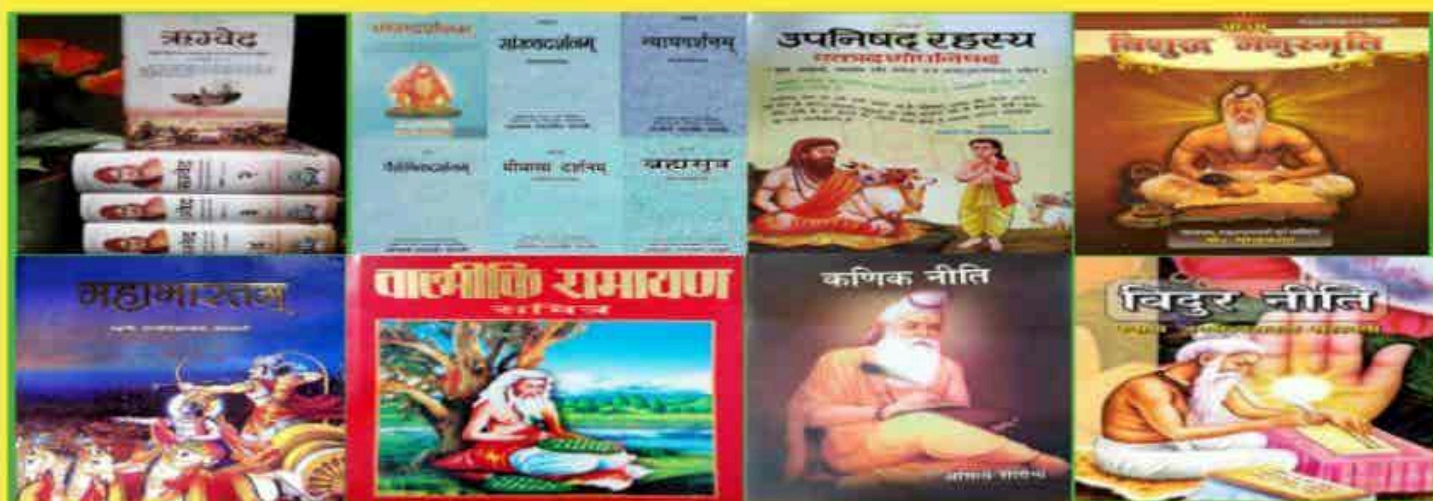
बलिदान पर कुछ सम्मतियां

१—"आपका 'बलिदान' खूब पढ़ा। चित्त गद-गद होगया। इसमें कहीं पक्षपात नहीं। जिसने भी बलिदान किया, सब की अर्चना, सब का अभिनन्दन।"

—बुद्धदेव विद्यालंकार

२—आकार एवं प्राकार की विशेषता से यह पाठक एवं दर्शक सभी को प्रभावित करने वाला है। यह एक शताब्दी के मध्ये बलिदान हुए, बलिदानियों की कीर्ति का ग्रन्थ है। विषय की उपादेयता से ग्रन्थ की उपयोगिता एक प्रामाणिक इतिहास ग्रन्थ के रूप में होगई है। प्रत्येक इतिहास के छात्र को इसमें इच्छानुसार सामग्री सरलता से उपलब्ध हो सकती है। इस सामग्री द्वारा इतिहास के बहुत से अज्ञात तथ्यों का परिचय मिलता है। प्रत्येक भारतीय ऐतिहासिक को इस ग्रन्थ का एक बार अध्ययन कर लेना आवश्यक है। यह बलिदान ग्रन्थ पुस्तकालय के उन चुने हुए ग्रन्थों में से एक होगा जो समय-समय पर भारतीयों को कर्तव्य-पथ की ओर अग्रसर होने के लिए आवश्यक उपयोगी संबल प्रदान करता रहेगा।"

—'आर्यमित्र' लखनऊ (१० मई ५६)

३—"इसमें मुख्यतया १८५७ के स्वातन्त्र्य संग्राम से लेकर अब तक के हुतात्माओं का चारुचरित चित्रित किया गया है। सम्पादक मण्डल ने बलिदान का अभिप्राय प्राणों का उत्सर्ग ही नहीं अपितु, जीवन का उत्सर्ग माना है, जो ठीक है। इसकी तैयारी में किया गया परिश्रम प्रशंसनीय है। प्रचुर उपयोगी सामग्री का एक स्थान पर एकत्रीकरण अन्यत्र बहुत कम देखने को मिलेगा। यह ग्रन्थ पढ़नें तथा संग्रह करने योग्य है।"

—'सार्वदेशिक' नई दिल्ली (जनवरी १९५९ ई०)

४—"५८८ पृष्ठों का विशाल ग्रन्थ जिसमें ७४ हाफटोन ब्लाक से हुतात्मा एवं देशभक्तों के आर्ट पेपर पर छपे हुए चित्रों को देखकर किसको खुशी न होगी? इस महान् सफल प्रयत्न के लिये सम्पादकों को शतशः बधाई।

यह ग्रन्थ भारतीय इतिहास की अमूल्य निधि है। प्रत्येक आर्यजन एवं भारतीय के लिये संग्रहणीय है। यह ग्रन्थ संकीर्ण राजनैतिक विचारधारा से प्रभावित न होकर रहस्यपूर्ण अन्वेषणों के परिणामस्वरूप आदर्शरूप में सम्पादित किया गया है। इसकी जितनी प्रशंसा की जाये वह थोड़ी ही है।"

—'आर्यावर्त' लश्कर (मई १९५९)

५—"बलिदान" में भारतीय स्वतन्त्रता के इतिहास पर नवीन प्रकाश डाला है, उसके लिये वे न केवल धन्यवाद, अपितु उसमें सफलता के लिये बधाई के भी पात्र हैं। इस ग्रन्थ की अपनी कई विशेषतायें हैं। जो ऐसे किसी अन्य संग्रह में हमें दृष्टिगोचर नहीं हुई। इस वीरगाथा का अध्ययन उज्ज्वल, देशभक्ति और वीरभावना को जागृत करने वाला होगा।

हम बलिदान विषयक इतनी उत्तम सामग्री को परिश्रम और खोजपूर्वक पाठकों के सन्मुख प्रस्तुत करने के लिए सम्पादक महानुभावों का पुनः अभिनन्दन करते हैं और इसका सर्वत्र प्रचार चाहते हैं।"

—धर्मदेव विद्यामार्तण्ड सम्पादक गुरुकुल पत्रिका, कांगड़ी (हरद्वार)

@VaidicPustakalay

प्राक्कथन

सन् १८५७ में भारत का प्रथम स्वाधीनता सङ्ग्राम विफल हो गया और क्रूर अंग्रेजी शासकों ने भयंकर अत्याचार करके भारत की जनता को और भी अधिक दासता की दृढ़ जंजीरों से जकड़ दिया। स्वाधीनता सङ्ग्राम की धधकती ज्वाला एक बार शान्त होगई किन्तु धीरे-धीरे सुलगती और चमकती हुई प्रवृद्ध होती गई। क्रान्तिकारी देशभक्तों के सहस्रों बलिदानों के परिणामस्वरूप ९० वर्ष के लम्बे संघर्ष के पश्चात् सन् १९४७ में अंग्रेजों को भारत का राज्य छोड़कर यहां से स्वदेश लौटने के लिए विवश होना ही पड़ा। भारत को स्वतन्त्र हुए ३९ वर्ष हो गये हैं। विगत एक शताब्दी में भारत की स्वाधीनता और देश धर्म की रक्षा के लिए बलिदान देने वाले वीरों का इस ग्रन्थ में सादर उल्लेख किया गया है। इससे पूर्व भी सहस्रों महापुरुषों ने देश धर्म की रक्षा के लिए अपनी बलि चढ़ाई है। हम अतीत के सभी ज्ञात और अज्ञात शहीदों को अपनी श्रद्धाञ्जलि अर्पित करते हैं।

१९५८ में स्वाधीनता संग्राम शताब्दी के शुभ अवसर सुधारक मासिक पत्र का 'बलिदान' विशेषांक ५८८ पृष्ठों का प्रकाशित किया गया था जो सुधारक के ग्राहकों को केवल ५ रुपयों के लागत मूल्य में दिया गया था और साथ ही ५०० बलिदान पुस्तक भी अच्छे कागज पर छापकर जिल्द बनवाकर १२ रुपयों में प्रकाशित की गई थी। स्वतन्त्रता संग्राम की एक शताब्दी की इस अपूर्व बलिदान गाथा को जनता ने बहुत पसन्द किया और कुछ वर्षों में ही यह ग्रन्थ अप्राप्य हो गया। पुनरपि पाठकों की मांग पत्रादि के द्वारा निरन्तर बनी ही रही। स्वाधीन भारत में विगत ३० वर्षों में मंहगाई अमावस्या के घोर अन्धकार की भांति उत्तरोत्तर बढ़ती ही जारही है। अनेक बार बलिदान ग्रन्थ को पुनः प्रकाशित करने की योजना बनी बनाई धनाभाव के कारण रुकती रही। ८ वर्ष पूर्व "आर्यसमाज के बलिदान" नाम से इस ग्रन्थ का एक भाग परिवर्धित रूप में प्रकाशित किया गया था जो इसी आकार के १८८ पृष्ठों में पूर्ण हुआ था। अब स्वामी ओमानन्द जी महाराज के सहयोग से यह विशाल बलिदान ग्रन्थ परिवर्धित रूप में पुन: प्रकाशित करके पाठकों की लम्बे समय से चली आरही मांग को पूरा किया गया है।

क्रान्ति का प्रारम्भ

१८५७ की क्रान्ति जिन कारणों से हुई उनका हमने पृथक् उल्लेख किया है। इस क्रान्ति के प्रचार में तत्कालीन साधु संन्यासियों का भी बहुत बड़ा योग था। साधुओं के द्वारा नाना साहब पेशवा ने अपनी योजना का सन्देश सर्वत्र पहुंचाया था। तीर्थयात्रा के मिष से नाना साहब ने लगभग समस्त उत्तर भारत का भ्रमण कर भारत की तात्कालिक स्थिति का अवलोकन किया था।

स्वामी दयानन्द सरस्वती ने भी सन् १८५७ के स्वाधीनता युद्ध में भाग लिया था। ऐसी कुछ इतिहास लेखकों की मान्यता है। स्वामी दयानन्द सन् १८५७ के अन्त तक कानपुर से इलाहाबाद और फर्रुखाबाद तक गङ्गा के किनारे घूमते रहे थे और इन वर्षों के बारे में अपने जीवन की घटनायें लिखते समय वे सर्वथा मौन रहे हैं। (हमारा राजस्थान पृष्ठ २७५)

@VaidicPustakalay

इस क्रान्ति के विफल हो जाने पर महर्षि दयानन्द ने भारत की तात्कालिक परिस्थिति के अनुसार अपना मार्ग बदलकर भाषण और लेख द्वारा सर्वविध क्रान्ति प्रारम्भ की। महर्षि दयानन्द ही वह पहला भारतीय था जिसने अंग्रेजों के साम्राज्य में सर्वप्रथम स्वदेशी राज्य की मांग की थी। वे अपने अमर ग्रन्थ सत्यार्थप्रकाश में लिखते हैं—"कोई कितना ही करे जो स्वदेशी राज्य होता है वह सर्वोपरि उत्तम होता है अथवा मतमतान्तर के आग्रहरहित, अपने और पराये का पक्षपातशून्य, प्रजा पर पिता माता के समान कृपा, न्याय एवं दया के साथ भी विदेशियों का राज्य पूर्ण सुखदायक नहीं।"

आर्याभिनिय में आपने लिखा है—"अन्य देशवासी राजा हमारे देश में न हों, हम लोग पराधीन कभी न रहें।" इससे पता लगता है कि महर्षि दयानन्द सरस्वती की क्या भावना थी। राष्ट्र के सङ्गठन के लिए जाति-पाँति के झंझटों को मिटाकर एक धर्म, एक भाषा और एक समान वेशभूषा तथा खानपान का प्रचार किया। आज हिन्दी भारत राष्ट्र की राजभाषा बन चुकी है किन्तु आज से लगभग एक शताब्दी पूर्व जब हिन्दी का कोई विशेष प्रचार न था उस समय महर्षि दयानन्द ने हिन्दी को राष्ट्र भाषा बनाने की घोषणा की, स्वयं गुजराती तथा संस्कृत के उद्‌भट विद्वान् होते हुए भी उन्होंने सत्यार्थप्रकाश, संस्कारविधि, ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका और वेदभाष्य आदि ग्रन्थ हिन्दी में ही लिखे। जबकि बंगाल के बङ्किमचन्द्र तथा महाराष्ट्र के विष्णुशास्त्री चिपलूणकर आदि प्रसिद्ध लेखकों ने अपनी रचानायें प्रान्तीय भाषाओं में ही की थीं।

दीर्घकालीन दासता के कारण भारतवासी अपने प्राचीन गौरव को भूल गये थे। इसलिए महर्षि दयानन्द ने उनके प्राचीन गौरव और वैभव का वास्तविक दर्शन करवाया और सप्रमाण सिद्ध किया कि हम किसी के दास नहीं अपितु विश्वगुरु हैं। इस प्रकार भारत भूमि को इस योग्य बनाया कि जिसमें स्वराज्य पादप विकसित पुष्पित, और फलेग्रही हो सके।

१८५७ के पश्चात् की क्रान्ति के जन्मदाता महर्षि दयानन्द सरस्वती और उनके शिष्य ही हैं। विदेशों में भारत के लिए जितनी क्रान्तियां हुई हैं वह महर्षि दयानन्द के प्रमुख शिष्य पं० श्याम जी कृष्ण वर्मा के कारण हुई हैं। पं० श्याम जी को विदेश में जाने की प्रेरणा महर्षि दयानन्द ने ही की थी। श्याम जी कृष्ण वर्मा क्रान्तिकारियों के आदि गुरु थे। प्रसिद्ध क्रान्तिकारी विनायक दामोदर सावरकर, लाला हरदयाल, भाई परमानन्द, सेनापति बापट, मदनलाल धींगड़ा आदि सभी क्रान्तिकारी इनके शिष्य वा साथी थे। इङ्गलैंड में भारत के लिए जितनी क्रान्ति हुई वह श्याम जी कृष्णवर्मा के "इण्डिया हाउस" से ही हुई है।

अमेरिका में जो क्रान्ति भारत की स्वाधीनता के लिये हुई, वह देवतास्वरूप भाई परमानन्द के सदुद्योग का फल है। आपने आजीवन आर्यसमाज का प्रचार किया और स्वाधीनता के लिए संघर्ष करते रहे।

पंजाब में श्री जयचन्द्र विद्यालङ्कार क्रान्तिकारियों के गुरु रहे हैं। आप डा० ए० वी० कालेज लाहौर में इतिहास और राजनीति के प्रोफेसर थे। सरदार भगसिंह और उनके क्रान्तिकारी साथी इनसे राजनीति की शिक्षा लिया करते थे।

सरदार भगतसिंह का जन्म हो आर्यसमाजी घराने में हुआ था। इसका दादा सरदार अर्जुनसिंह कट्टर आर्यसमाजी था और इसका पिता श्री किशनसिंह भी आयसमाजी था। भगतसिंह का यज्ञोपवीत संस्कार भी आर्यसमाज के महोपदेशक पं० लोकनाथ जी तर्कवाचस्पति ने करवाया था। सांडर्स को

मारकर भगतसिंह आदि पहले तो लाहौर के डी०ए०वी० कालेज में ठहरे, फिर वहां से योजना बनाकर सीधे कलकत्ता जाकर वहां के आर्यसमाज में ठहरे, और आते समय आर्यसमाज के चपड़ासी तुलसीराम को अपनी थाली, यह कहकर दे आये थे कि "कोई देशभक्त आये तो उसको इसमें भोजन करवा देना" देहली में भगतसिंह वीर अर्जुन कार्यालय में स्वामी श्रद्धानन्द और पण्डित इन्द्र विद्यावाचस्पति के पास ठहरता था। क्योंकि उस समय ऐसे लोगों को ठहराने का साहस केवल देशभक्त आर्यसमाज के सदस्यों में ही था।

मिस्टर गांधी जब अफ्रीका से लौटकर भारत में आये तब उनको ठहराने का किसी में साहस न था। लाला मुन्शीराम (स्वनामधन्य नेता स्वामी श्रद्धानन्द) ने ही उनको गुरुकुल कांगड़ी में ठहराया था और मिस्टर गांधी को महात्मा गांधी की उपाधि भी स्वामी श्रद्धानन्द जी ने ही दी थी।

राजस्थानकेसरी कुंवर प्रतापसिंह वारहट ने डी० ए० वी० हाई स्कूल में शिक्षा प्राप्त की थी। इसके पिता श्री कृष्णसिंह जी वारहट महर्षि दयानन्द सरस्वती के अनन्य भक्तों में से थे।

प्रसिद्ध क्रान्तिकारी नेता पं० रामप्रसाद 'बिस्मिल' और उनके अनेक साथी पक्के आर्यसमाजी थे। इनके सम्बन्ध में श्री मन्मथनाथ गुप्त ने, जो स्वयं क्रान्तिकारी रहे हैं, साप्ताहिक हिन्दुस्तान १३ जुलाई ५८ के अंक में लिखा है—

"पण्डित रामप्रसाद कट्टर नहीं, तो नित्य हवन में विश्वास रखनेवाले, आर्यसमाजी जरूर थे। बाद को शहीद होनेवाले श्री रोशनसिंह उन्हीं के पदाङ्कों का अनुसरण करते थे।"

"जो लोग धर्म के समर्थक थे वे आपस में मतभेद रखते थे। उदाहरणस्वरूप रामप्रसाद 'बिस्मिल' वेदों का अर्थ स्वामी दयानन्द के ढंग पर करते थे, तो श्री शचीन्द्रनाथ सान्याल इस मामले में मुख्यतः विवेकानन्द तथा अरविन्द के मार्ग पर चलते थे।"

स्वतन्त्रता प्राप्ति से पूर्व लगभग सभी स्थानों में ऐसी स्थिति थी कि कांग्रेस के प्रमुख कार्यकर्त्ताओं को यदि कहीं आश्रय, भोजन, निवास आदि मिलता था, तो वह किसी आर्य के घर में ही मिलता था। प्राय: दूसरे लोग इनसे इतने डरते थे कि उनमें इनको आश्रय देने का साहस ही न था।

हैदराबाद दक्षिण में निजाम सरकार के विरुद्ध सत्याग्रह चलाकर जनता के हितों की रक्षा केवल आर्यों ने ही की थी। वहां पर आर्यसमाज के प्रति जनता की जितनी श्रद्धा है उतनी किसी अन्य के प्रति नहीं है।

अमृतसर में कांग्रेस का अधिवेशन करवाने का साहस अमर शहीद स्वामी श्रद्धानन्द में ही था। उस समय की स्थिति को देखकर किसी भी कांग्रेसी में इतना साहस न था, जो सम्मुख आता और कांग्रेस का अधिवेशन करवा सकता।

पंजाबकेसरी लाला लाजपतराय प्रसिद्ध आर्यसमाजी नेता थे, उनकी देशभक्ति किसी से तिरोहित नहीं। इसी प्रकार के और भी अनेक उदाहरण हमें मिलते हैं जो यह सिद्ध कर रहे हैं कि देश की स्वतन्त्रता की लड़ाई में आर्यसमाज ने बढ़ चढ़कर भाग ही नहीं लिया, अपितु नेतृत्व भी किया है। स्वदेशी प्रचार, विदेशी वस्तुओं का बहिष्कार, अछूतोद्धार, शुद्धि-प्रचार, गोरक्षा, शिक्षा-प्रसार, स्त्री शिक्षा, विधवा विवाह आदि सभी श्रेष्ठ कार्यों में आर्यसमाज सदा अग्रणी रहा है। देश धर्म के लिये जो भी आन्दोलन और सत्याग्रह हुए हैं उनमें आर्यों ने किसी से कम भाग नहीं लिया, अपितु अग्रणी रहे हैं।

@VaidicPustakalay

यदि कोई पक्षपाती इतिहास लेखक इस ध्रुव सत्य को अतीत के निविडान्धकार में छिपाने को प्रयत्न करे तो यह उसकी कृतघ्नता है किन्तु कोई भी निष्पक्ष सहृदय व्यक्ति इससे इन्कार नहीं कर सकता कि देश की स्वतन्त्रता और सर्वविध क्रान्ति में महर्षि दयानन्द और उनके अनुयायी आर्य, सर्वदा अग्रणी रहे हैं।

बलिदान क्यों ?

यह प्रश्न उपस्थित हो सकता है कि जब अन्य अनेक ग्रन्थ इस विषय के प्रकाशित हो चुके हैं, और अब भी हो रहे हैं तब 'बलिदान' के छापने की आवश्यकता क्यों अनुभव हुई ? इसके उत्तर में हमारा संक्षिप्त निवेदन यही है कि आप एक बार इसे आद्योपान्त पढ़ने का कष्ट करें, आपको इसकी आवश्यकता का ज्ञान हो जायेगा। यह अपने ढङ्ग से लिखकर तैयार किया गया इतिहास है। लेखकों के अपने-अपने दृष्टिकोण होते हैं, जिसकी जैसी धारणा होती है वैसा ही वह लिखता है। इतना अच्छा स्वतन्त्रता का इतिहास अन्यत्र मिलना कठिन है। इसमें ऐसी भी सामग्री अनुसन्धान करके प्रकाशित की गई है जो कि आज तक किसी भी इतिहास के ग्रन्थ में नहीं छपी।

प्राय: सभी स्वतन्त्रता के इतिहास लेखकों ने क्रान्तिकारी वीरों को अच्छी दृष्टि से नहीं देखा। कोई उनके कार्यों को भावुकता में किया गया लड़कपन बतलाता है। कोई उनको विद्रोही अथवा आतङ्क-वादी कहता है। कोई उन्हें फासिस्ट लिखता है। भारत की स्वतन्त्रता के लिए फांसी के तख्ते पर चढ़ने वाले देश-भक्त वीरों के प्रति ऐसी उपेक्षा की हीन भावना वास्तव में निन्दनीय मनोवृत्ति है। इन लोगों ने क्षात्र धर्म को कोई महत्त्व नहीं दिया। इन्हीं क्रान्तिकारी वीरों ने अंग्रेजी साम्राज्य की जड़ों को काटा था और उनके बलिदानों से ही अनेक शताब्दियों से दास बने हुए भारतीयों के मन में स्वतन्त्रता की लहर दौड़ी थी। इनका यही उद्देश्य था कि लोगों को अपने देश के लिए बलिदान होने का पाठ पढ़ाया जाये। यदि क्रान्तिकारी वीर चाहते तो लुक-छिपकर अपनी प्राणरक्षा कर सकते थे किन्तु उन्होंने ऐसा करना उचित न समझा। वीरवर भगतसिंह ने तो अपने बयान में यह स्पष्ट उद्घोष भी किया था। अपने खून से स्वतन्त्रता के पौधे को सींचा। उनकी यह दृढ़ धारणा थी कि हमारा बलिदान व्यर्थ नहीं जायेगा। उनकी भावना का प्रतीक देखिये—

"मरते 'बिस्मिल' 'रोशन' 'लहरी' 'अशफाक' अत्याचार से।
होंगे पैदा सैकड़ों इनके रुधिर की धार से।

क्रान्तिकारियों की समस्त योजनायें देश की मुक्ति के लिए संघर्ष के रूप में होती थीं। वे अंग्रेज सरकार के दमन से लोहा लेकर उसे बताना चाहते थे कि हम तुम्हारी शस्त्र-शक्ति से भी भयभीत नहीं होते। उनका दृष्टिकोण आतंकवादी नहीं किन्तु समाजवादी था। 'क्रान्ति' शब्द की व्याख्या भगतसिंह और बटुकेश्वर दत्त के संयुक्त वक्तव्य में पढिये, कितनी सुन्दर की है।

एक बार चन्द्रशेखर आजाद का पण्डित जवाहरलाल नेहरू से क्रान्तिकारियों के सम्बन्ध में वार्तालाप हुआ। बात करते-करते नेहरू जी ने उसे 'फासिस्ट' कह दिया। नेहरू जी से मुलाकात के बाद अपने साथियों में इसकी चर्चा करते हुए आजाद ने कहा कि "साला हमें फासिस्ट कहता है।" आजाद का अभिप्राय: गाली देने का तो नहीं था किन्तु कुछ शब्द उनकी जबान पर चढ़े हुए थे। आजाद को इस बात का बहुत दुःख था कि नेहरू जी ने उन्हें 'फासिस्ट' क्यों कहा ? उन्होंने अपने साथी से कहा कि—"सोहन, एक दिन तुम जाकर पण्डित नेहरू से मिलो। मिलने का अभिप्राय यही था कि नेहरू जी ने हमें फासिस्ट क्यों कहा, यह पता लगाना चाहिए।

चन्द्रशेखर का विचार था कि सशस्त्र-क्रान्ति के बिना शान्तिमय साधनों से भारत को स्वतन्त्रता नहीं मिल सकती। पण्डित जवाहलाल नेहरू ने अपनी आत्मकथा में लिखा है कि—"वह यह मानने के लिए तैयार नहीं था कि शान्तिमय साधनों से ही हिन्दुस्तान को आजादी मिल जायेगी। उसने कहा, आगे कभी सशस्त्र लड़ाई का मौका आ सकता है।"

सन् १९३० में 'फिलासफी आफ दी बम, द्वारा क्रान्तिकारियों ने अपना राजनीतिक और शासन सम्बन्धी लक्ष्य स्पष्ट कर दिया था—"क्रान्तिकारियों का विश्वास है कि देश की जनता की मुक्ति केवल क्रान्ति द्वारा ही सम्भव है। क्रान्ति से हमारा अभिप्राय केवल जनता और विदेशी सरकार में सशस्त्र संघर्ष ही नहीं है। हमारी क्रान्ति का लक्ष्य एक नवीन न्यायपूर्ण सामाजिक व्यवस्था है। इस क्रान्ति का उद्देश्य विदेशी पूंजीवाद को समाप्त करके श्रेणीहीन समाज की स्थापना करना और विदेशी और देशी शोषण से जनता को मुक्त करके आत्मनिर्णय द्वारा जीवन का अवसर देना है। इसका उपाय शोषकों के हाथ से शासनशक्ति लेकर मजदूर श्रेणी के शासन की स्थापना ही है।

नेहरू जी को पता नहीं क्रान्तिकारियों के इन विचारों में फासिज्म की गन्ध कहाँ से आगई। इस भेंट में आजाद ने नेहरू जी से बातचीत में विशेष अनुरोध यह किया था कि गांधी जी सरकार से समझौते की शर्तों में लाहौर षड्यन्त्र के अभियुक्त भगतसिंह आदि की रिहाई की बात भी रखें। यह मांग आजाद की नहीं भारत की जनता की थी। किन्तु नेहरू जी ने स्पष्ट निषेध कर था कि गांधी जी ऐसी शर्त नहीं रखेंगे। यदि गांधी जी चाहते तो भगतसिंह, राजगुरु और सुखदेव आदि क्रान्तिकारी वीरों को बचा सकते थे किन्तु उन्होंने ऐसा नहीं किया।

विचार भेद और नीतिभेद होना दूसरी बात है किन्तु किसी भी क्रान्तिकारी शहीद का बलिदान भारत की स्वाधीनता के लिए कम महत्त्वपूर्ण नहीं है। नेताजी सुभाषचन्द्रबोस ने विचार भेद के कारण ही विदेशों में जाकर भारत की स्वतन्त्रता के लिए "आजाद हिन्द फौज" का गठन किया था।

यद्यपि मोहनदास कर्मचन्द गान्धी ने भी भारत के स्वाधीनता संघर्ष में अहिंसा और सत्याग्रह के माध्यम से बहुत बड़ा योग दिया। देश का नेतृत्व किया और अन्त में सफलता का श्रेय उनको मिला किन्तु इसका अर्थ यह नहीं कि जिन लाखों लोगों ने विगत शताब्दी में स्वाधीनता संग्राम में अपना सर्वस्व स्वाहा कर दिया वे मूर्ख थे अथवा उनके बलिदान निरर्थक एवं निष्फल होगये। सैकड़ों वर्ष लम्बे संघर्ष तथा बलिदानों के ही कारण अंग्रेज भारत छोड़ने के लिए विवश हुए थे। यह आप इस बलिदान गाथा को पढ़कर भलिभांति हृदयङ्गम कर पायेंगे।

स्वाधीनता संघर्ष के अन्तिम चरण में भारतवासियों की विशेषतया छात्र-छात्राओं की भावनाओं का चित्रण करते हुए आशारानी बोहरा ने पंजाब केसरी ३ मार्च १९८६ में "१९४२ के आन्दोलन में छात्राओं की भूमिका" शीर्षक से लिखा है—

"तुम्हारा नाम ?"

"बागी नं० १-२-३...२२ तक !"

"पिता का नाम ?"

"गांधी जी !"

"माता का नाम ?"

"भारतमाता !"

https://t.me/+WGB0D51vlengUlXI

इस प्रश्नोत्तर के बाद छात्राओं को पुलिस के चांटों का पुरस्कार मिला। विरोध करने पर कुछ छात्राओं के साथ पुलिस ने अपमानजनक व्यवहार भी किया। ये छात्रायें थीं, अमृतसर की।

'भारत छोड़ो' आंदोलन के दिनों पंजाब के छात्र-छात्राओं ने भी उत्साहजनक प्रतिक्रिया दिखाई थी। १० नवम्बर, १९४२ को लाहौर में (अब पाकिस्तान) १०४ विद्यार्थी गिरफ्तार हुए, जिनमें २२ लड़कियां थीं। ये लड़कियां केवल बैज वितरित करते हुए हीं गिरफ्तार करली गई थीं। इसी सिलसिले में पुलिस स्टेशन पर पुलिस अधिकारी से उनकी बातचीत का यह एक नमूना है।

१९४२ के 'भारत छोड़ो' आंदोलन में लगभग सभी बड़े नेताओं के जेल जाने के बाद आंदोलन का नेतृत्व छात्र-छात्राओं ने ही स्वयं आगे बढ़कर सम्भाल लिया था। इसलिए इस आंदोलन में गृहिणियों और लड़के-लड़कियों की बड़े पैमाने पर भागीदारी रही। इन टोलियों का काम भी अब केवल धरनों, जलूसों तक सीमित नहीं रह गया था। हजारों की तादाद में छात्र-छात्रायें स्कूलों का बहिष्कार कर सड़कों पर निकल आये थे। जगह-जगह घूमकर ये टोलियां फैक्टरियां, मिलें, दफ्तर, स्कूल-कालेज बन्द करवाती थीं और खतरा मोल लेकर भी स्वतन्त्रता का जयघोष करते हुए सरकारी इमारतों पर तिरंगा फहराती थीं।

असम की किशोरी कनकलता बरुआ गोपुर थाने पर झण्डा फहराने वाले निषिद्ध जलूस का नेतृत्व करते हुए ही २० सितम्बर, १९४२ को गोली का शिकार हो गई थी। उसके गिरते ही उसके कुछ साथी छात्रों ने बारी-बारी झण्डा हाथ में लिया और गोली खाकर शहीद हो गये। फिर आगे बढ़ी, उसकी एक सहपाठिनी कुमारी रत्नप्रभा, लेकिन पुलिस की गोली उस तक आती कि उसकी वृद्ध दादी योगेश्वरी ने उसे परे धकेल कर झण्डा अपने हाथ में ले लिया और रत्नप्रभा की जगह स्वयं गोली खाकर वहीं ढेर हो गई।

उन दिनों ऐसे उदाहरण सभी प्रांतों से मिल रहे थे। गांधी जी के निर्देश 'करो या मरो' के अनुसार छात्र-छात्रायें 'करने या मरने' पर उतारू थे और पुलिस उन्हें हर तरह 'सबक सिखाने' पर उतारू थी। गिरफ्तारी के बाद पुलिस-थानों पर उन्हें लाठियों, बंदूक के कुंदों, जूतों से मारने, गंदी अश्लील गालियां देने, निर्दयतापूर्वक बेंत मारने, मिर्चों की धूनी से भरे कमरों में बन्द करने, बर्फ की सिल्लियों पर लिटाने, तपती धूप में घण्टों खड़ा करने और लम्बे समय तक भूखा-प्यासा रखने की यातनायें दी गईं, लेकिन क्या मजाल कि किसी ने भी अपने केन्द्र, नेता या साथी-साथिनों का पता पुलिस को बताया हो।

बंगाल की क्रांतिकारी किशोरियां और युवतियां तो सबसे आगे थीं। चांदीपुर में पुलिस की अत्याचार की शिकार हो, सिन्धु बाला मैती की मृत्यु हो गई। मिदनापुर की शशिबाला दासी केशपुर पुलिस स्टेशन पर हमले में भाग लेते हुए पुलिस गोली की शिकार हुई। कलकत्ता की प्रतिभा भी एक जलूस का नेतृत्व करते हुए पुलिस गोली से मारी गई। शेष सैकड़ों लड़कियों को आठ महीने से लेकर ७ वर्ष तक की लम्बी सजायें सुनाई गईं। 'एक्शनों' में संलग्न लड़कियां, जिन्हें आजीवन कैद की सजायें हुई थीं और जो १९३७-३९ के बीच प्रांतीय स्वशासन के परिणामस्वरूप और बड़े नेताओं के हस्तक्षेप से रिहा हो गई थीं, वे भी १९४२ में फिर पकड़ ली गईं—कुछ अपनी दुबारा सक्रियता के कारण तो कुछ केवल सन्देह में ही। फिर भी मीरादत्त गुप्ता, किरण चक्रवर्ती जैसी कई लड़कियां देर तक भूमिगत रहकर कार्य करती रहीं।

@VaidicPustakalay

उत्तर प्रदेश में बलिया और गाजीपुर जिलों में आंदोलन अधिक उग्र था, जहां जिला प्रशासन पर बागी छात्र-छात्राओं ने कब्जा कर लिया था, इसलिए वहां पुलिस ने बहुत जुल्म ढाये। ११ अगस्त को बलिया में छात्र-छात्राओं के जलूस पर लाठीचार्ज भी हुआ। कानपुर में विद्यार्थियों ने डेढ़ महीने तक हड़ताल रखी। लखनऊ के महिला महाविद्यालय की लड़कियों ने विशेष साहस दिखाया। बनारस में ११ अगस्त को भारतीय सिपाहियों ने छात्र-छात्राओं के जलूस पर गोली चलाने का आदेश मानने से इन्कार कर दिया तो उस दिन कोई दुर्घटना नहीं घटी। इससे उत्साहित हो, १२ अगस्त को विद्यार्थियों ने फिर जलूस निकाला, जिसमें बड़ी संख्या में छात्रायें आगे थीं। जलूस पर पहले लाठीचार्ज हुआ और फिर गोलियां चलीं। छात्रों ने वीरता का प्रदर्शन कर अगुवाई कर रही छात्राओं को पीछे धकेला और गोलियां अपने सीनों पर झेल लीं। यह देखकर लड़कियों में और जोश उमड़ आया। उन्होंने हिम्मत करके घुड़सवार पुलिस के घोड़ों की लगामें पकड़ लीं और कुछ घुड़सवारों को नीचे गिरा दिया। इसके बाद कई राऊंड गोलियां चलीं। कुछ छात्र-छात्रायें व राहगीर मारे गये और कई जख्मी हुए।

बंगाल के बाद महाराष्ट्र की युवतियों का 'तूफानी दल' दूसरे नम्बर पर था। यहां के सतारा संभाग में भी बंगाल के तामलुक और संयुक्त प्रांत के बलिया की तरह 'समानान्तर सरकार' बना ली गई थी और भूमिगत रहकर अनेक युवतियां तोड़-फोड़ की कार्यवाहियों में शामिल थीं, जिन्हें पकड़ में आने पर ४ से ७ साल तक की लम्बी सजायें दी गईं। पूना, कोल्हापुर, अमरावती, साँगली आदि जगहों पर युवतियां पुलिस की गोली की शिकार हो शहीद हुईं।

गांधी जी के प्रभाव से गुजरात में आंदोलन १९४२ में भी अहिंसक और लगभग शांतिपूर्ण रहा, जहां सैकड़ों युवतियों ने आगे बढ़, सत्याग्रह करके गिरफ्तारियां दीं, पर असम, बिहार और अलमोड़ा-नैनीताल के पहाड़ी क्षेत्र तोड़-फोड़ में अग्रणी रहे, इसलिए वहां अनेक छात्रायें और महिलायें शहीद हुईं तथा उन्हें यातनायें व लम्बी सजायें भी दी गईं।

दक्षिण भारतीय प्रदेश भी पीछे न थे। कर्नाटक में तो छात्रायें कुछ अधिक ही सक्रिय थीं। जलूसों पर लाठीचार्ज से २५ छात्राओं को गम्भीर चोटें आईं। २३ अक्तूबर, १९४२ को धारवाड़ की दो छात्रायें हेमलता और गुणवती ने जिला अदालत में घुसकर जज की सीट पर तिरंगा फहराने की हिम्मत दिखाई और जज को इस्तीफा देने के लिए ललकारा। तुरन्त पुलिस बुलाई गई। गुणवती भागने में सफल हो गई, हेमलता गिरफ्तार कर ली गई। मैसूर में छात्र-छात्राओं के दबाव से जिला मैजिस्ट्रेट ने इस्तीफा देने से इन्कार किया तो उसके कागज-पत्र छीनकर उसे जबरदस्ती रिटायर कर दिया गया। पुलिस टुकड़ी के यहां पहुँचने पर उसकी पूछताछ का उत्तर देने की बजाये विद्रोही लड़के लड़कियों ने उनके हैट उतरवा कर उन्हें जबरदस्ती गांधी टोपियां पहना दीं। इसी समय गोली चलने से एक छात्रा गम्भीर रूप से जख्मी हुई, जिसकी बाद में मृत्यु हो गई। आंध्र के गुण्टूर जिले में भी छात्र-छात्राओं ने पुलिस वालों की पगड़ियां उतरवा कर उन्हें गांधी टोपियां पहनाईं और बुकिंग क्लर्कों की छुट्टी करके रेलवे स्टेशन पर कब्जा कर लिया। तमिलनाडु में भी इसी तरह की कार्रवाइयां जारी थीं और छात्र-छात्रायें ही अगुवाई कर रहे थे। कुछ लड़के-लड़कियां पुलिस की गोलियों से शहीद भी हुए। कचहरियों, थानों पर कब्जा करके झण्डे फहराना, रेल की पटरियां उखाड़ना और तोड़-फोड़ की अन्य कार्रवाहियां उन दिनों आम बात थी, भले ही उसके लिए बाद में उन्हें पुलिस के जुल्म सहने पड़े। जलूसों पर अंधाधुंध लाठीचार्ज हुए, जिनसे सैकड़ों छात्र-छात्रायें जख्मी हुए, पर उससे भी बड़ी शर्मनाक पुलिस कार्रवाई थी, गिरफ्तारी के बाद छात्र-छात्राओं को दी जाने वाली क्रूर यातनायें तथा उनसे अभद्र व्यवहार।"

—वेदव्रत शास्त्री

विषय-सूची

@VaidicPustakalay

ओ३म्

भूमिका

संसार का उपकार करना इस समाज का मुख्योद्देश्य है, अर्थात् शारीरिक, आत्मिक और सामाजिक उन्नति करना। महर्षि दयानन्द जी महाराज ने आर्यसमाज के दस नियम और उद्देश्य बनाकर संसार के सम्मुख एक सर्वोच्चादर्श की स्थापना करदी। महर्षि दयानन्द जी इस युग के निर्माता और विधाता थे। वे आदित्य ब्रह्मचारी, ब्रह्मर्षि सब वेदवेदाङ्गों के प्रकाण्ड पण्डित और महान् विद्वान् थे। आदर्श त्यागी और तपस्वी थे। आदर्श वक्ता निर्भीक और महान् लेखक थे। महाभारत के पश्चात् इन पांच सहस्र वर्षों में उनके समान कोई महा-मानव हुआ नहीं। ब्रह्मा से लेकर जैमिनि पर्यन्त अट्ठासी सहस्र ऋषि महर्षि हुये। "अष्टाशीतिसहस्राणि ऋषीणामूर्ध्वरेतसां बभूवुः।" जो सारी आयु ऊर्ध्वरेता अखण्ड ब्रह्मचारी रहे। यह परम्परा महाभारत के पश्चात् टूट गई थी। इस टूटी हुई ऋषियों की परम्परा को, प्राचीन गुरुवों की परम्परा को महर्षि दयानन्द जी महाराज ने पुनः जोड़ दिया अथवा इस आदर्श परम्परा का पुनरुद्धार करने वाले ऋषिवर देव दयानन्द जी ही थे। अज्ञान के घोरान्धकार में पुनः उजाला करने वाले अकेले महर्षि दयानन्द जी महाराज ही थे।

डेढ़ अरब के मुकाबिले पर इकला ही शेर दहाड़ा था।
जो कोई आया मुकाबिले पर उसको ही मार पछाड़ा था।

ऋषिवर देव दयानन्द के जितने गुण गायें उतने ही थोड़े हैं। उस आदर्श ब्रह्मचारी, आदर्श त्यागी, आदर्श तपस्वी, आदर्श संन्यासी महान् विद्वान् और निर्भीक वक्ता के गुणों की गाथा का गान करना वा लिखना हमारी वाणी और लेखनी की शक्ति से बाहर है। अपने धर्मावलम्बियों की सेवा व उनसे प्रेम तो सभी महापुरुष करते हैं किन्तु अपने शत्रुओं अथवा विरोधियों की सेवा करना, उनसे प्रेम करना इस देव पुरुष का मुख्य गुण व स्वभाव बना हुआ था। अपने विष देनेवाले व्यक्तियों को "क्षमा वीरस्य भूषणम्" के अनुसार क्षमा करना तो उनका स्वभाव बना हुआ था। वे तो इतने आगे बढ़े कि प्राणघातक विष देनेवाले रसोइये को प्रचुरधन उसकी प्राणरक्षार्थ अपने पास से देकर उसे भगा दिया। वे दया के भंडार थे, उस वीतराग संन्यासी को दया करने में ही आनन्द आता था। उन का दयानन्द नाम सार्थक था। "मित्रस्य चक्षुषा" इस पवित्र वेद-वाणी के अनुसार ही उन्होंने "संसार का उपकार करना इस समाज का मुख्योद्देश्य है" इस नियम व उद्देश्य को बनाया और वे अपने शिष्यों वा सभी आर्यसमाजियों को इसी नियम के अनुसार आचरण करने की पवित्र शिक्षा दे गये। यही शिक्षा थी और यही आदर्श उन महान् पुरुषों ने हम सब के सम्मुख रखा। वे जो चाहते थे कि मेरे शिष्य करें वह अपने जीवन में करके दिखा दिया। उनकी करनी और कथनी में भेद नहीं था। उन्होंने हँसते-हँसते अपना सर्वस्व वैदिकधर्म पर न्यौछावर कर दिया। आर्यसमाज के लिये धर्म पर अपने अमूल्य प्राणों व जीवन की बलि चढ़ाकर बलिदान का द्वार खोल दिया। आर्यसमाज का इतिहास बलिदानों का इतिहास है। अपने ही रक्त से रक्तरंजित आर्यों का इतिहास है। अपने शत्रुओं,

विरोधियों के रक्त में हम ने अपने हाथ रंग कर कभी कलंकित नहीं किये । यह कलंक तो हमारे विरोधियों ने ही लिया है । यथार्थ बात तो यह है हमने किसी को अपना शत्रु ही नहीं समझा । सबकी मित्र की दृष्टि से ही सेवा की । जब भी कभी किसी पर कहीं भी आपत्ति आई, सदैव आर्यसमाज ने उनके दुःख में हाथ बटाया । दुःखी रोते हुये के आंसू पूंछे । पर सेवा या परोपकार का नाम ही धर्म है । यही धार्मिक भावना स्वभावतः धार्मिक पुरुषों व आर्यसमाजियों के भीतर प्राणिमात्र के दुःख दर्द में संवेदना के भाव उत्पन्न करती है । जब कभी मनुष्य समाज के किसी अंश पर कोई विपत्ति आई तो आर्यसमाज उसी समय पीड़ित लोगों की सहायता करने के लिये आगे बढ़ा । विपद्-ग्रस्त जनता की सेवार्थ अपने आर्य वीरों व स्वयंसेवकों की सेनायें सदैव भेजता रहा है और उनकी आवश्यकताओं को पूरा करने के लिये मुक्तहस्त से धन की भी सहायता करता रहा है । आर्यसमाज का जीवनकाल बहुत ही थोड़ा है । महर्षि दयानन्द जी ने सन् १८७५ में इसकी स्थापना की थी । लगभग १०४ वर्षों में आर्यसमाज ने कष्टापन्न जनसमाज की सेवा का कोई अवसर कभी हाथ से नहीं जाने दिया । अनेक बार हमारे देश में भयंकर अकाल पड़े, अनगिनत व्यक्ति अन्न न मिलने से अपने प्राणों से हाथ धो बैठे हैं । असंख्य बसे हुये घर उजड़ गये । भूख से विह्वल होने के कारण पति को पत्नी की और माता को सन्तान की भी सुध नहीं रही । सर्वत्र हाहाकार और त्राहि-त्राहि मच गई । आर्यसमाज ने अपने सेवकों द्वारा दुःखित लोगों को अन्न, वस्त्र, धन और औषध की पर्याप्त सहायता दी ।

सैंकड़ों अनाथ बच्चों की सहायता की और असहाय ललनाओं की लज्जा को भी बचाया । अनेक बार इस प्रकार के आपत्ति के समय में दुःखियों की सहायता करने वाला आरम्भ में केवल एक मात्र आर्यसमाज ही था । १८९६ के भयंकर अकाल से लेकर १९७८ के भयंकर बाढ़ग्रस्त लोगों की सेवा करने में आर्यसमाज ने कोई कसर नहीं रखी । १९७७-७८ की भयंकर बाढ़ में केवल आर्य प्रतिनिधि सभा हरयाणा, गुरुकुल झज्जर रोहतक, आर्ष कन्या गुरुकुल नरेला आदि आर्य संस्थाओं की ओर से बाढ़पीड़ित लोगों में १ लाख रुपये से अधिक की विषम ज्वर (मलेरिया) आदि की औषध वस्त्र और अन्न आदि बांटा गया । १९३४ के भयंकर भूकम्प में अनेक नगर नष्ट हो गये । १९३५ का क्वेटा में प्रलयंकारी भीषण भूकम्प आया । सारा क्वेटा विनष्ट होगया । हजारों लोग दबकर मर गये । चल और अचल सम्पत्ति सब नष्ट होगई । ऐसे विपत्ति के सभी अवसरों पर आर्यसमाज ने सेवा कार्य में अपना तन, मन और धन सब कुछ लगा दिया । देश विदेश में जब कभी और कहीं भी जनता पर कोई भी विपत्ति आई, आर्यसमाज सेवा के कार्य में सबसे बढ़कर आगे रहा । स्वामी श्रद्धानन्द और महात्मा हंसराज आदि की इस प्रकार की सेवायें जो आर्यसमाज के प्रारम्भिक काल में उन्होंने अपने साथियों सहित की वे सब सुनहरी अक्षरों में लिखने योग्य हैं । आर्यसमाज का इतिहास सेवा और बलिदानियों का इतिहास है । धर्मवीर पण्डित लेखराम, स्वामी श्रद्धानन्द, पं० रामचन्द्र जी, महाशय राजपाल, भाई श्यामलाल, धर्मप्रकाश, भक्त फूलसिंह, चौ० पीरूसिंह, चौ० सुनहरासिंह, श्री सुमेरसिंह, ब्रह्मचारी हरिशरण आदि आर्यसमाज के सैकड़ों नेता और आर्य वीर हुये जिन्होंने हँस-हँसकर देश धर्म के लिये बलिदान दिये ।

कोहाट के दंगे, मालाबार का मोपला काण्ड, नवाखली में मुसलमानों के अत्याचार और पाकिस्तान बनने पर १९४७ के मुस्लिम गुण्डों के अत्याचार, लुहारु के नवाब द्वारा दो बार किया

हुआ गोली काण्ड, हैदराबाद का आर्य सत्याग्रह, पंजाब का राष्ट्रभाषा हिन्दी रक्षा आन्दोलन और गोरक्षा आन्दोलन इन सब का इतिहास "आर्यसमाज के बलिदानों की तस्वीर व चित्रशाला है। इस बलिदान के लम्बे इतिहास को मेरी निर्बल लेखनी थोड़े पृष्ठों में लिखने में कैसे समर्थ हो सकती है। यह तो बहुत लम्बी गाथा है। इनके लिखने के लिये बहुत समय और प्रकाशन के लिये विपुल धनराशि चाहिये।

२८ वर्ष पश्चात् 'बलिदान' ग्रन्थ का यह परिवर्धित दूसरा संस्करण छपकर आपके हाथों में है। इससे लाभ उठावें और देशभक्तों के पदचिह्नों पर चलने की प्रेरणा प्राप्त करें।

चैत्र शुक्ला प्रतिपदा, २०४३ वि०

—ओमानन्द सरस्वती

सर्वविध क्रान्ति के जन्मदाता—

महर्षि दयानन्द सरस्वती
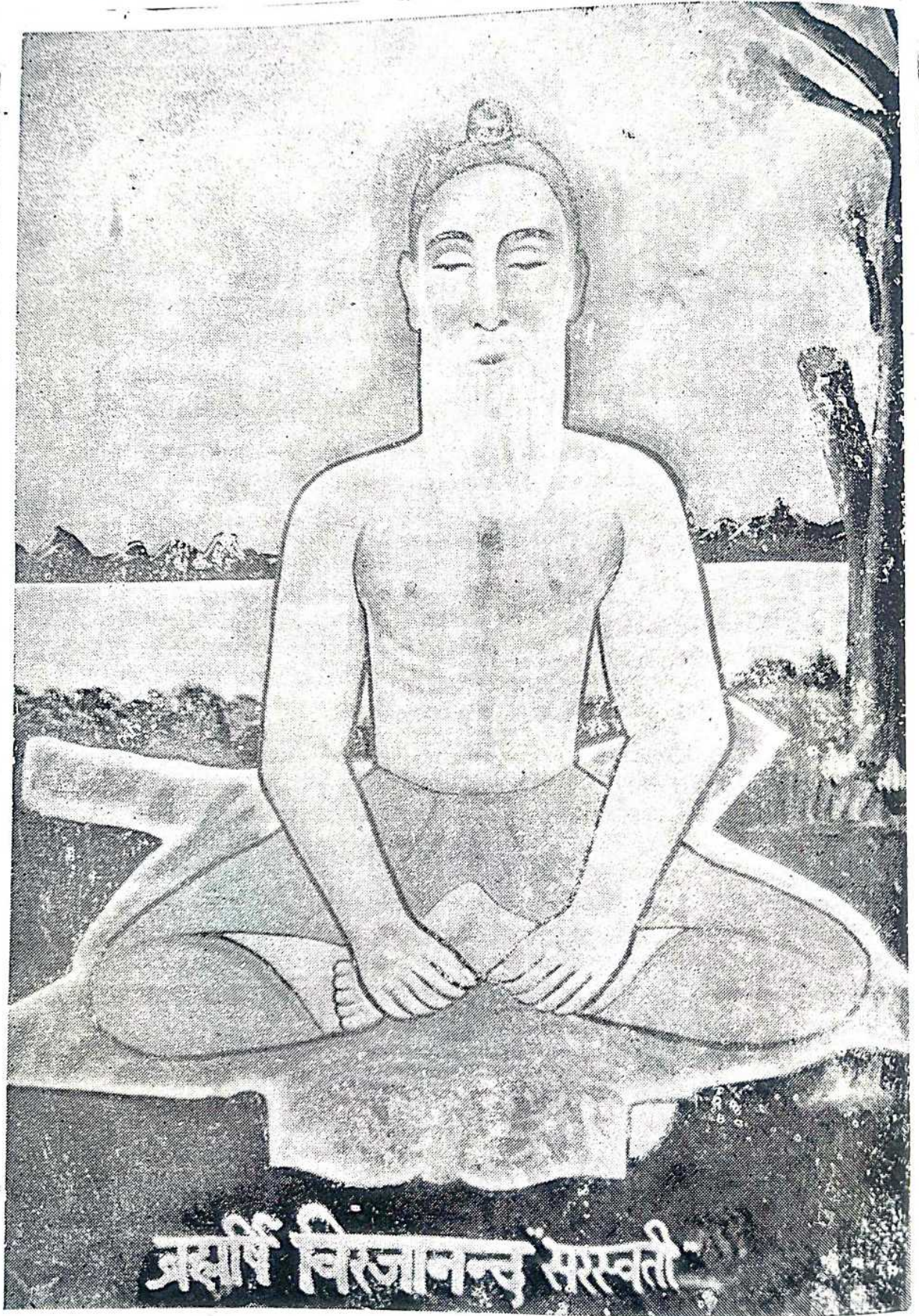
श्री स्वामी विरजानन्द जी महाराज

स्वातन्त्र्य संग्राम के प्रमुख सूत्रधार—

नाना साहब पेशवा और ताँत्या टोपे
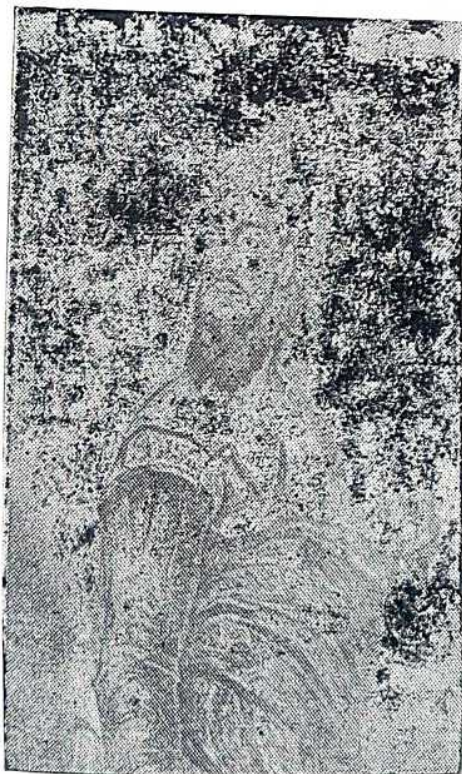
बिहार का राजा कुँवरसिंह

अन्तिम सम्राट् बहादुरशाह की गिरफ्तारी

झांसी की महारानी लक्ष्मीबाई—

जिसने सन् १८५७ में मध्यभारत में अंग्रेजों के विरुद्ध स्वतन्त्रता संग्राम का सञ्चालन किया।

@VaidicPustakalay

भारतीय स्वातन्त्र्य-संग्राम के मूल कारण

लगभग एक शताब्दि पूर्व सन् १८५७ ई० में भारतीय क्रांतिकारी वीरों ने अंग्रेज शासकों से भारत की स्वतन्त्रता की लड़ाई लड़ी। इस स्वाधीनता संग्राम का अनेक लेखकों ने 'गदर' वा 'विद्रोह' नामकरण किया है, किन्तु वास्तव में वह 'गदर' वा 'विद्रोह' नहीं अपितु एक राष्ट्रीय और शुद्ध धार्मिक युद्ध था। अंग्रेज इतिहास लेखक जस्टिन मैक्कार्थी ने इस सत्य की सम्पुष्टि की है। "A National and Religious war" (History of our own times, vol, iii)

इसलिए १८५७ के धर्मयुद्ध को 'गदर' अथवा 'विद्रोह' कहना उन सहस्रों अमर हुतात्माओं के प्रति अन्याय है जिन्होंने भारत की स्वतन्त्रता के लिए अपना सर्वस्व अर्पण कर दिया। इस युद्ध का वास्तविक नामकरण प्रथम "भारतीय-स्वातन्त्र्य-संग्राम" होना चाहिए क्योंकि भारत की स्वतन्त्रता के लिए यह प्रथम युद्ध था।

इस स्वातन्त्र्य संग्राम का मूल कारण कुछ इतिहास लेखक राजनीतिक मानते हैं और कुछ धार्मिक। इस क्रांति का मूल कारण वास्तव में धार्मिक और राजनीतिक दोनों ही थे। क्योंकि धर्म और राजनीति परस्पर सम्बद्ध हैं, धर्म को राजनीति से पृथक् समझना भूल है। उस समय भारत में कम्पनी का राज्य था। 'ईस्ट इण्डिया कम्पनी' के राज्य में अंग्रेज अधिकारी (अफसर) मनचाहे भीषण अत्याचार भारतीय जनता पर करते थे। उनके इन भयंकर अत्याचारों से भारतीय जनता और सैनिक क्षुब्ध हो गए थे। अंग्रेज शासकों के असह्य अत्याचारों के कारण जनता और सैनिकों की क्रोधाग्नि ने इतना भयङ्कर रूप धारण कर लिया था कि वे इन अत्याचारों का बदला लेने के लिए उतावले हो रहे थे। कम्पनी के राज्य से सभी लोग दुखी थे। एक ओर सर्वसाधारण का प्रतीकार की भावना जाग उठी थी और दूसरी ओर कम्पनी ने जिन नवाबों और देशी राजाओं की रियासतों पर कब्जा कर लिया था वे बदला लेने के लिए उद्यत हो गए और स्थानीय नेता के रूप में समर की तैय्यारी में जुट गए। इन विक्षुब्ध भारतीयों की प्रतीकार की भावना ने कम्पनी के राज्य के समूल विनाश का निश्चय कर लिया।

सन् १८५३ ई० में 'कम्पनी' ने अपनी भारतीय सेना के लिए एक नये ढङ्ग के कारतूस प्रचलित करवाये। भारत में अनेक स्थानों पर इन कारतूसों के बनाने के लिए कारखाने खोले गए। पहले के कारतूस हाथ से तोड़े जाते थे किन्तु नए कारतूसों को दांतों से काटना पड़ता था। प्रारम्भ में केवल एक दो पलटनों में यह नए कारतूस प्रचलित किए गए। वास्तविकता का ज्ञान न होने के कारण भारतीय सैनिकों ने नये कारतूसों को दांतों से काटना स्वीकार कर लिया। शनैः शनैः इन नए कारतूसों का प्रयोग बढ़ाया गया।

बैरकपुर में इन नये कारतूसों के निर्माण का एक कारखाना खोला गया। एक दिन दैवयोग से एक घटना इस प्रकार घटी। दमदम का एक ब्राह्मण सिपाही पानी का लोटा भरकर अपनी बैरिक की ओर जा रहा था। मार्ग में एक भङ्गी ने आकर पानी पीने के लिये लोटा मांगा तो जन्मजात ब्राह्मण सिपाही ने अपनी प्रचलित प्रथा के अनुसार लोटा देने से इन्कार कर दिया। इस पर भङ्गी ने

कहा—"तुम अब जात पांत का घमण्ड न करो ! क्या तुम्हें मालूम नहीं कि शीघ्र ही तुम्हें अपने दांतों से गाय का माँस और सूअर की चर्बी काटनी पड़ेगी ? जो नये कारतूस बन रहे हैं उनमें जान बूझकर यह दोनों चीजें लगाई जा रही हैं।"

ब्राह्मण सैनिक क्रुद्ध हुआ अपनी छावनी में पहुंचा, जब दूसरे सैनिकों ने यह दुःखद वृत्तान्त सुना तो वे भी क्रोध से लाल हो गये। वे परस्पर एक दूसरे को कहने लगे कि अंग्रेज सरकार जान बूझकर हम भारतीयों को धर्मभ्रष्ट करना चाहती है। इसके पश्चात् उन सैनिकों ने अपने अंग्रेज अफसरों से पूछा तो अफसरों ने स्पष्ट उत्तर दिया कि यह सर्वथा झूठी अफवाह है और नए कारतूसों में इस प्रकार की कोई वस्तु नहीं है। सैनिकों को अंग्रेज अफसरों के उत्तर पर विश्वास नहीं हुआ, इसलिए उन्होंने बैरकपुर कारतूस कारखाने में काम करने वाले हिन्दुस्तानी मजदूरों से इस विषय में पूछ-ताछ की। पता लगा कि वास्तव में यह सत्य है कि नये कारतूसों के निर्माण में हिन्दू और मुसलमान धर्म में निषिद्ध गाय तथा सूअर की चर्बी का प्रयोग किया जाता है। इस प्रकार निश्चय करने के पश्चात् बैरकपुर के सैनिकों ने यह सूचना समस्त हिन्दुस्तान में फैला दी। बैरकपुर से पेशावर और महाराष्ट्र तक इस विषय के हजारों पत्र भेजे गये। इस प्रकार नये कारतूसों का वृत्तान्त बिजली की भांति प्रत्येक भारतीय सैनिक के कानों तक पहुंच गया। प्रत्येक हिन्दू और मुसलमान सैनिक अंग्रेजों से इस अन्याय का बदला लेने के लिये बेचैन हो उठा, किन्तु सैनिकों के नेताओं ने उनको ३१ मई तक रोके रखने के सभी प्रकार के प्रयत्न किये।

प्रायः सभी अंग्रेज इतिहास लेखकों ने विशेषतया उन्होंने जो सरकारी स्कूलों के लिये पाठ्य पुस्तकें लिखा करते थे, कारतूसों में चर्बी की अफवाह को झूठा बतलाया है और उस पर विश्वास करने वाले सैनिकों को मूर्ख कहा है। १८५७ में गवर्नर जनरल लार्ड कैनिङ्ग से लेकर छोटे से छोटे अंग्रेज अफसर तक सबने गम्भीरतापूर्वक यह घोषणा की और सैनिकों को विश्वास दिलाने का प्रयत्न किया कि कारतूसों में चर्बी की बात सर्वथा मिथ्या है और बदमाश लोगों ने फौज को बर्बाद करने के लिए फैलाई है। किन्तु १८५७ की जन क्रांति का प्रामाणिक इतिहास लेखक 'सर जान के' लिखता है—

"There is no question that beef fat was used in the composition of this tallow"—Kay's Indian Mutiny vol i P. 381.

"इसमें कोई सन्देह नहीं कि इस चिकने मसाले के बनाने में गाय की चर्बी का उपयोग किया गया था।"

'सर जान के' यह भी लिखता है कि दिसम्बर १८५३ ई० में करनल टकर ने लिखा था कि नये कारतूसों में गाय और सूअर दोनों की चर्बी लगाई जाती थी। दमदम के कारखाने में जिस ठेकेदार को कारतूसों के लिए चर्बी का ठेका दिया गया था उससे ठेके के कागज पर यह स्पष्ट शब्दों में लिखवा लिया गया था कि "मैं गाय की चर्बी लाकर दूंगा" चर्बी का भाव चार आने सेर रखा गया था। लार्ड राबर्ट विलियम लैकी आदि ने भी कारतूसों में चर्बी मिलाने की सत्यता स्वीकार की है।

सैनिकों में इस असन्तोष के फैलने के कुछ दिन पश्चात् कम्पनी राज्य की ओर से विज्ञप्ति प्रकाशित हुई कि एक भी इस तरह का कारतूस फौज में नहीं भेजा गया। किन्तु उसी में से साढे बाईस हजार कारतूस अम्बाला डिपो से और चौदह हजार कारतूस सियालकोट डिपो से, दोनों से साढे छत्तीस हजार कारतूस भारतीय फौज में भेजे जा चुके थे। अनेक पलटनों में अंग्रेज अफसरों ने भारतीय सैनिकों को धमकाना प्रारम्भ कर दिया था कि तुम्हें नये कारतूसों का प्रयोग करना पड़ेगा। एक दो स्थानों में सैनिकों ने हठ किया तो पूरी रेजिमेंट को दण्ड दिया गया।

कम्पनी राज्य के अंग्रेज अफसरों के अत्याचारों के विरुद्ध परतन्त्र भारतीय जनता और सैनिकों में कम्पनी राज्य को समाप्त कर भारत को स्वतन्त्र कराने की जो अग्नि जल उठी थी उसमें गाय और सूअर की चर्बी से सने कारतूसों की घटना ने पैट्रोल का कार्य किया और प्रतिशोधाग्नि ने भयङ्कर रूप धारण कर लिया। बहुत से इतिहास लेखक कारतूसों की घटना को ही क्रांति का एकमात्र प्रमुख कारण मानते हैं, किन्तु वास्तव में यह मूल कारण नहीं अपितु क्रांति को भयङ्कर रूप देनेवाला विस्फोटक कारण था। चार्ल्स बाल ने अपने विप्लव के इतिहास में लिखा है कि डिजरेली, जो पीछे इङ्गलिस्तान का प्रधानमन्त्री हुआ, कहा करता था कि कोई भी मनुष्य कारतूसों को विप्लव का वास्तविक कारण नहीं मानता।

१८५७ के स्वातन्त्र्य संग्राम का प्रमुख कारण था—"कम्पनी राज्य में अंग्रेजी अफसरों और अंग्रेजों का भारतीय जनता पर भीषण अत्याचार इस का हम उल्लेख कर चुके हैं। उस अत्याचार वा अनुचित व्यवहार के कुछ उदाहरण नीचे लिखे जाते हैं जो कि इस क्रांति के मुख्य कारण हैं —

१—दिल्ली के तात्कालिक सम्राट् के साथ अंग्रेजों का निरन्तर अनुचित व्यवहार।

२—अवध के नवाब और अवध की प्रजा के साथ अत्याचार।

३—लार्ड डलहौजी की व्यापक अपहरण नीति।

४—अन्तिम पेशवा बाजीराव के दत्तक पुत्र नानासाहब के साथ कम्पनी का अन्याय।

५—भारतीय शिक्षा का सर्वनाश।

६—उद्योग धन्धों का ह्रास।

७—भारतवासियों को ईसाई बनाने की आकांक्षा और भारतीय सेना में ईसाई-मत प्रचार।

इन में से एक-एक कारण का अति संक्षिप्त रूप में वर्णन करना अत्यावश्यक है।

१. दिल्ली सम्राट् और अंग्रेज

सम्राट् शाह आलम के समय तक, जो १७५६ से १८०६ तक दिल्ली के तख्त पर रहा, भारतवासी सभी अंग्रज अपने आपको दिल्ली सम्राट् की प्रजा कहा करते थे। सम्राट् की आज्ञा से ही 'ईस्ट इण्डिया कम्पनी' को व्यापारिक कोठियां बनाने के लिए कलकत्ता, मद्रास, सूरत आदि में जागीरें मिलीं। गवर्नर जनरल से लेकर छोटे से छोटा भी अंग्रेज सम्राट् के दरबार में जाता था वह अन्य दरबारियों की भांति सम्राट् का सत्कार करता था। प्रत्येक गवर्नर जनरल की मोहर में 'दिल्ली के बादशाह का फिदवी खास' (अर्थात् विशेष नौकर) यह शब्द खुदे रहते थे। शाह आलम ने १७६५ में क्लाइव को बंगाल और बिहार की दीवानी के अधिकार प्रदान किये थे।

इसके पश्चात् शनैः शनैः सम्राट् का बल घटता गया। कम्पनी ने भारत में अपना राज्य स्थापित करने के लिए मराठों की बढ़ती हुई सत्ता को कुचलना आवश्यक समझा। यह द्वितीय युद्ध का काल था। जनरल 'लेक' ने कम्पनी की ओर से "इकरारनामा" लिखकर शाह आलम के सम्मुख उपस्थित किया। जिसमें कम्पनी ने शाह आलम को वचन दिया था कि हम समस्त देश में आपका प्राचीन आधिपत्य फिर से स्थापित कर देंगे। अदूरदर्शी शाह आलम अंग्रेजों की कूटनीति में आ गया और शाह आलम की सहायता से १८०४ में अंग्रेजों ने मराठों को दिल्ली से खदेड़ दिया।

१८०६ ई० में शाह आलम की मृत्यु के पश्चात् सम्राट् अकबर शाह दिल्ली के तख्त पर बैठा। उस समय 'सीटन' कम्पनी की ओर से दिल्ली में रेजिडेण्ट नियुक्त था, वह एक साधारण व्यक्ति की भांति

सम्राट्-कुल के प्रत्येक बच्चे का यथोचित सत्कार करता था। किन्तु सीटन के पश्चात् चार्ल्स मेटकाफ रेजिडेण्ट नियुक्त हुआ। इस समय अंग्रेजों की शक्ति बढ़ चुकी थी। इसलिए मेटकाफ ने अपने अंग्रेज स्वामियों की आज्ञा से सम्राट् अकबरशाह की ओर अपना व्यवहार बदल दिया। उसने ऐसी चेष्टाएं प्रारम्भ कर दीं जो सम्राट् और उसके कुल के लिए अपमानजनक थीं। सम्राट् और उसके हितचिन्तकों के मन में अंग्रेजों के प्रति घृणा बढ़ती चली गई और दिल्ली में अंग्रेजों के विरुद्ध असंतोष फैलने लगा।

१८३७ ई० में सम्राट् बहादुरशाह दिल्ली के सिंहासन पर बैठा। बहादुरशाह ने 'इकरारनामे' की एक शर्त के अनुसार अपने व्यय की राशि में वृद्धि करवानी चाही तो सम्राट् को उत्तर मिला कि यदि अपने और अपने वंशजों के समस्त शेष अधिकार विधिवत् कम्पनी को सौंप दो तो व्यय राशि में वृद्धि कर दी जायेगी। बहादुरशाह ने यह न स्वीकार किया। इससे दिल्ली में अंग्रेजों के विरुद्ध और भी अधिक असन्तोष फैल गया।

प्रत्येक ईद, नौरोजे और सम्राट् की वर्षगांठ पर गवर्नर जनरल और कमाण्डर-इन-चीफ समाट् को नजरें पेश किया करते थे किन्तु लार्ड एलेनब्रुक ने गवर्नर जनरल बनते ही यह कार्य भी बन्द कर दिया। इस प्रकार अंग्रेजों ने पद-पद पर दिल्ली के समाट् का अपमान करना प्रारम्भ कर दिया।

२—अवध के साथ अत्याचार

स्वातन्त्र्य संग्राम से एक वर्ष पूर्व बिना किसी कारण अवध की समस्त भू-सम्पत्ति अंग्रेजी राज्य में मिला ली गई और नवाब वाजिदअली शाह को निर्वासित कर कलकत्ते भेज दिया गया। कम्पनी की सेना ने बलात् लखनऊ पर आधिपत्य जमा लिया, महल को लूटा और बेगमों का अपमान किया। अवध के नवाब के हजारों बड़े-बड़े जमींदार और ताल्लुकेदार हिन्दू थे, उनकी पैतृक जमींदारियां निष्कारण छीन ली गईं और इनमें से अनेक को दर-दर का भिखारी बनने के लिए बाधित किया गया। नवाब से लेकर छोटे से छोटे किसान तक सब कम्पनी के दुर्व्यवहार से दुखी थे।

३—लार्ड डलहौजी की अपहरण नीति

उस समय कम्पनी की सेना में अधिकांश सैनिक अवध से ही लिए जाते थे, अवध निवासियों के साथ लार्ड डलहौजी के अत्याचारों ने समस्त अवध और अंग्रेज सेना के बीच में गहरे असन्तोष के बीज बो दिए थे। लार्ड डलहौजी की भू-पिपासा साधारण न थी, उसने एक के पश्चात् दूसरा, सतारा, पंजाब, झांसी, नागपुर, पगू, सिक्किम, सम्बलपुर इत्यादि देशी रियासतों का अपहरण किया। लार्ड डलहौजी ने 'इनाम-कमीशन' की नियुक्ति की थी, इसने समस्त भारत की लगभग ३५ हजार जागीरों और इनामों की जाँच की और दस वर्ष के अन्दर २१ हजार जमींदारियां जब्त कर कम्पनी राज्य में मिला दीं और भारत के हजारों पुराने प्रतिष्ठित घरानों की दुर्दशा कर डाली।

४—नाना साहब के साथ अन्याय

सन् १८५१ में अन्तिम पेशवा बाजीराव की मृत्यु हुई। बाजीराव के राज्य के बदले में कम्पनी ने सन् १८१८ में "उसके, कुटुम्बियों और आश्रितों के पोषण के लिए" ८ लाख रुपया वार्षिक देना स्वीकार किया था। सन् १८२८ में बाजीराव ने नाना धोन्धोपन्त को गोद लिया, उस समय नाना साहब की आयु ३ वर्ष की थी। कानपुर के निकट बिठूर में पेशवा के उस समय लगभग ८ हजार स्त्री-

@VaidicPustakalay

पुरुष और बालक रहा करते थे, इन सब का पालन-पोषण इसी ८ लाख रुपया वार्षिक की पेंसन से होता था। बाजीराव पेशवा के मरते ही लार्ड डलहौजी ने यह पेंसन तत्काल बन्द कर दी और मृत्यु से पूर्व के शेष ६२ हजार रुपये कम्पनी की ओर शेष थे वे भी देने से निषेध कर दिया। इतने से भी डलहौजी को सन्तोष न हुआ, उसने नाना साहब को यह नोटिस भी दे दिया कि बिठूर की जागीर भी तुम से जब चाहें छीन ली जायेगी।

समस्त अंग्रेज इतिहास लेखकों ने यह स्वीकार किया है कि इससे पूर्व नवयुवक नाना साहब का अंग्रेजों के प्रति बहुत अच्छा व्यवहार था किन्तु अंग्रेजों के अन्याय के कारण यही नाना साहब १८५७ की क्रांति का प्रमुख संयोजक बन गया।

१—भारतीय शिक्षा का सर्वनाश

अंग्रेजों के भारत आने से पूर्व योरूप के किसी भी देश में इतना शिक्षा का प्रचार नहीं था जितना कि भारत वर्ष में था। भारत विद्या का भण्डार था। सार्वजनिक शिक्षा की दृष्टि से भारत सब देशों का शिरोमणि था। उस समय असंख्य ब्राह्मण आचार्य अपने-अपने कुल में शिष्यों को शिक्षा देते थे। मुख्य-मुख्य नगरों में विद्यापीठें स्थापित थीं। छोटे बालकों की शिक्षा के लिए प्रत्येक ग्राम में पाठशालायें थीं, जिनका संचालन पंचायतों की ओर से किया जाता था। इङ्गलिस्तान पार्लियामेंट के सदस्य केर हार्डी ने अपनी पुस्तक 'इण्डिया' में लिखा है—

"मैक्समूलर ने, सरकारी उल्लेखों और मिशनरी की रिपोर्ट के आधार पर जो बंगाल पर कब्जा होने से पूर्व वहाँ की शिक्षा की अवस्था के सम्बन्ध में लिखी गई थी, लिखा कि उस समय बंगाल में ८० हजार पाठशालाएं थीं।"

सन् १८२३ ई० की 'कम्पनी' की एक सरकारी रिपोर्ट में लिखा है—"शिक्षा की दृष्टि से संसार के किसी भी अन्य देश में किसानों की अवस्था इतनी ऊंची नहीं है जितनी ब्रिटिश भारत के अनेक भागों में।"

भारत के जिस-जिस प्रान्त में 'कम्पनी' का राज्य स्थापित होता गया उस उस प्रान्त में सहस्रों वर्ष पुरानी शिक्षा प्रणाली सदा के लिए मिटती चली गई। ग्राम पंचायतों और देशी रियासतों के साथ-साथ पाठशालाओं का भो लोप होता गया। क्योंकि ग्राम पंचायतें पाठशालाओं का प्रबन्ध करना अपना कर्त्तव्य समझती थीं और देशी रियासतों के राजाओं की आय का बहुत बड़ा भाग शिक्षा प्रचारार्थ पाठशालाओं को दिया जाता था। यह सहायता मासिक और वार्षिक बँधी हुई थी।

हमारे प्राचीन इतिहास और साहित्य को नष्ट कर उसके स्थान में मिथ्या इतिहास लिखवाकर भारतीय स्कूलों में पढ़ाना प्रारम्भ किया गया, सखेद लिखना पड़ता है कि वही मिथ्या इतिहास स्वतन्त्र भारत में आज भी पढ़ाया जा रहा है। सन् १७५७ से लेकर १८५७ तक निरन्तर एक शताब्दी तक यह विवाद रहा कि भारतीयों को शिक्षा देना अंग्रेजों की राज्य सत्ता के लिए हितकर है या अहितकर। प्रारम्भ में प्रायः सभी अंग्रेज शासक भारतीयों को शिक्षा देने के कट्टर विरोधी थे। जे० सी० मार्शमैन ने १५ जून १८५३ ई० को पार्लियामेंट की सिलेक्ट कमेटी के सन्मुख साक्षी देते हुए कहा था—

"भारत में अंग्रेजी राज्य के कायम होने के बहुत दिन बाद तक भारतवासियों को किसी प्रकार की भी शिक्षा देने का प्रबल विरोध किया जाता रहा।"

@VaidicPustakalay

भारतीयों में शिक्षा का ह्रास हो गया। अंग्रेज शासकों को सरकारी विभागों में हिन्दुस्तानी कर्मचारियों की आवश्यकता अनुभव हुई, क्योंकि इनके बिना उनका कार्य चल सकना सर्वथा असम्भव था। १८वीं शताब्दी के अन्त में अंग्रेज शासकों के विचारों में परिवर्तन हुआ। उन्होंने अपनी आवश्यकता पूर्ति के लिए ऐसी शिक्षा प्रणाली प्रचलित की जिससे लेखक (कलर्क) तैयार किये जा सकें। डायरेक्टरो ने ५ सितम्बर, १८२७ के पत्र में गवर्नर जनरल को लिखा कि इस शिक्षा का धन—"उच्च और मध्यम श्रेणी के उन भारतवासियों पर व्यय किया जाये, जिनमें से कि आपको अपने शासन के कार्यों के लिए सबसे अधिक योग्य देशी एजेन्ट मिल सकते हैं और जिनका अपने देश वासियों के ऊपर सबसे अधिक प्रभाव है।

इस प्रकार अंग्रेजों ने भारत की प्राचीन शिक्षा-प्रणाली को नष्ट कर दिया। जिससे भारत में विद्वानों का अभाव होता गया और क्लर्कों की वृद्धि होती गई। क्योंकि शिक्षित भारतीयों से अंग्रेज बहुत डरते थे। अंग्रेजों का अतीत काल इतना प्रभावशाली न था जितना भारतीयों का। भारत-वासियों को ज्यों-ज्यों ब्रिटिश भारतीय इतिहास के आन्तरिक वृत्तान्त का ज्ञान होता है, त्यों-त्यों उनके चित्त में यह विचार उत्पन्न होता है कि भारत जैसे विशाल देश पर मुट्ठी भर बिदेशियों का आधिपत्य होना बड़ा भारी अन्याय है। अत एव उनकी इच्छा हो जाती है कि वे अपने देश को इस विदेशी शासन से स्वतन्त्र कराने में सहायक हों। यह मैं ही नहीं लिख रहा अपितु एक अनुभवी अंग्रेज मेजर रालेण्डसन जो वहां की शिक्षा-कमेटी का मन्त्री भी रह चुका है, उसने ४ अगस्त १८५३ ई० में पार्लियामेंट कमेटी के सम्मुख ऐसी सम्मति प्रकट की थी। इसीलिए अंग्रेजों ने हमारे इतिहास, साहित्य और शिक्षा-प्रणाली का सर्वनाश कर डाला।

६—उद्योग धन्धों का ह्रास

सार्वजनिक शिक्षा-प्रणाली के सर्वनाश का एक कारण यह भी था कि भारतीय उद्योग-धन्धों के ह्रास और कम्पनी की लूट तथा अत्याचारों के कारण देश उस समय अति तीव्र गति से निर्धन होता जा रहा था। देश के करोड़ों बालक जो पाठशालाओं में शिक्षा ग्रहण करते थे, वे निर्धनता के कारण अपने माता-पिता के साथ मजदूरी कर पेटपूर्ति करने लग गये। विदेशों से सामान यहां आने लग गया और यहां के उद्योगों को समाप्तप्राय: कर दिया। इस प्रकार भारत का करोड़ों रुपया प्रति-वर्ष विदेशी सामान के बदले में विदेशों में चला गया और जो भारत कभी "सोने की चिड़िया" कहलाता था, उसके निवासी दर-दर के भिखारी बन गये।

७—भारतीयों को ईसाई बनाने की आकांक्षा

१८५७ से बहुत पूर्व से ही अनेक कूटनीतिज्ञ अंग्रेजों को भारतीयों को ईसाई बनाने में ही अपने राज्य की स्थिरता दिखाई देती थी। 'ईस्ट इण्डिया कम्पनी' के अध्यक्ष मिस्टर मैङ्गल्स ने १८५७ में पार्लियामेन्ट में कहा था—

"परमात्मा ने हिन्दुस्तान का विशाल साम्राज्य इङ्गलिस्तान को सौंपा है, इसलिए ताकि हिन्दुस्तान के एक सिरे से दूसरे सिरे तक ईसा मसीह का विजयी झण्डा फहराने लगे। हम में से प्रत्येक को अपनी पूरी शक्ति इस कार्य में लगा देनी चाहिये जिससे समस्त हिन्दुस्तान को ईसाई बनाने के महान् कार्य में देश भर के अन्दर कहीं पर भी किसी कारण थोड़ी सी भी ढील न होने पाये।"

इसी के समकालीन एक दूसरा विद्वान् अंग्रेज रेवरेण्ड कैनेडी लिखता है—

"हम पर कुछ भी आपत्तियां क्यों न आएं, जब तक भारत में हमारा साम्राज्य है तब तक हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि हमारा मुख्य कार्य उस देश में ईसाई मत को फैलाना है। जब तक कन्या-कुमारी से लेकर हिमालय तक सारा हिन्दुस्तान ईसा के मत को ग्रहण न करले और हिन्दू तथा मुसलमान धर्मों की निन्दा न करने लगे तब तक हमें निरन्तर प्रयत्न करते रहना चाहिए। इस कार्य के लिए हम जितने प्रयत्न कर सकें, हमें करने चाहियें और हमारे हाथ में जितने अधिकार और जितनी सत्ता है, उसका इसी के लिए उपयोग करना चाहिए।"

यही विचार लार्ड मैकाले के लेखों में पाए जाते हैं। जिसने भारतीय शिक्षा-प्रणाली का सबसे अधिक नाश किया। वह लिखता है—

"हमें भारत में इस प्रकार की एक श्रेणी पैदा कर देने का भरसक प्रयत्न करना चाहिए जो कि हमारे और उन करोड़ों भारतीयों के बीच जिन पर हम शासन करते हैं, समझाने बुझाने का काम करे। ये लोग ऐसे होने चाहियें जो कि रक्त और रङ्ग की दृष्टि से हिन्दुस्तानी हों किन्तु जो अपनी रुचि, भाषा, भाव और विचारों की दृष्टि से अंग्रेज हों।"

अंग्रेजों ने अपने राज्य में ईसाइयत का कितना प्रचार किया और वह क्या करना चाहते थे, यह ऊपरलिखित उद्धरणों से सर्वथा स्पष्ट हो जाता है। उनका अपना राज्य था, भारतीयों की कोई सुनने वाला न था, अतः अंग्रेज अफसरों ने भारतीयों के साथ यथेच्छ अन्याय और अत्याचारपूर्ण व्यवहार किया। भारतीयों के धार्मिक भावों पर पद-पद पर आघात किया। ईसाई पदारियों ने अपनी वक्तृताओं और पत्र-पत्रिकाओं में हिन्दू तथा मुसलमान धर्म की घोर निन्दा की।

सन् १८४९ में पञ्जाव पर कम्पनी का अधिकार हुआ, इसके उपरान्त कम्पनी ने पञ्जाब को आदर्श ईसाई-प्रान्त बनाने के प्रयत्न किए। सर हेनरी लारेन्स, सर जान लारेन्स आदि पञ्जाब के अंग्रेज शासक इसी विचार के थे। इनमें से अनेकों का मत था कि पञ्जाब में शिक्षा का सब कार्य ईसाई पदारियों के हाथ में दे दिया जाए और सरकार की ओर से स्कूलों को पूरी सहायता दी जाये तथा अंग्रेज सरकार अपने स्कूल बन्द कर दे। स्कूल और कालेजों में इञ्जील और ईसाई मत की शिक्षा दी जाया करे। अंग्रेज सरकार हिन्दू धर्म और इस्लाम धर्म को किसी प्रकार की सहायता न दे। किसी भी सरकारी विभाग में हिन्दू मुसलमान कर्मचारी को त्यौहार की छुट्टी न दी जाये। न्यायालयों में हिन्दू, मुसलमान धर्मशास्त्रों को और धार्मिक रीति-रिवाजों को कोई स्थान न दिया जाये। हिन्दू-मुसलमानों के धार्मिक कीर्तन बन्द कर दिए जाएं।

धीरे-धीरे इन अत्याचारी शासकों ने सैनिकों के धार्मिक भावों की भी अवहेलना प्रारम्भ कर दी। बात-बात में उनके धार्मिक नियमों का उल्लङ्घन किया जाने लगा। कारतूसों में गाय और सूअर की चर्बी लगाना और फिर उनको मुँह से तुड़वाना, इसका क्रियात्मक उदाहरण है। कम्पनी की सेना के अनेक अंग्रेज अधिकारी स्पष्ट रूप से सैनिकों के धर्म-परिवर्तन के कार्य में लग गये। बङ्गाल की पदाति सेना के एक अंग्रेज कमाण्डर ने अपनी सरकारी रिपोर्ट में लिखा है कि "मैं निरन्तर २८ वर्ष से भारतीय सैनिकों को ईसाई बनाने की नीति पर आचरण करता रहा हूं और गैर ईसाइयों की आत्मा को शैतान से बचाना मेरे फौजी कर्त्तव्य का एक अङ्ग रहा है।

सैनिकों को पदवृद्धि का भी लोभ दिया गया कि जो सिपाही अपना धर्म छोड़ देगा उसको हवलदार बना दिया जायेगा और हवलदार को सूबेदार तथा सूबेदार को मेजर इत्यादि। इसका परिणाम यह हुआ कि भारतीय सिपाहियों में बहुत असन्तोष फैलगया। भारतवासियों को ईसाई बनाने का प्रयत्न, सैनिकों का बलात् धर्म-परिवर्तन इत्यादि कारणों से भारतीय जनता के मन असंतोष और प्रतीकार की भावनाओं से भर गये। अत्याचार के प्रतिशोध की भावना से ही सत्तावन की महान् क्रांति का जन्म हुआ।

क्रांति के मुख्य संयोजक—

नाना साहब पेशवा

बाजीराव जो अन्तिम पेशवा थे। उसके राज्य के बदले कम्पनी ने १८१८ में उसके सारे परिवार के पोषण के लिए आठ लाख रुपये वार्षिक पेन्सन देने का वचन दिया और बाजीराव कानपुर के निकट बिठूर में अपने ८ सहस्र अश्रित पुरुष-स्त्री-बच्चों सहित रहता था। सबका निर्वाह इस पेन्सन से होता था। सन्तान न होने के कारण पेशवा ने सन् १८२७ में नाना धोन्धोपन्त को गोद लिया। उस समय नाना की आयु तीन वर्ष की थी। सन् १८५१ में बाजीराव पेशवा की मृत्यु हो गई। पेशवा की मृत्यु होते ही गवर्नर जनरल डलहौजी ने इस पेन्सन को बन्द कर दिया। बाजीराव की मृत्यु के पहले की पेन्सन के ६२ हजार रुपये कम्पनी की ओर शेष थे। डलहौजी ने शेष रुपये देने से भी इन्कार कर दिया। नाना साहब को यह नोटिस दे दिया कि बिठूर की जागीर भी तुमसे जिस समय चाहें छीन ली जायेगी। यह नाना साहब के साथ कम्पनी का अन्याय था। १८५७ की क्रांति के मुख्य कारणों में से एक था। समस्त अंग्रेज इतिहास लेखक स्वीकार करते हैं कि इससे पूर्व नाना साहब का व्यवहार अंग्रेजों के प्रति बहुत ही अच्छा था। सर जान ने लिखा है "नाना शान्त स्वभाव और आडम्बर रहित युवक था। उसमें कोई भी बुरी आदत नहीं थी और अंग्रेज कमिश्नर की सदैव सम्मति मानने को तैय्यार रहता था।" कानपुर के समस्त अंग्रेज और उनकी मेमें नाना साहब के महल में ठहरती थीं। नाना साहब सब की खूब सेवा शुश्रूषा करता था, चलते समय मूल्यवान् दुशाले और आभूषण उनको भेंट करता था, नाना के हाथी घोड़े और गाड़ियां सदैव अंग्रेजों की सेवा के लिए खड़ी रहती थीं। फिर भी डलहौजी ने नाना साहब की पेन्सन पेशवा के मरते ही बन्द करके घोर अन्याय किया। नाना साहब ने अपने खर्च के लिये कठिनाइयां और कम्पनी की सन्धियों को दर्शाते हुए डलहौजी के पास प्रार्थना-पत्र भेजा कि पेन्सन जारी रखी जाये। नाना ने इङ्गलिस्तान के शासकों से अपील की और अपना एक योग्य वकील अजीमुल्लाखां को इसी कार्य के लिए विलायत भेजा। किन्तु नाना साहब के साथ किसी ने न्याय नहीं किया, सर जान आदि सब अंग्रेज इतिहासकार स्वीकार करते हैं कि न्याय नाना के पक्ष में था। परिणाम यह हुआ कि इस अन्याय से नाना साहब के चित्त में अंग्रेजों के प्रति घृणा हो गई। फिर वह अपने देश को अंग्रेजों के पंजे से छुड़ाने के उपाय सोचने लगा। इस प्रकार स्वाधीनता युद्ध की योजना सर्वप्रथम नाना साहब ने की थी। नाना साहब का वकील अजीमुल्ला और सतारा के मराठा छत्रपति राजा का वकील रंगो बापू इन दोनों के मन में इस क्रांति का विचार पहले लन्दन में ही आया था। यह दोनों अपने-अपने स्वामियों की पैरवी करने लन्दन गये थे, वहीं दोनों विचार विनिमय करते रहते थे।

अजीमुल्ला ने बाल्यकाल में अंग्रेज अफसरों के यहां खानसामे का कार्य किया था। उनके सम्पर्क में वह फ्रेंच और अंग्रेजी में अच्छी प्रकार से लिखता और बोलता था। उनके रीति-रिवाजों और विचारों से भली-भांति परिचित था। वह यों भी एक असाधारण प्रतिभाशाली सुन्दर और मोहक शिष्टाचार से सम्पन्न युवक था। लन्दन में अंग्रेजों के उच्च समाज में घुल-मिलकर उसने वहां की

अवस्था को खूब ध्यान से देखा परखा। स्वदेश लौटते समय वह योरुप के दूसरे अनेक देशों में भ्रमण कर उनकी दशा का भी निरीक्षण करता और मार्ग में मिश्र के सुलतान तथा ईरान के शाह से भारत के स्वाधीनता युद्ध में सहायता के लिए बातें करता आया। योरुप में उस समय रूस और तुर्की के बीच युद्ध छिड़ा था, उस समय अंग्रेज रूसियों के विरुद्ध तुर्की का पक्ष ले क्रीमियां के मैदान में रूसियों से उलझे थे। वहां रूस ने उन्हें अनेक शिक्षाएं दीं। अजीमुल्ला उस मैदान में जा युद्ध का निरीक्षण कर आया और रूसियों द्वारा होती हुई अंग्रेजी सेनाओं की दुर्गति अपनी आंखों से देखकर आया था। अंग्रेजों की शक्ति की धाक उसके मन से सर्वथा उठ चुकी थी। उसके मत में भारत में क्रांति करने का वह उपयुक्त समय था। उसने नाना साहब से मिलकर क्रांति की योजना बनाई। भारत के तमाम राजा नवाबों, जागीरदारों, जमींदारों से लेकर साधारण पुलिस के सिपाहियों और अंग्रेजी सैनिकों और अफसरों के खानसामों, चपरासियों, भिश्तियों तक तथा गांव-गांव में उनके दूत क्रांति का सन्देश लेकर पहुंचे। इस समय नाना साहब से मिलकर हिन्दू साधु अवध के नवाब की बेगम हजरत महल की प्रेरणा पर मुसलमान फकीर गुप्त रूप से उत्तरी भारत के सब देशी फौजों में प्रचार का कार्य कर रहे थे। १८५७ के युद्ध में हरिद्वार कनखल के स्वामी पूर्णानन्द जी महाराज तथा मथुरा के दण्डी स्वामी विरजानन्द जी महाराज और ऋषिवर दयानन्द का प्रमुख हाथ भारतीय इतिहास लेखक मानते हैं। इसका पूर्ण विवरण पृथक् लिखा गया है। इन्हीं साधु-फकीरों के द्वारा देशी फौज ने भारतीय अफसरों के साथ गुप्त पत्र-व्यवहार प्रारम्भ किया। इन प्रचारकों की प्रेरणा पर हजारों हिन्दू सिपाहियों और उनके अफसरों ने गंगाजल लेकर अथवा अपने धर्मग्रंथ लेकर और मुसलमानों ने कुरान हाथ में लेकर राष्ट्रीय-संग्राम में भाग लेने और अंग्रेजों को भारत देश से बाहर निकालने की शपथ खाई। नाना साहब ने सम्राट् बहादुर शाह और उसकी योग्य बेगम जीनतमहल ने नाना साहब और देश का पूरा साथ देने का निश्चय कर लिया। दिल्ली के सम्राट् ने ईरान के बादशाह से भी सहायता देने के लिए पत्र व्यवहार किया। दिल्ली आदि नगरों में गुप्त सभायें होने लगीं, क्रांति की सफलता के लिए सर्वत्र उपाय सोचे जाने लगे। पहले-पहले नाना साहब के पत्रों का उत्तर अनेक राजा और नवाब, अंग्रेजों के भय के कारण नहीं देते थे। किन्तु जब अंग्रेजों ने अवध के नवाब जैसे अपने आज्ञाकारी साथी का राज्य भी छीन लिया तब सब राजे महाराजे, नवाब इत्यादि अंग्रेजों से निराश हो गए और फिर नाना साहब के पत्रों का उत्तर देने लगे। जब सब स्थानों पर अच्छी तैयारी हो गई तो नाना साहब ने तीर्थयात्रा के बहाने सारे संगठन को देखना चाहा।

नाना साहब की तीर्थयात्रा

अन्त में इस गुप्त संगठन के अनेक केन्द्रों को एक सूत्र में बांधने और देश भर में क्रांति का दिन नियत करने के लिए मार्च सन् १८५७ के प्रारम्भ में नाना साहब और अजीमुल्लाखां तीर्थयात्रा के बहाने बिठूर से निकले। नाना साहब का भाई बाला साहब भी उनके साथ था। सर्वप्रथम यह देहली पहुंचे। लालकिले के दीवान खास में सम्राट् बहादुरशाह, बेगम जीनतमहल और दिल्ली के मुख्य-मुख्य नेताओं के साथ इन लोगों की गुप्त मन्त्रणायें हुईं। इसके पश्चात् वे अम्बाला पहुंचे। इसी प्रकार अनेक अन्य स्थानों पर चक्कर लगाते हुए १८ अप्रैल को नाना साहब अपने साथियों सहित लखनऊ पहुंचे। लखनऊ में नाना साहब का समारोह के साथ स्वागत किया गया। नाना जहां-जहां जाता था अंग्रेज अफसरों से मिलकर उन्हें भांति-भांति के बहाने करके अपनी ओर से निःशंक करने का पूरा प्रयत्न करता था। इसके पश्चात् कालपी, झांसी आदि स्थानों पर होते हुए

@VaidicPustakalay

नाना अप्रैल के अन्त में बिठुर लौटकर आ गया। इस यात्रा में नाना साहब तथा अजीमुल्ला मार्ग में समस्त कम्पनी की देशी फौज की छावनियों में अवश्य जाते थे। तात्यांटोपे भी इसी प्रकार अनेक वर्षों से नाना साहब की आज्ञानुसार कार्य कर रहा था। नाना साहब की इस यात्रा में ३१ मई १८५७ का दिन समस्त भारत में एक साथ क्रांति करने के लिए नियत किया गया। किन्तु पूर्व योजनानुसार इस तिथि की सूचना प्रत्येक केन्द्र के केवल मुख्य-मुख्य नेताओं और प्रत्येक पलटन के तीन-तीन अफसरों को दी गई। शेष का कर्त्तव्य केवल अपने नेताओं की आज्ञानुसार कार्य करना था। पलटनों में परस्पर भी पत्र-व्यवहार चल रहा था। एक इतिहास लेखक लिखता है—"विविध देशी पलटनों में इस समय परस्पर क्रांति के विषय में खूब पत्र व्यवहार हो रहा था। एक पत्र में लिखा था—"भाइयो ! हम स्वयं विदेशियों की तलवार अपने शरीर के अन्दर घोंप रहे हैं। यदि हम खड़े हो जायें तो सफलता निश्चित है। कलकत्ते से पेशावर तक सारा मैदान हमारा होगा।" इतिहास लेखक लिखता है कि सैनिक, रात्रि में गुप्त सभायें करते थे जिसमें बोलने वालों के मुख पर नकाब पड़ा होता था।

क्रांति के दो मुख्य चिह्न

सन् ५७ की क्रांति में नेताओं के संगठन के दो मुख्य चिह्न एक कमल का फूल और दूसरा रोटी (चपाती) थे। कमल का फूल उन सब देशी फौजी पलटनों में, जो इस संगठन में सम्मिलित थीं घुमाया जाता था। किसी एक पलटन का एक सैनिक, फूल को लेकर दूसरी पलटन में जाता था। उस पलटन में हाथों हाथ वह फूल सबके हाथों में से घूमकर निकलता था। जिसके हाथ में वह सबसे अन्त में आता था उसका कर्त्तव्य था कि वह इस कमल के फूल को अपने पास की दूसरी पलटन तक पहुंचा दे। इसका गुप्त अर्थ था कि उस पलटन के सब सैनिक क्रांति में भाग लेने को तैय्यार हैं। इस प्रकार के सहस्रों कमल के फूल पेशावर से लेकर बैरकपुर (कलकत्ते) तक पलटनों के अन्दर घुमाये गए। वह रक्तवर्ण कमल भारतीय-संस्कृति का प्रतीक और सैनिकों के लिये क्रांति का गम्भीर अर्थसूचक चिह्न था।

दूसरा चिह्न चपाती (रोटी) को एक गांव का व्यक्ति दूसरे गांव तक ले जाता था। वहां जिस व्यक्ति को देता था वह अपना कर्त्तव्य समझता था कि वह उस रोटी में से थोड़ी सी स्वयं खाकर शेष गांव के दूसरे लोगों को खिला दे। फिर गेहूं या दूसरे आटे की रोटियां बनवाकर वह अपने निकट के गांव में पहुँचा दे। इसका अर्थ होता था कि उस गांव की सब जनता क्रांति-युद्ध में भाग लेने को तैयार है। यह चमत्कार ही हुआ कि थोड़े दिनों में यह रोटियां भारत समान विशाल देश में एक सिरे से दूसरे सिरे तक लाखों ग्रामों के अन्दर पहुंच गईं। रोटी इस गम्भीर अर्थ की सूचक थी कि विदेशी अत्याचारी अंग्रेज का जहां भी शासन होता है, यह वहां की जनता की रोटी छीन लेते हैं। अतः जनता को कम से कम पेट भर रोटी के लिए ही धूर्त अंग्रेजों को भारत देश से निकालने के लिए स्वतन्त्रता युद्ध में सम्मिलित होना चाहिए।

इस प्रकार नाना साहब अपने साथियों सहित क्रांति की योजना में जुटे हुए थे। अजीमुल्ला, तात्यां टोपे आदि भिन्न-भिन्न स्थानों पर अपनी योजना घूम-घूमकर पूरी कर चुके थे। रंगोबापू जो छत्रपति सतारा के वकील के रूप में विलायत में अजीमुल्ला के साथ रह चुके थे और जिनके साथ में बैठ-बैठकर योजना का पूर्वरूप लन्दन में तैयार किया था। वे रंगोबापू भी दक्षिण भारत में अपना कार्य कर रहे थे। अजीमुल्ला के विषय में यह भी कहा जाता है कि रूस और इटालिया के राज्याधिकारियों को विप्लव के समय भारतीयों को सहायता देने के लिए इस चतुर क्रांतिकारी अजीमुल्ला

ने तैयार कर लिया था। विप्लव के समय जनता यह अफवाह भी उड़ाती थी कि नाना साहब ने रूस के जार से सन्धि करली है और जब भारत में विप्लव यौवन पर था उस समय इटालिया के प्रसिद्ध देशभक्त गैरी बाल्डी, भारतवासियों की सहायता के लिए अपने देश से सेना और सामान सहित आ रहा है। यह सत्य भी था कि अपने देश की आन्तरिक कठिनाइयों के कारण वहां से शीघ्र चलने का अवकाश गैरी बाल्डी को न मिल सका, जिस समय गैरी बाल्डी अपने जहाजों में सेना व सामान भरकर भारतीय क्रांतिकारियों की सहायतार्थ अपने देश से चलने को तैयार हुआ उस समय भारत में विप्लव शान्त हो चुका था। अतः गैरी बाल्डी ने बड़े दुःख के साथ अपनी सेना को जहाजों से उतार लिया। यह भारत का दुर्भाग्य था।

अजीमुल्ला और नाना साहब जब अपनी योजना और तैय्यारी पूरी कर चुके तो इन्होंने सभी केन्द्रों पर आवश्यक सूचनाएँ भेज दीं। यह पहले निश्चय हो चुका था कि भारत के समस्त हिन्दू मुसलमान दिल्ली के बूढ़े बादशाह सम्राट् बहादुरशाह के हरे झण्डे के नीचे मिलकर अंग्रेजों को देश से बाहर निकाल दें और फिर इसी सम्राट् के झण्डे ही के नीचे अपने सुशासन का नये सिरे से प्रबन्ध करें। अब सब केन्द्रों में ३१ मई, १८५७ की तिथि की प्रतीक्षा हो रही थी कि देश के दौर्भाग्य से क्रांति नये कारतूसों के कारण नियत समय से पूर्व प्रारम्भ हो गई। यही क्रांति की विफलता का एक कारण बना।

बैरकपुर से क्रांति का प्रारम्भ

जो नये प्रकार के कारतूस बनाये गये थे इनमें सूअर और गाय की चर्बी जो हिन्दू और मुसलमान दोनों के धर्मों में निषिद्ध है, लगाई गई थी। इसका पता बैरकपुर से पेशावर तक सभी छावनियों में भारतीय सैनिकों को लग चुका था। फरवरी १८५७ में बैरकपुर की १९ नम्बर पलटन को नए कारतूस उपयोग करने के लिए दिये गए। इन कारतूसों को उपयोग करने से पहले मुख से काटना पड़ता था। १९ नम्बर पलटन के सिपाहियों ने कारतूसों का उपयोग करने से साफ इन्कार कर दिया। अंग्रेजों ने तुरन्त बरमा से गोरी पलटन मँगवा ली और भारत के सिपाहियों को परेड के मैदान में बुलाया गया और हथियार रखवा कर अंग्रेज उस सारी पलटन को दण्ड देना चाहते थे। सिपाहियों ने चुपचाप हथियार रखने की अपेक्षा तुरन्त क्रांति करने का विचार किया। किन्तु उनके भारतीय अफसरों ने ३१ मई तक रुके रहने की सम्मति दी।

देशभक्त मङ्गलपाण्डे का बलिदान

उसी समय एक भारतीय नवयुवक सैनिक मङ्गलपाण्डे अपने आपको रोक नहीं सका और तुरन्त अपनी भरी हुई बन्दूक को लेकर सामने कूद पड़ा और चिल्लाकर शेष सिपाहियों को अंग्रेजों के विरुद्ध धर्मयुद्ध करने के लिए आमन्त्रित करने लगा। एक अंग्रेज अफसर ह्यूसन ने सिपाहियों को मङ्गलपाण्डे को गिरफ्तार करने की आज्ञा दी, किन्तु कोई सिपाही आज्ञापालन के लिए आगे न बढ़ा। इतने में मंगलपाण्डे ने अपनी बन्दूक की गोली से उस अंग्रेज अफसर का ढेर कर दिया। फिर दूसरा अंग्रेज अफसर लेफ्टिनैण्ट बाघ अपने घोड़े पर आगे लपका। उस पर भी मंगलपाण्डे ने गोली चलाई, वह भी घोड़े सहित जख्मी होकर भूमि पर गिर पड़ा। मंगलपाण्डे तीसरी बार अपनी बन्दूक को भर-कर चलाना चाहता था लेकिन बाघ ने उठकर और आगे बढ़कर पाण्डे पर अपनी पिस्तौल की गोली चलाई किन्तु पाण्डे बच गया। पाण्डे ने तुरन्त अपनी तलवार निकालकर इस अंग्रेज अफसर को भी

@VaidicPustakalay

वहीं पर समाप्त कर दिया। फिर कर्नल ह्वीलर ने सिपाहियों को पाण्डे को गिरफ्तार करने की आज्ञा दी। सिपाहियों ने निषेध कर दिया। कर्नल घबराकर जनरल के बङ्गले पर पहुंचा। वहां से जनरल हयिर समाचार जानकर गोरे सिपाहियों सहित पाण्डे को पकड़ने के लिए उसकी ओर बढ़ा। मङ्गलपाण्डे ने यह देखकर स्वयं अपनी छाती पर गोली चलाई, वह जख्मी होकर गिर पड़ा और गिरफ्तार कर लिया गया। मङ्गलपाण्डे को फांसी ८ अप्रैल १८५७ को दे दी गई।

१९ नम्बर और ३४ नम्बर पलटनें नौकरी से निकाल दी गईं। ३४ नम्बर के सूबेदार को भी फांसी दे दी गई। इन दोनों पलटनों के नेताओं ने क्राँति के संचालकों की आज्ञा का ध्यान रखते हुए ३१ मई से पहले विप्लव नहीं किया, किन्तु मंगलपाण्डे की घटना का समाचार समस्त उत्तर भारत में फैल गया। अप्रैल मास में ही अंग्रेजों के बङ्गलों में लखनऊ, मेरठ और अम्बाले में आग लगा दी गई। अपराधियों का तो पता नहीं चला, क्योंकि पुलिस भी क्रांतिकारियों से मिली हुई थी, किन्तु यह सब निश्चित समय से पूर्व हो गया।

मेरठ की घटना

६ मई को ९० भारतीय सवारों की एक कम्पनी को उन्हीं चर्बी वाले कारतूसों को दांत से काटने की आज्ञा हुई। ९० में से ८५ ने साफ इन्कार कर दिया। इन सब सिपाहियों को हथकड़ी बेड़ी डालकर दस-दस वर्ष की जेल की सजा करके जेलखाने में भेज दिया। सभी सिपाही भीतर से अत्यन्त दुःखी और क्रोध से भरे हुए थे। किन्तु उन्हें तीन सप्ताह और शान्त रहने की आज्ञा थी; वे अपने क्रोध को पीकर बारगों में चले गए। यह घटना प्रातःकाल हुई। सायंकाल भारतीय सैनिक मेरठ शहर में कार्य-वश गए तो शहर की स्त्रियों ने स्थान-स्थान पर उन्हें चिड़ाया—"छिः तुम्हारे भाई तो जेलखानों में हैं तुम यहां बाजार में मक्खियाँ मार रहे हो, तुम्हारे जीने पर धिक्कार है।" मेरठ की स्त्रियों के शब्द, तीर की भांति सिपाहियों के दिलों में चुभ गए और वे धैर्य छोड़ बैठे। रात को बारगों में गुप्त सभायें हुईं। निश्चित हुआ कि ३१ मई तक चुप बैठना असम्भव है। ९ मई को ही रात को मेरठ के सिपाहियों ने दिल्ली नेताओं को सूचना दे दी कि हम कल वा परसों दिल्ली पहुंच जायेंगे आप तैयार रहें। अगले दिन रविवार था। शहर में सहस्रों गांव निवासी तथा नगर निवासी सशस्त्र आ-आकर इकट्ठे होने लगे। उधर छावनी में जोरों की तैय्यारी हो रही थी। सबसे पहले कुछ सवार जेलखानों की ओर गये। जेलखाने की दीवारें गिरा दी गईं, जेलर भी क्रांतिकारियों से मिले हुये थे। समस्त कैदियों की बेड़ी काट दी गईं। सब सेना के हिन्दू, मुसलमान, पैदल, सवार, तोपखाने वाले सिपाही, मेरठ की जनता भी इधर-उधर मेरठ में अंग्रेजों का खात्मा करने के लिए पिल पड़े। अनेक अंग्रेज मारे गये। अंग्रेजों के बंगलों, दफ्तरों और होटलों में आग लगा दी गई। चूंकि शहर और छावनी दोनों स्थानों में एक साथ विप्लव हुआ। वहां थोड़ी सी अंग्रेज सेना मेरठ में थी वह कुछ भी न कर सकी। प्रायः सभी मारे गए या बंगले में जल गये। जो कोई बचा वह अपने नौकरों के पास नालियों अथवा अस्तबलों में छिप गया।

दिल्ली में क्रांति

१० ता० की रात को मेरठ के सैनिक दिल्ली की ओर चल दिये। दो हजार सशस्त्र देशी सैनिक सवार मेरठ से चलकर ११ मई को प्रातःकाल ८ बजे दिल्ली पहुँच गए। दिल्ली के नेताओं को उनके

@VaidicPustakalay

आने का पहले से पता ही था किन्तु अंग्रेजों को इनका किंचित् मात्र भी ज्ञान न था, अतः दिल्ली की कम्पनी की फौज का अंग्रेज अफसर कर्नल रिपले समाचार पाते ही ५४ नम्बर की देशी पलटन को जमा करके मेरठ के विद्रोहियों से लड़ने के लिए बढ़ा। आमना-सामना होते ही मेरठ के सिपाहियों ने "सम्राट् बहादुरशाह की जय, अंग्रेजी राज्य का क्षय" का जयघोष किया कि—दिल्ली के सिपाही आगे बढ़कर मेरठ के भाइयों से गले मिलने लगे। कर्नल रिपले घबरा गया और वहीं मारा गया। दिल्ली की सेना के सब अंग्रेज अफसर मार दिए गए। कश्मीरी दरवाजे से समस्त सेना ने प्रवेश करके दरियागंज में सब अंग्रेजो के बंगले जला दिए और दिल्ली के लालकिले पर क्रांतिकारियों का कब्जा होगया। इतने में मेरठ की पैदल सेना और तोपखाना भी दिल्ली पहुंच गया। मेरठ के तोपखाने ने लालकिले में घुसते ही सम्राट् बहादुरशाह के नाम पर २१ तोपों की सलामी दी। सेना के भारतीय अफसरों ने सम्राट् बहादुरशाह को जाकर नमस्कार किया और मेरठ का सब कुछ हाल कह सुनाया। इन अफसरों में हिन्दू-मुसलमान दोनों ही सम्मिलित थे। उस समय सम्राट् बहादुरशाह ने कहा कि मेरे पास खजाना नहीं मैं आप लोगों को तनख्वाह कहां से दूंगा? सैनिकों ने उत्तर दिया - "हम लोग भारत भर के अंग्रेजी खजाने ला-लाकर आपके चरणों पर डाल देंगे।" बूढ़े बहादुरशाह ने स्वाधीनता संग्राम का नेतृत्व स्वीकार कर लिया। समस्त लालकिला सम्राट् की जय-जयकार से गूञ्ज उठा। सहस्रों देहली नगर के क्रांतिकारी भी उनके साथ मिल गये। मेरठ से आने वाली सेना का दिल्ली वालों ने खूब स्वागत किया। दिल्ली के अंग्रेजी बैंक पर क्रांतिकारियों ने कब्जा कर लिया जो अंग्रेज जहां मिला क़तल कर दिया गया। उनके बंगले भस्मसात् कर दिये गए। लालकिले के ऊपर हरा झण्डा फहरा दिया गया। उस समय देहली में कोई गोरी पलटन नहीं थी किन्तु किले के निकट अंग्रेजों का बहुत बड़ा मेगजीन था जिसमें लगभग ९ लाख कारतूस, दस हजार बन्दूक और बहुत सा गोला बारूद था। क्रांतिकारी सेना मेगजीन पर कब्जा करने के लिए बढ़ी और मेगजीन के अध्यक्ष अंग्रेज अफसर लैफ्टिनैन्ट विलोबी को मेगजीन दिल्ली के सम्राट् के नाम पर क्रांतिकारियों को सौंप देने के लिये सन्देश भेजा। विलोबी ने निषेध कर दिया। मेगजीन के भीतर ९ अंग्रेज और कुछ भारतीय थे। भारतीय तो लालकिले पर हरे झण्डे को फहराता हुआ देखकर अपने क्रांतिकारी भाइयों से आ मिले। यह हरा झण्डा ही क्रांति के समय सारे भारत में स्वतन्त्रता युद्ध का झण्डा था। ९ अंग्रेजों ने कुछ समय तो क्रांतिकारियों का मुकाबला किया किन्तु अन्त में यह देख कि मेगजीन नहीं बच सकता, अतः अंग्रेजों ने मेगजीन में आग लगा दी।

मेगजीन के उड़ने पर एक सहस्र तोपों के एक साथ छुटने के समान आवाज हुई जिससे सारी दिल्ली के मकान हिल गये। उन नौ अंग्रेजों के साथ २५ भारतीय सैनिक और आस-पास की गलियों के ३०० नगर निवासी टुकड़े-टुकड़े होकर उड़ गये। बन्दूकें सब क्रांतिकारियों के हाथ आई। प्रत्येक क्रांतिकारी के पास चार-चार बन्दूकें हो गई। ११ मई से १६ मई तक दिल्ली में अंग्रेजों का कत्ले आम चलता रहा। अनेक अंग्रेज जान बचाने के लिए दिल्ली से भाग गये। कोई मार्ग में मर गया, कोई स्वयं गर्मी से मारा गया, कोई ग्राम वालों ने दया करके बचा लिया। १६ मई ५७ से सम्राट् बहादुर-शाह भारत की प्राचीन राजधानी दिल्ली में यथार्थ में सम्राट् गिना जाने लगा। दिल्ली कम्पनी के हाथों से पूर्णतया स्वतन्त्र हो गई। शेष भारतवर्ष पर इसका बहुत अच्छा प्रभाव पड़ा। नाना साहब और क्रांति के नेताओं ने बहादुरशाह के नाम पर ही समस्त भारत के राजे, नवाबों, सैनिकों और प्रजा को अंग्रेजों के विरुद्ध युद्धार्थ आह्वान किया। सम्राट् का हरा झण्डा सारे भारतवर्ष में क्रांति-कारियों का झण्डा बनकर फहराया।

अलीगढ़ में क्रांति

दिल्ली की स्वाधीनता की सूचना विद्युत् के समान सारे भारत वर्ष में फैल गई। अनेक स्थानों पर नेताओं के सामने यह समस्या थी कि तुरन्त क्रांति प्रारम्भ करें या नियत तिथि ३१ मई तक ठहरें। किन्तु अब क्रांति की आग को रोकना नेताओं के वश की बात न रही और ११ मई से ३१ मई तक समस्त उत्तर भारत में ही स्थान-स्थान पर क्रांति की ज्वाला भड़क उठी। कम्पनी की ६ नम्बर पलटन अलीगढ़, मैनपुरी, इटावा और बुलन्दशहर में बंटी हुई थी। २० मई को क्रांति के एक विद्वान् ब्राह्मण प्रचारक को अंग्रेजों ने पकड़कर सब देशी सिपाहियों के सामने सायंकाल फांसी पर लटका दिया। यह ब्राह्मण प्रचारक बुलन्दशहर की छावनी से पकड़कर लाया गया था ब्राह्मण को फांसी पर लटका हुआ देखकर सिपाहियों का खून उबलने लगा। अब सैनिकों के लिए ३१ मई की प्रतीक्षा करना असम्भव था। इस पलटन के सिपाहियों ने अपने अंग्रेज अफसरों को शान्ति से कहा कि "यदि आप अपने प्राण बचाना चाहते हैं तो तुरन्त अलीगढ़ को छोड़ दीजिए" उसी समय आबाल वृद्ध वनिता सब अंग्रेज अलीगढ़ से चले गये और २० मई को अलीगढ़ में भी स्वतन्त्रता का झण्डा आधीरात से पहले फहराने लगा। सिपाही बहुत-सा खजाना और अस्त्र-शस्त्र लेकर दिल्ली को चल दिए।

मैनपुरी में क्रांति

अलीगढ़ की भांति २२ तारीख को पलटन के सब सिपाही बिगड़ गये। अंग्रेजों को सुरक्षित छोड़ दिया और गोला बारूद तथा शस्त्र ऊँटों पर लादकर मैनपुरी में स्वाधीनता का झण्डा फहराकर २३ मई को दिल्ली को सब सैनिकों ने प्रस्थान किया।

इटावा में क्रांति

असिस्टैन्ट मजिस्ट्रेट अंग्रेज डेनियल लड़ाई में मारा गया। जनता क्रांतिकारी सैनिकों से मिल गई। २३ मई को भारतीय सैनिकों ने जेलखाना तोड़ दिया। खजाने पर कब्जा कर लिया। अंग्रेजों को स्त्री-बच्चों सहित भागने का अवसर दे दिया। वहां का कलक्टर ह्यूम साहब एक भारतीय स्त्री के वस्त्र पहनकर बचकर निकल भागा। नगर स्वनन्त्र हो गया। ६ नम्बर पलटन के सैनिक इस प्रकार अलीगढ़, बुलन्दशहर, मैनपुरी, इटावा और आस-पास के प्रान्त को स्वतन्त्र करके सब खजाना हथियारादि साथ ले और अंग्रेजों को सुरक्षित छोड़ दिल्ली को चल दिए। इन नगरों का शासन प्रबन्ध नगरवासियों को सोंप दिया गया। इन सब स्थानों पर यहां तक कि मेरठ और दिल्ली में किसी अंग्रेज बच्चे और स्त्री को कोई कष्ट नहीं दिया गया। न किसी अंग्रेजी स्त्री की कहीं बेइज्जती ही की गई। इसी विषय में एक अंग्रेज अफसर विलियम म्योर के० सी० एस० आई० का बयान है "चाहे और कितना अत्याचार और रक्तपात क्यों न हुआ हो जो किस्से अंग्रेज स्त्रियों की बेइज्जती के फैल गये थे वे सब मैंने जहां तक खोजा और जांच की बिल्कुल निराधार थे।"

नसीराबाद में क्रांति

मेरठ के सिपाही दर-दर फैल गये थे। कुछ मेरठ के सैनिक नसीराबाद छावनी में भी पहुंच गये। २८ मई को वहां की भारतीय सेना के सिपाही बिगड़ गये। वहां एक कम्पनी गोरों की भी थी। तोपखाना भी था। गोरों की कम्पनी से देशी सैनिकों का अच्छा संग्राम हुआ। कुछ अंग्रेज मारे गये। देशी पलटन के नेता खजाना शस्त्रादि लेकर अपने कई हजार सिपाहियों सहित दिल्ली को चल दिए। नगर के शासन का प्रबन्ध भी कर दिया।

रुहेलखण्ड में क्रांति

बरेली के आस-पास का प्रान्त रुहेला पठानों के शासन में रह चुका था। बरेली ही राजधानी थी। इस समय अन्तिम रुहेला नवाब के वंशज खान बहादुर खां कम्पनी की ओर से जजी के पद पर नियुक्त थे। यही रुहेलखण्ड में क्रांति के नेता थे। खान बहादुर खां ने योजना के अनुसार ३१ मई तक प्रतीक्षा की। वहां की पलटनों का अंग्रेजों के साथ ऐसा सुन्दर व्यवहार था कि अंग्रेजों को अन्त समय तक कुछ भी सन्देह नहीं हुआ। बरेली में ८ नम्बर देशी सवार १८ और ६८ नम्बर पैदल देशी पलटनें और कुछ तोपखाना था। मेरठ की क्रांति की सूचना १४ मई को यहां पहुंच गई थी। मेरठ की घटना के पश्चात् अंग्रेज कमाण्डर-इन-चीफ ने भारत की सेनाओं में घोषणा की कि नए कारतूस बन्द कर दिए हैं। सैनिक पुराने कारतूसों का ही प्रयोग करें। किन्तु क्रांति पर अब इसका कुछ भी प्रभाव नहीं हो सकता। देहली से एक पत्र रुहेलखण्ड की पलटनों के नाम पहुंचा। दिल्ली की सेना के सेनापति की ओर से बरेली और मुरादाबाद की पलटनों के नाम हार्दिक आलिङ्गन। भाइयो दिल्ली में अंग्रेजों के साथ युद्ध हो रहा है। ईश्वर की कृपा से हमने अंग्रेजों को जो पहली पराजय दी है उससे वे इतने घबरा गए हैं कि जितने दूसरे अवसर पर दस पराजयों से भी नहीं घबराते। असंख्य भारतीय वीर सैनिक दिल्ली में आ-आकर इकट्ठे हो रहे हैं। ऐसे अवसर पर यदि आप वहां पर भोजन कर रहे हों तो हाथ यहां आकर धोइए। आपका कर्त्तव्य है कि आप तुरन्त आएँ। दिल्ली का सम्राट् आपका स्वागत करेगा। हमारा घर आपका घर है। बिना आपके आये बसन्त के गुलाब में फूल नहीं खिलते हैं।" इसी प्रकार के पत्र सर्वत्र पलटनों में लिखे गये।

बरेली में क्रांति

३१ मई को प्रातःकाल सबसे पहले कप्तान ब्राउनलो का बंगला जलाया गया। ठीक ग्यारह बजे दोपहर को अकस्मात् एक तोप छूटी। यही क्रांति के प्रारम्भ होने का संकेत था। बरेली का संगठन बहुत अच्छा था। ६८ नम्बर पलटन ने अंग्रेजों के बङ्गलों को जलाना और अंग्रेजों को मारना शुरू कर दिया। अंग्रेज नैनीताल की ओर भागने लगे। केवल ३२ अंग्रेज प्राण बचाकर नैनीताल पहुंच पाए। जनरल सिवल्डादि अनेक अफसर मारे गये। अंग्रेजी झण्डा उतार कर स्वाधीनता का नया झण्डा फहराया गया। उसी समय क्रांतिकारी सेना के सेनापति तोपखाने के सूबेदार बखतरखां ने सेनापति का पद ग्रहण किया। समस्त प्रजा ने खान बहादुरखां को सम्राट् की ओर से रुहेलखण्ड का सूबेदार स्वीकार किया। रुहेलखण्ड की स्वतन्त्रता की सूचना सम्राट् को देने के लिए दिल्ली उसी दिन आदमी भेज दिया गया।

शाहजहांनपुर में क्रांति

बरेली से ४७ मील दूर शाहजहांनपुर भी २८ नं० पलटन के प्रयत्न से बरेली के समान ही ३१ मई को सायंकाल स्वाधीन हो गया।

मुरादाबाद में क्रांति

मेरठ के क्रांतिकारी सिपाही मुरादाबाद की छावनी में आये हुए थे। ३१ मई को प्रातःकाल २९ नं० की पलटन ने यहां भी योजनानुसार क्रांति करके खजाने तथा सब सरकारी माल पर कब्जा

कर लिया । अंग्रेज सब भाग गये । मुरादाबाद का कमिश्नर पावेल अपने साथियों सहित मुसलमान हो गया । उसके प्राण बच गये । सूर्यास्त से पूर्व स्वाधीनता का हरा झण्डा मुरादाबाद पर फहराने लगा ।

बदायूं में क्रांति

सिपाहियों तथा पुलिस और जनता ने मिलकर पहली जून को सायंकाल क्रांति की । बदायूं के अंग्रेज जङ्गल में भाग गये । स्वाधीनता का झण्डा फहरा दिया गया । खान बहादुरखां ने एक नई सेना बनाकर सारे रुहेलखण्ड में शांति और सुशासन स्थापित किया और रुहेलखण्ड की स्वाधीनता के सब समाचार देहली सम्राट् की सेवा में भेज दिए । खान बहादुरखां ने एक ऐलान लिखकर सारे रुहेलखण्ड में बटवाया, जिस का सारांश इस प्रकार से है—"भारत निवासियो ! स्वराज्य का पवित्र दिन जिसकी बहुत समय से प्रतीक्षा थी, आ पहुंचा । आप इस महान् शुभावसर का लाभ उठायेंगे, वा इसे हाथ से जाने देंगे ? यदि अंग्रेज भारत में रह गये तो हम सब को कत्ल कर देंगे । अंग्रेज लोग बड़े चालबाज और दगाबाज हैं । वे कभी अपने वचन पूरे नहीं करते । अपने मजहब के अतिरिक्त सब मजहबों को संसार से मिटाने का यत्न करते हैं । उन्होंने गोद लिए बच्चों के हक छीन लिए । लखनऊ की नवाबी और नागपुर का राज छीन लिया । इन्होंने हिन्दू और मुसलमान दोनों को पैरों तले रोंदा है । मुसलमानो ! यदि तुम कुरान की इज्जत करते हो तो, और हिन्दुओ तुम्हें यदि गोमाता का सम्मान है तो अब आपस के छोटे मतभेदों को भूल जाओ । स्वतन्त्रता के युद्ध में कूद एक झण्डे के नीचे लड़ो । गाय का मारा जाना बन्द कर दिया जावे । इस पवित्र युद्ध में जो मनुष्य स्वयं लड़ेगा वा धन से सहायता करेगा, इन दोनों को इस लोक और परलोक में दोनों स्थानों पर निजात (मोक्ष) मिलेगी ।"

बखतरखां बरेली, शाहजहांपुर, मुरादाबाद और बदायूँ की कम्पनी की भारतीय सेना, कम्पनी के खजानों, तोपों अन्य सब हथियारादि सहित राजधानी दिल्ली की ओर चल दिया ।

आजमगढ़ तथा गोरखपुर और बनारस में क्रांति

३१ मई को बनारस की बारगों में आग लगी । ३ जून को गोरखपुर और आजमगढ़ के खजानों से सात लाख रुपये नकद बनारस के लिए आ रहे थे । उस दिन १७ नम्बर पलटन ने आजमगढ़ में क्रांति आरम्भ कर दी । केवल दो अंग्रेजों को छोड़कर शेष सब अंग्रेजों को बाल-बच्चों सहित सुरक्षित बनारस भेजने का गाड़ियों तक प्रबन्ध कर दिया । सात लाख के खजाने पर, गोले बारूद पर, जेलादि पर क्रांतिकारियों ने कब्जा कर लिया । आजमगढ़ में भी उसी रात स्वतन्त्रता का झण्डा फहरा दिया गया ।

४ जून को आजमगढ़ के समाचार बनारस पहुंचे । अंग्रेज अफसरों ने देशी सिपाहियों से हथियार रखवाने चाहे । देशी सिपाहियों ने अंग्रेज अफसरों पर हमला कर दिया । अंग्रेजों की ओर से तुरन्त एक सिक्ख पलटन मुकाबले पर लड़ने के लिए आ गई । अंग्रेजी तोपखाने ने आकर सब पर गोले बरसाने आरम्भ कर दिए । अंग्रेज अफसर घबराहट में हिन्दू और सिक्ख की तमीज न कर सके । उन्होंने दोनों पर ही गोले बरसाये । पहले जो सिक्ख अंग्रेजों का साथ दे रहे थे विवश होकर उन्हें क्रांतिकारियों का साथ देना पड़ा । सन् ५७, ५८ की सारी क्रांति में शायद यही एकमात्र अवसर था जबकि सिक्ख सेना ने (विवश होकर) हिन्दू और मुसलमानों का साथ दिया । बनारस की जनता तो क्रांतिकारियों के साथ थी किन्तु सिक्खों ने, वहां के रईसों ने, राजा चेतसिंह के वंशज बनारस के

उपाधिधारी राजा ने अंग्रेजों की पूरी सहायता की। विप्लवकारी नगर छोड़कर इधर-उधर फैल गये। बनारस क्रांतिकारियों के हाथों में नहीं आया।

जौनपुर में क्रांति

५ जून को जौनपुर में विप्लव हुआ। कई अंग्रेज मारे गये। शेष नगर छोड़कर बनारस भाग गये। खजाना क्रान्तिकारियों के हाथों में आ गया। अपनें-अपनें नगरों को स्वतन्त्र कर जौनपुर आजमगढ़ के सिपाही फैजाबाद की ओर चल दिए वहां भी हरा झण्डा फहरा दिया। यद्यपि बनारस पर अंग्रेजों का कब्जा था किन्तु आस-पास का ग्रामीण प्रान्त क्रान्तिकारियों के हाथों में था। सर्वत्र हरे झण्डे फहरा रहे थे, अंग्रेजों के नियुक्त किये जमींदारों को हटाकर पुराने पैतृक जमींदार उनके स्थान पर नियुक्त कर दिए। सब स्थानों पर, अंग्रेजी जेलखानों, अदालतों और दफ्तरों को समाप्त कर दिया। तार काट डाले, रेल की लाइनें उखाड़कर फैंक दी गई। गांव-गांव में हरे झण्डे लेकर स्वयंसेवक रक्षा और प्रवन्ध का कार्य करने लगे। बनारस के प्रान्त भर में क्रान्तिकारियों ने एक भी अंग्रेज स्त्री को नहीं मारा। जिन अंग्रेजों ने हथियार रख दिए वे भी सुरक्षित बनारस आदि स्थानों पर भेज दिए।

इलाहाबाद में क्रांति

प्रयाग के पंडे स्वाधीनता युद्ध के प्रचार में बहुत बड़ा भाग ले रहे थे। यहां पर एक बहुत सुदृढ़ किला था जिसमें गोले-बारूद और अस्त्र-शस्त्रों का बहुत बड़ा संग्रह था। मुसलमानों में भी अच्छा उत्साह था। ६ जून को यहां क्रांति हुई। वहां ६ नम्बर देशी पलटन, २०० सिक्ख सिपाही, कुछ अंग्रेज अफसर थे। अवध से देशी सवारों की एक पलटन और बुला ली गई थी। ६ नम्बर पलटन की बारगें किले से बाहर थीं। जिस समय अंग्रेज अफसर भोजन कर रहे थे सिपाहियों की बिगुल बजी। ६ जून की रात थी, उसी दिन अनेक अंग्रेज मारे गये। शेष किले में जाकर छिप गये। अंग्रेजों के बंगलों में आग लगा दी गई। दो पलटनों के अधिकांश अफसर मारे गये। सिक्खों ने अंग्रेजों का साथ दिया। अतः किला अंग्रेजों के हाथ में रह गया। किले पर अंग्रेजी झण्डा रहा। नगर की जनता ने क्रान्तिकारियों का सहयोग दिया। अंग्रेजों के मकान सब जला दिये गए। जेलखाने के कैदी छोड़ दिए। खजाने पर कब्जा कर लिया गया। रेल की लाइन और तार तोड़ डाले गए। ३० लाख रुपया खजाने का हाथ लगा। ७ जून को हरे झण्डे का जलूस निकाला गया। सब ने झण्डा अभिवादन किया। नगर कोतवाली पर हरा झण्डा फहराने लगा। आस-पास के सैकड़ों ग्रामों में भी हरे झण्डे फहराने जनता ने मिलकर मौलवी लियाकत अली को, जो योग्य और चरित्रवान् व्यक्ति था, उस प्रान्त का लगे। सम्राट् की ओर से सूबेदार नियुक्त करलिया। उसने खुसरो बाग को अपना केन्द्र बनाया। नगर और ग्रामों में शान्ति स्थापनार्थ अच्छा प्रवन्ध किया। दिल्ली सम्राट् को यहां के सब समाचार देता रहा। मौलवी लियाकत अली ने किले पर कब्जा करने का भी प्रयत्न किया किन्तु सिक्खों ने अंग्रेजों का साथ देकर अपने देश से विद्रोह किया अतः किला अंग्रेजों के हाथ में ही रहा।

—०—

@VaidicPustakalay

झांसी और महारानी लक्ष्मीबाई

मार्च १८५८ में जब क्रान्ति के मुख्य केन्द्र दिल्ली, कानपुर, लखनऊ आदि क्रान्तिकारियों के हाथों से निकल गये यहां तक कि अंग्रेजों ने पंजाब और गंगा यमुना का समूचा प्रान्त और अवध का पूर्वी आंचल भी फिर से दबा लिया तब क्रान्तिकारियों के दो दल बन गए। मुख्य दल नाना साहब पेशवा, अजीमुल्ला और अवध की बेगम के नेतृत्व में छापामार युद्धों द्वारा अवध, रुहेलखण्ड में अंग्रेजों के पांव न जमने देने का यत्न करता रहा। दूसरा दल नाना साहब के भाई राव साहब को उनका प्रतिनिधि बना तात्यां टोपे महारानी झांसी के नेतृत्व में यमुना से दक्षिण कालपी, ग्वालियर आदि में अपना केन्द्र बनाकर वह बुन्देलखण्ड, राजस्थान और महाराष्ट्र तक युद्ध चालू रखने की चेष्टा कर रहा था। महारानी झांसी ने जो वीरता झांसी, ग्वालियर आदि स्थानों में स्वतन्त्रता युद्ध में दिखाई उसके विषय में संक्षेप से लिखा जाता है। इससे पूर्व महारानी झांसी के जीवनवृत्त के विषय में लिखना अत्यन्त आवश्यक है।

महारानी लक्ष्मीबाई का जन्म सन् १८३५ में बनारस में हुआ। उनके पिता का नाम मोरोपन्त ताम्बे था, वे महाराष्ट्र के ब्राह्मण थे। लक्ष्मीबाई का जन्म का नाम मन्नूबाई था। अन्तिम पेशवा के भाई चिम्मन जी आपा पेशवाई समाप्त होने पर काशी चले आये। इनके पास ही मोरोपन्त ताम्बे काशी में रहते थे। कुछ समय पश्चात् आपा जी का देहान्त हो गया। ताम्बे जी विवश हो आपा जी के भाई बाजीराव पेशवा के पास बिठूर चले गये। वहीं अपना जीवन यापन करने लगे। चार पांच वर्ष की आयु में मन्नूबाई की माता जी की मृत्यु हो गई। ताम्बे जी ही ने मन्नूबाई का पालन-पोषण किया। पेशवा भी मन्नूबाई से विशेष प्रेम करता था। मन्नूबाई पेशवा के दत्तक पुत्र नाना साहब के साथ खेलना, लिखना-पढ़ना, घोड़े पर चढ़ना, शिकार खेलना, तलवार चलाना आदि सब कार्य सीखती थी। जो कार्य नाना साहब करते उसी का वह भी अनुकरण करती थी। नाना साहब से भी शीघ्र सब कार्य में निपुणता प्राप्त कर लेती थी। एक दिन नाना साहब को हाथी पर चढ़ता देख मन्नूबाई भी हाथी पर चढ़ने का आग्रह करने लगी। पेशवा ने कहा "तेरे भाग्य में हाथी की सवारी कहाँ है" मन्नूबाई को बात चुभ गई। उसने तुरन्त उत्तर दिया—"मेरे भाग्य में एक हाथी नहीं दस हाथी लिखे हैं।" वह हीनभावना कभी नहीं रखती थी। थोड़े ही समय में वह लिखने-पढ़ने के साथ युद्ध विद्या में भी विशारद और निपुण हो गई।

मन्नूबाई अत्यन्त रूपवती थी। उसका आठ वर्ष की आयु में ही झांसी के राजा गंगाधर से विवाह हो गया। विवाह के समय से ही उसका नाम लक्ष्मीबाई रख दिया गया। १६ वर्ष की आयु में लक्ष्मीबाई को एक पुत्र उत्पन्न हुआ किन्तु वह शीघ्र ही मर गया। जिससे राजा गंगाधर को बड़ा दुःख हुआ। उसी पुत्र के वियोग के शोक के कारण उनका शरीर दिन-प्रतिदिन दुर्बल होने लगा और इसी दुःख और चिन्ता से ही उनकी मृत्यु होगई। मरने से पूर्व उन्होंने एक पुत्र गोद लिया। इस दत्तक पुत्र का नाम दामोदरराव था। महारानी जी ने अपने पति की अन्त्येष्टि क्रिया विधिवत् की।

इस समय महारानी की आयु १८ वर्ष की थी। उसे यह असह्य दुःख सहना पड़ा। पति के वियोग का दुःख, दूसरा राज्य के प्रबन्ध का भार। उस समय केवल उसकी आशा का केन्द्र उसका

दत्तक पुत्र ही था। महारानी ने कम्पनी सरकार के पास प्रार्थना-पत्र भेजा कि सरकार उनके दत्तक पुत्र को राज्य का उत्तराधिकारी स्वीकार कर ले। किन्तु सरकार ने कुछ समय तक तो उसका कुछ उत्तर नहीं दिया, फिर रानी ने दूसरा प्रार्थना-पत्र भेजा उसका भी कोई उत्तर न मिला। उत्तर न देने का रहस्य यही था कि अंग्रेजी सरकार रानी के दत्तक पुत्र को स्वीकार नहीं करना चाहती थी। धूर्त लार्ड डलहौजी ने रानी को एक आज्ञापत्र भेजा कि कम्पनी सरकार ने झांसी के राज्य को अंग्रेजी राज्य में मिला लिया; लक्ष्मीबाई किला खाली कर दे। रानी को ५ हजार रुपया मासिक पेन्सन दी जाये। वह अपनी सेना को भंग कर दे। महारानी लार्ड का पत्र पाकर बहुत दुःखित तथा व्याकुल हो गई। उसको जो आघात पहुंचा वह अवर्णनीय है। रानी मूर्च्छित होकर गिर पड़ी। कुछ दिन तो बहुत दुःखी रही। विवशतार्थ पेन्शन स्वीकार करनी पड़ी। महारानी लक्ष्मीबाई ने एक सती साध्वी के समान पवित्र जीवन बिताना प्रारम्भ किया। प्रातःकाल चार बजे उठना, स्नान, ध्यान पूजा, प्रतिदिन गीता का पाठादि श्रद्धापूर्वक करती थी। आठ बजे नित्यकर्म से निवृत्त हो महल के अन्दर ही भ्रमण व्यायामादि करती थी। इसके पश्चात् अपने हाथ से ग्यारह सौ रामनाम की आटे की गोलियां बनाकर मछलियों को खिलाती थी। फिर रात के आठ बजे तक गीतादि धर्मशास्त्र को सुनती थी। उसके पश्चात् भजन, भोजन करके ईश्वर का स्मरण करती हुई सो जाती थी। यही उसका प्रतिदिन का कार्य था। उसके पिता मोरोपन्त अन्य घर का काम संभालते थे।

रानी के साथ जो व्यवहार अंग्रेजों ने किया यह सारी जनता को खटकता था। लार्ड डलहौजी की यह स्वार्थपरायणता भी स्वतन्त्रता युद्ध का एक कारण बना था। मध्य भारत उत्तरभारत के बीच झांसी का राज्य अंग्रेजों के लिए एक महत्त्वपूर्ण केन्द्र था; इसे वह कैसे छोड़ सकते थे। इस स्थान से सींधिया तथा अन्य राजाओं को वश में किया जा सकता था। इसीलिए दत्तक पुत्र को स्वीकार न करके झांसी को अपने आधीन करना अंग्रेज अत्यावश्यक समझते थे, किन्तु इस व्यवहार से जनता में अंग्रेजों के प्रति अत्यन्त घृणा उत्पन्न हो गई। महारानी लक्ष्मीबाई भी अवसर की खोज में थी तथा धीरे-धीरे तैयारी में लगी हुई थी। १८५७ की क्रांति की अग्नि जब देश में भड़की तो झांसी भी कैसे शान्त रह सकती थी। अतः क्रांति ने अपना रूप दिखाया।

४ जून १८५७ को झांसी में १२ नं० पलटन के हवलदार गुरुबख्शसिंह ने किले के मेगजीन और खजाने पर कब्जा कर लिया। इसके पश्चात् लक्ष्मीबाई ने महल से निकल के स्वयं शस्त्र धारण कर क्रांतिकारी सेना का सेनापतित्व स्वीकार किया। उस समय लक्ष्मीबाई की आयु २१ वर्ष की थी। ७ जून को रिसालदार कालेखां, तहसीलदार मोहम्मदहुसेन ने किले पर हमला किया। किले के अन्दर की देशी पलटन भी इनके साथ मिल गई। किला भी हाथ में आ गया। रिसलदार कालेखां की आज्ञा से ६७ अंग्रेज मार दिए गये। यह कार्य महारानी की आज्ञा के बिना ही सैनिकों ने कर डाला। इतिहास लेखक सर जॉन के० लिखता है कि "इस हत्याकाण्ड से रानी लक्ष्मीबाई का कोई सम्बन्ध नहीं था। न उसका कोई आदमी मौके पर विद्यमान था न उसने इसकी आज्ञा ही दी।" अन्त में उसी दिन झांसी से कम्पनी का राज्य हटा दिया गया। बालक दामोदर के संरक्षक के रूप में रानी लक्ष्मीबाई झांसी की गद्दी पर बैठी। कम्पनी का झण्डा उतार दिया गया। सम्राट् का हरा झण्डा झांसी पर फहराने लगा। सारे राज्य में स्वतन्त्रता की घोषणा कर दी गई।

गुलाम गौसखां को मुख्य तोपची बनाया गया। उसने रानी को सलामी की तोपें दाग दीं। तोपों की मरम्मत की गई। नई तोपें ढलने लगीं। बारूद बनने लगी। भाऊबख्शी को तोपें ढालने का कार्य सौंपा गया। लक्ष्मणराव प्रधानमन्त्री नियुक्त हुआ। प्रधान सेनापति दीवान जवाहरसिंह को

@VaidicPustakalay

बनाया गया। पैदल सेना के तीन कर्नल मुहम्मद जमानखां, दीवान रघुनाथसिंह और खुदाबख्श नियुक्त हुए। घुड़सवारों की मुख्य सेनापति स्वयं महारानी जी बनी और कर्नल सुन्दर, मुन्दर और काशीबाई बनाई गई। ये तीनों रानी की सहेलियां थीं। न्यायाधीश नाना भोपटकर बनाये गये और मोरोपन्त कमठाने के प्रधान। गुप्तचर विभाग मोतीबाई के हाथ में दिया गया। नायब जूही को बनाया गया। सारे विभागों को सौंपकर सुप्रबन्ध कर दिया गया। झांसी में सब कार्य सुव्यवस्थित रूप से चलने लगा। झांसी का राज्य लेने पर अंग्रेजों ने सब पुरानी तोपों में कीलें ठोक कर उन्हें बेकार कर दिया था। तोप ढलने का कार्य तुरन्त चालू किया। पुरानी तोपें ठीक कर दी गईं। गुलाम गौस ने कुछ तोपें भूमि में गड़ी हुई पड़ी थीं उनको भी सम्भाल लिया।

गोले, गोलियां बनाने का, तलवार, बन्दूक, पिस्तौलें आदि तैयार करने का कार्य भी चालू कर दिया गया। नये हथियार बनाने में कुछ समय लगता अतः जहां मिले पुराने हथियार इकट्ठे किये गये। जनता ने जी खोलकर रुपया दिया। १३ जून की रात को रानी को गुप्तचर मोतीबाई ने सूचना दी कि सदाशिवराज जो झांसी की गद्दी का दावेदार था उसने कुछ सेना इकट्ठी कर ली है वह कटेरा में था। झांसी को वह अनाथ समझता था। उसने दो एक दिन के भीतर ही अपना अभिषेक करवा लिया और अपने आपको झांसी का महाराजा कहने लगा। इधर महारानी ने भी शीघ्र ही तैयारी करके बड़े वेग से अपने घुड़सवारों को लेकर कटेरा को जा घेरा। बड़ी कठिनाई से वह जान बचाकर भाग गया। उसने सींधिया के राज्य में नरवर में जाकर शरण ली। सींधिया ने कुछ सेना से उसकी सहायता की। किन्तु महारानी ने उसे नरवर में घेर कर पकड़ लिया और कैदी बनाकर झांसी के दुर्ग में बन्द कर दिया। सुन्दर और काशीबाई ने इस युद्ध में अच्छी वीरता दिखाई। इसी प्रकार उन दिनों कहीं डकैतियां भी हो जाती थीं। महारानी के सुप्रबन्ध के कारण सर्वत्र राज्य में शान्ति थी किन्तु कुंवर सागरसिंह नाम का डाकू झांसी के राज्य में कई डाके डाल चुका था। उस प्रान्त का थानेदार उस डाकू को नहीं पकड़ सका। महारानी की आज्ञा से खुदाबख्श २५ सैनिक घुड़सवार लेकर बरवासागर में उस डाकू को पकड़ने के लिए गया। उसने उस डाकू सागरसिंह को उसके गांव में अपने मकान में ही घेर लिया। दोनों ओर से गोलियां चलीं। मकान के अन्दर छत पर चढ़ कर खुदाबख्श मकान के अन्दर सिपाहियों सहित कूदा। किन्तु सागरसिंह खुदाबख्श को तलवार से जख्मी करके भाग गया। यह सूचना महारानी को झांसी में मिली। रानी अपनी सहेलियों सहित २५ घुड़सवार साथ लेकर स्वयं डाकू को ठीक करने के लिए चल दी। वर्षा अधिक होने से बेतवा नदी में भयंकर बाढ़ आई थी। नाव नहीं लग सकती थी, आंधी चल रही थी। रानी ने सबको कूदने की आज्ञा दी। बहुत साहस का कार्य था। ईश कृपा से सब ने नदी पार की। बरवासागर पहुंचकर आराम किया। पता लगा कि डाकू जंगल में है, उसको रानी ने जंगल में जा घेरा और एक टोली ने सागरसिंह का गांव रावली जा घेरा। डाकू एक गुफा में भोजन कर रहे थे। उन पर अकस्मात् आक्रमण हुआ। वे हड़बड़ा गये। खाना-पीना छोड़ घोड़ों की नंगी पीठ पर चढ़कर दून की निकास की ओर भागे। तीन ओर से बन्दूकें चल रही थीं। किन्तु डाकुओं का एक व्यक्ति भी घायल नहीं हुआ। निकास के द्वार पर तीनों सहेलियों और मोतीबाई सहित रानी तैयार खड़ी थी। जब डाकू उधर भागे तो उधर से पांच बन्दूकें चलीं। घोड़े मरे, डाकू घायल हुए। डाकुओं ने भी बन्दूकों से उत्तर दिया। रानी का दल आड़ में था अतः कोई प्रभाव नहीं हुआ। डाकू सिर पर पैर रखकर भागे। काशी, सुन्दर और मोतीबाई ने पृथक्-पृथक् पीछा किया। रानी और सुन्दरबाई के हाथ में नंगी तलवार और गले में सोने का

आभूषण था। कुछ पीछे घोड़े पर सवार एक सतर्क डाकू निकला। रानी समझ गई यही सागरसिंह है। दोनों ने उसका पीछा किया। दोनों सपाटे से उस पर टूट पड़ीं। किन्तु सागरसिंह बचाव करता हुआ आगे बढ़ा, भूमि नर्म कीचड़ वाली आगई। सागरसिंह का घोड़ा अटकने लगा। रानी और सुन्दर-बाई के घोड़े काठियावाड़ी और बड़े प्रबल थे। सागरसिंह को एक ओर से रानी ने, दूसरी ओर से सुन्दरबाई ने दबाया। सागरसिंह रानी को पहचान गया। उसने रानी पर आत्मरक्षा के भाव से वार किया तुरन्त सुन्दरबाई ने चपलगति से तलवार डाकू पर उठाई। वार ओछा पड़ा घोड़ की पीठ पर। उधर रानी ने घोड़े को रोका वह कुछ अंगुल पीछे हुई। सागरसिंह का वार उनसे आगे खिच गया। रानी ने अपनी तलवार का वार ऐसा कसा कि सागरसिंह की तलवार के दो टुकड़े हो गये। डाकू के घोड़े की पीठ कट चुकी थी वह तेज न दौड़ सका। सुन्दरबाई तलवार का वार करना चाहती थी, रानी ने रोक दिया और कहा जीवित पकड़ना है। रानी ने आगे बढ़कर सागरसिंह की कमर में हाथ डाला। सुन्दरबाई समझ गई क्या करना है। सुन्दर ने दूसरी ओर से अपना हाथ डाल दिया और झटका देकर घोड़े की पीठ से उठा लिया। सागरसिंह ने खिसकने का यत्न किया किन्तु वज्रपाश में फंसा था, विफल रहा। दांतों से काटना चाहता था कि रानी ने कहा यदि मुख खोला तो तलवार ठूंस दूंगी। थोड़ी देर में दल के और व्यक्ति भी मिल गये। सागरसिंह रस्सियों से बांध दिया गया। बरवासागर पहुंचने तथा विश्राम करने पर डाकू से पूछताछ की। डाकू ने बताया वह ठाकुर है। अंग्रेजों की आधीनता स्वीकार न करके डाकू बना है। उन्होंने स्त्रियों और दरिद्रों को कभी न सताया। डाकू ने प्रार्थना की कि मुझे फांसी न देकर गोली वा तलवार से प्राणदण्ड दिया जाये। रानी ने पूछा कि यदि तुमको छोड़ दूं तो क्या करोगे। उसने कहा कि डाके डालूंगा किन्तु आपके राज्य में नहीं। अथवा श्रीचरणों की नौकरी करके लड़ाई में पराक्रम दिखाऊंगा। रानी ने उसे क्षमा प्रदान की। डाकू ने गङ्गा की शपथ खाकर डाके का कार्य छोड़ दिया और अपने सब साथियों सहित रानी की सेना में भरती हो गया। रानी ने कुंवर की पदवी उसी दिन खुदाबख्श को भी प्रदान की। यह डाकू यथार्थ में कुंवर सागरसिंह बन गया।

ओछीवाला का झांसी पर आक्रमण

ओछी नरेश की ओर से नत्थेखां ने २० सहस्र सेना और कुछ तोपों सहित झांसी को घेर लिया। इसकी सूचना रानी को पहले गुप्तचरों द्वारा मिल चुकी थी। रानी ने सेना और जनता दोनों को उत्साहित किया। तोपें यथास्थान रख दी गईं। रानी की स्त्री सेना तैयार थी जो सबकी सहायता करती थी।

अनन्त चतुर्दशी को नत्थेखां ने चढ़ाई कर दी। उसका पहला गोला टकसाल के पीछे एक सेठ के मकान पर गिरा। महल का निशाना लिया था, वह चूक गया, महल बच गया। महारानी योधावेश में तीनों सहेलियों सहित घोड़े पर सवार होकर ओछी द्वार पर पहुंची। गुलाम गौस ने तोपखाने को सम्भाला। रानी ने घूमकर व्यवस्था कर दी। भाऊ बख्शी ने 'कड़क बिजली' नाम की तोप सम्भाली, गुलाम गौस ने रानी की आज्ञानुसार शीघ्र तोपों से दो बाढ़ें छोड़ी। नत्थेखां की सेना ने उत्तर दिया। गौस की तोपें बिल्कुल बन्द हो गईं। नत्थेखां ने विचारा कि तोपची मारे गये। उसके सिपाही दीवार पर चढ़ने के लिए बढ़े। रानी की आज्ञानुसार किले से बन्दूकों की बाढ़ दगी, सिपाही पीछे हटे, भाऊ बख्शी का निशाना अचूक बैठा, शत्रु के तोपची मारे गये। गुलाम गौस की तोपों ने नत्थेखां का

@VaidicPustakalay

विनाश ही कर डाला। वह अपनी तोपें और सामान छोड़कर भागा। रानी का एक कर्नल जमाखां मारा गया। दीवान रघुनाथसिंह एक दूर गांव में थे, उन्होंने नत्थेखां की सेना पर पीछे से हमला कर के उसकी सारी सेना को छलनी बना दिया। फिर एक दो दिन साधारण लड़ाई हुई। सागरसिंह ने भी इस लड़ाई में खूब वीरता दिखाई। रानी की जीत हुई। नत्थेखां शेष सेना सहित बहुत तोपें व सामान छोड़ हारकर भाग गया।

रानी ने सब सेना को विशेषतया गुलाम गौस खां और भाऊ बख्शी को विशेष रूप से पुरस्कृत किया। रानी ने आज्ञा दी कि स्त्रियां भी तोप चलाना सीखें। कुछ समय में ही, सुन्दर, मुन्दर, काशीबाई, मोतीबाई आदि सब तोप चलाने में भी सिद्ध हो गईं।

अंग्रेजों से युद्ध करना अभी शेष था। महारानी जी इसी तैयारी में लगी हुई थी। अपनी ओर से तैयारी में कोई कमी नहीं छोड़ी। उधर दिल्ली का पतन हो चुका था। बहादुशाह अंग्रेजों की कैद में था। लखनऊ भी अंग्रेजों के हाथ में आ चुका था। दिल्ली के पतन का क्रांतिकारियों पर बहुत बुरा प्रभाव पड़ा। कानपुर में तात्यां टोपे ने अंग्रेजों के कम से कम तीन बड़े जनरलों को युद्ध में हराया। अवध में अवधी-स्वतन्त्रता का युद्ध चालू था। बिठूर का पतन हुआ। नाना साहब कठिनाई से रात के समय अपनी पत्नियों और विमाता को लेकर नाव द्वारा निकल गये। उनकी कन्या मैनाकुमारी कहीं महल में रह गई। उसे अंग्रेजों ने पकड़कर जीवित ही जला दिया। नाना का बिठूर तोपों से उड़ा दिया गया। जिसका वृत्त अन्य स्थान पर लिखा गया है। नाना साहब लखनऊ की बेगम से जा मिले। वे फिर झांसी वालों के संसर्ग में कभी नहीं आये। रावसाहब और तात्यां टोपे अपनी सेना लेकर कालपी पहुंच गये। यहीं से अपनी युद्ध की योजना चलाते रहे। यह सब समाचार झांसी आ चुके थे।

झांसी से हार खाकर नत्थेखां टीकमगढ़ में शान्ति से नहीं बैठा, अपितु वह झांसी के परगनों में दो मास लूटमार करता रहा। उसने पंडवाहा, गरीठा और नौटा में खूब लूटमार की। किन्तु महारानी ने थोड़े समय में ही यह सब लूटमार कुचल डाली और नत्थेखां को झांसी प्रान्त छोड़कर भागना पड़ा। अनेक विपत्तियों के होते हुए रानी कभी घबराई नहीं। उसका कार्यक्रम निश्चय और सद्भावना एक समान ही रहती थी। जनता की सेवा, रक्षादि कार्य बड़े दृढ़ संकल्प से और स्थितप्रज्ञ होकर करती थी। गीता के पाठ का उसके जीवन पर क्रियात्मक प्रभाव था। मरने से डरना और भयंकर से भयंकर आपत्तियों में घबराना वह जानती ही नहीं थी। रानी ने जो गीतादि शास्त्रों में पढ़ा था वह उसे याद था और उसके कण-कण में व्याप्त था। इसी धार्मिक ग्रंथ के स्वाध्याय से उसका आदर्श-पवित्र, धार्मिक जीवन था। वह इस समय की अद्वितीय वीरांगना थी। अंग्रेजों ने भी यह निश्चय कर रखा था जब तक झांसी का दुर्ग उनके हाथों में नहीं आयेगा तब तक क्रांतिकारियों को विजय करना असम्भव है। इसी विचार से कम्पनी ने एक विशाल सेना जनरल ह्यू रोज के आधीन भेजी जिसमें हैदराबाद, भोपाल और अन्य रियासतों की सेनायें भी सम्मिलित थीं, तोपों सहित इस प्रदेश को विजय करने के लिए भेजी गई। यमुना के दक्षिण और विन्ध्याचल के उत्तर का समस्त प्रदेश ११ मास तक क्रांतिकारियों के हाथों में रहा। जिसका मुख्य श्रेय महारानी लक्ष्मीबाई को है। ६ जनवरी १८५८ को सर ह्यू रोज मऊ से चला। रायगढ़, सागर, बानापुर, चन्देरी इत्यादि स्थानों को विजय करती हुई इसकी सेना २० मार्च को झांसी के निकट पहुंची। झांसी इस समय समस्त प्रदेश

के क्रांतिकारियों का सबसे मुख्य केन्द्र था। झांसी में बानापुर के राजा मरदानसिंह और अन्य अनेक राजा और सरदार रानी की सहायतार्थ विद्यमान थे।

झांसी का भीषण संग्राम

महारानी लक्ष्मीबाई ने कम्पनी की सेना के पहुंचने से पूर्व झांसी के चारों ओर दूर तक के प्रान्त को वीरान करवा दिया था ताकि शत्रु की सेना को झांसी पर आक्रमण करते समय रसदादि न मिल सके। न खेतों में अन्न था न घास का तिनका न छाया के लिए कोई वृक्ष ही था।

किन्तु महाराजा सींधिया ने और टिहरी टीकमगढ़ के राजा ने कम्पनी की सेना के लिए रसद घासादि का इतना अच्छा प्रबन्ध कर दिया कि अंग्रेज सेना को कोई कठिनाई वा कष्ट नहीं हुआ।

अंग्रेजी सेना को बढ़ते देखकर महारानी लक्ष्मीबाई ने क्रांतिकारी सेना का सेनापतित्व स्वयं ग्रहण किया। प्रत्येक मोरचा उसने अपनी उपस्थिति में तैयार करवाया। अपने सम्मुख ही चारदीवारी पर तोपें चढ़वाई। सर ह्यू रोज अंग्रेज जनरल लिखता है कि रानी के साथ झांसी की सैंकड़ों स्त्रियां तोपखानों और मेगजीनों में आती जाती और काम करती दिखाई दे रही थीं।

२३ मार्च मंगलार १८५८ को रोज ने हमला करने की आज्ञा दी। युद्ध आरम्भ हो गया। सैय्यर फाटक की बाईं ओर एक टेक पर अंग्रेजों का तोपखाना था। वहां सैय्यर फाटक ओछी फाटक पर तथा उन फाटकों की दीवार पर गोलियों की वर्षा हुई। चलते हुए गोलों की चादर के नीचे गोरी पलटनें संगीनें, बन्दूकें लिए दीमक की भांति चलीं। रानी के गोलन्दाज खुदाबख्श और दुल्हाजु चुप रहे, उन्हें बढ़ने दिया, जब अंग्रेजी सेना मार के पर्याप्त भीतर आ गई तब उन्होंने अपनी तोपों से आग बरसानी आरम्भ की। गोरों की पलटन धरती में बिछ गई। फिर खुदाबख्श ने टेक पर अंग्रेजी तोपखाने को अपना लक्ष्य बनाया। अंग्रेज तोपची मारे गये तोपों का मुंह बन्द हो गया। तोपखाने के पीछे वाली सेना पीछे भागी। उसके ऊपर गुलाम गौस ने अपनी "घनगरज" की मार फैंकी। कठिनाई से कुछ व्यक्ति बचकर रोज के पास पहुंचे। पूर्व की ओर भाऊ बख्शी की 'कड़क बिजली' ने खूब काम किया। अब रोज ने दिन-रात लगाकर एक मोर्चा जीवनशाह की टोलियों के ठीक बगल में पूर्व की ओर किले से ३०० गज के अन्तर पर बनाया। इसकी सहायतार्थ तीन मोर्चे और बनाये। इन मोर्चों के निर्माण में पर्याप्त समय और आदमी 'रोज' को खर्च करने पड़े। रानी के तोपची रात भर जागते रहे, दोपहर को तोपची बदलते थे। जो मोर्चा रोज ने तैयार किया था वह गुलाम गौस और लालता ब्राह्मण ने दूरबीन से देख लिया। गुलाम गौस के कहने पर लालता ने स्वर में गाया "जननी जन्म दिया है तो खां बस आजहि के लानै" इसकी समाप्ति हुई कि गौस ने तोपखाने में पलीता लगाया। 'घनराज' और उसकी बहनों ने इतनी जोर से गरज की कि भूमि में कम्पन आ गया। थोड़ी ही देर में तोपखानों ने ऐसी मार बरसाई कि रोज का दम फूल उठा, उसका दक्षिणी दस्ता नष्ट भ्रष्ट हो गया। अंग्रेजों के सब तोपखाने बन्द हो गये। एक तोपखाना कोलाहल कर रहा था।

गुलाम गौस ने अपनी 'घनराज' को एक अंगुल इधर-उधर करके निशाना लिया और फटने वाला गोला छोड़ दिया। गोला ठीक निशाने पर बैठा। अपनी सफलता पर गौस उछलकर बोला 'वह मारा" गोरे तोपची मारे गये, तोप भी उलटकर बेकार हो गई। गौस दक्षिणी मोर्चे को ठण्डा करके भोजनार्थ चला गया। लालता ने स्थान को सम्भाला। पूर्व की ओर से अंग्रेजी तोपों के गोले शहर में

@VaidicPustakalay

गिरकर जन-धन का नाश कर रहे थे। भाऊ बख्शी ने अपनी कड़क बिजली का लक्ष्य ठीक करके पलीता दिया। वह पूर्वीय मोर्चा भी ठण्डा हो गया। तोपची मारे गये। तोपें बेकार हो गईं। बख्शी अपनी पत्नी को तोपखाना सौंपकर भोजन, विश्रामार्थ चला गया। मुन्दर ने रघुनाथसिंह का स्थान लिया। सुन्दर ने दुल्हाजू का, मोतीबाई ने खुदाबख्श का स्थान लिया, दीवान जवाहरसिंह को भी छुट्टी दे दी गई।

रानी घोड़े पर सवार होकर सब मोर्चों को सम्भालने के लिए चल दी। चौथे पहर तक स्त्री तोपचियों ने दृढ़तापूर्वक कार्य किया। रात को भी उन्होंने कार्य करना था। सागरसिंह अपने एक नायक के साथ खण्डेराव फाटक पर कार्य कर रहा था। सागर खिड़की पर बरहामुद्दीन नाम का एक बुन्देलखण्डी पठान कार्य कर रहा था। इसी खिड़की पर पीर अली था जो अंग्रेजों से मिला हुआ था, उसे बरहामुद्दीन का आना अच्छा न लगा। विवश होकर चला गया। इसी धूर्त पीर अली ने धोखा दिया। जिसका पहले रानी को पता नहीं था। यह पीर अली ह्यू रोज से गुप्त मोरी से निकलकर मिला। ह्यू रोज ने पीर अली को किले के किसी एक फाटक पर रहने वाले रानी के एक तोपची को अंग्रेजों से मिलने के लिए कहा और पीर अली ने दुल्हाजू को इस कार्य के लिए तैयार करके अंग्रेजों से जागीर का लोभ देकर मिला लिया।

दुल्हाजू ने फाटक सौंपने का वचन जागीर के लोभ में दे दिया। इसका कुछ सन्देह बुन्देलखण्डी पठान बरहामुद्दीन को हो गया। इसकी सूचना उसने रानी को दे दी। महारानी कार्यबाहुल्य से सारी बात को ध्यान से सुन नहीं सकी। अतः यह विश्वासघात ही झांसी के पतन का कारण बना। इसका विवरण आगे आयेगा।

धूर्त विश्वासघाती पीर अली ने रोज को जो स्थान मोर्चा लगाने के लिए बताया था उसी स्थान पर रोज ने तोपें लगाकर तोपें छोड़नी आरम्भ कीं। उससे शहर का विध्वंस होने लगा। सर्वत्र शहर में आग लग गई। लोग भूखे प्यासे मरने लगे। महारानी स्वयं वहां पहुंची, आग बुझाई और लोगों को उत्साहित किया। रानी की आज्ञानुसार गुलाम गौस पश्चिमी बुर्ज पर पहुंचा। तोप ठीक जंचा-कर दूरबीन से लक्ष्य साधकर तोप में पलीता दिया कि उधर अंग्रेजों के तोपची मारे गये। तोपें उलट गईं। तोपों का उधर आना बन्द हो गया।

गौस ने झुक कर रानी को प्रणाम किया। रानी ने सोने के कड़े मंगवाकर गौस को अपने हाथ से पहनाये। फिर कुमक बदली, स्त्रियों ने तोपें सम्भालीं, भीषण गोलाबारी शुरू कर दी। रोज ने दूरबीन से देखा और कहा ओह स्त्रियां तोप चला रही हैं, स्त्रियां गोला बारूद ढो रही हैं। कुछ खाना और पानी बांट रही हैं, टूटी हुई दिवारों की और कंगूरों की मरम्मत कर रही हैं। इतनी चतुराई से इतनी तीव्रगति से भारतीय देवियों को कार्य करते आज देखा, आश्चर्य होता है। पेड़ों के बीच में कुछ स्त्री पुरुष कार्य कर रहे हैं, अंग्रेजी फौज का गोला उनके बीच में पड़ा। धूल उड़ी। किन्तु फिर भी सब वहीं के वहीं कार्य करते रहे। रोज ने कहा रानी 'जौन आफ पार्क' के समान जान पड़ती है। "इसे जीवित पकड़ना चाहिए" एक दूसरे अंग्रेज स्टुअर्ट ने कहा। उस समय उन्हें अपना मोर्चा खराब होने की सूचना मिली। दोनों काम पर लग गये।

रोज की आज्ञा से दक्षिणी बुर्ज से जोर से हमला किया गया। अंग्रेजों का तोपखाना भयङ्कर आग उगलने लगा। बख्शिन ने जवाब पर जवाब दिया, उसके घनराज तोपखाने ने अंग्रेजों का संहार कर दिया। बहुत सी अंग्रेजी सेना मारी गई, उन्हें हारकर वहां से लौटना पड़ा। किन्तु अंग्रेजी तोप के

गोले ने बख्शिन का कन्धा तोड़ दिया। वह बेहोश होकर गिर पड़ी। बख्शी को पूर्वी बुर्ज पर समाचार मिला, निर्मम होकर बख्शी ने उत्तर दिया "उससे बढ़कर झांसी और झांसी की रानी हैं।" शाम को देखूंगा। तब तक दाह संस्कार न करना। बख्शी अपने कार्य पर जुट गया। उसने एक बार आकाश की ओर देखकर गीता के कृष्ण को याद किया और तोपों को दुगुनी तेजी से चलाने लगा। 'रोज' के पूर्वी मोर्चे को बुझा दिया। बख्शिन चली गई, किन्तु बख्शी का पलीता सुलगता और आग देता रहा। रानी तुरन्त आई, बख्शिन के रक्तमय शरीर को गोद में लिया। अंग्रेजों के गोले दीवारों से टकरा-टकराकर दीवारों को तोड़ रहे थे। रानी का गला रुद्ध था एक शब्द नहीं निकला। मुन्दर ने दूरबीन से देखा, घबराकर दौड़ी हुई रानी के पास आई, घबराकर बोली "बाई साहब"! रानी के मुख से एक शब्द निकला "गौस", मुन्दर दौड़कर गौस को बुला लाई।

गौस ने देखा झांसी की रानी धूल में बैठी बख्शिन के शव से लिपटी हुई है। गौस ने कहा "यह क्या है सरकार, न जाने कितने सरदार कुर्बान होंगे? हजूर हम लोगों को समझाती हैं कि स्वराज्य की लड़ाई किसी के मरने जीने पर निर्भर नहीं है और फिर बख्शिन तो अमर हो गई है। उठिये देखिए, उस वीर पुरुष बख्शी को। वह अपने ठीये पर अटल है। आप ऐसा मोह करेंगी तो हम लोग गोरों से कितने दिन लड़ सकेंगे? आप यहां से हट जायें, दीवान खास में बैठकर आज्ञा देती रहें। मैं इनको मजा चखाता हूं।"

रानी, बख्शिन के शव का उचित प्रबन्ध करके चली गई। गौस ने घनराज को सम्भाला। तीन वारों में ही अंग्रेजों के मोर्चे का तोपची, तोपखाना और सब कार्य करनेवाले स्वाहा हो गये। गुलाम गौस ने कहा यह तो मेरे साथी सरदार के मारने का बदला हुआ। अब कुछ प्रसाद भी देता हूं। अंग्रेज सैयद फाटक पर गोलाबारी कर रहे थे। उधर मन्दिर थे। खुदाबख्श मन्दिर टूटने के डर से उत्तर नहीं दे सकता था। गौस ने घनराज तोप का मुहरा मोड़ा किन्तु वहां से सीध नहीं बैठती थी। गौस ने रघुनाथसिंह वाली बुर्ज पर पहुंचकर विनयपूर्वक तोप मांग ली। रघुनाथसिंह ने भी कहा मन्दिर नहीं बच सकते। दूरबीन लेकर गौस ने तोप के ठीये को सम्भाला। लक्ष्य लेकर गोला छोड़ा। अंग्रेज तोपची मारे गये, तोप नष्ट हो गई, मन्दिर बच गए। उसी समय रानी ने अपना तौल भर चान्दी का तौड़ा पुरस्कार में दिया। संध्या समय बख्शिन के शव का दाह हुआ। रात हो गई, लड़ाई शान्त हो गई। बख्शी हर्षोन्मत्त था, उसके मुख से 'नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि नैनं दहति पावकः" यह महावाक्य निकला, जिसको रानी समझती थी और कोई समझा हो वा न समझा हो।

अगले दिन भी लड़ाई इसी प्रकार चलती रही। सायंकाल संध्या के समय किले के पश्चिमी मोर्चे का तोपखाना बन्द हो गया। कारण था दीवार का टूट जाना। दीवार टूट जाने से तोपखाना दिखलाई पड़ने लगा। कठिनता से तोपों को आड़ में किया गया। झार पहाड़ी की ओर से एक दस्ता झपटा, खण्डेराव फाटक पर सागरसिंह था। सागरसिंह ने तोपें चलाई, वह शीघ्रता करता था, निशाना ठीक न बैठता था। सागरसिंह साथियों सहित रस्से की सीढ़ी लगाकर धड़ा-धड़ सौ आदमी नीचे उतर गये। ये सपाटे से बगलवाली टोडियों की ओट में पहुंच गये। जैसे ही अंग्रेजी दस्ता आया इन लोगों ने बन्दूकों की बाढ़ छोड़ी। दस्ते ने भी उत्तर में बन्दूकें छोड़ीं किन्तु सागरसिंह की टुकड़ी की कोई हानि न हुई और अंग्रेजों का दस्ता छिन्न-भिन्न हो गया। वह इकट्ठा होने को ही था कि सागरसिंह अपने साथियों सहित तलवार लेकर पिल पड़ा। अंग्रेजी दस्ता सब नष्ट हो गया। किन्तु

@VaidicPustakalay

कुंवर सागरसिंह भी खण्डेराव के फाटक के पास मारा गया। उसके कुछ आदमी बच गये। वे भीतर आ गये। रात को रानी को सागरसिंह का समाचार मिला। सागरसिंह और उसके दल की वीरता ने उस दिन झांसी का किला बचा लिया। रानी की आंखों के आगे बरवासागर की घटना का पूरा चित्र खिच गया। रानी ने मन में कहा "जिस देश में सागरसिंह सरीखे लोग जन्म लेते हैं वह स्वराज से बहुत दिनों तक वञ्चित नहीं रह सकता।"

रानी ने दीवार की मरम्मत अपने आगे कराई, कारीगर कम्बल ओढ़कर दीवारों की मरम्मत करने लगे। रात भर में दीवार को पूर्ववत् कर दिया जैसे इसका कुछ बिगड़ा ही नहीं था। फिर अत्यन्त भीषण युद्ध हुआ। दीवार टूटी, उसकी दिन में ही मरम्मत कर दी गई। मरम्मत का कार्य पुरुष तथा पत्थर-चूना देने का कार्य इत्यादि स्त्रियां करती थीं। गोले पड़ रहे थे किन्तु सब कार्य पूर्ववत् चल रहा था। न तो झांसी की हिम्मत टूटती थी, न ही झांसी की रानी की। जैसे-जैसे संकट बढ़ता वैसे-वैसे इनका साहस भी बढ़ता था। एक गोला भीतर वाले गणेश मन्दिर पर पड़ा, मन्दिर टूट गया। दूसरा शंकर किले में गिरा, उस समय आठ-दस ब्राह्मण जल भर रहे थे, उनमें से आधे मर गये, शेष भाग गये। ये गोले पश्चिमी मोर्चे से आये थे। पानी की कमी पड़ी ३-४ घण्टे लोगों को प्यासा रहना पड़ा। पश्चिमी मोर्चा सम्भाला गया। अंग्रेजी मोर्चे का मुंह बन्द हुआ तब पानी की व्यवस्था हुई। रात हो गई। युद्ध भी कुछ शान्त सा हुआ।

दोनों पक्ष थकावट से चूर थे। रात को पीर अली दुल्हाजू को गुप्त मोरी के द्वारा रोज के पास ले गया। ह्यू रोज ने दो गांव जागीर में सदा के लिए देने का वचन दिया। दुल्हाजू ने ओछी फाटक अंग्रेजों को सौंपने का वचन गङ्गा जी की शपथ खाकर दिया। इन्हीं धूर्तों के विश्वासघात से झांसी का दुर्ग अंग्रेजों के हाथ में आया। इस धूर्तता को बरहामुद्दीन पठान तो समझ गया था। उसने पीर अली के विषय में रानी को सूचना दी और रानी को सावधान किया कि पीर अली की ओर से धोखा होने वाला है, उसके साथ कोई दीवान भी गया था, मैं दीवान साहब को पहचान नहीं सका। ये दोनों अंग्रेजों की फौज से लौटकर आये, जब ये दोनों अलग हुए तब पीर अली ने कहा दीवान साहब "लाल झण्डे वाली बात याद रखना।" हजूर इस कार्यवाही में दगा है, द्रोह है, खतरा है, यह बराहमुद्दीन पठान ने महारानी को कहा। महारानी रात को जागी थी सैनिकों का प्रबन्ध करना था। मार्ग की टोका टोकी सहन नहीं हो रही थी। घोड़ा आगे बढ़ने के लिए लगाम चबा रहा था और पांव पटक रहा था। रानी ने बरहामुद्दीन को रुखाई से कहा "अपना काम सम्भालो तुम अपना काम न करके व्यर्थ औरों के पीछे फिरते हो।" रानी जवाहरसिंह के साथ आगे बढ़ी। जवाहरसिंह ने विनय की कि "सरकार यह पठान मूर्ख नहीं है पीर अली की जांच होनी चाहिए"। रानी ने जवाहरसिंह को कहा आप पता लगाना कि यह दीवान साहब कौन है जो पीर अली के साथ गया। पीर अली इतना धूर्त था रानी के आगे इधर उधर की बातें बनाकर ठगी करता रहता था। यह पीर अली अंग्रेजों का जासूस था। जो वेश्यापुत्र अली बहादुर खां का नौकर था। यह अली बहादुर खां झांसी से नत्थेखां की लड़ाई के समय भाग गया था। पीर अली झांसी में रह रहा था। रानी का चालाकी से विश्वासपात्र बना हुआ था। झांसी के सब समाचार अंग्रेजों के पास तथा अली बहादुर के पास भेजता रहता था।

झांसी वालों को इसका पता नहीं चला। इसी ने अंग्रेजों के साथ मिलकर विश्वासघात किया। दुल्हाजू को लोभ देकर इस नीच कर्म के लिए तैयार करने वाला यही पिशाच था। रानी ने मोतीबाई से बरहामुद्दीन वाली बात कही। मोतीबाई बोली पीर अली बेईमानी कर सकता है, उसके साथ में

दीवान दुल्हाजू गये होंगे। आप उनसे रुष्ट हुई थीं। सुन्दर को रानी ने सावधान कर दिया। वह थोड़ा खा पीकर ओछी फाटक पर पहुँच गई। उस दिन भी घनघोर युद्ध हुआ तथा दोनों ओर विकट नर-संहार। दुल्हाजू ने ओछी फाटक से तोप अच्छी नहीं चलाई और एक गोला महल के सामने जहां बारूद बनता था आकर गिरा। बारूद जलकर धड़ाके के साथ २५, ३० स्त्री पुरुषों को अपने साथ हवा में उड़ा ले गई। उनके अङ्गों का भी पता नहीं चला कि कहां गये। इस घटना से कुछ निराशा छाई हुई थी, संध्या के समय रानी शहर में गई। टूटी दीवारों की मरम्मत कराई गई, रात हो गई थी, किन्तु गोलाबारी आज और दिनों की अपेक्षा अधिक हो रही थी। रानी महादेव के मन्दिर गई। ध्यान के पश्चात् कुछ देर के लिए लेट गई। एक झपकी आई और उन्होंने एक स्वप्न देखा।

"एक गौरवर्ण युवति, सुन्दर आकृति वाली, बड़े-बड़े काले नयन, लाल रङ्ग की साड़ी का आंचल बांधे हुए है। आभूषणों से लदी हुई है। वह स्त्री किले के बुर्ज पर खड़ी हुई अंग्रेजों के लाल गोलों को अपने कोमल करों में झेल रही है, कह रही है लक्ष्मीबाई देख इन गोलों को झेलते-झेलते मेरे हाथ काले पड़ गये हैं। चिन्ता मत कर स्वराज्य की देवी अमर है।" रानी की आंखें खुलीं, भयङ्कर गोलाबारी हो रही थी और होती रही। रानी को न कोई चिन्ता थी न थकान। झटपट जीने से उतरकर अपने स्वप्न का संवाद सेनापति और मुख्य-मुख्य दलपतियों को सुनाया। प्रातःकाल होते ही स्वप्न का संवाद सर्वत्र किले और नगर में फैल गया। सब स्त्री-पुरुषों में उत्साह भर गया। पहले दिन की अपेक्षा भी अधिक घनघोर युद्ध हुआ। पीर अली और बरहामुद्दीन के मामले की जांच न हो सकी। किन्तु यह पता चल गया कि दुल्हाजु ने अनमने होकर कार्य किया। मुन्दर और रघुनाथ-सिंह दोनों मिलकर बहुत अच्छा कार्य कर रहे थे। मुन्दर भोजन भी वहीं ले आई, वहीं बैठकर भोजन किया, एक गोला उनके बुर्ज के पास पड़ा किन्तु दोनों बच गये। दोनों निर्भय होकर कार्य करते रहे।

महारानी लक्ष्मीबाई ने तात्यां टोपे को अपनी सहायता के लिए बुलाया था, अंग्रेजों से युद्ध आरम्भ होने से पहले ही जूही और काशीबाई मरदाना वेश में घोड़ों पर सवार होकर रानी का पत्र लेकर कालपी गई थीं। रानी का पत्र मिलते ही तात्यां ने सेना को चलने की तैयारी की आज्ञा दी। साथ बीस हजार सेना लेकर प्रस्थान किया। काशीबाई और जूही भी साथ गई। तात्यां टोपे ने वीरता-पूर्वक संग्राम किया किन्तु उसकी हार हो गई। वह सेना सहित कालपी लौट गया। उसकी चारों तोप बेतवा के रेत में फंस गईं, वहीं छोड़नी पड़ीं। काशीबाई का भी इस युद्ध में बलिदान हो गया।

इस दिन अंग्रेजों की सेना तात्यां से लड़ रही थी। अंग्रेजी तोपों के गोले अस्त-व्यस्त पड़ रहे थे। झांसी वाले ठीक नहीं समझ सके कि आज क्या कारण है अंग्रेज ठीक लड़ाई नहीं कर रहे। जब पता चला कि अंग्रेज सेना तात्यां से लड़ाई कर रही है और तात्यां की हार और अंग्रेजों की विजय होगई। इससे झांसी में गहरी निराशा फैल गई। अंग्रेज काशीबाई के शव को लक्ष्मीबाई का शव समझ रहे थे और बड़ी खुशियां मना रहे थे। किन्तु सायंकाल काशीबाई का शरीर पहचाना गया। ओछी के लोग महारानी को खूब जानते थे। "आश्वासन दिया कि यह शव रानी का नहीं है।" काशी का शव जला दिया गया। जवाहरसिंह ने रानी को शहर की वार्ता सुनाई। रानी ने अपने आदमियों को समझाया। वह हँसते हुए बोली "आप लोगों को घबराना नहीं चाहिए। पेशवा की सेना आज लौट गई कल फिर आ सकती है, तात्यां असाधारण सेनापति है, उसके अधिकार में असंख्य सेना और तोप हैं। मान लो पेशवा की सेना नहीं भी आती फिर क्या हम हथियार डालकर झांसी का मुख काला

करेंगे ? अपने पूर्वजों का स्मरण करो, स्वराज्य की स्थापना में कितने खप गये । स्मरण रखो, कर्म करने का ही केवल हमें अधिकार है, फल पर नहीं । 'जीवन' कर्त्तव्य पालन का दूसरा नाम है । जो लोग अंग्रेजों से वा मरने से डरते हों वे हथियार रखकर आराम से घर पर चले जाएं । जो स्वराज्य के लिए प्राण विसर्जन करना चाहते हों वे मेरे पास रहें ।" रानी कुछ मुस्कराई, सब की ओर देखा, सब ने लड़ने मरने का आश्वासन दिया । रानी ने भी सब को पुरस्कृत किया । उस रात रानी झांसी के किले से भीषण गोलाबारी हुई । रोज की सेना ने बहुत हल्का उत्तर दिया । यदि उस रात झांसी की सेना फाटक खोलकर टूट पड़ती तो रोज की सेना सारी नष्ट-भ्रष्ट हो जाती । रानी सब मोर्चों पर पहुंचती थी और सब को उत्साहित करती थी । उसी रात एक गोला महल पर गिरा, महल के दो खण्ड नष्ट हो गये । महारानी ने वहां पहुंचकर सब को उत्साहित किया । गुलाम गौस सावधानी से कार्य कर रहा था । लालता ब्राह्मण मारा गया । झांसी के गोल अन्दाजों को जब महल की घटना का पता चला तो वे अधिक सावधान हुए और ठीक लक्ष्य लेकर तोपें दागीं । अंग्रेजों के तोपखाने बन्द हो गये । फिर सब कार्य किले में भली-भांति चालू हो गए । प्रातःकाल होते ही बराहमुद्दीन ने एक पत्र महारानी को दिया, वह उसका त्यागपत्र था, उसमें लिखा था "मेरा विश्वास नहीं किया गया, मुझ को उलटा डांटा-फटकारा गया, मेरा मन कार्य में नहीं लगता । मैं नौकरी छोड़ता हूं । हथियार पीर अली को दे दिए हैं । पीर अली और दुल्हाजु से होशियार रहियेगा ।" रानी को क्रोध आया किन्तु संयम से बोली "ठीक समय पर तुम जैसे लोग ही काम छोड़ते हैं । जाओ हटो ।" चिट्ठी रानी ने अपने अङ्गरखे की जेब में डाल ली । दूसरे दिन ऐसा भयङ्कर युद्ध हुआ कि रोज की सेना घबरा गई । लड़ाई दिन रात चलती रही । रानी ने दुल्हाजु और पीर अली से पृथक्-पृथक् बातें की । परस्पर एक-दूसरे के विरुद्ध उल्टी सीधी बातें करने लगे । रानी को उनकी बातों से संशय तो हुआ किन्तु फिर मोर्चे को सम्भालने चली, बात का निर्णय नही कर सकी । यही झांसी का दुर्भाग्य हुआ । रानी सब फाटकों पर घूमती हुई सब को उत्साहित करती हुई आगे बढ़ी । उन्नाव फाटक पर पूरन कोरी अन्य कोरियों के साथ तोपखाने पर कार्य करता था । उसकी स्त्री झलकारी भी कार्य करती थी । कोरियों को शाबाशी दी । शहर, बाजार सब सम्भाल कर रानी लौट आई । प्रातःकाल हुआ, रानी ने सब सिपाहियों को सन्देश भेजा कि सेना के लिए आज मैं स्वयं अपने हाथ से कलेवा तैयार करूंगी । "खूब खाओ और डटकर लड़ो ।" यह सुनते ही थके हारे अर्धमृत सैनिकों में जीवन आगया । सब की छातियां फूल उठीं । रानी ने भोजन बनाने में सहयोग दिया । किले के भीतर वाले सैनिकों और सरदारों को रानी ने अपने हाथ से ठीयों पर जाकर कलेवा वितरित किया । सब सिपाही उन्मत्त हो गये । रानी के हाथ के भोजन ने सारी सेना में जीवन फूंक दिया, प्राणों की बाजी लगाकर लड़ने लगे । रानी ने फिर पीर अली की खोज की । वह ढूंढने पर भी नहीं मिला । रानी समझ गई पीर अली झूठा और विश्वासघातक है, किन्तु यथार्थ बात का पता नहीं लगा । इसी चिन्ता में थी कि अंग्रेजों ने चारों दिशाओं में गोलाबारी प्रारम्भ कर दी । अंग्रेज परकोट की दीवार को तोड़कर झांसी के किले में घुसना चाहते थे । किन्तु झांसी वालों का निश्चय था कि जब तक शरीर में रक्त है तब तक शत्रु का पग झांसी के भीतर न पड़ने देंगे । दोनों तरफ की तोपें आग उगल रही थीं, परकोट की बुर्जों की मार से अंग्रेजी पलटन बिछुड़ने लगी । भागी, पैर उखड़ गये । लेकिन एक दस्ता ओछी फाटक की ओर बढ़ गया । सैयद फाटक की ओर भी दूसरा अंग्रेजी दस्ता आगे बढ़ा । अंग्रेजी तोपखाने ने भीषणतर गोलाबारी आरम्भ की । रानी और मोतीबाई ने दूरबीन से देखा, ओछी फाटक की सामने वाली

टेक के पीछे लाल झण्डा उठा और ओछी फाटक पर का तोपखाना कुछ धीमा पड़ गया। मोतीबाई ने उधर जाना चाहा। खुदाबख्श सैयद फाटक पर था, मोतीबाई को उसने आगे नहीं बढ़ने दिया। एक अंग्रेज दस्ता सीढ़ी लगाकर चढ़ना चाहता था, खुदाबख्श ने तोप, बन्दूकों की बाढ़ दे दी और मोतीबाई को पत्थर, ईंटें, लक्कड़ इन लोगों के ऊपर डालने का आदेश दिया। मोतीबाई ने आदेशानुसार वही कार्य किया। अंग्रेज गिरते-पड़ते लौट गये। अंग्रेज पलटन को बिगुल बजाकर इकट्ठा किया गया। रोज, जीवनशाह की टोरियों के पीछे घोड़े पर था। रोज ने सबको मरने मारने के लिए उत्साहित किया। रोज की आज्ञा से उसके चार युवक लैफ्टीनैण्ट सैयद फाटक के पास, जहां दीवार पहले धंस गई थी, उस स्थान के झांसी के सैनिक मर चुके थे, वहां अंग्रेज अफसर अपने शरीर की सीढ़ी बनाकर चढ़ने लगे। शेष दोनों उन पर से ऊपर चढ़ गये। मोतीबाई तलवार लेकर दोनों पर टूट पड़ी और दोनों को लड़ते हुए समाप्त कर दिया। नीचे वाले दोनों अफसर पत्थर की आड़ में छिप गये। इतने में झांसी के सिपाही आगये। खुदाबख्श के तोपखाने ने आगे बढ़ते हुए दस्ते को समाप्त कर दिया। वे दोनों अंग्रेज लैफ्टिनैण्ट भी बन्दूक की मार से मारे गए, आज इस मोर्चे पर अंग्रेजी सेना की दूसरी हार हुई। उत्तरी फाटकों पर भी कोरियों, कच्छियों और ठाकुरों की वीरता के आगे टिक न सके, हार खाकर पीछे हटे। रानी ने किले के ऊपर से देखा, ओछी फाटक का तोपखाना काम नहीं कर रहा। यही धूर्त दुल्हाजु उस लाल झण्डे को देखकर विश्वासघात कर रहा था।

रानी ने रामचन्द्र देशमुख को तुरन्त वहां भेजा किन्तु वहां तक पहुंचने में समय चाहिए था। दुल्हाजु ने लाल झण्डे को देखकर केवल बारूद भरकर तोप चलाई। सुन्दर उस से हट कर ऊँची बुर्ज से तोप चला रही थी। उसके साथी गोल अन्दाज मर चुके थे। केवल उसकी तोप चल रही थी। उसने दुल्हाजु के विश्वासघात को भाँप लिया। सामने की टेक के पीछे गोरी पलटन टिड्डीदल की भांति टूट पड़ीं और घोष करती हुई विश्वास के साथ ओछी फाटक की ओर दौड़ी। दुल्हाजु एक लोहे का छड़ लेकर बुर्ज के नीचे तुरन्त उतरा। सुन्दर को समझने में एक क्षण की भी देर न लगी। उसने तोप छोड़ दी। केवल तलवार उसके पास थी। तलवार खींचकर वह भी बुर्ज के नीचे उतरी। वहां से ओछी फाटक कुछ दूर पड़ता था। सुन्दर के नीचे उतरने से पहले धूर्त दुल्हाजु फाटक के पास पहुंच चुका था। फाटक पर मोटी सांकलों और कुन्दों में मोटी झट वाले ताले पड़े हुए थे। कुञ्जियां किले में थीं किन्तु दुल्हाजु के हाथ में लोहे की मोटी छड़ थी। उसने कुछ भी विलम्ब नहीं किया। उछलकर ताले में छड़ डाली, तड़ाक से ताला टूट गया। दूसरे और तीसरे वार में ताले सब टूट गये। दो सांकलों को भी तोड़ दिया और तीसरी सांकल भी खोल दी। फाटक केवल भिड़े रह गये। वह उनको खोल न सका था कि इतने में नंगी तलवार लिए सुन्दर आ पहुंची।

देशद्रोही ! नरक के कीड़े ! सुन्दर ने कड़क कर कहा—'तू अंग्रेजों से कुछ नहीं पाएगा।' सुन्दर दुल्हाजु पर टूट पड़ी। उसकी तलवार का वार दुल्हाजु ने लोहे की छड़ पर झेला। तलवार भन्नाकर बीच से टूट गई। तलवार का टुकड़ा जो सुन्दर की मुट्ठी में बचा था, उसी को तानकर सुन्दर फिर दुल्हाजु पर उछली। उस धूर्त ने छड़ का सीधा हूल दिया, वह सुन्दर के बायें वक्ष पर लगा। चोट की परवाह न करके फिर सुन्दर ने वार किया, किन्तु उस नीच ने सुन्दर के पेट में छड़ अड़ा दी और पीछे हट गया। उधर गोरों ने धक्के से फाटक खोल दिया।

@VaidicPustakalay

सुन्दर के मुख से हर-हर महादेव निकला था कि एक गोरे की गोली ने वीराङ्गना देवी सुन्दर को अमर कर दिया। गोली उसके सिर पर लगी थी। अंग्रेज अफसर के इशारे से दुल्हाजु बच गया। गोरे बन्दूकें नीची करके टिड्डी दल की भांति अन्दर घुस गए। अफसर सुन्दर को रानी समझता था। दुल्हाजु के बताने पर उसे पता चल गया। अंग्रेज अफसर ने वीर सैनिक के समान सुन्दर का आदर किया। अब भी उसके हाथ में वह टूटी हुई तलवार थी, उसके शव को अफसर की आज्ञा से दो गोरों ने पत्थरों के नीचे दबा दिया। जहां उनके अपने भी अनेक अंग्रेज सिपाहियों के शव दबाये गये थे।

इसके पश्चात् यह सब शहर में घुस गये। रोज ने दुल्हाजु को दो गांव जागीर के इनाम की घोषणा कर दी। दुल्हाजु के इस नीच कृत्य का समाचार शीघ्र चारों ओर फैल गया। फिर रोज ने सैयद फाटक को तोड़ने, नगर में घुसने और क्रांतिकारियों का नाश के आज्ञा दी। खुदाबख्श मारा गया। मोतीबाई ने दीवार पर चढ़ने वाले अंग्रेज को समाप्त किया। इतने में रामचन्द्र देशमुख वहां पहुंचा। वह घोड़े पर खुदाबख्श के शव और मोतीबाई को बैठाकर किले पर चढ़ गया। उसके किले में आते ही किले का फाटक बन्द हो गया। लाश को महल के पास रखा। रानी ने मोतीबाई को उत्साहित किया। उसकी वीरता की प्रशंसा की। मोतीबाई ने कहा—रानी जी किला हमारे हाथ में सुरक्षित है। मैं सब प्रबन्ध करती हूं। रानी ने कुंवर खुदाबख्श की लाश को महल के पास ही दफनाने को कहा। देशमुख ने पूछा सुन्दर कहां है? मोतीबाई ने कहा—ओछी फाटक पर लड़ती हुई मारी गई। दुल्हाजु ने देशद्रोह करके फाटक खोल दिया।" रानी होंट सटाये धीरे से बोली "जीवन में यही बड़ा भारी धोखा खाया" फिर उन्होंने जोर से कहा "बरहामुद्दीन ने ठीक कहा था, उसके साथ अन्याय हुआ। कहां है वह? कुछ जानते हो देशमुख?" देशमुख ने उत्तर दिया—"पता नहीं सरकार"। बराहमुद्दीन का पत्र अभी रानी की जेब में ही पड़ा था। खुदाबख्श के शव के लिए खुदकर कब्र तयार हो गई। रानी ने दूरबीन से देखा शहर में भयङ्कर संग्राम हो रहा था। रानी ने आदेश दिया बाहर निकलकर लड़ो, गोरों को शहर से बाहर निकालो। गोल अन्दाज अपने ठीयों पर कार्य करते रहें। बख्शी भी रानी की आज्ञा से साथ गया। रानी फुर्ती से घोड़े पर सवार हो किले से बाहर हो गई। उसके साथ १५ सौ पठान और बुन्देलखण्डी सैनिक थे। पीछे से झोपटकर भी गया। रानी झञ्झावात की भांति दक्षिण की ओर झपटी। रानी का छापा इतना प्रचण्ड था कि अंग्रेज सेना भाग खड़ी हुई थी।

रानी जिधर जाती थी, अंग्रेजी सेना भागती दिखाई देती थी, गोरी सेना छिपकर गोली चला रही थी। सिपाही कुछ अटक रहे। रानी उसी ओर बढ़ी। रानी ने देखा एक सिपाही किसी मकान से निकल पड़ा और अकेले ही कई गोरों से भिड़ गया। उसने ऐसी तलवार चलाई कि कई गोरे यमलोक पहुंचा दिए। कुछ और गोरे आ गये, वह अकेला सैनिक घिर गया।

रानी ने अपना घोड़ा तेज किया। पीछे-पीछे उनके सिपाही दौड़े। रानी के पहुंचते-पहुंचते, वह सिपाही और गोरे लड़ते-लड़ते पंचकुइयों से नीचे की ओर चले गये। उस अकेले सिपाही ने फिर कई गोरों को समाप्त किया। किन्तु अकस्मात् उस पर कई वार पड़े और वह गिर गया। इतने में रानी भी सैनिकों सहित पहुंच गई। रानी ने पास जाकर देखा—वह बरहामुद्दीन था। उसके मरने में कुछ क्षण शेष थे। दुखी था। रानी घोड़े से उतरी। बरहाम के सिर पर हाथ फेरा। बरहाम ने पहचान लिया। आंखें फाड़ीं। पूरा बल लगाया, लेकिन कठिनाई से बोला—'हजूर माफी' रानी ने कहा—"तुम सच्चे सेवक हो माफ किया" बरहाम फिर जोर लगाकर बोला—"सरकार जान नहीं निकलती। मेरी चि···ट्···ठी।"

रानी ने जेब से उसके त्यागपत्र वाली चिट्ठी निकाली। 'यह लो' रानी बोली। बरहाम ने बड़ी कठिनाई से कहा "फाड़ डालिए तब प्राण निकलेंगे।" रानी ने तुरन्त चिट्ठी के टुकड़े-टुकड़े कर डाले। बरहाम के मुख पर ग्रानन्द की छाप लग गई। बरहाम ग्रल्लाह का नाम लेकर परलोक सिधार गया। रानी ने उसकी उसी स्थान पर कबर बनवा दी। रानी फिर गोरों पर झपटी, गोरे भागे। सैनिक गोरों पर झपटे। रानी को आगे जाने से भोपटकर ग्रौर गुलमुहम्मद पठान सरदार ने रोका। क्योंकि मकानों की आड़ से गोरे गोली चला रहे थे। झांसी के सिपाही लड़ते हुए हताहत हो रहे थे। रानी गुलमुहम्मद और तीन सौ पठान, भाऊ और नाना भोपटकर को लेकर किले के भीतर गई। किले के फाटक बन्द कर लिए गये। झांसी के शेष सब सैनिक लड़ाई में कट मरे।

गोरों ने शहर के सब फाटक बन्द कर लिए। पांच वर्ष की ग्रायु से लेकर ८० वर्ष तक के जितने भी पुरुष मिले सब का कत्ल प्रारम्भ कर दिया। बाजार में आग लगा दी। सब लोग मारे गये। स्त्रियां ग्रपने सतीत्व की रक्षार्थ कुओं में गिरकर मर गईं। गोरों ने घर-घर घूमकर लूट तथा कत्ले आम की। महल ग्रौर अस्तबल पर भयङ्कर युद्ध हुग्रा। जब झांसी के सैनिक समाप्त हो गये, फिर ग्रंग्रेजों ने महल में भी ग्राग लगा दी। नाटकशाला जला दी गई। महल के सामने का बहुमूल्य पुस्तकालय भी जलाकर भस्मसात् कर दिया। कभी बर्बर युग में रोम सिकन्दरिया और राजगृह में विद्या के शत्रु यवनों ने भी ऐसा नहीं किया था। राजमहल, अस्तबल फिर बन सकते थे। किन्तु पुस्तकालय ? वेद, शास्त्र, पुराण, काव्य, इतिहास आदि संस्कृत के तथा ग्ररबी फारसी के ग्रनेक हस्तलिखित ग्रन्थ जिनकी प्रतिलिपि करने के लिये देश-देशान्तर ग्रौर द्वीप-द्वीपान्तर से विद्या-व्यसनी आते थे, उसे फिर कौन उत्पन्न करेगा ? रानी का सिर यह देखकर घूमने लगा। जो कभी किसी ग्रापत्ति से भी विचलित नहीं होती थी वह जलते हुए पुस्तकालय को देखकर मूर्च्छित होने को हुई। मुन्दर साथ थी, उसने रानी को सम्भाल लिया। जल मंगवा कर रानी को पिलाया गया और प्रयत्न पूर्वक मूर्च्छा को दूर किया।

शहर में कत्ले ग्राम हो रहा था। झांसी की दुर्गति देखकर जिसका वक्षस्थल वज्र का था और हाथ फौलाद के थे, जिसके कोष में निराशा का शब्द न था। जो भारतीय नारीत्व का गौरव ग्रौर शोभा थी। वह रोई। वह हिन्दुओं की दुर्गा, झांसी की दुर्दशा देखकर रोई। कठिनाई से रोना बन्द हुआ। देशमुख ने सूचना दी कि कुंवर गुलाम गौस खां शत्रु की गोली से मारे गये। रानी सिंहनी की भांति उछलकर खड़ी हो गई, आज्ञा दी भाऊ को उनके स्थान पर भेज दो। लाश महल के पास ले ग्राग्रो। मोतीबाई को भी एक तोपखाने पर कार्य करने के लिए भेज दिया। वह यहां कार्य करने लगी कि एक ग्रंग्रेज की गोली से मोतीबाई भी जख्मी हो गई। उधर गुलाम गौस की लाश ग्राई इधर एक सिपाही मोतीबाई को उठाकर लाया। वह ग्रचेत थी। सुन्दर तोपखाने को सम्भालने चली गई, किन्तु उसे रानी ने जाते-जाते रोक लिया। मोतीबाई का सिर रानी ने अपनी गोद में लिया! मोतीबाई ने रानी की गोद में मरने का सौभाग्य प्राप्त किया। तीन कबरों में पृथक्-पृथक् तीनों को दफना दिया। रघुनाथसिंह ने तीनों को तोप की सलामी दी। कब्रों के ऊपर चबूतरा बनवा दिया गया। फिर रानी ने स्नान किया, वस्त्र बदले। वेष वही पुरुष सैनिक का था। महल के नीचे के खण्ड में मुख्य-मुख्य लोगों को इकट्ठा किया। सब की सम्मति पूछी। नाना भोपट की सम्मति से ग्रन्तिम श्वास के रहते स्वराज्य का युद्ध लड़ना है, यही निश्चय हुग्रा।

नाना भोपट के उत्साहित करने से रानी ने अंग्रेजों की सेना को लड़ते हुए चीरकर निकलने का और कालपी पहुंचने का दृढ़ संकल्प किया। रानी ने नाना भोपटकर के पैर छुए और प्रणाम किया कि यदि समस्त अंग्रेजों का मुझ को अकेले भी सामना करना पड़े, तो करूंगी। रानी ने कहा थोड़ा-सा खा पी लो। जो लोग शस्त्र धारण नहीं कर सकते, वे गुप्त मार्ग से चले जायें। रानी की आज्ञा मानकर पुराने सेवक सेविकायें पैर छू-छू कर, रो-रो कर वहां से चले गये। नाना भोपटकर भी चला गया। रानी, मुन्दर ने कुछ देर महादेव के मन्दिर में ध्यान किया। मोरोपन्त ताम्बे रानी के पिता ने बहुत सा द्रव्य और जवाहर इकट्ठे किये और हाथी पर लाद ली। कुछ अशरफियां लोगों की कमरों पर बांधी। रानी और मुन्दर पुरुष वेश में घोड़े पर सवार हुईं। रानी ने एक चादर से दामोदरराव को पीठ पर कसा और अपने तेजस्वी घोड़े को किले के उत्तरी भाग से निकालकर आगे किया। बख्शी ने गुप्त मार्ग से जाकर भाण्डेरी फाटक का प्रबन्ध अपने जिम्मे लिया। इसी फाटक से निकलकर कालपी पहुंचना था। रानी के पीछे-पीछे पठान, मुन्दर, जवाहरसिंह, रघुनाथ इत्यादि थे। द्वार से निकलते ही किले को नमस्कार किया। झांसी को नमस्कार किया। उत्तर दिशा को चली, मोरोपन्त का हाथी बीच में था।

सवार अधिक न थे। उनकी रक्षा हेतु शेष सैनिक पैदल थे, नङ्गी तलवार लिए हुए। यह टोली भाण्डेरी फाटक की ओर अग्रसर हुई। कोतवाली के पास अंग्रेजी सेना से टक्कर हुई। रानी उच्च स्वर से "हर-हर महादेव" उच्चारण करती हुई उनको चीरती हुई, मुन्दर सहित निकल गई। पठान शत्रुओं से बड़ी वीरता से लड़े, बहुत से मारे गए। शेष बचे वह आगे बढ़े। रानी और उसके साथी द्रुतगति से भाण्डेरी फाटक के पास पहुंच गये। वहां बख्शी कोरियों को लिए अंग्रेजी फौज की एक टुकड़ी को तलवार के युद्ध में उलझाये हुए था, उधर से रानी की टुकड़ी पहुंची। जलते हुए मकानों के प्रकाश में थोड़ी देर विकट युद्ध हुआ। बख्शी ने फाटक खोल दिया और फिर अपने कोरी सैनिकों को लेकर अंग्रेजों पर टूट पड़ा। वह उसी फाटक पर हर-हर महादेव बोलता हुआ झांसी की जयघोष बोलकर लड़ता हुआ मारा गया। अपनी आंखों से रानी ने उसे देखा तथा उसने भी रानी को निकलते हुए देख लिया, समय धन्यवाद करने का भी नहीं था। पठान भी खूब लड़े।

रानी थोड़े से साथियों सहित निकल गई। बचे हुए अंग्रेज भाग गए। कोरियों ने फाटक फिर बन्द कर लिया। आगे अञ्जेनी की टोरियों के पास अंग्रेज छावनी तथा ओर्छी की सेना थी। वहां रोक-टोक तथा लड़ाई भी हुई। महारानी के साथ केवल दस-बारह साथी रह गये और मुन्दर थी। यह टोली जब दस बारह मील निकल गई तब ठहरी। वहां रानी ने जवाहरसिंह को कटेली की ओर सेना संग्रह करने तथा कालपी में मिलने की आज्ञा देकर भेज दिया। वह महारानी के पैर छूकर चला गया। रानी की टोली के साथ पठान गुलमुहम्मद और उसके कुछ पठान भी थे। जनरल रोज ने रानी का पीछा करने के लिए एक गोरों का दस्ता तथा निजाम का दस्ता भेजा। मोरोपन्त भाण्डेरी फाटक से तो साथ निकल आये किन्तु अञ्जेनी की टोरियों से हाथी दतियां की ओर तेजी से भगा ले गया। अंग्रेज घुड़सवारों ने पीछा भी किया। उसकी जांघ में किसी घुड़सवार की तलवार से घाव भी लगा, किन्तु वह निकल गया और प्रातःकाल दतिया में पहुंच ही गया। किन्तु वहां पकड़ा गया। राज्य ने हीरे जवाहरात सब छीन लिए। मोरोपन्त को पकड़कर तुरन्त झांसी भेज दिया गया। रोज ने दिन के दो बजे जलते हुए महल भस्मीभूत पुस्तकालय के बीच में मोरोपन्त को फांसी दे दी। इधर पूरन कोरी रानी के निकल जाने पर भाण्डेरी फाटक को बन्द कर अपने घर चला गया। इसने

किया कि अपनी पत्नी झलकारी को लेकर कहीं सुरक्षित स्थान पर चला जाऊँ। किन्तु झलकारी घर छोड़कर जाने को तैयार नहीं हुई। पूरन विवश होकर बाहर चला गया। थोड़ी देर में एक बिना सवार का घोड़ा, जीन लगाम समेत उधर आगया। घोड़ा बढ़िया और झांसी की सेना का था। झलकारी ने घोड़ा पकड़कर घर के पास वृक्ष से बांध दिया। उसने एक विचार कर योजना तैयार की। प्रातः होते ही हाथ मुंह धोकर अपना शृङ्गार किया, बढ़िया से कपड़े पहने। ठीक उसी प्रकार जैसे लक्ष्मीबाई करती थी। गले में काञ्च की गुटियों का कण्ठा डाल, पौ फटते ही घोड़े पर सवार हो बड़ी ऐंठ के साथ अंग्रेजी छावनी की ओर चल दी। साथ कोई हथियार न लिया। चोली में केवल एक छुरी रख ली।

आगे चलकर गोरों का पहरा मिला, वहां रोकी गई। गोरों के पूछनें पर झलकारी नें उत्तर दिया "हम तुम्हारे जनरैल से मिलना चाहता है।" एक गोरा कुछ हिन्दी जानता था, उसनें पूछा तुम कौन हो ? झलकारी नें उत्तर दिया—"झांसी की रानी लक्ष्मीबाई।" उत्तर बड़ा गर्वपूर्ण था। झलकारी को विश्वास था कि मेरी जांच पड़ताल और हत्या में जब तक अंग्रेज उलझेंगे, तब तक रानी को इतना समय मिल जायेगा कि वह पर्याप्त दूर निकल जायेगी। गोरों ने उसे घेर लिया और उसको जनरल रोज के पास ले गये। शहर भर के गोरों में हल्ला फैल गया कि झांसी की रानी लक्ष्मीबाई पकड़ी गई। गोरे हर्ष में पागल हो गये। झलकारी उनसे बढ़कर पागल थी। झलकारी की आकृति महारानी से बहुत कुछ मिलती थी। केवल रंग का कुछ अन्तर था। झलकारी रोज के सामने पहुंचाई गई। वह घोड़े से नीचे नहीं उतरी। रानियों जैसी शोभा, वैसा ही गर्व, वही हेकड़। रोज भी कुछ समय के लिए धोखे में आ गया। किन्तु कुछ देर पश्चात् दुल्हाजु ने आकर पहचान कर रोज को बता दिया—"यह रानी नहीं झलकारी कोरिन है, रानी इस प्रकार सामने नहीं आ सकती।" झलकारी को दुल्हाजु को देखकर गुस्सा आ गया। अपने आपको भूल गई। वह क्रुद्ध स्वर में बोली—"अरे पापी तूने ठाकुर होकर यह नीच कर्म क्यों किया ?" दुल्हाजु भूमि में गड़ सा गया। रोज ने सब बात समझकर कहा—"तुम रानी नहीं हो, झलकारी कोरिन हो। तुमको गोली मारी जायेगी।" झलकारी ने निर्भय होकर कहा—"मार दो। मैं क्या मरने से डरती हूं ? जैसे इतने सैनिक मरे हैं एक मैं भी सही।" फिर रोज ने झलकारी का सारा रहस्य समझकर तंग नहीं किया, एक सप्ताह कैद में डालकर छोड़ दिया। क्योंकि उनका गोरा अफसर बोकर अपने दल सहित रानी के पीछे गया हुआ था।

प्रातःकाल होते ही पहूज नदी के तट पर पहुंच गये। तुरन्त स्नान आदि नित्यकर्म से निवृत्त हो सबने कलेवा जलपानादि किया। रानी नें कुछ नहीं खाया, कुछ अञ्जलि जल ही पिया। वह झांसी की दुर्दशा के कारण उदास थी, उसकी कलेवे में रुचि नहीं थी। उन्हें झांसी की ओर से धूल उड़ती हुई दिखाई दी। दूरबीन से देखने से पता लगा एक अंग्रेजी दस्ता पीछा किये आ रहा है। महारानी की आज्ञानुसार वे सब टोरियों के पीछे छिप गये। लैफ्टिनैन्ट बोकर का दस्ता जब इतना निकट आगया कि पिस्तोल की मार के अन्दर था। रानी की टोली नें पिस्तोल की बाढ़ दागी। बाढ़ का भयङ्कर प्रभाव हुआ। बोकर के दल की पिस्तोलें खाली थीं। बन्दूकें आवरों में पड़ी हुई थीं, यह कुछ न कर सके। रानी ने तुरन्त तलवार से हमला किया। अंग्रेजों का दस्ता बड़ा था किन्तु रानी और उसकी टोली की वीरता के आगे वह ठहर न सके, लड़ाई हुई। रानी की विलक्षण चतुराई से अंग्रेज दस्ता नष्ट-भ्रष्ट हो गया।

बोकर घायल होकर घोड़े से नीचे गिर पड़ा। रानी के घोड़े को भी एक गोली से पीठ पर थोड़ा सा घाव हुआ। रानी के चार साथियों सुन्दर, देशमुख, गुलमुहम्मद और रघुनाथसिंह को छोड़कर सब काम आये। जख्मी बोकर को उसके साथी झांसी उठा ले गए। रानी पहूज नदी पार कर कालपी की ओर तेजी से चल पड़ी। घोड़े सरपट दौड़ रहे थे। प्रातःकाल से दोपहर हो गया और दोपहर से सायंकाल आ गया किन्तु रानी को ठहरने का अवकाश नहीं मिला। चलते-चलते रात हो गई, तारे निकल आये, किन्तु रानी दामोदर को कमर पर बांधे झांसी से कालपी तक की १०२ मील की यात्रा लगभग आधी रात को पूरी करके कालपी में प्रवेश करती है। दिन भर कुछ भी न खाकर उस तेज धूप में इस पर भी पहुंचते ही उन्होंने तात्यां के मिलते ही काशीबाई और जूही के बारे में पूछा। तांत्या ने उत्तर दिया—"काशीबाई युद्ध में मारी गई। जूही राव साहब के रनवास में पास के शिविर में है।" तात्यां ने सविस्तार अपनी झांसीवाली लड़ाई का वृत्तान्त थोड़े समय में सुना दिया। महारानी ने धैर्यपूर्वक सुना फिर उन्होंने स्नान ध्यान किया, कपड़े बदले और केवल शर्बत पीकर सो गई। रानी का प्यारा घोड़ा मार्ग में घायल हो गया था। उसके घाव से मार्ग में पर्याप्त रक्त निकल गया था। वह कालपी पहुंचते ही शक्ति से अधिक परिश्रमादि के कारण मर गया। किसी-किसी लेखक का यह मत है कि वह मार्ग में ही एक गांव में मर गया था। वहां किसी गांव वाले से घोड़ा लेकर और वहां जल पीकर रानी उस घोड़े से कालपी पहुंची थी। कुछ भी हो महारानी का घोड़ा झांसी नगर के बलिदान के साथ अपनी स्वामिनी की रक्षार्थ अपनी बलि दे गया।

झांसी के किले पर अधिकार होते ही अंग्रेजों ने लगभग तीन सहस्र निरपराध बालक, युवा तथा वृद्ध गोलियों से उड़ा दिए। बेहद लूटमार हुई। असंख्य मकान जला दिए गए। लाशों के ढेर लग गये। सात दिन लाशें सड़ती रहीं। महालक्ष्मी का मन्दिर लूटा गया। मन्दिरों की मूर्तियां स्वयं अंग्रेज अफसर मन्दिरों से झोलियां भरकर अपने शराबखानों को सजाने के लिए ले गये। मुरली मनोहर के मन्दिर की मूर्ति न देने पर पुजारी और उसके लड़के को वहीं मार दिया गया। रोज का एक दस्ता घूमता-भटकता मऊ-रानीपुर पहुंचा।

झांसी के पतन का समाचार पाने पर भी काशीनाथ भैया और आनन्दराव इस दस्ते से भिड़ गये। मऊ गढ़ी छोटी सी थी। तोपें पास में न थीं। अतः ये लोग अपनी छोटी सी बन्दूकची मण्डली लेकर मऊ के बाहर टोरियों की आड़ लेकर खूब डटकर लड़े और सब मारे गये। आनन्दराव ने कहा—यदि कभी रानी साहब के दर्शन हों तो कहना कि मऊ झाँसी से पीछे नहीं रही। लड़का कुछ मास पश्चात् गिरफ्तार हुआ किन्तु विक्टोरिया की क्षमाघोषणा से वह फांसी से बच गया। रोज को झांसी जिले में कम्पनी सरकार का पुनः राज्य स्थापन करने में लगभग एक मास लग गया।

बांदा का नवाब

मेजर ह्विटलांक १७ फरवरी को जबलपुर से सागर आदि को फिर विजय करने के लिये निकला था। उसके साथ भी पर्याप्त देशी गोरी पलटनें थीं। यह ओर्छी के राजा को साथ लेकर बांदा की ओर बढ़ा। बांदा का नवाब इस प्रान्त के क्रांतिकारियों का मुख्य नेता था। नवाब की ह्वीटलांक के साथ कई लड़ाइयां हुई। अन्त में नवाब की पराजय हुई। वह अपनी कुछ सेना सहित नगर छोड़ कर कालपी की ओर चला गया।

करबी का राव

इसके पश्चात् करबी के राव माधोराव पर चढ़ाई की। माधोराव दस वर्ष का बालक था। उसने क्रांति में कोई भाग नहीं लिया। क्योंकि वह बालक था। फिर भी वह ह्विटलांक के आने का समाचार सुनकर स्वागतार्थ आगे बढ़ा। किन्तु ह्विटलांक ने माधोराव को कैद कर लिया। महल को गिरा दिया। राजधानी को लूट लिया, रियासत को कम्पनी के राज्य में मिला लिया। मालसेन लिखता है—"ह्विटलांक की सेना पर वहां किसी ने एक गोली भी न चलाई थी······इस बेईमानी और अन्याय का कारण यह था। करबी के महल के तहखानों और खजानों में सोना, चांदी, जवाहरात और कीमती हीरे भरे हुए थे।×× ह्विटलांक को इस धन का लोभ था।" इसके पश्चात् ह्विटलांक महोबा पहुंचा, वहीं से उसने सेना भेजकर आस-पास के क्रांतिकारियों का दमन करना प्रारम्भ किया।

कालपी की लड़ाई में क्रांतिकारियों की व्यवस्था अच्छी न होने से क्रांतिकारियों की हार हो गई। इसके विषय में तांत्या टोपे के विषय में लिखते हुए लिखा है—कालपी का दुर्ग और बहुत सा सामान अंग्रेजों के हाथ में चला गया। कालपी के युद्ध में भी महारानी लक्ष्मीबाई ने खूब वीरता दिखाई। इस युद्ध में महारानी की वीरता ने अंग्रेजों के छक्के छुड़ा दिए। किन्तु अन्य क्रांतिकारियों के सहयोग के बिना लक्ष्मीबाई अकेली कब तक लड़ती, अतः पेशवा की सेना का संगठन ठीक न होने से क्रांतिकारियों को पराजय का मुख देखना पड़ा। अब विवश होकर क्रांतिकारियों को कालपी छोड़ भागना पड़ा। महारानी और तांत्या टोपे की चतुराई से ग्वालियर का किला सामान सेना सहित क्रांतिकारियों के हाथ में आ गया। राव साहब आदि तो सब निराश हो गये थे। किन्तु महारानी लक्ष्मीबाई की वीरता और तांत्या टोपे की भेदनीति से एक नया केन्द्र ग्वालियर फिर क्रांतिकारियों के हाथ में आ गया। सींधिया की सेना पर यदि महारानी लक्ष्मीबाई अपने ठीक तीन सौ वीर सैनिकों को लेकर भूखे सिंह के समान न टूट पड़ती तो क्रांतिकारियों की विजय न होती।

महारानी की लपलपाती हुई तलवार से घबराकर ग्वालियर का राजा सींधिया भाग गया। ग्वालियर का किला, सेना, सामान तथा एक बड़ा कोष क्रांतिकारियों के हाथ में आ गया। किन्तु दुःख की बात है कि महारानी लक्ष्मीबाई के अनेक बार समझाने पर भी सेना को सुव्यवस्थित करने के स्थान पर पेशवा रावसाहब अपने अन्य साथियों सहित विजय की खुशी में दावतों और उत्सवों में अमूल्य समय खोता रहा। उधर ह्यू रोज अपनी सेना सहित सींधिया को साथ लेकर ग्वालियर के किले पर टूट पड़े। ग्वालियर की सेना लेकर, तांत्या ने युद्ध किया किन्तु थोड़ी देर के संग्राम के पीछे क्रांतिकारियों की सेना में भगदड़ पड़ गई। रावसाहब घबरा गया। सब किंकर्तव्य विमूढ़ हो गये। अब रावसाहब को लक्ष्मीबाई याद आई किन्तु उसके पास किसी के जाने का साहस न था।

जनरल रोज ने उस दिन केवल दो घण्टे की लड़ाई में पेशवा की मुरारवाली सेना को हरा दिया और मुरार पर कब्जा कर लिया। जब पेशवा की हारी हुई सब सेना भागकर ग्वालियर गई तब पेशवा का नशा उतरा। उधर जनरल सर ह्यू रोज ने एक चाल चली। एक लिखित घोषणा प्रकाशित की गई कि अंग्रेज तो पुनः ग्वालियर के राजा जियाजीराव को उसकी गद्दी दिलवाने के लिए आये हैं। इससे सींधिया की सेना जो पेशवा के पक्ष में ग्वालियर में थी, उसके सैनिकों और सरदारों में फूट पड़ गई। उनके मन फिर गए। पेशवा के उत्सवों, पुरस्कारों आदि की रिश्वत व्यर्थ सिद्ध हो गई। पेशवा ने

तात्यां को लक्ष्मीबाई के पास भेजा। तांत्या भी डरता-डरता कलेजा साधकर उनके पास पहुंचा। महारानी ने व्यङ्ग से पूछा—"क्या बात है सेनापति जी, ये तोपें कहां चल रही हैं ?" तांत्या ने अत्यन्त नम्रता से निवेदन किया "अब क्षमा प्रार्थना करने का भी समय नहीं है बाई साहब।" लक्ष्मीबाई ने फिर व्यंग किया "क्या भांग छानने और एक तान सुनने का भी समय नहीं ?" तांत्या महारानी के पैरों पर गिरने को हुआ "रक्षा करो महारानी" रानी ने उसे बीच में ही पकड़ लिया और हंसकर कहने लगी "तांत्या तुमसे मुझे बड़ी आशायें थीं, अब भी दृढ़ता से कुछ करो तो बहुत कुछ हो सकता है। तांत्या ने विश्वास दिलाया कि आपकी आज्ञानुसार सर्वस्व लगा दूंगा, आपको उपालम्भ देने का आगे कभी अवसर नहीं मिलेगा। महारानी ने तांत्या को आश्वासन दिया और अपनी सारी योजना बताई और कहा पेशवा से कहें घबराये नहीं, सम्भव है योजना के अनुसार विजय हो जाये। हो सकता है यह अन्तिम लड़ाई हो। यदि हमारी विजय न हो तो आप सामान और सेना सहित दक्षिण की ओर चलने का प्रबन्ध करना। तुम इस कार्य में तो आचार्य हो। रानी ने अपनी सारी योजना तांत्या को विस्तार पूर्वक समझा दी और अपने पाँच सरदारों की बुद्धि में बैठा दी।

महारानी की आज्ञानुसार सेना की व्यवस्था की गई। रावसाहब और तांत्या आदि का भी महारानी के उत्साहित करने पर उत्साह बढ़ा। १७ जून को प्रातः ही ब्रगेडियर ने कोटा की सराय से नगर पर आक्रमण करना था। ज्योंही अंग्रेजों की सेना आगे बढ़ी और पूर्व दिशा से रानी की तोपों की मार के भीतर आई, रानी ने गोलन्दाजों को संकेत किया। गोलाबारी होते ही अंग्रेजों की सेना की बड़ी दुर्गति हुई और वह पीछे हटी। रानी के लालकुर्ती सवारों ने तुरन्त छापा मारा। स्मिथ ने एक चाल चली। उसने अपनी सेना की टुकड़ी को अधिक पीछे हटा लिया और रानी के सवारों को और आगे बढ़ने दिया। इन सवारों के अधिक आगे निकल जाने से बीच में स्थान खाली हो गया। इस समय स्मिथ ने कई दिशाओं से रानी के पार्श्व पर दो पलटनें जो अब तक चुपचाप खड़ी थीं, आक्रमणार्थ आगे बढ़ाईं। रानी के सवारों को पीछे हटना पड़ा। स्मिथ ने सामने की पंक्तियां तोड़ कर अपने सवारों सहित आगे बढ़ने का यत्न किया। वह उस दिन फूलबाग पर अधिकार करना चाहता था। अपने सवारों को पीछे हटता देखकर रानी घोड़े को तेज करके विद्युत्गति से उनके समीप पहुंची। उसे पठान गुलमुहम्मद दिखाई दिया। उसके पास पहुंच कर अंग्रेजों की ओर तलवार की नोक करके बोली—"खान आज हाथ ढीला क्यों पड़ रहा है ?" इतना कहना था पठान सरदार चिल्लाता हुआ रेल-पेल करता हुआ अपने सवारों को उत्साहित करता हुआ आगे बढ़ा। रानी साथ थी ही। गुलमुहम्मद ने रानी से प्रार्थना की कि जूही सरदार का तोपखाना ठीक करवायें। जूही अपनी लालकुर्ती सेना को पीछे हटा देखकर घबरा गई थी, गोरे घुड़सवार उसकी ओर बढ़ रहे थे।

रानी ने तोप का मुहरा एक अंगुल नीचे करवा गोले दागने आरम्भ कर दिए। गोरे सवारों की लाशें बिछ गईं, शेष उल्टे भागे। इसी प्रकार रानी अपने सैनिकों को उत्साहित करती हुई दोनों हाथों से तलवार चलाकर शत्रु को नाकों चने चबा रही थी। रानी के योद्धा संख्या में बहुत न्यून होते हुए भी बड़ी वीरता से युद्ध कर रहे थे। स्मिथ की सब चालें व्यर्थ गईं। वह रानी के व्यूह का भेदन न कर सका। रानी के सवारों ने युद्ध में कमाल कर दिखलाया। अंग्रेज बहुत मारे गये। उन्हें रानी से हार खाकर लौटना पड़ा। अंग्रेजों ने उस दिन बड़े मुंह की खाई। उस दिन रानी और उसके सरदारों

ने निरन्तर घोर परिश्रम किया था। किन्तु रात को देर तक योजनायें सुधारीं, सलाह सम्मति की, कार्यक्रम ठीक बनाया। जिन योद्धाओं ने विशेष वीरता की थी उनको पुरस्कार दिए और पठान सरदार गुलमुहम्मद को कुंवर की उपाधि प्रदान की। उस दिन तो ग्वालियर की सेना ने प्रकट रूप से कोई धोखे का कार्य नहीं किया। रानी को उस सेना पर अविश्वास था किन्तु तांत्या और राव-साहब ने निवारण किया। इस समय वैसे भी विवशता थी। उपलब्ध साधनों से ही काम लेना था।

अठारह जून का दिन था। प्रातःकाल ही रानी स्नान ध्यान और गीता के अठारहवें अध्याय के पाठ से निवृत्त हो अपनी लालकुर्ती रिसालेवाली मर्दाना युद्ध की पोशाक धारण की। दोनों ओर एक एक तलवार बांधी और पिस्तोलें लटकाईं। गले में मोतियों और हीरों की माला धारण की। जिससे उसकी सैनिकों को पहचान रहे। अस्त्रों-शस्त्रों से सुसज्जित उनके पांचों सरदार भी आगये। मुन्दर ने सूचना दी, "सरदार आपका घोड़ा लङ्ड़ाता है कल लड़ाई में चोट खाकर घायल हो गया है।" रानी की आज्ञा से मुन्दर अस्तबल से देखकर, देखने में जो अच्छा सुदृढ़ घोड़ा था तुरन्त ले आई। रानी ने अपने सरदारों को उचित आज्ञायें दीं और शीघ्र खा पीकर तैय्यार होने को कहा। सब खा पीकर तैय्यार हो गये। जूही और महारानी ने केवल शरबत ही पीया। दामोदर को खिला पिलाकर रानी की आज्ञा से रामचन्द्र देशमुख ने अपने पीछे बांधा। सब तैय्यार होकर युद्ध क्षेत्र में यथास्थान पहुंच गये। रानी के लिए जो घोड़ा लाया गया था वह उन्हें अच्छा नहीं जंचा। पर उस समय विवशता थी। उस पर ही सवार हो कार्य लेने का निश्चय किया। यही निकम्मा घोड़ा महारानी की मृत्यु का कारण बना। युद्ध प्रारम्भ हो गया। दोनों ओर से तोपें आग उगलने लगीं। उत्तर और पश्चिम में तांत्या और राव साहब के मोर्चे थे। दक्षिण में बांदा के नवाब का था। रानी ने अपना मोर्चा पूर्व में लगाया।

पिछले दिन की पराजय के कारण अंग्रेज जनरल आज अधिक सावधान थे। उन्होंने अपनी पैदल पलटन जंगल में छिपाली और घुड़सवारों से कई दिशाओं में आक्रमण करने की योजना बनाई। तोपें रक्षा के लिए पीठ पीछे थीं। अंग्रेजों के हुजर सवारों ने कड़ाबीन बन्दूकों से आक्रमण किया। बन्दूकों से ही रानी की ओर से उत्तर दिया गया। महारानी ने आक्रमण पर आक्रमण करके हुजर सवारों को पीछे हटाया। रानी के रणकौशल से अंग्रेज थर्रा गये, किसी भी प्रकार से बहुत देर तक अंग्रेज आगे न बढ़ सके। जूही की तोपें भी गजब ढा रही थीं। अंग्रेज सवार भी मरते जाते थे और आगे बढ़ते जाते थे, उन्होंने जूही की तोपों के मुंह बन्द करने का निश्चय किया। रानी ने जूही की सहायता के लिए कुमुक भेजी। उसी समय रानी को पता चला कि पेशवा की अधिकतर ग्वालियरी सेना विश्वासघात करके अपने सरदारों सहित अंग्रेजों से जा मिली है।

जिस बात का रानी को सन्देह था वह पूरा हो गया। अब क्या हो सकता था, विवशता थी। अब रानी के लालकुर्ती सवार तलवार खींचकर आगे बढ़े और खूब घमासान युद्ध करने लगे। इतने में ही सूचना मिली कि रावसाहब के दो मोर्चे छिन गये और अंग्रेज उन में घुसने लगे। रानी ने अपनी पैदल पलटन को आगे बढ़ने की आज्ञा दी। उधर जूही के तोपखाने पर पिल पड़े। वह भी तलवार लेकर भिड़ गई और वीरतापूर्वक बढ़ी, अन्त में मारी गई। फिर रानी ने तोपखाने का प्रबन्ध किया। इस समय स्मिथ की आज्ञा से छिपे हुए दोनों पलटनों के सैनिक संगीन लेकर रानी की पैदल पलटन पर दोनों पार्श्वों से टूट पड़े। पेशवा की पलटनें सवारों और पलटन के बीच में आकर घबराई। रानी ने प्रोत्साहित किया। उत्तेजना दी। किन्तु पेशवा की पलटनें घिर गईं। मरने लगीं। पेशवा की दो

तोपें भी अंग्रेजों ने छीन लीं। रानी की रक्षार्थ लालकुर्ती सवार अटूट शौर्य और विक्रम दिखा रहे थे। न उन्होंने कड़ाबीन की परवाह की, न संगीन का भय किया, तलवार तो उनकी मानो ईश्वरीय देन थी। वह वीरों का दल घण्टों डटकर युद्ध करता रहा। रानी अपने दक्षिणी पश्चिमी मोर्चे से मिलने के लिए मुड़ी। किन्तु उस समय रानी और मोर्चे के बीच में बहुत अंग्रेज सवार और पैदल सैनिक थे। रानी ने घोड़े की लगाम अपने दांतों में पकड़ी और दोनों हाथों से तलवार चलाकर अपना मार्ग बनाना आरम्भ किया। मुन्दर रानी के साथ थी। दोनों पार्श्वों में रघुनाथसिंह और रामचन्द्र देशमुख थे। पीछे कुंवर गुलमुहम्मद और केवल बीस पच्चीस अवशिष्ट लालकुर्ती सवार लड़ रहे थे। अंग्रेजों ने इन सब को चारों ओर से घेर लिया।

रानी की दोनों तलवारें मार्ग साफ कर रही थीं। रानी के पीछे लड़ते-लड़ते लगभग सब सवार मारे गए। उसी समय तांत्या ने अपनी रुहेली और अवधी सवारों की सहायता से अंग्रेजों के इस व्यूह पर भयङ्कर प्रहार किया। तांत्या कठिन से कठिन व्यूह में होकर बच निकलने की विद्या में पारंगत पण्डित था। अब अंग्रेज कुछ सवारों को छोड़कर तांत्या की ओर मुड़ गए। सूर्यास्त होने में कुछ थोड़ा सा समय था। लालकुर्ती का अन्तिम सवार भी मारा गया। रानी के पास अब केवल तलवारों सहित चार सरदार रह गये। उनके पीछे दस पन्द्रह गोरे सवार थे और आगे कुछ गोरे पैदल लड़ रहे थे। रानी ने पीछे देखा तो गुलमुहम्मद और रघुनाथसिंह अंग्रेज सैनिकों को भूखे शेर की भांति लड़कर कम कर रहे थे। एक ओर रामचन्द्र देशमुख दामोदर की रक्षार्थ रणकौशल दिखा रहा था। देशमुख की सहायतार्थ रानी ने देशमुख को संकेत किया और स्वयं दोनों तलवारों से शत्रु का सफाया करते हुए आगे बढ़ने लगी। एक संगीन वाले ने रानी के सीने के नीचे अपनी संगीन की हुल की वेग से चोट की। रानी की आंतें तो बच गईं किन्तु जोर का आघात पहुंचा। रानी ने उसी समय संगीन सरदार को अपने तलवार के वार से समाप्त कर दिया। रानी अब समझ गईं कि उनका स्वराज्य के लिए बलिदान होने वाला है। रानी आगे बढ़ी। उनके साथी भी पीछे-पीछे लड़ते हुए आ रहे थे। आठ दस गोरे घुड़सवार उनका पीछा कर रहे थे। रघुनाथसिंह जो पास था, उसे रानी ने कहा "मेरी देह को अंग्रेज न छूने पावें" गुलमुहम्मद ने भी सुना, वह और जोर से लड़ने लगा।

उसी समय एक अंग्रेज सवार ने मुन्दर पर पिस्तोल से वार किया। मुन्दर के मुख से केवल ये शब्द निकले "बाई साहब! मैं मरी, मेरी देह······भगवान्" अन्तिम शब्द कहते हुए वह घोड़े से नीचे गिर पड़ी। रघुनाथसिंह मुड़कर अंग्रेज सवारों पर टूट पड़ा, कई उसके वारों से मारे गए। मुन्दर को मारने वाला भी मारा गया। उसने मुन्दर के शव को नीचे उतरकर उठाकर, अपना साफा फाड़ बांधकर घोड़े पर सवार होकर आगे बढ़ा। गुलमुहम्मद शेष सवारों से उलझ गया। रानी ने सोनरेखा नाले की ओर घोड़े को बढ़ाया। देशमुख साथ था। गुलमुहम्मद शेष पांच अंग्रेज सवारों को झांसा देकर रानी के पास पहुंच गया। रानी बड़े वेग से नाले के तट पर आगई। घोड़ा अड़ गया। रानी ने पुचकारा किन्तु सब यत्न व्यर्थ गये। वह आगे नहीं बढ़ा। वे अंग्रेज सवार भी आ पहुंचे। एक गोरे ने पिस्तोल से रानी पर वार किया। गोली उसकी बाईं जांघ में लगी। खून की धारा फूट निकली। रानी ने बायें हाथ की तलवार फेंककर अपना आसन सम्भाला, बायें हाथ से घोड़े की लगाम पकड़ी। इतने में वह गोरा पास आ पहुंचा। रानी ने दायें हाथ के तलवार के वार से उसे समाप्त कर दिया। उस वार के पीछे एक अंग्रेज और आगे बढ़ा। रानी ने फिर घोड़े को आगे बढ़ाने के लिए एक पैर की एड़ लगाई। किन्तु वह निकृष्ट घोड़ा दोनों पैरों से खड़ा हो गया। घोड़ा किसी प्रकार भी, बहुत

प्रयत्न करने पर भी आगे नहीं बढ़ा। रानी के पेट और जांघ के घाव से खून की धारा बड़े वेग से बह रही थी। गुलमुहम्मद आगे बढ़े हुए अंग्रेज सवार की ओर लपका, किन्तु अंग्रेज सवार गुलमुहम्मद के वहां पहुंचने से पूर्व अपनी तलवार का वार रानी के सिर पर कर चुका था। इस भयंकर वार से रानी के सिर का दायां भाग कट गया और दाईं आंख बाहर निकल आई। इस पर भी रानी ने अपनी तलवार के वार से अपने घातक का कन्धा काट दिया। गुलमुहम्मद ने अपने तलवार के एक भरपूर वार से उसके दो टुकड़े कर डाले। बाकी दो तीन अंग्रेज सवार बचे थे उन पर गुलमुहम्मद विद्युत् गति से पिल पड़ा। उसने एक को घायल कर दिया, दूसरे के घोड़े को अधमरा कर डाला, ये तीनों मैदान छोड़कर भाग गये।

झांसी की रानी का अमर बलिदान

अब वहां कोई शत्रु नहीं था। रानी को घोड़े से गिरने से रोकने के लिए रामचन्द्र देशमुख पकड़े हुए था। रघुनाथसिंह और देशमुख ने रानी को घोड़े से सम्भाल कर उतारा और आवेश में आकर उस अड़ियल घोड़े को एक लात मारी, वह वहां से भाग गया।

इधर गुलमुहम्मद दिन भर का युद्ध से थका-मांदा भूखा-प्यासा धूल और खून से लथपथ रानी को देखकर बच्चों के समान बिलख-बिलख कर रोने लगा। रानी को अपने घोड़े पर रखकर बहुत ही शीघ्र गंगादास की कुटिया पर देशमुख और रघुनाथसिंह जी ले आये। देशमुख का गला रुन्धा हुआ था। उधर बालक दामोदर अपनी माता को देखकर रो रहा था। रामचन्द्र ने उसे पुचकारा, समझाया, "रोओ मत दवा करेंगे ठीक हो जायेगी।

सूर्यास्त होने वाला था। बाबा गंगादास ने उन्हें पहचान कर कहा—"सीता वा सावित्री के देश की ये लड़कियां हैं।" रानी के पानी मांगने पर बाबा गंगादास उसी समय गंगाजल (पानी) ले आया और रानी को पिलाया, उसको कुछ चेतना आई। फिर मुख के पीड़ित स्वर से हर हर महादेव करती हुई फिर अचेत हो गई। मुन्दर के मुख में भी कुछ बूंदें डालीं। उसका प्राणान्त हो चुका था। बाबा गंगादास ने पहचान कर कहा यह कई वार लक्ष्मीबाई के साथ मेरी कुटिया पर आई थी।

रानी को फिर एक वार चेतना आई और उस के मुख से "ओ३म् वासुदेवाय नमः" निकला और इसी के साथ झांसी का सूर्य भी अस्त हो गया। सब बिलख-बिलख कर रोने लगे। बाबा गंगादास के समझाने पर वे दाहकर्म की तैयारी करने लगे। बाबा की कुटिया को उधेड़, घास की गञ्जी पर लकड़ियों से चिता बनाई और महारानी लक्ष्मीबाई तथा उसकी सखी मुन्दर के शव को रखकर अग्नि संस्कार कर दिया। अपनी और रघुनाथ की वर्दी भी चिता पर रख दी। थोड़ी देर में दोनों शव जलकर भस्मसात् हो गये।

देशमुख रामचन्द्र दामोदर को घोड़े की पीठ पर बांध दक्षिण को चला गया। रघुनाथसिंह रानी की खोज में आने वाले अंग्रेजों से लड़ने के लिए बैठ गया। पठान गुलमुहम्मद जो कभी ५०० पठान लेकर महारानी के पास झांसी में आया था, आज अकेला रह गया। वह फकीर बनकर चिता के पास ही सो गया। केवल एक लंगोटी लगाकर वहीं कुटिया के पास रहा, अपनी वर्दी चिता में फेंक दी। रघुनाथसिंह अंग्रेजों के साथ लड़ता-लड़ता मारा गया।

अगले दिन जब गुलमुहम्मद सोकर उठा। चिता शान्त हो चुकी थी। उसने उस पर ईंटों से एक चबूतरा बनाया और उस पर कहीं से फूल लाकर चढ़ा दिए। अंग्रेज सैनिकों का एक दल उधर रानी की खोज में आया और पूछने लगा यह कैसा चबूतरा है? गुल मुहम्मद जो फकीर बना हुआ था, उसने बता दिया कि यह हमारे पीर साहब का मजार है।

तांत्या टोपे और नाना साहब

तांत्या टोपे का जन्म पूना में महाराष्ट्र प्रान्त में हुआ। यह अत्यन्त कुशाग्रबुद्धि का असाधारण व्यक्ति था। मराठी की शिक्षा प्राप्त करके संस्कृत का अध्ययन करने लगा। थोड़े ही समय में उसने देववाणी का अच्छा ज्ञान प्राप्त कर लिया। रामायण, महाभारत आदि अपने प्राचीन इतिहास को वह बड़ी श्रद्धा से पढ़ता था। वीर पुरुषों के जीवन चरित्र पढ़ने में उसे बड़ा आनन्द आता था। वह भारत की उस समय की दरिद्रता, पराधीनता और भीरुता को देखकर बड़ा दु:खी होता था। प्राचीन भारत के गौरव की तत्कालीन देश की पतित अवस्था से तुलना करके कई बार वह निराशा के चक्र में फंसने को होता था किन्तु उसी समय वीर शिवाजी आदि आदर्श वीरों का जीवन उसकी निराशा का नाश कर उसे फिर से उत्साह और वीरता से परिपूरित कर देता था, अतः तांत्या बाल्य-काल से ही आदर्श वीर सैनिक बनने की धारणा कर चुका था किन्तु इस इच्छा को पूर्ण करने के लिए उसके पास साधनों का अभाव था। उसके पितामह पेशवा के अत्यन्त विश्वासपात्र रह चुके थे। उस समय इसके परिवार की अवस्था अच्छी न थी। अब पेशवाओं का भी वह समय नहीं था। इनके पिता की मृत्यु हो गई थी। इसके अतिरिक्त वृद्ध माता का और कोई आश्रय नहीं था। यह अपनी ध्रुव धारणा "कि समय अनुकूल आने पर विदेशी अत्याचारी अंग्रेजों को भारत से निकाल कर पूर्ण स्वतन्त्र और समृद्ध करूंगा" के कारण विवाह के बन्धन में फंसना नहीं चाहता था। वह भलीभांति जानता था कि विवाह के चक्र में फंसकर देश को स्वतन्त्र करने की यह दृढ़ धारणा व्यर्थ ही रह जायेगी। किन्तु माता के मोह में फंस गया, उसके विवाह के आग्रह को टाल न सका। इस गृहस्थ की दल-दल में फंसकर कुछ समय के लिए वह अपने मुख्य ध्येय से दूर होगया। परिवार के निर्वाह के लिए इधर उधर मारा-मारा फिरा। कोई नौकरी नहीं मिली। इसी चक्र में वह नाना साहब पेशवा के पास बिठूर में पहुंचा। उन्होंने प्रेम से इसे अपने पास रख लिया। थोड़े ही समय में तांत्या की असाधारण योग्यता ने नाना साहब को मन्त्र-मुग्ध कर दिया। उन्होंने शीघ्र ही इसे अपना सेनापति बना लिया। उस समय अंग्रेजों के अत्याचार भारत में विद्रोह की अग्नि को भड़का रहे थे। अंग्रेज अफसरों के अत्याचारों के कारण भारतीय सिपाहियों और जनता में क्रोधाग्नि भयङ्कर रूप धारण कर रही थी। प्रतीकार की भावना ने लोगों को उन्मत्त कर दिया। देश में अनेक साधु-संन्यासी, घूम-घूमकर स्व-तन्त्रता की भावना फूंक रहे थे। तांत्या समान वीर योद्धा भी देशभक्त राजा-महाराजाओं, नवाबों, जागीरदारों तथा सैनिकों को देश के स्वतन्त्रता-युद्ध के लिए सन्नद्ध तथा सुसंगठित कर रहा था। जिस सुवर्णावसर की खोज वा प्रतीक्षा वीर तांत्या टोपे कर रहा था, वह आन पहुंचा। तांत्या इसी अनुकूल अवसर के लिए शक्ति संचय कर रहा था। नाना साहब को वह पहले से ही इस स्वतन्त्रता युद्ध के लिए तैयार कर रहा था। नाना साहब स्वयं भी बहुत योग्य थे, इस पर तांत्या की अपूर्व योग्यता, असाधारण शौर्य, वीरता और विचित्र सैन्य संचालन शक्ति ने नाना साहब के यश और कीर्ति को चारों दिशाओं में खूब फैला दिया। इस स्वतन्त्रता युद्ध में जो श्रेय नाना साहब को मिला उसका मुख्य कारण उसके चतुर और वीर सेनापति तांत्या का अपूर्व पराक्रम ही था। इस युद्ध की सारी योजना बिठूर में ही बनाई थी। इस योजना के बनाने में तांत्या का पूरा हाथ था। सन् ५७ की

क्रांति के मुख्य नेताओं में भी नाना साहब तथा इनके सेनापति तांत्या टोपे मुख्यतम थे। इस योजना को पूर्ण करने के लिए सारे भारतवर्ष में एक विशाल संगठन किया गया था। इस संगठन के निर्माण में तांत्या टोपे ने घोर परिश्रम किया था। एतदर्थ इसने लगभग सारे ही देश में अनेक वर्ष रात-दिन यात्रा की थी। क्रांति के समय जो सफलता तथा प्रसिद्धि तांत्या ने प्राप्त की उसका मुख्य कारण उसकी योग्यता ही थी। वह लोगों को मिलना खूब जानता था, उसका विरोधी उससे कुछ समय बातें करके वश में हो जाता था। विरोधियों की सेना को तोड़कर अपने पक्ष में करना उसे खूब आता था। उसके अपने सैनिक तो सर्वथा उसकी आज्ञानुसार चलते थे। शत्रु भी उसकी योग्यता से चकित थे। वह उस समय के योग्यतम सेनापतियों में से था। इसकी योग्यता क्रान्ति के समय खूब चमकी। जब मेरठ, दिल्ली, इलाहाबाद आदि स्थानों पर क्रान्तिकारियों का राज्य हो गया, उस समय तांत्या टोपे नाना साहब के दरबार बिठूर में था। दिल्ली की स्वाधीनता की सूचना नाना साहब को १५ मई को मिली, उस समय कानपुर में अंग्रेजी सेना का सेनापति सर ह्यू ह्वीलर तीन सहस्र सैनिकों की सेना सहित विद्यमान था। एक सौ अंग्रेज सिपाही भी उसके साथ थे। उसे १८ मई को दिल्ली का समाचार मिला। कानपुर की जनता तथा देशी सेना के सिपाही भी तैयार थे। गुप्त तथा प्रकट रूप में क्रांति के लिए सभायें होने लगीं। नाना साहब के पास घबराकर अंग्रेज सेनापति ने सन्देश भेजा कि आप कानपुर की रक्षार्थ स्वयं पधारें और अंग्रेजों की सहायता करें। २२ मई को नाना साहब थोड़ी सी सेना तथा दो तोपों सहित कानपुर में आये। व्हीलर ने खजाना नाना साहब को सौंप दिया। अपना मेगजीन भी अंग्रेज सेनापति ने नाना साहब को सौंप दिया। नाना साहब पर अंग्रेज अब भी विश्वास करते थे। यथार्थ बात तो यह है कि अंग्रेज कानपुर में इतने डरे हुए थे कि २४ मई को मुसलमानों की रमजान के बाद ईद थी। उसी दिन विक्टोरिया महारानी का जन्मदिवस था। उसके उपलक्ष्य में सदा तोपों की सलामी दी जाती थी, किन्तु कभी भारतीय सिपाही विद्रोह न कर डालें अतः इस डर से तोपें नहीं छोड़ी गईं। अंग्रेजों के बाल-बच्चे सब डर के कारण नए किले में जमा थे जो नाना साहब ने अंग्रेजों द्वारा उन्हीं दिनों बनवाया था। ३१ मई तक तो चुप रहने का निश्चय कर रखा था। किन्तु नाना साहब अपने साथियों के साथ किश्तियों में बैठकर कुछ घण्टे तक गुप्त मन्त्रणायें करते रहते थे। तांत्या सब मन्त्रणाओं में साथ रहता था। उधर सर व्हीलर ने गंगा के दक्षिण में एक नया स्थान बनाकर किलाबन्दी करली, उसी में रक्षा के साधन जुटा रहा था। कुछ सेना लखनऊ से व्हीलर की सहायतार्थ और पहुंच गई। क्रांतिकारी अपनी तैयारी वहां पूर्ण कर चुके थे। देशी सिपाहियों की सेना क्रांतिकारियों का साथ देने का विश्वास दिला चुकी थी, यहां तक कि गुप्तमन्त्रणा में कम्पनी की देशी सेना के मुख्य नेता सूबेदार टीकासिंह और शम्सूद्दीन नाना साहब के साथ रहते थे। अजीमुल्लाखां, ज्वालाप्रसाद और मोहम्मद अली आदि अनेक नाना साहब के विश्वस्त साथियों में थे। कानपुर की छावनी में ४ जून की आधी रात को तीन फायर हुए। सैनिकों को क्रांति करने की यह पूर्व निश्चित सूचना थी। सब से आगे कम्पनी की सेना के सूबेदार टीकासिंह घोड़े पर सवार होकर लपके। पीछे-पीछे सैकड़ों सवार और सेना के हजारों पदाति सैनिक थे। अंग्रेजों के मकानों में आग लगा दी गई। अंग्रेजी झण्डे गिराकर सर्वत्र हरे झण्डे फहरा दिए। अपने सब साथी सैनिकों को भी सूचना दे दी। नाना साहब की सेना के सिपाही भी क्रांतिकारियों के साथ मिलकर कार्य कर रहे थे। ५ जून को कम्पनी का मेगजीन तथा खजाना भी क्रांतिकारियों ने सर्वथा अपने कब्जे में कर लिया। भारतीय सेना तथा नगर निवासियों ने मिलकर नाना साहब को अपना राजा चुन

दिल्ली सम्राट् के हरे झण्डे का जलूस बड़े समारोह से सारे
लिया। ५ जून को ही हाथी के ऊपर दिल्ली सम्राट् की सब आज्ञाओं का पालन हर्ष तथा श्रद्धापूर्वक
नगर में निकाला गया। नगर निवासी नाना साहब की सब आज्ञाओं का पालन हर्ष तथा श्रद्धापूर्वक
करते थे। ६ जून को नाना साहब ने अंग्रेज सेनापति को चेतावनी दी कि आज आप किला हमें सौंप
दें नहीं तो सायंकाल किले पर चढ़ाई कर दी जायेगी। सायंकाल क्रांतिकारी सेना ने अंग्रेजी किले को
घेर लिया। प्रायः सभी अंग्रेज आबाल वृद्ध वनिता किले में थे। कोई एकाध भूला-भटका शहर में
में गया था, वह मारा गया। नाना साहब के पास भी पर्याप्त तोपें थीं अतः नाना साहब की तोपों
ने किले पर गोले बरसाने प्रारम्भ कर दिए, जिससे किले के अन्दर अंग्रेज बड़ी तेजी से मरने लगे।
उनका दफनाना भी कठिन हो गया। किले में एक ही जल पीने का कुंआ था, नाना साहब की सेना
ने ऐसे ढंग से गोले बरसाये कि अनेक अंग्रेज पानी न मिलने के कारण तड़फने लगे। २१ दिन तक यह
गोलाबारी चलती रही। वे ज्वर, हैजे आदि रोगों से मरने लगे। अंग्रेज भी किले की दीवारों से खूब
गोलाबारी कर रहे थे। घेरा किले का बड़ा सख्त था फिर भी अंग्रेज कम्पनी का कोई भारतीय
नौकर गुप्त रूप से बचकर (रक्षार्थ पत्र लेकर) लखनऊ पहुंच गया। नाना साहब को भी किले के
अन्दर के समाचार अपने गुप्तचरों द्वारा मिलते रहते थे। नाना साहब के आस-पास के जमींदार
जन और धन से जी खोलकर सहायता कर रहे थे। नाना साहब के पास चार सहस्र के लगभग सेना
थी। कानपुर के स्त्री-पुरुष सभी जी जान से सर्व प्रकार की सहायता कर रहे थे। यहां तक कि
अजीजन नामक वेश्या भी हथियार बांधे घोड़े पर सवार हो सबको उत्साहित करती फिरती थी।
सभी निर्भय होकर युद्ध में जुटे हुए थे। नाना साहब ने शहर का भी प्रबन्ध कर रखा था। सर्वसम्मति
से हुलासंसिह को मुख्य न्यायाधीश नियुक्त किया, फौज के सामान का कार्य एक मुल्ला नाम के व्यक्ति
को सौंप रखा था। दीवानी के अभियोगों के निर्णय के लिए नाना साहब, अजीमुल्लाखां, ज्वाला-
प्रसाद तीनों को मिलाकर न्यायालय बनाया गया, अपराधियों को यथोचित दण्ड दिया जाता था, नगर
में पूर्ण सुख-शान्ति थी। १८ जून और २३ जून को घोर संग्राम हुआ, विवश होकर २५ जून को जनरल
व्हीलर ने किले पर सन्धि का सफेद झण्डा गाड़ दिया। २६ तारीख को दोनों ओर के प्रतिनिधि इकट्ठे
हुए। अजीमुल्ला जो अंग्रेजी भाषा का अच्छा ज्ञाता था, उसने अंग्रेज प्रतिनिधियों को हिन्दी भाषा में
बातचीत के लिए विवश किया। वार्तालाप के पश्चात् किला, तोपखाना, अस्त्र-शस्त्र नाना के हवाले
कर दिए। नाना साहब ने वचन दिया कि सब अंग्रेजों को भोजन आदि व्यय देकर किश्तियों द्वारा
इलाहाबाद भेज दिया जायेगा। ४० किश्तियों तथा आवश्यक सामान का प्रबन्ध कर दिया गया।
प्रातःकाल सब अंग्रेजों को हाथियों और पालकी में बैठाकर किले से डेढ़ मील दूर सतीचौरा घाट पर
जहां नौकायें तैयार थीं पहुंचा दिया। किले पर से अंग्रेजी झण्डा उतारकर सम्राट् का हरा झण्डा
फहरा दिया। २७ जून को प्रातःकाल दस बजे किश्तियां सतीचौरा घाट से चलने वाली थीं, नाना
साहब अपने महल में थे। घाट पर देशी सिपाहियों और जनता की भीड़ थी, वहां पर ऐसे लोग भी
पहुंच गये थे, इलाहाबाद के निकट जनरल नील, अंग्रेज सेनापति ने जिनके स्त्री-बच्चों, सगे
सम्बन्धियों तथा घर को जलाकर भस्मात् कर दिया था। ऐसे अत्याचार से पीड़ित लोगों में से किसी
एक ने करनल इवर्ट पर हमला कर दिया, मार-काट हो गई। ज्यों ही नाना साहब को ज्ञात हुआ,
उन्होंने तुरन्त आदेश दिया "अंग्रेज पुरुषों को मारो किन्तु स्त्रियों और बच्चों को कोई हानि न
पहुँचाओ।" नाना जी की आज्ञा मिलते ही १३५ अंग्रेजी स्त्रियां और बच्चे कैद करके उनको सौदा
कोठी पहुंचा दिया और अंग्रेज पुरुषों की लाइन बांध कर सतीचौरा घाट पर खड़ा किया गया। एक

पादरी ने ईश प्रार्थना के लिए आज्ञा मांगी, उसे आज्ञा दे दी गई। उस पादरी ने इञ्जील में से सब अंग्रेजों को प्रार्थना पढ़कर सुनाई, प्रार्थना कर चुकने के बाद सब अंग्रेजों के सिर तलवार से काट दिए। किसी प्रकार चार अंग्रेज बचकर किश्ती में बैठकर भाग गये। स्त्री बच्चे नाना की उदारता से बच गये। यह सतीचौरा घाट का हत्याकाण्ड जनरल नील के घोर अत्याचारों के कारण हुआ। नाना साहब का इसमें कोई दोष नहीं। अंग्रेजों के अत्याचारों ने लोगों को पागल बना रखा था।

कैदी अंग्रेज स्त्री बच्चों के साथ नाना का व्यवहार अत्यन्त उदार था। भोजन के लिए दूध, रोटी, मांस का प्रबन्ध था। न उनसे कड़ा कार्य लिया जाता था। तीन-तीन बार वायु सेवन के लिए उन्हें बाहर जाने की आज्ञा थी, साफ वस्त्र दे रखे थे और सेवा के लिए नौकरों का प्रबन्ध था। अंग्रेज इतिहासकार भी ऐसा ही मानते हैं। कानपुर नगर छावनी तथा आस-पास के प्रान्त में से अंग्रेजो राज के सभी प्रकार के चिह्न समाप्त करके नाना साहब धोन्धोपन्त ने बड़ा दरबार २८ जून १८५७ को कानपुर में किया। सारी सेना, आस-पास के जमींदार और असंख्य जनता ने दरबार में बड़े उत्साह से भाग लिया। पहले सम्राट् बहादुरशाह के नाम पर तथा नाना साहब के सम्मानार्थ बम व तोपें छोड़ी गईं। एक लाख रुपया फौज में पारितोषिक के रूप में बांटा गया। फिर नाना साहब विठूर चले गये। वहां पहली जुलाई १८५७ को नाना साहब विधिवत् गद्दी पर बैठे। इस ५७ की क्रांति में कुछ समय के लिए पेशवा की सत्ता पुनः जीवित हो गई। जिस समय कानपुर के समाचार इलाहाबाद पहुंचे जनरल नील ने मेजर रिनाडा के अधीन सेना कानपुर भेजी। वह सेना अत्याचारी जनरल नील के आदेशानुसार मार्ग में आने वाले ग्रामों में आग लगाती हुई और कत्लेआम करती हुई आगे बढ़ी। जब कानपुर में अंग्रेजी सेना की हार और सतीचौरा घाट का समाचार इलाहाबाद पहुंचा तो जनरल हैवलाक भी अंग्रेज और सिख सेना व तोपखाने सहित कानपुर की ओर बढ़ा। आगे चलकर इसकी सेना रिनाडे के साथ मिल गई। मार्ग में सार्वजनिक वध ग्रामों व पशुओं के जलाने का कार्य पूर्ववत् जारी रहा। एक अंग्रेज जो इस यात्रा में सेना के साथ था, जिसका नाम सर चार्ल्सडिल्क है, लिखता है "इस कूच में गांव के गांव क्रूरता के साथ जला डाले गये और इस क्रूरता के साथ निर्दोष ग्रामवासियों का संहार किया गया कि जिसे देखकर एक बार मोहम्मद तुगलक भी शरमा जाता।"

नाना साहब की सेना जो ज्वालाप्रसाद और टीकासिंह के अधीन थी, अंग्रेजों से लड़ने के लिए आगे बढ़ी। १२ जुलाई को फतेहपुर के निकट दोनों का घोर संग्राम हुआ। नाना की सेना थोड़ी थी, उसकी हार हुई। अंग्रेजों की सेना फतेहपुर नगर में घुस गई। फतेहपुर नगर स्वाधीन हो चुका था, कुछ अंग्रेज अफसर भी यहां मारे गये थे। एक अंग्रेज मैजिस्ट्रेट शरेर को यहां प्राणदान देकर छोड़ दिया था वह भी अब अंग्रेज सेना के साथ था। अब हैवलाक और शरेर ने पहले तो नगर को खूब लुटवाया फिर सारे नगर तथा नगरवासियों को इसी के अन्दर जलाकर भस्मसात् कर दिया। इस भयानक अत्याचार के समाचार कानपुर पहुंचे। नाना साहब अपनी सेना सहित इन क्रूर अंग्रेजों से लड़ने को तैयार ही था। कानपुर के निकट दोनों का घोर संग्राम हुआ। किन्तु हैबलाक की विशाल सेना का प्रतिरोध नाना साहब की थोड़ी सी सेना कब तक करती। अतः विवश होकर नाना साहब सेना सहित विठूर को ओर चला गया। १७ जुलाई को हैबलाक की विजयी सेना कानपुर में घुसी। जनरल सर व्हीलर का बदला सार्वजनिक लूट और कत्ल से लिया गया। चार्ल्सवाल लिखता है— "भारतीयों के समूह के समूह फांसी पर लटकाये गये। मृत्यु के समय कुछ क्रांतिकारियों ने

(योगी समान) जिस प्रकार चित्त को शान्ति और अपने व्यवहार में ओज का परिचय दिया वह उन लोगों के सर्वथा योग्य था जो कि किसो सिद्धांत के नाम पर शहीद होते हैं।" इस लूट और फांसियों के अतिरिक्त एक विशेष कार्य जनरल हैबलाक ने यहां और किया। बीबोगढ़ में भूमि पर एक खून का बड़ा धब्बा था, सन्देह था यह खून अंग्रेजों का है। नगर के अनेक ब्राह्मणों को वह खून बलात् चटवाया और फिर झाड़ू से धुलवाकर साफ करवाया, तत्पश्चात् उन्हें फांसी पर लटकाया गया। उस समय के अंग्रेज अफसर ने कहा—"मैं जानता हूं कि फिरंगियों के खून को जबान से चाटने और मेहतर की झाड़ू से साफ करने से एक उच्च जाति का हिन्दू अपने धर्म से पतित हो जाता है। अतः ऐसा जानकर कराता हूं।" जब तक हम उन्हें फांसी देने से पहले उनके समस्त धार्मिक भावों को पैरों तले न कुचल लेंगे तब तक हम पूरा बदला नहीं ले सकते। ताकि उन्हें सन्तोष न हो सके कि हम हिन्दू धर्म पर कायम रहते हुये मरे। सतोचौरा घाट पर जिन अंग्रेजों को मारा उन्हें कम से कम मरने से पूर्व उनको इच्छानुसार इञ्जील का पाठ करने का अवसर दे दिया गया था।

नाना साहब बिठूर छोड़कर अपने खजाने और सेना सहित गंगा पार कर फतेहगढ़ की ओर चला गया। जब हैबलाक कानपुर का सर्वनाश करके मार्ग में सर्वनाश करता हुआ लखनऊ की ओर बढ़ रहा था और मंगलवार में हा पहुंचा था तो नाना साहब ने फिर एक बार कानपुर पर हमला करने की तैयारी शुरु की। अतः इस डर से हैबलाक आगे नहीं बढ़ा, उसे मंगलवार में ही ठहरना पड़ा। २६ जुलाई को चला हुआ हैबलाक ११ अगस्त तक मंगलवार से आगे न बढ़ सका। मार्ग में अवध निवासी ग्रामीणों से भयङ्कर संग्राम करना पड़ा, उसकी सेना का छठा भाग मार्ग में समाप्त हो गया। ग्रामीणों के इस वीरतापूर्वक पराक्रम को देखकर इतिहास लेखक लिखता है—"कम से कम अवध निवासियों के संग्राम को हमें स्वाधीनता का युद्ध मानना पड़ेगा।" गांव वालों ने हैबलाक को आगे नहीं बढ़ने दिया। इस बीच में तांत्या के विशेष प्रयत्न से नाना साहब को सागर, ग्वालियर इत्यादि स्थानों से पर्याप्त सहायता मिल चुकी थी। नाना ने फिर गङ्गा पार कर एक बार कानपुर पर धावा बोल दिया। जनरल नील कानपुर में था। सूचना मिलते ही हैबलाक सेना सहित नील की सहायतार्थ कानपुर लौट गया। इसी बीच नाना साहब ने बिठूर पर फिर कब्जा कर लिया था। १७ अगस्त को हैवलाक ने नाना साहव की सेना पर फिर चढ़ाई की एक घोर संग्राम के पश्चात् दोनों ओर की सेनायें कुछ पीछे हट गईं। अब हैवलाक को पता चला कि नाना ने एक अधिक विशाल सेना जमना के किनारे कालपी में जमा कर रखी है। यदि हैबलाक लखनऊ की ओर बढ़ता तो नाना साहव लखनऊ पर कब्जा कर लेते। हैबलाक घबरा गया, उसने कलकत्ता से अपनी सहायता और सेना भेजने के लिये लिखा। जब अंग्रेज लखनऊ पर हमला कर रहे थे, इसी समय में तांत्या टोपे ने अंग्रेजों की सेना को हराकर कानपुर पर अपना कब्जा कर लिया। चैम्पवेल ऊटारम को लखनऊ में छोड़कर स्वयं कानपुर विजय करने के लिए चल दिया। इस समय फिर घोर संग्राम हुआ, इसमें अंग्रेज जीत गये। नाना साहव अपने भाई बाला साहब, भतीजे रावसाहब, सेनापति तांत्या टोपे, घर की स्त्रियों और खजाने सहित बिठूर से निकलकर फतेहपुर चला गया। नाना साहब ने तांत्या टोपे को शिवराजपुर भेजा, वहां पहुंचकर तांत्या टोपे ने ४२ नं० कम्पनी की देशी पलटन को तोड़कर अपनी ओर कर लिया और इस पलटन की सहायता से फिर एक बार बिठूर पर जाकर कब्जा कर लिया। हैवलाक लखनऊ जाना चाहता था। तांत्या ने पीछे से इनके ऊपर आक्रमण कर दिया। उसने लखनऊ जाने का विचार छोड़ दिया। इस बार फिर तांत्या से हैबलाक का युद्ध हुआ। ताँत्या की

सेना हार गई। तांत्या टोपे बचकर सेना सहित नाना के पास फतेहपुर पहुंच गया। इसके बाद तांत्या गुप्त रीति से ग्वालियर पहुंचा। ग्वालियर के निकट मुपर की छावनी में सींधिया की विशाल सेना थी। इस सेना को तोड़कर अपनी ओर मिला लिया। इसमें सवार, पलटनें तथा तोपखाना भी था, सब को साथ लेकर कालपी पहुंचे। कालपी का किला कानपुर से ४६ मील दूर यमुना पार था। इसे युद्ध की दृष्टि से मत्त्हवपूर्ण स्थान समझकर कालपी के किले पर तांत्या ने ९ नवम्बर को कब्जा कर लिया। अब नाना ने कालपी को अपना केन्द्र बनाया। नाना साहब को वहां पर नियुक्त किया और तांत्या कालपी से सेना लेकर फिर कानपुर की ओर बढ़ा। निःसन्देह शौर्य पराक्रम, स्फूर्ति, अन्य शत्रुओं को अपने पक्ष में करने की शक्ति तांत्या में कूट-कूट कर भरी हुई थी। जनरल बिनढम कानपुर में था। तांत्या ने उसे चारों तरफ से घेर लिया। बाहर से सामग्री की सहायता सर्वथा बन्द थी। बिनढम अपनी सेना सहित कानपुर से युद्धार्थ बाहर निकला। २६ नवम्बर को घमासान युद्ध थाण्ड नदी पर हुआ। तांत्या की इस दिन युद्ध में पर्याप्त हानि हुई। किन्तु बड़ा कुशल सेनापति था, शत्रु की निर्बलता को समझ गया। तांत्या की योग्यता को बिनढम इतिहास लेखक मालसेन अंग्रेज लिखता है—"विद्रोही सेना का नेता मूर्ख न था, बिनढम ने उसे जो हानि पहुंचाई उससे डर जाने के स्थान पर वह अंग्रेज सेनापति को अच्छी प्रकार से समझ गया। तांत्या टोपे ने उस समय बिनढम की स्थिति और उसकी आवश्यकता को इतनी अच्छी प्रकार पढ़ लिया, जिस प्रकार कोई खुली हुई पुस्तक को पढ़ लेता है। तांत्या में एक सच्चे सेनापति के स्वाभाविक गुण विद्यमान थे। उसने बिनढम की इन कमजोरियों से लाभ उठाने का निश्चय कर लिया।" अगले दिन तांत्या की सेना ने बिनढम की सेना को तीन ओर से घेर पीछे हटाना प्रारम्भ किया। यहाँ तक कि बढ़ते-बढ़ते आधा कानपुर तांत्या की सेना के कब्जे में आ गया। तीन दिन के निरन्तर संग्राम के पीछे सारा नगर तांत्या टोपे ने जीत लिया। बिनढम की सेना ने हार पर हार खाई और मैदान छोड़कर भाग गई। अंग्रेज सेना के अनेक अच्छे अफसर मारे गए। अंग्रेज सेना की पराजय के विषय में एक अंग्रेज ने इस प्रकार लिखा है—

"इन भारतवासियों ने जिन्हें हम तुच्छ समझ रहे हैं और चिढ़ाते रहे हैं, अंग्रेजी सेना, उसका कैम्प, उसका सामान और मैदान सब कुछ छीन लिया। शत्रु को अब यह कहने का अधिकार हो गया कि फिरङ्गी पिट गये। ये पिटे हुए फिरङ्गी अपनी खाइयों में लौट आये, उनके खेमे उलट दिए गए, सामान छीन लिया गया, घोड़े हाथी सब कुछ ले लिया। यह समस्त घटना अत्यन्त शोक-जनक और लज्जास्पद हुई।" चारलैस बाल भर कालिन कैम्पबैल लखनऊ से कानपुर को चल दिया। तांत्या टोपे ने अंग्रेज सेना को रोकने के लिए गंगा का पुल तोड़ दिया, गंगा के ऊपर तोपें लगा दीं। इस समय नाना साहब भी तांत्या की सहायतार्थ कानपुर पहुंच गये। सर कैम्पबैल तांत्या की तोपों से बचकर अन्य स्थान से गंगा पार कर ३० नवम्बर को कानपुर के निकट पहुंच गया। मालसेन लिखता है—सेनापति के रूप में तांत्या टोपे की स्वाभाविक योग्यता बहुत ही बढ़ी-चढ़ी हुई थी। गंगा के किनारे ही उसने कैम्पबैल की सेना को घेर लिया, पर्याप्त दिनों तक घोर संग्राम होता रहा। अंग्रेजों की विजय हुई। कानपुर पुनः उनके हाथ में आ गया। तांत्या सेना सहित कालपी की ओर चल दिया। अंग्रेजी सेना ने उसका पीछा किया। शिवराजपुर में फिर युद्ध हुआ। तांत्या बचकर सेना सहित कालपी की ओर चला गया। अंग्रेजों के हाथों में कानपुर फिर आ गया। इस बार सर कालिन कैम्पबैल ने नाना साहब के बिठूर के महलों को गिराकर जमीन में मिला दिया। एक लेखक

@VaidicPustakalay

श्री आनन्दीप्रसाद मिश्र ने इस विषय में इस प्रकार लिखा है कि—

नाना साहब की पुत्री मैना

"अंग्रेज सेनापति ने बिठूर में जाकर नाना साहब के महलों को लूटा, फिर महलों को तोपों के गोलों से उड़ाने का निश्चय किया। उस समय नाना साहब की अत्यन्त सुन्दर बालिका बरामदे में आकर खड़ी हो गई और उसने सेनापति को गोले बरसाने से मना किया। उसे देखकर सेनापति ने आश्चर्य किया, क्योंकि महलों को लूटते समय वह बालिका कहीं भी दिखाई नहीं दी थी। जिस समय नाना साहब कानपुर छोड़ कर गये, अपनी पुत्री मैना को जो बिठूर के महलों में रहती थी साथ न ले जा सके। उस अल्पवयस सुन्दर, करुणापूर्ण मुख वाली बालिका को देखकर सेनापति को भी दया आई, उसने मैना से पूछा कि आप क्या चाहती हैं ? बालिका ने शुद्ध अंग्रेजी भाषा में उत्तर दिया—"मेरे पिता जी ने आपके विरुद्ध शस्त्र उठाये हैं, वे दोषी हैं किन्तु इस जड़ पदार्थ मकान ने आपका क्या बिगाड़ा है ? यह स्थान मुझे बहुत प्रिय है, इस मकान की आप रक्षा करें।" इसके पश्चात् मैना कुमारी ने कहा—"मैं जानती हूं कि आप जनरल हैं, आपकी प्यारी कन्या "मेरी" मेरी सहेली थी। वह मुझे हृदय से चाहती थी। उस समय आप भी हमारे यहां आते थे और आप मुझे अपनी पुत्री के समान ही प्यार करते थे। आप वे सब बातें भूल गये हैं, मेरी की मृत्यु से मैं बहुत दुःखी हुई थी, उसका एक पत्र अब तक मेरे पास है।" यह सुनकर सेनापति को बड़ा आश्चर्य हुआ। वह नाना साहब की कन्या मैना को पहचान गया। उसने कहा—"सरकार की आज्ञा है कि नाना साहब का कोई चिह्न शेष नहीं रहना चाहिए। फिर भी मैं तुम्हारी रक्षा का प्रयत्न करूंगा।" उसी समय प्रधान सेनापति आऊटरम वहां पहुंचा, उसने बिगड़कर कहा कि अभी तक ये महल क्यों नहीं उड़ाये। जनरल ने विनयपूर्वक कहा—"क्या किसी प्रकार नाना साहब का महल बच सकता है।" आऊटरम ने उत्तर दिया कि गवर्नर जनरल तथा लन्दन के मन्त्रीमण्डल का यह मत है कि नाना का कोई चिह्न शेष न रहे, सब नष्ट-भ्रष्ट कर दिया जाये। सेनापति मन में दुखी होकर चला गया। उसी दिन क्रूर जनरल आऊटरम की आज्ञा से तोप के गोले बरसने लगे। घण्टे भर में वह राजमहल मिट्टी में मिल गया। महल को उड़ाने से पूर्व मैना की खोज सारे राजमहल में की गई, किन्तु वह न जाने कहां गई। जब रात होगई, अर्धरात्रि के समय चांदनी में फिर मैनाकुमारी स्वच्छ वस्त्र पहने हुए नाना साहब के भग्न प्रसाद के ढेर पर रोती हुई देखी गई। कुछ सैनिकों ने उसके रोने की आवाज को सुना। उसे सुनकर वे तथा क्रूर आऊटरम भी आया, उस जनरल ने बालिका को पहचान लिया। कन्या से अनेक प्रश्न किये, वह रोये ही जा रही थी, किसी भी प्रश्न का उत्तर उसने नहीं दिया। वह किसी से डरी नहीं। जनरल ने उसे गिरफ्तार करके हथकड़ी लगा ली और कानपुर के किले में कैद कर दी गई। कुछ दिन पश्चात् जिन्दा मैना को आग में जला दिया गया। इसके कुछ दिन पश्चात् महाराष्ट्रीय इतिहास लेखक महादेव चिटमबोस के 'बांखष्ट' पत्र में यह समाचार छपा—"कल कानपुर के किले में एक भीषण हत्या-काण्ड हो गया। नाना साहब की एकमात्र कन्या मैना धधकती हुई आग में जलाकर भस्म कर दी गई। भीषण अग्नि में शान्त और सरल मूर्ति अनुपम बालिका को जलता देख सबने उसे देवी समझ प्रणाम किया।"

तांत्या टोपे अपनी सेना सहित यमुना के उत्तर में था, वह यमुना पार कर चरखारी पहुंचा। वहां के राजा ने स्वतन्त्रता युद्ध में भाग लेने से इन्कार कर दिया। तांत्या ने चरखारी पर चढ़ाई कर दी। राजा से २४ तोपें और तीन लाख रुपया युद्ध के व्ययार्थ ले लिया और वह कालपी पहुंच गया। वहां महारानी लक्ष्मीबाई का एक पत्र मिला, उसमें झांसी पहुंचकर सहायता के लिए लिखा था।

तांत्या झांसी की ओर अपनी विशाल सेना सहित बढ़ा। कम्पनी की सेना एकबार संकट में पड़ गई। एक ओर से लक्ष्मीबाई दूसरी ओर से तांत्या टोपे की सेना थी। किन्तु कम्पनी की सेना ने खूब साहस का कार्य किया। तांत्या की सेना ने डटकर युद्ध किया, किन्तु अंग्रेजों की हल्की तोपें थीं उनको साथ लेकर अनेक छोटी छोटी टुकड़ियों ने तांत्या पर हमला किया। तांत्या को बेतवा पार जाना पड़ा। करनल रोज ने पीछा किया। तांत्या की भारी-भारी तोपें बेतवा के रेत में फंस गईं। भारी बोझ के कारण खिच नहीं सकीं, तांत्या को हार खाकर भागना पड़ा। तांत्या के १५०० सैनिक मारे गये। तांत्या एरच घाट और और कौच होकर कई दिन में कालपी पहुंचा। लक्ष्मीबाई की एक सहेली वीरतापूर्वक युद्ध करती हुई इस युद्ध में मारी गई। झांसी का कुछ दिन पश्चात् पतन होगया। महारानी लक्ष्मीबाई कुछ साथियों सहित कालपी पहुंच गई। प्रातःकाल रानी लक्ष्मीबाई, नाना साहब, राव साहब और तांत्या टोपे में परस्पर बातचीत हुई। बांदा का नवाब, शाहगढ़ और बानापुर के राजा तथा अनेक क्रांतिकारी नेता उस समय अपनी-अपनी सेना सहित कालपी पहुंचे हुए थे। इस विशाल सेना से अंग्रेजों पर विजय पाना अधिक कठिन कार्य नहीं था। किन्तु क्रांतिकारियों में कोई एक व्यक्ति ऐसा न था जो सब को अपनी आज्ञा के अनुसार चलाकर कार्य ले सके। महारानी झांसी सब से योग्य थी, किन्तु उसकी अपनी सेना सारी की सारी झांसी में काम आ चुकी थी। वह केवल २२ वर्ष की स्त्री थी अतः उसे सेनापति नहीं बनाया गया। यही भारी भूल क्रान्तिकारियों से हुई। तांत्या टोपे वीर और दक्ष सेनापति था किन्तु वह साधारण घराने में उत्पन्न हुआ था। प्राचीन खानदानी नरेशों का एक स्त्री के व साधारण कुल में जन्म लिए हुए मनुष्य के अधीन काम करना उस समय सरल न था। ठीक यही दोष दिल्ली के पतन का कारण बना था। फिर भी महारानी कुछ सेना लेकर कालपी से ४२ मील दूर कच्चगांव पहुंची। सर ह्यू रोज की सेना से महारानी की टक्कर हुई। नेताओं का मतभेद अव्यवस्था का कारण बना। किसी ने भी रानी को यथेच्छ सहायता नहीं दी। परिणाम यह हुआ कि फिर कच्चगांव में क्रान्तिकारियों की हार हुई। किन्तु क्रान्तिकारी सेना सुरक्षित रूप में कालपी लौट आई। फिर सर ह्यू रोज ने कालपी पर हमला किया। रानी ने अपनी सेना को उत्साहित किया, वह अपनी सेना के सवारों सहित स्वयं रोज के मुकाबले के लिए आगे बढ़ी। खूब विकट संग्राम हुआ। एक बार अंग्रेजी सेना का दाहिना भाग पीछे हट गया। कम्पनी के तोपची अपनी तोपें छोड़कर भाग गए। लक्ष्मीबाई घोड़े पर सब से आगे थी। फिर रोज ने बढ़कर मुकाबला किया, अन्त में अंग्रेजों की विजय हुई। २४ मई १८५८ को कालपी अंग्रेजों के हाथ में आगई। पर्याप्त सामान भी कालपी के किले से अंग्रेजों के हाथ आया। लक्ष्मीबाई, रावसाहब, तांत्या टोपे, थोड़ी सी सेना सहित बचकर निकल गये। अब इनके पास सामान भी नहीं था, न कोई ढंग का किला था। फिर महारानी तथा तांत्या दोनों ने धैर्य नहीं छोड़ा। तांत्या गुप्त रीति से ग्वालियर पहुंचा। महाराजा सींधिया की सेना और प्रजा को अपनी ओर करने में तांत्या सफल हो गया। इस नई सेना को लेकर वह फिर पीछे मुड़ा। गोपालपुर में फिर ये सब मिल गये।

लक्ष्मीबाई ने ग्वालियर विजय करने की सम्मति दी। अतः सब क्रांतिकारी २८ मई को ग्वालियर पहुंच गये। महाराजा सींधिया से पत्र लिखकर सहायता मांगी। किन्तु सींधिया १ जून को सेना, तोपखाना लेकर मुकाबला करने आया। महारानी लक्ष्मीबाई केवल ३०० सवारों को लेकर सींधिया की तोपों पर टूट पड़ी। सींधिया की अधिक सेना पहले ही तांत्या को वचन दे चुकी थी, अतः वह सब अपने अफसरों सहित क्रान्तिकारियों से आ मिले। जिस से ग्वालियर की सब तोपें ठण्डी पड़ गईं। जियाजीराव सींधिया अपने मन्त्री दिनकर राव सहित मैदान छोड़कर आगरे की ओर भाग गए।

ग्वालियर की प्रजा ने हर्ष के साथ विजयी क्रांतिकारियों का स्वागत किया। ग्वालियर की सेना ने पेशवा नाना साहब के प्रतिनिधि राव साहब को पेशवा मानकर तोपों की सलामी दी। सींधिया का सारा कोष अमरचन्द भाटिया अर्थसचिव ने क्रान्तिकारियों को सौंप दिया। ३ जून १८५८ को फूलबाग में दरबार हुआ। सब सेना और प्रजा उपस्थित थी। सारे दरबार ने पेशवा का शिरपना और कलगी तुर्रा राव साहब को पेशवा मानकर उनके सिर पर रखा। पेशवा के मन्त्री भी नियुक्त हुए। तांत्या टोपे प्रधान सेनापति बनाए गये। बीस लाख रुपये सेना में बांट दिए गए। अन्त में तोपों से सलामी हुई।

इस प्रकार तांत्या और लक्ष्मीबाई की योग्यता से क्रान्तिकारियों का दिल्ली, कानपुर और लखनऊ के समान एक बड़ा केन्द्र ग्वालियर भी बन गया। इतिहास लेखक मालसेन लिखता है—"इस प्रकार जो बात असम्भव प्रतीत होती थी वह तो हो गई किन्तु सर ह्यू रोज समझ गया—अब देर करने से कितनी बड़ी हानि हो सकती है। यदि ग्वालियर तुरन्त क्रांतिकारियों के हाथों से न छीन लिया गया तो कोई यह पहले से नहीं कह सकता कि परिणाम क्या कितना बुरा हो सकता है। यदि विद्रोहियों को अवकाश मिल गया तो तांत्या टोपे जिसका राजनैतिक और सैनिक बल ग्वालियर पर कब्जा करने के कारण अत्यन्त बढ़ गया है और जिसके पास इस समय ग्वालियर के समस्त जन, वहां का धन और सामान विद्यमान कालपी की पराजित सेना के अवशेषों पर एक नई सेना खड़ी कर लेगा और समस्त भारत के अन्दर एक मराठा विप्लव उत्पन्न कर देगा। तांत्या टोपे इस काम में बड़ा चतुर था, ऐसी अवस्था में सम्भव है कि वह पेशवा का झण्डा फहराकर दक्षिण महाराष्ट्र के जिलों को भड़का देगा। उन जिलों में अंग्रेज़ी सेना विद्यमान नहीं है। यदि मध्यभारत में क्रांतिकारियों को अच्छी सफलता मिल गई तो सम्भव है कि दक्षिण के लोग फिर से पेशवा की उस सत्ता के लिए खड़े हो जायें, जिसके लिए उनके पूर्वज युद्ध कर चुके थे और अपना रक्त बहा चुके थे।

लक्ष्मीबाई ने इस बात पर बल दिया कि सब कार्य छोड़कर सेना को तुरन्त मैदान में लाकर व्यवस्था में किया जाये। राव साहब तथा अन्य नेताओं ने महारानी की इस अमूल्य सम्मति की अवहेलना की। अमूल्य समय उत्सवों और दावतों में खोया।

इतने में सर ह्यू रोज अपनी सेना सहित वेग के साथ ग्वालियर पर टूट पड़ा। वह अपने साथ महाराजा सींधिया को लाया था। उसने घोषणा की कि कम्पनी की सेना केवल सींधिया को ग्वालियर की गद्दी पर फिर से बैठाने के लिए आई है। तांत्या टोपे मुकाबले के लिए आगे बढ़ा। ग्वालियर की सेना इससे पूर्व उत्तर भारत में एक बार कम्पनी की सेना से हार खा चुकी थी। अतः थोड़ी देर के संग्राम के पश्चात् ग्वालियर की सेना में उथल पुथल मच गई। राव साहब घबरा गया। लक्ष्मीबाई ने फिर एक बार बिखरी हुई सेना में एक नई जान फूंकी। उसने फिर से सेना की व्यूह रचना की और नगर के पूर्वीय फाटक की रक्षा का भार अपने ऊपर लिया। लक्ष्मीबाई इतनी वीरता से लड़ी कि जनरल स्मिथ मैदान छोड़कर पीछे हट गया। १७ जून को लक्ष्मीबाई की विजय हुई। १८ जून को स्मिथ जनरल ह्यू रोज भारी सेना सहित महारानी से लड़ने के लिए मैदान में आया, प्रातः काल से सायंकाल तक भयंकर संग्राम हुआ। महारानी की वीरता स लाशों के ढेर लग गये। अंग्रेज उसका युद्ध देखकर आश्चर्य में पड़ गये, किन्तु अंग्रेज सेना ने चारों ओर से रानी को घेर कर रखा। इस युद्ध में महारानी का अपनी सहेलियों सहित बलिदान हो गया। महारानी के वीरतापूर्ण युद्ध और बलिदान का विस्तृत विवरण पृथक् प्रकरण में पढ़ें।

कहा जाता है कि नाना साहब और बाला साहब ने अन्य क्रांतिकारी साथियों सहित जिनमें स्त्री बालक और पुरुषों ने जिनकी संख्या आठ हजार बताई जाती है, नेपाल में प्रवेश किया। नेपाल के महाराजा से अंग्रेजों के विरुद्ध नाना साहब ने सहायता की प्रार्थना की और इसके पश्चात् नेपाल में रहने की आज्ञा चाही। किन्तु नेपाल के महाराजा जङ्गबहादुर ने इनमें से कोई भी बात स्वीकार नहीं की। बल्कि अंग्रेजी सेना को क्रान्तिकारियों के विनाशार्थ रहने की आज्ञा दे दी। अनेक क्रान्तिकारी पहाड़ों, जङ्गलों में खप गए। अनेक हथियार फैंककर भारत वापिस लौट आये। नाना साहब का जनरल होपग्राण्ट के साथ कुछ पत्र व्यवहार हुआ। जिसमें अन्तिम पत्र नाना साहब ने अंग्रेजों का अन्याय दिखाते हुए लिखा "आपको भारत पर कब्जा करने का और मुझे दण्डनीय सिद्ध करने का क्या अधिकार है? भारत पर राज करने का आपको किसने अधिकार दिया? क्या आप फिरङ्गी लोग बादशाह हैं और हम इस अपने देश के अन्दर चोर हैं? इसके पश्चात् कुछ पता नहीं चलता कि नाना साहब का क्या हुआ?

अब केवल इनके मुख्य सेनापति तांत्या टोपे के अन्तिम प्रयत्नों का वर्णन करना शेष रहता है।

तांत्या टोपे के साथी सब खप चुके थे। अंग्रेजों की सत्ता पुनः भारत में जम चुकी थी। अब तांत्या के पास कुछ सामान न था, न कोई ढङ्ग की सेना ही थी। ऐसी अवस्था में भी तांत्या ने आशा नहीं छोड़ी। २० जून १८५८ को ग्वालियर से निकलकर अपने साथी राव साहब बांदा के नवाब और कुछ बचे-खुचे मुट्ठी भर सैनिकों सहित तांत्या ने नर्मदा की ओर बढ़ना चाहा। तांत्या का उद्देश्य नर्मदा पार कर पेशवा के नाम पर दक्षिण के नरेशों और प्रजा को क्रांति के लिए फिर से तैयार करना था। २२ जून को अंग्रेजों ने उसे जौरा अलीपुर में जा घेरा। तांत्या फिर बचकर निकल गया। तांत्या किसी भी प्रकार से नर्मदा पार करना चाहता था। अंग्रेज उसे नर्मदा पार करने से रोकने का जी जान से यत्न कर रहे थे। तांत्या ने फिर भरतपुर की ओर प्रस्थान कर दिया। अंग्रेज सेना तांत्या को पकड़ने के लिए भरतपुर पहुंच गई। तांत्या वहां से जयपुर की ओर बढ़ गया। जयपुर की प्रजा और सेना तांत्या से प्रेम करती थी। तांत्या ने उन्हें तैयार करने की सूचना दी। अंग्रेजों को पता चला तो उन्होंने तुरन्त अपनी अंग्रेजी सेना नसीराबाद से जयपुर की ओर भेज दी। तांत्या यह देख दक्षिण की ओर मुड़ गया। करनल होम्स के अधीन एक सेना ने उसका पीछा किया। तांत्या अंग्रेजी सेना से आंख बचाकर टोंक पहुंच गया। टोंक के नवाब ने नगर के सब द्वार बन्द कर लिए और अपनी कुछ सेना चार तोपों सहित तांत्या से लड़ने के लिए भेज दी। यह सेना सामने आते ही तांत्या से जा मिली और अपनी तोपें तांत्या को सौंप दीं। तांत्या नई सेना और तोपों को लेकर इन्द्रगढ़ की ओर बढ़ा। वर्षा बड़े जोर से हो रही थी। पीछे होम्स अंग्रेज सेना सहित तांत्या का वेग से पीछा कर रहा था। राजपूताने की ओर से सेनापति रांबर्टस अपनी सेना लिये तांत्या से लड़ने आ रहा था। तांत्या के सामने खूब चढ़ी हुई चम्बल नदी थी। अब तांत्या बचकर पूर्वोत्तर में बून्दी की ओर बढ़ा। वह भीलवाड़ा नामक ग्राम में जाकर ठहरा। ७ अगस्त १८५८ को जनरल रांबर्टस ने हमला किया। सारे दिन संग्राम होता रहा। रात को तांत्या, सेना और सामान सहित उदयपुर राज्य में कोठरा ग्राम की ओर निकल गया। १४ अगस्त को फिर अंग्रेजी सेना ने तांत्या को कोटरा में आ घेरा। इस बार तांत्या को अपनी तोपें मैदान में छोड़ पीछे हटना पड़ा। अंग्रेजी सेना रात दिन इसका पीछा कर रही थी।

तांत्या टोपे के अन्तिम प्रयत्न

तांत्या फिर चम्बल की ओर बढ़ा। इस समय अंग्रेजी सेना पीछे से बढ़ी चली आ रही थी। दाहिनी ओर दूसरी अंग्रेजी सेना बढ़ रही थी और इसके ठीक सामने चम्बल के किनारे ही शत्रु की

सेना थी। किन्तु वह वीर धोखा देकर किसी तरह बचकर चम्बल के तट पर पहुंच गया और आश्चर्य-जनक सफूर्ति से अंग्रेजी सेना के कुछ थोड़े ही अन्तर पर चम्बल नदी को पार कर गया। चम्बल नदी अब अंग्रेज सेना और तांत्या के मध्य में पड़ गई। किन्तु तांत्या के पास न भोजन सामग्री थी, न तोपें। तांत्या सीधे झालरा पाटन की ओर बढ़ गया। वहां का राजा अपनी सेना और तोपों सहित तांत्या से लड़ने के लिए आया। किन्तु सम्मुख आते ही वहाँ की सेना तांत्या से आ मिली। उसके हाथ में ३२ तोपें आ गईं। वहां के राजा से १५ लाख रुपये युद्ध के खर्च के लिए ग्रहण किये। पांच दिन तक तांत्या वहाँ ठहरा। उसने अपनी सेना को वेतन दिया। इस समय भी उसके साथ राव साहब और बाँदा के नवाब दोनों थे। तीनों ने मिलकर फिर नर्मदा पार करने का विचार किया। अंग्रेजों ने इन्हें रोकने के लिए सेनाओं का जाल बिछा रखा था। किन्तु तांत्या के पास अब मुकाबले के लिए पर्याप्त सेना तथा सामग्री थी। वह इन्दौर की ओर बढ़ा। इस समय छः बड़े-बड़े सेनापति रॉबर्टस, होम्स, पार्क, मिचेल, होप और लौरवार्ट तांत्या को घेरने का प्रयत्न कर रहे थे। कई बार तांत्या की सेना अंग्रेजों को स्पष्ट दिखाई देती किन्तु फिर भी बचकर निकल जाता था। रामगढ़ के निकट मिचेल की सेना तांत्या पर टूट पड़ी। तांत्या टोपे अपनी तीस तोपें वहीं छोड़कर बचकर निकल सया। मार्ग में एक स्थान पर इसे चार तोपें और मिलीं। इसके पश्चात् उत्तर की ओर बढ़कर तांत्या ने सीन्धिया के नगर ईशगढ़ पर हमला किया। वहां पर आठ तोपें और मिल गईं। तांत्या नर्मदा पार करने की धुन में था, अंग्रेज उसे रोकने का पूर्ण प्रयत्न कर रहे थे। तांत्या की समस्त यात्राओं, चालों, विजयों और पराजयों का लिखना सर्वथा असम्भव है। अंग्रेज लेखक लिखता है—"इसके पश्चात् तांत्या के बचने का और भागने का वह आश्चर्यजनक क्रम प्रारम्भ हुआ और वह दस मास तक चलता रहा। इससे यह प्रतीत होता था कि हमारी विजय निष्फल हो गई। इससे तांत्या योरुप में हमारे अंग्रेज सेनापतियों की अपेक्षा भी अधिक प्रसिद्ध होगया। तांत्या की समस्या सरल न थी। + + + उसे अपनी अव्यवस्थित सेना को निरन्तर इतनी तेज गति से ले जाना पड़ता था जिससे उसका पीछा करने वाली सेना ही नहीं बल्कि वे सेना भी जो कभी दाहिनी ओर से और कभी बांई ओर से अकस्मात् टूट पड़ती थी, उस के बच जाने के कारण हाथ मलती रह जाती थी। एक ओर वह इस प्रकार उन्मत्तवत् सेना को भगाये लिए जाता था, दूसरी ओर वह दर्जनों शहरों पर कब्जा कर लेता था। अपने साथ नई युद्ध सामग्री इकट्ठी कर लेता था और इसके अतिरिक्त अपनी सेना के इस प्रकार के नये स्वयंसेवक (रंगरूट) भरती कर लेता था जिन्हें कि साठ मील प्रतिदिन भागना पड़ता था। तांत्या ने अपने अल्पसाधनों से जो कुछ कर दिखाया उससे सिद्ध है कि उसकी योग्यता साधारण न थी। वह उस श्रेणी का मनुष्य था जिस श्रेणी का हैदर अली था। तांत्या नागपुर होकर मद्रास पहुंचना चाहता था। यदि वास्तव में वह मद्रास पहुंच जाता तो वह हमारे लिए इतना ही भयङ्कर सिद्ध होता जितना कि हैदर अली किसी समय सिद्ध हो चुका था।" जनरल पार्क और और कर्नल नेपियारादि तांत्या का पीछा खूब तेजी से कर रहे थे। फिर भी तांत्या बचकर निकलता रहा। अंग्रेज लिखता है—"गर्मियां निकल गईं, सारी वर्षा निकल गई, सारा शीतकाल बीत गया और फिर सारा गर्मी का ऋतु निकल गया तो भी तांत्या निकला चला जा रहा था। उसके साथ कभी दो सहस्र थके हुए सैनिक होते थे और कभी पन्द्रह हजार।"

इसके पश्चात् तांत्या ने अपनी सेना के दो टुकड़े किए। एक अपने अधीन दूसरा राव साहब के अधीन। दोनों दल दो ओर से आगे बढ़े। कई स्थानों पर अंग्रेजी सेना से लड़ाइयाँ लड़ते हुए दोनों दल ललितपुर में जाकर फिर मिल गये। यहां पर दक्षिण में मिचेल की सेना, पूर्व में कर्नल लिडेल की

सेना, उत्तर में कर्नल मीड की सेना, पश्चिम में कर्नल पार्क की सेना और चम्बल की ओर से जनरल राबर्ट्स के अधीन एक सेना। पाँच ओर से पाँच अंग्रेज सेनाओं ने तांत्या को घेर लिया। तांत्या ने अंग्रेजों को धोखा देने के लिए दक्षिण की यात्रा छोड़कर बहुत तेजी से उत्तर की ओर बढ़ना आरम्भ किया, अंग्रेज समझे कि तांत्या ने दक्षिण जाने का विचार छोड़ दिया। किन्तु तांत्या फिर अकस्मात् मुड़ गया। तेजी से बेतवा नदी पार करली। कजूरी में अंग्रेज सेना के साथ एक संग्राम हुआ। वहां से रामगढ़ पहुंच गया और सीधा तीर के समान दक्षिण की ओर लपका। अंग्रेज उसकी इन चालों से घबरा गए। जनरल पार्क एक ओर से लपका, मिचेल पीछे से, बेचर सामने से तांत्या की ओर बढ़ा। किन्तु तांत्या अपनी सेना सहित नर्मदा पहुंच ही गया और होशङ्गाबाद के निकट संसार के बड़े से बड़े युद्ध विशारदों को चकित कर अपनी सेना सहित नर्मदा को पार कर गया। इतिहास लेखक मालसेन लिखता है—"जिस दृढ़ता और धैर्य के साथ तांत्या ने अपनी इस योजना को पूरा किया, उसकी प्रशंसा न करना असम्भव है।" लन्दन टाइम्स के संवाददाता ने लिखा है "हमारा अत्यन्त अद्‌भुत मित्र तांत्या इतना कष्ट देनेवाला और चालाक शत्रु है कि उसकी प्रशंसा नहीं की जा सकती। पिछले जून के मास में उसने मध्य भारत में तहलका मचा रखा है। उसने हमारे स्थानों को रौंद डाला। खजानों को लूट लिया। हमारे मेगजीनों को खाली कर दिया है। उसने सेनायें इकट्ठी कर ली हैं और खाइयां खोदी हैं। लड़ाइयां लड़ देशी नरेशों की तोपें छीन ली हैं और तोपों को खो दिया है। फिर और तोपें प्राप्त की हैं, उसकी यात्रा विद्युत् के समान तेज गति से होती है, कभी नर्मदा के इस पार कभी उस पार। वह तीस-तीस और चालीस-चालीस मील प्रतिदिन चलता है। हमारे सैन्यदलों के कभी वह बीच से निकल गया, कभी पीछे से, कभी सामने से। कभी पहाड़ों पर से, कभी नदियों पर से, कभी नदियों में से, कभी घाटियों में से कभी दलदलों में से, कभी आगे से, कभी पीछे से, कभी घूमकर। फिर भी हाथ नहीं आया।"

अन्त में अक्तूबर १८५८ में अपनी सेना सहित राव साहब और बांदा के नवाब को साथ लिए हुए नागपुर के निकट पहुंच गया। लार्ड कैनिंग और उसके साथी खूब घबरा गये। मालसेन लिखता है—जिस मनुष्य को महाराष्ट्र अन्तिम पेशवा का न्याय उत्तराधिकारी स्वीकार करता था उसका भतीजा सेना सहित महाराष्ट्र की भूमि पर जा पहुंचा, हमें यह भय था कि कहीं तांत्या की सेना समस्त महाराष्ट्र को हमारे विरुद्ध शस्त्र उठा लेने के लिए उत्तेजित करदे और जब सारी महाराष्ट्र जाति विदेशियों के विरुद्ध शस्त्र उठा ले तो इसे देखकर दक्षिण (निजाम प्रान्त) के लोग भी रोके न रुक सकेंगे।

निःसन्देह यह घटना एक वर्ष पूर्व हुई होती तो सम्भव था कि शेष भारतीय इतिहास की गति पलटकर दूसरी ही हो जाती, देश का दुर्भाग्य था कि इस पिछले एक वर्ष के भीतर भारतवासियों का उत्साह पर्याप्त टूट चुका था। उत्तर भारत के लोग जिस तांत्या को स्वयं आ-आकर प्रसन्नता स सर्व प्रकार की सहायता करते थे, वहां उसी तांत्या के पास नागपुर के महाराष्ट्रीय लोग अब आने से भी डर गये। सहायता तो करना दूर रहा। तांत्या की सेना कुछ दिन वहां ठहरी, अंग्रेज सेना ने फिर उसे चारों ओर से घेरना आरम्भ कर दिया। तांत्या के उत्तर और दक्षिण में अंग्रेजों की विशाल सेना थी। उनकी सेना नर्मदा पार कर बढ़ी चली आ रही थी। नागपुर से तांत्या को कोई सहायता न मिल सकी। तांत्या ने विवश होकर बड़ौदा की ओर जाने का विचार किया। दोनों ओर नर्मदा के प्रत्येक घाट पर अंग्रेजी सेनायें पड़ी थीं। मेजर सण्डरलैण्ड की सेना के साथ तांत्या का संग्राम हुआ।

तांत्या ने अपनी सेना को आज्ञा दी कि सब तोपें पीछे छोड़कर नर्मदा में कूद पड़ो। तांत्या और उसकी सेना एक पल भर में नर्मदा के पार दिखाई दी। मालसेन लिखता है—"संसार की किसी भी सेना ने कहीं पर इतनी तेजी से कूच नहीं किया, जितनी तेजी के साथ कि तांत्या की भारतीय सेना इस समय कूच कर रही थी।" तांत्या राजपुरा पहुंचा, वहाँ के सरदार से उसने कुछ घोड़े और कुछ धन वसूल किया। अगले दिन वह उदयपुर पहुंचा। बड़ौदा यहां से केवल ५० मील था। इतने में पाक अपनी सेना सहित छोटा उदयपुर आ पहुंचा। तांत्या ने बड़ौदा का विचार छोड़ दिया, वह फिर उत्तर की ओर मुड़ा। ठीक इसी समय बांदा के नवाब ने निराश होकर हथियार रख दिए और अंग्रेजों को आत्म-समर्पण कर दिया। अब तांत्या और रावसाहब रह गये। मालसेन लिखता है "किन्तु ये दोनों सेनापति इस कठिन आपत्ति के समय भी उतने ही शान्त, धीर और चतुर बने रहे जितने कि वे पहले किसी समय में रह चुके थे।

तांत्या अब उदयपुर मेवाड़ की ओर बढ़ा। तुरन्त कई अंग्रेज सेनायें उस पर टूट पड़ीं। वह मुड़-कर जङ्गल में घुस गया। तांत्या के लिए अब बच सकना असम्भव प्रतीत होता था। एक दिन तांत्या और राव साहब प्रतापगढ़ की ओर बढ़े। मेजर रॉक ने सामने से उनका मार्ग रोक लिया। तांत्या मेजर रॉक की सेना को परास्त करता हुआ आगे निकल गया। २५ दिसम्बर को ताँत्या बांसवाड़े के जङ्गल से निकला। ठीक इसी समय दिल्ली के राजकुल का प्रसिद्ध शाहजादा फिरोजशाह जो अवध के संग्रामों में भाग ले चुका था, अपनी सेना सहित तांत्या की सहायता के लिए आ रहा था। १३ जन-वरी १८५९ को ये सब मिल गये। वहां सींधिया का एक सरदार मानसिंह भी उसी समय इनसे आकर मिल गया। ये सब इन्द्रगढ़ में मिले। किन्तु इस समय तांत्या बुरी तरह चारों ओर से घिर रहा था। नेपियर उसके उत्तर में, शाँवर्स उत्तर-पश्चिम में, सोमरसट पूर्व में, स्मिथ दक्षिण-पूर्व में, मिचेल और बेनसन दक्षिण में और बांनर दक्षिण-पश्चिम में। ये सब तांत्या को घेर लेने के लिए बढ़े चले आ रहे थे। तांत्या बढ़ते-बढ़ते देवास पहुंचा। १६ जनवरी १८५९ को देवास में तांत्या, राव साहब और फिरोजशाह तीनों खेमे में बैठे बातचीत कर रहे थे कि अकस्मात् किसी अंग्रेज अफसर का हाथ तांत्या की कमर पर पड़ा, अंग्रेज सिपाही खेमे में आ डटे। प्रतीत होता था तांत्या पकड़ लिया गया, किन्तु अकस्मात् ये तीनों नेता अंग्रेजों के चंगुल से निकल गये। चारों ओर खोज हुई किन्तु इनका कुछ पता न चला। २१ जनवरी को ये तीनों अलवर के निकट शिखर जी में दिखाई दिए। अंग्रेजी सेना इन्हें निरन्तर घेरने का प्रयत्न कर रही थी। तांत्या की सब आशायें निराशा में परिवर्तित हो चुकी थीं। वह बहुत थका हुआ था। मानसिंह पास के जंगल में छिपा था। तांत्या ने फिरोजशाह और राव साहब को सेना के साथ छोड़ा और स्वयं तीन साथियों सहित मानसिंह से मिलने चला गया। मानसिंह इस समय अंग्रेजों से मिल चुका था। उसे जागीर देने का वचन मिल गया था। फिरोजशाह ने तांत्या को अपने पास बुलाना चाहा। मानसिंह ने उसे रोक लिया और ७ अप्रैल १८५९ को ठीक आधीरात के समय सोते हुए वीर तांत्या को दुष्ट देशद्रोही मानसिंह ने अंग्रेजों को सौंप दिया।

१८ अप्रैल १८५९, तांत्या के लिए फांसी का दिन नियत था। चारों ओर से सेना का पहरा था किन्तु फिर भी चारों ओर से फौज के पीछे से टीलों पर खड़े हजारों ग्रामनिवासी तांत्या को दूर से श्रद्धापूर्वक नमस्ते कर रहे थे। तांत्या धैर्य और उत्साहपूर्वक फांसी के तख्ते पर चढ़ा। उसकी बेड़ियां काट दी गईं। तांत्या ने हँसते हुए अपने हाथ से फांसी का फन्दा गले में डाल लिया। तख्त खिंच गया। सायंकाल तक तांत्या का शरीर (शव) फांसी पर लटकता रहा। सायंकाल को अनेक अंग्रेजों

ने दौड़कर तांत्या के सिर के दो-दो चार चार बाल तोड़ लिए। वीर तांत्या की स्मृति स्वरूप उन्हें अपने पास रखा। वह वीर तांत्या भारत का मुख उज्ज्वल कर सदैव के लिए अमर हो गया।

रावसाहब और शाहजादा फिरोजशाह एक मास पश्चात् तक जी तोड़कर लड़े। इसके पश्चात् वेष बदल कर दोनों जङ्गलों में निकल गये। फिरोजशाह १८६४ तक भारत के जङ्गलों में घूमता रहा, फिर अवध चला गया जहां १८६६ में वह अन्य अनेक निर्वासित क्रान्तिकारियों के साथ फकीर के वेष में देखा गया।

रावसाहब तीन वर्ष पीछे पकड़ा गया और २० अगस्त १८६२ को कानपुर में फांसी पर लटका दिया गया।

इस प्रकार भारत को विदेशी शासन से स्वाधीन करने का सबसे महान् और व्यापक प्रयत्न निष्फल होगया और अंग्रेजी राज्य की जड़ फिर से जम गई।

पंजाब में क्रांति

उस समय पंजाब का चीफ़ कमिश्नर सर जॉन लारेन्स था। उसने उस समय अंग्रेजी सरकार की भक्ति रखने के लिए सिक्खों को भड़काया, उन्हें इस प्रकार समझाया "मुसलमान बादशाह तुम्हारे सिक्ख धर्म का नाश करने का सदा यत्न करते रहे हैं। औरंगजेब ने गुरु तेग बहादुर को कत्ल करवाया, गुरु गोविन्द के पुत्रों को कत्ल करवाया, अब अंग्रेजों की सहायता से अपने धर्म के शत्रुओं से बदला लो और दिल्ली पर चढ़ाई करके इस्लामी राज्य को समाप्त करने का अवसर है।" बूढ़े सम्राट् बहादुर-शाह के नाम से एक जाली ऐलान उन दिनों स्थान-स्थान पर दीवारों पर लगवाया गया। जिसमें लिखा था कि बहादुरशाह की पहली आज्ञा है "सब सिक्खों को मार डाला जाए।" सम्राट् बहादुर-शाह को जब पता चला तो उसने हाथी पर चढ़कर दिल्ली की गलियों में अपने मुख से घूम-घूमकर घोषणा की कि युद्ध केवल फिरङ्गियों के साथ है और किसी भारतवासी को किसी भी प्रकार की हानि नही पहुंचाई जाये। पंजाब में सर जॉन लारेन्स की चालें सफल हुईं, सिक्ख उनकी चालों में आ गए। सम्राट् बहादुरशाह ने अपना एक विशेष दूत ताजुद्दीन पटियाला, नाभा और जीन्द के राजाओं तथा अन्य सब सिक्ख सरदारों के पास भेजा। ताजुद्दीन इन सब से मिला और उसने मिलने के पश्चात् एक पत्र सम्राट् को दिल्ली उसी विषय में लिखा। उसका सारांश यह था "पंजाब के सिक्ख सरदार सुस्त और कायर हैं। बहुत कम आशा है कि ये क्रान्तिकारियों का साथ दें। ये लोग फिरङ्गियों के हाथ के खिलौने बने हुए हैं। मैं स्वयं इनसे एकान्त में मिला। मैंने इनके सामने अपना कलेजा पानी कर दिया है। मैंने उनसे कहा—आप लोग फिरङ्गियों का साथ क्यों दे रहे हैं और देश की स्वाधीनता के साथ विश्वासघात क्यों करते हैं? क्या आपका स्वराज्य इससे अच्छा न रहेगा? इसलिए कम से कम अपने लाभ के लिए ही आपको दिल्ली के बादशाह का साथ देना चाहिए।" इस पर उन्होंने उत्तर दिया—"देखिये हम सब समय की प्रतीक्षा में हैं, ज्योंहि हमें सम्राट् की आज्ञा मिलेगी हम एक दिन के अन्दर इन काफिरों को मार डालेंगे, किन्तु मेरा विचार है कि उन पर बिल्कुल विश्वास नहीं करना चाहिए।" कुछ दिन पश्चात् सम्राट् का सन्देश लेकर कुछ सवार इन सिक्ख राजाओं के पास पहुंचे, तो सिक्ख राजाओं ने दिल्ली के सम्राट् के सन्देश का तिरस्कार किया और पत्र लाने वाले सवारों को भी मरवा डाला। दूत की हत्या करने का नीच कर्म करने में भी इन्होंने लज्जा न की और ये सब इस बात को भूल गए कि पंजाब केसरी महाराजा रणजीतसिंह के पुत्र राजा दलीपसिंह और उसकी माता की अंग्रेजों ने क्या दुर्गति की थी। सब सिक्ख राजा और सिक्ख सरदारों ने सर जॉन लारेन्स की आज्ञा पर चल अपने देश से विश्वासघात किया। इसके फलस्वरूप क्रांति युद्ध की समाप्ति पर जब झज्जर के नवाब का राज्य छीना गया तो उसी में दादरी का प्रान्त जीन्द के राजा को, नारनौल का

पटियाला के राजा को और बावल का प्रान्त नाभा के राजा को इस देश-द्रोह के पारितोषिक (इनाम) के रूप में दिया गया। सम्भव है यह लोभ पहले दिखाकर ही इन्हें अंग्रेजों ने अपने जाल में फंसाया हो। कुछ भी हो सर जॉन लारेन्स के तीर सिक्ख राजाओं के हृदय और मस्तिष्क पर चल गए। लारेन्स अपनी चाल में सफल हो गया। उसे पञ्जाब में शान्ति रखने तथा दिल्ली को फिर से विजय करने के लिए पंजाब से सेनायें तथा सब सहायतायें सिक्खों की कृपा से मिल गईं। यदि पंजाब उस समय रुहेलखण्ड के समान क्रान्ति का साथ देता तो अंग्रेजों के लिए दिल्ली को ही नहीं अपितु भारत के अन्य प्रान्तों को भी फिर से विजय कर सकना सर्वथा असम्भव होता। इस बात को लारेन्स खूब अच्छी तरह समझता था। अतः उसने सिक्खों को फँसा दिया। पंजाब की प्रजा को अपनी ओर रखने के लिए सर जॉन लारेन्स ने ६ प्रतिशत ब्याज पर कम्पनी के नाम ऋण लेना आरम्भ किया। इससे दो लाभ हुए। यह धन बड़े सङ्कट के समय अंग्रेजों के काम में आया। दूसरे जिन सहस्रों सेठों से कम्पनी ने ऋण लिया था उन्हें कम्पनी के राज्य के बने रहने में ही अपना हित दिखाई देने लगा। वे अंग्रेजों के हितैषी बन गए। सर जॉन लारेन्स ने सरहद में मुसलमानों को अपने वश में रखने के लिए खूब धन व्यय किया। उनमें प्रचार करने के लिए अनेक मुल्ला नौकर रखे। पंजाब में सिक्ख और गोरी पलटनों को छोड़कर हिन्दू और मुसलमान सैनिकों की अनेक पलटनें थीं। ये सब राष्ट्रीय क्रांति में भाग लेने के लिए शपथ ग्रहण कर चुके थे। अनेक नगरों को हिन्दू और मुसलिम जनता भी क्रांति युद्ध में सहानुभूति रखती थी। इससे लारेन्स असावधान नहीं था। अब पंजाब ने क्रांति युद्ध में कहां-कहां भाग लिया और अंग्रेजों ने उनके दमनार्थ क्या अत्याचार किए, संक्षेप से उसी विषय में लिखते हैं।

पंजाब की सबसे बड़ी छावनी उस समय लाहौर के निकट मियांपुर में थी। यहां भारतीय सैनिक, गैर सैनिकों से चौगुने थे। यहां यह निश्चय किया हुआ था कि सबसे पूर्व मियांपुर की देशी सेनायें लाहौर के किले पर चढ़ाई करके उस पर कब्जा करें और फिर पेशावर, अमृतसर, फिलौर और जालन्धर की पलटनें एक साथ क्रांति आरम्भ करदें। मियांपुर की पलटनें रावर्ट माण्टगुमरी के अधीन थीं। मेरठ की छावनी के समाचार पहुंचते ही वह सावधान हो गया और उसने २३ मई को प्रातःकाल ही सब सिपाहियों को परेड पर बुलाया और गोरे सवारों को तोपखाने सहित देशी सिपाहियों के चारों ओर खड़ा किया और सब देशी सैनिकों के हथियार रखवा लिये। वे विवश थे, हथियार रख चुपचाप बारगों में चले गए। उसी समय एक गोरी पलटन लाहौर के किले में पहुंची और उसने तोपखाने का भय दिखाकर देशी सिपाहियों के हथियार रखवाकर किले पर कब्जा कर लिया। देशी सैनिकों को दुर्ग के बाहर बारगों में भेज दिया। माण्टगुमरी की ठीक समय की सावधानी तथा साहस और स्फूर्ति ने पंजाब को कम्पनी के हाथों से निकलने से बचा लिया। सर जॉन लारेन्स लिखता है—"यदि पंजाब चला जाता तो हमारा सर्वनाश हो जाता। उत्तरी प्रान्तों तक सहायता पहुंचने से बहुत पहले से ही अंग्रेजों की हड्डियां धूप में पड़ी सूखतीं और इङ्गलिस्तान उस विपत्ति से कभी छुटकारा नहीं पा सकता था और न एशिया में फिर से अपनी सत्ता स्थापित कर सकता था।

फिरोजपुर में क्रांति

१३ मई को फिरोजपुर छावनी में क्रांति का आरम्भ हुआ। नगर निवासियों ने भी क्रांति में पूरा हाथ बँटाया। अंग्रेजों की मेगजीन को आग लगा दी। अंग्रेजों के मकान जला डाले, जो अंग्रेज मिला मार डाला गया। तत्पश्चात् वहां की भारतीय सेना ने दिल्ली को प्रस्थान किया। गोरी सेना ने कुछ पीछा किया, किन्तु असफल हो फिरोजपुर लौट आई।

पेशावर की २४, २७ और ५१ नम्बर पैदल और ५ नम्बर सवार इन चार देशी पलटनों ने २२ मई को क्रान्ति करने का निश्चय कर रखा था। चारों पलटनें पेशावर के निकट पृथक्-पृथक् छावनियों में थीं। मियां मरे का समाचार मिलते ही अंग्रेज अफसरों ने अपनी गोरी सेना और विश्वासपात्र देशी पलटनों को इकट्ठी कर तोपों की सहायता से चारों पलटनों से हथियार रखवा लिए और १३ वा १४ सैनिकों को तुरन्त फांसी पर लटका दिया, जिससे सब शेष सैनिकों पर आतङ्क बैठ जाये। इसके पश्चात् फिर अनेक सैनिकों को फांसी दी गई और अनेकों को तो तोप के मुँह पर बांधकर उड़ा दिया गया। पेशावर के निकट होती मरदान में ५५ नम्बर पलटन थी। पंजाब सरकार ने उनके अफसर कर्नल स्पार्टिश वुड को उस पलटन के हथियार रखवाने की आज्ञा दी। कर्नल को अपनी पलटन पर विश्वास था। उसने हथियार तो नहीं रखवाये किन्तु अपने कमरे में जाकर आत्महत्या करली। पेशावर की गोरी सेना तोपों सहित इस पलटन के हथियार रखवाने के लिए होती मरदान पहुंची। सिपाही जो किले में थे, उन्हें देखकर भागना चाहते थे, किन्तु गोरी सेना के पास भारी तोपें थीं, उन्हें घेर लिया। १५० सैनिक वहीं मार दिए गये, शेष को गिरफ्तार करके तोपों के मुंह पर बांधकर उड़ा दिया गया। पंजाब में विप्लव के दिनों में तोपों के मुंह पर बांधकर उड़ाये जाने का कार्यक्रम अनेक स्थानों पर अनेक बार दुहराया गया।

सन्देह पर ही १० नम्बर सवार पलटन के हथियार रखवा लिए। इन सवारों के अपने घोड़े थे वे भी जब्त कर ५० हजार रुपये में बेचकर कम्पनी के खजाने में जमा करा दिए और इनके आठ हजार रुपये जो इनके पास से निकले वे भी छीन लिए गए और इन सब देशी सैनिकों को बलात् किश्तियों पर बैठाकर सिन्धु नदी की गहरी धार में डुबो दिया। पेशावर के निकट के प्रान्त के क्रांतिकारियों को भयंकर यातनायें देकर मारा गया।

३० जुलाई की रात को २६ नम्बर की पलटन के अधिकांश सैनिक जो हिन्दू थे, जिनके हथियार रखवाये जा चुके थे, छावनी से चल दिए। इनके ऊपर गोरों और सिक्खों का पहरा था, न इनके पास हथियार थे। इन्होंने विप्लव में भाग लिया था। ये रावी पार करना चाहते थे। इन्हें रावी पार करने से रोका गया। ये रावी के तट पर अमृतसर की ओर बढ़े। ये थककर तहसील फ्रेडटिक अजनाले से ६ मील दूर रावी के तट पर विश्राम कर रहे थे। अमृतसर के डिप्टी कमिश्नर कूपर ने अमृतसर के तहसीलदार को कुछ सशस्त्र खिक्ख सिपाहियों सहित उन्हें घेरने को भेजा और स्वयं कूपर, लगभग ४ बजे ६० सवारों सहित मौके पर पहुंचा। उन थके हुए भूखे लोगों पर गोलियां चलाई गईं। इनकी संख्या लगभग ५०० थी। इनमें से १५० गोलियों से जख्मी होकर पीछे हटे और रावी में डूब गये। कूपर स्वयं लिखता है कि वे निर्बलता के कारण धार में डूब गए और रावी का जल उनके रक्त से रंगा गया। कुछ भाग कर तैर कर एक मील अन्तर पर एक टापू में ठहर गये। सशस्त्र सवार किश्तियों में बैठकर उन्हें पकड़ने गए। दूर से बन्दूक देखकर उन पीड़ितों ने हाथ जोड़कर अपनी निर्दोषता प्रकट की और प्राणदान चाहा। इनमें से लगभग ५० निराश होकर जल में कूद पड़े और फिर दिखाई नहीं दिये। शेष को गिरफ्तार कर बांधकर अजनाले पहुंचा दिया। ये कुल २४२ थे। इनमें से कुछ अफसर थे। वर्षा के कारण इन्हें उस समय तो थाने में बन्द कर दिया। ६६ सैनिकों को नई इमारत के एक छोटे से गुम्बद में बन्द कर दिया। यह गुम्बद बहुत तंग था। उसके द्वार चारों ओर से बन्द कर दिये। अगले दिन बकरीद का त्यौहार था। कूपर थाने के सामने बैठ गया। दस सिक्ख सिपाही बन्दूक लेकर खड़े हो गये। उनकी सहायतार्थ ४० सिक्ख वहां और खड़े थे। फिर उन थके, भूखे और अभागे हिन्दू

सैनिकों को दस-दस करके बाहर लाया गया। सामने आते ही उन लोगों को गोलियों से उड़ा दिया जाता था। उनमें से कुछ ने मरते समय सिक्खों को गंगा की दुहाई देकर लानत मलानत की। किन्तु उन नीच सिक्खों को कुछ भी लज्जा न आई। जब थाने के कैदी सैनिक मारे जा चुके जिनकी संख्या २३७ थी, फिर गुम्बद में से २१ सैनिक निकाले गए और गोली से उड़ा दिए गए। कूपर ने स्वयं वहां जाकर देखा तो ४५ सैनिकों की लाश पड़ी हुई थीं। कूपर के शब्द हैं—"अजनाले में ही हॉलवेल का हत्या-काण्ड फिर से दोहराया गया।" हॉलवेल के ब्लैकहाल की घटना तो अंग्रेजों की घड़ी हुई बिल्कुल झूठ थी किन्तु कूपर नीच ने अजनाले में यथार्थ ब्लैकहाल सचमुच बनाकर दिखा दिया। ४५ व्यक्ति थकान, गर्मी और वायु की कमी के कारण मर गये। बाहर घसीटकर लाशें डाल दी गईं। अजनाले के थाने के लगभग १०० गज पर एक कुएं को मिट्टी से भरकर टीला बना दिया। २६ नम्बर पलटन के ५०० सैनिकों को २४ घण्टे के अन्दर परलोक पहुंचा दिया। जो शेष सैनिक इनके लाहौर, अमृतसर रह गये थे, उनको पकड़कर तोप के मुँह पर बांधकर उड़ा दिया गया। उस नीच तहसीलदार और सिपाहियों को बड़ी-बड़ी रकमें पुरस्कार (इनाम) रूप में दी गईं। पंजाब में इस प्रकार के अत्याचार किए गए।

जालन्धर और फिलौर में क्रांति

९ जून को जान्धर छावनी में रात को देशी पलटनें अकस्मात् बिगड़ गईं। वहां गोरी पलटन डर गई और उनका कुछ न कर सकी। जालन्धर के सैनिक तुरन्त दिल्ली की ओर चल दिए। इन्होंने किसी अंग्रेज को नहीं मारा। फिल्लौर पहुंचकर वहां की पलटनों को साथ लेकर लुधियाने की ओर चल दिए। लुधियाने के अंग्रेजों को इसका पता चल गया था, उन्होंने सतलुज के ऊपर का किश्तियों का पुल तोड़ दिया। गोरी और सिक्ख पलटनें और महाराजा नाभा की कुछ पलटनें सतलुज नदी के तट पर क्रांतिकारी पलटनों को रोकने के लिए खड़ी थीं। क्रान्तिकारियों को सतलुज पार करने से इन्होंने रोका और तोपों से इन पर आक्रमण किया। दो घण्टे घमासान युद्ध हुआ। एक सिपाही की गोली से अंग्रेज-सेना का कमाण्डर विलियम्स मर गया। अंग्रेज और सिक्ख हार गये और विजयी देशी सेना दोपहर को लुधियाने पहुंच गई। लुधियाना उस सयय पंजाब में क्रान्ति का विशेष केन्द्र था। सारे नगर में क्रांति का दर्शनीय दृश्य था। अंग्रेजों के मकान जला दिए गए। सरकारी खजाने पर कब्जा कर लिया गया। जेलखाना तोड़ दिया गया। जालन्धर, फिल्लौर और लुधियाने की सेनायें मिलकर स्वाधीनता युद्ध में भाग लेने के लिए दिल्ली की ओर चल पड़ीं। सन् १८५७ की क्रांति में पंजाब की ओर से मुख्य सहायता थी। अंग्रेजों ने सहस्रों निर्दोष पूर्वियों को पंजाब के अनेक नगरों और ग्रामों से निर्वासित कर सतलुज के पार भेज दिया। क्योंकि पूर्वी प्रान्त के रहने वालों से उस समय अंग्रेजों को अधिक सन्देह था।

दिल्ली पर अंग्रेजों की चढ़ाई की तैयारी

लार्ड कैनिंग ने दिल्ली का समाचार मिलते ही कमाण्डर-इन-चीफ जनरल ऐनसन को तुरन्त दिल्ली पर चढ़ाई करके दिल्ली विजय करने की आज्ञा दी। ऐनसन शिमले से अम्बाला पहुंचा। उसके सामने बड़ी कठिनाई आई। वह दिल्ली पर चढ़ाई करने की तैयारी करने लगा। उसे बड़ी देर लगी। कारण यह था कि इस बार हरयाणा प्रान्त में अम्बाला के आस-पास नगरों और ग्रामों में कोई भारतीय अंग्रेजों को किसी प्रकार की सहायता देने को तैयार न था। ऐनशन को न गाड़ियां मिलती थीं, न मजदूर, न रसद मिलती थी और न चारा। इस विषय में इतिहास-लेखक अंग्रेज लिखता है—

हर श्रेणी के भारतवासी हम से दूर रहे। ये लोग खामोश बैठे इस बात की प्रतीक्षा कर रहे थे कि परिस्थिति किस ओर मुड़ती है। पूञ्जीपतियों से लेकर कुलियों तक सब एक समान हमें सहायता देने में संकोच करते थे, क्योंकि उन्हें सन्देह था कि हमारी सत्ता कदाचित् एक दिन के अन्दर उखाड़ कर फैंक दी जाये।

ऐनसन के मस्तिष्क में एक दूसरी कठिनाई भी थी। पंजाब और दिल्ली के बीच में पंजाब की तीन बड़ी प्रमुख रियासतें पटियाला, नाभा और जीन्द के इलाके पड़ते थे। यदि ये तीन सिक्ख रियासतें उस समय देश का साथ दे जातीं तो निःसन्देह अंग्रेजों के लिए दिल्ली फिर से विजय कर सकना सर्वथा असम्भव होता। भारत स्वतन्त्र हो जाता और अन्यायी अंग्रेजों का पत्ता कट जाता। यदि पटियाला, नाभा और जीन्द तटस्थ भी रहते तो भी परिणाम अंग्रेजों के लिए अहितकर ही होता, किन्तु अंग्रेजों के सौभाग्य से इन तीनों सिक्ख रियासतों ने उस समय भारतीय देशभक्त क्रान्तिकारियों के विरुद्ध अंग्रेजों को धन, जन और माल तीनों से भरपूर सहयोग दिया। सर जॉन लारेन्स तथा उनके साथियों की नीतिज्ञता से ऐनसन को अपनी सहायतार्थ पंजाब से पर्याप्त अंग्रेजी और सिक्ख सेना भी मिल गई। इस प्रकार अम्बाला से दिल्ली तक मार्ग सिक्खों की सहायता से साफ मिल गया। क्योंकि पटियाला के राजा ने अपनी सेना भेजकर थानेश्वर की रक्षा को और जीन्द के राजा ने अपनी रियासत सहित पानीपत की रक्षा का भार अपने ऊपर लिया। इसके पश्चात् कमाण्डर-इन-चीफ ऐनसन अंग्रेजी और सिक्ख सेना सहित, जिसमें बहुत सी सेना इन तीन सिक्ख राज्यों की थी, २५ मई को अम्बाला से दिल्ली चल पड़ा। जनरल ऐनसन उस विकट परिस्थिति से घबरा रहा था। उसे मार्ग में हैजा हुआ और २७ मई को हरयाणा प्रान्त के प्रसिद्ध नगर करनाल में वह मृत्यु के विकराल गाल में समा गया. क्योंकि अम्बाला से दिल्ली तक वीर हरयाणा प्रान्त है। इससे भी अंग्रेजों को सहयोग नहीं मिला और अपना आतंक जमाने के लिए प्रतीकार की भावना से अंग्रेजी सेना ने जो अकथनीय अत्याचार किये वे किसी अंश में जनरल नील के अत्याचारों से कम अमानुषिक न थे। मार्ग में असंख्य ऐसे लोगों को जो दिल्ली की ओर जा रहे थे, इस सन्देह में कि वे दिल्ली जाकर क्रान्तिकारियों की सहायता करेंगे, उन्हें पकड़-पकड़ कर मार डाला गया। एक अंग्रेज जो इस सेना के साथ था, लिखता है—"अम्बाला से दिल्ली तक मार्ग की जनता के ऊपर अंग्रेजी सत्ता का रौब फिर कायम करने के लिए सैकड़ों ग्रामों में हजारों ही ग्रामनिवासी अत्यन्त तीव्र यातनायें दे देकर मार डाले गये। पहले उन्हें कष्ट देने के लिए उनके सिर से एक-एक कर के बाल उखाड़े जाते थे, उनके शरीरों को संगीनों से बींधा जाता था और सब के अन्त में किन्तु मृत्यु से पहले भालों और संगीनों के द्वारा इन हिन्दू ग्राम-निवासियों के मुख में गाय का मांस ठूंस दिया जाता था। एक ओर उन्हें ये यातनायें दी जाती थीं और दूसरी ओर उनकी आंखों के सन्मुख फांसियां तैयार की जाती थीं। फांसियां तैयार होने पर उन्हें अधमरी अवस्था में उन फांसियों पर लटका दिया जाता था। इनमें से अधिकांश ग्राम-निवासियों ने अंग्रेजी राज्य के विरुद्ध कभी भी शस्त्र न उठाये थे, किन्तु अंग्रेज यहां भी मेरठ का बदला ले रहा था। मेरठ के भारतीय सैनिकों ने अंग्रेजों को कत्ल किया, यह ठीक है, किन्तु जंगली क्रूरता से नहीं। तलवार के एक ही वार से सिर पृथक् कर दिया जाता, किन्तु अंग्रेजों की महत्ता इसमें थी कि अंग्रेजी फौजी पंचायत का स्वांग किया जाता, निर्दोष ग्रामीणों को फांसी की आज्ञा होती, उनको सता-सताकर गोमांस खिला, धर्म भ्रष्ट कर, संगीन घोंप-घोंप उनके शरीरों से खिलवाड़ करना, उनके अंगों को पृथक् पृथक् करना, अग्नि में जीवित ही जला देना, ग्रामों को घेर-घेर मनुष्य

ही नहीं पशुओं सहित भस्मसात् कर देना। ये सब कुकृत्य अंग्रेजों की महत्ता के सूचक तथा इनकी सभ्यता के प्रतीक थे। दिल्ली वा मेरठ में मरे मुट्ठी भर अंग्रेजों की हत्या का भयङ्कर राक्षसी बदला लेने के लिए हाथ आये हर मानव की हत्या की जाती। इस प्रकार हरयाणा के हजारों निर्दोष मजदूर किसान मारे गये और मरने से पहले सब पर उपर्युक्त पाशविक अत्याचार किए जाते थे। करनाल में पुराने जनरल ऐनसन की हैजे से हुई मृत्यु का बदला नया सेनापति बरनार्ड शायद हरयाणा के निर्दोष मजदूर किसानों को मार मारकर ले रहा था। यह मेरठ की अंग्रेजी सेना से मिलने के लिए मुड़ गया, क्योंकि १० मई को कर्त्तव्यविमूढ अंग्रेज सेना जनरल बरनार्ड की सेना से मिलने के लिए मेरठ से चल पड़ी थी। ये दोनों सेनायें मिलें, इससे पूर्व दिल्ली की क्रान्तिकारी सेना ने हिण्डन नदी के ऊपर ३० मई, १८५७ ई० को मेरठ की अंग्रेजी सेना पर आक्रमण किया। संग्राम हुआ, क्रांतिकारी सेना का बांया भाग कुछ निर्बल पड़ गया। उनकी ५ तोपों पर अंग्रेजी सेना ने कब्जा करना चाहा। ठीक उसी समय जब कई अंग्रेज अफसर तोपों पर कब्जा करने पहुंचे, एक भारतीय सैनिक ने जो ११वीं पलटन का था, मौत के साथ खेल किया। उस वीर बांकुरे ने प्राणों की बाजी लगाकर अपने कर्त्तव्य का पालन किया और अपनी राष्ट्रसेवा का व्रत पूर्ण कर दिखाया। अंग्रेजों के हाथ अपनी तोपों पर पड़ने से पूर्व उस सच्चे देशभक्त ने बारूद में आग लगा दी, जिससे प्रचण्ड धमाके के साथ कैप्टन अण्ड्रून आदि अंग्रेज अपने अनेक साथियों सहित जलकर भस्मसात् हो गए। अनेक अंग्रेज घायल भी हुए। इस प्रकार अनेक शत्रुओं के सिर भारतमाता पर चढ़ा देने के पश्चात् उस वीर ने अपना सिर भी पवित्र माता की गोद में चढ़ा दिया। किन्तु दुर्भाग्य है उस वीर हुतात्मा का नाम इतिहास को सुशोभित न कर सका, क्योंकि उसका नाम इतिहास के लिए अज्ञात ही रहा। उस अज्ञात अनामिक सैनिक की सूझ और वीरता की प्रशंसा करते हुए अंग्रेज इतिहास लेखक लिखता है "विद्रोहियों में भी ऐसे वीर थे जो राष्ट्र-कार्य को सफल करने के लिए प्राण हथेली पर रखकर कराल काल के गाल में घुसने के लिये तैयार फिरते थे। इस घटना से हमें यह प्रत्यक्ष शिक्षा मिली है।" दिल्ली की सेना उस दिन पीछे लौट गई। ३१ मई को फिर वह सेना मेरठ की सेना से संग्रामार्थ दिल्ली से बाहर निकली। उस दिन विकट संग्राम हुआ। बहुत अंग्रेज मारे गये। सायंकाल अंग्रेजी सेना को अस्त-व्यस्त करके क्रान्तिकारी सेना फिर दिल्ली लौट गई। अगले दिन मेजर रीड के अधीन एक गोरखा सेना अंग्रेजों की सहायतार्थ ठीक समय पर पहुँच गई और ७ जून को इस सेना से अम्बाला वाली सेना भी जनरल बरनार्ड के अधीन और सिक्ख सेना भी मेरठ वाली सेना से आ मिली। दिल्ली की चढ़ाई के लिए बहुत सा सामान और सेना नाभा के सिक्ख राजा ने अंग्रेजों की सहायतार्थ भेजी। ये विशाल संयुक्त अंग्रेजी सेनायें अलीपुर के निकट पहुंच गईं। ८ जून को बून्देले की सराय के निकट प्रातः से सायंकाल तक भीषण संग्राम हुआ। क्रान्तिकारी सेना का सेनापति बहादुरशाह का एक पुत्र मिरजा मुगल था, जिस ने सारी आयु में कभी भूलकर भी युद्धक्षेत्र न देखा था। अंग्रेजों की ओर योग्य से योग्य सेनापति थे और सिक्खों और गोरखों की सहायता। दिल्ली की सेना सायंकाल फिर दिल्ली लौट गई। उस दिन कम्पनी की सेना दिल्ली की दीवार के नीचे तक पहुंच गई। जीत अंग्रेजों की हुई, किन्तु अंग्रेजों ने यह समझ रखा था कि "दिल्ली की लड़ाई एक दर्शनीय खेल होगा" यह स्वप्न इस दिन इनका दूर हो गया क्योंकि क्रान्तिकारियों ने इस दिन वह वीरता और रणकौशल दिखाया कि अंग्रेजों को जंच गया कि यह लड़ाई खेल नहीं प्राणों की बाजी होगी। आज की लड़ाई में अंग्रेजों के ४ अफसर और ४७ सैनिक मारे गए, सैकड़ों घायल हुये। प्रसिद्ध जनरल चेस्टर इस युद्ध में काम आया। इसका अंग्रेजों को पर्याप्त दुःख

था, किन्तु इनको हर्ष यह था कि अब दिल्ली अंग्रेज सैनिकों के घेरे में थी। क्रान्तिकारियों की कुछ तोपें अंग्रेजों के हाथ लगीं। इन दिनों दिल्ली में खूब उत्साह और चहल-पहल थीं।

दिल्ली की तैयारी

इन दिनो अनेक प्रान्तों से पलटनें आ रही थीं। वे अस्त्र-शस्त्र और खजाना भी अपने साथ ला ला कर दिल्ली में जमा कर रही थीं। सम्राट् बहादुरशाह के नाम भिन्न भिन्न स्थानों से वफादारी के पत्र आ रहे थे। नगर के भीतर बारूद बनाने के और अस्त्र-शस्त्र ढालने के लिए अनेक कारखाने खुल गये थे। जिनमें अनेक तोपें प्रतिदिन ढाली जाती थीं। सहस्रों मन बारूद तैयार होती थी। अकेले चूड़ीवालों के मौहल्ले के एक कारखाने में सात सौ मन बारूद प्रतिदिन तैयार होती थी। बादशाह बहादुरशाह हाथी पर बैठकर नगर में निकलता था। जनता और सैनिकों को प्रोत्साहित करता था।

गोहत्या निषेध की घोषणा

सम्राट् की ओर से यह घोषणा हो चुकी थी कि जो गोहत्या करेगा उसको गोली से उड़ा दिया जायेगा वा उसके हाथ काट लिए जायेंगे। गोहत्या पहले भी बाबर आदि बादशाहों के समय भी बन्द थी। दिल्ली और उसके निकट प्रान्तों में कम्पनी का राज्य जमने से गोरी सेना के आहारार्थ गोहत्या की जाती थी। इससे जनता में असन्तोष बढ़ गया था। अतः फिर एक बार पुनः सम्राट् को कई सौ वर्ष पुरानी मुगल सम्राटों की आज्ञा को दोहराना पड़ा। इसके अतिरिक्त एक और घोषणा सम्राट् ने सारे भारतवर्ष में प्रकाशित की, जो इस प्रकार की थी "ऐ भारत के पुत्रो! यदि हम दृढ़ सङ्कल्प करलें तो बात की बात में शत्रु को समाप्त कर सकते हैं। हम शत्रु का नाश कर डालेंगे और अपने धर्म और अपने देश को जो हमें प्राणों से भी अधिक प्यारे हैं, आपत्ति से मुक्त कर लेंगे।" इसी प्रकार सम्राट् ने अनेक घोषणा-पत्र स्वराज्य और स्वधर्म की रक्षार्थ और अंग्रेजों के विरुद्ध लड़कर उन्हें भारत से निकालने के लिए निकाले। जो सारे भारतवर्ष में जनता तथा सेनाओं में बांटे गए। इसका अच्छा प्रभाव पड़ा।

दिल्ली का नगर पूर्ण रूप से क्रान्तिकारियों के हाथ में था और कम्पनी की सेना ने दिल्ली से पश्चिम में पहाड़ी पर कब्जा कर लिया था। यह स्थान दिल्ली पर आक्रमणार्थ बड़ा अच्छा था। अंग्रेज सेनापतियों ने विचार विनिमय किया, किन्तु वे दिल्ली पर आक्रमण करने का साहस नहीं कर सके। इन्हीं दिनों दिल्ली की क्रांतिकारी सेना ने अंग्रेजी सेना पर बार बार हमले किये। इन्हीं दिनों भारतीय सैनिकों का एक दल जिस पर अंग्रेजों को पूर्ण विश्वास था क्रान्तिकारियों से जा मिला। अंग्रेजी सेना की पर्याप्त हानि करके दिल्ली की सेना नगर में लौट जाती थी।

दिल्ली में यह नियम था कि जो नई पलटन दिल्ली में बाहर से आती थी, वह अपने आने से अगले दिन अंग्रेजी सेना पर आक्रमण करती थी। इन युद्धों में १७, २० और २३ जून की लड़ाइयां भयङ्कर थीं। अंग्रेज, अंग्रेजी अफसर और सैनिक मारे गये। अंग्रेजी सेना को अपने स्थान से पीछे हटना पड़ा। अंग्रेज कमाण्डर अधिक नई सेना की सहायता के बिना पंजाब से कुछ करने में असमर्थ था। २३ जून का दिन पलासी की शताब्दी का दिन था। इस दिन दिल्ली की तोपों ने प्रातःकाल ही अंग्रेज सेना पर आग बरसानी आरम्भ कर दी। क्रान्तिकारी सेना में विशेष उत्साह था। उसने विकट युद्ध किया। इस विषय में मेजर रीड लिखता है कि "लगभग १२ बजे क्रान्तिकारियों ने हमारी सेना के ऊपर एक भीषण आक्रमण किया। कोई मनुष्य उनसे अच्छा नहीं लड़ सकता था जितना कि क्रान्ति-

कारी लड़े। उन्होंने हमारी सारी पलटनों पर बार-बार हमले किये और एक बार ऐसा प्रतीत होता था कि हम मैदान खो बैठे।" जिस समय अंग्रेज हारने को थे उसी समय अंग्रेजों के सौभाग्य से ठीक सङ्कट के समय एक और नई सेना पंजाब से सहायता के लिए आ पहुंची। क्रान्तिकारियों के लिए अब कार्य सरल न रहा। फिर भी वे सायंकाल तक डट कर लड़े। यदि उन दिनों सिक्खों और गोरखों ने अंग्रेजों का साथ न दिया होता तो २३ जून सन् ५७ को दिल्ली की चार दीवारी के नीचे कम्पनी सेना का सर्वनाश हो गया होता और उनका भारत में अपनी सत्ता कायम रखना असम्भव था।

२ जुलाई को मोहम्मद बख़त खां अपनी सेना सहित दिल्ली में प्रविष्ट हुआ। सम्राट् ने उसका विशेष स्वागत किया। सम्राट् ने अपने पुत्र मिरजा मुगल को सेनापति पद से हटाकर सबकी सम्मति लेकर बख़त खां को दिल्ली की समस्त सेनाओं का प्रधान सेनापति बनाया और दिल्ली का गवर्नर भी उसे नियुक्त किया। बख़त खां वास्तव में अत्यन्त योग्य और वीर था। उसने सम्राट् से कहा—यदि कोई शाहजादा भी नगर के प्रबन्ध में कोई बाधा डालेगा तो तुरन्त उसके नाक कान कटवा डालूँगा। सम्राट् ने स्वीकार कर लिया।

बख़त खां के साथ १४ हजार पैदल, तीन सवार पलटन और अनेक तोपें थीं। वह अपनी सेना को छः महीने की वेतन अगाऊ दे चुका था। उसने चार लाख रुपये इसके अतिरिक्त सम्राट् के पास जमा कराये। बख़त खां ने नगर की अव्यवस्था समाप्त कर सुप्रबन्ध किया। सब नगर निवासियों को हथियार दिए। इस प्रकार नगर की व्यवस्था कर ३ जुलाई को २० सहस्र सेना की परेड कराई। सेना को व्यवस्थित कर ४ जुलाई को बख़त खां ने अपनी सेना सहित अंग्रेजों पर आक्रमण किया। अंग्रेजों की सेना भी दिन प्रतिदिन बढ़ती जा रही थी। पंजाब से नई नई सेनायें और अनुभवी अंग्रेज सेना-पति आकर मिल रहे थे। किन्तु प्रधान सेनापति बर्नाड को दिल्ली पर आक्रमण करने का साहस नहीं हुआ। पहले अंग्रेजों को विश्वास था कि दिल्ली पहुंचने के पश्चात् दो चार घण्टे लड़ाई के पश्चात् दिल्ली हमारे हाथ में होगी। किन्तु अब एक मास से अधिक हो चुका था, वे निराश थे। इसी निराशा की अवस्था में ५ जुलाई सन् ५७ को जनरल बर्नाड भी हैजे से मर गया। दूसरे अंग्रेज सेनापति की कब्र हरयाणे के प्रसिद्ध नगर इन्द्रप्रस्थ में बनी। इसका स्थान जनरल रीड ने लिया। यह तीसरा कमाण्डर-इन चीफ था। किन्तु दिल्ली अब तक अजेय थी। ९ जुलाई को दिल्ली की सेना ने बख़त खां के अधीन जोर से आक्रमण किया कि अंग्रेजी सेना भाग खड़ी हुई। उनकी तोपें बन्द हो गईं। अनेक अंग्रेज अफसर मारे गये। उस दिन अपनी हार का क्रोध अंग्रेज अफसरों ने कैम्प में जाकर अपने निर्दोष गरीब भिश्तियों और काले नौकरों को मार कर उतारा। वे नीच गोरे क्रोध में काले सेवकों की सेवा को भी भूल गये। एक अंग्रेज लिखता है—"हम गोरे सैनिकों के हृदय में समस्त काले एशिया निवासियों के प्रति प्रचण्ड घृणा की आग भड़क रही थी।" १४ जुलाई के आक्रमण से अंग्रजों की इस से भी बुरी दुर्गति हुई। जनरल रीड घबरा गया और रोगी पड़ गया। वह त्यागपत्र देकर १४ जुलाई को पहाड़ पर चला गया। अब चौथे सेनापति जनरल विलसन ने कार्य सम्भाला। दिल्ली के मीनारों पर दो मास से स्वराज्य की हरी पताका लहरा रही थी। चौथे कमाण्डर-इन-चीफ ने जब कार्यभार सम्भाला तब भारत भर में अंग्रेज यह कहने लग गए थे "जो सेना दिल्ली का मोहासरा कर रही है उनका स्वयं मोहासरा हो रहा है।" इस समय अंग्रेज अफसर यह विचार कर रहे थे कि दिल्ली विजय करने का विचार छोड़कर दूसरी ओर ध्यान देना चाहिए। दिल्ली में पश्चिम दीवार के नीचे ही केवल अंग्रेजों की सेना थी और तीनों ओर क्रांतिकारियों का साम्राज्य था। प्रतिदिन क्रांतिकारी सेना दिल्ली

नगर से निकलकर अंग्रेजों की सेना पर आक्रमण करती, उन्हें पर्याप्त हानि पहुंचाकर पीछे हटती जाती थी। अंग्रेजी सेना उनका पीछा करती जब अंग्रेजी सेना उनके परकोट के ठीक नीचे आ जाती तब फसील के ऊपर की तोपें उन पर बुरी तरह गोले बरसाती थीं। इस प्रकार कम्पनी के सैनिक दीवार के नीचे चनों की भांति भुन जाते थे।

इस प्रकार अनेक बार कम्पनी की सेना के बहुत अधिक सैनिक मारे गये। फिर विवश हो जनरल विलसन ने अपनी सेना को उनका पीछा करने से रोक दिया। इस समय अंग्रेज घबराये हुए थे। उन का दिल्ली नगर में घुसने का साहस नहीं होता था। क्रांतिकारी सेना एक बार दिल्ली से निकलकर मैदान में डटकर युद्ध करती तो निश्चय से इनकी विजय होती। दिल्ली की सेना में वीरता, संख्या वा सामान किसी की कमी नहीं थी। दिल्ली के अन्दर कोई ऐसा योग्य और प्रभावशाली नेता न था जो सब प्रान्तों की सेनाओं को अनुशासन में रखकर, सब को संगठित करके एक निर्णायक युद्ध के लिए आगे बढ़ा सकता हो।

सम्राट् बहादुरशाह अत्यन्त वृद्ध था। सेनापतित्व ग्रहण करने में असमर्थ था। मिरजा मुगल (शाहजादा) पहले ही अयोग्य सिद्ध हो चुका था। सेनापति बख़त खाँ उस समय क्रान्तिकारी सेना-पतियों में सबसे अधिक योग्य और विचारशील था। वह किसी राजघराने में उत्पन्न न था। उच्च-कुल का मिथ्याभिमान अभी तक भारतीयों में कूट-कूट कर भरा था। उसका जन्म सामान्य घर में हुआ था। दिल्ली के अनेक सेनाओं के सेनापति छोटे मोटे नरेश वा राजकुलों के लोग थे। उन लोगों पर बख़त खां का प्रभाव न पड़ता था। उनमें से अनेक बख़त खां के साथ ईर्ष्या करते थे। परस्पर प्रतिदिन खींचातानी बढ़ती जा रही थी।

सम्राट् बहादुरशाह ने समझाने का यत्न भी किया, किन्तु बात नहीं बनी। यदि उस समय जयपुर, जोधपुर, सींधिया, होलकर वा महाराजा उदयपुर जैसा कोई नरेश दिल्ली आकर नेतृत्व सम्भाल लेता तो दिल्ली में ५० सहस्र क्रांतिकारियों की सेना थी। अस्त्र-शस्त्रादि सामग्री थी। यदि वह सेना किसी योग्य नेता के अधीन फसील के नीचे अंग्रेजी सेना को समाप्त कर विजय उत्साह से भरी हुई सारे भारतवर्ष में फैल जाती तो फिर अंग्रेज सदैव के लिए अपना बँधना बोरियां बांधकर इङ्गलिस्तान को चले जाते। भारत देश स्वतन्त्र हो जाता। किन्तु देश का दुर्भाग्य था। बूढ़े सम्राट् बहादुरशाह ने अपने हाथ से पत्र लिखकर इसी कार्य के लिए जयपुर, जोधपुर, बीकानेर, अल-वर और अनेक राजाओं के पास भेजे। उसने लिखा—"मेरी हार्दिक इच्छा है कि किसी भी प्रकार से किसी मूल्य पर हो सके फिरङ्गियों को भारत से बाहर निकाला जाये, इसी उद्देश्य के लिए क्रांतिकारी युद्ध प्रारम्भ कर दिया गया है। किन्तु यह तब सफल हो सकता है जब उत्तरदायित्व को सम्भालने वाला कोई योग्य व्यक्ति राष्ट्र को सब शक्तियों को सङ्गठित करके एक ओर लगा सके और इस क्रान्ति का नेतृत्व अपने हाथों में ले ले। अंग्रेजों के निकाल देने के पश्चात् अपने व्यक्तिगत लाभार्थ भारत पर राज्य करने की मुझे किञ्चित् भी इच्छा नहीं है। यदि आप देशी नरेश, शत्रु के निकालने के लिए अपनी तलवार खींचने के लिए उद्यत हों तो मैं इस बात को भी तैयार हूं कि अपने सब राजकीय अधिकार देशी नरेशों के इस कार्य के लिए चुने हुए किसी भी सङ्गठन को सौंप दूंगा।" यह पत्र बूढ़े सम्राट् की सुभेच्छा और उदारता का दर्पण है। किन्तु संदिग्ध दुर्बलहृदय भारतीय नरेशों पर इसका यथेच्छ प्रभाव नहीं पड़ सका।

@VaidicPustakalay

इधर जनरल निकलसन के अधीन नई सेना ने पंजाब से आकर कम्पनी की सेना में प्राण फूंक दिए। इस नई सेना में अधिकतर सिक्ख, गोरखों आदि की संख्या अंग्रेजों की अपेक्षा कई गुनी थी। अगस्त के अन्त तक क्रान्तिकारी सेना बार-बार कम्पनी की सेना पर आक्रमण करती रही किन्तु कम्पनी की सेना में फसील की ओर बढ़ने का साहस न हुआ। २५ अगस्त को सेनापति बख़त खां ने दो मुख्य बरेली और नीमच की सेनाओं को लेकर अंग्रेजों के मुख्य स्थान नजफगढ़ पर बहुतजोर से आक्रमण किया। नीमच की सेना ने बख़त खां की आज्ञा का उल्लङ्घन किया। इस सेना ने उस स्थान को छोड़ दिया जहां उसे ठहरने की आज्ञा बख़त खां ने दी। वह किसी दूसरे गांव के पास ठहरी। ये लोग शेष क्रान्तिकारी सेना से पृथक् हो गए। जनरल निकलसन को पता चल गया। उसने पहले इस नीमच की सेना पर आक्रमण किया। घमासान युद्ध हुआ। जिसमें नीमच का एक एक सैनिक कट-कटकर मर गया। अंग्रेजों की विजय हुई। बख़त खां अपनी शेष सेना सहित वापस लौट गया।

अपने मत से अपने चुने हुए सेनापति की आज्ञा अहङ्कार से ठुकराने का ही यह परिणाम था। विना अनुशासन की वीरता कायरता के समान व्यर्थ होती है। नीमच की सेना खूब वीरता से लड़ी थी, किन्तु सेनापति की श्रद्धापूर्वक आज्ञा का पालन किये बिना संसार की कोई सेना भी विजय प्राप्त नहीं कर सकती। २५ अगस्त का यह प्रथम दिवस था, दिल्ली नगर में निराशा का साम्राज्य छा गया और कम्पनी की सेना की इस विजय से निराशा दूर हुई और वे दिल्ली पर टूट पड़ने के लिए आतुर दिखाई देने लगे। अंग्रेज सेनापतियों ने विजयोन्मत्त होकर आवेशपूर्ण आदेश दिया, "तीन मास तक सेनापतियों की सैनिक चतुरता की दाल न गली और दिल्ली स्वतन्त्र बनी रही। आज दिल्ली को ईंट से ईंट बजाकर तुम अपने यत्न को यश का मुकुट पहना कर ही रहोगे। यह स्पष्ट दीख पड़ता है।" इस समय अंग्रेजी में ३५०० गोरे ५००० सिक्ख गोरखा आदि २५०० कश्मीरी और स्वयं जीन्द नरेश अपनी सेना सहित थे। अंग्रेजी सेना में बड़ी अच्छी व्यवस्था थी। दिल्ली नगर में अव्यवस्था बढ़ती जा रही थी। सितम्बर के पहले पखवाड़े में अंग्रेज सेना धीरे-धीरे आक्रमण करने का साहस करने लगी। इससे दिल्ली के सैनिकों में घबराहट होने लगी। दिल्ली के परकोट पर अंग्रेज सेना धैर्य से अनुशासनपूर्वक चढ़ाई कर रही थी।

भारतीय सेना में अव्यवस्था, अराजकता और अनुशासनहीनता थी। अंग्रेजी सेना के देशी सैनिक मोर्चे बाँधने का कार्य जो जान और उत्साह से कर रहे थे। दिल्ली के तोपखाने से बिल्कुल नहीं डरते थे। फारेस्ट लिखता है, "हमारी सेना के भारतीय सैनिक अतुल शौर्य और दृढ़ता दिखाकर सबसे आगे बढ़ गये, लाशों पर लाशें पड़ रही थीं किन्तु उन्होंने अपना कार्य बन्द नहीं किया।" अंग्रेजों के अधीन सैनिक खूब अनुशासन में काम करते थे और दिल्ली के देशी सैनिक अपने ही अधिकारियों के नीचे कार्य से बचने का यत्न करते थे। योग्य नेता का अभाव और सैनिकों की अनुशासनहीनता ही दिल्ली को ले डूबी।

दिल्ली का पतन

१४ दिसम्बर की अंग्रेजी सेना के चार विभाग किए गये। जिसमें तीन विभागों ने निकलसन के अधीन कश्मीरी दरवाजे की ओर से प्रवेश करना चाहा। दूसरे दल ने मेजर रीड के अधीन काबुली दरवाजे और सब्जी मण्डी की ओर से बढ़ना चाहा। सबसे पहले निकलसन अपने दल सहित परकोट की ओर बढ़ा। भीतर से क्रांतिकारियों की तोपों ने गोले बरसाने आरम्भ किए। दीवार के नीचे अंग्रेज और सिक्ख सैनिकों की लाशों के ढेर लग गये, फिर भी उन्हें रौंदते हुए निकलसन और उसके

साथीं दीवार तक पहुंच गये। पिछले सात दिनों के युद्ध में कुछ दीवार का भाग टूट गया था। इस टूटे हुए स्थान पर सीढ़ी लगा दी गई। निकलसन पहला अंग्रेज वीर था, जिसने सबसे पहले दीवार पर चढ़कर गोले, गोलियों की वर्षा में कश्मीरी दीवार के निकट विजय का बिगुल बजाया। इसी प्रकार दूसरा दल भी मरते मरते फसील पर चढ़कर नगर के भीतर कूद पड़ा। तीसरा दल कश्मीरी दरवाजे की ओर बढ़ा। इसने बारूद से द्वार के एक भाग को उड़ा दिया। कप्तान वरगेस वहीं काम आया। कर्नल कैम्पबेल कुछ साथियों के सहित कश्मीरी दरवाजे के अन्दर पहुंच गये। चौथे दल ने मेजर रीड के अधीन काबुली दरवाजे की ओर बढ़ना चाहा, किन्तु पहले ही वार में मेजर रीड घायल होकर गिर पड़ा। उसकी सेना पीछे हट गई। उस पर होप ग्रान्ट कुछ देशी सवारों सहित आगे बढ़ा। घमासान युद्ध हुआ, खून की नदियां बहने लगीं, दोनों पक्ष खूब वीरता से लड़े। अन्त में अंग्रेजी सेना को पीछे हटना पड़ा। इस दल ने हार खाई। शेष तीनों दलों ने कश्मीरी दरवाजे से घुसकर आक्रमण किया। जिस मकान को या मीनार को जीत लेते, उसी पर अंग्रेजी झण्डा खड़ा कर देते थे। एक-एक मकान के सम्मुख युद्ध हो रहा था। इस प्रकार लड़ते लड़ते ये तीनों दल काबुली दरवाजे की ओर बढ़े। बर्न बैस्टियन के पास पहुंचकर इन्हें एक तङ्ग गली से निकलना पड़ा। यहाँ क्रांतिकारियों ने गोलियों की बाढ़ पर बाढ़ चलाई। पग पग पर भूमि पर रक्तपात और मृत्यु के चिह्न मिलते थे। जो अंग्रेज विजय के उन्माद में अन्दर घुस आए थे फिर से पीटे जाने से पीछे हटने लगे। निकलसन वीरता के साथ आगे बढ़ा, फिर घमासान युद्ध होने लगा। गली के उस दो सौ गज के स्थान में पानीपत का छोटा संस्करण दिखाई देने लगा। अंग्रेज देखा नहीं कि झट क्रांतिकारी वीर ने गोली से उड़ाया नहीं। छज्जों, छाजनों, खिड़कियों, छतों और बरामदों से यह हटीली स्वाधीनता प्रेमी रणबांकुरी गली अपने अनगिनत मुखों से आग उगल रही थी। वीर निकलसन को भी पीछे हटना पड़ा। मेजर जैनब मारा गया। अब निकलसन फिर आगे बढ़ा, किन्तु एक क्राँतिकारी वीर की गोली खाकर भूमि पर लोट-पोट हो गया। वाह री अमर गली! तू अंग्रेजों के लिए मृत्युमुखी सिद्ध हुई। यह सारी गली अंग्रेजों की लाशों से भर गई। इस विजय गली से पीछे हटकर अंग्रेजी सेना कश्मीरी दरवाजे के पास लौट गई। जिस समय निकलसन इस अमर गली में पिट रहा था, उसी समय कैम्पबेल अपनी सेना सहित जामा मस्जिद पर चढ़ा। वहां पर मुसलमानों ने तलवारों से अंग्रेजों पर वीरता से आक्रमण किया। कैम्पबेल घायल हो गया और यह अंग्रेजी सेना दल भी मार खाकर कश्मीरी दरवाजे की ओर भागा। १४ सितम्बर का युद्ध समाप्त हुआ। दिल्ली में अंग्रेजी सेना के प्रवेश का यह प्रथम दिवस था। दोनों पक्ष खूब वीरतापूर्वक लड़े। खून की नदियां बह गईं। अंग्रेजों के चार मुख्य सेनापतियों में से तीन घायल हुए, जिनमें से निकलसन २३ सितम्बर को हस्पताल में मर गया। कम्पनी के ६६ अफसर और ११०४ सैनिक उस दिन युद्ध में मारे गए। क्रान्तिकारियों के १५०० सैनिक खेत रहे। चार मास के घेरे के पश्चात् दिल्ली के भीतर कम्पनी की सेना प्रविष्ट हुई। उसके पश्चात् क्रांतिकारियों में अव्यवस्था बढ़ने लगी। कुछ सेना तो तुरन्त दिल्ली छोड़कर चली गई। १५ सितम्बर से २४ सितम्बर तक दिल्ली की एक-एक चप्पा भूमि के लिए शत्रु के साथ क्रांतिकारियों ने वीरतापूर्वक डटकर संग्राम किया। इन संग्रामों में लगभग अंग्रजी सेना के ४ सहस्र मनुष्य मारे गये। इसी प्रकार इतने वा कुछ अधिक दिल्ली के सैनिक मारे गए। धीरे धीरे ३/४ नगर का भाग कम्पनी के कब्जे में आगया। १९ सितम्बर को बखतखां सम्राट् से मिला, उसने सम्राट् से प्रार्थना की "आप अंग्रेज से

पराजय स्वीकार न करें. आप मेरे साथ दिल्ली से निकलकर चलें, अनेक स्थान दिल्ली की अपेक्षा
सामरिक दृष्टि से अधिक महत्वपूर्ण हैं, इनमें से किसी भी स्थान पर जमकर युद्ध करने से मेरी अवश्य
विजय होगी।" सम्राट् बखत खां की बात पर लगभग राजी हो गया और अगले दिन प्रातः मिलने को
बुलाया। विश्वासघातक मिरजा इलाही बख्श ने जो सम्राट् बहादुरशाह का समधी था, बखत खां के
चले जाने के पश्चात् सम्राट् को समझाया, "विप्लव के सफल होने की अब कोई आशा नहीं है। बखत
खां के साथ जाने से आपको केवल कष्टों और हानि के अतिरिक्त कुछ नहीं मिलेगा, और यदि आप
यहीं रह जायेंगे तो मैं प्रतिज्ञा (वादा) करता हूं कि अंग्रेजों से मिलकर सब बातों की सफाई कर दूंगा,
आप और आपके कुटुम्बियों पर किसी प्रकार की आंच न आने पायेगी।" इलाही बख्श बहादुरशाह
को रोकने के लिए दाव-पेच खेल रहा था। यह अंग्रेजों का गुप्तचर था। यह प्रायः सदा बादशाह के
साथ रहता था और महल की तमाम बातों और सलाहों की खबरें मेजर हडसन तक पहुंचाता रहता
था। यह हडसन अंग्रेजों के गुप्तचर विभाग का प्रधान था। अंग्रेजों ने इस नीच मिरजा इलाही बख्श
पर इस बात का बल दे रखा था कि तुम किसी प्रकार बादशाह को दिल्ली से बाहर जाने से रोक
लो। इस कार्य के लिए मिरजा इलाही बख्श को बहुत बड़े पारितोषिक (इनाम) का वचन दिया गया
था। इसीलिए अंग्रेज राज की समाप्ति तक अर्थात् सन् १९४७ ई० अगस्त मास तक मिरजा इलाही
बख्श के वंशजों को बारह सौ रुपये मासिक पेन्शन मिलती रही। इस नीच की बातों में बहादुरशाह
आ गया। अगले दिन सम्राट् से बखत खां हुमायूं के मकबरे में मिला। बखत खां ने बहादुरशाह को
फिर चलने के लिए समझाया। उसकी कुछ चलने की इच्छा भी हुई तो उस नीच इलाही बख्श को
जब कोई उपाय रोकने का नहीं सूझा तो उसने बखत खां पर यह दोष लगाया कि यह बखत खां
पठान है और वह मुगलों से अपनी कौम का पुराना बदला लेना चाहता है, इसलिए छल से बहादुर-
शाह को फँसाना चाहता है। इस पर उस देशभक्त बखत खां ने इस नीच इलाही बख्श पर तलवार खींच
ली, किन्तु बहादुरशाह ने उसका स्वयं हाथ रोकलिया। बूढ़ा निर्बल बादशाह उस नीच की बातों में न
जाने कैसे फँस ही गया और बखत खां से ये शब्द कहे, "बखत खां! मुझे तेरी प्रत्येक बात पर विश्वास
है और दिल से तेरी सम्मति को मानता हूं। किन्तु शरीर की शक्ति ने जवाब दे दिया है, अतः अपने
आपको भाग्य पर छोड़ता हूं। मुझे मेरे हाल पर छोड़ दो और बिस्मिल्लाह करो। यहां से जाओ और
कुछ कार्य करके दिखाओ। मैं नहीं, मेरे कुटुम्ब से नहीं, न सही तुम वा और कोई भारत की लाज
रखे। हमारी चिन्ता न करो, अपने कर्त्तव्य को पूर्ण करो।"

दिल्ली के स्वतन्त्रता संग्राम का मुकुट बहादुरशाह था और हाथ पैर सहस्रों हिन्दू और मुसलमान
वीर सैनिक थे। उस संग्राम का हृदय और मस्तिष्क बखत खां था, बखत खां का हृदय सम्राट् के
इस उत्तर को सुनकर खण्ड खण्ड हो गया। वह ग्रीवा नीची करके मकबरे से निकलकर चला गया।
इसके पश्चात् बखत खां अपनी समस्त सेना सहित यमुना को पार कर किसी ओर निकल गया। वह
कहां गया, उसकी सेना का क्या हुआ, इतिहास इस विषय में मौन धारण किए हुए है। बखत खां के
मकबरे से निकलते ही नीच इलाही बख्श ने मकबरे के पश्चिमी द्वार से बाहर निकल तुरन्त अंग्रेजों
को सूचना दी और तुरन्त हडसन ने पचास सवार लेकर मकबरे में पहुंच सम्राट् बहादुरशाह, बेगम
जीनत महल और शाहजादे, जवां बखत को गिरफ्तार किया और उन्हें लाल किले में कैद कर दिया,
तब सम्राट् को इलाही बख्श की नीचता का पता चला। गिरफ्तारी के समय वह नीच हडसन के

साथ ही था, बहादुरशाह ने उसकी ओर घूर कर देखा और कहा "तुमने मुझे बखत खां के साथ जाने से रोका" सम्राट् की गिरफ्तारी के पश्चात् दिल्ली नगर १३४ दिन के कठिन परिश्रम और भयंकर से भयंकर संग्राम के पश्चात् पूर्णतया अंग्रेजों के हाथ में आ गया। कप्तान हडसन और जनरल विलसन तो सम्राट् बहादुरशाह को तुरन्त मार डालना चाहते थे, किन्तु अंग्रेज अफसरों का मत इसके विरुद्ध था। क्योंकि अभी भारत का बहुत सा भाग क्रांतिकारियों के हाथ में था, अतः अन्त में बहादुरशाह को कैद ही कर दिया गया।

मिरजा इलाही बख्श के बताने से और उसकी सहायता से हडसन ने बहादुरशाह के दो बेटों मिरजा मुगल, मिरजा अखजर सुल्तान और सम्राट् के एक पोते को जिसका नाम मिरजा अकबर था पुनः हुमायूँ के मकबरे से पकड़ कर कैद कर लिया। हडसन इन तीनों शाहजादों को रथ में बैठा कर नगर की ओर ले चला। नगर से एक मील दूर इन तीनों को रथ से नीचे उतार दिया। उनके कपड़े उतरवाये और हडसन ने उन तीनों को गोली मारकर समाप्त कर दिया। जब शाहजादों को गोलियां लगीं वे "हाय दगा" कहकर इस लोक से चल दिए। मिरजा इलाही बख्श ने तीनों शाहजादों से यह वादा किया था कि मैं जनरल विलसन से तुम्हारी जान बख्शवा दूंगा। शाहजादों के सिर काटकर बहादुरशाह के पास लाये गये। सिरों को पेश करते हुए हडसन ने बहादुरशाह से कहा "कम्पनी की ओर से यह आपकी नजर है जो अनेक वर्षों से बन्द थी।" सम्राट् ने शाहजादों के सिर कटे हुए देखकर आश्चर्यजनक धैर्य से मुख फेर लिया और कहा—"अलहम्दोलिल्लाह ! तैमूर की सन्तान ऐसे सुर्खरु होकर पिता के सामने आया करती थी।" इसके पश्चात् शाहजादों के सिर खूनी दरवाजे के सामने लटका दिए गए और धड़ कोतवाली के सामनें टांग दिए गये। अगले दिन तीनों लाशें यमुना में फिकवा दी गईं। शाहजादों के विषय में दिल्ली में यह प्रसिद्ध है कि जिन शाहजादों को विश्वासघात करके मारा वे चार थे। इनमें शाहजादा अब्दुल्ला भी था और हडसन ने इन शाहजादों को मारकर तुरन्त अपने चुल्लू में भरकर उनका गर्म-गर्म खून पीकर यह कहा—"यदि मैं इनका खून न पीता तो पागल हो जाता।" यह घटना प्रकट करती है कि हडसन से बढ़कर पागल, नीच और राक्षस कौन हो सकता है ?

दिल्ली पर अत्याचार

अंग्रेजों ने दिल्ली पर जो अत्याचार किये उनके विषय में लार्ड एलफिन्सटन ने सर जॉन लारेन्स को लिखा—"मोहासरों के समाप्त होने के पश्चात् हमारी सेना ने जो अत्याचार किए हैं उन्हें सुनकर हृदय फटने लगता है। बिना मित्र व शत्रु में भेद किए ये लोग सबसे एक समान बदला ले रहे हैं। लूट में तो वास्तव में हम नादिरशाह से भी बढ़ गए।" मोहासरे के दिनों में किले के छत्ते में रोगी और घायल सैनिकों का एक हस्पताल था। जिस समय कम्पनी की सेना किले में घुसी तब हस्पताल में जितने घायल रोगी थे सब गोली से मारकर समाप्त कर दिये गये। अन्यत्र भी जो रोगी और घायल मिले कत्ल कर दिए गए। माण्टगुमरी मार्टिन लिखता है—"जिस समय हमारी सेना ने दिल्ली में प्रवेश किया तो जितने नगर निवासी नगर की दीवारों के अन्दर पाये गये उन्हें उसी स्थान पर संगीनों से मार डाला गया। आप समझ सकते हैं उनकी संख्या कितनी अधिक रही होगी। जब मैं आपको यह बताऊँ कि एक मकान में चालीस और पचास-पचास तक आदमी छिपे हुए थे। ये लोग विद्रोही न थे किन्तु नगर के निवासी थे, जिन्हें हमारी दयालुता और क्षमाशीलता पर विश्वास था। मुझे हर्ष है कि उनका भ्रम दूर हो गया।"

एक अंग्रेज इतिहास लेखक लिखता है—दिल्ली निवासियों के कत्लेआम की खुली घोषणा कर दी गई। यद्यपि हम जानते थे कि उनमें बहुत से हमारी विजय चाहते हैं।"

लार्ड राबर्ट्स उस समय की अवस्था लिखता है। हम प्रातः ही लाहौरी दरवाजे से चांदनी चौक गये तो हमें शहर मुर्दों का ही दिखाई देता था। कोई शब्द हमारे घोड़े की टापों के अतिरिक्त सुनाई न देता था। कोई जीवित मनुष्य दृष्टिगोचर न होता था। सभी ओर मुर्दों का बिछौना बिछा हुआ था, जिसमें कुछ मरने से पूर्व सिसक रहे थे। मुर्दों की लाशों को एक ओर कुत्ते खा रहे थे और दूसरी ओर लाशों पर गिद्ध इकट्ठे हो गये थे, जो उनके मांस को नोंच नोंच कर स्वाद से खा रहे थे। लाशें पड़ी सड़ती थीं और दुर्गन्ध फैल रही थी। इस भयानक दृश्य से हमें डर लगता था। भय से हमारे घोड़े विदकते और हिनहिनाते थे।"

सिक्खों और गोरों ने अपनी संगीनों से मनुष्यों के चेहरों को बार-बार बींधा और अधमरे करके अग्नि में जला कर सता-सता कर मारा। कुछ मुसलमानों को तांबे की शलाकों से नंगे शरीर को सिर से पांव तक जलाकर तड़फा-तड़फा कर समाप्त किया। रसल लिखता है, "मुसलमानों को मारने से पहले उन्हें सूअर की खाल में सी दिया जाता था, उन पर सूअर की चर्बी मल दी जाती थी और फिर उनके शरीर जला दिए जाते थे। हिन्दुओं को गोमांस खिलाकर धर्मभ्रष्ट किया जाता था। इस प्रकार सारी दिल्ली मनुष्यों का बूचड़खाना बन गई। सारा नगर उजड़ गया। जो कोई फांसी और कत्ल से बचा उसे बल पूर्वक नगर से निकाल दिया गया। होम्स लिखता है—"दिल्ली के निवासियों को विप्लव के बदले बड़ा भारी प्रायश्चित्त करना पड़ा। दस सहस्र स्त्री पुरुष और बालक बिना घर के इधर उधर के प्रान्त में घूम रहे थे, जिन्होंने कोई अपराध नहीं किया था। अपना जो धन वैभव था उसे वे नगर में अपने घरों में छोड़ गये थे। उससे वे सदा के लिए हाथ धो चुके थे, क्योंकि सैनिकों ने गली-गली और घर-घर जाकर प्रत्येक मूल्यवान् वस्तु को खोजकर निकाल लिया था और जो सामान वे उठाकर नहीं ले जा सके उसे उन्होंने नष्ट कर डाला।"

शहर पर कब्जा करने के पश्चात् तीन दिन तक कम्पनी की सेना के सब सैनिकों को नगर की लूट माफ रही। इसके पश्चात् जो सामान घरों में पुस्तकें, बरतन, चारपाई, चक्की, गड़ा हुआ धन यहां तक कि मकानों के किवाड़ और उनके अन्दर का लोहा और पीतल तक कोई वस्तु नहीं छोड़ी। सब कुछ नीलाम कर दिया गया। जो लोग जीवित बचे थे उनका सर्वस्व लूटकर कर्नल बर्न ने बाल-बच्चों सहित धक्के देकर दिल्ली से बाहर निकलवा दिया। ख्वाजा हसन निसायी लिखता है—"दिल्ली नगर के बाहर इस प्रकार सहस्रों स्त्री, पुरुष और बालक असहाय, नंगे पांव, नंगे सिर, भूखे, प्यासे फिर रहे थे। सैकड़ों बालक भूख के मारे चिल्लाते हुए माताओं की गोदियों में मर गये। सैकड़ों मातायें छोटे बच्चों का दुःख न देखकर उन्हें अकेला छोड़कर कुएं में डूब मरीं। नगर में सहस्रों देवियां अपना सतीत्व धर्म बचाने के लिए कुओं में कूद गईं। कुए भर गए पानी तक न रहा। एक कुएं से कुछ जीवित स्त्रियों को एक सेना के अफसर ने निकालना चाहा तो वे चिल्लाने लगीं, "ईश्वर के लिए हमें हाथ न लगाओ, गोली से मार डालो, हम श्रेष्ठ कुलों की बहू बेटियां हैं, हमारी इज्जत खराब न करो।" स्त्रियों का सतीत्व धर्म भी इन नीच सैनिकों ने बिगाड़ा। लिखा है—"दिल्ली में ऐसे भी लोग थे जिनके घर की देवियों का सतीत्व धर्म बिगाड़ा जाने लगा तो पुरुषों ने अपने हाथ से विवश होकर अपनी बहू बेटियों को कत्ल कर दिया और उन्होंने स्वयं आत्महत्या कर ली।

ख्वाजा साहब लिखते हैं—"मन्दिर और मस्जिदों को सैनिकों ने खराब किया। दिल्ली की बड़ी जामामस्जिद में सिक्ख सैनिकों ने सूअर काट काटकर पकाये। मस्जिद में ही पाखाने और पेशाब घर बनाये। अंग्रेजों के कुत्ते भी मस्जिद में साथ ही फिरते थे। मस्जिदों में गधे भी बाँधे, अनेक मस्जिद और मन्दिर ढाकर भूमिसात् कर दिये गये। दिल्ली एक प्रकार से सर्वथा उजाड़ दी गई।

दिल्ली फिर बसी

पहिले कुछ हिन्दुओं से भारी जुर्माने ले लेकर उन्हें मुहल्लों में बसने की आज्ञा दी गई। फिर मार्च १८५८ में मुसलमानों को पास लेकर बसने दिया गया। मुसलमानों के मकान १८५९ तक जब्त रहे। मुसलमान बिना पास लिए नगर में चल फिर नहीं सकते थे।

दिल्ली का राजकुल

पहले तो सम्राट् बहादुरशाह के परिवार के लोग कैद में लालकिले में डाल दिए गए। फिर सब को पकड़-पकड़ कर फांसी पर लटका दिया गया। शाहआलम का बेटा जो बड़ा था, उसे फांसी दे दी गई। सम्राट् अकबर का पोता जो गठिया का रोगी था,खड़ा होने में भी असमर्थ था,उसका नाम मिर्जा मोहम्मदशाह था, उसे फांसी दे दी गई। कुछ शाहजादों को जेल में रखकर उनसे चक्कियां पिसवाईं। जब वे अपना कार्य पूर्ण नहीं कर सकते थे, उन पर कोड़ों की मार पड़ती थी। अनेक शाहजादे और शाहजादियां देहली से बाहर इधर उधर मारे मारे फिरे। कुछ कैद में मार खाकर मर गये। सम्राट् बहादुरशाह की एक बेटी राबेया बेगम ने भूख के मारे तंग आकर एक दिल्ली के बावर्ची हुसेनी से विवाह कर लिया। सम्राट् की दूसरी बेटी फातिमा सुलताना ने ईसाइयों के जनाने स्कूल में नौकरी करली। जो सहस्र का दान किया करते थे, वे दर-दर के भिखारी बन गये। सम्राट् बहादुरशाह, उनकी बेगम जीनत महल और शाहजादा जवां बखत को कैद करके रंगून भेज दिया गया। रंगून में कैद के अन्दर सन् १८६३ में सम्राट् बहादुरशाह का देहान्त हो गया। उसके साथ मुगल राज्य का अन्तिम चिह्न संसार से मिट गया। इस शाही खानदान के साथ एक बार दिल्ली भी मिट गई। भले ही दिल्ली का पतन हो गया किन्तु कोई भी सच्चा इतिहास लेखक दिल्ली और क्रांतिकारियों की वीरता की प्रशंसा किये बिना नहीं रह सकता। यह पुरानी नगरी स्वधर्म और स्वराज्य के उच्च भावों से प्रेरित होकर अंग्रेजों के समान प्रबल शत्रु से १३५ दिन और रातें अविराम घोर संग्राम करती रही। उस दिन से लेकर जिस दिन लालकिले से फिरंगी झण्डा उखाड़कर स्वराज्य की घोषणा की और उस दिन तक जब तक बहादुरशाह के राजप्रासाद में अंग्रजी तलवारें स्वदेशी रक्त को पी गईं। इस प्राचीन इन्द्रप्रस्थ नगरी ने पवित्र स्वराज्य समर को शोभा देने वाली निष्काम उच्च वीर वृत्ति के द्योतक कुछ न्यून कार्य नहीं किये। आश्चर्य तो यह है कि न नेता, न संगठन, न अंग्रेजों के समान सैनिक, विद्या विशारद शत्रुओं से टक्कर, फिरंगियों से भी बढ़कर अपने ही नीच देशद्रोही भाई गोरखों और सिक्खों से युद्ध, ऐसी प्रतिकूल परिस्थितियों में क्रांतिकारियों ने डटकर संग्राम किया। क्रांतिकारी सच्चे राष्ट्रीय तथा धार्मिक हुतात्माओं के समान लड़े। इससे दिल्ली के घेरे का इतिहास अमर रहेगा। इन वीरों का गुणगान आगामी पीढ़ियों को श्रद्धा और आदरपूर्वक करना चाहिए। दिल्ली के बलिदान का तेज सदा चमकता रहे, यही इच्छा है।

@VaidicPustakalay

बिहार और राजा कुँवरसिंह

ओमानन्द सरस्वती (आचार्य भगवान्देव)

बिहार में सन् सत्तावन का सङ्गठन अवध और दिल्ली के समान था। पटना बिहार में क्रांतिकारियों का अच्छा केन्द्र था। नित्य गुप्त सभायें होती थीं। पुलिस भी इन सभाओं में सम्मिलित होती थी। पटना में मुख्य नेता पीर अली था। पटना के केन्द्र के पास धन बहुत था, सैंकड़ों वैतनिक तथा अवैतनिक क्रांति में प्रचारक ग्रामों में प्रचारार्थ फिरते थे। इस प्रकार प्रान्त भर में इस केन्द्र की शाखायें फैली हुई थीं। यहां के नेताओं का सम्बन्ध दिल्ली लखनऊ के केन्द्रों से था। अंग्रेजों को जब यहां का पता चला और ३ जुलाई को कुछ थोड़ा सा विप्लव भी पटना में हुआ तो सिक्ख सेना की सहायता से विप्लव दबा दिया गया। पीर अली को पकड़कर फांसी दे दी। फांसी पर चढ़ाने से पूर्व अंग्रेजों ने अपने नीच स्वभाव के अनुसार पीर अली को खूब यातनायें दीं। इसी प्रकार जिला तिरहुत के पुलिस जमादार को क्रांति के सन्देह पर गिरफ्तार करके फांसी दे दी गई। पटना में तीन प्रभावशाली मौलवियों को पटना के कमिश्नर टेलर ने धोखे से गिरफ्तार कर लिया। पीर अली को फांसी लगने के पश्चात् २५ जुलाई को दानापुर की देशी पलटनों ने स्वाधीनता की घोषणा कर दी और ये पलटनें जगदीशपुर के राजा कुंवर के पास पहुंच गई।

"राजा कुंवरसिंह"

राजा कुंवरसिंह का जन्म १७८२ के लगभग जिला आरा बिहार प्रान्त के छोटे से राज्य जगदीशपुर में हुआ था। इनके पिता जी का नाम शाहबाजादसिंह था। कुंवरसिंह बाल्यकाल से ही वीर लड़ाकू था। इनका मन पढ़ने में नहीं लगता था। ये बड़े ही स्वतन्त्र प्रकृति के धनी थे। लड़ाई भगड़ा और वीरतपूर्ण कार्यों में विशेष रुचि थी। आप यथार्थ में जन्म से ही नहीं किन्तु गुण, कर्म, स्वभाव से भी सच्चे क्षत्रिय थे। पढ़ने की दृष्टि से तो उनकी शिक्षा नहीं थी, किन्तु घोड़े की सवारी, बन्दूक, तलवार आदि शस्त्र चलाने में आप पूर्ण शिक्षित थे। आपके उच्च चरित्र और प्रजापालनादि गुणों के कारण आप सर्वप्रिय तथा विख्यात थे। राजा कुंवरसिंह का सम्बन्ध पहले से ही नाना साहब आदि क्रांतिकारियों के साथ था। इसके विषय में वीर सावरकर जी लिखते हैं "आप ने राजवंश और भारत पर हुए अन्यायों का बदला लेने के विचार से जगदीशपुर के अपने राजमहल की बारहदरी में यह बूढ़ा युवक! हां सचमुच ही आयु से बूढ़ा होने पर भी नौजवान दीख पड़ता था। लगभग अस्सी धूपकाल उसके सिर से गुजर चुके थे फिर भी उसके हृदय की वीराग्नि ज्यों की त्यों प्रज्वलित थी। उसकी भुजाओं के स्नायुओं में अब भी नरमुण्डों की माला के गूंथने की सामर्थ्य फड़क रही थी। ८० वर्ष का कुंवर और फिर सिंह। अंग्रेज इस देश को लूटते जायें और यह देखता रहे? असम्भ"। डलहौजी ने अवध के नवाब का राज्य जब हड़प लिया तो कुंवरसिंह का छोटा सा राज्य अंग्रेजों की अन्याय की चक्की से कैसे बच सकता था। जिस अन्याय की तलवार से अंग्रेजों ने भारत के स्वराज्य

का नाश किया था। उस तलवार के टुकड़े टुकड़े कर देने की प्रतिज्ञा राजा कुंवरसिंह ने की थी। यह ८० वर्ष का वृद्ध पलङ्ग पर लेटकर शान्ति से मृत्यु की प्रतीक्षा करने के स्थान पर रणभूमि में कूदने के लिए व्यग्र था। पटना का कमिश्नर टेलर आपको धोखे से पटना बुलाना चाहता था। किन्तु यह राजनीति का वृद्ध खिलाड़ी उसकी चालों में नहीं आया। यदि ये पटना चले जाते तो वह इन्हें बन्दीखाने में ठौंस देता। इस वीर ने विप्लव के लिए अच्छी तैयारी की थी। यथार्थ में बिहार में सच्चे अर्थों में यह क्रांति का आदर्श नेता था। जिस समय दानापुर के क्रांतिकारी सैनिक अपने सामान सहित जगदीशपुर पहुंचे, तुरन्त बूढ़े कुंवरसिंह ने अपने महल से निकलकर शस्त्र उठाकर इस सेना का स्वागत कर नेतृत्व ग्रहण किया। कुंवरसिंह इस सेना को लेकर आरा पहुंचा। वहां पर इन्होंने सरकारी खजाने पर अधिकार कर लिया। बन्दीगृह से कैदी छोड़ दिए। अंग्रेजो दफ्तरों को गिरा कर धरातल में मिला दिया और आरा के छोटे दुर्ग को घेर लिया। तीन दिन तक इसका घेरा रहा। २९ जुलाई को दानापुर से कप्तान उनवर ४०० गोरे और सिक्ख सैनिक लेकर आरा की अपनी सेना की सहायतार्थ चले। राजा कुंवरसिंह ने अपने कुछ सैनिक एक बाग में आम के वृक्षों पर शाखाओं में छिपा रखे थे। रात का समय था। जिस समय अंग्रेज सेना ठीक वृक्षों के नीचे पहुंची अन्धेरे में उधर गोलियों की वर्षा आरम्भ हुई। प्रातः ४१५ सैनिको में से केवल ५० जोवित सैनिक दानापुर की ओर लौटे। कप्तान उनबर भी उस आम्र बाग में मारा गया। उसके पश्चात् मेजर आयर बड़ी सेना तोपों सहित लेकर किले के अंग्रेजों की सहायतार्थ आगे बढ़ा। आठ दिन के संग्राम के पश्चात् आरा का नगर और किला फिर से अंग्रेजों के हाथ में आ गया। राजा कुंवरसिंह जी जगदीशपुर पहुंच गये। मेजर आयर ने उनका सेना सहित पीछा किया। कई दिन संग्राम हुआ १४ अगस्त को जगदीशपुर का महल अंग्रेजों के हाथों में आ गया। राजा कुंवरसिंह बारह सौ सैनिकों और अपने परिवार को लेकर वहां से चल पड़े। राजा कुंवरसिंह ने आजमगढ़ से पचास मील की दूरी पर अतरौलिया नामक स्थान पर अपना डेरा लगाया। पता लगने पर मिलमैन ने अपनी कुछ अंग्रेज सेना और दो तोपें भेजकर कुंवरसिह से मुठभेड़ की। २२ मार्च सन् ५८ की बात है, लड़ते-लड़ते कुंवरसिंह अपनी सेना सहित वेग से पीछे हटने लगा। अंग्रेजों ने यह समझा कि कुंवरसिंह हारकर मैदान से भाग गया है। मिलमैन ने विजय के हर्ष में एक ग्राम के बगीचे में अपनी सेना को ठहराकर भोजन करने की आज्ञा दे दी। उसी समय वह बूढ़ा फुर्तीला सिंह अंग्रेज सेना पर टूट पड़ा। थोड़ी देर के संग्राम के पश्चात् राजा कुंवरसिंह की विजय हुई। कुंवरसिंह ने मिलमैन का पीछा किया। वह जान बचाकर भाग गया। कुछ तोपें और बहुत सा सामान राजा कुंवरसिंह के हाथ आया। अंग्रेज सेना के बहुत से सैनिक इस युद्ध में मारे गये। मिलमैन आजमगढ़ पहुंच गया। मिलमैन की सहायता के लिये एक सेना बनारस तथा दूसरी सेना ग़ाजीपुर से आजमगढ़ पहुंची। २८ मार्च को इस संयुक्त सेना के साथ जो कर्नल जेम्स की अपनी सेना थी, कुंवरसिंह की सेना का संग्राम आजमगढ़ से दूर स्थान पर हुआ। युद्ध में विजय राजा कुंवरसिंह की हुई। जेम्स मैदान से भागकर आजमगढ़ के किले में चला गया। राजा कुंवरसिंह ने इसका पीछा किया। आजमगढ़ नगर पर कब्जा कर लिया। आजमगढ़ के दुर्ग के घेरे के लिए अपने एक दल को छोड़कर स्वयं राजा कुंवरसिंह बनारस की ओर बढ़ा। इसके साथ लखनऊ से भागे हुए अनेक क्रांतिकारी आ मिले। लार्ड कैनिङ्ग घबरा गया। उसने कुंवरसिंह से लड़ने के लिए तुरन्त सेनापति मार्ककर को बड़ी सेना तथा तोपों सहित भेजा। घमासान युद्ध हुआ। ८१ वर्ष का बूढ़ा राजा ऐसी वीरता से लड़ा कि लार्ड मार्ककर आजमगढ़ भाग गया और आजमगढ़ के किले में आश्रय लिया।

कुंवरसिंह ने मार्क का पीछा किया और किले को फिर जा घेरा। पश्चिम की ओर सेनापति लर्गड अंग्रेजो सेना सहित लार्ड मार्ककर को सहायतार्थ आजमगढ़ की ओर बढ़ा। कुंवरसिंह फिर से अपना पैतृक राज्य जगदीशपुर जीतना चाहता था। उसने एक चाल चली। लर्गड की सेना तानु नदी के एक पुल पर से आजमगढ़ आने वाली थी। राजा ने अपनी सेना का एक दल पुल पर अंग्रेज सेना से युद्धार्थ भेज दिया। अपनी शेष सेना सहित वह गाजीपुर की ओर बढ़ा। यह छोटा सा दल पुल पर शत्रु की सेना से डटकर लड़ा। जब दल को पता लग गया कि मुख्य सेना दूर निकल गई तो यह दल भी धीरे-धीरे पीछे हटकर उस सेना से जा मिला। अंग्रेज को पहले इस चाल का पता न चला। पीछे लर्गड की सेना ने १२ मील तक कुंवरसिंह की सेना का पीछा किया, किन्तु राजा कुंवरसिंह निकल गया हाथ न आ सका। कुछ समय के पीछे राजा कुंवरसिंह की सेना ने चक्कर देकर अकस्मात् लर्गड की सेना पर आक्रमण किया। अंग्रेज सेना पर्याप्त हानि उठा तथा हार खाकर पीछे भागी और फिर राजा कुंवरसिंह गङ्गा की ओर बढ़ा। एक और सेना—सेनापति डगलस के अधीन राजा कुंवरसिंह से लड़ने के लिए आगे बढ़ी। राजा ने अपनी सेना के तीन दल किये, एक दल डगलस की सेना से युद्ध करने लगा और दूसरे दोनों दल घूमकर आगे बढ़े, पहला दल खूब वीरता से लड़ा। किन्तु इसकी संख्या अल्प थी अतः चार मील डगलस इसे दबाता चला गया। अन्त में ज्योंही डगलस की सेना थककर रुकी, वे दोनों दल घूमकर अंग्रेजों की सेना पर टूट पड़ें। डगलस की पराजय हुई और उल्टा भागा। फिर उसका पीछा किया किन्तु व्यर्थ। राजा कुंवरसिंह आश्चर्यजनक विद्युत् गति के समान चलकर सिकन्दरपुर पहुंचे। उसने घाघरा नदी पार कर मनोहर ग्राम में जाकर विश्राम किया। यहां पर फिर डगलस से मुठभेड़ हुई। राजा कुंवरसिंह ने अपनी सेना के अनेक छोटे छोटे दल किये। सब पृथक् पृथक् मार्गों से चल दिए। अब डगलस को पृथक् पृथक् दलों का पीछा करना असम्भव हो गया। किन्तु कुंवरसिंह के सारे दल निश्चित स्थान पर फिर मिल गये और गङ्गा की ओर बढ़े। गंगा के निकट पहुंचकर राजा कुंवरसिंह ने यह अफवाह उड़ा दी कि सेना बलिया के निकट हाथियों पर गङ्गा पार करेगी। अतः अंग्रेज सेना उसी स्थान पर रोकने के लिए डट गई। किन्तु राजा कुंवरसिंह ने रात्री में वहां से सात मील नीचे शिवपुर घाट से नावों द्वारा गङ्गा पार करने का यत्न किया। अंग्रेजों को जब पता लगा वे शिवपुर पहुंच गये। सेना सब पार हो चुकी थी। केवल अन्तिम नौका रह गई थी और उसमें स्वयं कुंवरसिंह था। जब किश्ती धार के बीच में थी, किसी अंग्रेजी सेना के सैनिक की गोली कुंवरसिंह की दाहिनी कलाई पर लगी। कुंवरसिंह ने यह विचार किया कि हाथ तो निकम्मा हो गया और समस्त शरीर में विष फैलने का भय है, अतः उसे कोहिनी के पास से काट कर गङ्गा में फैंक दिया। हाथ पर पट्टी बांध गङ्गा को पार किया। गंगा पार करने पर अंग्रेजी सेना उनका पीछा न कर सकी। आठ मास पश्चात् २२ अप्रैल को कुंवरसिंह ने जगदीशपुर पर फिर कब्जा किया। उनका भाई अमरसिंह उनकी सहायतार्थ कुछ सैनिकों सहित राजा कुंवरसिंह से आकर मिल गया। आरा के अंग्रेज अधिकारी चकित हो गये। २३ अप्रैल को लीग्रेड के अधीन अंग्रेज सेना फिर जगदीशपुर पर आक्रमणार्थ आरा से चली। आठ मास निरन्तर राजा कुंवरसिंह और उसकी सेना के दिन संग्राम और कठिन यातनाओं में बीते थे। जगदीशपुर पहुंचे इसे २४ घण्टे भी नहीं हुए थे। राजा का दाहिना हाथ कट चुका था और उसके पास सेना में सैनिक एक सहस्र से अधिक न थे। उनके शत्रुओं की सेना सुसज्जित और ताजा थी। उस समय कुंवरसिंह के पास कोई तोप न थी। डेढ़ मील के अन्तर पर संग्राम हुआ। राजा इतनी वीरता से लड़ा कि अंग्रेजों की बुरी तरह से हार हुई। अंग्रेजों की सेना का

बहुत सा सामान और तोपें राजा कुंवरसिंह के हाथ आई। इतिहास लेखक ह्वाइट लिखता है—"इस अवसर पर अंग्रेजों की पूरी और बुरी से बुरी पराजय हुई।" वीरवर सावरकर जी लिखते हैं, 'किसी राष्ट्र के पुनरुत्थानार्थ युद्ध करने वाले नेता का व्यक्तिगत जीवन सार्वजनिक कर्त्तव्य के समान महान् और विशुद्ध होना बहुत कम पाया जाता है। किन्तु कुंवरसिंह में महान् चरित्र तथा महान् कर्त्तव्य का अपूर्व संगम दीख पड़ा। उसके सैनिकों पर उसका इतना प्रभाव था कि उसके आदरयुक्त भय से उसके सम्मुख हुक्का पीने का साहस कोई भी न करता था। सत्तावन के क्रांति युद्ध में युद्धनीति और रणकौशल में कुंवरसिंह के जोड़ का कोई भी नहीं था। क्रांति युद्ध में वृकयुद्ध का महत्त्व सब से पूर्व उसी ने जाना। शिवाजी महाराज के समान वृकयुद्ध तन्त्र के दाव पेचों को पूर्णतया समझकर अनुकरण करनेवाला वही एकमात्र वीर था। तांत्या टोपे और कुंवरसिंह १८५७ के क्रांतियुद्ध में अग्रसर दो सेनापतियों ने वृकयुद्ध पण्डितों के नाते जो कार्य कर दिखाये हैं उनका तुलनात्मक परीक्षण किया जाये तो राजा कुंवरसिंह को प्रथम स्थान देना पड़ेगा। यह यथार्थ है कि वृकयुद्ध के विध्वंसक भाग में तांत्या टोपे के जोड़ का वीर न था, किन्तु कुंवरसिंह विध्वंसक तथा विधायक दोनों भागों का उपयोग करने में सिद्धहस्त था। कुंवरसिंह लड़ाई करने तथा टालने दोनों भागों का उपयोग करने में सिद्धहस्त था। कुंवरसिंह ने लड़ाई करने तथा टालने, दोनों में असाधारण बुद्धि का परिचय दिया। इसी से शत्रु को नष्ट-भ्रष्ट कर विजय इन्हें प्राप्त हुई। इनका पराक्रम तथा अनुशासन सराहनीय था। अन्त में स्वातन्त्र्य ध्वज की छत्रछाया में तथा स्वाधीन सिंहासन पर यह बूढ़ा राजा किन्तु असाधारण वीर भारतीय योद्धा पुण्यप्रद वीरगति को प्राप्त हुआ।

"राजा अमरसिंह"

२२ अप्रैल १८५८ को राजा कुंवरसिंह के समान महान् व्यक्ति के भारत की भूमि से विदा होने पर उसी के जोड़ के शूरवीर देशभक्त उन ही के भाई अमरसिंह ने उनकी सेना की बागडोर सम्भाली। वह जगदीशपुर की गद्दी पर बैठा। बड़े भाई की मृत्यु के पश्चात् अमरसिंह ने दो चार दिन भी विश्राम नहीं किया। वह सच्चे क्षत्रिय के समान केवल जगदीशपुर पर ही अधिकार जमाये रखने से सन्तुष्ट न रहा। उसने तुरन्त अपनी सेना का संगठन कर आरा पर चढ़ाई कर दी। लीग्रैण्ड की वीर सेना की हार के पश्चात् जनरल डगलस और लर्गड की सेनायें भी गंगा पार कर आरा की सहायतार्थ पहुंच चुकी थीं। ३ मई को इन की सम्मिलित सेना से राजा अमरसिंह का युद्ध हुआ। उसके पश्चात् बिहिया, हातमपुर-दलीलपुर इत्यादि अनेक स्थानों पर दोनों सेनाओं में अनेक युद्ध हुए। राजा अमरसिंह ठीक अपने भाई कुंवरसिंह की तरह नीति से युद्ध करता था। वह बार-बार अंग्रेजों की सेना को हराता तथा हानि पहुंचाता रहा। घबराकर और निराश होकर १५ जून को अंग्रेज जनरल लर्गड त्यागपत्र देकर विश्राम करने के लिए इङ्गलैण्ड चला गया। उसकी सेना छावनी को लौट गई। ऐसा अपमान अंग्रेजों का किसी युद्ध में नहीं हुआ था। विजयी सेनापति युद्ध में आ डटा। गया की पुलिस भी क्रांति युद्ध में सम्मिलित हो गई। अमरसिंह फिर आरा पर चढ़ गया, शहर पर कब्जा कर लिया। जून से लेकर सितम्बर समाप्त होने लगा। जगदीशपुर के बुर्जों पर स्वतन्त्रता का विजयी ध्वज फहरा रहा था और प्रजा-प्रिय राजा अमरसिंह विराजमान था। डगलस के साथ सात हजार सेना थी। उसने अमरसिंह को परास्त करने की शपथ खाई। वह बड़ा अपमानित और दुःखी हुआ। उसने घोषणा कर दी कि अमरसिंह का सिर काटकर लानेवाले को बड़ा बहुत बड़ा पुरस्कार दिया जावेगा।

किन्तु इस से भी कुछ न बना। अंग्रेजों ने जंगल काटकर सड़क बना ली थी। जगदीशपुर पर सात ओर से अंग्रेजी विशाल सेनाओं ने चढ़ाई की। १७ अक्टूबर को इन विशाल सेनाओं ने जगदीशपुर को घेर लिया। किन्तु चतुर सेनापति राजा अमरसिंह अपनी सेना सहित अंग्रेजों को चीरता हुआ साफ बचकर निकल गया। अंग्रेज हाथ मलते रह गये। जगदीशपुर अंग्रेजों के फिर हाथ में आगया। उस समय जगदीशपुर की देवियों ने जिनकी संख्या १५० थी, नीच शत्रुओं के हाथ पड़ने की अपेक्षा हँसते हँसते अपने पतियों के समान वीरगति प्राप्त करना उचित समझा। उन्होंने तोपों में बारूद डालकर स्वयं पलीता दिया और तोपों के मुख के आगे खड़ी हो गईं। इस प्रकार वीरांगनायें परलोक सिधारीं। चितौड़गढ़ की तरह जगदीशपुर में भी यह सांका हुआ। कम्पनी की सेना अब भी राजा अमरसिंह का पीछा कर रही थी। १९ अक्टूबर को नौनदी ग्राम में अमरसिंह अपने ४०० सैनिकों सहित फिर अंग्रेजी सेना के घेरे में आगया। घोर संग्राम हुआ। राजा अमरसिंह के तीन सौ सैनिक इस युद्ध में वीरगति को प्राप्त हुए। शेष १०० वीरों ने कम्पनी की सेना को हराकर पीछे हटा दिया। किन्तु अंग्रेजों की ओर सेना सहायतार्थ पहुँच गई। अमरसिंह के इन १०० वीरों ने अपनी जान हथेली पर रखकर भयङ्कर युद्ध किया। ९७ वीर वहीं लड़ते लड़ते कट मरे। किन्तु सहस्रों शत्रुओं को अपने साथ ही समर भूमि में सुला गये। केवल अमरसिंह और उसके दो साथी बचकर निकल गये। कम्पनी की सेना अब भी इस वीर का पीछा कर रही थी। कुछ अंग्रेज सवार राजा अमरसिंह के हाथी के निकट पहुंच गये और हाथी को पकड़ लिया। किन्तु अमरसिंह कूदकर निकल गया। अमरसिंह कौमूर की पर्वतमाला में प्रविष्ट हुआ। शत्रु वहां भी उनका पीछा कर रहा था किन्तु राजा अमरसिंह ने हार स्वीकार नहीं की। इसके पश्चात् राजा अमरसिंह कहां गया कुछ पता नहीं चलता। उस प्रान्त वालों ने क्रांतिकारियों की सहायता की और गोरों को कुछ पता नहीं दिया। इन पर्वत मालाओं में भी जब तक क्रांतिकारी जीवित रहे हर टीले और उपत्यका से युद्ध करते रहे। एक भी क्रांतिकारी पुरुष वा स्त्री शत्रु के हाथ न आया। वह अन्तिम श्वास तक देशधर्म के लिए युद्ध करते हुए वीरगति को प्राप्त हुए। विदेशी शत्रुओं के साथ अपनी मातृभूमि की स्वाधीनतार्थ बिहार के रणबाँकुरों ने ऐसी होली खेली जिससे बिहार का सिर सदैव ऊँचा रहेगा।

— ० —

@VaidicPustakalay

सम्राट् बहादुरशाह

बेगम जीनत महल

महान् योद्धा रेवाड़ी के राजा राव तुलाराम

१८५७ में अंग्रेजों के अत्याचार

एक मौन क्रान्तिकारी—
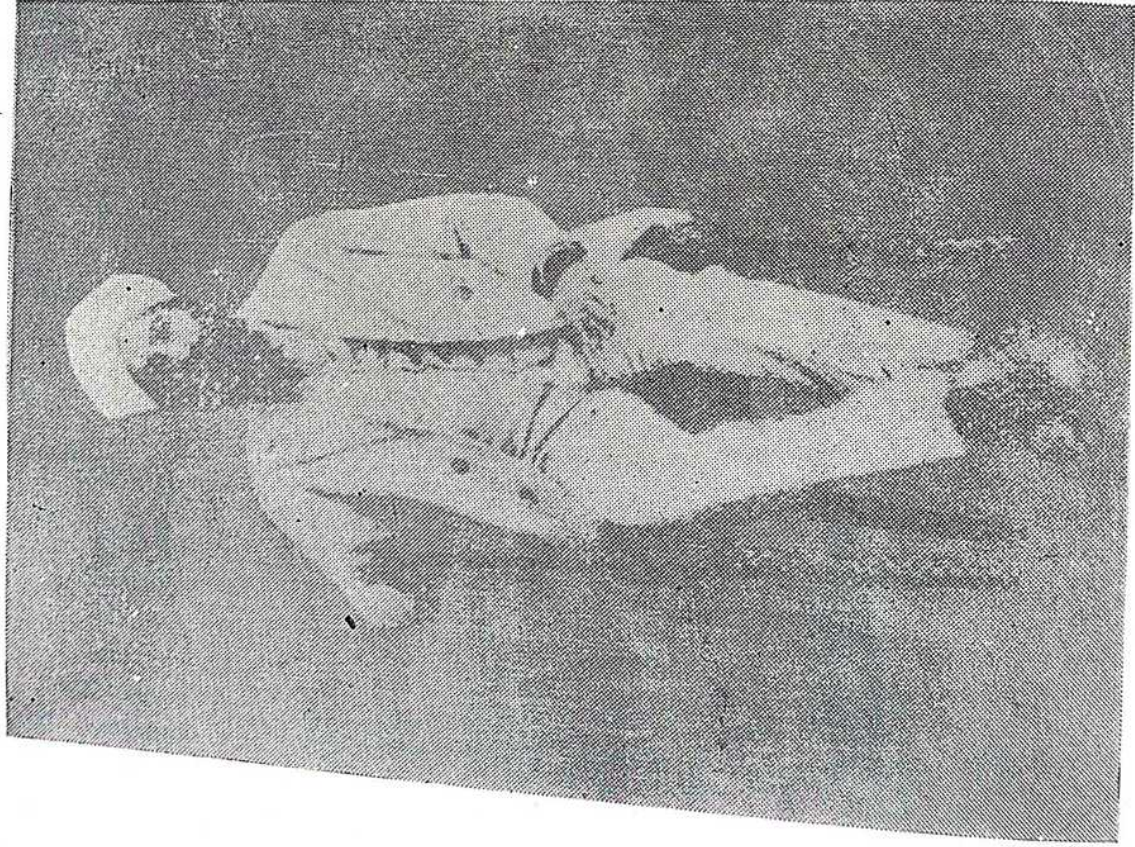
श्री डा० मथुरासिंह

आसामी बाबू

श्रीमती वसुमती शुक्ल

श्री देवसुमन

क्रान्तिकारी दम्पत्ति—

श्रीमती दुर्गादेवी बोहरा
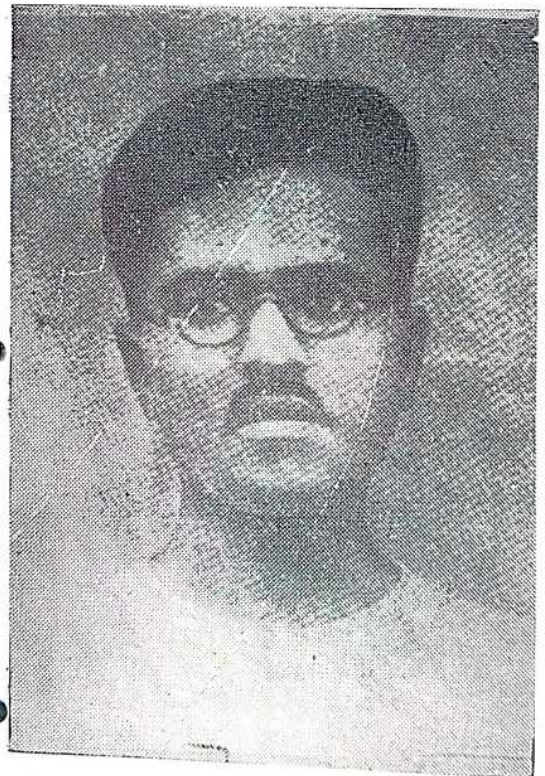
श्री भगवती शरण

जगत्‌सिंह
रहमतअली
जीवनसिंह

करतारसिंह
मा० अमीरचन्द
वी० जी० पिंगले

केहरसिंह
काशीराम
सोहनलाल

१८५७ में अंग्रेजों का भयंकर अत्याचार

ओमानन्द सरस्वती (आचार्य भगवान्देव)

लार्ड कैनिंग की आज्ञा से जनरल नील एक विशाल सेना जिसमें अधिकतर गोरे कुछ सिक्ख और कुछ मद्रासी थे लेकर बनारस पहुंचा। बनारस का नगर अंग्रेजों के हाथ में था। बनारस नगर में भी गिरफ्तारियां की गईं। फिर जनरल नील की आज्ञा से उसकी सेना के अनेक दल फिर से ग्रामीण प्रान्त को विजय करने के लिए ग्रामों पर चढ़ाई करने लगे। जिस ग्राम में सैनिक घुसते थे, जितने मनुष्य उन्हें मार्ग में मिलते थे वे उन्हें बिना किसी भेदभाव के तलवार से वा गोली से उड़ा देते थे, अथवा फांसी पर लटका देते थे। चौबीस घण्टे यह कत्ल कार्य चालू रहता था। सर्वत्र वृक्षों पर लाशें लटकी दिखाई देती थीं। फांसी का कार्य वृक्षों से ही लिया जाता था। इतने पर भी अंग्रेज सन्तुष्ट नहीं हुए, उन्होंने गांव के गांव जलाने प्रारम्भ कर दिए। गांव के बाहर तोपें लगा दी जाती थीं और समस्त आबाल, वृद्ध, वनिता यहां तक कि पशुओं सहित आग में भस्मसात् कर दिए जाते थे। आग इतनी चतुरता से लगाई जाती थी कि एक भी गांव वाला न बच सके। चार्ल्सबाल लिखता है—"कि मातायें अपने दूध मुंहें बच्चों सहित और अगणित पुरुष और स्त्रियां जो अपने स्थान से हिल न सकते थे, बिछौनों के अन्दर ही जला दिये गये। एक अंग्रेज लिखता है कि—"जो लोग आग की लपटों से निकल कर भागते थे, वे गोलियों से उड़ा दिए गये।" एक और अंग्रेज लिखता है कि—"सड़कों, चौराहों और बाजारों में जो लाशें टंगी हुई थीं, उनके उतारने में सूर्योदय से सूर्यास्त तक मुर्दे ढोने-वाली आठ-आठ गाड़ियां बराबर तीन-तीन मास लगी रहीं। इस प्रकार केवल एक स्थान पर छः हजार मनुष्यों को झटपट समाप्त कर परलोक भेज दिया गया।" नील के एक दल का व्यक्ति अपने एक दिन के अत्याचार के विषय में अपने अंग्रेज मित्र को अभिमान से लिखता है कि—आप यह जानकर सन्तुष्ट होंगे कि मैंने २० ग्रामों को भूमि से मिलाकर बराबर कर दिया। बनारस और इलाहाबाद के बीच में जनरल नील ने सहस्रों ग्रामों को ग्रामवासियों सहित जलाकर भस्मसात् कर डाला। वह ११ जून को इलाहाबाद पहुंच गया। उसने किले के सिक्खों को पास के गांव को जलाने के लिए भेज दिया। उन नीच सिक्खों ने यह कार्य सहर्ष किया। १७ जून को अंग्रेजी सेना ने खुसरो बाग पर चढ़ाई की। मौलवी लियाकत अली ने बड़ी वीरता से युद्ध किया किन्तु नील की विशाल सेना के सम्मुख ठहरना असम्भव देख १७ जून की रात को मौलवी लियाकत अली ३० लाख के भारी खजाने को लेकर अपने परिवार सहित कानपुर की ओर निकल गया। कानपुर के पतन के पीछे मौलवी लियाकत अली दक्षिण की ओर चला गया। वहीं से गिरफ्तार करके वह अण्डेमान काला पानी भेज दिया गया। कई वर्ष के पीछे उसकी वहीं मृत्यु हो गई। लियाकत अली का जन्म स्थान महागांव इलाहाबाद से १५ मील की दूरी पर था। वहीं उसकी एक कन्या थी। जनरल नील ने खूब अत्याचार किए। जहां वह पहुंचता था, कत्लेआम करता, अग्नि लगवाता और लूटमार करवाता था। प्रयाग में उसने छोटे-छोटे बच्चों को केवल इस अपराध पर कि वे हरे झण्डे लेकर जलूस निकालते थे, फांसी पर लटका दिया। वृक्षों पर लटका लटका कर सहस्रों व्यक्तियों को प्रयाग में फांसी दी गई। भागते हुए व्यक्तियों को तोप के गोले और गोलियों से उड़ा दिया जाता था। इलाहाबाद में केवल एक स्थान पर ही छः हजार मनुष्य मौत के घाट उतार दिए। सर जार्ज कैम्पबेल लिखता है—"मैं जानता हूं कि इलाहाबाद में बिल्कुल किस तमजिके कत्लेआम किया गया था, + + + इसके पीछे नील ने वे कार्य किये जो कत्लेआम से भी बढ़कर थे। उसने लोगों को जान-बूझकर इस प्रकार की यातनायें दीं और इतना सता-सताकर मारा कि इस प्रकार की यातनायें भारतवासियों ने कभी किसी को नहीं दीं। इसके पश्चात् कानपुर में जो हुआ उसके विषय में नाना साहब प्रकरण में लिखा गया है। इन्हीं दिनों भगवान् ने अंग्रेजों को दण्ड दिया। उनके कैम्प में हैजा फैल गया।

अवध की क्रान्ति

अवध की क्रांति की तैयारी सब स्थानों से अच्छी थी। अतः वहां की पुलिस, फौज, जमींदार, वहां की समस्त जनता ने स्वाधीनता युद्ध की सफलतार्थ अपना सर्वस्व लगा दिया। हजारों पण्डित, साधु और मौलवी एक-एक बारग और एक-एक गांव आगामी युद्ध के लिए सैनिकों और जनता को तैयार करते थे। लखनऊ में सात नम्बर पलटन के हथियार थोड़ी सी गड़बड़ करने पर रखवा लिये गये। लखनऊ में किलाबन्दी कर दी। दो स्थानों मच्छी भवन, दूसरे रेजीडेंसी सब अंग्रेज स्त्री-बच्चे पहुंचा दिए गए और पुरुषों को सैनिक प्रशिक्षण देने लगे। ३० मई की रात को सबसे पहले ७५ नम्बर की पलटन की बन्दूकों का शब्द सुनाई दिया। यह क्रांति के प्रारम्भ होने का नियत चिह्न था। अंग्रेजों के बङ्गले जला दिए गये। जो अंग्रेज मिला, मार डाला गया। ३१ मई को ४८, ७१ नम्बर पैदल और ७ नम्बर अन्य देशी पलटनों में स्वाधीनता का हरा झण्डा फहराने लगा। ३ जून को लखनऊ से २० मील दूर सीतापुर छावनी में कम्पनी की तीन देशी पलटनों ने भी स्वाधीनता पताका फहराकर खजाने पर कब्जा कर लिया और जो अंग्रेज मिला मार डाला। वहां २४ अंग्रेज मारे गये, शेष प्राण बचाकर भाग गये। सीतापुर के सैनिकों ने फरुखाबाद पहुंचकर किले पर चढ़ाई कर दी। उस किले में बहुत से अंग्रेज थे। विकट संग्राम के पश्चात् किला देशी क्रांतिकारी सैनिकों के हाथों में आगया। सब अंग्रेज मारे गये। वहां पदच्युत नवाब को फिर गद्दी पर बैठा दिया। पहली जुलाई को फरुखाबाद रियासत में एक अंग्रेज भी शेष न रहा। इस प्रकार मोहझादी, मालन, बहराईच, गोंडा, सिकरोरा मेलापुर इत्यादि अवध के समस्त प्रान्त १० जून तक पूर्णतया स्वाधीन हो गये। बहुत से अंग्रेज मारे गए, बहुत से भागकर आस-पास के जमींदारों के पास छिप गए। अवध के बहुत से जमींदारों तथा बहुत से तालुकेदारों की जागीरें छीन ली थीं। उन्हीं में से मौलवी अहमदशाह था, उसको पदच्युत कर दिया था। वह तब ही से स्वतन्त्रता युद्ध के प्रचार और तैयारी में लगा हुआ था। सारे अवध में खूब दौरे करते थे। अनेक व्याख्यान दिए, लेख लिखे। उसे अंग्रेज सरकार ने फौज द्वारा गिरफ्तार करवाया और फांसी का हुक्म सुना दिया गया। उसे फांसी की तारीख तक फैजाबाद जेल में डाल दिया गया। इससे सारे जिले फैजाबाद में क्रांति की अग्नि भड़क उठी। फैजाबाद शहर की दो पलटनें कुछ सवार तथा तोपखाना और जनता ने मिलकर स्वाधीनता का झण्डा फहरा दिया। सूबेदार दिलीपसिंह ने आगे बढ़कर सब अंग्रेज अफसरों को कैद कर लिया। जेलखाने की दीवारें तोड़ मौलवी अहमदशाह की बेड़ियां काट डालीं। वहां की जनता ने उन्हें अपना नेता चुना। मौलवी अहमदशाह ने सब अंग्रेजों को किश्तियों में बैठाकर वहां से चलता कर दिया। भोजन सामग्री भी उनको दे दी। ६ जून को सारे प्रान्त में स्वतन्त्रता की घोषणा कर दी गई। मौलवी अहमदशाह की आज्ञा के कारण फैजाबाद शहर में एक भी अंग्रेज नहीं मारा गया। राजा मानसिंह जो विप्लवी नेता था और अंग्रेजों

का पदच्युत किया हुआ राजा था, इसके पास २९ अंग्रेज स्त्रियां और वच्चे इसके अपने किले में अन्त तक सुरक्षित रहे। यह इसने नेताओं की आज्ञा से ही किया। ९ जून को सुलतानपुर तथा १० जून को सालौनी में भी स्वाधीनता पताका फहराने लगी। सालौनी के जमींदार रुस्तमशाह और काला के राजा हनुमन्तसिंह दोनों ने प्रतिज्ञा की थी कि भारत से अंग्रेजी राज्य के बिना निकाले विश्राम न लेंगे। किन्तु इन दोनों ने भी अंग्रेजों के बाल-बच्चों, स्त्रियों को शरण दी थी। भारतीय नरेश सभी इस विषय में उदार रहे।

राजा हनुमन्तसिंह

राजा हनुमन्तसिंह के विषय में इतिहास लेखक मालसेन अंग्रेज लिखता है "अंग्रंजों ने लगान की नई पद्धति के कारण इस वीर उदार राजपूत की अधिकांश जागीर अर्थात् आय का बहुत बड़ा भाग छीन लिया था फिर भी वह स्वभाव से इतना उदार था कि जिस अंग्रेज जाति ने उसका लगभग सर्वनाश कर दिया था, उस जाति के भागे हुए अफसरों के साथ वह वैसा ही व्यवहार करता था जैसा किसी दुखित मनुष्य के साथ। उसने विपत्ति में उनकी सहायता की। उसने उनके स्थानों तक सुरक्षित पहुंचा दिया। जब विदा होते समय कप्तान बैरो ने कहा कि "मुझे आशा है आप इस विप्लव को शान्त करने में अंग्रेजों की सहायता करेंगे, तब राजा हनुमन्तसिंह ने अकड़ से सीधे खड़े होकर कहा— "साहब तुम्हारे देश के लोग हमारे देश में घुस आये और उन्होंने हमारे राजा को हटा दिया। तुमने अपने अफसरों को जिले और तहसीलों में भेजा ताकि पुराने रईसों और जमींदारों के पट्टों की वे जांच करें। कलम के जोर से मुझ से वे जमीनें छीन लीं जो सदा से मेरे कुटुम्ब में चली आती थीं। सारी आमदनी को तुम हड़प कर गये। मैंने विवश हो सहन किया। अकस्मात् तुम पर आपत्ति आई तुम्हारे भाग्य ने पलटा खाया। जिस मुझको लूटकर आपने बरबाद किया था उसी के द्वार पर आप आए फिर भी मैंने तुम्हारी रक्षा की। किन्तु अब मैं अपनी सेना इकट्ठी करके लखनऊ जा रहा हूँ और तुम्हारे भारतवर्ष से भगा देने के प्रयत्न में अपना जीवन लगा दूंगा।" ३१ मई और १० जून के बीच लखनऊ नगर के एक भाग को छोड़कर समस्त अवध स्वतन्त्र हो चुका था। किन्तु राजा हनुमन्तसिंह के समान अंग्रेजों के साथ वीरोचित उदारता अवध वालों ने दिखलाई थी। प्रसिद्ध इतिहास लेखक फारेस्ट लिखता है, "इस प्रकार दस दिन के अन्दर अवध से अंग्रेजी राज्य स्वप्न के समान मिट गया। उसका कोई प्रदेश विशेष न रहा। सेना और जनता ने पराधीनता की बेड़ियाँ तोड़कर फैंक दीं किन्तु उनमें से किसी ने बदला नहीं लिया, किसी ने अन्याय नहीं किया। विद्रोही जनता ने भागते हुए अंग्रेजों के साथ स्पष्ट दयालुता का व्यवहार किया। जिन अंग्रेज शासकों ने अवध निवासियों के साथ घोर अन्याय किया था, उन शासकों का जब पतन हो गया तो अवध वालों ने उन अंग्रेजों के साथ उच्च श्रेणी की उदारता और दयालुता बरती।" अवध में समस्त हिन्दू और मुसलमानों ने मिलकर वाजिद अलीशाह को फिर से सिंहासन पर बैठा दिया। इससे कम्पनी के शासन की अप्रियता और नवाब के शासन की सर्वप्रियता सिद्ध होती है। सारे अवध ने दस दिन के भीतर कम्पनी के झण्डे को फाड़कर रख दिया और सर्वत्र अवध में स्वतन्त्रता की ध्वजा फहराने लगी। यदि अवध की उदार जनता ने सुयोग्य तथा अनुभवी अंग्रेज अफसरों को जीवित न छोड़ा होता, तो नौसिखिये अंग्रेजों के लिए फिर से अवध जीतना असम्भव हो जाता। यह क्रांतिकारियों की हिमालय के समान राजनैतिक भूल थी। इन सब अंग्रेज अफसरों को जेल में डालकर बन्दी बनाना चाहिए था और उनके पहले के

किये हुए अन्याय और अत्याचारों के अनुरूप यथोचित दण्ड देना चाहिए था। मुहम्मद गोरी को बार-बार छोड़ने की जो भूल राजा पृथ्वीराज ने की थी वैसी ही मूर्खता हमारे क्रांतिकारी नेतागण कर बैठे।

अवध के सभी क्रांतिकारी जमींदार अपने सहस्रों सैनिकों सहित लखनऊ में इकट्ठे हो गये। इस समय कानपुर में अंग्रेजों की हार हो चुकी थी। इससे क्रांतिकारियों का और उत्साह बढ़ गया। २८ जून को अंग्रेजों की पराजय का समाचार जब लखनऊ पहुंचा तो अंग्रेजों के सेनापति हेनरी लारेन्स की हिम्मत टूट गई। २९ जून को लोहे के पुल के निकट अंग्रेजों की सेना इकट्ठी हुई। क्रांतिकारियों ने आक्रमण किया। एक अत्यन्त घमासान युद्ध हुआ। अन्त में अंग्रेजों की हार हुई। इनकी तीन तोपें क्रांतिकारियों के हाथ आईं। अंग्रेज विवश हो रेजीडेन्सी के किले में चले गये। क्रांतिकारियों ने रेजीडेन्सी और मच्छीभवन दोनों को घेर लिया। अंग्रेजों ने मच्छीभवन के मेगजीन में आग लगा दी। मच्छीभवन फिर क्रांतिकारियों के हाथ में आगया। उस समय क्रांतिकारियों में इतना उत्साह था कि बेगम हजरत महल के अधीन अवध की अनेक स्त्रियाँ तक मरदाना वेष पहनकर हथियार बांधकर अपने अलग दल बनाकर लड़ रही थीं। अब अंग्रेजों के हाथ में रेजीडेन्सी का किला था उसमें, लगभग एक सहस्र अंग्रेज और ८०० सिख आदि भारतीय थे। उनके पास अस्त्र-शस्त्र और भोजनादि की सामग्री पर्याप्त थी। रेजीडेन्सी में अंग्रेज घिरे हुए थे। मालसेन अंग्रेज लिखता है "समस्त अवध ने हमारे विरुद्ध शस्त्र उठा लिए थे। सब सेना नवाब, जमींदार उनके ढाई सौ किले जिनमें से बहुतों पर भारी तोपें लगी हुई थीं—सबके सब हमारे विरुद्ध खड़े हो गये थे। उन्होंने यह तोलकर देख लिया था कि उनके अपने नवाबों का शासन कम्पनी के शासन से बहुत अच्छा था। हमारी सेना के पेन्शनर सैनिक तक हमारे विरुद्ध प्रत्येक विप्लव में सम्मिलित थे।" लखनऊ में चिनहट की जीत के पश्चात् अवध की प्रजा ने कैदी नवाब वाजिद अलिशाह (जो उस समय कलकत्ते में अंग्रेजों के बन्दी थे) के पुत्र नवाब बिरजीस कादिर को लखनऊ के सिंहासन पर बैठाया। वह नाबालिग था, अतः शासन प्रबन्ध उसकी माता बेगम हजरत महल ने सम्भाला। सबने सहर्ष बेगम को अपना अधिराज स्वीकार कर लिया। बेगम ने सर्वप्रथम अवध की स्वाधीनता का शुभ सन्देश अनेक उपहारों सहित सम्राट् बहादुरशाह की सेवा में दिल्ली भेजा। इसके पश्चात् राजा बालकृष्णसिंह को अपना प्रधानमन्त्री नियुक्त किया, वह बड़ा चतुर था। उसने कठिन समय में सारी व्यवस्था ठीक करके समस्त अवध में शान्ति स्थापित कर दी।

रेजीडेन्सी में अंग्रेज घिरे हुए थे। २० जुलाई, सन् १८५७ को लखनऊ में क्रांतिकारी सेना ने अंग्रेजों पर वेग से आक्रमण करने प्रारम्भ किए। दोनों ओर से कई दिन तक खूब तोपों ने आग उगली। रेजीडेन्सी के अन्दर सिक्ख सिपाही अंग्रेजों की जी जान से सहायता कर रहे थे। बाहर से भारतीय सैनिकों ने अनेक बार सिक्खों को समझाकर अपनी ओर करने का प्रयत्न किया, किन्तु सब व्यर्थ। इसी संग्राम में अवध का अंग्रेज चीफ कनिश्नर सर हेनरी लारेन्स क्रांतिकारियों की गोली से मारा गया। फिर ब्रिगेडियर इङ्गिल बेवं उसके स्थान पर काम करने लगा। क्रांतिकारियों ने रेजीडेन्सी की दीवार के कई भाग उड़ा दिए। अनेक मकान भी गोलियों से गिर गए। रेजीडेन्सी के अन्दर अंग्रेज अत्यन्त निराश हो गए। कानपुर से हैवलांक इनकी सहायतार्थ आ रहा था, वह भी न आ सका। उसे तांत्या वहां उलझाये हुए थे। कानपुर और लखनऊ का अन्तर केवल ४५ मील का है, जनरल हैवलांक का विचार था कि मैं लखनऊ दो चार दिन में पहुंच जाऊँगा। किन्तु जब उसने २९ जुलाई सन् ५७ को कानपुर से निकल कर गङ्गा को पार किया अवध की भूमि पर पैर रखते ही

पग-पग पर उसे युद्ध करना पड़ा। उसने मि० इङ्गलिश को लखनऊ पत्र लिखा कि "मैं अभी कम से कम २५ दिन लखनऊ नहीं पहुंच सकता।" रेजीडेन्सी के अंग्रेज बुरी तरह घबरा गये। इधर क्रांतिकारी रेजीडेन्सी पर बार-बार आक्रमण कर रहे थे। रेजीडेन्सी की दीवारें टूटती जा रही थीं। एक दिन तो दीवार के ऊपर तलवारों और सङ्गीनों का युद्ध हुआ। क्रांतिकारियों ने कई अंग्रेज सैनिकों की सङ्गीन तक छीन ली। किन्तु योग्य और प्रभावशाली सेनापति के अभाव के कारण पूर्ण सफलता क्रांतिकारियों को नहीं मिली। अंग्रेजों को हैबलांक की सफलता की आशा थी अतः उन्होंने हथियार नहीं डाले। हैबलांक लखनऊ की ओर बढ़ने का यत्न कर रहा था। उसे सारे अवध में प्रत्येक ग्राम में लड़ाई करनी पड़ रही थी। हैबलांक को २९ जुलाई को उन्नाव और बशरित गञ्ज दोनों स्थानों पर दो कठिन युद्ध लड़ने पड़े। इन युद्धों में इसकी सेना का छठा भाग समाप्त हो गया। ३० जुलाई को उसे पुनः बशरितगञ्ज से पीछे हटना पड़ा और वह लौटकर मगेलवार में ठहरा। नाना साहब और तांत्या के पुनः आक्रमणों के कारण हैबलांक को पीछे लौटकर कानपुर जाना पड़ा। इससे अवध निवासियों का उत्साह बढ़ गया। लखनऊ दरबार की आज्ञायें सारे अवध में चलने लगीं। सारी जनता उन आज्ञाओं का श्रद्धापूर्वक पालन करने लगी। तन, मन, धन से सारा अवध क्रांतिकारियों के साथ था। कानपुर पहुंचकर हैबलांक ने कलकत्ता से नई सेना अपनी सहायतार्थ मंगवाई। सर जेम्स आऊटरम १५ सितम्बर को बड़ी सेना लेकर कानपुर पहुंच गया। उसने फ़िर लखनऊ पहुंचने के लिए एक बड़ी सेना लेकर गङ्गा को पार किया। उसे दो मास तक आगे बढ़ने में सफलता नहीं मिली, बार-बार कानपुर लौटना पड़ा। इस समय अंग्रेजी सेना बड़ी विशाल थी। नील, ऊटरम, कूपर और आयर चार अनुभवी सेनापति हैबलांक की सहायतार्थ साथ थे। २। हजार अंग्रेज, एक रेजीमेन्ट सिक्खों की और बढ़िया तोपें इनके साथ थीं। किन्तु अवध में ग्रामवासियों ने जिनके पास शस्त्रों की भी कमी थी, इस विशाल सुसन्नद्ध अंग्रेज सेना से चप्पे चप्पे भूमि पर युद्ध किया। साधनों के अभाव में ग्रामवाले कब तक लड़ते। कानपुर से लेकर लखनऊ तक सारे मार्ग पर लाशों के ढेर पड़े थे। मार्ग की नदियां दोनों ओर से रक्त से लाल हो गईं। अंग्रेजों ने ग्रामों में आग लगाकर भस्मसात् कर डाला। २३ सितम्बर को अंग्रेज सेना आलम बाग लखनऊ पहुंच गई। २४ सितम्बर को दिन और रात घमासान युद्ध हुआ। उसी दिन दिल्ली का पतन हो गया, जिससे अंग्रेजों का साहस बढ़ गया। २५ ता० को बड़ा घमासान युद्ध हुआ, दोनों पक्ष बड़ी वीरता से लड़े, लाशों के ढ़ेर लग गये। जनरल नील मारा गया। किन्तु अंग्रेज सेना रेजीडेन्सी में पहुंच ही गई। किले के अंग्रेजों को बड़ा हर्ष हुआ क्योंकि ८७ दिन से वे घिरे हुए थे। उनके सात सौ आदमी मर चुके थे। ९०० अंग्रेज और भारतीय सैनिक वहां थे। हैबलांक की सेना के मार्ग में ७२२ आदमी मारे जा चुके थे, उन्हें हर्ष था किन्तु हर्ष चिन्ता के रूप में शीघ्र बदल गया। क्रांतिकारियों ने फिर रेजीडेन्सी का घेरा दे दिया। वे सब कैद हो गये। उन्हें कैद से छुड़ाने के लिए सर कालिन कैम्पबैल कम्पनी की सेनाओं का नया कमाण्डर-इन-चीफ विलायत से कलकत्ता और जहाजी बेड़ा, नई तोपें, एक विशाल सेना सहित ३ नवम्बर को कलकत्ता पहुंच गया। इसका एक कर्नल पावल मार्ग में मारा गया। दिल्ली के पतन के पश्चात् जनरल ग्रेटहेड बड़ी सेना सहित मार्ग में कत्लेआम करता हुआ और ग्रामों को जलाता, लूटमार करता हुआ कानपुर पहुंच गया। इसने जनरल नील से बढ़कर अत्याचार किये। कानपुर से एक विशाल सेना सहित लखनऊ आलम बाग पहुंच गया। कानपुर में विनढम को सेना सहित वहां की रक्षार्थ छोड़ गया। १४ नवम्बर को खूब घमासान युद्ध हुआ। दिलखुश बाग तक अंग्रेज सेना पहुंच गई। १६ को

सिकन्दर बाग में भयङ्कर युद्ध हुआ। जनरल कूपर, जनरल लम्सडेन मारे गये। सिकन्दर बाग की रक्षार्थ क्रांतिकारी बड़ी वीरता से लड़े। दो हजार क्रांतिकारी इस स्थान पर लड़ते लड़ते शहीद हुए। उस दिन यह स्थान रक्त की झील बन गया। ६ दिन के भयङ्कर युद्ध के पश्चात् २३ नवम्बर को कैम्पबैल की सेना और रेजीडेन्सी की सेना एक दूसरे से मिल गई। दिल्ली की क्षति से अंग्रेजों का साहस बढ़ा हुआ था। क्रांतिकारियों के दिल बुझ रहे थे। २४ नवम्बर को जनरल हैवलांक भी मारा गया। सारी व्यवस्था करके कैम्पबेल ने लखनऊ पर आक्रमण की तैयारी की। इतने में सूचना मिली कि तांत्या टोपे ने फिर कानपुर पर कब्जा कर लिया। कैम्पबेल ऊटरम को लखनऊ के लिए छोड़ स्वयं कानपुर चला गया। दिल्ली की विजय के पश्चात् अंग्रेज अवध और रुहेलखण्ड जहां क्रांतिकारियों का भी गढ़ था, सब ओर से सेनायें लेकर चल पड़े। भिन्न भिन्न अंग्रेजों के सैनिक दलों ने नील और हैवलांक के समान कत्लेआम लगाकर ग्रामों का विध्वंस किया। ये अपने अत्याचारों से ग्रामीण लोगों पर अपनी धाक जमा रहे थे। १८ दिसम्बर को जनरल वालदोल कुछ सेना और तोपों सहित कानपुर से उत्तर की ओर बढ़ा। इटावा के निकट मार्ग पर एक छोटा सा मकान था। इसमें २५ क्रांतिकारी सैनिक थे। इन्होंने सारी सेना को बिना लड़े आगे नहीं बढ़ने दिया। उन्हें तोपों से डराया गया, सन्धि के लिए वालपोल ने कहा, किन्तु वे बिना लड़े नहीं माने। इतिहास लेखक मालसेन लिखता है "वे गिनती के थोड़े थे, उनके पास साधारण बन्दूकें थीं किन्तु पवित्र उद्देश्य के लिए शहीद होने का दृढ़ सङ्कल्प कर चुके थे। उनके मकान के अन्दर हाथ से बम्ब फैंक गये। बाहर से भुस जलाकर उन लोगों को धुएँ में घोट देने का प्रयत्न किया गया जिससे वे बाहर निकल आयें किन्तु सब व्यर्थ हो गये। ये छिद्रों के अन्दर से अंग्रेजों के ऊपर आग बरसाते रहे। उन्होंने सारी अंग्रेज सेना को तीन घण्टे तक रोके रखा। अन्त में तोपों से मकान को उड़ाने से उन वीरों को जिस यश की अभिलाषा थी, वह उन्हें प्राप्त हो गया। वे सब शहीद हो गये और सब के सब उस मकान के खण्डहरों में दबकर अमर हो गये।

फरुखाबाद का नवाब

फरुखाबाद के नवाब ने भी स्वतन्त्रता युद्ध में खूब भाग लिया था। उस पर अपनी राजधानी फतेहगढ़ में वालपोल, सीटन और स्वयं कैम्पबेल ने तीन सैन्यदलों से तीन ओर से आक्रमण किया। कई दिन तक घमासान युद्ध हुआ। १४ जनवरी ५८ ई० को अंग्रेजों की विजय हुई और नवाब को कैद कर लिया गया। नीच अंग्रेजों ने इस नवाब को फांसी देने से पूर्व उसके सारे शरीर पर धर्म के विरुद्ध सूअर की चरबी मल दी और फिर इसे फांसी दी।

नादिरखाँ

यहीं पर नाना साहब का एक सेनापति नादिरखां गिरफ्तार हुआ और उसे भी फांसी पर चढ़ा दिया गया। चार्ल्सबाल लिखता है कि "फांसी पर चढ़ते समय नादिरखां ने भारतीय लोगों को शपथ दी कि तलवार खींचकर और अंग्रेजों को बाहर निकालकर अपनी स्वाधीनता को फिर से स्थापित करें।" इन्हीं दिनों यह अफवाह उड़ी कि नाना साहब बूढ़े बहादुरशाह को छुड़ाने के लिए दिल्ली आ रहे हैं। चार्ल्सबाल लिखता है "कि बहादुरशाह के पहरेदारों को गुप्त आज्ञा दी गई कि यदि वास्तव में नाना साहब दिल्ली के निकट पहुंच जायें तो बूढ़े सम्राट् को गोली से उड़ा देना।" दिल्ली से प्रयाग

तक सारा प्रदेश अंग्रेजों के हाथ में आ चुका था । कैम्पबेल के लिए अवध और रुहेलखण्ड लेना शेष था । २३ फरवरी को कानपुर से चलकर कैम्पबेल १७ सहस्र पैदल, ५ सहस्र सवार और १३४ तोपें लेकर ११ मार्च सन् ५८ ई० को लखनऊ के निकट पहुंच गया। इसकी सेना में अंग्रेज तथा सिक्ख सैनिक थे । उसी समय नेपाल से ६ सहस्र सेना लेकर नेपाल का राजा अंग्रेजों की सहायतार्थ कैम्पबेल की सेना से मिल गया। कैम्पबेल की सेना ने बहुत से ग्राम बारूद से उड़ा दिए । नेपाल के राजा ने इससे पूर्व ३ सहस्र गोरखा सेना अंग्रेजों की सहायतार्थ अगस्त सन् ५७ में आजमगढ़ और जौनपुर भेजी थी । इसी सेना के साथ क्रांतिकारी नेताओं मोहम्मद हुसेन, बेनीमाधव और राजा नादिरखां ने घोर संग्राम करके पूर्वीय अवध की रक्षा करने में सफलता प्राप्त की थी । दो अंग्रेजी सैन्यदल नई नेपाली सेना के साथ लखनऊ की ओर बढ़े । तीनों दल घाघरा पार कर अम्बपुर के दुर्ग पर चढ़ गये । इस दुर्ग में केवल ३४ सैनिक थे। उन्होंने इस विशाल सेना के साथ डटकर युद्ध किया । ये इतनी विशाल सेना से लड़ते-लड़ते वीरगति को प्राप्त हुए। नेपाली सेना ने पर्याप्त हानि उठाकर इस दुर्ग पर कब्जा कर लिया। लखनऊ दरबार से गफूरवेग सेना लेकर इस नेपाली सेना और जनरल फ्रैंक्स की अंग्रेज सेना को रोकने के लिए आगे बढ़ा। सुलतानपुर आदि कई स्थानों पर कई घोर संग्राम हुए। किन्तु अंग्रेजों की यह विशाल सेना नेपालियों की सहायता से विजय प्राप्त करती हुई आगे बढ़ गई ।

दौरारे का अजेय दुर्ग

मार्ग में एक दौरारे का दुर्ग था, इसे विजय करने के लिए फ्रैंक्स अपनी सेना सहित आगे बढ़ा । किन्तु दौरारा दुर्ग में हार खाकर फ्रैंक्स को पीछे हटना पड़ा। इस हार के कारण उसको कैम्पबेल ने यह दण्ड दिया । उसका नाम कमाण्डरों की सूची से निकाल दिया। फ्रैंक्स की सेना चक्कर खाकर दूसरी ओर से लखनऊ में कैम्पबेल की सेना से जा मिली । इधर अवध की समस्त प्रजा, वहां के प्रायः सब राजा और ताल्लुकेदार उत्साह के साथ इस समय अंग्रेजी राज्य के विकट शत्रु के रूप में युद्ध में सम्मिलित थे । ये सब नवाब विरजीस कादिर और बेगम हजरत महल के लिए अपने सर्वस्व की आहुति देने को उद्यत थे । रसल अंग्रेज लिखता है "कि अवध के लोग अपने देश और बादशाह के लिए देशभक्ति के भाव में प्रेरित होकर लड़ रहे थे ।"

मौलवी अहमदशाह

लखनऊ नगर में क्रांतिकारियों में सब से योग्य नेता मौलवी अहमदशाह था । उसकी योग्यता के विषय में इतिहास लेखक होम्स लिखता है—"फैजाबाद का मौलवी अहमदशाह एक ऐसा व्यक्ति था जो अपने भावों और अपनी योग्यता दोनों की दृष्टि से एक महान् आन्दोलन को चलाने और एक विशाल सेना का नेतृत्व ग्रहण करने योग्य था ।" किन्तु लखनऊ की सेनाओं में धीरे-धीरे अव्यवस्था घर करती जा रही थी। जिस प्रकार दिल्ली में बखत खां के विरुद्ध दिल्ली सेना के लोग थे उसी प्रकार अहमदशाह से द्वेष करनेवाले लोग लखनऊ में गड़बड़ कर रहे थे । अहमदशाह की आज्ञाओं का यथोचित पालन नहीं होता था । अनुशासन की शिथिलता ही आगे चलकर पराजय का कारण बनी । कैम्पबैल के पहुंचने से पूर्व अहमदशाह ने कई बार चाहा कि ऊटरम को चार हजार सेना सहित आलम बाग में एक बहुत जोर का आक्रमण करके समाप्त कर दिया जाये, किन्तु उसकी यह इच्छा पूर्ण न हो

सकी। यहां तक बात बिगड़ी कि द्वेष के कारण कुछ लोगों के बल देने से एक बार अहमदशाह को बेगम ने कैद तक कर लिया। किन्तु जनता की श्रद्धा के कारण उसे छोड़ देना पड़ा। कैम्पबेल अपने दलबल सहित लखनऊ पहुंच गया। फिर अहमदशाह ने सेना को सम्भाल लिया। जितनी बार क्रांतिकारियों की सेना ने आलम बाग पर आक्रमण किया मौलवी अहमदशाह घोड़े या हाथी पर सदा सबसे आगे लड़ता हुआ दृष्टिगोचर होता था। १५ जनवरी को मौलवी अहमदशाह के हाथ में गोली लगी और १७ जनवरी को क्रांतिकारियों का एक मुख्य सेनापति विदेही हनुमान घायल होकर पकड़ा गया और उसी समय राजा बालकृष्णसिंह मन्त्री की भी मृत्यु हो गई। किन्तु संग्राम चलता रहा। हाथ का घाव कुछ अच्छा होते ही अहमदशाह फिर युद्ध क्षेत्र में १५ फरवरी को आ डटा। कुछ समय पश्चात् बेगम हजरत महल स्वयं शस्त्र धारण कर घोड़े पर सवार हो युद्ध करने लगी। किन्तु अव्यवस्था सेना में पूर्ववत् चल रही थी। क्रांतिकारियों की सेना में ३० सहस्र सैनिक तथा ५० सहस्र स्वयं सेवक थे। कैम्पबेल के पहुंचने के पश्चात् उत्तर और पूर्व से दो ओर से आक्रमण किया गया। ६ मार्च से १५ मार्च तक घमासान युद्ध हुआ। तीसरी बार लखनऊ की गलियों में रक्त की नालियां बहने लगीं। वैसे तो क्रांतिकारी खूब वीरता से लड़े, किन्तु अव्यवस्था के कारण दिल्ली के समान लखनऊ का पतन हो गया। अंग्रेजी सेना ने क्रमशः दिलखुश बाग, कदम रसूल, शाहनजफ बेगम कोठी आदि मोर्चों को जीत लिया। १० मार्च को अत्याचारी हडसन, जिसने दिल्ली में निरपराध शाहजादों का खून किया था, लखनऊ के संग्राम में मारा गया। १४ मार्च को अंग्रेजों ने महल पर कब्जा कर लिया। बेगम हजरत महल, नवाब बिरजीस कादिर और मौलवी अहमदशाह तीनों लखनऊ से निकल गये। किन्तु अहमदशाह थोड़ा सा चक्कर देकर अपने सैनिकों सहित फिर लखनऊ में प्रविष्ट हो संग्राम करने लगा। मौहल्ले शाहदत्त गञ्ज में अपना मोर्चा लगा लिया, उसके पास इस समय केवल दो तोपें थीं। दो अंग्रेज पलटनें उसके सम्मुख लड़ रही थीं। किन्तु मौलवी अहमदशाह ने बहुत वीरता से युद्ध किया। शत्रु की पर्याप्त हानि हुई किन्तु अन्त में विजय असम्भव समझ फिर मौलवी साहब लखनऊ से निकल गये। यही लखनऊ का अन्तिम युद्ध था। अंग्रेजी सेना ने ६ मील तक अहमदशाह का पीछा किया किन्तु वह मौलवी अंग्रेजों के हाथ न लगा। लखनऊ का सारा नगर अंग्रेजों के हाथ में आगया। लखनऊ में बिना किसी भेदभाव के अंग्रेजों ने सार्वजनिक लूट की। लोगों को जीवित अग्नि में जलाया गया। अंग्रेज जो अत्याचार कर सकते थे अधिक से अधिक उन्होंने किये। जिस समय अंग्रेज भयङ्कर अत्याचार कर रहे थे उस समय कुछ क्रांतिकारी सैनिक बेगम के पास पहुंचे और अंग्रेज कैदियों को प्रतिहिंसा की भावना से मांगा। बेगम ने सात आठ पुरुष कैदी उनको सौंप दिए, वे उसी समय गोली से उड़ा दिए गए। क्रांतिकारी सैनिकों ने बेगम से अंग्रेज स्त्रियों को जो कैद थीं मार डालने का हठ किया। किन्तु बेगम ने इस नीच कर्म करने से सर्वथा निषेध कर दिया। इतिहास लेखक चार्ल्सबाल लिखता है, "स्त्रियों के विषय में बेगम ने उन लोगों की मांग पूरी करने से इन्कार कर दिया। बेगम ने तुरन्त महल के जनानखाने से उन अंग्रेज स्त्रियों को अपने संरक्षण में ले लिया। बेगम का यह कार्य स्त्री जाति के मान को बढ़ाने वाला है।

लखनऊ की बेगमें

अंग्रेजों की सेना ने राजमहल में घुसकर लूट और संहार किया। महल के जनानखाने में अनेक स्त्रियां मारी गईं, कुछ स्त्रियां बन्दी बनाई गईं। महल की इन स्त्रियों को अपने आन्दोलन की पवित्रता और उसकी अन्तिम विजय में पूर्ण विश्वास था। एक दिन इन कैदी बेगमों से अंग्रेज सैनिक "क्या आप

का यह विचार है कि यह युद्ध समाप्त हो गया है ?" बेगमों ने उत्तर दिया नहीं हमारा विश्वास इसके प्रतिकूल अर्थात् अन्यथा है कि "अन्त में तुम्हारी विजय होगी।" लखनऊ के पतन के पश्चात् भी अवध के कई भागों तथा भारत के अन्य प्रान्तों में स्वतन्त्रता का युद्ध चालू रहा। किन्तु क्रांति का कोई विशेष केन्द्र भारतवर्ष में इस समय नहीं रहा था। इस समय भारत में क्रांति के दमन के लिए कम्पनी की ९६०० तो गोरी सेना थी और अंग्रेज जाति के बड़े से बड़े अनुभवी सेनापति भारत में उपस्थित थे। दूसरे गोरखों और सिक्खों दोनों नें अपनी पूरी शक्ति से अंग्रेजों का साथ दिया था। कम्पनी की हिन्दुस्तानी सेना और देशी राज्यों की सेना गोरी सेना के अतिरिक्त अंग्रेजों का साथ दे रही थी। विशाल भारतीय साम्राज्य को अपनें हाथों से खिसकता देखकर इङ्गलिस्तान के शासकों नें उस समय अपनी सारी शक्ति भारतीय क्रांति के दमन के लिए लगा रखी थी। क्रांतिकारियों के अन्दर व्यवस्था का अभाव था। दिल्ली, कानपुर, लखनऊ समान बड़े केन्द्र हाथ से निकल चुके थे। अतः ऐसे समय में नेताओं ने क्रांतिकारियों के नाम जो इधर उधर फैले हुए थे, एक आज्ञा प्रकाशित की "तुम लोग विधर्मियों की व्यवस्थित सेनाओं का खुले मैदान में सामना करने का प्रयत्न न करो। उनमें हमारे से बढ़कर व्यवस्था है और उनके पास बड़ी बड़ी तोपें हैं। उनके आने जाने पर दृष्टि रखो। नदियों के सब घाटों पर पहरा रखो। उनके पत्र व्यवहार मध्य में रोक दो। उनकी रसद को रोक लो, उनकी डाक और चौकियों को तोड़ दो, सदा उनके कैम्प के इधर उधर फिरते रहो। फिरङ्गी को सर्वथा शांति से न बैठने दो।" इस घोषणा से नेताओं की बुद्धिमत्ता सिद्ध होती है।

बारी का युद्ध

मौलवी अहमदशाह लखनऊ से तीस मील दूर बारी नामक स्थान पर था और बेगम हजरत महल छः हजार सैनिकों सहित बिटावली में थी। होप ग्राण्ड तीन हजार और सेना लेकर लखनऊ से पीछा करता हुआ बारी की ओर बढ़ा। मौलवी अहमदशाह को पता चलनें पर अपनी पैदल सेना को लेकर बारी से चार मील दूर एक गांव में ठहर गया और सवार सेना को किसी दूसरे स्थान पर छिपा दिया और मौलवी ने उन्हें यह आदेश दिया कि जिस समय तक पैदल सेना के साथ अंग्रेजों का युद्ध न हो छिपे रहना और अकस्मात् पीछे से आकर अंग्रेज सेना को घेर लें। किन्तु मूर्ख सवारों ने मौलवी की आज्ञा के विरुद्ध अधीर हो,अंग्रेज सेना को सामने देखते ही अपने स्थान से निकलकर आक्रमण कर दिया। इस अव्यवस्था के कारण थोड़ी सी लड़ाई के पश्चात् अंग्रेजों की विजय हो गई और मौलवी अहमदशाह को गांव छोड़ कर भागना पड़ा।

शाहजहानपुर

नाना साहब और मौलवी अहमदशाह शाहजहानपुर में पहुंच गये। कमाण्डर-इन-चीफ कैम्पबेल ने एक विशाल सेना लेकर चारों ओर से शाहजहानपुर को घेर लिया। वह नाना साहब और मौलवी को पकड़ना चाहता था किन्तु ये दोनों नेता अंग्रेज सेना के बीच से बचकर निकल गये और बरेली पहुंच गये।

बरेली

बरेली रुहेलखण्ड की राजधानी अब भी स्वतन्त्र थी, इसका प्रवन्ध खान बहादुर खां के अधीन था। इस समय दिल्ली का शाहजादा मिरजा फिरोजशाह, नाना साहब, मौलवी अहमदशाह, बाला-साहब, बेगम हजरत महल, राजा तेजसिंह और अन्य अनेक नेता बरेली में थे। सर कैम्पबेल बरेली की ओर बढ़ा। क्रांतिकारी नेता पहले ही बरेली छोड़कर चारों ओर रुहेलखण्ड में फैल जाने का निश्चय

अंग्रेजी सेना ने बरेली को घेर लिया। बरेली के असंख्य क्रांतिकारी सैनिक
कर चुके थे। ५ मई को अंग्रेजी सेना ने बरेली को घेर लिया। बरेली के असंख्य क्रांतिकारी सैनिक तलवार लेकर अंग्रेजी सेना पर टूट पड़े। दोनों के पर्याप्त सैनिक मारे गए। अन्त में ६ मई, सन् ५८ ई० को खान बहादुर खां कुछ सेना और नेताओं सहित बरेली छोड़कर निकल गये। बरेली नगर अंग्रेजों के हाथों में आ गया। इधर मौलवी अहमदशाह ने घूमकर शाहजहानपुर पर हमला करके अंग्रेजी सेना को हराकर फिर नगर पर कब्जा कर लिया।

कैम्पबेल ने फिर शाहजहानपुर पर चढ़ाई की। इस बार तीन दिन संग्राम हुआ और ऐसा प्रतीत होता था कि मौलवी अहमदशाह अब यहां से बचकर नहीं निकल सकेगा। किन्तु चारों ओर से क्रांतिकारी नेता बेगम हजरत महल, शाहजादा फिरोजशाह, नाना साहब आदि सब अपनी सेनायें लेकर १५ मई को सर्वप्रिय मौलवी अहमदशाह को सहायतार्थ शाहजहानपुर पहुंच गये। तब वहां से निकल मौलवी अहमदशाह फिर अवध में घुस गया। मौलवी अहमदशाह ने अंग्रेजों को तङ्ग कर दिया वह, किसी प्रकार से भी वश में नहीं आता था। अब अवध में फिर मौलवी ने अपनी शक्ति बढ़ानी आरम्भ की।

विश्वासघात

मार्ग में यवन नामक एक छोटा हिन्दू राज्य था। वहां का राजा जगन्नाथ था। उसके पास मौलवी अहमदशाह ने सहायतार्थ एक पत्र बेगम हजरत महल की मोहर लगाकर भेजा। राजा ने तुरन्त मौलवी अहमदशाह को अपने पास बुलाया। मौलवी साहब हाथी पर बैठकर पहुंच गया। राजा जगन्नाथसिंह और उसके भाई के साथ बातचीत हो ही रही थी कि जगन्नाथ के भाई ने धोखे से मौलवी अहमदशाह पर गोली चला दी। विश्वासघातक की गोली लगकर गिर पड़े। उस समय नीच पिशाच जगन्नाथ ने अहमदशाह का सिर काट, कपड़े में बांध अंग्रेजों के कैम्प में पहुंचा दिया। जगन्नाथ को इस विश्वासघात के बदले में कम्पनी सरकार ने ५० हजार रुपये पुरस्कार में दिए। अगले दिन मौलवी अहमदशाह का सिर शाहजहानपुर की कोतवाली के सामने टांग दिया। अंग्रेज लेखक के लेखानुसार "मौलवी अहमदशाह उत्तर भारत में अंग्रेजों का सबसे महान् शत्रु" समाप्त हो गया। भारत के सन् ५७ के स्वाधीनता युद्ध के हुतात्माओं में मौलवी अहमदशाह का नाम भी सदा के लिए अमर हो गया और भारत की आने वाली सन्तति उन्हें सदैव श्रद्धा की दृष्टि से देखेगी।

इतिहास लेखक मालसेन लिखता है "मौलवी एक बड़ा अद्भुत मनुष्य था। सेनापति के रूप में उसकी योग्यता विप्लव में अनेक बार प्रमाणित हुई ++ कोई भी और मनुष्य अभिमान के साथ यह न कह सकता था कि मैंने दो बार सर कालिन कैम्पबेल को परास्त किया। फैजाबाद के मौलवी अहमदशाह की इस प्रकार मृत्यु हुई। यदि एक ऐसे मनुष्य को जिसकी जन्मभूमि की स्वाधीनता का अन्याय द्वारा अपहरण कर लिया गया हो और जो फिर से उस स्वाधीनता को स्थापित करने के लिए योजना करे और युद्ध करे, देशभक्त कहा जा सकता है, तो इस में अणुमात्र भी सन्देह नहीं हो सकता कि मौलवी अहमदशाह सच्चा देशभक्त था। उसने किसी की गुप्त हत्या करके अपनी तलवार को कलंकित नहीं किया था, निहत्थे और निर्दोष मनुष्यों की हत्या को उसने कभी सहन तक न किया था, उसने वीरों के समान आन के साथ और डटकर खुले मैदान में उन विदेशियों के साथ युद्ध किया जिन्होंने उसका देश छीन लिया था, हर देश के वीर और सच्चे लोगों को मौलवी अहमदशाह का आदर के साथ स्मरण करना चाहिए।

वीर नरपतसिंह

लखनऊ से ५० मील दूर रुइया किले में राजा नरपतसिंह ताल्लुकेदार २५० सैनिकों सहित था। १५ अप्रैल को वालपोल ने अपनी सेना से इस रुइया के दुर्ग पर चढ़ाई की। इसके पास कई हजार सेना और तोपें थीं। ज्यों ही अंग्रेज आगे बढ़े किले की दीवारों से गोलियों की वर्षा हुई। ४६ अंग्रेज मारे गये। शेष सेना मार खाकर पीछे हट गई। दूसरी ओर से वालपोल ने किले पर गोलाबारी की। वालपोल की तोपों के गोले दुर्ग के ऊपर से पारकर दूसरी ओर की अंग्रेजी सेना पर जाकर गिरने लगे। इससे अंग्रेजी सेना ही मरी। वालपोल की घबराहट को देखकर जनरल होप आगे बढ़ा। होप मारा गया। समस्त अंग्रेज सेना तिरस्कृत हो, हारकर पीछे हटकर भागी। जनरल होप अंग्रेजों के मुख्यतम और अनुभवी सेनापतियों में से था। उसकी मृत्यु से अंग्रेजों ने भारत तथा इङ्गलैंड में बहुत शोक मनाया। नरपतसिंह ने फिर विचार कर इस छोटे से दुर्ग को छोड़ना उचित समझा। क्योंकि वह अकेला थोड़ी सेना से विशाल अंग्रेजी सेना से कब तक लड़ाई करता। अतः वह अपनी सेना सहित दुर्ग छोड़ चला गया।

अवध में पुनः क्रांति की अग्नि

लार्ड कैनिंग ने अवध में यह घोषणा की कि जो लोग हथियार रख देंगे उन्हें क्षमा कर दिया जायेगा और उनकी जागीरें आदि लौटा दी जायेंगीं। किन्तु इसका कोई प्रभाव नहीं हुआ। ५ जून सन् ५८ को मौलवी अहमदशाह की हत्या के पश्चात् अवधवासियों की क्रोधाग्नि फिर एक बार वेग से भड़क उठी। निजाम अली खां ने पीलीभीत पर आक्रमण कर दिया। खान बहादुर खां ने चार हजार सेना इकट्ठी की और युद्धार्थ आ डटा। फरुखाबाद में पुनः पांच हजार सैनिकों ने संगठन किया। नाना साहब, बाला साहब, विलायतशाह और अली खां मेवाती के अधीन सहस्रों सैनिक इकट्ठे होने लगे। घाघरा नदी के तट पर चौक घाट में बेगम हजरत महल और सरदार मामू खां की सेना थी। शाहजादा फिरोजशाह भी इस समय अवध में था। इसके अतिरिक्त रुइया का राजा नरपतसिंह, राजा रामबख्श, बहुनाथसिंह, चन्दासिंह, गुलाबसिंह, भूपालसिंह, हनुमन्तसिंह आदि अनेक बड़े बड़े जमींदार अपनी सेनाओं सहित अवध को फिर अंग्रेजों के हाथों से छीनने के लिए यत्नशील थे। बूढ़े राजा वेणीमाधव ने फिर लखनऊ पर चढ़ाई की तैयारी आरम्भ की।

राजा वेणीमाधव

राजा वेणीमाधव के स्थान शङ्करपुर पर अंग्रेजों की तीन विशाल सेनाओं ने तीन ओर से चढ़ाई की। कहां अंग्रेजों का उस समय का बढ़ा हुआ बल और कहां राजा की छोटी सी सेना और थोड़ा सा सामान। किन्तु राजा ने डटकर युद्ध किया। कैंम्पबेल ने सन्धि करने के लिए सन्देशा भेजा। क्षमा करने और जमींदारी वापस करने का प्रलोभन भी दिया। किन्तु वेणीमाधव ने उत्तर दिया "इसके पश्चात् दुर्ग की रक्षा करना मेरे लिए असम्भव है अतः मैं दुर्ग छोड़ रहा हूं किन्तु अपना शरीर आपको कदापि नहीं सौंप सकता। क्योंकि मेरा शरीर मेरा नहीं है बल्कि मेरे बादशाह का है।" जो घोषणा अंग्रेज करते थे उनका खण्डन क्रांतिकारी कर देते थे। क्रांतिकारियों की घोषणाओं का निचोड़ यह था "हमारी प्रजा में से कोई अंग्रेजों के ऐलान के धोखे में न आये।" मलका विक्टोरिया के ऐलान के पश्चात् भी छः मास तक अवध का प्रान्त अंग्रेजों के वश में नहीं हो सका।

समय-समय पर शङ्करपुर, ढढ़िया खेड़ा, राय बरेली, सीतापुर आदि अनेक स्थानों पर संग्राम होते रहे। अन्त में अवध के सब क्रांतिकारी नेपाल की सीमा के उस पार निकाल दिए गये। लगभग ६० हजार पुरुष, स्त्री, बालकों ने नाना साहब, बाला साहब, बेगम हजरत महल और नवाब बरजिस कादिर के साथ नेपाल में प्रवेश किया। नाना साहब ने नेपाल के महाराजा से अंग्रेजों के विरुद्ध सहायतार्थ प्रार्थना की। इसी विषय में परस्पर पत्र व्यवहार हुआ किन्तु सहायता करना तो दूर रहा महाराजा जंगबहादुर ने निर्वासित क्रांतिकारियों को नेपाल में रहने की आज्ञा भी नहीं दी। इससे उल्टी अंग्रेजी सेना को नेपाल में प्रविष्ट कर भारतीय क्रांतिकारियों के संहार करने की स्वीकृति दे दी। अनेक क्रांतिकारी शस्त्र फैंककर भारत में लौट आये, अनेक जङ्गलों में मारे गये वा मर गये। नाना साहब का कुछ पता नहीं क्या हुआ। बेगम हजरत महल और नवाब बरजिस कादिर को कुछ समय पश्चात् नेपाल राज्य ने अपने यहां आश्रय दे दिया। अवध की क्रांति के विषय में इतिहास लेखक मालसेन लिखता है "जिस क्रांति को उन सैनिकों ने आरम्भ किया था उन में से अधिकांश अवध निवासी थे। उस क्रांति-युद्ध में समस्त अवध निवासियों ने स्वाधीनता के लिए इतना दृढ़ता के साथ डटकर और इतनी अधिक देर तक हमारा मुकाबला किया कि भारत में किसी भी दूसरे भाग ने ऐसा युद्ध नहीं किया। इस समस्त युद्ध में उस अन्याय को जो इनके साथ सन् ५६ ई० में किया गया था याद करके अवध निवासियों का हृदय और सङ्कल्प अधिकाधिक दृढ़ होता रहता था। अन्त में कमाण्डर कैम्पबेल ने सब अवध के क्रांतिकारियों को चुन-चुन कर नेपाल के जंगल में आश्रय लेने को विवश कर दिया तो इन वीर लोगों ने पराजय मानने की अपेक्षा भूखा मर जाना अधिक पसन्द किया। कृषकों जमींदारों और तालुकेदार आदि ने बहुत दिनों के लगातार युद्ध के पश्चात् उस समय युद्ध से विराम लिया, जब कि इन्होंने देख लिया कि अब सब कुछ हो चुका है।" इस प्रकार भारत को विदेशी शासन से स्वतन्त्र करने का सबसे महान् और व्यापक प्रयत्न निष्फल गया और अंग्रेजों के राज्य की जड़ कुछ काल के लिए अधिक दृढ़ता से जम गई।

असफलता के मुख्य कारण

इस विषय में सभी इतिहासकारों का एक मत है कि मेरठ की घटना के कारण स्वतन्त्रता संग्राम नियत समय से पूर्व हो गया। यदि महायुद्ध पूर्व निश्चित तिथि ३१ मई को सब स्थानों पर एक साथ प्रारम्भ हुआ होता तो अंग्रेज शासक पुनः किसी प्रकार भी भारत को विजय नहीं कर सकते थे। यही मुख्य और पराजय का प्रथम कारण बना। द्वितीय कारण यह है कि सिक्ख राज्य अर्थात् पटियाला नाभा, जीन्द आदि देशद्रोह करके यदि अंग्रेजों की सहायता न करते तो दिल्ली को अंग्रेजों के लिए जीतना असम्भव था। गोरखों और सिक्खों की सहायता से अंग्रेजों ने दिल्ली और लखनऊ जैसे केन्द्र क्रांतिकारियों से जीतकर छीन लिए। यदि ये केन्द्र क्रांतिकारियों के पास रहते और एक बार दिल्ली की क्रांतिकारी सेना विजय प्राप्त करके पूर्व और दक्षिण में उतर आती तो भारत सदैव के लिए स्वतन्त्र हो जाता। अंग्रेज लेखक रसल लिखता है—"यदि समस्त भारतवासी पूर्ण रूप से हमारे विरुद्ध हो जाते तो भारत में अंग्रेजों का चिह्न तक कहीं शेष न रहता। हमारी सेनाओं ने जी तोड़कर वीरता से अपने स्थानों और किलों की रक्षा की किन्तु इस वीरता में भारतवासी सम्मिलित थे और इन्हीं की सहायता के कारण उन स्थानों की रक्षा करना हमारे लिए सम्भव हो सका। यदि पटियाला और जीन्द के राजा हमारे साथ मित्रता न दर्शाते और सिक्ख हमारी पलटनों में भरती न होते और

@VaidicPustakalay

उधर पंजाब को शान्त न रखते तो सर्वथा हमारा दिल्ली का जीतना असम्भव होता। लखनऊ में भी सिक्खों ने हमें खूब सहायता दी। देशी फौजें ही सबसे आगे रहकर हमारी रक्षा कर रही थीं। देशी लोग ही हमारे साईस रसोइया आदि सेवक हैं, इनकी सहायता के विना हमारी पलटन एक सप्ताह भी जीवित नहीं रह सकती।" जिस प्रकार सिक्खों के विना दिल्ली उसी प्रकार गोरखों के विना लखनऊ का विजय हो सकना असम्भव था।

क्रांतिकारियों का सङ्गठन सुन्दर और प्रशंसनीय था किन्तु लाखों भारतवासी अपने देशवासी क्रांतिकारियों के विरुद्ध देशद्रोह करके अंग्रेजों की सहायता करते रहे। तीसरा कारण यह था कि राजपूताने के देशी नरेश सीन्धिया, होल्कर आदि ने संकोच और अविश्वास के कारण राष्ट्रीय स्वतन्त्रता युद्ध में भाग नहीं लिया। यदि महाराजा जियाजीराव वा कोई प्रमुख राजपूत नरेश समय पर अपनी सेना सहित क्रांतिकारियों को सहायतार्थ दिल्ली पहुंच जाता तो कम्पनी की सेना किसी प्रकार भी युद्ध में ठहर नहीं सकती थी और राजधानी के अन्दर प्रभावशाली नेता की कमी पूर्ण हो जाती। सम्राट् बहादुरशाह ने इन लोगों को क्राँतियुद्ध में सहायतार्थ बहुत प्रयत्न किया किन्तु उसे सफलता न मिली।

चौथा कारण दक्षिण की उदासीनता व भीरुता थी। यदि विन्ध्याचल के नीचे के भाग महाराष्ट्र, मद्रास, बम्बई आदि प्रादि प्रान्त उत्तर भारत के साथ उसी प्रकार क्रांतियुद्ध आरम्भ कर देते तो उन प्रान्तों से अंग्रेज अपनी सेना फिर उत्तर की ओर किसी प्रकार भी नहीं भेज सकते थे। निजाम हैदराबाद ने अंग्रेजों की सहायता करके दक्षिण में बड़ा भारी देशद्रोह करके अपने आपको कलङ्कित किया। दक्षिण भारत के निजाम हैदराबाद आदि नरेश तथा वहां की जनता इस स्वतन्त्रता के युद्ध में अपना कर्त्तव्य पूर्ण करते तो अंग्रेज जनरल नील, जनरल हैवलांक आदि कलकत्ते तक भी न पहुंच सकते थे और काशी, प्रयाग, कानपुर और अन्त में लखनऊ को विजय कर सकना अंग्रेजों के लिए असम्भव होता और भारत की दासता की इतिश्री होकर यह उस समय स्वतन्त्र हो जाता।

सन् ५७ की असफलता का स्मरण किसी भी विचारशील भारतीय के हृदय को दुःखी और सन्तप्त किये बिना नहीं रह सकता। हमारे देश को अभी कुछ समय और विदेशी शासन के अत्याचारों से पीड़ित होना था।

यदि सन् ५७ ई० की यह क्रांति न हुई होती तो यह समझना चाहिए था कि भारतवासियों में से आत्मगौरव, कर्त्तव्यपरायणता, जीवनशक्ति और साहस का अन्त हो चुका था और अंग्रेज शासकों का साहस इतना बढ़ जाता कि वे सारे भारत को ईसाई (विधर्मी) बना डालते और भारतवासियों का स्वधर्म और स्वराज्य प्रेम सदैव के लिए लुप्त हो जाता और इनमें जीवन की छटा भविष्य में कभी देखने को न मिलती। हिन्दू वा मुसलमान एक भी रियासत भारत में शेष बची न रहती। जिस प्रकार अफ्रीका और अमेरीका के आदिमवासियों का योरोपियन जातियों ने उन देशों से सर्वथा अस्तित्व मिटाकर अपने उपनिवेश बना लिये वैसे ही भारत की अवस्था होती। अत्याचार करनेवाले से अत्याचार सहन करने वाला अधिक पतित और पापी होता है। इसके अनुसार हमारे अन्दर मनुष्यता नाम की वस्तु ढूंढ़ने को न मिलती। अंग्रेज लेखक ने ठीक लिखा है—"यदि इन हालात में उन लोगों के पक्ष में जिनके राज्य छीन लिए गये थे और छीनने वालों के विरुद्ध भारतवासियों के भाव न भड़क उठते तो भारतवासी मनुष्यत्व से गिरे हुए समझे जाते।" इन सब दृष्टियों से सन् ५७

के क्रांतिकारियों का बलिदान कदापि व्यर्थ नहीं गया। मरती हुई भारतीय जाति में इसने पुनः जीवन फूंक दिया और भारतीय राष्ट्रीय जीवन में आशा और आत्मविश्वास की वह अग्नि सुलगा दी जो सौ वर्ष तक भी कभी बुझ नहीं सकती। इस क्रांतियुद्ध ने अंग्रेजों को अपनी अत्याचार करने की प्रवृत्ति पर पुनः विचार करने के लिए सावधान कर दिया। इन अत्याचारी शासकों की आंखें भी खुलीं। यही नहीं अंग्रेज सन् ५७ में चीन के साथ युद्ध करने का सङ्कल्प कर चुके थे किन्तु जो अंग्रेज सेनायें चीन पर आक्रमण करने के लिए चल पड़ी थीं वह भारत के क्रांतियुद्ध के कारण रोककर भारत में बुलानी पड़ीं और चीन को ४० वर्ष के होने वाले बौकसर युद्ध तक अधिक शक्ति सञ्चय करने का अवसर मिल गया।

जापान ने भी भारत की अवस्था देखकर लाभ उठाया और उसने सैंकड़ों वर्षों की पुरानी २७३ रियासतों को समाप्त कर अपने देश में एक प्रधान सुदृढ़ शासन की स्थापना की। अतः भारत की क्रांति से ऐशियाई देशों ने लाभ उठाया और ब्रिटिश शासकों की महत्त्वाकांक्षा को इससे बड़ा भारी धक्का पहुंचा। इस क्रांति से भारत के पग कुछ न कुछ स्वतन्त्रता तथा उत्थान की ओर ही आगे बढ़े। अंग्रेज लेखक फारेस्ट लिखता है "सन् ५७ की क्रांति से हमें यह शिक्षा मिलती है कि हमारा साम्राज्य एक ऐसे पतले छिलके के ऊपर स्थित है जिसके किसी भी समय सामाजिक परिवर्तन और धार्मिक क्रांतियों की प्रचण्ड ज्वालाओं द्वारा टुकड़े-टुकड़े हो जाने की सम्भावना है।"

१८५७ के स्वतन्त्रता युद्ध से अंग्रेज नीतिज्ञों की आंखें खुल गईं। वे समझ गये साम्राज्य को और अधिक बढ़ाने की अपेक्षा उसकी दृढ़ता के उपाय करना अधिक आवश्यक है। अब अंग्रेजों को अपने साम्राज्य की स्थिरता भारत की शेष देशी रियासतों के कायम रहने में ही दिखाई देने लगी। लार्ड डलहौजी की अपहरण नीति विप्लव का एक विशेष कारण था। अतः इसका परित्याग किया गया। अतः विप्लव के पश्चात् बर्मा को छोड़कर किसी नई देशी रियासत पर कब्जा नहीं किया गया।

ये देशी रियासतें शनैः शनैः अंग्रेजी राज्य की स्थिरता में किसी प्रकार का खतरा न होकर ब्रिटिश साम्राज्य की विशेष रूप से पोषक बन गईं। कम्पनी के हाथ से राज्य लेकर पार्लियामेण्ट के हाथों में दे दिया गया। सन् ५७ के पश्चात् अधिकांश अंग्रेज नीतिज्ञों ने निश्चय किया कि भारतीयों में अंग्रेजी शिक्षा के प्रसार और इनमें ईसाईमत का प्रचार करके इनके दिलों से स्वदेश प्रेम और स्वधर्म में आस्था वा श्रद्धा को समाप्त कर देना चाहिए। यदि भारतीय अपने धर्म और देश से प्रेम करना छोड़ दें तो इनके राष्ट्रीयता के रहे सहे भाव मिट सकते हैं। ऐसा करने से अंग्रेजी साम्राज्य भारत में स्थिर हो जाएगा।

अंग्रेजी शिक्षा का प्रसार और ईसाईमत का प्रचार सन् १८५५ के पश्चात् अंग्रेजों ने भारत में पूर्ण शक्ति लगाकर किया। इससे उनको अभीष्ट फल मिला। भारत का आगे का इतिहास इसका साक्षी है।

—०—

@VaidicPustakalay

सशस्त्र क्रांति के आद्य प्रचारक

क्रांतिकारियों के पितामह भीष्म वीर श्री श्याम जी कृष्ण वर्मा

ओमानन्द सरस्वती (आचार्य भगवान्देव)

सशस्त्र क्रांति का व क्रांति करने वालों का जब कभी स्मरण किया जाता है तब स्वातन्त्र्य वीर सावरकर, सेनानी बापट, लाला हरदयाल, भगतसिंह आदि की मूर्ति हमारे आगे आ जाती है। परन्तु सशस्त्र क्रांति के आदि संचालक पं० श्याम जी कृष्ण वर्मा का परिचय बहुत कम दृष्टिगोचर होता है। विदेश में रहकर भारत माता की परतन्त्रता की बेड़ियों को खण्ड-खण्ड करने में उनका सबसे ऊँचा स्थान है।

काठियावाड़ प्रान्त ने अनेक महापुरुषों को जन्म दिया है। उनमें से पं० श्याम जी कृष्ण वर्मा का नाम भी विशेषतया उल्लेखनीय है। ये वैदिक साहित्य और संस्कृत के बड़े विद्वान् थे। इन्होंने अपनी प्रतिभा तथा विद्वत्ता का सिक्का पश्चिमी विद्वानों पर जमाया था। विलायत में संस्कृत के प्रसिद्ध विद्वान् श्री मैक्समूलर आपकी विद्वत्ता का लोहा मानते थे। इनमें स्वदेशाभिमान कूट-कूट कर भरा हुआ था। स्वदेश की स्वतन्त्रता के लिए किसी के साथ किसी भी प्रकार का समझौता करने के लिए कभी उद्यत नहीं हुए और जीवन भर स्वतन्त्रता के लिए देश व विदेशों में लड़ते रहे।

सशस्त्र क्रांति के आविष्कारक का जन्म ४ अक्तूबर १८५७ में काठियावाड़ प्रान्त के माण्डली ग्राम में हुआ था। आपके घर में अत्यन्त दारिद्रय था। आपके पिता जी का नाम श्री कृष्ण जी था, वे बम्बई में किसी व्यापारी के यहां नौकरी करते थे। श्याम जी का प्रारम्भिक शिक्षण माण्डली ग्राम में ही हुआ था। इसके बाद आपको भुज नामक ग्राम में अंग्रेजी पढ़ने के लिए भेजा। वहां आपने अपनी बुद्धिमत्ता का अच्छा प्रमाण दिया। एक दिन कर्णपरम्परा से श्याम जी की बुद्धिमत्ता की बात बम्बई के सेठ मथुरादास के पास पहुंची। उस दानवीर ने श्याम जी को बम्बई में बुलाकर विद्या पढ़ने व रहने की व्यवस्था कर दी। श्याम जी ने विलसन स्कूल में प्रवेश किया, आप अपनी श्रेणी में सर्वदा प्रथम रहते थे। श्याम जी कुशाग्रबुद्धि नवयुवक होने के कारण और संस्कृत में अच्छी प्रगति के कारण स्कूल में सबसे अच्छे माने जाते थे। जब कभी कोई सम्भ्रान्त व्यक्ति कालेज का निरीक्षण करने आता था, तब प्रिंसिपल श्याम जी वर्मा को उनके आगे कर देते और वह अपने उत्तरों से सब को चकित कर देते थे।

श्याम जी प्रातः कालेज में जाकर सायंकाल पुनः श्री विश्वनाथ शास्त्री जी के पास संस्कृत पाठशाला में जाते थे। कालेज तथा पाठशाला का पाठ पर्याप्त होता था परन्तु आप रात्रि जागरण कर विद्याभ्यास करते थे। इस प्रकार आपने दिन-रात एक करके विद्याभ्यास किया। आपको अपने

परिश्रम का फल शीघ्र ही मिल गया। आपको गोकुलदास कान्हादास जी से छात्रवृत्ति मिलने लगी। इसके बाद इनकी भरती एलफिन्सटन कालेज में हो गई।

उस समय छबीलदास लल्लूभाई बम्बई के लक्ष्मीपुत्र (धनिक) माने जाते थे। आपको कपड़े के व्यापार पर करोड़ों रुपये की आय होती थी। इन्हीं धनपति का सुपुत्र रामदास श्याम जी की श्रेणी में पढ़ता था। एक दिन अकस्मात् लाला ने अपने सुपुत्र से कहा तेरी श्रेणी में सर्वप्रथम विद्यार्थी कौन है ? तब रामदास ने श्याम जी का नाम लिया। उसके पिता जी ने उसको घर लाने की आज्ञा दे दी। इस प्रकार श्याम जी को रामदास के घर जाना पड़ा। उसके घर आते जाते एक वर्ष हो गया। एक दिन सेठ जी ने सोचा कि अपनी प्रिय कन्या भानुमती व श्याम जी का जोड़ा अच्छा रहेगा। तब सेठ जी से भानुमती की विचारधारा को जानना चाहा कि यह इसमें सहमत है वा नहीं। परन्तु भानुमती ने पहले ही श्याम जी को वर लिया था। एक गरीब लड़के को लखपति ने अपनी सुन्दर कन्या देने की घोषणा कर दी। तब सेठ जी के सम्बन्धी और साथियों ने विवाह की खूब हंसी की। परन्तु सेठ जी ने धैर्यशाली होकर विवाह कार्य सम्पन्न किया।

श्याम जी ने संस्कृत की इतनी योग्यता प्राप्त की कि लोग आपको संस्कृत का पण्डित कहने लगे। उस समय संस्कृतज्ञ मोनियर विलियम्स भारत में आये थे। श्याम जी की संस्कृत योग्यता को देखकर आश्चर्यचकित हो गए और प्रसन्न होकर यह कहा कि यदि श्याम जी आक्सफोर्ड में आयेंगे तो उन्हें मैं पूरा सहयोग दूंगा। इस प्रकार अपना विद्याभ्यास का मार्ग साफ होता हुआ देखकर आप और भी अधिक उत्साह से पढ़ने लगे।

आधुनिक सुधारक महर्षि दयानन्द सरस्वती जी द्वारा संस्थापित आर्यसमाज इस समय भारी तोड़-फोड़ पद्धति से चल रहा था। स्वामी जी महाराज अपनी वाक्पटुता और वाद-विवाद से विपक्षी दल को पीछे करके अपने अस्तित्व की छाप लगा देते थे। महर्षि दयानन्द जी महाराज की विद्वत्ता की छाप उस समय के सुधारक अग्रणी गोपाराव देशमुख, महादेव गोविन्द रानाडे, लोकमान्य तिलक आदि पर पड़ी। श्याम जी पर उनका प्रभाव पड़ना कोई आश्चर्य की बात नहीं। श्याम जी की दसवीं श्रेणी की परीक्षा थी, परन्तु आपको सूचना मिलते ही आपने अपनी पुस्तक लपेटकर रख दी और पूना, नासिक आदि में स्वामी जी के साथ गये। इन स्थानों पर स्वामी जी महाराज के संस्कृत भाषा में व्याख्यान होते थे। आपके व्याख्यान का विषय हिन्दू धर्म सुधार रहता था। श्याम जी स्वामी जी महाराज के सच्चे शिष्य बन गये और आपने भी व्याख्यान देने का अभ्यास धीरे-धीरे आरम्भ कर दिया। विदेश जाने से पूर्व आप अच्छे व्याख्याता हो गये थे। यहां तक कि आपके पास प्रशंसा पत्रों का ढेर लग गया था।

स्वामी दयानन्द जी महाराज की दृष्टि केवल समाज सुधार तक ही सीमित नहीं थी। वे भारत को उन्नत, स्वतन्त्र, स्वावलम्बी और बलवान् बनाना चाहते थे। धर्म वा समाज का कार्यक्रम उनकी दृष्टि में मुख्यतः इसलिए आवश्यक था कि लोगों का अज्ञान और अन्ध-विश्वास दूर हुए बिना यह मार्ग रुद्ध हो रहा था, अत एव राष्ट्रीय शिक्षा पर भी आपका ध्यान आरम्भ से लगा था और वह शिक्षा किस प्रकार की हो इस सम्बन्ध में आपने अपने अमरग्रन्थ सत्यार्थप्रकाशादि ग्रन्थों में पर्याप्त प्रकाश डाला है। आपने संस्कृत शिक्षा प्रचार के लिए अपने जीवनकाल में फरुखाबाद, कासगञ्ज और बनारस आदि में अपने विचारानुसार पाठशालायें १८६८ में खोलीं। आपकी यूरोप के शिल्प और विज्ञान की शिक्षा भी अपने विद्यार्थियों को निज भाषा अर्थात् संस्कृत के माध्यम से दिलाने की

अभिलाषा बड़ी उत्कट थी और साथ ही विदेश में भारतीय प्रचार और सांस्कृतिक आदान-प्रदान द्वारा जगत् में भारत को सम्मान का स्थान दिलाने के महत्त्व को भी आप जानते थे। अपनी इच्छा पूर्ति के लिए १८७९ में आपने श्याम जी कृष्ण वर्मा को इङ्गलैण्ड जाकर अध्ययन करने और भारत सम्बन्धी प्रचार करने के लिए प्रेरणा की। यहीं आप ने श्याम के खर्चे का भी भार उठाया और साथ ही आपने जर्मन विद्वान् बिस से पत्र व्यवहार भी किया।

स्वामी जी के पत्र और विज्ञापन में इस सम्बन्ध में २१ पत्र विद्यमान हैं जिनसे पता चलता है कि आप श्याम जी कृष्ण वर्मा को किस प्रकार का बनाना चाहते थे।

(पहला पत्र)

पं० श्याम कृष्ण वर्मा !

विदेश जाने से पूर्व हमारे पास रहकर वेद और शास्त्र के मुख्य-मुख्य विषय देख लेते तो अच्छा होता।

(दूसरा पत्र)

श्री श्याम जी कृष्ण वर्मा आनन्दित रहो।

विदित हो कि हमने सुना है आपका इरादा संस्कृत पढ़ने-पढ़ाने के लिए इङ्गलैण्ड जाने का है सो यह विचार बहुत अच्छा है। परन्तु आपको पहले भी लिखा था और अब भी लिखते हैं कि जो हमारे पास रहकर वेद और शास्त्र के मुख्य-मुख्य विषय देख लेते तो अच्छा होता। अब आपको उचित है कि जब वहां जाएँ तो जो आपने अध्ययन किया है उसी में बार्तालाप करें और कह देवें कि मैं कुछ वेद-शास्त्र नहीं पढ़ा किन्तु मैं तो देश का छोटा विद्यार्थी हूं और कोई बात वा काम ऐसा ना हो कि जिससे अपने देश का ह्रास होवे, क्योंकि वे लोग संस्कृत पढ़ाने वालों की अत्यन्त इच्छा रखते हैं। इसलिए आपके पास सब तरह के पुरुष मिलने और बातचीत करने के कारण आवेंगे। सो जो कुछ उनके मध्य में कहें समझकर कहें और इस चिट्ठी का जवाब हमारे पास भेज देवें।

दयानन्द सरस्वती

अमृतसर

२५ जुलाई, १८७८

सन् १८७९ में श्याम जी कृष्ण वर्मा भारत को छोड़कर विलायत गये। विलायत में मोनियर विलियम्स साहब ने श्याम जी का भव्य स्वागत किया। आपको बलिअल कालेज में प्रविष्ट करवा दिया। रिटर्ड टम्पल साहब की कृपा से कच्छ से उनको छात्रवृत्ति मिली। वहां श्याम जी ने एक भाषा में पढ़ना आरम्भ नहीं किया अपितु ग्रीक व लैटिन आदि का भी पढ़ना आरम्भ किया। शीघ्र ही वालिका कालेज में बी० ए० हो गए। वहां आप संस्कृत, मराठी आदि में भाषण करते थे।

श्याम जी कृष्ण वर्मा ने इङ्गलैण्ड में राजकीय प्राच्य-परिषद् में १८८१ में पहिले पहल "प्राचीन भारत में लेखन कला" विषयक एक विद्वत्तापूर्ण निबन्ध पढ़कर प्राच्य विद्या विशारद के रूप में प्रसिद्धि प्राप्त की। १८८२ में आक्सफोर्ड विद्यालय का प्रथम भारतीय स्नातक होने के पश्चात् १८८३ में भारत आए। उनके आने से पूर्व ही महर्षि दयानन्द जी महाराज का देहान्त हो गया था। भारत में आकर अपनी पत्नी को भी साथ लेकर पुनः विलायत चले गए। सन् १८८५ में बैरिस्टर होने के पश्चात् आप भारत आ गए।

जब श्याम जी स्वदेश में आये तब लोग आपको आशा भरी दृष्टि से देखते थे। स्वामी जी को श्याम जी के पाण्डित्य और वक्तृत्व कला की अच्छी पहचान थी, स्वामी जी आप में विश्वास करते थे

और यह सोचते थे कि यह तरुण तपस्वी प्राच्य विद्या व पाश्चात्य विद्या में पारङ्गत होकर आर्य-समाज की धुरा को अपने कन्धे पर रखकर विवेक पूर्वक सारे संसार में आर्यसमाज की ध्वजा लहरा देगा। जब श्याम जी विदेश में थे तब स्वामी दयानन्द ने एक पत्र संस्कृत में लिखा था उसमें श्याम जी से कुछ प्रश्न किये थे। इसका क्या कारण है कि धर्मोपदेश करने में अभी तक इंगलिस्तान में तुम्हारी प्रसिद्धि नहीं फैली। इसका या तो यह कारण है कि मैं दूर हूं और तुम्हारी ख्याति मुझे ज्ञात न हो या यह है कि तुम्हें इस कार्य के लिए अवकाश न मिलता हो। हमारे मित्र प्रोफेसर मोनियर विलियम्स की और मैक्समूलर साहब की वेद-शास्त्र के सम्बन्ध में क्या सम्मति है और इनकी व औरों की वेद भाष्य के सम्बन्ध में जो इन दिनों मैं कर रहा हूं, क्या सम्मति है।

श्याम जी कृष्ण बर्मा ने यह पत्र प्रोफेसर मोनियर विलियम्स को दिखाया। जिसकी सरल सुबोध और ललित संस्कृत को देखकर वह इतने मोहित हुए कि उन्होंने उसका अंग्रेजी अनुवाद एथीनियम नाम के पत्र में १३ अक्टूबर १८८० के अङ्क में प्रकाशित कराया और पत्र को आदर्श मानते हुए लिखा कि संस्कृत-भाषा अभी तक आर्यावर्त के पत्र-व्यवहार और दैनिक बोलचाल की भाषा है। आर्यावर्त में शिक्षित मनुष्यों के बीच में यही भाषा विचार विनियम का माध्यम है। आर्यावर्त लगभग २०० भाषाएं बोली जाती हैं. यदि यह भाषा माध्यम न हो तो एक प्रान्त के मनुष्य को दूसरे प्रान्त के मनुष्यों से बात-चीत करने में अत्यन्त कठिनता होती। ऐसी दशा में लोग यह कहते हैं कि संस्कृत भाषा अप्रयुक्त और अवनत दशा में है। यह भयङ्कर भूल है।

श्याम जी कृष्ण वर्मा का परिचय देते हुए मोनियर विलियम ने लिखा था कि आपने ऐसे प्रसिद्ध व्यक्ति से शिक्षा पाई है जो केवल प्राचीन संस्कृत-भाषा के विद्वान् नहीं अपितु जिन्होंने मूर्ति-पूजा आदि का खण्डन और एकेश्वर पूजा का समर्थन करके धर्म सम्प्रदाय में बड़ी हल-चल कर डाली है। स्वामी जी शुद्ध एकेश्वर वाद को मानने वाले हैं और अपने धार्मिक सिद्धांतों को तो वेद पर ही निर्भर करते हैं। इस प्रगति समर्थक देशोद्धारक का नाम दयानन्द सरस्वती है। जिसके भाषण लालित्य और लेखन की गम्भीरता का मैं स्वयं साक्षी हूं क्योंकि जब मैं बम्बई में था तब मैंने स्वामी जी को आर्य-समाज के उत्सव में धर्मविषयक उपदेश देते सुना था।

भारत में आने के पश्चात् आपके घरवासी यह सोचते थे कि हमारा लड़का वकील बनकर अपने बुद्धिचातुर्य से धन कमायेगा। परन्तु श्याम जी को आर्यसमाज के तत्त्वों से प्रेम था। अगाध श्रद्धा थी। श्याम जी ने इस प्रकार की हलचल मचानी प्रारम्भ की कि आर्यसमाज का ध्वज फहराने का कार्य प्रारम्भ हुआ। आपने जिस प्रकार बम्बई में वकालत में ख्याति प्राप्त की, ठीक उसी भांति आर्य-समाज के कार्य में निपुणता प्राप्त की।

कुछ दिन पश्चात् आपने रतलाम नगर में जाकर श्री गोपालराव देशमुख से भेंट की। श्री देशमुख जी लोकोपकारी पुरुष थे और आप दीवान का कार्य भी करते थे, वे वृद्ध होने के कारण अपना दीवान पद छोड़ना चाहते थे, वह इस कार्य से विरक्त हो गये थे। श्याम जी भी उसी समय वहां पहुंचे। श्री गोपालराव जी ने अपने स्थान में श्याम जी को दीवान बनाने की इच्छा राजा जी से प्रकट की। रतलाम के राजा को देशमुख की मन्त्रणा पसन्द आई, उसने तरुणवीर श्याम जी को ७००) रुपया के वेतन पर अपना दीवान स्थान दे दिया। ता० १० नवम्बर १८८६ के दिन आपने दीवानपद ग्रहण किया। दीवान पद प्राप्त होने पर दुष्ट खलपुरुष माकोनिक को यह सह्य न हुआ। श्याम जी कृष्ण वर्मा के विषय में कौन जानता था कि इस प्रकार साधारण घर में जन्मा हुआ बालक इस प्रकार

के उच्चपद को प्राप्त करेगा। आपने बीमारी के कारण दीवान का पद १८८८ में छोड़ दिया और स्वास्थ्य प्राप्त करने अजमेर चले गए। वहां आप बड़ी सफलता से वकालत करते रहे। अजमेर में रहते रहते हुए आप सर्वप्रथम भारतीय थे जो अजमेर म्युनिसिपल कमेटी के सभापति चुने गए। ब्यावर में रूईपेच खोलकर राजस्थान में आधुनिक शिल्पों का प्रवेश भी पहले पहल आपने ही कराया। अजमेर में राजपूताना प्रिंटिंग प्रेस की स्थापना तथा ब्यावर में राजपूताना काटन मिल की स्थापना आप ने ही की थी। सन् १८९२ में महाराणा फतेहसिंह जी मेवाड़ाधिपति के मन्त्री बनकर कार्य करने लगे। दीवान के स्थान पर मन्त्री का पद उस समय मेवाड़ में होता था। मेवाड़ में दीवान का पद उड़ा दिया था। आपका उदयपुर निवासस्थान बन गया। सन् १८९४ में श्याम जी कृष्ण वर्मा को मेवाड़ से जूनागढ़ राज्य में दीवान बनकर जाना पड़ा। महाराणा फतेहसिंह जी में स्वाधीनता वृत्ति से प्रेम कुलाभिमान और तेजस्विता आदि गुण होने के कारण आप श्याम जी कृष्ण वर्मा के गुणों पर मोहित थे। "समानशीलव्यसनेसु सख्यम्" अर्थात् समान गुण, कर्म, स्वभाव वालों में प्रेम और मित्रता होना स्वाभाविक है। अतः अब महाराणा जी को श्याम जी से अत्यन्त प्रेम हो गया था। आपने श्याम जी को बड़े दुःख और शोक से विदाई दी और साथ ही उन्होंने, जब कभी अवकाश हो, उदयपुर आने का स्थायी निमन्त्रण दे दिया।

अब माकीनिक के विषय में लिखते हैं—जब श्याम जी औक्सफोर्ड में थे तब उनकी जिनके साथ मैत्री थी यह भी था। इसने साहब की सिंहिल परीक्षा पास की थी और भरपूर वेतन भारत सरकार से मिलता था। जब श्याम जी जूनागढ़ के दीवान हो गए उसी समय इसकी बदली बड़ौदा में हुई। उस समय इसको १७०० रु० वेतन, २०० प्रवास भत्ता, २५० ऐलौंस मिलता था। परन्तु वह यहां की नौकरी नहीं करना चाहता था। क्योंकि बड़ौदा का पापट मामलेदार गोद लेने के कारण दक्षिणी ब्राह्मण भड़क जावेंगे। यह उसकी शिकायत थी। उसने श्याम जी के पास इस प्रकार पत्र भेजा कि हे महाराज मेरी इच्छा राजपूताने में नौकरी करने की है। मुझे उस प्रान्त का राजपूत बहुत पसन्द है। बड़ौदा भिखारियों का स्थान है। यहां भलेपन व प्रगति का बहुत द्वेष है, यहां मत्सर-मद-जुलम का साम्राज्य है।" पं० श्याम जी कृष्ण वर्मा का माकीनिक पर विश्वास था। अतः जूनागढ़ में स्थान देने का प्रयत्न करने लगे। आपका प्रयास सफल हुआ, परन्तु तीन मास तक माकीनिक को शिमला में कार्य करना पड़ा। एक मास के बाद उसने श्याम जी को पत्र लिखा कि जूनागढ़ में रहने के लिए जगह अच्छी नहीं। बड़ौदा सरकार ने मेरे लिए एक बङ्गला बनवाया है। आप मेरे लिए एक विशेष घर बनवा दें जो कि मोतीबाग के पास हो। तब श्याम जी ने बड़ौदा के बङ्गले का नक्शा मंगाकर उसी प्रकार का बंगला बनवाने लगे। जब तैयार हुआ वह नीच २५ जुलाई को परिवार सहित वहां आया। इस इमारत को बनवाने में श्याम जी ने कोई कमी न रखी थी। परन्तु यह तो एक मांग पूरी होने पर दूसरी मांग रख देता था। उसकी मांगें पूरी करने के कारण भारत सरकार की श्याम जी को शिकायतें आने लगीं। इधर इतना कार्य करने पर भी वह आप से अप्रसन्न रहता था। उसकी अप्रसन्नता हटाने के लिए उसे श्याम जी ने वह पत्र दिखाये। परन्तु वह न माना और अन्ततो गत्वा मित्रद्रोही माकीनिक श्याम जी का विरोधी हो गया। जिस प्रकार श्याम जी ने उसके साथ भलाई की, ठीक उसी प्रकार दुष्ट पामर माकीनिक ने श्याम जी के विरुद्ध षड्यन्त्र रचने शुरु किये। यह नीच यहां तक कि उनके विरोधियों को साक्षी का काम देता था। यही नहीं उसने श्याम जी पर हजारों आरोप

लगाये। इस व्यवहार से दुःखी होकर आपने १८९५ में दीवान पद से त्यागपत्र दे दिया और माकीनिक के इस निन्दनीय व्यवहार से श्याम जी की गौरकाय पुरुषों से श्रद्धा हट गई।

श्याम जी कृष्ण वर्मा वहां से उदयपुर चले आये और महाराणा जी के पास रहने लगे। मेवाड़ के तत्कालीन प्रेजीडेण्ट सर विलियम कर्नल वामली ने महाराणा पर दबाव डाला कि श्याम जी को मेवाड़ में न रखा जाये। इतने पर भी महाराणा ने आपको अपने पास रख लिया। महाराणा फतेहसिंह में देशभक्ति और प्राचीन पुरुषों का गौरव कूट-कूट कर भरा था। अतः आप देशभक्त श्याम जी के साथ हृदय से प्रेम करते थे। वहां पर रहकर श्याम जी ने सरकार से लिखा पढ़ी की और राजनैतिक विभाग द्वारा लगाये आरोपों का निराकरण किया, साथ ही माकीनिक को दोषी तथा बेईमान सिद्ध करके जूनागढ़ से निकलवाया। परन्तु अंग्रेजी सरकार अपने पिट्ठू को कैसे छोड़ सकती थी उस नीच को अपने यहां नौकर रख लिया।

भारत की स्वाधीनता की महत्त्वाकांक्षा श्याम जी में महर्षि दयानन्द की शिक्षा और सत्संग के कारण कूट-कूट कर भरी थी। अंग्रेज सरकार से उनका वैमनस्य था। उनके दुर्व्यवहार ने श्याम जी के हृदय में अंग्रेजों के प्रति अत्यन्त घृणा उत्पन्न कर दी। अंग्रेजों के इस दुर्व्यवहार पूर्ण सम्पूर्ण विषय को 'केसरी' समाचार पत्र में प्रकाशित करने के लिए लोकमान्य तिलक ने श्याम जी से सम्पर्क स्थापित किया। इस पर श्याम जी का महाराष्ट्र के स्वाधीनतावादी युवकदलों से सम्बन्ध हो गया।

सन् १८९६-९७ में भारत में भारी अकाल पड़ा था तब अंग्रेज करोड़ों का अनाज इंगलैंड ले गए और भारत के सीमान्तों पर साम्राज्यवाद युद्ध चलाते रहे। इससे जनता में रोष की अग्नि भड़क उठी। ठीक उसी समय पूना में प्लेग रोग ने आक्रमण किया। पुलिस अधिकारी समस्त इलाके को खाली करने के लिए जनता से बड़ी धृष्टता और असभ्यता पर उतर आये। इससे दुःखी होकर एक स्वाभिमानी युवक ने दो अंग्रेज अधिकारियों को मार डाला। 'केसरी' के सम्पादक श्री तिलक जी ने इस घटना की आलोचना करते हुए उसे अंग्रेज और अधिकारियों के प्रति चिढ़ाने वाले व्यवहार के विरुद्ध चेतावनी देकर उसका समर्थन किया। इस पर श्री तिलक जी को १॥ वर्ष की सजा मिली। छः मराठे युवक पकड़ कर फांसी पर चढ़ा दिए गए और अनेकों को लम्बी लम्बी सजायें देकर बन्दी बना दिया गया। इस काण्ड में श्याम जी का हाथ था। अतः आपने जेल में बन्द होकर सड़ने से अच्छा यह समझा कि विदेश में जाकर अपनी माता के फन्दे को काट दूं, इस विचार से आप अपनी भूमि माता को नमस्कार कर चले गये। साथ ही अपनी पत्नी को भी ले गये।

विलायत में जाकर श्याम जी की काया पलटा खा गई, क्योंकि उन्हें नौकरी का कटु अनुभव हो गया था। आपने विलायत में पांव रखने से पूर्व ही यह प्रतिज्ञा की कि जीवन का शेष भाग भारत माता की मुक्ति में लगाना है। वहां जाकर वह १९०५ तक प्रायः अज्ञात रहते हुए वहां पढ़ने वाले भारतीय युवकों में स्वाधीनता की भावना जगाने और भारत स्वाधीनतावादी आन्दोलन को संगठित करने का यत्न करने लगे। यही कार्य करते हुए आप प्रसिद्ध अंग्रेज दार्शनिक हरबर्ट स्पेंशर तथा यूरोप अमेरिका के दूसरे क्रांतिकारी विचारकों और नेताओं के सम्पर्क में भी आ गये। उनके विचारों, क्रांति सम्बन्धी साहित्य तथा अस्त्र-शस्त्र सम्बन्धी ज्ञान व उपकरणादि को भारत में पहुंचाने का कार्य प्रारम्भ कर दिया।

लन्दन में श्याम जी कृष्ण वर्मा ने "भारतीय समाज तत्त्ववित्" (इण्डियन सोशयोलोजिस्ट) नामक मासिक पत्र निकाला। इसका पहला अङ्क जनवरी १९०५ में निकाला था। इस पत्र को निकालने का उद्देश्य अपने पत्र के पहले अङ्क में इस प्रकार दिया है—

हमारी बहुत अधिक प्रमाण में विलायत की ब्रिटिश जनता को भारतीय जनता की मांग वा कामना है, उसको अच्छी प्रकार रखने का प्रयत्न आज तक किसी ने नहीं किया। भारतवासी हिन्दू जनता की शिकायत ब्रिटेन आदि जनता के सम्मुख रखना इसका मुख्य उद्देश्य है। इस पत्र के साथ आपने एक "भारतीय स्वराज्य सभा" (होमरूल बीज आफ इण्डिया) नामक संगठन खड़ा कर दिया, उसने प्रकट रूप से भारतीय स्वाधीनता के लिए आन्दोलन आरम्भ कर दिया। हरबर्ट स्पेंशर की फैलोशिप की योजना को श्याम जी ने शीघ्र ही अपने पत्र से प्रसारित कर, भांडा फोड़ कर दिया। क्योंकि इस योजना का उद्देश्य भारतीय विद्यार्थी मण्डली को अंग्रेजी में शिक्षण पूरा करनेवाले को आर्थिक सहायता करना था (फैलोशिप १३५ पौण्ड की होती है) और इसके पीछे प्रतिज्ञा कराई जाती थी कि जो इस शिक्षा से शिक्षा ग्रहण करता है उसको आजीवन सरकार की नौकरी करनी पड़ती थी। इसके विरुद्ध श्याम जी ने अपनी लेखनी उठाई और जोरदार शब्दों में इसका खण्डन किया। उन्होंने भारतीय विद्यार्थियों को इससे बचने की मार्मिक अपील की।

पण्डित श्याम जी कृष्ण वर्मा अपने वृत्तपत्र द्वारा किसी भय व लालच से सर्वथा पृथक् रहकर अति कठोर भाषा में ब्रिटिश राज्य का (जो भारत में था) खण्डन करते थे। इसी कारण आपके पत्र का प्रसार अल्पकाल में अत्यधिक होगया। श्याम जी अपनी कल्पना का उपयोग करके वाचक महोदयों को आश्चर्यचकित करते थे। सन् १९०५ में अपने खर्च पर ऐसे भारतीय विद्यार्थियों के लिए जो अपना सारा जीवन भारत की स्वाधीनता के लिए प्रयत्न करने में लगाने का प्रण करें और अंग्रेजों की कृपा पाने या नौकरी स्वीकार करने का कभी यत्न न करने का व्रत लेने को तैयार हों, इस प्रकार के छः छात्रों को छात्रवृत्तियां देने की घोषणा की। सन् १९०६ में लन्दन के एक अच्छे स्थान में तीन मञ्जिल का मकान बनवाकर भारतीय विद्यार्थियों को अपनी ओर आकृष्ट करने के लिए वहां २५ छात्रों के लिए निवास, भोजन, खेल-कूद आदि का प्रबन्ध कर तथा पुस्तकालय, वाद-विवाद, व्याख्यान गोष्ठी आदि सभी उन्नति की सुविधायें उपस्थित कर "भारत भवन" (इण्डिया हाउस) नाम से भारतीय स्वाधीनतावादियों का एक केन्द्र स्थापित किया। विनायक दामोदर सावरकर, दिल्ली से लाला हरदयाल, सेनापति बापट जैसे अनेक देशभक्त युवक उनकी छात्रवृत्तियां पाकर वहां रहने लगे और आप से देशभक्ति का पाठ पढ़ने लगे।

सेनापति बापट ने अंग्रेजी राज्य के विरुद्ध भाषण दिया। जिससे सब का सब विलायत गुञ्जायमान हो उठा तथा श्याम जी ने अपने पत्र द्वारा उसका समर्थन कर अग्नि में घी का काम किया। पञ्जाब केसरी लाला लाजपतराय जी को देश निर्वासन की सूचना मिली तब आपने उस दुःखद घटना पर भी लेखनी उठाई और आपने लिखा कि लाला लाजपतराय को भारत से निकालने का अभिप्राय ब्रिटिश के सौ वर्ष के पाप का घड़ा भर जायेगा। लाला जी के आपने देशभक्ति और त्याग के जो उदाहरण दिए थे उनका परिणाम यह हुआ कि भारतवासियों को बगावत करने में घी का काम दिया और प्रत्येक भारतीय बेडेल फिलिप्स के कथनानुसार देशोन्नति के लिए शूली पर चढ़ने के लिए तैयार हो गया। ११ मई लाला जी के देश बहिष्कार का दिन था। साथ ही वह स्वातन्त्र्य समर का पचासवां स्मृति दिवस था।

इधर पैरिस में पं० श्याम जी कृष्ण वर्मा का मित्र सरदारसिंह राणा था। श्याम जी की प्रेरणा से उसने भी पैरिस में उनकी भांति दो छात्रवृत्तियां देने की घोषणा की। इस पर श्री हेमचन्द्र नामक एक बङ्गाली युवक अपनी समस्त चल-अचल सम्पत्ति बेचकर पैरिस पहुंचा और विस्फोटक पदार्थों का ज्ञान करने लगा। उसी समय उल्लासकरदत्त नामक एक दूसरा बङ्गाली भी बम्ब बनाने के प्रयोग कर रहा था। इस प्रकार बम्ब बनाने वाले तरुण देशभक्तों की मण्डली तैयार हो गई। इन सबके साथ श्याम जी का घनिष्ठ सम्बन्ध था।

लन्दन में इसी साल १९०८ में भारतीय भवन में २१ मई को १८५७ के प्रथम भारतीय स्वाधीनता समर की वर्षी मनाई गई। श्री विनायकराव दामोदर सावरकर ने १८५७ का स्वातन्त्र्य समर नामक ग्रन्थ लिखा था। उसको पढ़कर सुनाया जाता रहा और उसकी अनेक प्रतियां गुप्त रूप से सभाओं में प्रचार के लिए भारत भेजी गईं। श्री हरदयाल जी १९०७ में भारत लौट आये थे और दिल्ली, राजस्थान, पञ्जाब सीमाप्रान्त तथा पश्चिमी युक्त प्रान्त में संगठन फैलाने और दृढ़ करने में लग गये। एक वर्ष कार्य करके पुनः हरदयाल जी यूरोप चले गये थे। तभी लन्दन में मेवाड़ के भूतपूर्व प्रेजीडेण्ट सर विलियम को जिस ने १८९५ में श्याम जी को मेवाड़ से निकालने का प्रयत्न किया था, वही अब लन्दन में अंग्रेजों के भारत मन्त्री के कार्यालय में उनके प्रधान सलाहकार के पद पर रहकर भारतीय विद्यार्थियों से हिल-मिल कर उन से भेद लेने का प्रयत्न करता था।

मदनलाल धींगड़ा ने १ जुलाई १९०९ में कर्नल वापालीची की हत्या कर दी। यह तरुण युवक पन्जाब प्रान्त का रहने वाला था। साथ ही यह 'भारतीय भवन' का छात्र था। श्री सावरकर हरदयाल द्वारा संस्थापित अभिनव भारत समिति का सदस्य था। इसको इस अपराध में प्राणदण्ड दिया गया और श्री विनायकराव सावरकर को पकड़कर आजन्म कारावास की सजा दे दी गई। उनके ज्येष्ठ भ्राता गणेश सावरकर को पहले सजा दी जा चुकी थी। राजस्थान में, ग्वालियर राज्य में अभिनव भारत समिति के अनेक सदस्य पकड़े गये। उन पर ग्वालियर राजनीतिक षड्यन्त्र नाम से दो अभियोग चलाये और पर्याप्त सदस्यों को लम्बी सजायें दी गईं। पण्डित श्याम जी कृष्ण वर्मा का कर्नल के मारने में हाथ था। अतः आप इङ्गलैंड छोड़कर पैरिस चले गये। वहां सरकार ने इस हत्या का दोष आपके सिर लगाया, परन्तु धींगड़ा ने अपने बयान में कहा श्याम जी का इसके साथ कोई सम्बन्ध नहीं है। धींगड़ा की अमर स्मृति में आपने और चार छात्रवृत्तियां देने की घोषणा कर दी।

पं० श्याम जी कृष्ण वर्मा के विषय में नेहरू जी इस प्रकार लिखते हैं—"जो लोग राष्ट्रसंघ में शामिल होने के लिए आते थे तो श्याम जी उनके पास जा नहीं सकते थे। परन्तु मजदूर कार्यालय में कभी-कभी हिन्दुस्तानियों से मिलने का प्रयत्न करते थे। श्याम जी से मिलकर जो असर होता था बड़ा ही मनोरञ्जक होता था। जब कभी श्याम जी मिलते तो मिलते ही यह लोग घबरा उठते थे और न केवल जनता में ही उनसे मिलने से बचने का प्रयत्न करते बल्कि एकान्त में भी आप से मिलने पर किसी न किसी बहाने से क्षमा मांगकर बच निकलते थे क्योंकि वे जानते थे कि श्याम जी से सम्बन्ध रखने या उनके साथ देखे जाने से हमारी खैर नहीं।"

अत एव श्याम जी और उनकी पत्नी को एकाकी जीवन यात्रा बितानी पड़ी। उनके न कोई बाल बच्चे ही थे न कोई सम्बन्धी था—वह पुराने जमाने के स्मृति चिह्न थे। सचमुच उनका जमाना व्यतीत हो चुका था और वर्तमान देश अवस्था उनसे विपरीत थी। इतना होते हुए भी आपकी

@VaidicPustakalay

आंखों में पुराना तेज था, यद्यपि उनमें और मुझ में एक सी कोई चीज नहीं। फिर भी मैं अपनी हार्दिक भावना व इज्जत को नहीं रोक सकता था।

इस प्रकार के आदर्श वीर श्याम जी कृष्ण वर्मा के जीवन पर कई नीच पुरुषों ने कीचड़ उछालने का दुस्साहस किया। एक ने यहां तक कहा कि आप देशभक्ति का ढोंग रचते हैं। यही नहीं आप अत्यन्त रमणीय सौन्दर्य के शहर में रहते हैं। वहां ऊंचे-ऊंचे वृक्षराज से युक्त मन्दिर विराजमान हैं। वहां राजकीय सजावट भी है। विद्युत् प्रकाश, गरम और शीतल स्नान के लिए सुन्दर स्नानागार व भोजन के लिए पकवानों तथा फलों को भरमार रहती है इत्यादि। परन्तु वह वीर अपनी धुन का पक्का था, इन बातों की कहां परवाह करने वाला था, वह अपने पथ पर अग्रसर होता ही गया। आदर्श पुरुष पर टीका टिप्पणी करना ठीक उसी प्रकार है जिस प्रकार सूर्य की ओर थूकना।

श्री पं० श्याम जी कृष्ण वर्मा के निरन्तर दस वर्ष तक अथक परिश्रम करने से वह स्वातन्त्र्य वीर सावरकर, सेनानी श्री बापट, लाला हरदयाल, भाई परमानन्द, मदनलाल धींगड़ा आदि क्रांतिकारी वीर देशभक्त, भारतमाता की सेवा के लिए मिले। इनके और आपके प्रयत्न से ब्रिटिश राज्य की भारत में होली खेली गई। आपका देहावसान देश सेवा कार्य करते-करते पैरिस में हो गया।

श्रीमती कामादेवी

श्रीमती कामादेवी एक पारसी देवी थी। यह पैरिस में 'वन्दे मातरम्" नामक एक पत्र निकालती थी। अमेरिका, जर्मनी आदि देशों में ईसाई पदारियों द्वारा भारत के विषय में फैलाई गई झूठी बातों का निराकरण भी यह किया करती थी। दादाभाई नौरोजी को पार्लियामेंट का सदस्य चुनवाने के लिए इन्होंने अथक परिश्रम किया था। बाद में "होमरूल आन्दोलन" (श्याम जी द्वारा संचालित) में सम्मिलित हो गई। कुछ दिन के पश्चात् जब "अभिनव भारत" का कार्य बढ़ा तो आप इसकी सदस्या बन गईं। एक बार ये जर्मनी में अखिल जर्मन सोशलिस्ट सम्मेलन में सम्मिलित हुईं। सावरकर द्वारा निर्मित भारतीय राष्ट्रीय पताका (झण्डे) को साथ लेती गईं। जब ये बोलने खड़ी हुईं तो अपनी जेब से उस ध्वज को निकालकर बोली "यह है भारतीय राष्ट्र का स्वतन्त्र झण्डा। यह देखिए फहरा रहा है। भारतीय देशभक्तों के रक्त से यह पवित्र हो चुका है। सभ्यगण! मैं आपसे अनुरोध करती हूं कि आप लोग खड़े होकर भारत की स्वतन्त्र पताका का अभिवादन करें।" श्रीमती कामादेवी के भाषण का बड़ा प्रभाव पड़ा और सभी ने टोपी उतार कर भारतीय ध्वज का आदर किया। यह प्रथम ही अवसर था जब किसी भारतीय ने अपने राष्ट्र की स्वतन्त्र पताका फहराने का साहस किया था।

जब वीर सावरकर जी रोगी होकर इङ्गलैंड से पैरिस गये थे श्रीमती कामादेवी के पास पैरिस में ठहरे थे। इन्होंने माता के समान ही सावरकर की प्रेमपूर्वक शुश्रूषा की जिससे वे शीघ्र ही रोग-मुक्त हो गये। वीर सावरकर के लिखे हुए प्रसिद्ध ग्रंथ "सन् ५७ का स्वातन्त्र्य संग्राम" मराठी भाषा की पाण्डुलिपि लन्दन से देवीकामा के पास पैरिस में सुरक्षार्थ भेजी गई। वीर सावरकर इस समय गिरफ्तार हो चुके थे। देवी कामा ने इस पाण्डुलिपि को "जेवर बैंक आफ पैरिस" में सुरक्षित रख दी। किन्तु जर्मनी के आक्रमण से न पैरिस बैंक ही रहा और न श्रीमती कामा की मृत्यु से जेवर का ग्राहक ही रहा। बहुत खोज करने पर भी इसका कुछ पता नहीं चला और मराठी साहित्य का अमूल्य ग्रंथ देवी कामा की मृत्यु के साथ ही नष्ट हो गया।

लिखना सामर्थ्य से बाहर है। इन कष्टों को तो वे ही जानते हैं जिन्होंने उन्हें सहर्ष सहन किया है। जिन व्यक्तियों को गिरफ्तार किया था उन्हें राई के सरकारी पड़ाव में ले जाकर सड़क पर लिटाकर भारी पत्थर के कोल्हुओं के नीचे डालकर पीस दिया गया। उन कोल्हुओं में से एक कोल्हू का पत्थर अब भी २३वें मील के दूसरे फर्लाङ्ग पर पड़ा हुआ है।

वीर योद्धा उदमीराम को पड़ाव के पीपल के वृक्ष पर बान्धकर हाथों में लोहे की कीलें गाड़ दी गईं, उनको भूखा प्यास रखा गया। पीने को जल मांगा तो जबरदस्ती उसके मुख में पेशाब डाला गया। अंग्रेजों का सख्त पहरा लगा दिया गया, भारत मां का यह सच्चा सपूत ३५ दिन तक इसी प्रकार बंधा हुआ तड़फता रहा। इस वीर ने अपने प्राणों की आहुति देकर सदा के लिए हरयाणा प्रान्त और अपने गांव का नाम अमर कर दिया। उसके शव को भी कहीं छिपा दिया।

लिबासपुर के शहीदों की वंशावली

जो व्यक्ति अंग्रेजों के अत्याचार के कारण हुतात्मा (शहीद) हुए उनके सम्बन्धियों की पीढ़ी (कुल) इस प्रकार है—
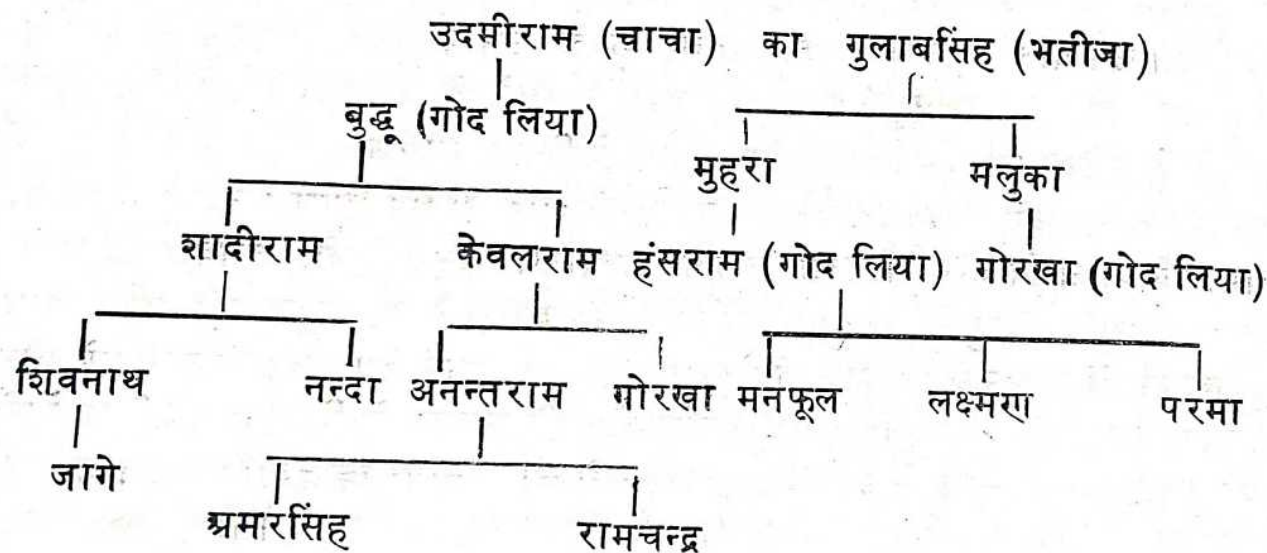
इन परिवारों में से—

जागे, अमरसिंह, रामचन्द्र, मनफूल, लक्ष्मण और परमा ये सब जीवित हैं।
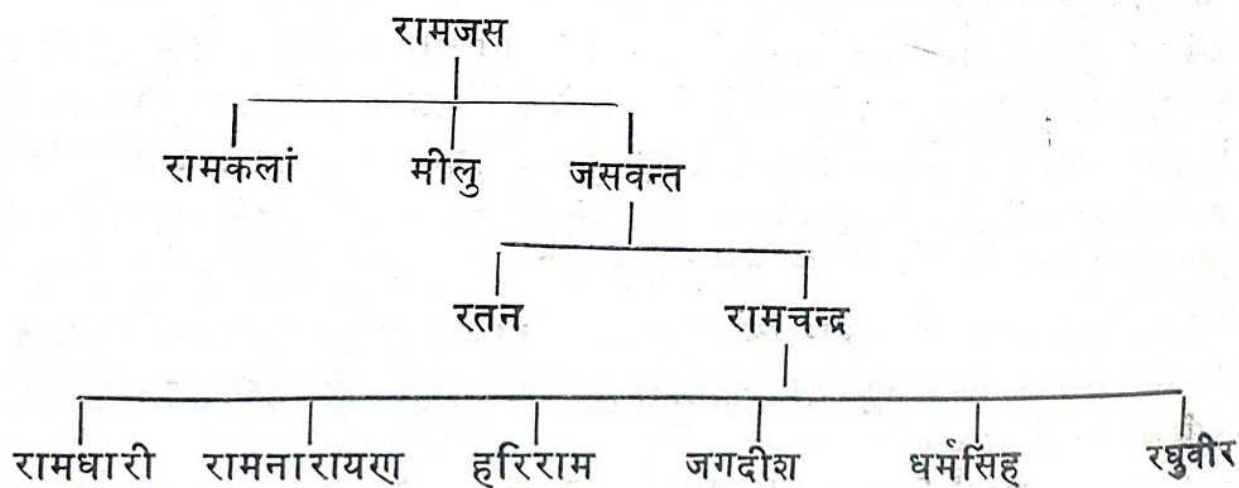
इस परिवार में रामचन्द्र के सुपुत्र रामधारी आदि ६ व्यक्ति जीवित हैं।
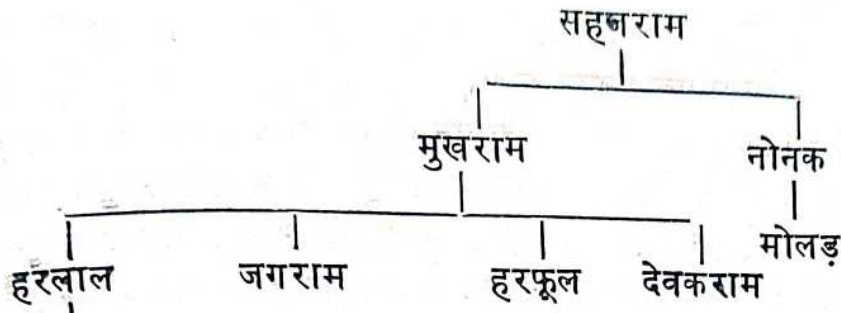
भगवानसिंह आदि सात भाई हैं। भगवानसिंह ने ही लिबासपुर का लेख लिखने में मुझे पर्याप्त सहायता दी। यह एक आर्य सज्जन है।
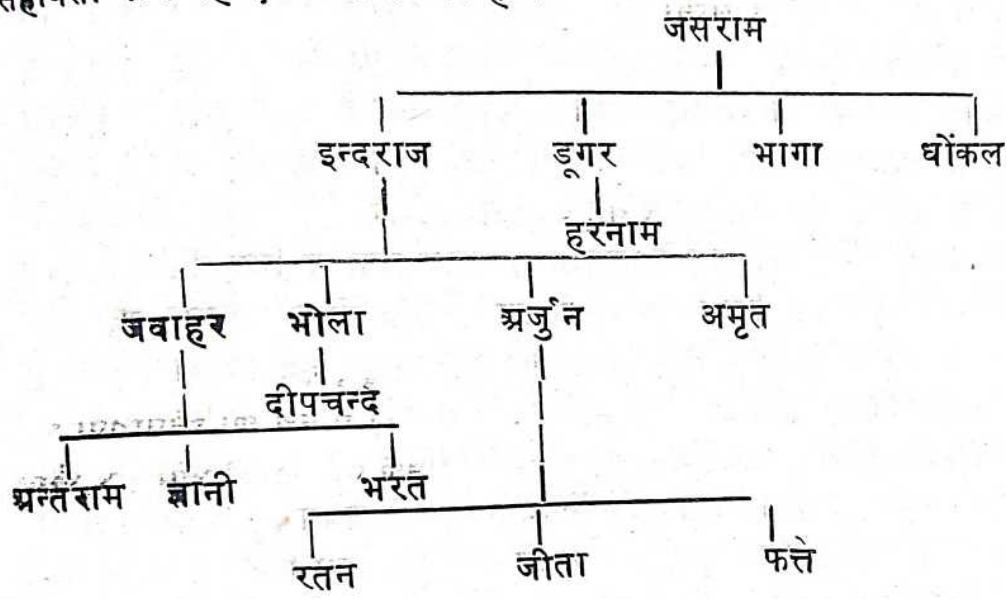
हरकेराम आदि तीनों भाई इस समय जीवित हैं।
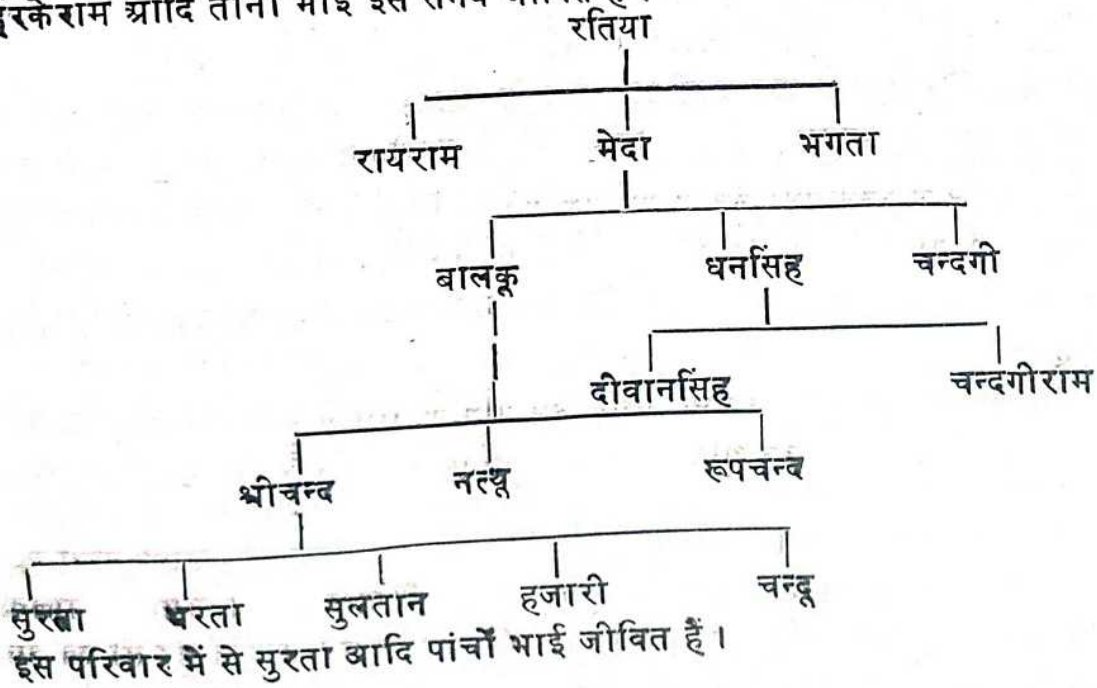
इस परिवार में से सुरता आदि पांचों भाई जीवित हैं।

यह लेख लिखने में श्री बलवीरप्रसाद चतुर्वेदी मुख्याध्यापक "संस्कृत हाई स्कूल लिवासपुर" बहालगढ़ से मुझे पूरी सहायता मिली। यह सामग्री एक प्रकार से आप ने ही इकट्ठी करके दी है। इसके लिए मैं आपका आभारी हूं। जब मैं आपके पास पहुंचा तो आपने तुरन्त स्कूल के सब कार्य छोड़कर मुझे यह लेख लिखने के लिए सामग्री लाकर दी और श्री भगवानसिंह आर्य भी लिबासपुर बुलाने से तुरन्त उसी समय आ गये। यह स्कूल पं० मन्साराम जी आर्य जाखौली निवासी ने खोला हुआ है जहां बैठकर मैंने यह सामग्री एकत्रित की। आपका सारा जीवन आर्यसमाज के प्रचार में बीता है।

मुरथल का बलिदान

मुरथल ग्रामनिवासियों ने भी इसी प्रकार अत्याचारी अंग्रेजों के मारने में वीरता दिखाई थी। अंग्रेज शान्ति होने पर मुरथल ग्राम को भी इसी प्रकार का दण्ड देना चाहते थे। किन्तु नवलसिंह नम्बरदार मुरथल निवासी अंग्रेज सेना को मार्ग में मिल गया। अंग्रेज सेना ने उससे पूछा कि मुरथल ग्राम कहां है? तो नम्बरदार ने बताया कि आप उस गांव को तो बहुत पीछे छोड़ आये हैं। उस समय अंग्रेज सेना ने पीछे लौटना उचित न समझा और यह बात नम्बरदार की चतुराई से सदा के लिए टल गई। देशद्रोही सीताराम को इनाम के रूप में लिबासपुर ग्राम सदा के लिए दे दिया और उस बाई जी (ब्राह्मणी) को बहालगढ़ गांव दे दिया। आज भी इन दोनों ग्रामों के निवासी भूमिहीन (मजारे) कृषक के रूप में अपने दिन कष्ट से बिता रहे हैं। देश को स्वतन्त्र हुए ३८ वर्ष हो गए किन्तु इनको कोई भी सुविधा हमारी सरकार ने नहीं दी। इनके पितरों (बुजुर्गों) ने देश की स्वतन्त्रता के लिए अपने सर्वस्व का बलिदान दिया। किन्तु किसी प्रकार का पारितोषिक तो इनको देना दूर रहा इनकी भूमि भी आज तक इनको नहीं लौटाई गई। सन् ५७ में स्वतन्त्रता के प्रथम युद्ध की शताब्दी मनाई गई, किन्तु देशभक्त ग्रामों को पारितोषिक व प्रोत्साहन तो देना दूर रहा किसी राज्य के बड़े अधिकारी ने धैर्य व सान्त्वना भी नहीं दी। मेरे जैसे भिक्षु के पास देने को क्या रखा है, यह दो चार पंक्तियां इन देशभक्तों के लिए श्रद्धाञ्जलि के रूप में इस बलिदानाङ्क में लिख दी हैं। इस प्रकार के सभी देश-भक्त ग्रामों के लिए यही श्रद्धा के पुष्प भेंट हैं।

कुण्डली का बलिदान

सूबा देहली में नरेला के आस-पास लवौरस गोत्र के जाटकुल क्षत्रियों के दस बारह ग्राम वसे हुए हैं। उनमें से ही यह कुण्डली ग्राम सोनीपत जिले में जी० टी० रोड पर है। इस ग्राम के निवासियों ने भी सन् ५७ के स्वतन्त्रता युद्ध में बढ़ चढ़ कर भाग लिया था। यहाँ के वीर योद्धाओं ने भी इसी प्रकार अत्याचारी भागने वाले अंग्रेज सैनिकों का वध किया था।

एक घटना जिसका पता चल गया और जिसके कारण इस ग्राम को दण्ड दिया गया वह निम्न प्रकार से है—

एक अंग्रेज परिवार ऊँट कराची में बैठा हुआ इस गांव के पास से सड़क पर जा रहा था। वे चार व्यक्ति थे, एक स्वयं, दो उसके पुत्र और एक उसकी धर्मपत्नी। जब वे चारों इस ग्राम के पास आए तो गांव के लोगों से ऊँटकराची को पकड़ लिया। ऊँट को भगा दिया और कराची को एक दर्जी के वगड़ में बिटोड़े में रखकर जलाकर भस्मात् कर दिया। उस अंग्रेज और उसके दोनों लड़कों को मार दिया। उस देवी को भारतीय सभ्यता के अनुसार कुछ नहीं कहा। उसे समुचित भोजनादि की व्यवस्था करके गांव में सुरक्षित रख लिया। जब युद्ध की समाप्ति पर शान्ति हुई तो एक अंग्रेज

नरेला के पास पलाश-वन में जो कुण्डली से मिला हुआ है, शिकार खेलने के लिए आया। उसकी बन्दूक के शब्द को सुनकर अंग्रेज स्त्री आंख बचाकर उसके पास पहुंच गई और उसने अपने परिवार के नष्ट होने की सारी कष्ट-कहानी उसको सुना दी। वह उसे अपने साथ लेकर तुरन्त देहली पहुंच गया। एक किंवदन्ती यह भी है कि उस कराची में ८० हजार का माल था जो उस ग्राम वालों ने लूट लिया। अंग्रेज आदि उस समय कोई कत्ल नहीं किया। वह माल लूटकर इस भय से कभी तलाशी न हो, नरेला भेज दिया गया। कुण्डली ग्राम के कुछ निवासी इस घटना को असत्य भी बताते हैं। कुछ भी हो इस ग्राम को दण्ड देने के लिए एक दिन प्रातः चार बजे अंग्रेजी सेना ने आकर घेर लिया।

ग्राम के वस्त्र, आभूषण, पशु इत्यादि सब अंग्रेजी सेना ने लूट लिया और सारे पशु इत्यादि को अलीपुर ले जाकर नीलाम कर दिया गया। स्त्रियों के आभूषण बलपूर्वक उतारे गये, यहां तक कि भूमि खोद-खोद कर गड़ा हुआ धन भी निकाल लिया गया। बहुत से व्यक्ति तो जो भागने में समर्थ थे ग्राम को छोड़कर भाग गये। ग्राम के कुछ मुख्य-मुख्य आदमी जो भागे नहीं थे गिरफ्तार कर लिए गए। कुछ व्यक्ति ग्राम के सर्वनाश का एक कारण और भी बताते हैं। जब अत्याचारी मिटकाफ जो काणा साहब के नाम से प्रसिद्ध था और हरयाणा के वीर ग्रामों को दण्ड देता और आग लगाता हुआ फिर रहा था, वह नांगल की ओर से आया तो कुछ व्यक्ति उसके स्वागत के लिए दूध इत्यादि लेकर नांगल की ओर चले गए। वे मार्ग में ही इसका स्वागत करके अपने गांव को बचाना चाहते थे। किन्तु उस दिन मिटकाफ ने दूसरे किसी ग्राम का प्रोग्राम नांगल, जखौली इत्यादि का बना लिया। कुण्डली वाले विवश हो लौट आये, जिस समय यह लौट रहे थे तो अंग्रेजी सरकार की चौकी पर मालिम नाम का व्यक्ति रहता था। उसने ग्रामवासियों से दूध मांगा कि यह दूध मुझे दे जाओ, किन्तु चौधरी सुरताराम जो कठोर प्रकृति के थे उसे यह कहकर धमका दिया कि तेरे जैसे तीन सौ फिरते है, तेरे लिए यह दूध नहीं है। उस व्यक्ति ने कहा—अच्छा मुझे भी उन तीन सौ में से एक गिन लेना, समय पड़ने पर मैं भी आप लोगों को देखूंगा। उसी व्यक्ति ने मिटकाफ साहब को सूचना दी कि अंग्रेजों को कुण्डली ग्रामवालों ने मारा है और अंग्रेज अपनी सेना लेकर ग्राम पर चढ़ आये। निम्नलिखित व्यक्तियों को गिरफ्तार किया—

१—श्री सुरताराम जी २—उनका पुत्र जवाहरा ३—बाजा नम्बरदार ४—पृथीराम ५—मुखराम ६—रावे ७—जयमल। कुछ व्यक्ति जो और भी गिरफ्तार हुए थे उनके नाम किसी को याद नहीं। यह लोकश्रुति है कि १४ व्यक्ति गिरफ्तार किए गये थे। ११ को दण्ड दिया गया और तीन को छोड़ दिया गया। इनमें से ८ को एक-एक वर्ष का कारागृह का दण्ड मिला। ३ को अर्थात् सूरताराम, उनके पुत्र जवाहरा तथा बाजा को आजन्म काले पानी का दण्ड दिया गया। इनको अण्डमान द्वीप (कालेपानी में) भेज दिया गया। वहां पर चक्की, कोल्हू, बेड़ी इत्यादि भयङ्कर दण्ड देकर खूब अत्याचार ढाये गये। अतः ये तीनों वीर अपनी देश की स्वतन्त्रता के लिए बलि वेदी पर चढ़ गये, इनमें से कोई लौटकर नहीं आया। इसके विषय में लोगों ने बताया जब इनको गिरफ्तार करके ले जाने लगे तो बाजा नम्बरदार ने सुरता नम्बरदार को कहा—यह ग्राम सुख से बसे। हम तो अब लौटकर आते नहीं। सुरता ने कहा—बाजिया तू तो यों ही घबराता है मेरे माथे में मणि है (अर्थात् मैं भाग्यवान् हूं) हम अलीपुर व देहली से ही छूटकर अवश्य घर लोट आयेंगे, हमारा दोष ही क्या है ? बात

यथार्थ में यह है कि अंग्रेजों ने खूब यत्न किया। इस ग्राम के द्वारा अंग्रेजों के कत्ल के अभियोग को सिद्ध नहीं किया जा सका, सुरता की बात सुनकर बाजा ने कहा—जिनके ढोर पशु धनादि ही नहीं रहा वह लौटकर कैसे आयेगा। हुआ भी ऐसा ही। ये तीनों वहीं पर समाप्त हो गए। जो इस ग्राम के वीर स्वतन्त्रता की बलिवेदी पर चढ़े, उन की पीढ़ियां निम्न प्रकार से हैं—

कुण्डली के शहीदों की वंशावली
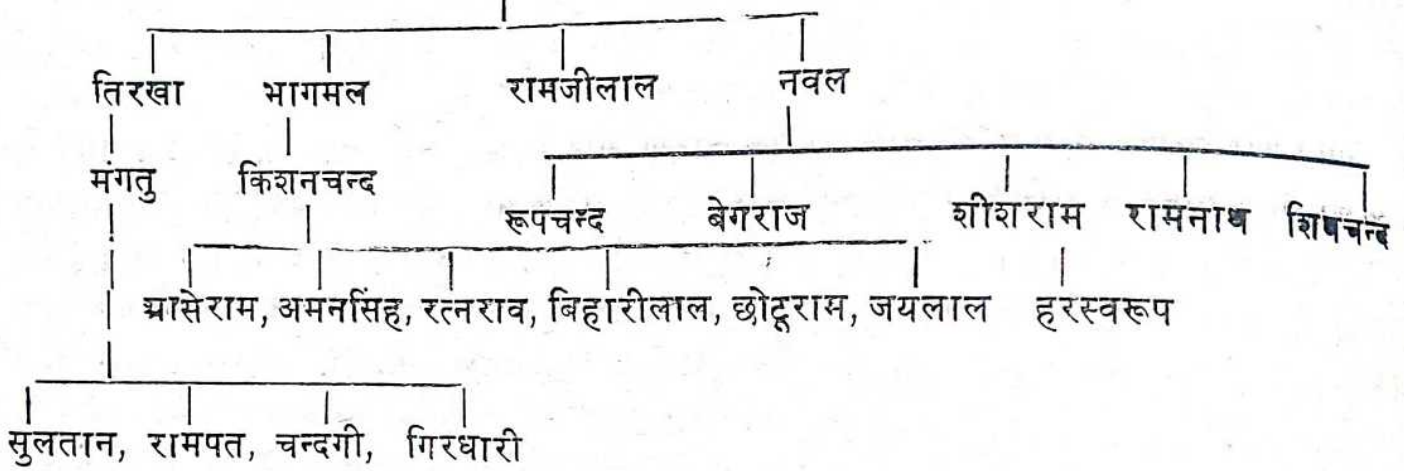
जवाहरा के पुत्र रामजीलाल की पीढ़ी इस प्रकार है—

रामजीलाल

श्रीराम जागेराम रामचन्द्र परसे दुलीचन्द
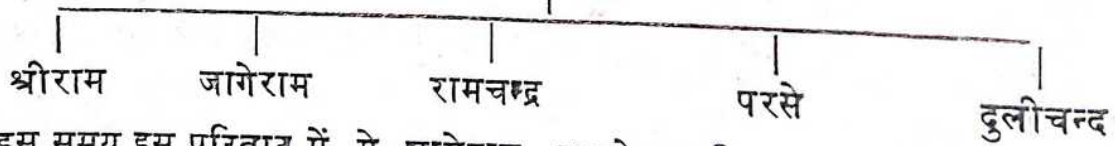
इस समय इस परिवार में से आसेराम, रत्नदेव आदि छः भाई, रामपत आदि चार भाई, श्रीराम आदि चार भाई और हरस्वरूप तथा इनके बाल बच्चे कुण्डली में निवास करते हैं।

बाजा की पीढ़ी निम्न प्रकार से है—

@VaidicPustakalay
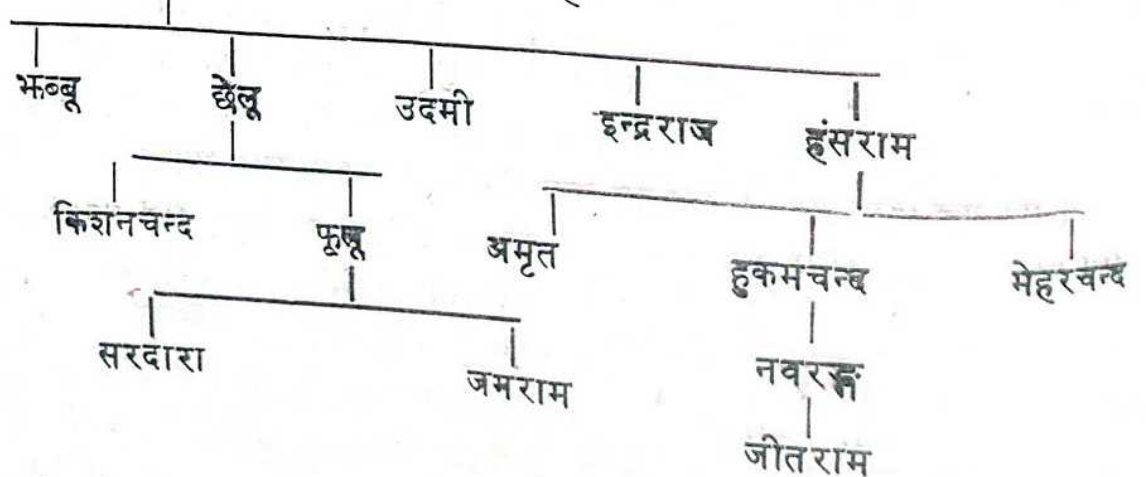
आजकल कुण्डली ग्राम के स्वामी सोनीपत निवासी ऋषिप्रकाश आदि हैं, यह ग्राम उनको किस प्रकार मिला इसके विषय में यह किंवदन्ती है कि सोनीपत निवासी मामूलसिंह नाम का ब्राह्मण (मोर्हरिर) लेखक था। सड़क पर एक आदमी की लाश पड़ी थी। कोई यह कहता है कि वह किसी अनाथ का ही शव था। उसके ऊपर वस्त्र डालकर उसके पास बैठकर मामूलसिंह रोने लगा। जब उसके पास से कुछ अंग्रेज गुजरे तो कहने लगा- यह मेरा आदमी आप लोगों की सेवा में मर गया। इसी के फलस्वरूप अंग्रेजों ने प्रसन्न होकर उसे पहले तो खामपुर ग्राम पारितोषिक के रूप में दिया था किन्तु पीछे कुण्डली ग्राम का स्वामी बना दिया। जिस समय नोटिश (विज्ञापन) लगाया गया था कि यह गांव तीन वर्ष के लिए जब्त किया जा रहा है और मामूलसिंह को दिया जा रहा है। ग्राम वालों का कहना है कि उस समय उसने अपनी चालाकी, दबाव अथवा लोभ से दबा और सिखाकर सदा के लिए अपने नाम लिखा लिया। ग्राम के लोगों ने अनेक बार मुकद्दमा भी लड़ा और कलकत्ते तक भाग दौड़ भी की, किन्तु नकल ही नहीं मिली। मुकद्दमे में यह झूठ बोल दिया गया कि यह ग्राम मेरे बाप दादा का है हमारी यह पैतृक सम्पत्ति है। इसी लिए आज तक भी मामूलसिंह के व्यक्ति इस ग्राम के स्वामी हैं और गांव के देशभक्त कृषक जो ग्राम के निवासी और स्वामी हैं भूमिहीन (मजारे) के रूप में अनेक प्रकार से कष्ट सहकर अपने दिन काट रहे हैं। मामूलसिंह के बेटे पोतों ने इस ग्राम को खूब तङ्ग किया। अनेक प्रकार के पूछी आदि टैक्स लगाये, चौपाल तक नहीं बनाने दी। ग्रामवासियों ने भी खूब संघर्ष किया। अनेक बार जेल में गये। अन्त में चौपाल तो बनाकर ही छोड़ी। श्री रत्नदेव जी आर्य जो सुरता और जवाहरा के परिवार में से हैं इन्होंने ग्राम पर होने वाले अत्याचारों को दूर करने के लिए संघर्षों में नेतृत्व किया और खूब सेवा की। इस ग्राम के निवासी प्रायः सभी उत्साही हैं। अंग्रेजी राज्य के रहते इस ग्राम के पढ़े लिखे को किसी भी सरकारी नौकरी में नहीं लिया गया। सभी प्रकार के कष्ट यह लोग सहते रहे और यह आशा लगाये बैठे थे कि जब देश स्वतन्त्र होगा तब हमारे कष्ट दूर हो जायेंगे। जब सन् ४७ में १५ अगस्त को देश को स्वतन्त्रता मिली और लाल किले पर तिरङ्गा झण्डा फहराया गया उस समय यह गांव बड़े हर्ष में मग्न था कि अब हमारे भी सुदिन आ गये हैं। किन्तु आज देश को स्वतन्त्र हुए ३८ वर्ष हो चुके हैं, यहां के ग्रामवासी पहले से भी अधिक दुःखी हैं। हमारे राष्ट्र के कर्णधारों व राज्याधिकारियों का इनके कष्टों की ओर कोई ध्यान नहीं। भगवान् ही इनके कष्टों को दूर करेगा। कुण्डली ग्राम के निवासी वृद्ध जीतराम जी जिनकी आयु ८५ वर्ष है तथा सुरताराम और जवाहरा के परिवार के श्री महाशय रत्नदेव जी और उनके बड़े भाई आशाराम जी ने इस ग्राम के इतिहास की सामग्री इकट्ठी करने में मुझे पूरा सहयोग दिया है, इन सबका मैं आभारी हूं।

खामपुर, अलीपुर, हमीदपुर, सराय आदि अनेक ग्राम हैं जिन्होंने सन् ५७ के युद्ध में बड़ी वीरता से अपने कर्त्तव्य का पालन किया था। जब कभी मुझे समय मिला, मेरी इच्छा है मैं हरयाणा का एक बहुत बड़ा इतिहास लिखूं, तब इनके विषय में विस्तार से लिखूंगा। खामपुर आदि ग्राम भी जब्त कर लिए गए थे। ग्राम खामपुर, दिल्ली निवासी एक ब्राह्मण लछमनसिंह के बाप दादा को दिया गया था। आज भी वह परिवार उस ग्राम का स्वामी है। खामपुर ग्राम के जाट जो निवासी थे वे भाग गये थे, वह खेड़े आदि अन्य ग्रामों में बसते हैं। इस ग्राम में तो अन्य मजदूरी करने वाले लोग बसते हैं। अलीपुर ग्राम के आदमियों को भी लिबासपुर के निवासियों के समान सड़क पर डालकर कोल्हू से पीस दिया गया था और अलीपुर ग्राम को बुरी तरह लूटकर जलाकर राख कर

दिया गया था। अलीपुर ग्राम को जब्त करके दिल्ली के कुछ देशद्रोही मुसलमानों को दे दिया गया था। उन मुसलमानों के परिवार ने जो इस ग्राम के स्वामी थे, चरित्र सम्बन्धी गड़बड़ कुण्डली ग्राम में आकर की। कुण्डली ग्राम के दलितों ने इन पापियों के ऊपर अभियोग चलाया और उसी अभियोग में विवश होकर वह अलीपुर ग्राम मुसलमानों को जाटों के हाथ बेचना पड़ा। हमीदपुर ग्राम भी जब्त करके मुसलमानों को दिया गया था। इसी प्रकार ही ऐसे देशभक्त ग्रामों को जब्त करके देशद्रोहियों को दे दिया गया था। इसके विषय में विस्तार से कभी समय मिलने पर लिखूँगा।

अलीपुर ग्राम की घटना जो माननीय वयोवृद्ध पं० बस्तीराम जी आर्योपदेशक के मुखारविन्द से सुनी। निम्न प्रकार से है—

अलीपुर की घटना

मानेलुक नाम का एक अंग्रेज घोड़े पर सवार अलीपुर ग्राम से जा रहा था। वह प्यास से अत्यन्त व्याकुल था। उसने एक किसान जो सड़क के पास ही अपने खलियान (पैर) में गाहटा चला रह था, संकेत से जल पीने को मांगा। किसान को दया आई और वह घड़े में से जल लेने के लिए गाहटा छोड़कर चल दिया किन्तु उस समय घड़े में जल न मिला। विवश होकर किसान अपने घड़े को उठाकर कुएं पर जल भरने को चला गया। किसान के इस सहानुभूति पूर्ण व्यवहार को देखकर अंग्रेज विचारने लगा इस व्यक्ति ने मेरे लिए अपना काम भी छोड़ दिया। वह अंग्रेज उसके पैर में आ गया और घोड़े से उतर कर यह समझकर कि किसान के कार्य में हानि न हो पैर में घुस गया और बैलों को हांकना प्रारम्भ कर दिया और अपना घोड़ पास के किसी वृक्ष से बांध दिया। उसी समय एक दूसरा अंग्रेज घुड़सवार उसी सड़क से जा रहा था जिसका नाम किलब्रट था। उसने यह समझा कि मानेलुक से बलपूर्वक गाहटा हकवाया जा रहा है और वह शीघ्रता से वहां से भागकर चला गया और अपनी डायरी में अलीपुर ग्राम के विषय में अंग्रेजों पर अत्याचार करने के लिए नोट लिख लिया अर्थात् अलीपुर पर अत्याचार का आरोप लगाया, वह किलब्रट नाम का अंग्रेज जो वहां से भय के मारे शीघ्रता से भाग गया, भय के कारण सत्यता का अन्वेषण भी नहीं किया। इधर जब किसान जल का घड़ा भरकर लाया तो अंग्रेज गाहटे में खड़ा था और बैल उससे बिधक कर (डरकर) भाग गये थे। किसान ने अंग्रेज को सहानुभूतिपूर्ण शब्दों में कहा—आपने ऐसा कष्ट क्यों किया? उस किसान ने अंग्रेज के कपड़े झाड़े, धूल साफ की, जल पिलाया और रोटी भी खिलाई। इस प्रकार उसकी अच्छी सेवा की और उस अंग्रेज ने अलीपुर के विषय में बहुत अच्छा लिखा और वह चला गया। शान्ति होने के पश्चात् किलब्रट की डायरी जो अलीपुर के विषय में बुरी लिखी थी उसी के अनुसार अलीपुर ग्राम को बुरी तरह लूटा गया और मनुष्य, पशु आदि प्राणियों सहित अग्नि में जलाकर भस्मसात् कर दिया गया। कुछ दिन पीछे मानेलुक की सच्ची रिपोर्ट भी अंग्रेजों के आगे पेश हुई। तब अंग्रेजों को ज्ञात हुआ कि जिस अलीपुर ग्राम को पारितोषिक मिलना चाहिए था उसको तो भीषण अग्निकाण्ड में जला दिया गया। यह अंग्रेजों की मूर्खता का एक उदाहरण है और हरयाणा के ग्रामों पर दोष लगाया जाता है कि यहां के किसानों ने सब अंग्रेज स्त्रियों से गाहटा चलवाया था। यह सब बात इस अलीपुर के गाहटे की घटना के समान मिथ्या और भ्रम फैलाने वाली हैं। भारतीयों ने अंग्रेज महिलाओं और बच्चों पर कभी अत्याचार नहीं किये।

———

१८५७ के स्वातन्त्र्य संग्राम में—

अलीपुर ग्राम का भाग

ओमानन्द सरस्वती (आचार्य भगवान्‌देव)

अलीपुर ग्राम कई शताब्दियों से बड़ी सड़क जी० टी० रोड पर बसा हुआ है। इसी सड़क से अंग्रेजों की सेनायें गुजरती थीं। यहां के वीर लोगों ने भी सन् १८५७ के स्वातन्त्र्य संग्राम में खूब बढ़ चढ़ कर भाग लिया और इस सड़क पर गुजरने वाले अनेक अत्याचारी अंग्रेजों को काल के गाल में पहुंचाया गया। यही नहीं, इस स्वतन्त्रता समर में बलिदान देने वाले वीरों की संख्या इस ग्राम में सबसे बढ़कर है। अलीपुर ग्राम में १८५७ में सड़क के निकट ही सरकारी तहसील विद्यमान थी और उसके पास ही बाहर बाजार था। क्रांति के समय ग्राम के लोगों ने तहसील में घुसकर सब सरकारी कागजों को फूंक दिया और बाजार को भी लूट लिया। ऐसा अनुमान है कि बाजार में जो दुकान थी या तो वे सरकार की थी या सरकारी पिट्ठुओं की थी। इसलिए उन्हें लूटा गया। तहसील पर जिस समय जनता के लोगों ने आक्रमण किया तो तहसील के सरकारी नौकरों ने अवश्य कुछ न कुछ विरोध किया होगा। उसके फलस्वरूप युद्ध हुआ और वीरों ने गोलियां चलाईं। उन गोलियों के निशान आज भी लकड़ी के किवाड़ों पर विद्यमान हैं। उन्हीं दिनों अनेक अंग्रेज ग्रामीण योद्धाओं के द्वारा मारे गये।

अलीपुर ग्राम को दण्ड देने के लिए मिटकाफ (काना साहब) सेना लेकर अलीपुर पहुंच गया। उसने अपनी सेना का शिविर दो कदम्ब (कैम) के वृक्षों के नीचे लगाया, जो आज भी विद्यमान हैं। ये ऐतिहासिक वृक्ष अंग्रेजों के अत्यात्चार के मुँह बोलते चित्र हैं। गांव के चारों ओर सेना ने घेरा डाल दिया। तोपखाना भी लगा दिया। किसी व्यक्ति को भी गांव से बाहर नहीं निकलने दिया गया। सेना के बड़े बड़े अधिकारी गांव में घुस गए और गांव के ७०-७५ चुने हुए व्यक्तियों को गिरफ्तार कर लिया गया। हंसराम नाम का एक व्यक्ति उस समय हलुम्बी ग्राम की ओर शौच गया हुआ था, उसे पकड़ने के लिए कुछ अंग्रेज जंगल में ही पहुंच गए और उसे गिरफ्तार कर लिया, वह खेड़े के निकट कुण्डों के पास पकड़ा गया। वह अत्यन्त स्वस्थ, सुन्दर आकृति का युवक था। पकड़ने वाले अंग्रेज अधिकारी के मन में दया आ गई तथा उसकी सुन्दर आकृति व स्वास्थ्य से प्रभावित होकर उसे छोड़ दिया। किन्तु उस युवक ने कहा कि मैं तो अपने साथियों के साथ रहना चाहता हूं, जहां वे जायेंगे मैं भी वहीं जाऊंगा। मेरा कर्त्तव्य है कि मैं अपने साथियों के साथ जीऊँ और साथियों के साथ ही मरूँ।

अंग्रेज सिपाहियों ने उसे बहुत छोड़ना चाहा और उसे भागने के लिए बार-बार प्रेरणा की किन्तु उसने भागने से इन्कार कर दिया और गिरफ्तार हुए साथियों के साथ मिल गया, अंग्रेज सत्तर-पचहत्तर व्यक्तियों को गिरफ्तार करके लाल किले में ले गये और उन सब को फांसी पर चढ़ा दिया गया।

यह घटना १८५७ के मई मास के अन्तिम सप्ताह की है।

लाल किले में से हँसराम को घसियारे के रूप में अंग्रेजों ने निकालना चाहा। वह अंग्रेज उसके सुन्दर शरीर तथा स्वास्थ्य को देखकर उसे छोड़ना चाहता था, किन्तु उसने फिर इन्कार कर दिया, फिर तो उसे भी फांसी पर चढ़ा दिया।

मुहम्मद नाम का एक मुसलमान किसी प्रकार बचकर भाग आया। वह फिर सकतापुर भोपाल राज्य में जाकर बस गया।

दूसरा एक हिन्दू भुरड़ बौंक के जाट में से बचकर भाग आया।

कुछ व्यक्तियों का ऐसा भी मत है कि इन व्यक्तियों को फांसी नहीं दी गई थी किन्तु इन सब को पत्थर के कोल्हू के नीचे सड़क पर डालकर पीसकर मार डाला गया था। वे पत्थर के कोल्हू अभी तक इस सड़क पर पड़े हुए हैं।

जिन व्यक्तियों को फांस दी गई—

उनमें से तुलसीराम और हँसराम के अतिरिक्त और किसी के भी नाम का पता यत्न करने पर भी नहीं चल सका। अलीपुर ग्राम का भाट सोनीपत का निवासी है जो आजकल जाखौली गांव में रहता है उसकी पोथी में पैंतीस व्यक्तियों के नाम मिलते हैं। उस विश्वम्भरदयाल भाट के पास जाखौली इन्हीं नामों को जानने के लिए गया, किन्तु जिस पोथी में ये नाम हैं, उस पोथी को उस भाट का पुत्र लेकर किसी गांव में अपने यजमानों के पास चला गया था, दुर्भाग्य से वे नाम नहीं मिल सके।

अलीपुर ग्राम में भी मैं इसी कार्य के लिए तीन बार गया। जिन घरों में इन नामों के मिलने की आशा थी, खोज करवाने पर भी वे नाम नहीं मिल सके। यह हमारा दुर्भाग्य ही रहा कि जिन हुतात्मा वीरों ने हंसते हंसते देश की स्वतन्त्रता के लिए अपने प्राणों को न्यौछावर कर दिया। आज उनके नाम भी हमें उपलब्ध न हो सके।

जिस किसी ने भी १८५७ के स्वातन्त्र्य समर के विषय में लिखा है हरयाणा प्रान्त की वीरता के विषय में दो चार शब्द लिखने का भी कष्ट नहीं किया। यथार्थ में यह युद्ध हरयाणा प्रान्त के वीर सैनिकों ने ही लड़ा था। सभी रिसाले और पलटनों में मेरठ आदि सभी छावनियों में हरयाणा के वीर सैनिक ही अधिक संख्या में थे। उस समय तक हरयाणा प्रान्त के सभी ग्रामों में पंचायती सैनिक थे। सभी गांवों में अखाड़े चलते थे, जहां पञ्चायती सैनिक तैयार किए जाते थे। किसी प्रकार की आपत्ति पड़ने पर जो धर्मयुद्ध में भाग लेते थे। अलीपुर गांव के जो नवयुवक इस क्रांति में हँसत-हँसते बलि-वेदी पर चढ़ गये वे भी इसी प्रकार के पञ्चायती सैनिक थे। इन सबको फांसी देने के लिए जिस समय गिरफ्तार किया गया, तोपों के द्वारा गांव पर गोले बरसाये गए। जिस समय तोपें चलीं उस समय तोपें चलवाने वाला कोई अंग्रेज अफसर दयालु स्वभाव का था। उसने इस ढङ्ग से तोपें चलवाईं कि तोप के गोले गांव के ऊपर से गुजर कर जङ्गल में गिरते रहे। ग्राम नष्ट होने से बच गया। कुछ का ऐसा भी मत हैं कि ग्राम को लूटा भी गया। जितने व्यक्ति इस ग्राम के मारे गये, उनमें भङ्गी से लेकर ब्राह्मण तक सभी सम्मिलित थे। जाट उनमें कुछ अधिक संख्या में थे।

एक पटवारी और एक नम्बरदार ने जब उनको बहुत तङ्ग किया तब इन सब लोगों के नाम लिखवाये थे, जिनको फांसी दी गई थी। फांसी आने के पश्चात् जो देवियां विधवा हो गई थीं उन्होंने इस नम्बरदार के घर के आगे आकर अपनी चूड़ियां फोड़कर डाल दीं। इस प्रकार उनकी सहानुभूति

में ग्राम की अन्य देवियों ने भी अपनी चूड़ियां फोड़ फोड़कर ढेर लगा दिया। यहां यह लोकश्रुति है कि उस समय उस नम्बरदार के घर के सामने सवा मन फूटी चूड़ियों का ढेर लग गया।

जिस समय ग्राम पर यह आपत्ति आई ग्राम के सब बाल-बच्चे, स्त्री और बूढ़े भागकर हलुम्बी ग्राम में चले गये। नवयुवक सब ग्राम में ही विद्यमान थे। जिन में से गिरफ्तार करके पिचहत्तर को फांसी दी गई। ग्राम पर यही दोष लगाया गया था कि इन्होंने तहसील को जलाया और कुछ अंग्रेजों का वध किया था। एक दो व्यक्तियों ने ऐसा भी बताया कि दोनों प्रकार के प्रमाण पत्र गांव में मिले। ग्राम में कुछ अंग्रेजों को मारा भी और कुछ को बचाया भी। इसलिए एक अंग्रेज स्त्री के निषेध करने पर इस गांव को जलाया नहीं गया और न ही जब्त ही किया गया। बारह वर्ष पूर्व ही यह गांव कुछ नम्बदारों के सरकारी लगान स्वयं खा जाने पर एक मुसलमान के पास चार हजार रुपये में गिरवी रख दिय गया था। क्रांति युद्ध के पीछे यहां के निवासियों ने रुपये देकर इसे खरीद लिया। जो अंग्रेज अलीपुर में मारे गए थे, उनकी कब्रें अलीपुर के पास ही बना दी गई थीं। जो कुछ वर्ष पहले विद्यमान थीं।

अंग्रेज अफसरों की आज्ञा से सिक्ख सेना ने बादली ग्राम के आस-पास के बारह ग्रामों के अहीर आदि सभी कृषकों के सब पशु हांक लिए थे। उस समय तोता नाम के एक चतुर व्यक्ति ने अपने अलीपुर ग्राम के सब निवासियों को उत्साहित किया और युद्ध करके सिक्खों से सब अपना पशु धन छुड़वा लिया और उन ग्रामों के जिनके ये पशु थे उनको ही सौंप दिए, किन्तु वह चतुर वीर तोताराम इस युद्ध में मारा गया। अब तक बादली, समयपुर आदि ग्रामों के निवासी उस उपकार के कारण अलीपुर के निवासियों का बड़ा आदर सत्कार करते हैं।

पीपलथला सराय आदि ग्रामों को भी इसी प्रकार लूटा और जलाया गया। इसी सराय ग्राम (भड़ोला) के पास आज भी एक अंग्रेज अफसर का स्मारक बना हुआ है जो उस समय ग्रामवासियों द्वारा मारा गया था। इस सराय ग्राम में कभी एक छोटी सी गढ़ी (दुर्ग) थी जो आज खण्डहर के रूप में पड़ी हुई है, केवल उसके दो द्वार खड़े हुए हैं। अनुमान यही है कि इस क्रांति युद्ध में ये अंग्रेजों द्वारा ही नष्ट किए गए।

हरयाणा के सैकड़ों ग्रामों ने सन् ५७ के युद्ध में इसी प्रकार भाग लिया और पीछे अंग्रेजों द्वारा दण्डित हुए।

इनके विषय में मैं समय मिलने पर कभी विस्तारपूर्वक लिखूंगा।

हरयाणा का वीर अमरसिंह

अमरसिंह सुनारियां ग्राम का निवासी था। वह डी० सी० मोर साहब के यहां चपरासी का कार्य करता था। वह डी० सी० चरित्रहीन था। अमरसिंह को यह बुरा लगा और उसने त्यागपत्र देकर अपना वेतन मांगा। डी० सी० ने उसे वेतन नहीं दिया। इस पर अनबन बढ़ गई।

अमरसिंह ग्राम में जाकर बल्लू लुहार से कसोला लेकर आया और डी० सी० की कोठी में जाकर रात को उसे जगाकर कत्ल कर दिया। कसोला वहीं डाल दिया। उसकी मेम को नहीं मारा, उसे स्त्री समझकर छोड़ दिया। इसके बाद नीम पर चढ़कर जब वह बाहर निकला तो मेम ने शिकारी कुत्ते छोड़ दिए, वह उन कुत्तों ने फाड़ लिया। वह ग्राम में चला गया।

अंग्रेजों ने वहां जाकर सारे गांव को तोपों से उड़ाना चाहा किन्तु अमरसिंह स्वयं उपस्थित हो गया। अंग्रेज उसे घोड़े के पीछे बांधकर ले गए और उसके ऊपर दही छिड़क कर शिकारी कुत्तों से फड़वाया गया। यह वृत्तान्त कचहरी में लिखा हुआ है।

हांसी का शहीद हुकमचन्द

जिसको घर के सामने ही फाँसी पर लटका दिया गया

[बलदेवसिंह बी० ए०]

१८५७ की महान् क्राँति ने भारत के कोने कोने में उथल पुथल मचा दी थी। अनेक देशभक्त वीर हंसते-हंसते आजादी की वलिवेदी पर अपना जीवन न्यौछावर कर गए। इतिहास प्रसिद्ध हांसी नगर पृथ्वीराज चौहान के समय से अपनी विशेषता रखता है। सन् १८५७ में भी हांसी नगर किसी से पीछे नहीं रहा। दिवंगत दुनीचन्द के सुपुत्र श्री हुकमचन्द जी (जो हांसी, हिसार, और करनाल के क़ानूनगो थे) को मुगल बादशाह ने १८४१ में विशिष्ट पदों पर नियुक्त करके इन प्रान्तों का प्रबन्धक बना दिया।

जब भारतवासी अंग्रेजों की परतन्त्रता से स्वतन्त्र होने के लिए संघर्ष कर रहे थे तब श्री हुकमचन्द जी ने फारसी भाषा में मुगल बादशाह जाफर को निमन्त्रण पत्र भेजा कि वह अपनी सेना लेकर यहां के अंग्रेजों पर चढ़ाई कर दे।

सितम्बर १८५७ के अन्तिम सप्ताह में जब शाह जफर को अंग्रेजों ने बन्दी बना लिया तब उनकी विशेष फाईल में वह निमन्त्रण-पत्र मिला, जो कि हुकमचन्द ने बादशाह को भेजा था। हिसार की सरकारी फाइल में वह पत्र आज तक भी विद्यमान है।

देहली के अंग्रेज कमिश्नर ने वह पत्र हिसार डिवीजन के कमिश्नर को उस पर तत्काल कार्यवाही करने के हेतु भेज दिया। किन्तु सरकार का विरोध करने के अपराध में १९ जनवरी १८५८ को श्री हुकमचन्द को उनके घर के सामने फांसी पर लटका दिया गया। उनके सम्बन्धियों को उनका शव तक भी नहीं दिया गया। लाला हुकमचन्द के शव को जलाने के स्थान पर भूमि में दफना कर

हमारी धार्मिक भावनाओं पर कुठारघात किया और उनकी चल और अचल सम्पत्ति भी जब्त कर ली गई। उस समय अपने देश से प्रेम करने वालों को गद्दार बताकर बिना अपराध असंख्य लोगों को फांसी पर चढ़ाकर अपनी अंग्रेजों ने पिपासा को शान्त किया।

ला० हुकमचन्द जी के दो भाई और थे, किंतु केवल उन्हीं के भाग की ८४-८५ एकड़ भूमि जब्त कर ली गई। जो अंग्रेजों के चाटुकारों ने आपस में बांट ली। शेष दोनों की पितृ-सम्पत्ति अब तक चली आ रही है।

५० वर्ष की आयु में हुकमचन्द जी को फांसी पर लटकाया गया था। उनके दो सुपुत्र एक ८ वर्ष का और दूसरा केवल १९ दिन का ही था। ४०० तोला सोना, ४ हजार तोले चांदी, अनेक गाय, भैंस, ऊँट आदि पशु और अन्न तथा घर का सामान अल्पतम मूल्य पर नीलाम कर दिया गया।

श्री हुकमचन्द जी के दस कुटुम्ब अब भी फल फूल रहे हैं। हरयाणा प्रान्त का इतिहास ऐसे ही वीरों के बलिदानों से भरपूर है।

हरयाणा में सन् ५७ का स्वातन्त्र्य युद्ध

(पं० बस्तीराम जी आर्योपदेशक)

[यह लेख वयोवृद्ध पूजनीय पण्डित बस्तीराम जी का है जिसे मैंने भालोठ ग्राम में उनके पास दो दिन बैठकर लिखा था। कुछ लोगों का कहना है पण्डित जी की सन् ५७ के युद्ध के समय १७ वा १८ वर्ष की आयु थी। इन्होंने युद्ध के हालात स्वयं अपनी आंखों से देखे हैं तथा कानों से सुने हैं। कुछ लोग उस समय कहते थे कि पण्डित जी की आयु १०० वर्ष से भी कम है। मेरा अनुमान यह है पण्डित जी की आयु १०० वर्ष के लगभग थी। अधिक भी हो सकती है कुछ न्यून भी हो सकती है। पण्डित जी अपनी आयु पूछने पर बताते नहीं थे, अतः विवशता है। किन्तु पण्डित जी ने युद्ध की घटनायें मुझे बहुत प्रसन्नचित्त होकर सुनाईं। वे सुनाने में और मैं सुनने में बड़ा रस लेते थे। इस बड़ी आयु में भी पण्डित जी की स्मरण शक्ति बहुत ही अच्छी थी। जो कुछ आपकी कृपा से मुझे सुनने को मिला वह पाठकों की सेवा में समर्पित करता हूं]

—ओमानन्द (भगवान्देव)

सम्वत् ११ में यह प्रसिद्ध हो गया था कि सेना में हिन्दू सैनिकों से गाय की चर्बी लगे हुए तथा मुसलमानों से सूअर की चर्बी लगे हुए कारतूस मुख से तुड़वाये जायेंगे। कलकत्ते में एक भङ्गी जामुन और आम के वृक्षों के नीचे सूखे हुए पत्तों को जलाने के लिए मोल ले लेता था। उसी समय सेना के कुछ घुड़सवार सैनिक उधर भ्रमण करते हुए पहुंचे। सायंकाल का समय था, वह जल की पिपासा से व्याकुल थे। उन्होंने जल पीने की इच्छा प्रकट की, पास ही एक कुंआ था, भङ्गी उनको उस कुएँ पर ले गया और स्वयं अपने हाथ से पानी खींचकर पिलाने के लिए तैयार हो गया। किन्तु वह घुड़सवार अपने आपको ऊँची जात के हिन्दू समझकर भङ्गी को यह कहने लगे आप अछूत हैं, आपके हाथ का जल हम कैसे पीयेंगे। हम जल स्वयं खींचकर पी लेंगे। फिर भङ्गी ने कहा—अब ऊंच नीच कहां रह गया। जब आप लोग गौ की चर्बी से बने हुए कारतूसों को मुख से तोड़ेंगे। मेरे हाथ से जल पीने से आप का क्या बिगड़ेगा ? वे सैनिक यह बात सुनकर बार बार आग्रहपूर्वक पूछने लगे क्या

यह बात यथार्थ में सच्ची है ? उस भङ्गी ने उन सैनिकों को दृढ़तापूर्वक निश्चय कराया कि यह बात मैंने स्वयं अपनी आंखों से देखी है कि कारतूसों में गाय और सूअर की चर्बी लगाई जाती है। फिर क्या था कारतूस वाले समाचार भारत के सभी रिसालों और पल्टनों में फैल गये। उस समय सर्वत्र यह समाचार फैलाए गए थे। उन्हीं दिनों अंग्रेजों ने मेरठ में सभी सैनिकों का एक दरबार किया और फौज के अंग्रेज अफसरों ने सभी सैनिकों को यह आज्ञा दी कि चर्बी लगे हुए कारतूस सभी सैनिकों को अपने मुख से तोड़ने पड़ेंगे। उस समय तो सैनिकों ने कारतूसों को मुख से तोड़ना न तो स्वीकार ही किया और न इसका निषेध ही किया। उन्होंने कहा यह हमारे धर्म का विषय है अतः हमें विचारने के लिए समय चाहिए। अंग्रेज अफसर हठ कर रहे थे और वे उसी समय चर्बी वाले कारतूस बलपूर्वक सब सैनिकों से उनके मुख से तुड़वाना चाहते थे। सैनिकों की इच्छा थी कि न्यून से न्यून हमें १० मई तक विचारने का समय मिलना चाहिए। किन्तु उन्हें समय नहीं दिया गया। इस विषय में मैंने मेरठ के समाचार लिखते हुए पृथक् लिखा है। सब सैनिकों ने अपने समाचार बहादुरशाह के पास देहली भेज दिए। ऐसा सुना जाता है कि बहादुरशाह ने आज्ञा दे दी कि जो अंग्रेज दीन में खलल डालें उन्हें देश से निकाल दो। सैनिकों को विवश होकर शीघ्रता करनी पड़ी और रविवार का दिन निश्चित करके आधे सैनिकों ने तो अंग्रेजों के बंगलों पर हमला कर दिया और आधे सैनिकों ने शस्त्रागार (मेगजीन) पर अधिकार करने के लिए चढ़ाई कर दी। निश्चय तो यह किया गया था कि केवल अंग्रेजों को पकड़ना है, मारना नहीं। किन्तु यह न हो सका। लोग अंग्रेजों के अत्याचारों के कारण बहुत दुःखी थे अतः प्रतिहिंसा व प्रतीकार की भावना जाग उठी और अंग्रेज मारे गए। इस क्रांति की आग बहुत शीघ्र ही सारे भारतवर्ष में फैल गई। उस समय हरयाणा प्रान्त के अनेक भागों में, गुड़गांवा, रेवाड़ी, रोहतक आदि में अनेक घटनायें घटीं। उनमें से कुछ एक पर जैसा पण्डित बस्तीराम जी ने बताया आपकी सेवा में उपस्थित करता हूं।

झज्जर का नवाब

हरयाणा में उस समय अनेक नवाब राजा राज्य करते थे। झज्जर इलाके में अब्दुल रहमान खां नवाब की नवाबी थी। झज्जर का प्रान्त—१. झज्जर, २. बादली, ३. दादरी, ४. नारनौल, ५. बावल ६. कोटपुतली आदि परगनों में विभाजित था। झज्जर का नवाब जवान किन्तु भीरु प्रकृति का था। सदैव नाच-गान, रंग-राग व भोगविलास में ही फंसा रहता था, इसके दुराचार से प्रजा उस समय प्रसन्न नहीं थी, फिर भी उसका राज्य अंग्रेजों की अपेक्षा अच्छा था। ठाकुर स्यालुसिंह कुतानी निवासी नवाब के बख्शी थे। दीवान रामरिछपाल झज्जर निवासी नवाब के कोषाध्यक्ष (खजाञ्ची) थे। नवाब प्रकट रूप से तो दिल्ली बादशाह बहादुरशाह की सहायता कर रहा था क्योंकि हरयाणा की सारी जनता इस स्वतन्त्रता युद्ध में बड़े उत्साह से भाग ले रही थी। अतः नवाब भी विवश था, किन्तु भीरु होने के कारण उसे यह भय था कि कभी अंग्रेज जीत गए तो मेरी नवाबी का क्या बनेगा। इसलिए गुप्त रूप से धन से अंग्रेजों की सहायता करना चाहता था। अपने दीवान मुन्शी रामरिछपाल द्वारा २२ लाख रुपये इसने अंग्रेजों की सहायता के लिए गुप्तरूप से भेजने का प्रबन्ध किया। मुन्शी रामरिछपाल ने ठाकुर स्यालुसिंह कुतानी निवासी को जो एक प्रकार से झज्जर राज्य के कर्त्ता-धर्त्ता थे यह भेद बता दिया। ठाकुर स्यालुसिंह ने रामरिछपाल को समझाया कि नवाब तो भीरु और मूर्ख है। अंग्रेजों को रुपया किसी रूप में भी नहीं देना चाहिए। हम दोनों बांट लेते हैं।

उन दोनों ने ग्यारह-ग्यारह लाख रुपया आपस में बांट लिया। रुपया अंग्रेजों के पास नहीं भेजा।

ठाकुर स्यालुसिंह ने उस समय यह कहा—यदि अंग्रेज जीत गए तो नवाब मारा जायेगा, हमारा क्या बिगाड़ते हैं, यदि अंग्रेज हार ही गये तो हमारा बिगाड़ ही क्या सकते हैं। नवाब के भीरु और चरित्रहीन होने का कारण लोग यों भी बताते हैं कि नवाब अब्दुल रहमान खां किसी बेगम के पेट से उत्पन्न नहीं हुआ किन्तु वह किसी रखैल स्त्री (वेश्या) का पुत्र था। उसके विषय में एक घटना भी बताई जाती है, इसके चाचा का नाम समदखां था। नवाब ने अपने इसी चाचा की लड़की के साथ विवाह किया था। इसका चाचा समदखां इससे अप्रसन्न रहता था, वह इससे बोलता भी नहीं था। समदखां वैसे बहादुर और अभिमानी था। एक दिन नवाब ने अपनी बेगम को जो समदखां की लड़की थी, चिढ़ाने की दृष्टि से यह कहा कि समदखां की औलाद की नाक बड़ी लम्बी होती है। उसी समय बेगम ने जवाब दिया— जब मेरा विवाह (वेश्यापुत्र) आपके साथ हो गया तो क्या अब भी समदखां की औलाद की नाक लम्बी रह गई? नवाब ने इसी बात से रुष्ट होकर बेगम को तलाक दे दिया। समदखां नवाब से पहले ही नाराज था इस बात से वह और भी नाराज हो गया। वह नवाब से सदैव रुष्ट रहता था और कभी बोलता नहीं था। उन्हीं दिनों अंग्रेज फौजी अफसर मिटकाफ साहब जो आंख से काना था किन्तु शरीर से सुदृढ़ था, छुछकवास अपने पांच सौ सशस्त्र सैनिक लेकर पहुंच गया और झज्जर नवाब की कोठी में ठहर गया। वहां नवाब झज्जर को मिलने के लिए उसने सन्देश भेजा। झज्जर का नवाब मिटकाफ साहब से मिलने के लिए हथिनी पर सवार होकर जाना चाहता था। उसकी 'लाडो' नाम की हथिनी थी, उसने सवारी के लिये उसे उठाना चाहा किन्तु हथिनी हठ कर के बैठ गई, उठी ही नहीं। नवाब के चाचा समदखां ने कहा. हैवान हठ करता है, खैर नहीं है, आप वहां मत जाओ। नवाब ने उत्तर दिया—आप नवाब होकर भी शकुन अपशकुन मानते हैं? समदखां ने कहा हमने तेरे से बोलकर मूर्खता की। नवाब हथिनी पर बैठकर छुछकवास चला गया। मिटकाफ साहब ने वहां नवाब का आदर नहीं किया। नवाब हथिनी से उतरकर कुर्सी पर बैठना चाहता था किन्तु मिटकाफ ने नवाब को आज्ञा दी कि आपका स्थान आज कुर्सी नहीं अपितु काठ का पिंजरा है, वहां बैठो। नवाब को काठ के पिंजरे में बन्द करके दिल्ली पहुंचा दिया गया। वहां झज्जर के नवाब को और वल्लभगढ़ के राजा नाहरसिंह को तथा लच्छुसिंह कोतवाल को जो दिल्ली का निवासी था, फांसी के तख्ते पर लटका दिया गया।

बहादुरशाह के विषय में उन दिनों एक होली गाई जाती थी। यह होली ठाकुरों, नवाबों राजे-महाराजों के यहां नाचने गाने वाली स्त्रियां गाया करती थीं।

टेक— मचो री हिन्द में कैसो फाग मचो री।
वारा जोरी रे हिन्द में कैसो फाग मचो री॥

कली— गोलन के तो बनें कुङ्कुमें,
तोपन की पिचकारी।

सीने पर रखा लियो मुख ऊपर,
तिन की असल भई होरी॥
शोर दुनियां में मचो री हिन्द में कैसो फाग मचो री॥

कलो— बहादुरशाह दीन के दीवाने,
दीन को मान रखो री।
मरते मारते उस गाजी ने,
दीन ही दीन कहो री ।।
दीन वाको रब न रखो री, हिन्द में कैसो फाग मचो री ।।

नवाब झज्जर के पकड़े जाने पर उसका चाचा समदखां और बख्शी ठाकुर स्यालुसिंह कई सहस्र सेना लेकर काणोड के दुर्ग (गढ़) को हथियाने के लिये आगे बढ़े। रिवाड़ी की तरफ से राव तुलाराम, राव श्री गोपाल और गोपालकृष्ण सहित जो रामपुरा के आसपास के राजा थे, बड़ी सेना सहित काणोड के गढ़ की ओर बढ़े। काणोड वही स्थान है जिसे आजकल महेन्द्रगढ कहते हैं। अंग्रेज भी अपनी सेना सहित उधर बढ़ रहे थे। जयपुर आदि के नरेशों ने अपनी सात हजार सैनिकों की सेना जो नागे और वैरागियों की थी, अंग्रेजों की सहायतार्थ भेजी। नवाब झज्जर और राव तुलाराम की सेना दोनों ओर से बीच में घिर गई। नारनौल के पास लड़ाई हुई, हरयाणे के सभी योद्धा बड़ी वीरता से लड़े। राव कृष्णगोपाल और श्री गोपाल वहीं लड़ते शहीद हो गये। राव तुलाराम बचकर काबुल आदि के मुस्लिम प्रदेशों में चले गये। सहस्रों वीर इस आजादी की लड़ाई में नसीपुर की रणभूमि में खेत रहे।

युद्ध के पश्चात् शान्ति हो जाने पर अंग्रेजों ने भीषण अत्याचार किये। अंग्रेज सैनिक लोगों को पकड़ पकड़ कर सारे दिन तक इकट्ठा करते थे और सायंकाल ३ बजे के पश्चात् सब मनुष्यों को तोपों के मुख पर बान्ध कर गोलियों से उड़ा दिया जाता था। ठाकुर स्यालुसिंह को भी परिवार सहित गिरफ्तार करके गोली से उड़ाने के लिए पंक्ति में खड़ा कर दिया। उस समय एक अंग्रेज जो जीन्द के महाराजा का नौकर था, जो पहले झज्जर भी नवाब के पास नौकरी कर चुका था, वह ठाकुर स्यालुसिंह का मित्र था। वह झज्जर आया हुआ था। उसने ठाकुर स्यालुसिंह को अपने परिवार सहित पंक्ति में खड़े देखा। उसने ठाकुर साहब से पूछा क्या बात है ठाकुर साहब ? ठाकुर साहब ने उत्तर दिया मेरे साथ अन्याय हो रहा है। नवाब ने तो मुझे अंग्रेजों का वफादार समझकर मेरी गढ़ी को कुतानी में तोपों से उड़ा दिया और आज में नवाब का साथी समझकर परिवार सहित मारा जा रहा हूं। यदि में अंग्रेज का शत्रु था तो मेरी गढ़ी नवाब द्वारा तोपों से क्यों उड़ाई गई और मैं नवाब का शत्रु हूं तो मुझे क्यों परिवार सहित गोली का निशाना बनाया जा रहा है ? यह सब सुनकर उस अंग्रेज की सिफारिस पर स्यालुसिंह को छोड़ दिया और उसे निर्दोष सिद्ध करने का प्रमाण देने के लिए वचन लिया गया। यह घोडे पर सवार हो नंगे शरीर ही दिल्ली, चौधरी गुलाबसिंह बादली निवासी के पास पहुंचा। वह उस समय अंग्रेजों की नौकरी करता था। पहले ठाकुर स्यालुसिंह ने बादली से चौ० गुलाबसिंह को निकाल दिया था। फिर भी ठाकुर स्यालुसिंह के बार बार प्रार्थना करने पर चौधरी गुलाबसिंह ने सहायता करने का वचन दे दिया और उसने ठा० स्यालुसिंह की गवाही देकर अपकार के बदले में उपकार किया। ठा० स्यालुसिंह का एक भाई ठा० शिवजीसिंह सेना में दानापुर में अंग्रेजों की सेना में सूबेदार था, उसने भी ठा० स्यालुसिंह की सहायता की। इस प्रकार ठा० स्यालुसिंह का परिवार बच गया। ठाकुर साहब के परिवार के लोग आज भी कुतानी व धर्मपुरा आदि में बसते हैं। उन्हीं में से ठा० स्वर्णसिंह जो आर्यसमाजी सज्जन हैं जो धर्मपुरा में भदानी के निकट बसते हैं।

झज्जर के नवाब की नवाबी को तोड़ दिया गया और भिन्न-भिन्न प्रान्तों में बांट दिया गया। जैसे कि पहले लिखा जा चुका है। अंग्रेज कोटपुतली को जयपुर महाराजा को देना चाहते थे किन्तु उनके निषेध कर देने पर खेतड़ी नरेश को दे दिया गया।

बहादुरगढ़ में भी उस समय नवाब का राज्य था। सिक्खों की सेना जो १२ हजार की संख्या में थी बहादुरगढ़ डेरा डाले पड़ी थी। हरयाणा के वीरों ने इसे आगे बढ़ने नहीं दिया। सिक्खों की सेना ग्रामों से भोजन सामग्री लूटकर अंग्रेजों की सहायता करती थी. उस समय कुछ नीच प्रकृति के मुसलमान भी चोरी से जनाजा (अर्थी) निकालकर मांस, अन्न, रोटी छिपाकर अंग्रेज सेना को बेच देते थे। उस समय एक-एक रोटी एक-एक रुपये में बिकती थी, जल भी बिकता था। कोतवाल लच्छुसिंह ने इस बात को भांप लिया। उस ने उन नीच मुसलमानों को जो काले पहाड़ पर घिरी हुई अंग्रेजी सेना की अन्न मांस बेचकर सहायता करते थे, पकड़वा कर मरवा दिया। अंग्रेजों ने इसी कोतवाल लच्छुसिंह, नरेश नाहरसिंह तथा नवाब झज्जर को इन्दारा कुए के पीपल के वृक्ष पर बान्धकर फांसी दी थी।

कुतानी की गढ़ी

ठाकुर स्यालुसिंह अपने छः भाइयों सहित निवास करते थे। यह झज्जर के नवाब के बख्शी थे अर्थात् वही सर्वेसर्वा थे। नवाब क्या ? यही ठाकुर स्यालुसिंह राज्य करते थे। इसने नवाब की फौज में हरयाणा के वीरों को भरती नहीं किया, आगे चलकर इस भूल का फल भी उसे भोगना पड़ा। उसने सब पूर्वियों को ही फौज में भरती किया, वह यह समझता था कि यह अनुशासन में रहेंगे। एक पूर्वीय सैनिक को ठाकुर स्यालुसिंह ने लाठी से मार दिया था, अतः सब पूर्वीय सैनिक उस से द्वेष करने लगे थे। एक दिन काणोड के दुर्ग में नाच गाना हो रहा था। एक पूर्वीय सैनिक ने ठाकुर स्यालुसिंह पर अवसर पाकर तलवार से वार किया। तलवार का वार पगड़ी पर लगा और ठाकुर साहब बच गये किन्तु इस पूर्वीय को ठाकुर साहब ने वहीं मार दिया। पूर्वीयों ने दुर्ग का द्वार बन्द कर दिया और द्वार पर तोप लगा दी और टके भरकर तोपें चलानी शुरू कर दीं। उस समय ठा० स्यालुसिंह के साथ ११ अन्य साथी थे। ठाकुर हरनामसिंह रतनथल निवासी ने तोपची को मार दिया। इस प्रकार बचकर यह लोग अपने घर चले गए। ठाकुर स्यालुसिंह अपनी ससुराल पाल्हावास में जो भिवानी के पास है, जहां इसके बाल-बच्चे उस समय रहते थे चला गया। किन्तु पीछे से सब पूर्वियों ने कुतानी की गढ़ी पर चढ़ाई कर दी। नवाब ने पूर्वीय सैनिकों को ऐसा करने से बहुत रोका, उसने यह भी कहा कि तुम ठाकुर के विरुद्ध मेरे पास मुकद्दमा करो, मैं न्याय करूंगा, किन्तु वे किसी प्रकार भी नहीं माने। नवाब ने कुतानी के ठाकुरों के पास भी अपना सन्देश रामबख्श धाणक खेड़ी सुलतान के द्वारा भेजा कि गढ़ी को खाली कर दें। इस प्रकार यह सन्देश तीन बार भेजा किन्तु गढ़ी में स्यालुसिंह का भाई सूबेदार मेजर शिवजीसिंह था वह यही कहता रहा स्यालुसिंह के रहते हुए हमारा कोई कुछ भी नहीं बिगाड़ सकता। किन्तु रात्रि को पूर्वीय सैनिकों ने सारी गढ़ी को घेरकर तोपों से आक्रमण कर दिया। ठाकुर शिवजीसिंह ने अपनी मानरक्षा के लिए छः ठकुरानियों को तलवार से कत्ल कर दिया। दो लड़कों का भी बध कर दिया। किन्तु वह अपनी मां का वध नहीं कर सका। उसकी मां ने स्वयं अपना सिर काट लिया और यह कहा कि मैं यदि पकड़ी गई तो कलकत्ता तक सब ठाकुर बदनाम हो जायेंगे। कुतानी की गढ़ी के सब लोग गांव छोड़कर भाग गये। कुतानी के ठाकुरों की हवेली आज भी टूटी पड़ी है। तोप के गोलों के चिह्न अब तक दीवारों पर विद्यमान हैं। गढ़ी उजड़ अवस्था में पड़ी है।

फरुखनगर

फरुखनगर के नवाब ने भी इस स्वतन्त्रता युद्ध में भाग लिया था। नवाब का नाम फौजदार खां था। फरुखनगर का बड़ा अच्छा 'दुर्ग' था। नगर के चारों ओर भी परकोटा बना हुआ था, जो आजकल भी विद्यमान है। इस नवाब को भी गिरफ्तार करके फांसी पर लटका दिया। नवाब हिन्दू प्रजा को भी अपने पुत्र के समान समझता था। एक बार हिन्दुओं ने मिलकर नवाब से प्रार्थना की कि पशुओं का वध नगर में न किया जाये क्योंकि इससे हमारा दिल दुखता है। नवाब ने उनकी प्रार्थना मान ली और पशु वध बन्द कर दिया। इसी कारण चारण, भाट, डूम इत्यादि उसके विषय में गाया करते थे—

जुग जुग जीओ नवाब फौजदार खां।
पांच पुत्र पांचों शीश पांचों गुणनागर।
नख तुल्लेखां मुखराज करैं जो वंश उजागर॥

नवाब फौजदार खां ईश्वर का बड़ा भक्त था। वह सत्संग करने के लिए एक बार भरतपुर गया। रूपराम ब्राह्मण, महाराजा भरतपुर का मन्त्री तथा महाराजा भरतपुर की महारानी गङ्गा भी ईश्वरभक्त थी और भी वहां अनेक ईश्वरभक्त रहते थे। नवाब हाथी पर चढ़कर सत्संग करने के लिए ही रानी और मन्त्री के पास गया था। उसने महाराजा भरतपुर को अपने आने की कोई सूचना पहले नहीं भेजी थी। अतः वह पकड़कर जेल में डाल दिया गया। उन्हीं दिनों महारानी गङ्गा के यहां पुत्र उत्पन्न हुआ। नवाब को प्रातःकाल हाथी पर चढ़कर भ्रमण करने की आज्ञा मिली हुई थी। एक दिन वह भ्रमण के लिए जा रहा था तो महारानी के महल को देखकर पूछा कि यह महल किसका है ? किसी ने उत्तर दिया—यह महारानी गङ्गा का महल है। नवाब कवि था उसने उसी समय कहा—

गंगा गंगा सब कहें यह गंगा वह नाय।
वह गंगा जगतारणी यह डोबे धारा मांह॥

महारानी गंगा उस समय महल पर थी, उसने उसे सुनाने के लिए ही यह कहा था। उसने भी यह सुन लिया। रूपराम मन्त्री का भी महल मार्ग में आया। नवाब के पूछने पर किसी ने बताया कि यह मन्त्री रूपराम का महल है। नवाब ने उसी समय कविता में कहा—

रूपराम तब तें सुना जब तें पड़ो न काम।
काम पड़े पायो नहीं ता में रूप न राम॥

पुत्रोत्सव की प्रसन्नता में राजा ने दो सौ कैदियों को छोड़ने की आज्ञा दी। रूपराम ने दो सौ कैदियों में से सर्वप्रथम नवाब को छोड़ दिया। भरतपुर के महाराजा ने पीछे सूचना भेजी कि नवाब को न छोड़े किन्तु वह पहले ही रूपराम के द्वारा छोड़ा जा चुका था। मन्त्री रूपराम ने राजा के पास सूचना भेजी कि नवाब तो सत्संग करने के लिए आया था, बिना आज्ञा के नहीं आया। राजा की आज्ञा से वह एक मास तक भरतपुर में रहकर सत्संग करता रहा। राज्य की ओर से अतिथि के रूप में उसकी सेवा की गई। वह सत्संग करके सहर्ष फरुखनगर लौट गया।

बराणी के ठाकुर

ठाकुर नौरंगसिंह छोटी बोन्द के निवासी थे। उनको ऊण ग्राम के पास फौजी अंग्रेज मिटकाफ साहब जो काणा था, मिल गया। नौरंगसिंह ने उसको हलवा इत्यादि खिलाकर खूब सेवा की और

फिर उसे सुरक्षित ऊँट पर बिठाकर भिवानी और हिसार पहुंचा दिया। इस सेवा के बदले उस अंग्रेज ने एक पत्र लिखकर ठाकुर साहब को दे दिया। उसी पत्र को देखकर जोन्ती के पास ठाकुरों को भूमि देना चाहा किन्तु ठाकुर के निषेध करने पर नवाब की भूमि में से १० हजार बीघे जमीन छुछकवास के बीड़ में से देनी चाही, ठाकुर साहब ने कहा कि यह जमीन बहुत अधिक है। बड़ी कठिनता से ४ हजार बीघे जमीन स्वीकार की। जहां आजकल वराणी ग्राम बसा हुआ है। कुछ जमीन ४०० बीघे इनके सम्बन्धियों को खेतावास में दी गई। इसी प्रकार की सेवा से छुछकवास के पठानों को ६ हजार बीघे भूमि का बीड़ दिया। मौड़ी वाले जाटों को भी इसी प्रकार की सेवा के बदले भूमि दी गई।

रोहट गांव

छोटे थाने वाले भागे हुए अंग्रेजों को ढूँढ़-ढूँढ़ कर मारते थे। एक दिन नहर की पटरी पर एक अंग्रेज अपने एक बच्चे और स्त्री सहित घोड़ा गाड़ी में आ रहा था, यह नहर का मोहतमीम था। इसके तांगे से एक अशर्फियों की थैली नीचे गिर गई। स्त्री स्वभाव के कारण वह अंग्रेज स्त्री उसे उठाने के लिए उतरकर पीछे चली गई। थाने ग्राम के निवासी पहले ही पीछे लगे हुए थे। उन्होंने वह थैली छीन ली और उस अंग्रेज स्त्री को न जाने मार दिया या कहीं लुप्त कर दिया। आगे चलकर रोहट ग्राम का रामलाल नाम का ठेकेदार उसे मिला जो इसे जानता था। उसने उस मोहतमीम को बचाने के लिए बच्चे सहित घास के ढेर में छिपा दिया। छिपाकर अपने घर ले गया। थाने ग्राम के लोगों को यह कह दिया कि तांगा आगे चला गया उसी में अंग्रेज है। वह ग्राम में कई दिन रहा। फिर उसको ग्राम के बाहर उसकी इच्छा के अनुसार आमों के बाग में रखा। वहां वह आम के वृक्ष पर बन्दूक लिए बैठा रहता था। ५० ग्राम वाले भी उसकी रक्षा करते थे। शान्ति होने पर उसे सुरक्षित स्थान पर भेज दिया गया। रोहट ग्राम की १४ वर्ष तक के लिए नहरी और क्लक्ट्री उघाई माफ कर दी गई। बोहर और थाने ग्राम के लोगों ने अंग्रेजों को मारा था, अतः इन दोनों ग्रामों को दण्डस्वरूप जलाना चाहते थे किन्तु रामलाल ने कहा था कि पहले मुझे गोली मारो फिर इन ग्रामों को दण्ड देना। रामलाल के कहने पर यह दोनों ग्राम छोड़ दिए गये। रामलाल को एक तलवार प्रमाणपत्र और मलका का एक चित्र पुरस्कार में दिया गया। उस रामलाल ठेकेदार के लिए यह लिखकर दिया कि इसके परिवार में से कोई मैट्रिक पास भी हो तो उसे अच्छा औफीसर बनाया जाये। वह अंग्रेज ग्राम वालों की सहायता से शान्ति होने पर करनाल पहुंच गया। मार्ग में कलाये ग्राम में उसका लड़का मर गया। गाड़ने के लिए ग्राम वालों ने भूमि नहीं दी। एक किसान ने भूमि दी जिसमें उसकी कब्र बना दी गई। चिह्नस्वरूप उसका स्मारक बना दिया गया। रोहट ग्राम में सर्वप्रथम छैलू को जेलदारी मिली। सुजान, छैलू ठेकेदार और रामलाल ठेकेदार को प्रमाणपत्र दे दिया गया।

@VaidicPustakalay

हरयाणा की वीरांगना देवी समाकौर

(पं० बस्तीराम जी आर्योपदेशक)

डबरपुर में गठवाले गोत्र के जाट रहते हैं, वहां पर चौधरी बिछाराम नाम के एक सज्जन रहते थे। उनकी पुत्री का नाम समाकौर था। वह डीघल ग्राम में ब्याही थी। उस समय कलानौर में ठाकुरों के यहां कौंला पुजता था। कौंला पूजने का यह अर्थ था कि जो लड़की ब्याही जाती उसे भेंट पूजा लेकर पहले ठाकुरों के घर जाना पड़ता था। एक रात्रि वहां ठहरकर अपने घर लौट आती थी। इस प्रकार खुला व्यभिचार और अत्याचार होता था। जब समाकौर को इनके घरवालों ने कलानौर जाने के लिए कहा तो उसने यह कहकर "मैं जाटों के ब्याही हूं रांघड़ों के नहीं" कलानौर जाने से निषेध कर दिया। डीघल वालों ने डरकर कहा वहां तो अवश्य जाना पड़ेगा। समाकौर ने सर्वथा निषेध कर दिया और नाइन को साथ लेकर अपने घर डबरपुर आ गई। जब वह डबरपुर पहुंची तो उसे ग्राम में आते देखकर उसके भाई धनसिंह ने उसे तलवार से कतल करना चाहा किन्तु बहिन ने प्रार्थना की कि पहले मेरी बात तो सुन लो फिर जो तुम्हारी इच्छा हो सो कर लेना। समाकौर ने कहा "मैं जाटों के घर ब्याही हूं रांघड़ों के नहीं" तुम्हें लज्जा नहीं आती कि तुम क्षत्रिय होते हुए ऐसा कार्य करवाते हो। यह सुनकर समाकौर के पिता और भाई को जोश आ गया। पिता घोड़े पर चढ़ कर सब जगह घूम गया और अपनी सहायता के लिए जाटों की सब खापों से प्रार्थना की। सब ने इकट्ठे होकर कलानौर पर आक्रमण कर दिया। १६ ठाकुरों को समाप्त करके ही दम लिया। कलानौर के सभी मकान भूमिसात् कर दिए गए। इस युद्ध में जाटों के भी अनेक वीर जैसे बड़ौते मुई का वारा, बटाने का वारा आदि सर्वथा समाप्त हो गए। इसमें प्रायः हरयाणा की सभी खापों ने भाग लिया था। जब कलानौर पर चढ़ाई की गई तब जाटों की सब सेनायें मोखरे के पास गढ़ में टिकी थी। अतः उस स्थान का नाम "टेकना" पड़ गया। समाकौर देवी की वीरता ने कलानौर के कलंक को ही समाप्त नहीं किया बल्कि अपने साथ ही बिछाराम और गठवाले खाप को भी अमर कर दिया। भगवान् ऐसी देवियों को देश में जन्म देता रहे।

———

१८५७ के स्वातन्त्र्य संग्राम के वीर सेनानी

बल्लभगढ़ नरेश नाहरसिंह

(श्री रामनारायण अग्रवाल)

१८५७ में भारतीय स्वतन्त्रता प्राप्ति के हेतु प्रज्वलित प्रचण्ड समराग्नि में परवाना बनकर जलने वाले अगणित ज्ञात एवं अज्ञात नौनिहाल शहीदों में बल्लभगढ़ नरेश राजा नाहरसिंह का नाम अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। दिल्ली की जड़ में अंग्रेजों के विरुद्ध मोर्चा लगाने का श्रेय इसी महावीर को मिला। रण क्षेत्र में उसे पराजित करना असम्भव ही था, क्योंकि अंग्रेज बल्लभगढ़ को दिल्ली का 'पूर्वी लोह द्वार' मानकर उससे भय-त्रस्त रहते थे और बल्लभगढ़-नरेश से युद्ध करने का साहस तक उनमें न था। राजा नाहरसिंह के जीते जी उनको किसी पेन्शन या उत्तराधिकार की भी ऐसी कोई

उलझन न थी, जिसके कारण महारानी लक्ष्मीबाई या नाना साहब की भांति उनके व्यक्तिगत स्वार्थों को अंग्रेजों ने कोई धक्का पहुंचाया हो। फिर भी रोटी और लाल फूल का संकेत पाते ही राजा नाहरसिंह देश की स्वतन्त्रता की रक्षार्थ स्वेच्छा से समराग्नि में कूद पड़े और दिल्ली के पराभव के उपरान्त भी अंग्रेजों से नाक से चना बिनवाते रहे।

यह थी उनकी निस्पृह देशभक्ति की प्रबल भावना, जिससे अंग्रेज चकरा गए और अन्त में छल से सफेद झण्डा दिखाकर उन्हें धोखे से दिल्ली लाए और वहां एक रात सोते हुए इस 'नाहर' को फिरङ्गियों ने कायरतापूर्वक जेल के सींखचों में बन्द कर दिया।

गिरफ्तारी के बाद भी अंग्रेज बराबर यह चेष्टा करते रहे कि नाहरसिंह उनकी मित्रता स्वीकार करलें, किन्तु वह महावीर तो उस फौलाद का बना था जो टूट सकती है किन्तु झुकना नहीं जानती। परिणामतः अंग्रेजों की मैत्री को अस्वीकार करने के अपराध में राजा नाहरसिंह ने दिल्ली के ऐतिहासिक फव्वारे पर सहर्ष फांसी के तख्ते पर झूल कर जर्जर भारत माता का अपने रक्त से अभिषेक किया और एक महान् उद्देश्य की प्राप्ति के मार्ग में वह मरकर भी अमर हो गए।

महत्त्वपूर्ण क्यों नहीं ?

यह दूसरी बात है कि विदेशी दासत्व के युग में लिखे गए भारतीय इतिहास ग्रंथों में भारत के इस अमर नौनिहाल को वह महत्त्वपूर्ण स्थान नहीं दिया गया है, जिसका वह वास्तविक अधिकारी है। पर क्या अब स्वतन्त्र भारत में भी हम इस पिछली भूल को दोहराते रहें ?

कदाचित् राजा नाहरसिंह के इस अमर बलिदान को दो कारणों से अधिक महत्त्व नहीं मिला। प्रथम तो यह कि बल्लभगढ़ उन रजवाड़ों में सबसे छोटा था, जिन्होंने सन् ५७ के स्वातन्त्र्य-समर में खुल कर भाग लिया और उसमें अपना अस्तित्व ही लीन कर दिया। उगते सूर्य को नमस्कार करने वाली हमारी मनोवृत्ति इस डूबते सूर्य की ओर आकृष्ट नहीं हुई या फिर दूसरा कारण यह था कि राजा नाहरसिंह को फाँसी देने से पूर्व कूटनीतिज्ञ अंग्रेजों ने उन्हें जबरन, छलपूर्वक 'नाहर खां' प्रचारित करके जनता में एक भ्रम फैला दिया था। हिन्दू धर्मानुसार राजा अवध्य होता है, किन्तु अंग्रेजों के हित में इस राजा का मारा जाना उस समय अनिवार्य था। अस्तु।

अंग्रेजों ने एक विरोधी शक्ति के रूप में राजनीतिक उद्देश्य से राजा नाहरसिंह के विरुद्ध जो कुछ भी किया, हम यहां उस पर विचार करना नहीं चाहते, क्योंकि स्वयं ब्रिटिश-इतिहासकारों ने महाराजा नाहरसिंह का जिस रूप में उल्लेख किया है वही उनके व्यक्तित्व एवं वीरत्व की परख की उत्तम कसौटी है। यदि महाराजा और उनके पूर्वज अद्वितीय वीर, सुयोग्य सैन्य संचालक, चतुर राजनीतिज्ञ तथा प्रजा-वत्सल शासक न होते तो मुगल-साम्राज्य की नाक के तले ही यह स्वतन्त्र जाट-राज्य बल्लभगढ़ शान से मस्तक उठाए यों खड़ा न रहता।

मुगलों से सन्धि

बल्लभगढ़ का यह छोटा सा राज्य दिल्ली से केवल २० मील दूर ही तो था। मुगल सिंहासन की जड़ में ही एक शक्तिशाली हिन्दू राज्य स्वयं मुगलों को ही कब सहन होता ? इतिहास साक्षी है कि बार-बार शाही सेना ने बल्लभगढ़ पर आक्रमण किए। पर बल्लभगढ़ के सुदृढ़ दुर्ग की अजेयता को

स्वीकार करके दिल्ली दरबार बल्लभगढ़ नरेशों के साथ मित्रता के स्थायी सम्बन्ध में बँध गया। नवयुवक राजा नाहरसिंह की यह दूरदर्शिता ही कही जायेगी कि उन्होंने दिन-दूने बढ़ने वाले अंग्रेजी खतरे का सामना करने की दृष्टि से मुगल बादशाह से मित्रता कर ली।

मित्रता के साथ ही लड़खड़ाते मुगल साम्राज्य का बहुत सा उत्तरदायित्व भी राजा नाहरसिंह ने अपने कन्धों पर सम्भाला। परिणामतः दिल्ली नगर की सुरक्षा एवं सुव्यवस्था की बागडोर बादशाह ने राजा को दे दी। शाही दरबार में राजा नाहरसिंह को विशेष सम्मान के रूप में 'सोने की कुर्सी' मिलती थी और वह भी बादशाह के बिल्कुल समीप।

इस प्रकार टूटते हुए मुगल साम्राज्य की ढाल के रूप में सम्राट् बहादुरशाह के यदि कोई विश्वस्त सहायक थे तो वह राजा नाहरसिंह ही थे। हर संकट में वह दिल्ली की गद्दी की रक्षार्थ तत्पर रहते थे।

परन्तु समय की गति तो किसी के रोके नहीं रुकती। धीरे-धीरे दिल्ली का तख्त अंग्रेजों के चंगुल में आता गया। यह दशा देखकर राजा नाहरसिंह संशक हो उठे। उन्होंने रात दिन दौड़-धूप करके सैन्य संगठन किया और इस योजना की सफलता के लिए यूरोपीय कप्तानों को अपनी सेना में सम्मानपूर्ण पद दिए। श्री पीयरसन को दिल्ली में बल्लभगढ़ राज्य का रेजीडेन्ट नियत किया तथा बल्लभगढ़ की सेना को यथासम्भव आधुनिक शस्त्रास्त्रों से सुसज्जित किया।

१६ मई, १८५७ को जब कि दिल्ली फिर से आजाद हुई राजा नाहरसिंह की सेना दिल्ली की पूर्वी सीमा पर तैनात हुई। शाही सहायता के लिए १५००० रुहेलों की फौज सजाकर मुहम्मद बखत खां दिल्ली में आ चुका था, किन्तु उसने भी पूर्वी मोर्चे की कमान राजा नाहरसिंह पर ही रहने दी। सम्राट् बहादुरशाह भी अपनी दाहिनी भुजा नाहरसिंह को ही मानते थे।

मजबूत मोर्चाबन्दी

अंग्रेजी आधिपत्य से मुक्त राजधानी दिल्ली के १३४ दिन के स्वतन्त्र जीवन में राजा नाहरसिंह ने दिन-रात परिश्रम करके सुव्यवस्था बनाए रखने तथा मजबूत मोर्चाबन्दी करने का प्रयत्न किया। उन्होंने दिल्ली से बल्लभगढ़ तक फौजी चौकियां तथा गुप्तचरों के दल नियुक्त कर दिए। उनकी इस तैयारी से त्रस्त होकर ही सर जॉन लारेन्स ने पूर्व की ओर से दिल्ली पर आक्रमण करना स्थगित कर दिया। लार्ड कैनिंग को लिखे गए एक पत्र में सर जॉन लारेन्स ने लिखा था - "यहां पूर्व और दक्षिण की ओर बल्लभगढ़ के नाहरसिंह की मजबूत मोर्चाबन्दी है और उस सैनिक दीवार को तोड़ता असम्भव ही दीख पड़ता है, जब तक कि चीन अथवा इंग्लैंड से हमारी कुमक नहीं आ जाती।"

यही हुआ भी। १३ सितम्बर को जब अंग्रेजी पलटनों ने दिल्ली पर आक्रमण किया तब वह कश्मीरी दरवाजे की ओर से ही किया गया। एक बार जब गोरे शहर में घुस पड़े, तब अधिकांश भारतीय सैनिक तितर-बितर होने लगे। बादशाह को भी किला छोड़कर हुमायूं के मकबरे में शरण लेनी पड़ी। इस बिगड़ी परिस्थिति में राजा ने बादशाह से बल्लभगढ़ चलने का आग्रह किया किन्तु इलाहीबख्श नामक एक अंग्रेज एजेन्ट के बहकाने से बादशाह ने हुमायूं के मकबरे से आगे बढ़ना अस्वीकार कर दिया।

राजा नाहरसिंह की बात न मानने का प्रतिफल यह हुआ कि २१ सितम्बर को कप्तान हड्सन ने चुपचाप बहादुरशाह को गिरफ्तार कर लिया। फिर भी राजा ने बहादुरी दिखाई और अंग्रेजी फौज

को ही घेरे में डाल लिया। खतरे को पहचान कर कप्तान हड्सन ने शाहजादों को गोली मार दी और सम्राट् को भी मार डालने की धमकी दी। अतः राजा ने सम्राट् की प्राणरक्षा की दृष्टि से घेराबन्दी उठा ली। दिल्ली के तख्त का यह अन्तिम अध्याय था।

रणबांकुरे नाहरसिंह ने तब भी हिम्मत नहीं हारी। उसने रातों रात पीछे हटकर बल्लभगढ़ के किले में घुसकर नए सिरे से मोर्चा लगाया और आगरे की ओर से दिल्ली को बढ़ने वाली गोरी पलटनों की धज्जियां उड़ाई जाने लगीं। हजारों गोरे बन्दी बना लिए गये और अगणित बल्लभगढ़ के मैदान में धराशायी हुए। कहा जाता है कि बल्लभगढ़ में रक्त की नाली बहने लगी थी जिससे राजकीय तालाब का रङ्ग रक्तिम हो गया था। सम्राट् के शाहजादों के रक्त का बदला बल्लभगढ़ में लिया गया।

धोखा

परन्तु चालाक अंग्रेजों ने धोखेबाजी से काम लिया और रणक्षेत्र में सन्धिसूचक सफेद झण्डा दिखा दिया। चार घुड़सवार अफसर दिल्ली से बल्लभगढ़ पहुंचे और राजा से निवेदन करने लगे कि सम्राट् बहादुरशाह से सन्धि होने वाली है, उसमें आपका उपस्थित होना आवश्यक है। अंग्रेज आपसे मित्रता ही रखना अभीष्ट समझते हैं।

भोला जाट नरेश अंग्रेजी जाल में फंस गया। उसने अंग्रेजों का विश्वास कर ५०० चुने हुए जवानों के साथ दिल्ली की ओर प्रस्थान कर दिया।

इस प्रकार अंग्रेजी कूटनीति बल्लभगढ़ की स्वतन्त्रता का अभिशाप बनकर राजा नाहरसिंह के सम्मुख उपस्थित हुई। दिल्ली में प्रवेश करते ही छिपी हुई गोरी पलटन ने अचानक राजा नाहरसिंह को बन्दी बना लिया। उनके बहादुर साथियों को मार-काट दिया गया।

दूसरे ही दिन पूरी शक्ति से अंग्रेजों ने बल्लभगढ़ पर आक्रमण कर दिया। वह सुदृढ़ दुर्ग, जिसे अंग्रज लौह द्वार कहते थे, तीन दिन तोप के गोलों से गले मिलता रहा। राजा ने अपने दुर्ग को गोला-बारूद का केन्द्र बना रखा था। वर्षों तक लड़ने की क्षमता थी उस छोटे से किले में। किन्तु बिना सेनापति के आखिर कब तक लड़ा जा सकता था ?

उधर स्वाभिमानी राजा ने अंग्रेजों का मित्र बनने से साफ इन्कार कर दिया। उसने कहा—"शत्रुओं को सिर झुकाना, मैंने सीखा नहीं है" ३६ वर्षीय राजा की सुन्दर लुभावनी मुखाकृति को देखकर हड्सन ने बड़ा दयाभाव दर्शाते हुए समझाया "नाहरसिंह ! मैं तुम्हें अब भी फांसी से बचा सकता हूं। थोड़ा सा झुक जाओ।" राजा ने हड्सन की ओर पीठ करते हुए उत्तर दिया—"कह दिया फिर सुन लो। गोरे मेरे शत्रु हैं, मेरे देश के शत्रु हैं, उनसे क्षमा मैं कदापि नहीं मांग सकता। ......लाख नाहरसिंह कल पैदा हो जायेंगे।"

नाहर के उपर्युक्त उत्तर से अंग्रेज बौखला गए। उन्होंने राजा को फांसी देने का निश्चय किया और चांदनी चौक में आधुनिक फव्वारे के निकट, जहां राजा नाहरसिंह का दिल्ली स्थित आवास था, उनको खुले आम फांसी देने की व्यवस्था की गई। दिल्ली की वह जनता जो किसी दिन राजा को शक्ति का देवता मानकर उसे अपनी सुरक्षा और सुव्यवस्था का अधिष्ठाता समझती थी, उदास भाव से गर्दन झुकाए, बड़ी संख्या में अन्तिम दर्शन को उपस्थित थी। उस दिन राजा की ३६वीं वर्षगांठ थी, जिसे मनाने के लिए वह वीर इस प्रकार फांसी के तख्ते के निकट आया मानो अपनी वर्षगांठ के

उपलक्ष्य में तुलादान की तराजू के निकट आकर खड़ा हुआ हो। राजा के साथ उसके तीन अन्य विश्वस्त साथी और थे—खुशालसिंह, गुलाबसिंह और भूरासिंह। बल्लभगढ़ के ये चार नौनिहाल देशभक्ति के अपराध में साथ-साथ फांसी के तख्ते पर खड़े हुए।

दिल्ली की जनता नैराश्यभाव से साश्रु इस हृदयविदारक दृश्य को देख रही थी। परन्तु राजा नाहरसिंह के मुख-मण्डल पर मलिनता का कोई चिह्न न था, वरन् एक दिव्य तेज शत्रुओं को आशङ्कित करता हुआ उनके मुख-मण्डल पर छाया हुआ था।

चिंगारी बुझने न देना

अन्त में फांसी की घड़ी आई और हड्सन ने सिर झुका कर राजा से उनकी अन्तिम इच्छा पूछी। राजा ने सतेज स्वर में उत्तर दिया—"तुम से कुछ नहीं मांगना। परन्तु इन भयत्रस्त दर्शकों को मेरा यह सन्देश दो कि "जो चिङ्गारी मैं आप लोगों में छोड़े जा रहा हूं उसे बुझने न देना। देश की इज्जत अब तुम्हारे हाथ है।"

हड्सन समझ नहीं सका। उसने दुभाषिए की ओर इशारा किया। किन्तु दुभाषिए ने जब उसे राजा की यह इच्छा सुनाई तब वह सन्न रह गया और राजा की इस अन्तिम इच्छा को उपस्थित दर्शकों को कहने में अपनी असमर्थता प्रकट की।

इस प्रकार राजा नाहरसिंह निस्वार्थ भाव से देश की बलिवेदी पर चढ़कर अमर हो गए। उनका पार्थिव शरीर तक उनके परिवार को नहीं दिया गया। अतः उनके राजपुरोहित ने राजा का पुतला बनाकर, गंगा किनारे अन्तिम संस्कार की रस्म पूरी की।

झज्जर के नवाब

पूर्व इतिहास

रोहतक के दक्षिण में २२ मील व दिल्ली के पश्चिम-दक्षिण कोण में ३६ मील झज्जर नाम का प्रसिद्ध कस्बा है। यह कस्बा १ हजार साल पहले झज्झू नाम के जाट ने बसाया था और उसी के नाम से झज्जर प्रसिद्ध हुआ। मुगलकाल में यह शहर अपने व्यापार के लिए अत्यन्त प्रसिद्ध था। झज्जर, रिवाड़ी, भिवानी एक त्रिकोण बनाते हैं। जो आज की तरह पूर्व काल में भी व्यापारिक केन्द्र थे। अकेले झज्जर शहर में ३०० अत्तारों और गन्धियों की दुकानें थीं। झज्जर से दिल्ली जाते वाली सड़क पर शहर से बाहर बादशाह शाहजहां के जमाने की अनेक पुरानी इमारतें व मकबरे हैं। जिनके द्वारों पर फारसी लिपि में अनेक वाक्य खुदे हुए हैं। उन भवनों व मकबरों के बीच में सदियों पुराना एक बहुत बड़ा पक्का तालाब है। जहां म्यूनिसिपैलिटी की ओर से पशुओं का मेला भरता (लगता) है।

हरयाणा का यह प्रदेश सन् १७१८ में बादशाह फरुखसियर ने अपने वजीर अलीदीन को जागीर में दिया। १७३२ में फरुखनगर के नवाब को दे दिया। १७६० में महाराजा सूरजमल (भरतपुर) ने फरुखनगर के नवाब मुसा खां को हराकर यह प्रदेश उससे छीन लिया। इस समय दिल्ली नगर की

चार दीवारी तक उनका राज्य था। बादली नाम का प्रसिद्ध गांव उनकी एक तहसील था। १७५४ में बिलोच सरदार बहादुर खां को बहादुरगढ़ बादशाहों से जागीर में मिला। झज्जर बेगम समरू के पति वेनरेल साहब के कब्जे में आ गया। गोहाना, महम, रोहतक, खरखौदा आदि दिल्ली के वजीर नब्ज खां के कब्जे में थे। १७६० में बेगम समरू की मुलाजमत में रहनेवाले अंग्रेज इसकिन्दर ने उत्तर हिन्दुस्तान में जाटों, मराठों, सिक्खों की खींचातानी देखकर हांसी, महम, बेरी, रोहतक, झज्जर पर कब्जा कर लिया और जहाजगढ़ में किला बनाकर अपना सिक्का भी चलाया। १८०३ में अंग्रेजों ने मराठों को हराया। दिल्ली के साथ हरयाणा पर भी कब्जा जमा लिया। झज्जर, बल्लभगढ़, दुजाना आदि रियासतें कायम कीं। फरुखनगर, जीन्द बहादुरगढ़ आदि रियासतें रहने दीं। हरयाणा का बाकी हिस्सा १८३६ तक गवर्नर बंगाल की मातहती में बंगाल के साथ रहा। इसके बाद आगरे के नये सूबे में शामिल कर दिया गया।

सन् ५७ के युद्ध के बाद बहादुरगढ़, बल्लभगढ़, फरुखनगर, झज्जर आदि की रियासतें समाप्त कर दीं। लोहारू, पटौदी, दुजाना की रियासतें रहने दीं। १८५८ में हरयाणा को आगरा से निकाल कर सजा के तौर पर पंजाब के साथ जोड़ दिया गया। दिल्ली को कमिश्नरी का हैडक्वार्टर बना दिया। सरसा और पानीपत के जिले तोड़कर उन्हें तहसील बना दिया गया।

झज्जर के नवाबों का सम्बन्ध बहराइंच के पठानों से था। नवाबों के पूर्वज पहले पिशिन व कन्धार के आस पास निवास करते थे। धीरे-धीरे सरकते हुए वे लोग युसुफजइ प्रदेश (कबीले) में आ पहुंचे। धन-सम्पदा के लोभ में नवाबों का पहला दादा मुस्तफा खां, भारतवर्ष में दिल्ली के बादशाह मोहम्मदशाह रंगीला के काल में आया। दिल्ली से चलकर वह बंगाल के गवर्नर अलीवर्दी खां के यहां नौकर हो गया। अलीवर्दी खां के पास रहते हुए मुस्तफा खां ने अनेक युद्धों में वीरत्व प्रदर्शित कर नवाब की उपाधि प्राप्त की। उसने बिहार का गवर्नर बनने के अनेक प्रयत्न किये। असफल हो अपने पुराने स्वामी अलीवर्दी खां को छोड़ उत्तर हिन्दुस्तान में चला आया। अजीमाबाद के युद्ध में वीरगति को प्राप्त हुआ। मुस्तफा खां की मृत्यु के उपरान्त उसके पुत्र मुर्तजा खां ने पिता की फौज की कमान सम्भाली। अजीमाबाद से चलकर वह अवध के सूबेदार सफदरजंग के पास पहुंचा और उसकी सेवा स्वीकार कर ली। सफदरजंग के बाद वह शुजाउद्दौला के पास रहा। उन्हें छोड़कर वह दिल्ली की दादाशाही फौज के सिपहसालार नजफ खां से आ मिला। नजफ खां ने उसे महाराजा जयपुर के विरुद्ध युद्ध के लिए भेजा, जहां वह मैदान में काम आया। मुर्तजा खां का स्थान उसके बेटे निजाबतअली खां ने सम्भाला। अनेक लड़ाइयों में यह दिल्ली के बादशाहों की ओर से लड़ा। तत्कालीन शाह आलम ने प्रसन्न होकर उसके दादा की तरह उसे नवाब की उपाधि प्रदान की। निजाबतअली खां ठण्डे दिमाग का शानदार योद्धा था। वह समय के उतार चढ़ाव का पारखी था। जब १८०३ में अंग्रेजों और मराठों का भारतवर्ष की सत्ता अधिग्रहण के लिए निर्णायक युद्ध हुआ तो निजबातअली ने चढ़ती शक्ति अंग्रेजों का साथ दिया। जीत के उपरान्त अंग्रेजों ने प्रसन्न हो झज्जर की नवाबी निजाबतअली को सौंप दी। निजाबतअली दिल्ली में रहता हुआ ही झज्जर के काम-काज को सम्भालता था। १८१३ में इसने अपने योग्य पुत्र फैज मोहम्मद खां को झज्जर की रियासत संभलवा दी। निजाबतअली खां ३० साल तक लगातार दिल्ली ही रहा। १८२४ में वह गुजरा। उसके पुत्र फैज मोहम्मद ने अपने पिता निजाबतअली खां को महरौली में कुतुबुद्दीन औलिया के पवित्र मकबरे की शाया में दफनाया। झज्जर के नवाबों (बहराइच पठानों) व उनके वंशजों की तमाम कब्रें

वहीं हैं। फैज मुहम्मद खां योग्य शासक था। झज्जर के मकानात शाहीमहल इसी ने बनवाये थे। जिनमें आज झज्जर तहसील की कचहरियां लगती हैं। इसकी निर्माण कार्यों में बेहद दिलचस्पी थी। झज्जर के अनेक छोटे-छोटे तालाब, शहर की पुख्ता गलियां इसी जमाने की बनी हुई हैं। इसने नमक बनाने की स्कीम जारी की और लोगों को नमक बनाने के लिए उत्साहित किया। फैज मोहम्मद खां ने अपने मातहत प्रदेश को खुशहाल बनाने में कोई कसर उठा न रखी। अनेक उजड़े हुए गांवों को फिर बसाया। बादली का प्रसिद्ध बांध बँधवाया; जिसकी लम्बाई चार मील है। जिसमें बरसात का पानी इकट्ठा होता था और सिंचाई के काम आता था। इसके दरबार में बड़े विद्वान् और कवि इकट्ठे होते थे; जिनका यह यथाशक्ति आदर करता था। जनश्रुति के आधार पर यह बड़ा योग्य शासक था। अपने पिता के जीते जी ही इसने उसकी जायदाद को संभाल लिया। इस तरह १८१३ से १८३५ तक २२ साल इसने योग्यतापूर्वक शासन किया। १८३५ में इसका शरीर पूरा हुआ और अपनें पिता के बराबर महरौली में दफनाया गया।

फैज मोहम्मद का पुत्र फैजअली खां अपने पिता के बाद गद्दी नशीन हुआ। अपने पिता से उल्टा यह अत्यन्त व्यसनी, दुर्गुणी और संकुचित हृदय था। जमीन का लगान अत्यन्त सख्ती से वसूल करता था। इसके बारे में झज्जर के देहात में अनेक किस्से मशहूर हैं। कहा जाता है कि जब नवाब के खर्चे अत्यधिक बढ़ गये तो इसने एक-एक गांव से साल में कई-कई बार लगान लेना शुरू किया। इलाके के बड़े बड़े गांवों ने संगठित रूप में नवाब की इस नाजायज हरकत का मुकाबला शुरू किया। अपनी रियासत के प्रसिद्ध गांव "छारा" में नवाब जब लगान लेने गया तो उन्होंने कर देने से इन्कार कर दिया। वापिस लौटता हुआ नवाब बौखला कर एक छोटे गांव "गुढ़ा" में पहुंचा और गांव का पिण्ड तब छोड़ा जब उससे छारा गांव का कर ले लिया। इसी तरह "डावला" नामक गांव का लगान "रय्या" नामक गांव से वसूल किया। यही नहीं, फैजअली अपनी कामुकता के लिए भी प्रसिद्ध है। झज्जर की देहात के बड़े-बूढ़े बताते हैं कि नवाब ने घर-घर पिंजरे टंगवा रखे थे। उनमें चिड़ियां रुक जाती थीं। नवाब के नौकर आते और पिंजरों में बन्द चिड़ियों को ले जाते, नवाब उनका मांस अनेक प्रकार भूनकर-पकाकर खाता। कहा तो यहां तक भी जाता है कि नवाब चिड़ियों की जीभ का शाक खाता था, कामुकता की वृद्धि के लिए। नवाब की अय्याशी का यहीं अन्त नहीं था। जब वह शिकार के लिए निकलता तो बहेलियों, बाजों व कुत्तों का झुण्ड उसके साथ निकलता था। जो कुछ सामनें पड़ता वही मार गिराया जाता। शाम को जब नवाब फैजअली सैर को निकलता तो उसकी विशेष प्रकार की बग्गी में काले हिरण जुते रहते थे। कभी-कभी वह झज्जर से छुछकवास तक ९-१० मील उन हिरणों की बग्गी को दौड़ाता था। यहीं तक बस नहीं, नवाब को नङ्गा नहाने का इतना अधिक शौक था कि उसनें झज्जर से पांच मील उत्तर में भदाणी गांव के रास्ते पर बीच जंगल में पक्की जोहड़ी (छोटा तालाब) बनवाई (जो आज भी मौजूद है)। जहां वह शिकार के बाद नङ्गा स्नान करता था। विलासप्रिय नवाब फैजअली ने अपने बागों के बीच में फिसलने वाली जोहड़ी (पक्का छोटा तालाब) बनवाई; जहां वह चांदनी रातों में बेगमों के साथ नङ्ग-धड़ङ्ग नहाता। तालाब के बीच में अनेक दीपों को रखने की आलियां (भीत में जगह-जगह खुदे गढ़े) युक्त स्तम्भ हैं। उत्तर की ओर दस फुट ऊँचा विशाल चबूतरा है। तालाब से चबूतरे पर चढ़ने के लिए सीढ़ियां हैं। प्रसिद्ध है कि दासियां चबूतरे से तालाब तक चली गई तिरछी फिसलन पर बेगमों को सावधानी से फिसला देती थीं और नवाब फिसली बेगमों के नीचे खुद आ अड़ता। आज यह फिसलनी जोहड़ी अच्छी

अवस्था में ज्यों की त्यों झज्जर शहर से आध मील पर "तालाब" गांव के रास्ते पर विद्यमान है। हां उसके चारों ओर की परदा-दीवारें गिर चुकी हैं। कुँए से तालाब तक आने वाली पक्की नालियां धीरे-धीरे नष्ट हो रही हैं। चारदीवारी से बाहर की खाई बालू रेत से अँट गई हैं। बाग काटा जा चुका है। इसका शासन काल केवल १० साल रहा और युवावस्था में ही यह विलासी नवाब काल कवलित हुआ।

अन्तिम नवाब अब्दुर्रहमान खाँ

१८४५ में नवाब अब्दुर्रहमान खां गद्दी पर बैठे। क्रूर और विलासी पिता द्वारा पीड़ित प्रजा उन्हें विरासत में मिली। गद्दी पर बैठते ही नवाब का अपने रिश्तेदारों से झगड़ा शुरू हो गया; जिन्होंने उसकी गद्दी के विरुद्ध (असली हक के खिलाफ) दावा किया। इसका असर नवाब के दिल पर इतना बुरा पड़ा कि वह फिर कभी उभर न सका।

नवाब अब्दुर्रहमान को अपने पिता की अपेक्षा अपने दादा फैज मोहम्मद के गुण उत्तराधिकार में मिले थे। उसमें शासन प्रबन्ध व निर्माण की योग्यता थी। उसने जहांआरा बाग में एक शानदार महल बनवाया (जिसमें आजकल एस० डी० ओ० की कचहरी लगती है और जो ग्रामीण जनता में बाग जवाहरा नाम से मशहूर है)। झज्जर से दस मील दादरी को जाने वाली सड़क के किनारे नवाब ने एक महल और काफी बड़ा तालाब बनवाया। जिसका निर्माण दो साल (तालाब पर लगे पत्थर के अनुसार १८५२ में शुरू व १८५४ में पूर्ण) में हुआ। एक तरफ घाट है, तीन तरफ सीधी खड़ी दीवारें। पर आजकल तालाब की दीवारें गिरनी शुरू हो गई हैं। उनकी सार संभाल करने वाला अब कोई नहीं रहा। नवाब के पिता के समय के अभ्यस्त कारिन्दों ने लगान बेरहमी और सख्ती से वसूल करना शुरू किया। जनता त्राहि-त्राहि कर उठी। दु:खी नवाब स्वयं गांवों में गया; जनता को आश्वस्त किया। भागती जनता को रोका और उजड़े गांवों को पुन: बसाया। इससे जो लोग फैजअली के समय रियासत से चले गये थे वे फिर वापिस आकर बस गये। उसने पुराने लोगों को हटाकर नए लोगों को वजीर बनाया। नवाब के तीन वजीर थे। झज्जर के पं० रिछपालसिंह (जिनके वंशधर आज भी दीवान खानदान के कहलाते हैं) और जिनमें अन्तिम थे दिलावरसिंह। जो पंजाब के प्रसिद्ध विधान सभाई पं० श्रीराम शर्मा के प्रबल प्रतिद्वन्द्वी थे। वे अपने साथ ही अपने वंश की इतिश्री कर गए।

दूसरे वजीर थे "कुतानी" के ठाकुर स्यालुसिंह। जिनकी अपने तीसरे साथी से कभी न बनती थी और दोनों के झगड़े के सम्बन्ध में अनेक किस्से मशहूर हैं। उनके वंशधरों के पास भी कुतानी की काफी जमीन है।

तीसरे थे "बादली" के चौधरी गुलाबसिंह। गांव बादली में गुलाबसिंह की हवेली में आज भी कैदियों को रोकने की सात ताले बन्द कोठरियां हैं। उनके वैभवशाली परिवार में हुए चौधरी स्वरूप-सिंह जिन्होंने सन् २२ में पंजाब कौन्सिल के चुनाव में चौ० छोटूराम को हराया था। स्वरूपसिंह के हुए रणधीरसिंह और रणधीरसिंह के हैं सम्पूर्णसिंह।

बहादुरगढ़ के नवाब मोहम्मद इस्माईल खां अपने अढ़ाई वर्ष के लड़के को छोड़कर मर गये। बहराइच-पठानों की शाखा होने से रियासत का कार्यभार झज्जर के नवाब ने सम्भाला। बालिग होकर बहादुरगढ़ के नवाब बहादुरजंग ने अपना हक मांगा। नवाब झज्जर ने दादरी का प्रदेश अपने हक में रखकर बाकी बहादुरगढ़ की रियासत लौटा दी। युवक बहादुरजंग ने अंग्रेज रेजीडेन्ट देहली

की सेवा में फरियाद की। उसने १६ गांव नवाब झज्जर को दिलाकर बाकी इलाका बहादुरगढ़ के नवाब को वापिस करा दिया। १८४८ में नवाब बहादुरजंग की हालत इतनी पतली हो गई कि रियासत दादरी के कुर्क होने का खतरा पैदा हो गया। नवाब झज्जर ने सारा कर्ज़ चुकाकर दादरी रियासत का शेष भाग भी अपने अधिकार में ले लिया। अंग्रेज नवाब बहादुरजंग से बहादुरगढ़ का शस्य-श्यामल प्रदेश भी छीनना चाहते थे। इतने में १८५७ आ पहुंचा। नवाब बहादुरजंग ने अंग्रेजों के विरुद्ध युद्ध में भाग लिया। युद्ध समाप्त होने पर नवाब बहादुरजंग को फांसी के तख्ते पर लटका दिया गया और बहादुरगढ़ का प्रदेश दिल्ली में मिला लिया गया।

१८५५ में झज्जर के नवाब अपनी रियासत के नियमित प्रबन्ध में जुटे हुए थे। बादली इलाके को भी ये अपने प्रदेश में मिला चुके थे। इस समय उनकी रियासत में ३६० गांव थे। १४ लाख की सालाना आमदनी थी। रियासत धन-धान्य पूर्ण थी। नवाब ने धीरे-धीरे अपनी फौज बढ़ानी शुरू की। शहर से बाहर छावनी डाली। इस स्थान पर शहर और तहसील के बीच में रास्ते से कुछ हट कर दक्षिण की ओर एक बस्ती बसी हुई है जो आज भी छावनी कहलाती है। नवाब की फौज में पूर्विये (जिनके नाम पर आज भी झज्जर की एक जोहड़ी (छोटा तालाब) पूर्वियों की जोहड़ी कहलाती है जो शहर से पश्चिमोत्तर कोण में है।) तैलंगे और जाट थे। झज्जर के किले पर तोपें चढ़वा दीं। (कुछ तोपें और उनके गोले आज भी झज्जर की कचहरियों में नवाब के महलों के सामने चबूतरे पर रखे हैं) "सिलानी" गांव की बनी (जङ्गल) में भी नवाब ने छावनी डलवाई। वहीं फौजों को परेड करवाई जाती थी। छुछकवास के बीड़ (जंगल) में भी सिपाहियों को गोलाबारी का अभ्यास कराया जाता था। नवाब को घोड़ों का भी शौक था। यह शौक उन्हें राव तुलाराम की दोस्ती के कारण हुआ था। गर्ज यह कि गदर से पहले नवाब पूरी तैयारी कर रहे थे। शाहंशाह बहादुरशाह ने जब अपना विचार अंग्रेज को भारत से निकालने का किया तो सब से पहली प्रतिक्रिया झज्जर की नवाबी पर हुई। इसका प्रमाण अवध की बेगम सुलताना जहां बेगम "कैसर" का लिखा वह कैसरनामा है जो अमीर महल काकोरी के पुस्तकालय में अभी तक सुरक्षित है। उस में लिखा है कि "नवाब झज्जर ने पक्का इरादा कर लिया है कि आजादी की लड़ाई में वह पूरी मुस्तैदी से बादशाह का साथ देंगे। उनकी पलटन में पूर्वीये ऊँचे दर्जे के लड़ाके हैं।" पांच-सात दिन पीछे एक मई के रोजनामचे में बेगम ने फिर लिखा है कि "नवाब झज्जर और राजा बल्लभगढ़ विद्रोह में शामिल हो गये हैं, राव तुलाराम से खतोकिताब जारी है। इससे ज्ञात होता है कि नवाब अब्दुर्रहमान ने अपना मन अंग्रेजों के विरुद्ध पूरी तरह बना लिया था। यह कोई आकस्मिक घटना नहीं थी जो अचानक घट गई।

१० मई, १८५७ को मेरठ में क्रांति की जो चिंगारी सुलगी वह मई के अन्त तक सारे भारत में फैल गई। मेरठ छावनी में जाट और राजपूत भारी संख्या में सिपाही थे। रिवाड़ी के राजा तुलाराम के भाई राव कृष्ण गोपाल इन दिनों मेरठ शहर में कोतवाल थे, बागी फौजें मेरठ को विजय करके उनके नेतृत्व में दिल्ली की ओर बढ़ीं और दिल्ली से हरियाणा की वीरप्रसू भूमि में क्रांति फूट पड़ी।

१२ मई को अंग्रेजों ने नवाब झज्जर से ५०० सिपाही और कुछ तोपें सहायता के लिए मांगी। परन्तु उस समय दिल्ली में भारी गड़बड़ी थी। अंग्रेज मारे जा रहे थे, बच्चे-खुचे करनाल की तरफ भाग रहे थे। इसलिए नवाब (जो मन से अंग्रेजों के विरुद्ध था) ने कोई सहायता न भेजी। हां एक चिट्ठी आगरा के लेफ्टिनैन्ट गवर्नर को अवश्य लिखी और उस से पूछा कि उसे क्या करना चाहिए?

१२ मई को ही रोहतक में विद्रोह शुरू हो गया था—अंग्रेजों ने नवाब को उसे दबाने की आज्ञा दी। नवाब ने अधूरे मन से १८ मई को दो छोटी तोपें और चन्द घुड़सवार भेजे। तोपें किसी काम की न थीं। सिपाही रास्ते भर लोगों को अंग्रेजों के विरुद्ध भड़काते आये। उन दिनों रोहतक में बंगाल सिविल-सर्विस का कलक्टर जान राड्य लौक १० महीने के लिए इन्चार्ज बनकर आया था।

जब दिल्ली के कमिश्नर एस् प्रेसर काट दिए गए और ज्वाइन्ट मैजिस्ट्रेट जॉन मेटकाफ पर आक्रमण किया तो वे जान बचाकर भागे तथा कुछ अन्य अंग्रेजों के साथ लुक-छिपकर झज्जर पहुंचे। नवाब उनसे मिला नहीं, हां अपने पहरेदारों की देख-रेख में छुछकवास की अपनी कोठी में भेज दिया। कुछ दिन बाद दिल्ली से कुछ ब्रिटिश स्त्रियां और आश्रय के लिए आईं। इनमें दिल्ली के आफिसर किचनर की पत्नी, साली और बच्चे भी थे। दूसरी ओर गुड़गांव के अंग्रेज अधिकारी भी मय बाल-बच्चों के नवाब के आश्रित हुए। नवाब ने इन सब अंग्रेज स्त्री-पुरुषों की रक्षा की और दिल्ली जीत लेने के बाद उनके संरक्षकों के पास अपने दरोगा मिर्जा हुसैन द्वारा रथों में बैठाकर पहुंचा दिया। हां मैटकाफ को लम्बा आश्रय देने से इन्कार कर दिया और यह शीघ्र ही रियासत से चला गया था।

दूसरी तरफ नवाब विद्रोहियों को भी पूरा-पूरा साथ दे रहे थे। क्रांतिकारियों के सहायता मांगने पर उन्होंने अपने ससुर अब्दुस्समद खां और अपने दादा इब्राहीम के नेतृत्व में ३०० सिपाही दिल्ली भेजे। जिन्होंने दिल्ली की पहाड़ी की लड़ाई और बादली की सराय के युद्ध में अंग्रेजों से डट कर लोहा लिया। इन सिपाहियों का वेतन नवाब देते थे।

२४ मई को नवाब की शह पर शाही फौजें रोहतक के खजाने से दो लाख रुपया लूट ले गईं। रोहतक के रांघड़ों (मुसलमान राजपूतों) और कसाइयों ने रोहतक कोर्ट पर झण्डा फहरा दिया।

उधर नवाब अब्दुर्रहमान खां राव तुलाराम से सलाह-मशविरा करते रहते थे—तथा उनके साथ रामपुर (रिवाड़ी) व तावडू के युद्धों में भी सम्मिलित हुए। इधर बादशाह बहादुरशाह के साथ जो पत्र-व्यवहार जारी था उसका ज्ञान अंग्रेजों को हो गया और जनरल एनसन झज्जर के दीवान रिछपालसिंह को तोड़ने में कामयाब हो गए। यही नहीं नवाब का पत्र-व्यवहार, राजा तुलाराम, राजा नाहरसिंह (वल्लभगढ़), नवाब मोहम्मद अली (फरुखनगर), नवाब जंग बहादुर (बहादुरगढ़) से भी चल रहा था, परन्तु वे हैरान थे कि समाचार क्यों नहीं मिल पाते। अंग्रेजों की साजिश बुरे तौर से चल रही थी। सारा पत्र-व्यवहार बीच में ही गुम कर लिया जाता था।

दिल्ली के चूड़ीवालों के मोहल्ले से भारी तादाद में अस्त्र-शस्त्र और गोला बारूद झज्जर पहुंचने वाला था। वह विश्वासघातियों ने बीच में ही रोक लिया। १४ सितम्बर को दिल्ली का पतन हुआ। १५ दिन अंग्रेजों को दिल्ली की व्यवस्था में लगे। अक्टूबर के प्रारम्भ में अंग्रेजों ने आस-पास की रियासतों को अपने काबू में लाने का फैसला किया। ४ अक्टूबर को ब्रिगेडियर शावर्स ने दिल्ली से झज्जर को कूच किया। उनके साथ कप्तान हड़सन भी था। १७ अक्टूबर को वे झज्जर पहुंचे। दूसरी ओर से कर्नल लारेंस भी दादरी से कुछकवास पहुंचे। उस समय नवाब की सेना रण साज-सज्जा से पूरी तरह तैयार थी और सेना चाहती थी ब्रिटिश सैन्य से लोहा लेना। नवाब की फौज अंग्रेजी फौज को हरा सकती थी। पर विश्वासघाती दीवान रिछपालसिंह ने उन्हें आत्मसमर्पण की सलाह दी। नवाब ने छुछकवास पहुंच कर कर्नल लारेंस के सामने आत्मसमर्पण कर दिया। १८ अक्तूबर को झज्जर के किले पर और १९ अक्टूबर को नारनौल के गढ़ पर ब्रिटिश झण्डा फहरा दिया गया। धन-धान्य पूर्ण झज्जर शहर को लूट लिया गया। नवाब की लाखों रुपये की सम्पत्ति, गाय, घोड़े,

भैंस सब लूट लिए गये। झज्जर के चारों ओर की प्रसिद्ध सड़कों पर निरीह प्रजा को उल्टा लटका-लटका कर वृक्षों को लाशों से भर दिया गया। सारा इलाका विद्रोही करार दे दिया गया और यह लिखित घोषणा कर दी गई कि भविष्य में भो जब तक अंग्रेजी राज्य रहे इस प्रदेश को पिछड़ा ही रहने दिया जावे। चौ० छोटूराम तक इस प्रदेश की किसी ने सुध नहीं ली। वे ही पहले व्यक्ति थे जिन्होंने इस प्रदेश के पिछड़ेपन की तरफ पहले-पहल ध्यान दिया।

फौज को भी हथियार डालने के लिए आज्ञा दी पर उसने आत्म-समर्पण से इन्कार कर दिया। और अंग्रेजी फौज से लड़ते-भिड़ते क्रांतिकारी सिपाही जोधपुर के दक्षिण में क्रांतिकारी सेनाओं से जा मिले और अन्तिम समय तक लड़ते-भिड़ते रहे।

नवाब को ब्रिटिश फौज के पहरे में देहली ले जाया गया और उन पर राज विद्रोह के सम्बन्ध में मुकद्दमा चलाने का निर्णय किया गया। मुकद्दमे का फैसला होने तक झज्जर रियासत कर्नल लारेंस के शासन में सौंप दी गई। पटियाला रियासत के छः सौ पैदल और २०० घुड़सवार सिक्ख सैनिक झज्जर में अंग्रेज सैन्य की सहायता के लिए रखे गये। नवम्बर के प्रारम्भ तक रोहतक के हालात बिल्कुल ठीक हो चुके थे। नवाब फरुखनगर, नवाब बहादुरगढ़ भी पकड़े जा चुके थे। राव तुलाराम रिवाड़ी छोड़कर जा चुके थे। राजा बल्लभगढ़ भी काबू आ चुके थे। नवाब फरुखनगर ३१ अक्टूबर को पकड़े गए थे तथा राजा नाहरसिंह (बल्लभगढ़) नवम्बर के प्रारम्भ में। दोनों राजवंशों की सम्पत्ति लूट ली गई। यहां तक कि रानियों व बेगमों के जेवर, गहने, वस्त्र उतारकर उन्हें नग्न करके रियाया के सामने बेईज़्ज़ती की गई और लाखों की जायदाद को उजाड़ दिया गया। नवाब मोहम्मद अली को उनके ११ साथियों के साथ गोली से उड़ा दिया गया। राजा नाहरसिंह को २१ अप्रैल सन् १८५८ को उनके लेफ्टिनैंट गुलाबसिंह, ठाकुर भूरेसिंह, कुंवर खुशालसिंह सहित चांदनी चौक में फांसी पर लटका दिया। नवाव दुजाना रुपये-पैसे काबू में किये बैठे रहे। उन्हें रहने दिया गया। नवाब दुजाना और लोहारु सन् ४७ में पाकिस्तान भाग गए। इस तरह सन् ४८ में सब बराबर हो गए।

जब सारे हरयाणा में शान्ति हो गई और अंग्रेज निश्चिन्त हो गए तब देहली के रायल (शाही) हाल में मिलटरी कमीशन के सामने (जिसके अध्यक्ष जनरल एन० चैम्बरलैन थे) नवाब अब्दुर्रहमान का मुकद्दमा शुरू हुआ। पहली पेशी १४ दिसम्बर सन् ५७ की थी और अन्तिम १७ दिसम्बर। इस तरह ३ दिन में ही यह नाटकीय मुकद्दमा समाप्त कर दिया गया। नवाब के विरुद्ध १८५७ के गद्दर के १६वें एक्ट के अनुसार निम्नलिखित अभियोग लगाए गए।

१—नवाव अब्दुर्रहमान खां ने अंग्रेज गवर्नमेन्ट के विरुद्ध विद्रोहियों की सहायता की और जहां जहां मार्शल-ला जारी कर रखा था वहां विद्रोह करने और कराने का प्रयत्न किया।

२—नवाब ने विद्रोहियों को फौज, रुपये और पनाह देकर सहायता की।

३ उसने (नवाब ने) गवर्नमैन्ट को धोखा देने के लिए विद्रोहियों के साथ पत्र व्यवहार किया।

जिस समय झज्जर की जायदाद निजावतअली खां को दे दी गई, उससे उस समय एक सनद पर यह शर्त लिखा ली गई थी कि—"नवाब सदा अंग्रेज-सरकार का दोस्त और कल्याण चाहने वाला (शुभेच्छु) रहेगा। जरूरत तथा कष्ट के समय चार सौ या इससे भी अधिक घुड़सवार हाजिर करेगा।" लेकिन नवाब ने इसका उल्लंघन किया। अंग्रेज अफसरों की शरण में आने पर रक्षा नहीं की। इसके उल्ट निश्चय ही नवाब ने अंग्रेज स्त्री-बच्चों को सुरक्षित दिल्ली पहुंचाया। प्रारम्भ में नवाब दोगली चालें चलता रहा और अन्त में उसके विश्वस्त अधिकारियों ने धोखा दिया। अंग्रेजों के विरुद्ध लड़ा।

उसने (नवाब ने) विद्रोहियों की रुपयों से सहायता की। झज्जर के व्यापारियों से जबरदस्ती यह कह कर कि "देहली से शाहजादा आया है उसकी मेहमान निवाजी होनी है" चन्दा देने के लिए मजबूर किया और चन्दे तथा मालगुजारी के रूप में पांच लाख रुपये तथा अपनी फौज, अपने ससुर अब्दुस्समद खां की अध्यक्षता में दिल्ली भेजी। जिस समय रियासत के झज्जर और नारनौल किलों पर अधिकार किया गया उस समय वे पूरी फौजी तैयारियी में थे। किलों की देख-रेख का प्रबन्ध रिछपालसिंह की अध्यक्षता में हो रहा था। जिसने नवाब को लड़ने से मना किया और आत्मसमर्पण की सलाह दी, इनाम के तौर पर बाद में अंग्रेजों ने इसे झज्जर का आनरेरी मजिस्ट्रेट बना दिया। और इसके दूसरे साथी स्यालुसिंह को कुतानी गांव इनाम में दिया। इन्हीं दोनों ने झज्जर से दिल्ली जाता लाखों का खजाना खुर्द-बुर्द कर दिया था। फौज के सिपाही नवाब के काबू में नहीं थे। उन्होंने अपनी इच्छनुसार काम किया। मुसलमान सिपाहियों ने झज्जर के हिन्दू अफसरों के खिलाफ बगावत की। उनके घरों और गांवों पर हमला किया गया। स्त्री और बच्चों को मारा गया। नवाब का अपना कोई ध्येय नहीं था। महलों की रानियों ने उसे देहली बादशाह के पास जाने के लिए मजबूर किया। इन बातों को ध्यान में रखते हुए कमीशन ने उसे (नवाब को) अपनी ड्यूटियों का अच्छी तरह पालन न करने के कारण बड़ा भारी मुजरिम ठहराया तथा अपराधी के रूप में उसे फांसी की सजा दी। कमीशन के सामने नवाब के विरुद्ध गवाही देने के लिए सर टी० मैटकाफ, मि० फोर्ड, मि० लौक आदि अंग्रेज तथा दीवान रिछपालसिंह, ठाकुर स्यालुसिंह (नवाब के एक वजीर) आदि उपस्थित हुए।

२३ दिसम्बर १८५७ को देहली के लालकिले के सामने नवाब अब्दुर्रहमान को फांसी दे दी गई। उनकी रियासत के अनेक टुकड़े करके विभिन्न भागों में बांट दिया गया। नारनौल, बावल तथा दादरी के प्रदेश अंग्रेजों ने अपनी सहायता करने वाले सिक्ख राजाओं, पटियाला, नाभा व जीन्द को दे दिए। नाहड़ का इलाका दुजाना के नवाब को भेंट कर दिया गया। १८२४ में रोहतक जिला वजूद में आया था, उससे पहले गोहाना, महम, पानीपत में थे और महम से ऊपर का प्रदेश सरसा में। पर विद्रोह के बाद पानीपत और सरसा के किले तोड़ दिए गए। झज्जर को चार साल बाद १८६२ में देहली से काटकर रोहतक के साथ मिला दिया गया और साथ ही बहादुरगढ़ को भी। नवाब झज्जर की सारी सम्पत्ति जब्त करके दिल्ली ले जाई गई तथा उनके कुटुम्बियों को थोड़ी-थोड़ी पेन्शन दे दी गई (और जब झज्जर को रोहतक जिले में मिलाया गया तथा रोहतक को आगरा से अलग करके सजा के तौर पर पञ्जाब में मिलाया) तथा उन्हें लुधियाना व लाहौर भेज दिया गया जिससे कि वे दुबारा लोगों को अपने साथ न लगा लेवें। छुछकवास एक अंग्रेज पक्षपाती गोहाने के पठान को दे दिया गया। झज्जर की प्रसिद्ध नवाबी का इस तरह अन्त हुआ और नवाब की लाश को गड्ढे में फेंक दिया गया। जहां उसकी लाश को गिद्ध और चील खा गई। समय बड़ा बलवान् है। वह जो न करदे वही थोड़ा है। ठीक ९० साल बाद वे राजा और नवाब भी जन-साधारण में आ मिले जिन्होंने अपने भाइयों के विरुद्ध अंग्रेजों का साथ दिया था। आज राजा रंक सब बराबर हैं। सिर्फ उन लोगों के नाम में फर्क है, जहां वीर क्रांतिकारियों की कहानियां इतिहास की अमर गाथायें बन गईं वहां अंग्रेज शासकों का साथ देने वालों को अच्छे रूप में याद नहीं किया जाएगा।

शहीदों की चिताओं पर लगेंगे हर वर्ष मेले।
वतन पर मरनेवालों का यही बाकी निशां होगा॥

जलियां वाला बाग

(ब्र० महादेव सि० शास्त्री)

१३ अप्रैल सन् १९१९ वैसाखी के पवित्र दिन २० हजार भारत के वीरपुत्रों ने
अमृतसर के जलियां वाले बाग में स्वाधीनता का यज्ञ रचा था। वहां आबाल वृद्ध सभी उपस्थित थे,
सबने एक स्वर से स्वाधीनता की मांग की। इस पर अंग्रेजों को यह सहन न हुआ। अपने बल का
प्रदर्शन करने बाग की ओर गये। वहां जाकर लगातार १५ मिनट तक गोली वर्षा की। इस बाग के
चारों ओर ऊंची ऊंची दीवारेंविद्यमान थीं। प्रवेश के लिए एक छोटा सा द्वार था, उसी द्वार पर उस नीच
डायर ने मशीनगन लगवा दी। जब तक गोली थीं तब तक चलवाता रहा। वहां रक्त की धारा बह
चली। सरकारी समाचार के अनुसार ४०० व्यक्ति मृत तथा २००० के लगभग घायल थे।

कर्णपरम्परा से सुना जाता है कि नीच डायर ने यह कुकृत्य हिन्दुओं के द्वारा करवाया था।
हिन्दू फौज आगे और इसके पीछे गोरखा फौज थी। इस गोलीकाण्ड में नीच कर्म यह किया गया कि
मृत व घायलों को बाग में ही रातभर तड़फने दिया गया। इनकी मरहमपट्टी तो दूर की बात है किसी
को पीने के लिए जल तक न दिया। वहां पास में कुंआ था उसमें अनेक व्यक्ति अपनी जान बचाने के
लिए कूद पड़े। गोलीकाण्ड समाप्त हुआ तो उस कुंए में से लगभग सवासौ शव निकाले गये। इस
प्रकार इस कुंए की मृतकूप संज्ञा पड़ गई।

हत्यारे डायर ने हण्टर कमीशन के सामने स्वयं बड़े गर्व से कहा था कि मैंने बड़ी भीड़ पर
१५ मिनट तक बड़ी धूआंधार गोलियां चलाईं। मैंने भीड़ हटाने का प्रयास नहीं किया, मैं बिना
गोलियां चलाये भीड़ को हटा सकता था पर इसमें लोग मेरी हंसी करते। कुल गोलियां १६५० चलाई
थीं। गोली बरसाना तब तक किया जब तक कि वह समाप्त न हो गई और साथ ही यह भी स्वीकार
किया कि मृतकों को उठाने व उनकी मदद करने का कोई प्रबन्ध नहीं किया। इसका कारण बताते
हुए कहा—उस समय उन घायलों की मदद करना मेरा कर्त्तव्य नहीं था। डायर की इस क्रूरता को
पंजाब के शासक सर माईकेल ओडायर ने न केवल उचित ही ठहराया अपितु तार द्वारा प्रशंसा की
सूचना दी कि आपका कार्य ठीक था। लैफ्टिनैन्ट गवर्नर उसकी सहायता करते हैं।

सन् १८५७ के बाद गोरी सरकार का सबसे बड़ा अत्याचार यह गोलीकांड था। इस दुःखद
घटना के बाद भारतीयों को बर्बरतापूर्ण तथा अमानुषिक सजायें दी गईं। अमृतसर का पानी बन्द
कर दिया, बिजली के तार काटे गये। खुली सड़कों पर कोड़ों से भारतीयों को मारा गया। यहां तक
कि रेल का तीसरी श्रेणी का टिकट बन्द कर भारतीय यात्रियों का आना जाना बन्द कर दिया।

इसी बाग में सबके साथ उधमसिंह का पिता भी शहीद हो गया था। इसका बदला लेने के लिए
वह इङ्गलैंड गया। वहां एक सभा में एक दिन वह नीच डायर भाषण दे रहा था। भाषण में वह कह
रहा था कि मैंने भारतवर्ष में इस प्रकार के अत्याचार ढाये हैं। इतने में वीर उधमसिंह ने अपनी
पिस्तौल का निशाना बनाकर उसका काम तमाम कर दिया। इस प्रकार इस वीर ने अपने पिता व
भारत पर किये गये अत्याचारों का बदला ले लिया। अन्त में अदालत में वीर उधमसिंह को इस
अपराध में फांसी पर लटकाकर अमर शहीदों की पंक्ति में भरती कर दिया गया।

जलियां वाले बाग में प्रवाहित शहीदों का रक्त वृथा नहीं गया। शहीदों के रक्त द्वारा सींचा हुआ
यह स्वाधीनता का कल्पवृक्ष बढ़ता हुआ १५ अगस्त सन् १९४७ को पल्लवित हुआ।

सन् १८५७ के स्वातन्त्र्य-संग्राम के अमर सेनानी

हरयाणा प्रान्त के महान् योद्धा राव राजा तुलाराम

(श्री रवीन्द्रनाथ शास्त्री)

इस असार संसार में कितने ही मनुष्य जन्म लेते हैं और अपना सांसारिक जीवन समाप्त कर मृत्यु के ग्रास बन जाते हैं। संस्कृत के एक कवि का वचन है :—

"परिवर्तिनि संसारे मृतः को वा न जायते।
स जातो येन जातेन याति वंशः समुन्नतिम् ॥"

अर्थात् इस संसार में वह मनुष्य ही पैदा हुआ है, जिसके पैदा होने से वंश वा जाति उन्नति को प्राप्त होती है। वैसे तो इस संसार में कितने ही नर पैदा होते हैं और मरते हैं। इस वचन के अनुसार रेवाड़ी के राव राजा तुलाराम अपनी उद्दात्त कार्यावली से अपने प्रान्त एवं जाति को प्रकाशित कर गए।

आज से १०१ वर्ष पूर्व, जबकि ऋषियों एवं महान् योद्धाओं की पवित्र भूमि भारत विदेशी अंग्रेज जाति द्वारा पददलित की जा रही थी और अंग्रेज जाति इस राष्ट्र की फूट की बीमारी का पूर्ण लाभ उठाकर अपनी कूटनीति द्वारा इस राष्ट्र के विशाल मैदानों की स्वामिनी बन बैठी थी। इस विदेशी जाति ने मुसलमान बादशाहों एवं हिन्दू राजाओं को अपनी कूटनीति से बुरी तरह कुचला और इतना कुचला कि वे अपनी वास्तविकता को भूल गये। किन्तु किसी जाति के अत्याचार ही दूसरी जाति को आत्म-सम्मान एवं आत्म-गौरव के रक्षार्थ प्रेरित करते हैं।

ठीक इसी समय जबकि अंग्रेज जाति भारतीय जनता पर लोम-हर्षण अत्याचार कर रही थी और भारतीय जनता इसका बदला लेने की अन्दर ही अन्दर तैयारी कर रही थी। रविवार १० मई १८५७ को चर्बी वाले कारतूस के धार्मिक जोश की आड़ में मेरठ में भारतीय सैनिकों ने अंग्रेजों के विरुद्ध विद्रोह का झण्डा बुलन्द कर ही तो दिया। प्रसुप्त भावनायें जाग उठीं, देश ने विलुप्त हुई स्वतन्त्रता को पुनः प्राप्त करने के लिए करवट बदली, राजवंशों ने तलवार तान स्वतन्त्रता देवी का स्वागत किया, समस्त राष्ट्र ने फिरङ्गी को दूर करने की मन में ठान ली।

भला इस शुभ अवसर को उपस्थित देख स्वाधीन भावनाओं के आराधक राव राजा तुलाराम कैसे शान्त बैठते ? उन्होंने भी उचित अवसर देख स्वतन्त्रता के लिए शंख ध्वनि की। वीर राजा तुलाराम की ललकार को सुन हरयाणा के समस्त रणबांकुरे स्वतन्त्रता के झण्डे के नीचे एकत्रित हो, अपने यशस्वी नेताओं के नेतृत्व में चल दिए, शत्रु से दो हाथ करने के लिए दिल्ली की ओर।

जब राव तुलाराम अपनी सेना के साथ दिल्ली की ओर कूच कर रहे थे, तो मार्ग में सोहना और तावडू के बीच अंग्रेजी सेना से मुठभेड़ हो गई, क्योंकि फिरङ्गियों को राव तुलाराम के प्रयत्नों का पता चल गया था। दोनों सेनाओं का घमासान युद्ध हुआ। आजादी के दीवाने दिल खोलकर लड़े और मैदान जीत लिया। मि० फोर्ड को मुँह की खानी पड़ी और उसकी सारी फौज नष्ट हो गई और वह स्वयं दिल्ली भाग गया।

उधर मेरठ में स्वाधीनता यज्ञ को आरम्भ करनेवाले राव राजा तुलाराम के चचेरे भाई राव कृष्ण गोपाल जो नांगल पठानी (रेवाड़ी) के राव जीवाराम जी के द्वितीय पुत्र थे और मेरठ में कोतवाल पद पर थे, उन्होंने समस्त कैदखानों के दरवाजों को खोल दिया तथा नवयुवकों को स्वतन्त्रता के लिए ललकारा और समस्त वीरों को स्वाधीनता के झण्डे के नीचे एकत्रित किया। अपने साथियों सहित जहां अंग्रेज विद्रोह का दमन करने के लिए परामर्श कर रहे थे, उस स्थान पर आक्रमण किया तथा समस्त अंग्रेज अधिकारियों का सफाया कर दिया और फिर मार-धाड़ मचाते अपने साथियों सहित दिल्ली की तरफ बढ़े।

दिल्ली आये। भारत के अन्तिम मुगल सम्राट् श्री बहादुरशाह के समीप पहुंचे। अकबर, जहांगीर आदि के चित्रों को देख-देख ठण्डी आहें भरकर अपने पूर्वजों के वैभव को इस प्रकार लुटता देख बहादुरशाह चित्त ही चित्त में अपने भाग्य को कोसा करता था। आज उसने सुना कि कुछ भारतीय सैनिक मेरठ में स्वाधीनता का दीपक जलाकर तेरे पास आये हैं। उसका सोया हुआ मुगल-शौर्य जाग उठा। तुरन्त वीर सेनापति कृष्णगोपाल ने आगे बढ़कर कहा—"जहांपनाह! उठो, अपनी तलवार सम्भालो अपना शुभाशीर्वाद दो, जिस से हम अपनी तलवार द्वारा भारत भूमि को फिरङ्गियों से खाली कर दें।" बादशाह ने डबडबाई सी आंखें खोलकर कहा—"मेरे वीर सिपाही! क्या करूँ? आज मेरे पास एक सोने की ईंट भी नहीं, जो तुम्हें पुरस्कार में दे सकूं।"

वीर कृष्णगोपाल साथियों सहित गर्ज उठे—"महाराज हमें धन की आवश्यकता नहीं है, हम इस प्रशस्त मार्ग में आपका शुभाशीर्वाद चाहते हैं, हम संसार के धन-दौलत को अपनी तलवार से जीतकर आपके चरणों पर ला डालेंगे।"

वीर की सिंहगर्जना सुनकर वृद्ध बादशाह की अश्रुपूर्ण आंखें हो गईं और कह ही तो दिया कि—

"गाजियों में बू रहेगी जब तलक ईमान की।
तख्ते लन्दन तक चलेगी तेग हिन्दुस्तान की।।"

राव कृष्णगोपाल को जब यह समाचार मिला कि रेवाड़ी में राजा तुलाराम स्वतन्त्रता के लिए महान् प्रयत्न कर रहे हैं, तो वे स्वयं अपने साथियों सहित रेवाड़ी पहुंच गए। उन्हीं दिनों मि० फोर्ड से युद्ध के ठीक उपरान्त राजा तुलाराम ने अपने प्रान्त की एक सभा बुलाई। इस सभा में महाराजा अलवर, राजा बल्लभगढ़, राजा निमराणा, नवाब झज्जर, नवाब फरुखनगर, नवाब पाटौदी, नवाब फिरोजपुर झिरका शामिल हुए। राजा तुलाराम ने अपने विशेष मित्र महाराजा जोधपुर को विशेष रूप से निमन्त्रित किया। परन्तु उन्होंने राव तुलाराम को लिखकर भेज दिया कि अंग्रेज बहादुर से लोहा लेना कोई सरल कार्य नहीं है। नवाब फरुखनगर, नवाब झज्जर एवं नवाब फिरोजपुर झिरका ने भी नकारात्मक उत्तर दे दिया। इस पर उनको बड़ा क्रोध आया और उन्होंने सभा में ही घोषणा कर दी कि "चाहे कोई सहायता दे या न दे, वह राष्ट्र के लिए कृत-प्रतिज्ञ है।" अपने अन्य वीर साथियों की तरफ देखकर उनका वीर हृदय गर्ज उठा— "हे भारत माता! मैं सब कुछ तन, मन, धन तुम्हारी विपत्तियों को नष्ट करने में समर्पित कर दूंगा। यह मेरी धारणा है। भगवान् सूर्य! मुझे प्रकाश दो, भूमि जननी! मुझे गम्भीरता दो, वायु शान्ति दो और दो बाहुओं में अपार बल, जो सच्चे चरित्र के नाम पर मर मिटे तथा मार भगाये कायरता को हृदय मन्दिरों से।" आओ वीरो! अब सच्चे क्षत्रियत्व के नाते इस महान् स्वाधीनता युद्ध (यज्ञ) को पूरा करें।" उनकी इस गर्जना से

प्रभावित होकर उपरोक्त राजा, नवाबों के भी पर्याप्त मनचले नवयुवक योद्धा राजा तुलाराम की स्वाधीनता सेना में सम्मिलित हो गये। जिन में नवाब झज्जर के दामाद समदखां पठान भी थे।

राजा तुलाराम ने अंग्रेजों के विरुद्ध और नई सेना भी भरती की और स्वातन्त्र्य-संग्राम को अधिक तेज कर दिया। उन्होंने अपने चचेरे भाई गोपालदेव को सेनापति नियत किया। जब अंग्रेजों को यह ज्ञात हुआ कि राव तुलाराम हम से लोहा लेने की पुरजोर तैयारी कर रहे हैं और आस-पास के राजाओं एवं नवाबों को हमारे विरुद्ध उभार रहे हैं, तो मि० फोर्ड के नेतृत्व में पुनः एक विशाल सेना राव तुलाराम के दमन के लिए भेजी। जब राव साहब को यह पता चला कि इस बार मि० फोर्ड बड़े दलबल के साथ चढ़ा आ रहा है, तो उन्होंने रेवाड़ी में युद्ध न करने की सोच महेन्द्रगढ़ के किले में मोर्चा लेने के लिए महेन्द्रगढ़ की ओर प्रस्थान किया। अंग्रेजों ने आते ही गोकुलगढ़ के किले तथा राव तुलाराम के निवासघर, जो रामपुरा (रेवाड़ी) में स्थित है, को सुरंगें लगाकर नष्ट-भ्रष्ट कर दिया और तुलाराम की सेना के पीछे महेन्द्रगढ़ की तरफ कूच किया।

राव तुलाराम ने पर्याप्त प्रयत्न किया कि किसी प्रकार महेन्द्रगढ़ किले के फाटक खुल जावें, किन्तु दुर्ग के अध्यक्ष ठाकुर स्यालुसिंह कुतानी निवासी ने हजार विनती करने पर भी किले के द्वार आजादी के दीवानों के लिये नहीं खोले। (बाद में अँग्रेजों ने दुर्ग न खोलने के उपलक्ष्य में स्यालुसिंह को समस्त कुतानी ग्राम की भूमि प्रदान कर दी।)

वीर सेनापति तुलाराम दृढ़ हृदय कर, असफलताओं को न गिनते हुये नारनौल के समीप एक पहाड़ी स्थान नसीपुर के मैदान में साथियों समेत वक्षस्थल खोलकर रणस्थल में डट गये। अंग्रेजों के आते ही युद्ध ठन गया। भीषण युद्ध डटकर हुआ। रण-भेरियां बज उठीं। वीरों के खून में उबाल था। गगनभेदी जयकारों से तुमुल निनाद गुंजार करने लगा। साधन न होने पर भी सेना ने संग्राम में अत्यन्त रणकौशल दिखाया। रक्त-धारा बह निकली। नरमुण्डों से मेदिनी मण्डित हो गई। शत्रु सेना में त्राहि त्राहि की पुकार गूंज उठी।

तीन दिन तक भीषण युद्ध हुआ। तीसरे दिन तो इतना भीषण संग्राम हुआ, कि हिन्दू कुल गौरव महाराणा प्रतापसिंह के घोड़े की भांति राव तुलाराम का घोड़ा भी शत्रु सेना को चीरते हुए अंग्रेज अफसर (जो काना साहब के नाम से विख्यात थे) के हाथी के समीप पहुंचा। पहुँचते ही सिंहनाद कर वीरवर तुलाराम ने हाथी का मस्तक अपनी तलवार के भरपूर वार से पृथक् कर दिया। दूसरे प्रहार से काना साहब को यमपुर पहुँचाया।

काना साहब के धराशायी होते ही शत्रु सेना में भगदड़ मच गई। शत्रु सेना तीन मील तक भागी। मि० फोर्ड भी मैदान छोड़ भागे और दादरी के समीप मोड़ी नामक ग्राम में एक जाट चौधरी के यहां शरण ली। (बाद में मि० फोर्ड ने अपनी शरण देने वाले चौधरी को जहाजगढ़ (रोहतक) के समीप बराणी ग्राम में एक लम्बी चौड़ी जागीर दी और उस गांव का नाम फोर्डपुरा रखा, वहां पर आजकल उस चौधरी के वंशज निवास करते हैं) परन्तु इस दौरान में पटियाला, नाभा, जीन्द एवं जयपुर की देशद्रोही नागा फौज के अंग्रेजों की सहायता के लिये आ जाने से पुनः भीषण युद्ध छिड़ गया। वीरों ने अन्तिम समय सन्निकट देखकर घनघोर युद्ध किया। परन्तु अपार सेना के समक्ष अल्प सेना का चारा ही क्या चलता? इसी नसीपुर के मैदान में राजा तुलाराम के महान् प्रतापी योद्धा, मेरठ स्वाधीनता-यज्ञ को आरम्भ करने वाले, अहीरवाल के एक-एक गांव में आजादी का अलख

जगाने वाले, राव तुलाराम के चचेरे भाई वीर शिरोमणि राव कृष्ण गोपाल, एवं कृष्ण गोपाल के छोटे भाई वीरवर राव रामलाल जी और राव किशनसिंह, सरदार मणिसिंह, मुफ्ती निजामुद्दीन, शादीराम, रामधनसिंह, समद खां पठान आदि-आदि महावीर क्षत्रिय जनोचित कर्तव्य पालन करते हुए भारत की स्वातन्त्र्य बलिवेदी पर बलिदान हो गये। उन महान् योद्धाओं के पवित्र-रक्त से रञ्जित होकर नसीपुर के मैदान की वीरभूमि हरयाणा का तीर्थस्थान बन गई। दुःख है कि आज उस युद्ध को समाप्त हुए एक शताब्दि हो गई किन्तु हरयाणा निवासियों ने आज तक उस पवित्र भूमि पर उन वीरों का कोई स्मारक बनाने का प्रयत्न ही नहीं, किया साहस भी न किया। यदि भारत के अन्य किसी प्रान्त में इतना बलिदान किसी मैदान में होता, तो उस प्रान्त के निवासी उस स्थान को इतना महत्त्व देते कि वह स्थान वीरों के लिए आराध्य-भूमि बन जाता। तथा प्रति-वर्ष नवयुवक इस महान् बलिदान-भूमि से प्रेरणा प्राप्त कर अपना कर्त्तव्य पालन करने के लिए उत्साहित होते।

आज मराठों की जीवित शक्ति ने सन् ५७ के स्वातन्त्र्य युद्ध की अमर सेनानी लक्ष्मीबाई एवं तांत्या टोपे नाना साहब के महान् बलिदान को अंग्रेजों के प्रबल दमनचक्र के विपरीत भी समाप्त नहीं होने दिया। अंग्रेजों के शासन काल में भी उपर्युक्त वीरों का नाम भारत के स्वातन्त्र्य-गगन में प्रकाशित होता रहा। बिहार के बूढ़े सेनापति ठा० कुँवरसिंह के बलिदान को बिहार निवासियों ने जीवित रखा। जहां कहीं भी कोई बलिदान हुआ, किसी भी समय हुआ, वहां की जनता ने अपने प्राचीन गौरव के प्रेरणाप्रद बलिदानों को जीवित रखा। आज मेवाड़ प्रताप का ही नहीं, अपितु उसके यशस्वी घोड़े का "चेतक चबूतरा" बनाकर प्रतिष्ठित करता है। चूड़ावत सरदार के बलिदान को "जूझार जी" का स्मारक बनाकर जीवित रखे हुए हैं। परन्तु अपने को भारत का सबसे अधिक बलशाली कहने वाला हरयाणा प्रान्त अपने १०० वर्ष पूर्व के बलिदान को भुलाये बैठा है। यदि यह लज्जा का विषय नहीं है तो क्या है? जर्मन के महान् विद्वान् प्रोफेसर मैक्समूलर लिखते हैं,- "A nation that forgets the glory of its past. loses the mainstay of its national character." अर्थात् जो राष्ट्र अपने प्राचीन गौरव को भुला बैठता है, वह राष्ट्र अपनी राष्ट्रीयता के आधार स्तम्भ को खो बैठता है।" यही उक्ति हरयाणा के निवासियों पर पूर्णतया चरितार्थ होती है।

नसीपुर के मैदान में राव तुलाराम हार गये और अपने बचे हुए सैनिकों सहित रिवाड़ी की तरफ आ गये। सेना की भरती आरम्भ की। परन्तु अब दिन प्रति-दिन अंग्रेजों को पंजाब से ताजा दम सेना की कुमुक मिल रही थी।

निकलसन ने नजफगढ़ के स्थान में बरेली एवं नीमच वाली भारतीय सेनाओं के आपसी झगड़े से लाभ उठाकर दोनों सेनाओं को परास्त कर दिया। सारांश यह है कि अक्टूबर १८५७ के अन्त तक अंग्रेजों के पांव दिल्ली और उत्तरी भारत में जम गये। अतः तुलाराम अपने नये प्रयत्न को सफल न होते देख बीकानेर, जैसलमेर पहुँचे। वहां से कालपी के लिए चल दिये। इन दिनों कालपी स्वतन्त्रता का केन्द्र बना हुआ था। यहां पर पेशवा नाना साहब के भाई, राव साहब, तांत्या टोपे एवं रानी झांसी भी उपस्थित थी। उन्होंने राव तुलाराम का महान् स्वागत किया तथा उनसे सम्मति लेते रहे। इस समय अंग्रेजों को बाहर से सहायता मिल रही थी। कालपी स्थित राजाओं ने परस्पर विचार विमर्श कर राव राजा तुलाराम को अफगानिस्तान सहायता प्राप्त करने के उद्देश्य से भेज दिया।

राव तुलाराम वेष बदल कर अहमदाबाद और बम्बई होते हुए बसरा पहुँचे। इस समय इनके साथ श्री नाहरसिंह, श्री रामसुख एवं सय्यद नजातअली थे। परन्तु खाड़ी फारस के किनारे बुशहर के अंग्रेज शासक को इनकी उपस्थिति का पता चला गया, भारतीय सैनिकों की टुकड़ी जो यहां थी, उसने राव तुलाराम को सूचित कर दिया और वे वहां से बचकर सिराज की ओर निकल गये। सिराज के शासक ने उनका भव्य स्वागत किया और उन्हें शाही सेना की सुरक्षा में ईरान के बादशाह के पास तेहरान भेज दिया। तेहरान स्थित अंग्रेज राजदूत ने शाह ईरान पर उनको बन्दी करवाने का जोर दिया, शाह ने निषेध कर दिया। तेहरान में रूसी राजदूत से राव तुलाराम की भेंट हुई और उन्होंने सहायता मांगी और राजदूत ने आश्वासन भी दिया, परन्तु पर्याप्त प्रतीक्षा के पश्चात् राव तुलाराम ने अफगानिस्तान में ही भाग्य परखने की सोची। उनको यह भी ज्ञात हुआ कि भारतीय स्वातन्त्र्य-संग्राम में भाग लेने वाले बहुत से सैनिक भागकर अफगानिस्तान आ गये हैं। राजा तुलारम डेढ़ वर्ष पीछे तेहरान से अमीर काबुल के पास आ गये, जो उन दिनों कंधार में थे। वहां रहकर बहुत प्रयत्न किया परन्तु सहायता प्राप्त न हो सकी। राव तुलाराम को बड़ा दुःख हुआ और छः वर्ष तक अपनी मातृभूमि से दूर रहकर अपनी मातृभूमि की पराधीनता की जंजीरों को काटने के प्रयत्न में एक दिन काबुल में पेचिस द्वारा इस संसार से प्रयाण कर गये। उन्होंने बसीयत की, कि उनकी भस्म रेवाड़ी और गंगा जी में अवश्यमेव भेजी जावे। ब्रिटिश शासन की ओर से १८५७ के स्वातन्त्र्य-संग्राम में भाग लेने वालों के लिए सार्वजनिक क्षमा-दान की सूचना पाकर उनके दो साथी राव नाहरसिंह व राव रामसुख वापस भारत लौट आये।

लेख को समाप्त करते हुए अन्तरात्मा रो उठती है, कि आज भारतीय जनता उस वीर शिरोमणि राव तुलाराम के नाम से परिचित तक नहीं। मैं डंके की चोट कहता हूँ, कि यदि झांसी की लक्ष्मीबाई ने स्वातन्त्र्य-संग्राम में सर्वस्व को बलि दे दी, यदि तांत्या टोपे एवं ठा० कुवरसिंह अपने को स्वतन्त्रता की बलिवेदी पर उत्सर्ग कर गये। यदि यह सब सत्य है तो यह भी सुनिर्धारित सत्य है, कि सन् १८५७ के स्वातान्त्र्य-महारथियों में राव तुलाराम का बलिदान भी सर्वोपरि है। किन्तु हमारी दलित भावनाओं के कारण राजा तुलाराम का बलिदान इतिहास के पृष्ठों से ओझल रहा। आज भी अहीरवाल में जोगी एवं भाटों के सितारे पर राजा तुलाराम की अमर गाथा सुनी जा सकती है। कि बहुना, एक दिन उस वीर सेनापति राव तुलाराम के स्वतन्त्रता शंख फूंकने पर अहीरवाल की अन्धकारावृत झोंपड़ियों में पड़े बुभुक्षित नरकंकालों से लेकर रामपुरा (रेवाड़ी) के गगनचुम्बी राज-प्रासादों की उत्तुँग अट्टालिकाओं में विश्राम करने वाले राजवंशियों तक ने ब्रिटिश साम्राज्यवाद के विरुद्ध किये जा रहे स्वातन्त्र्य-आन्दोलन में अपनी तलवार के भीषण बार दिखाकर क्रियात्मक भाग लिया था। आज भी रामपुरा एवं गोकुलगढ़ के गगन-चुम्बी पुरातन खंडहरावशेष तथा नसीपुर के मैदान की रक्तरंजित वीरभूमि इस बात की साक्षी दे रहे हैं कि वे अपने कर्त्तव्य पालन में किसी से पीछे नहीं रहे।

इस प्रान्त को स्वातन्त्र्य-युद्ध में भाग लेने का मजा तुरन्त ब्रिटिश सरकार ने चखा दिया। राव तुलाराम के राज्य की कोट कासिम की तहसील जयपुर को, तिजारा व बहरोड़ तहसील अलवर को, नारनौल व महेन्द्रगढ़ पटियाला को, दादरी जीन्द को, बावल तहसील नाभा को, कोसली के आस-पास का इलाका जिला रोहतक में और नाहड़ तहसील के चौबीस गांव नवाब दुजाना को पुरस्कार रूप में प्रदान कर दिया। यह था अहीरवाल का स्वातन्त्र्य-संग्राम में भाग लेने का परिणाम, जो हमारे

संगठन को अस्त-व्यस्त करने का कारण बना। और यह एक मानी हुई सच्चाई है कि आज अहीर जाति का न तो पंजाब में कोई राजनैतिक महत्त्व है, और न राजस्थान में। सन् १८५७ से पूर्व इस जाति का यह महान् संगठन रूपी दुर्ग खड़ा था, तब था भारत की राजनीति में इस प्रान्त का अपना महत्त्व।

अन्त में मैं भारतवर्ष के स्वतन्त्रता-संग्राम के इतिहास लेखकों से यह आशा करता हूं कि वे भारत के नवीन इतिहास में इस वीर प्रान्त की आहुति को उपयुक्त स्थान देना न भूलेंगे।

—०—

सर्वखाप पंचायत की बलिदान-गाथा

(श्री जगदेवसिंह शास्त्री सिद्धान्ती)

वर्तमान सृष्टि के आरम्भ काल में ही आर्य्यावर्त्त में मानव जाति ने वास कर लिया था। समयानुसार आर्य्यावर्त्त भारत नाम से विख्यात हुआ। इस प्रकार भारतीय राष्ट्र का इतिहास अति प्राचीन है। गत करोड़ वर्षों के समय में न जाने कितने उलट-फेर हमारे देश में हुए हैं। अनेक बार राज्य क्रांतियां हुईं। इतने पुराने राष्ट्र का सम्पूर्ण और क्रमवद्ध इतिहास मिलना सम्भव नहीं। अत्यन्त प्रसिद्ध गाथाओं का वर्णन ही मिल सकता है जो कि रामायण, महाभारत ब्राह्मण ग्रन्थों और गणपाठ आदि में खोजा जा सकता है। कालक्रम से विदेशी आक्रान्ता भारत में आये। अरब और अंग्रेज आदि भी आये। भारतीयों का इन विदेशियों से घोर संघर्ष रहता रहा। इस संघर्ष में अनेक वीरों और वीराङ्गनाओं ने राष्ट्र और धर्म रक्षा के लिए अपने प्राणों की बलि चढ़ाई है। वीरों की बलिदान-गाथाओं से इतिहास के पृष्ठ भरे पड़े हैं। मुसलमानी शासन काल में धर्म रक्षार्थ आर्य जाति के महायोद्धा वीरों ने अद्भुत बलिदान दिये हैं। अंग्रेजी शासन काल में राष्ट्र की पराधीनता की बेड़ियों को काटने और स्वतन्त्रता प्राप्ति के निमित्त सहस्रों वीरों ने प्राणों की आहुति देकर भारतीय राष्ट्र का गौरव वढ़ाया है। इन वलिदान गाथाओं का कुछ इतिहास लिखित और प्रकाशित रूप में उपलब्ध होता है, जिसके कारण भारतीय राष्ट्र का माथा संसार में ऊंचा है। परन्तु कुछ बलिदान गाथाओं का इतिहास प्रकाशित रूप में हमारे सामने नहीं, वह हस्तलिखित रूप में अप्रकाशित पड़ा है। इसी अप्रकाशित इतिहास से दो एक बलिदान-गाथाओं का वर्णन सुधारक के इस 'बलिदान विशेषांक' में दिया जाता है।

भारतीय राष्ट्र में गणतन्त्र शासन प्रणाली सदा प्रचलित रही है। और भारत में तो गणों का शासन सदा से ही चलता आया है। गण का ही एक पर्यायवाची शब्द "खाप" है। हरयाणा में खाप शब्द का प्रचलन बहुत समय से चला आ रहा है। देहली के चारों ओर का कई सहस्र वर्ग मील का क्षेत्र हरयाणा कहलाता आया है। यहां सदा गणतन्त्री शासन रहा है। अनेक गणों के संघ को ही "सर्वखाप" कहा जाता है, इस क्षेत्र में गणतन्त्र शासन का मूल पंचायत प्रणाली रही है। पंचायतें सामाजिक और आर्थिक आधार पर शासन पद्धति को चलाती रही हैं। इसी गण-संघ के शासन तन्त्र को सर्वखाप पंचायतप्रणालो नाम से पुकारा जाता है। इस प्रणाली में राजाओं का नहीं किन्तु जनता का मान मुख्य होता है, वर्तमान समय में हर्षवर्धन के काल से लेकर विक्रम के स०१९१४ का जन

तन्त्री इतिहास सर्वखाप पंचायत के हस्तलिखित वर्णनों में अप्रकाशित पड़ा है। इस हस्तलिखित का बहुमूल्य भाग बिखरे पृष्ठों में ग्राम शोरों जि० (मुजफ्फरनगर) निवासी एक किसान स्वनामधन्य चौ० कबूलसिंह जी के घर में सुरक्षित है। चौ० कबूलसिंह के पूर्वजों ने शिर कटवाकर भी इस इतिहास की रक्षा की है। हमने इन ऐतिहासिक मोतियों को स्वयं देखा और पढ़ा है। देहली से ९ वर्ष तक प्रकाशित होते रहे साप्ताहिक "सम्राट्" में उक्त चौधरी साहिब कुछ अमर गाथाओं को प्रकाशित करवाते रहे हैं। उन्हीं गाथाओं में से कुछ अंश वर्तमान लेख में दिया जाता है।

१---विक्रमी सम्वत् १३०९ की घटना है। देहली के फिरोजशाह बादशाह ने जब साम्प्रदायिक आधार पर जनता के धार्मिक कार्यों पर प्रतिवन्ध लगाया और प्रतिवन्ध को मनवाने के लिए अत्याचार किये, तब सर्वखाप पंचायत ने इन शाही अत्याचारों को दूर करवाने के लिए एक वलिदान-दल बनाया और हरयाणा के स्वयंसेवक योद्धा वीरों की सेना में से २१० वीरों को छांटकर बादशाह के दरबार में देहली भेजा। सर्वखाप पंचायत में सम्प्रदाय और जाति विरादरी के भेद-भाव बिना सब लोग सम्मिलित थे। इन २१० वीरों में वर्तमान जाति भेद के आधार पर निम्नलिखित रूप में बलिदान दल में एकत्र हुए थे—६२ जाट, २५ ब्राह्मण, १५ अहीर १५ गूजर, १५ राजपूत, १० वैश्य, ९ (वर्तमान) हरिजन, ८ बढई, ६ लुहार, ५ सैनी, ५ जुलाहे, ५ तेली, ४ कुम्हार, ४ खटीक, ४ रोड़, ३ रवे, ३ धोबी, २ नाई, २ जोगी, २ गोसाई और २ कलाल। इन वीरों ने सर्वखाप पंचायत के नेताओं से आशीर्वाद लिया और घर से चल पड़े। तात्कालिक साम्प्रदायिक विश्वास के अनुसार कार्तिक पूर्णिमा को गढ़मुक्तेश्वर में गङ्गास्नान करके देहली को प्रस्थान किया। इनके साथ १५० अन्य व्यक्ति भी चले जो कि देहली के समाचार को पंचायत के नेताओं तक पहुंचाने पर नियुक्त किये गये थे। मार्ग में इस बलिदाता वीर-दल को देखकर जनता में जोश और रोष बढ़ता जाता था। यह जत्था सं० १३०९ वि० मार्गशीर्ष कृष्णाष्टमी को "जन्म भूमि" की जय बोलता हुआ देहली के शाही दरबार में पहुंच गया। वहां इन वीरों ने सब से पूर्व बलि देने के लिये ५ अमर योद्धाओं को छांटा। महाबलिदाताओं के पवित्र नाम यह हैं—सदाराम ब्राह्मण, हरभजन जाट, रूड़ामल वैश्य, अन्तराम गूजर और बाबरा भंगी। यह पांचों वीर दरबार के भीतर घुस गये। और २०५ बाहर जन्मभूमि के जयकारे लगाने लगे। बादशाह ने इनके जयनाद को सुना और पांचों वीरों को देखकर कहा—"क्यों शोर करते हो।" वीर हरभजन ने आगे बढ़कर कहा—

"जजिया हटाया जावे, मन्दिर और तीर्थों पर कर न लगाया जावे तथा धार्मिक कार्यों में बलात्कार न किया जावे।"

बादशाह के काज़ी मुईउद्दीन ने कहा—"तुम इस्लाम कबूल करो।"

हरभजन ने उत्तर दिया--"धर्म का सम्बन्ध आत्मा से है इसमें दबाव नहीं दिया जा सकता है।"

काज़ी ने कहा—"क्या तुम धर्म पर प्राणों को कुर्बान कर दोगे?"

सब वीरों ने एक साथ उच्च स्वर से उत्तर दिया—"हां हमारे लिए धर्म प्राणों से प्यारा है।"

काज़ी ने कहा—"सबूत दो।"

तुरन्त अग्नि जलवा दी गई और

पाँचों वीरों ने धर्म का जय घोष किया और एक के पीछे दूसरा अग्नि में कूद कर अपने-अपने प्राणों की बलि धर्म रक्षार्थ चढ़ा गया। काज़ी ने शेष वीरों को बलात्कार अग्नि में झोंक दिया।

उसी समय एक मुसलमान फकीर ने काज़ी की खुले शब्दों में निन्दा की और कहा कि बादशाह का हुक्म देश पर चलता है धर्म पर नहीं। धर्म का सम्बन्ध खुदा से है। यह अन्याय है। बादशाहत

नष्ट हो जायेगी। इस पर मुल्लाओं ने शोर मचाया और फकीर को काफिर कहकर २१० वीरों के साथ ही जला दिया। इस फकीर का नाम बूलाशाह था। जोनपुर में रहने वाला यूसुफजई नामक फिरके का एक बहादुर पठान मन्नूखां इस जुल्म को बरदाश्त न कर सका और उसने काज़ी का शिर काटकर फैंक दिया और स्वयं भी पेट में छुरा भोंक बलिदान दे गया। इसी प्रकार सैयद, लोधी और मुगलों के समय में अनेक वीरों ने प्राणों का बलिदान दिया।

२--सं०१४७४ विक्रमी की वैशाखी अमावस्या के दिन कोताना (जिला मेरठ) के पास सूर्य्योदय के समय २६२ आर्य देवियां यमुना में स्नान कर रही थीं। खिजली वंश का एक सरदार कोताना का अधिकारी था। उसने कुछ सैनिकों को साथ लेकर उन वीराङ्गनाओं को जा घेरा। वे देवियां जाट, राजपूत और ब्राह्मण घरानों की थीं। वह जाफिर अली सरदार एक जाट लड़की को चाहता था। सब देवियों ने उन्हें आता देखकर शस्त्र सम्भाल लिये। उन देवियों में से एक लड़की ने सरदार से कहा—कि तुम एक बार हमारी बहिन की बात सुन लो, वह विषयी कीड़ा सरदार घोड़े से उतरकर उनके पास पहुँचा और उस लड़की को बीबी बनने के लिए कहा। वीरांगना के कान में यह शब्द पड़े भी न थे कि क्षत्राणी वीरांगना ने पिशाच जाफिर अली का सिर काट कर फैंक दिया। सरदार के मरते ही वीर देवियों और पिशाचों में तलवारें चलने लगीं। देखते-देखते २६२ आर्य देवियां धर्म की बलि वेदी पर प्राणों की आहुति दे गईं। किसी नर-पिशाच का हाथ अपने पवित्र शरीर पर नहीं लगने दिया।

बादशाह को जब यह सूचना पहुँची तो बचे हुए सैनिकों को कठोर दण्ड दिया और सर्वखाप पंचायत से माफी मांगी।

२—सं०१७२७ वि० में औरंगजेब ने अपने भाइयों भतीजों और पिता को ठिकाने लगाकर इस्लाम के नाम पर तलवार उठाई, कुरान के नाम पर नारा लगाया। कट्टर मुल्ला मौलवी और काज़ी उसके साथ हो गये। जिन्होंने रामगढ़ के युद्ध में शाहजहां और दारा का साथ दिया था, उनको नष्ट करने पर तुल गया। जसवन्तसिंह को अफगानिस्तान भेज दिया। चम्पतराय बुन्देला (जो पहले औरंगजेब का साथी था) से दी गई जागीर छीन ली गई। ओरछा के राजा पहाड़सिंह और सिख गुरु हरराय के पुत्रों को मृत्यु तक कारागार में रखा। शाहु के साथ यही अत्याचार किया गया। इन सब अत्याचारों को करके सर्वखाप पंचायत पर झपटा। सर्वखाप पंचायत ने भी दारा का साथ दिया था। रामगढ़ के युद्ध में सर्वखाप पंचायत के सैनिक औरंगजेब के विरुद्ध लड़े थे, औरंगजेब ने धोखा देकर सर्वखाप पंचायत के कुछ नेताओं को देहली बुलाया। जब वे नेता देहली पहुंचे तो कपट जाल से उनको पकड़वा लिया गया। पंचायत के नेताओं की शुभ नामावली यह है—

राव हरिराय, धूमसिंह, फूलसिंह, सीसराम, हरदेवसिंह, रामलाल, बलीराम, मालचन्द, हरिपाल नवलसिंह, गंगाराम, चन्दूराम, हरसहाय, नेतराम, हरवंश, मनसुख, मूलचन्द, हरदेवा, रामनारायण भोला और हरिद्वारी। इनमें १ ब्राह्मण, १ वैश्य, १ त्यागी, १ गूजर, १ सैनी, १ रवा, १ रोड़, ३ राजपूत और ११ जाट थे। ये सब बड़े वीर योद्धा, और शिक्षित नेता थे। क्योंकि इनको शुभ निमन्त्रण के नाम पर बुलवाया था, अतः इनकी देवियां तथा कुछ व्यक्ति भी साथ देहली पहुंचे थे। उस समय राव हरिराय (जो कि इन नेताओं का मुखिया था) और औरंगजेब की निम्न लिखित बातें हुईं।

औरंगजेब—तुम बागी हो, तुमने द्रोह किया है ?

राव हरिराय—आपकी बात मिथ्या है। निमन्त्रण देकर समझौते के लिए बुलाया और धोखा देकर हमें पकड़वा लिया, अब हमें बागी कहते हो ?

औरंग—तुमने दारा का साथ दिया था।

राव—हमने देश के बादशाह शाहजहां का साथ दिया था। दारा उसके साथ था।

औरंग—इस्लाम कबूल करो या मौत ?

राव-इस्लाम में क्या खूबी है ?

औरंग—इस्लाम खुदा का दीन है।

राव—क्या खुदा भी गलती करता है कि जो अपने दीन में सबको पैदा नहीं करता और खुदा के दीन के खिलाफ लोगों के घर में सन्तान क्यों होती है। होती है तो हम निर्दोष हैं।

औरंग—खुदा कभी गलती नहीं करता।

राव—खुदा सच्चा है यह सही है तो तुम झूठे हो, दोनों में एक झूठा जरूर है। यह दीन खुदा का दीन नहां है। यह तेरा दीन है।

औरंग—मैं खुदा और पैगम्बर के हुक्म को मानता हूं। दूसरे को नहीं। कुरान शरीफ खुदा की किताब है वह सच्चा है और सब झूठे हैं।

राव—मैंने कुरान को पढ़ा है और कई बार मुतायला किया है उसमें यह कहीं नहीं कहा गया कि—बाप को कैद करो। भाई-भतीजों को मारो मराओ। झूठ बोलकर तुमने दारा के साथ लड़ाई में अपने भाइयों से कहा था कि मुझे राज्य नहीं चाहिए, मैं तो मुराद और शुजा का तरफदार हूं। परन्तु तूने उन दोनों को भी मारा। फकीरी की जगह बादशाहत ली। बाप की आजादी छीनी। तेरे बाप शाहजहां ने पानी के दुःख में तुझे कहा कि "औरङ्गजेब! तुझ से तो हिन्दू काफिर अच्छे जो अपने विश्वास के कारण मरों को भी पानी देते हैं और "तू जिन्दा बाप को भी पानी नहीं देता।" क्या खुदा और रसूल का ऐसा हुक्म है ? हम इसको घोर अत्याचार समझते हैं। तूने अपने वंश का वध किया और मिट्टी खराब की। गाजी का खिताब लिया। जनता की दृष्टि में तू जालिम है।

औरङ्ग—तुम काफिर और मगरूर हो, मैं इस्लाम का खादिम हूं।

राव—तू झूठा है। इस्लाम के नाम पर अत्याचार करता है। हम निहत्थे और निर्दोष हैं। तुम्हारे बुलाये हुए मेहमान हैं। हम आ गए। यदि कुछ साहस है तो तलवार पकड़। दीवान खास से बाहर हो जा। दो-दो हाथ कर। सारा पता चल जावेगा। हमारे साथ मेहमान की तरह बर्ताव न करने से तू जालिम और नामर्द है। तू भी अपने २१ जवांमर्दों को बुला ले और उन्हीं में तू शामिल हो जा। कुछ ही समय में नतीजा मालूम पड़ जावेगा।

औरंग—तुम मेरे पिंजरे में बन्द हो, निकल नहीं सकते। निकलने के दो ही रास्ते हैं इस्लाम या मौत। एक मानना ही पड़ेगा।

राव—आत्मा अजर, अमर, अविनाशी है। नित्य है। यह शरीर हटा, दूसरा तैयार है। हम बार-बार ललकारते हैं। मर्दों की तरह मैदान में आकर वीरों की भांति युद्ध कर, तब ही बहादुर

कहला सकते हो, नहीं तो कुत्तों के समान नीच हो, जो कि घर आए को फाड़ते हो। तुझे जो कुछ करना है कर। तेरे जीवन में ही तेरा बेड़ा गरक हो जावेगा।

उसी समय औरङ्गजेब के आदेश पर २१ वीरों को चान्दनी चौक में ले जाया गया और वे वीर सं० १७२७ वि० कार्तिक कृष्णा दशमी को मातृभूमि के लिए अपने प्राणों का बलिदान दे गये।

यह कुकृत्य दिन के १० बजे किया गया। राजा जयसिंह के बहुत कहने सुनने पर मृतक शरीर पंचायत के लोगों को दे दिए गए। १ बजे इन वीरों की वीराङ्गनाओं ने भी अपने-अपने पति की जलती चिता में परिक्रमापूर्वक अपने प्राणों की बलि चढ़ा दी और सती हो गईं। देहली का राजघाट आज भी उन धधकती चिताओं की साक्षी दे रहा है।

इतने पर भी बस नहीं हुआ। राव हरिराय का बालकपन का साथी पीर नजफ अली सूफी ३३ वर्षीय ब्रह्मचारी था। वह पंचायत का बड़ा पक्षपाती था। उसने औरंगजेब को बहुत कठोर शब्द कहे और जालिम ठहराया। औरङ्गजेब ने इस फकीर को भी १०० कोड़े लगवाये और मैदान में फिकवा दिया। फकीर जब होश में आया तब पूछा—"मेरा प्यारा मित्र हरिराय कहां है ?" पता चला कि २१ वीरों की उनकी पत्नियों सहित चितायें धू-धू करके औरङ्गजेबी कुकृत्य को दूर-दूर तक पहुंचा रही हैं। फकीर नजफ अली ने हरिराय की चिता की ७ बार परिक्रमा की और जलती चिता में साथी का साथ देकर न्याय की रक्षा के लिए अन्याय की भेंट चढ़ा गया।

इस प्रकार भारत का इतिहास बलिदान गाथाओं से अँटा पड़ा है। चितौड़गढ़ का साका, वीर बन्दा बैरागी का बलिदान, औरङ्गजेबी राज्य के बलिदानों की कथायें इतिहास में लिखी हुई हैं। हमने अनेक घटनाओं में से केवल ३ घटनायें हस्तलिखित अप्रकाशित सर्वखाप पंचायत के इतिहास से दी हैं। इसमें मेरा कुछ नहीं। इसका सब श्रेय चौ० कबूलसिंह जी शोरों (मुजफ्फर नगर) इतिहास रक्षक को ही है।

———

@VaidicPustakalay

महाराष्ट्र के वीरों का बलिदान

ओमानन्द सरस्वती (आचार्य भगवान्देव)

महाराष्ट्र के चितपावन ब्राह्मणों के वंश ने अपनी प्रिय भारत माता की स्वतन्त्रार्थ विदेशियों से संग्राम करते हुए अपने प्राणों की बलि हंसते-हंसते देकर इस वंश को भी भारत के इतिहास में अमर कर दिया। इस वंश के वीरों ने यवनों से वीरतापूर्ण विकट संग्राम करके आर्य भूमि को स्वतन्त्र किया और एक बार स्वतन्त्रता की पताका फहराई थी। इसी वंश के सेनापतियों ने अपने सुदृढ़ बाहुबल से शत्रुओं को परास्त कर सिन्धु नदी के पार अटक के दुर्गम दुर्ग पर आर्य जाति की धर्म ध्वजा का उत्तोलन किया था। इसी वंश के देशभक्तों ने १८५७ के स्वातन्त्र्य संग्राम की रचना रचकर नीच फिरङ्गियों के अत्याचारों से पवित्र ऋषिभूमि भारत को विमुक्त करने के लिए आश्चर्यजनक वीरता दिखलाई थी। इसी वंश के युवक अपने क्रांतिकारी वीरतापूर्ण बलिदान के कारण अंग्रेज अधिकारियों की आंखों में कांटे की भांति चुभते रहे। इसी वंश को प्रथम पेशवा "बाला जी पेशवा" ने सुशोभित किया। इसी वंश के सेनानी पेशवा बाजीराव भारत के प्रसिद्ध सेनापतियों की प्रथम श्रेणी में अपनी वीरता के कारण प्रतिष्ठित हुए। पानीपत के तृतीय संग्राम में विकट युद्ध में मरने वाले सेनापति सदाशिवराव भाऊ ने भी इसी वंश में जन्म लिया था। प्रसिद्ध क्रांतिकारी वीर वासुदेव बलवन्त फड़के इसी वंश की कीर्ति को देश देशान्तर में फैलाने वाला था। अत्याचारी अंग्रेज अधिकारी को मृत्यु के विकराल गाल में पहुंचाने वाले चाफेकर बन्धु महाराष्ट्र में क्रांति के जन्मदाता इसी वंश के वीर योद्धा थे। जस्टिस रानाडे, गोखले और महात्मा तिलक समान सच्चे देशभक्तों को जन्म देने का गौरव भी इसी वंश के भाग्य में था। इसी वंश की शोभा को चार चांद लगानेवाले विनायक दामोदर सावरकर जी हैं जिन्हें क्रांतिकारियों के राजकुमार और हुतात्मा का पद इनके विदेशी शत्रुओं ने दिया। अतः यह वंश अपने वीरों के बलिदान के कारण भारत के इतिहास में सदैव अमर रहेगा। मैं इस वंश के वीरों के बलिदान की सच्ची कहानी अपने पाठकों की सेवा में रखने का दुस्साहस करता हूं।

सन् १८५७ के स्वातन्त्र्य संग्राम के पश्चात् अंग्रेजों के विरुद्ध सशस्त्र क्रांति का अध्याय लगभग ४० वर्ष तक सुषुप्ति निद्रा के पङ्क में लेटा रहा। क्या हुआ कभी-कभी कूका बलिदान के समान कुछ क्रांति की घटनायें इस घोर निद्रा को तोड़ने का यत्किञ्चित् यत्न करती रहीं। किन्तु १८७२ से १८९७ तक २० वर्ष भारत देश मृत के समान दिखाई देता था। सन् १८९३ से १८९५ तक प्रायः सारे भारत वर्ष में खूब हिन्दू-मुस्लिम झगड़े हुए, अतः महाराष्ट्र के बम्बई, पूना, येवला आदि अनेक स्थानों में भी मुसलमानों ने पाशविक अत्याचार किये, अतः इन अत्याचारों ने महाराष्ट्र में उत्तेजना और जागृति उत्पन्न कर दी। हिन्दुत्व की भावना के ठाठ मारने लगे। सारे महाराष्ट्र ने १८९४ ई० में गणेशचतुर्थी के उत्सव को बड़े उत्साह से मनाना प्रारम्भ किया। दस दिन तक खूब चहल-पहल रही। इसी प्रकार १८९५ में शिवाजी जयन्ती महोत्सव जून मास में बड़े समारोहपूर्वक मनाया गया। फिर इन उत्सवों को राष्ट्रीय रूप देकर महाराष्ट्र के लोग प्रति वर्ष उत्साहपूर्वक मनाने लगे। इन उत्सवों में अनेक प्रकार के वीरतापूर्ण खेल लाठी, गदका, तलवारादि के होते थे। जलूस में इस प्रकार वीरतापूर्ण खेल का प्रदर्शन करते हुए बड़े-बड़े अखाड़े निकलते थे।

दामोदर और बालकृष्ण चाफेकर बन्धु

अतः इन्हीं दिनों में चितपावन ब्राह्मण वीर दामोदर चाफेकर और बालकृष्ण चाफेकर दोनों बन्धुओं ने महाराष्ट्र की प्रसिद्ध प्राचीन राजधानी पूना नगरी में एक व्यायाम मण्डल की स्थापना की। इसके द्वारा नवयुवकों को लाठी, गदका, तलवार और बल्लम आदि का अभ्यास कराकर उनको देशभक्ति के रङ्ग में रङ्ग दिया जाता था। इन चाफेकर बन्धुओं का सम्बन्ध स्वराष्ट्र के क्रांतिकारी वीर श्याम जी कृष्ण वर्मा जो स्वामी दयानन्द का प्रिय शिष्य था, के साथ बड़ा घनिष्ट प्रेम था। जिसका ज्ञान अंग्रेज सरकार को बड़ी देर में हुआ।

सन् १८९७ में पूना में प्लेग महामारी का भयंकर आक्रमण हुआ। उस समय तक इस रोग का ज्ञान भारतीय जनता को नहीं के समान था। अंग्रेजी सरकार ने प्लेग के सम्बन्ध में जनता के साथ बहुत ही सख्ती का व्यवहार किया। सरकार प्लेग के रोगियों को खोज में तलाशी लेकर लोगों को बलपूर्वक अपने घरों से निकाल रही थी। सेवा के नाम पर अत्याचार और भयङ्कर दमन हो रहा था। उधर राष्ट्रीय महासभा के अधिवेशन, गणपति उत्सव और शिवाजी जयन्ती के उत्सवों ने मराठा युवकों में पूना में अभूतपूर्व उत्साह भर रखा था। इस पर चाफेकर बन्धुओं द्वारा स्थापित की हुई "हिन्दू धर्म संरक्षिणी सभा" सोने पर सुहागे का कार्य कर रही थी। इस कठोर दमन का विरोध स्वर्गीय लोकमान्य तिलक ने अपने पत्र केसरी में ४ मई के अंक में लेख लिखकर तीव्र शब्दों में किया। फिर क्या था, महाराष्ट्र के वीर उठे और सरकारी दमन का दम निकालने के लिए शस्त्र सम्भाले। उस समय मिस्टर रेण्ड नामक एक अंग्रेज जो प्लेग कार्य के लिए विशेष रूप से नियत होकर आये थे। जो स्वभाव के अत्यन्त निष्ठुर थे। जो कार्य सहजतया प्रेम के व्यवहार से हो सकता था, उसी कार्य को अत्यन्त कठोरतापूर्ण व्यवहार करके करते थे। यथार्थ बात यह है कि मि० रेण्ड ऐसे सेवा कार्य के लिए सर्वथा अयोग्य थे। इसी के अत्याचारों के विरुद्ध महात्मा तिलक ने लेख लिखे थे। इससे यह प्लेग कमिश्नर मि० रेण्ड पूना के आस-पास सर्वत्र बदनाम हो गया और सभी जनता इसे भारतीयों के शत्रु के रूप में देखने लगी। महात्मा तिलक का 'केसरी' पत्र उन दिनों बहुत जनप्रिय था। उसके एक लेख में यह भी लिखा था "मि० रेण्ड अत्याचारी हैं वे जो कुछ कर रहे हैं सरकार की आज्ञा से कर रहे हैं। अतः सरकार को सहायतार्थ प्रार्थना-पत्र देना व्यर्थ है। बीमारी तो एक बहाना है, वास्तव में सरकार लोगों की आत्मा को कुचलना चाहती है।" इसके पश्चात् १२ जून, १८९७ को शिवाजी का अभिषेकोत्सव मनाया गया। इस दिन सभा के सभापति भी लोकमान्य तिलक थे। उन्होंने जीवन फूंक देनेवाला व्याख्यान दिया। "यदि चोर हमारे घर में घुस आयें और हममें उनको पकड़ने की शक्ति न हो तो हम बाहर से किवाड़ बन्द करलें और उन्हें जीवित जला डालें। इसे ही नीति कहते हैं। ईश्वर ने विदेशियों को भारत के राज्य का पट्टा लिखकर नहीं दिया है। शिवाजी ने भी अपने पेट भरने के लिए नहीं किन्तु दूसरों की भलाई और अच्छे उद्देश्य से अफजल खां की हत्या की थी और उन्होंने अपनी जन्मभूमि पर से विदेशियों की राज्यशक्ति हटाने के लिए लड़ाई लड़ी थी।" इसी प्रकार का लेख भी केसरी में निकला। इनका प्रभाव महाराष्ट्र के युवकों के प्राण ही थे। उन्होंने मि० रेण्ड के इन अत्याचारों का बदला लेने का निश्चय कर लिया। २२ जून को सारे साम्राज्य में महारानी विक्टोरिया का ६० वां राज्याभिषेक उत्सव मनाया जा रहा था। सारो पूना नगरी में उत्सव की चहल-पहल थी। दो गोरे अफसर मि० रेण्ड प्लेग कमिश्नर और लैफ्टिनैन्ट आयंस्ट रात्रि

के समय खुशी में मस्त हुए अभिमान में चूर उत्सव में से गणेशकुण्ड से लौटकर आ रहे थे। इनको यह नशा था कि "अब भारत में अंग्रेजों के विरुद्ध कोई चूँ करने वाला नहीं, भारतवासी सदा ऐसे ही पराधीन रहेंगे।" जब वे इस अहंकारपूर्ण मुद्रा में थे उसी समय किसी ने गोली चला कर रङ्ग में भङ्ग कर दिया। गोली का चलाना था कि मि० रेण्ड और ले० आर्यस्ट एक चीख के साथ भूमि पर गिर पड़े। निशानेबाज का निशाना अचूक बैठा, दोनों के उसी समय प्राणपखेरू उड़ गये। मारनेवाला भाग गया। सारे अंग्रेजी राज्य में खलबली मच गई। चारों ओर भगदड़ मची। दामोदर चाफेकर गिरफ्तार कर लिया गया। चालीस वर्ष के पश्चात् इस भारतीय युवक ने विदेशी अत्याचारी गोरे शत्रु पर गोली चलाने का साहस किया था। सारा ब्रिटिश साम्राज्य क्रोध से थरथराने लगा और उसने उस ब्रिटिश साम्राज्य की स्वातन्त्र्य संग्राम के पश्चात् से व्यर्थ पड़ी हुई अत्याचार की चक्की को फिर घुमाया और घर्र-घर्र करती हुई चक्की में फिर से चाफेकर बन्धुरूपी अन्न को पीसने के लिए डाल दिया गया। चाफेकर बन्धुओं का साहस सराहनीय था, जनता ने इन वीरों का हृदय से स्वागत किया, क्योंकि ये वे रणबांकुरे थे जिन्होंने स्वातन्त्र्य-संग्राम के ठीक चालीस वर्ष पश्चात् ब्रिटिश साम्राज्यवाद की छाती पर गोली चलाने का साहस किया था। अदालत में अभियोग चला। वीर दामोदर चाफेकर ने अदालत में स्वीकार कर लिया कि "मैंने रेण्ड साहब की हत्या जान-बूझकर की है।" केवल यही नहीं उसने यह भी स्वीकार किया कि "इस घटना से पूर्व महारानी विक्टोरिया की मूर्ति पर तारकोल पोतने वाला भी वही था।" यह कार्य करने का उद्देश्य दामोदर चाफेकर ने जेल में लिखी हुई अपनी आत्मकथा में यह लिखा था "हमारे आर्य भाई पसन्न हों, उनके मन में उत्साह की लहर उत्पन्न हो और राजद्रोह का तिलक अपने माथे पर लगायें।" चाफेकर बन्धुओं को फांसी का दण्ड दिया गया। इन दोनों भाइयों के अतिरिक्त इस अभियोग में एक द्रविड़ पुरुष भी था, सरकारी गवाह बन गया, उसने दूसरे भाइयों को भी पकड़वा दिया। चाफेकर बन्धुओं का एक तीसरा भाई भी था, उसने अपनी माता से आज्ञा मांगी और पिस्तौल भरकर अदालत में चला गया। उसने भरी अदालत में अपने भाइयों को पकड़वाने वाले को गोली से धराशायी कर दिया। इन तीनों भाइयों और इनके एक साथी अर्थात् चारों को फांसी दे दी गई। इसके अतिरिक्त इनके एक साथी को दस वर्ष की कठोर कैद का दण्ड दिया। इन चाफेकर बन्धुओं को यरवदा जेल में फांसी दी गई। फांसी के दिन वे बहुत सवेरे उठे, ईश-प्रार्थना की और भगवद् गीता का पाठ करते हुए फांसी पर झूल गए। चाफेकर बन्धुओं के संघ के अनुयायियों ने एक पुलिस के सिपाही पर दो बार आक्रमण किया किन्तु वह बच गया। कुछ समय पश्चात् उन्होंने उन दो भाइयों को मार डाला जिनको कि सरकार ने दामोदर चाफेकर के पकड़ने में सहायता देने के कारण पुरस्कार दिया था। सरकार को सन्देह था कि चाफेकर बन्धुओं के अतिरिक्त रैण्ड को मारने में दो अन्य नातु बन्धुओं का भी हाथ था। अतः उन दोनों को भी देश से निर्वासित कर दिया गया। इसी समय "केसरी" के स्वामी बाल गङ्गाधर पर राजद्रोह का अभियोग चलाया। जिन नातु बन्धुओं को निर्वासित किया गया था, वे पूना के अत्यन्त प्रतिष्ठित नागरिक थे। सरकार ने चाफेकर अखाड़े के चार अन्य सदस्यों को भी फांसी पर लटका दिया। इनमें एक वासुदेव राव रानाडे प्रमुख थे। चाफेकर बन्धुओं के बलिदान ने महाराष्ट्र में आग फूंक दी। वह सावरकर युग के रूप में साक्षात् प्रकट हुई।

लोकमान्य महात्मा तिलक

ओमानन्द सरस्वती (आचार्य भगवान्देव)

रत्नागिरि जिले के दापोली तालुके में चिवल नामक ग्राम में बाल गङ्गाधर तिलक ने जन्म लिया। इनके पिता का नाम गंगाधर पन्त था। वे बहुत निर्धन ब्राह्मण थे। वे अध्यापक होने से गंगाधर शास्त्री नाम ने पुकारे जाते थे। इनका ५ रुपये से प्रारम्भ होकर १५ रुपये तक वेतन पहुंचा था। तिलक की कई बड़ी बहनें थीं, अतः परिवार के लोग इन्हें छोटा होने से बाल नाम से बुलाते थे। पाठशाला में भी यही नाम प्रचलित हो गया था। इनके पिता जी ने बाल्यावस्था में ही अपने पुत्र तिलक को बहुत से श्लोक याद करवा दिए थे। गणित और संस्कृत की इतनी योग्यता घर पर ही प्राप्त कर ली थी कि पाठशाला में बालक तिलक को अध्यापकों से कुछ भी सीखने की आवश्यकता नहीं पड़ी। आपकी बड़ी कुशाग्रबुद्धि थी, आप स्वभाव से हठी थे और अन्याय का विरोध करने का आपका स्वभाव बाल्यकाल से ही बन गया था। अनेक बार इसके लिए आपको बाल्यकाल में ही दण्ड भी सहन करना पड़ा।

हाई स्कूल से मैट्रिक परीक्षा पास करके आप डेक्कन कालिज में प्रविष्ट हुए। आपका १४ वर्ष की आयु में ही विवाह कर दिया गया। अपने माता-पिता के आगे, संसार के आगे न झुकने वाला तिलक भी झुक गया। यदि इनका बाल्यकाल में विवाह न हुआ होता तो यह महापुरुष न जाने अपने जीवन में क्या कुछ कर दिखाता। आपका शरीर बहुत कृश और दुर्बल था और आपकी नवविवाहित पत्नी सत्यभामाबाई आपकी अपेक्षा अधिक बलवती और सुदृढ़ शरीर की थी। इसलिए कालेज के शरारती सहपाठी विद्यार्थी तिलक को निर्बल होने के कारण चिढ़ाते और अपमान करते रहते थे। इस अपमान के कारण तिलक ने मन में दृढ़ निश्चय किया कि "शरीर को सुदृढ़ और बलवान् बनाना है।" इस निश्चय के अनुसार एक वर्ष में ही नियमित व्यायामादि से आपका शरीर सुन्दर और बलवान् हो गया। छाती चौड़ी हो गई, चेहरा भर गया और शरीर की मांसपेशियां सुदृढ़ हो गईं। नियमित रूप से व्यायाम और पौष्टिक भोजन से आपके शरीर का प्रत्येक अङ्ग तेजस्वी हो गया। दुर्बलता दूर भाग गई। फिर आप पढ़ने में जुट गये।

सन् १८७६ में डेक्कन कालेज पूना से आप बी० ए० परीक्षा में प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण हुए और बम्बई जाकर सन् १८७९ में 'वकालत' की परीक्षा पास की। इनके साथी आगरकर थे। इन दोनों ने देश सेवा का व्रत लिया। इन्हीं दिनों श्री विष्णु शास्त्री चिपलूणकर सरकारी नौकरी छोड़कर पूना आए। उन्होंने पूना में अंग्रेजी स्कूल खोला, उसमें ही तिलक और आगरकर जुट गये। इनके सहयोग से वह 'न्यू इंगलिश स्कूल' अच्छी उन्नति कर गया।

इस स्कूल में श्री तिलक तथा उनके साथी अध्यापक महाराष्ट्र के तरुण विद्यार्थियों को स्वावलम्बन देशभक्ति और त्याग की शिक्षा देते थे। लोकमान्य तिलक का जीवन-व्यवसाय शिक्षक होना नहीं था। वे वैज्ञानिक शिक्षक होने के विरोधी थे। वे तो केवल राष्ट्रीयता का सन्देश देने का उपाय सोचने लगे।

@VaidicPustakalay

'केसरी' पत्र का प्रारम्भ

साधारण जनता में देशभक्ति का प्रचार करने के लिए "मराठा" और "केसरी" दो साप्ताहिक पत्र चालू किए। इस कार्य में आपने बड़ी तपस्या की। केसरी थोड़े समय में सारे महाराष्ट्र में छा गया। केसरी सदैव अन्याय के विरुद्ध युद्ध करता रहा। इसी कारण अंग्रेजी सरकार से बार-बार केसरी को टक्कर लेनी पड़ी। केसरी ने कोल्हापुर राज्य में ब्रिटिश एजेण्ट द्वारा किए अत्याचारों के समाचार छापे। केसरी पर मानहानि का मुकद्दमा चला। अदालत ने दोनों तरुण सम्पादकों को ४ मास के कारावास का दण्ड दे दिया। जनता की दृष्टि में दोनों निर्दोष थे। लोकमान्य तिलक और आगरकर जेल में भेज दिए गये। दोनों को खूब कष्ट दिए गये। यह पहली जेलयात्रा थी। जेल से लौटकर 'न्यू इंगलिश स्कूल' के संचालकों से मतभेद होने से लोकमान्य तिलक ने अपनी मण्डली सहित त्यागपत्र दे दिया। आपने 'केसरी' और 'मराठा' पत्रों के संचालन में पूर्ण शक्ति लगाई। किन्तु इन पत्रों से लाभ नहीं था। अतः ७ सहस्र रुपये का ऋण हो गया। केसरी को कभी भी आपने अपनी आजीविका का साधन नहीं बनाया। यह उनके विचारों के प्रचार का साधन था।

'सुधारक' पत्र का प्रारम्भ

लोकमान्य तिलक ने ४ जनवरी १८८१ ई० से दो साप्ताहिक पत्र निकालने प्रारम्भ किए; एक 'केसरी' मराठी भाषा में और दूसरा 'मराठा' नामक साप्ताहिक पत्र अंग्रेजी में। लोकमान्य तिलक की लेखनी ने ब्रिटिश सरकार की इतनी तीव्र आलोचना की कि जिसके कारण सरकार इनको तथा इनके एक साथी आगरकर को १७-८-१८८२ ई० में चार मास का कारावास का दण्ड दिया।

इसके पश्चात् तिलक महाराज ने सन् १८८८ ई० में "सुधारक" नाम से एक और पत्र प्रकाशित करना प्रारम्भ कर दिया। इस पत्र को पढ़कर जनता ने भूरि-भूरि प्रशंसा की। "सुधारक" की श्रेष्ठता और मौलिकता को देखकर हरिभाऊ आप्टे ने कहा था कि "यह काम लोकमान्य तिलक जी की शोभा के अनुरूप ही है।"

"सुधारक" निकालने का उद्देश्य महात्मा तिलक के साथी श्री आगरकर ने एक अग्रलेख (सम्पादकीय लेख) में इस प्रकार लिखा था—

"हिन्दुस्तान आधिभौतिक सम्पत्ति में किसी देश से कम नहीं है परन्तु अंग्रेजी राज्य की विद्यमानता में हमारा व्यक्तित्व और राष्ट्रीय जीवन सांचे में ढाले हुए फौलाद अथवा श्रृङ्खलाबद्ध बन्दी की तरह है। यह हमारी अवस्था प्राचीन शिक्षा मिलने कारण बदलने लगी है। प्राचीन शिक्षा में मनुष्यों को बदलने के अनेक तत्त्व हैं। समाज में सुखी रहकर उसकी उन्नति करने में जितने बन्धन आवश्यक हैं उनको स्थिर रखकर शेष सब बातों में स्त्री-पुरुष स्वतन्त्रतापूर्वक उपभोग करें, यह प्राचीन और अर्वाचीन सुधार का मुख्य तत्त्व है। किन्तु जिसके अन्तःकरण में अंग्रेजी सभ्यता ने घर कर लिया है उसको हमारी समाज व्यवस्था में अनेक दोष दीखते हैं। इन दोषों का निराकरण करना और दूर करने के उपाय बतलाना तथा यूरोपीय सभ्यता के अनुकरण करने से क्या क्या हानियां हैं यह बार-बार प्रकट करना इस "सुधारक" पत्र के चलाने का मुख्य उद्देश्य है।"

इससे ज्ञात होता है कि तिलक महाराज यूरोप की नई रोशनी के पीछे अन्धाधुन्ध चलने वाले भारतीयों को इससे बचाना चाहते थे और भारतीय संस्कृति को अपनाने पर जोर देते थे। क्योंकि वे समझते थे कि यूरोपीय सभ्यता के अनुकरण से भारतीयों की महती विनष्टि है। इसके सुधार की भावना से प्रेरित होकर ही आपने "सुधारक" पत्र निकालना प्रारम्भ किया था।

हिन्दू सङ्गठन कार्य

देश में सर्वत्र हिन्दू मुस्लिम उपद्रव हुए। यह सब अंग्रेजी सरकार के संकेत पर हो रहा था। मुसलमान हिन्दुओं के त्यौहारों, उत्सवों में बाधा डालते थे। हिन्दू रक्तपात से डरते थे। इससे लाभ उठाकर मुसलमान और उत्साहित हो रहे थे। पूना में भी अज्ञानी मुसलमानों ने उपद्रव प्रारम्भ किया। लोकमान्य तिलक ने निरपराध व्यक्तियों को न्यायालय से छुड़ाने का यशस्वी कार्य किया। अतः इन सेवाओं से उनकी लोकप्रियता बढ़ गई। उस समय हिन्दुओं को सबल और संगठित होने के लिए महात्मा तिलक के उपदेशों ने बड़ा कार्य किया। हिन्दुओं के जाति-पाति के भेद को मिटाकर सम्मिलित गणपति-उत्सव कराये। पहले उत्सव को पृथक्-पृथक् मनाते थे। लोकमान्य के प्रयत्नों से सब वर्ण मिलकर बड़ी उमंग और उत्साह से इस उत्सव को मनाने लगे। तभी से इस उत्सव ने सार्वजनिक मेले का रूप धारण कर लिया। यह समारोह १० दिन तक रहता है। सब स्थानों पर महाराष्ट्र में कथा, कीर्तन, व्याख्यान और भजन होते हैं। महात्मा तिलक की सूझ-बूझ ने ही इसे राष्ट्रीयोत्सव का रूप दे दिया।

मृतप्राय राष्ट्र में राष्ट्रीय महोत्सवों द्वारा ही नए जीवन का संचार होता है, यह लोकमान्य जी ने सिद्ध करके दिखाया। वे केवल विद्वान् ही नहीं थे बल्कि प्रभावशाली नेता भी थे। गणपति उत्सव की सफलता के पश्चात् आपने शिवाजी उत्सव की योजना बनाई। शिवाजी की जन्मभूमि रायगढ़ में शिवाजी की जन्मतिथि पर उत्सव किया गया। उस स्थान का जीर्णोद्धार करने के लिए धन एकत्रित किया। फिर गवर्नर से आज्ञा लेने के लिए अथक परिश्रम लोकमान्य जी ने किया। इस उत्सव से शिवाजी का नाम सम्पूर्ण महाराष्ट्र में गूञ्ज गया। शिवाजी को ही जागृति अन्याय का प्रतिकार, स्वराज्य वा स्वतन्त्रता का प्रतीक मान लिया गया। सारे महाराष्ट्र में शिवाजी के उत्सव से राष्ट्रीय जागृति हो गई।

लोकमान्य तिलक अकाल, प्लेगादि महामारी एवं जनता के प्रत्येक कष्ट को अपना कष्ट समझ कर सार्वजनिक सेवा का कार्य लगन से करते थे। १८९७ में प्लेग और दुर्भिक्ष दोनों से ही जनता पीड़ित थी। जनता के कष्टों की उपेक्षा करके ब्रिटिश सरकार विक्टोरिया महारानी के हीरक जयन्ती महोत्सव की तैयारी में लगी हुई थी। उधर जनता में कष्टों के कारण हाहाकार मचा हुआ था। पूना में प्लेग के दिनों में प्लेग अफसर रैंड जनता पर अनेक प्रकार के अत्याचार कर रहा था। लोकमान्य ने सरकार के विरुद्ध लेखनी उठाई और अन्धाधुन्ध अत्याचार का विरोध 'केसरी' में किया। इन्हीं दिनों एक युवक दामोदर चाफेकर ने मि० रैंड पर पिस्तौल से आक्रमण कर दिया। अतः १५ जून, १८९७ के केसरी के एक लेख पर सरकार ने लोकमान्य तिलक को गिरफ्तार कर लिया। ५० हजार की जमानत पर लोकमान्य को छुड़ाया गया। जनता ने मुकद्दमे में धन से खूब सहायता की। किन्तु सरकार तो अन्याय पर तुली हुई थी। अतः आपको डेढ़ वर्ष की कड़ी कैद का दण्ड दिया गया। इससे आप सारे भारत में प्रसिद्ध हो गये।

लोकमान्य को जेल में इतना कष्ट दिया गया कि उनके जीवित रहने में भी शंका होने लगी। महात्मा तिलक की गिरफ्तारी से योरुप के विद्वानों में बड़ी हलचल मच गई। कारण उनके 'वेदकाल निर्णय' सम्बन्धी विद्वत्तापूर्ण लेखों से उनकी विद्वत्ता का यश योरुप में भी फैल गया था। ऐसे विद्वान् को जेल की कोठड़ी में सड़ाकर मारना सब को बुरा लगा। ब्रिटिश सरकार के लिए यह एक कलंक था। प्रो० मैक्समूलर आदि योरुप के विद्वानों के आग्रह पर लोकमान्य से कुछ नम्रता का व्यवहार होने लगा। सरकार तिलक को इस शर्त पर "कि वह भविष्य में राजद्रोही कार्य में भाग नहीं लेंगे" छोड़ना चाहती थी। तिलक ऐसी शर्त मानने से छूटने की अपेक्षा जेल में मरना अच्छा समझते थे। एक वर्ष की सजा काटने के पश्चात् तिलक को छोड़ दिया गया। उनके छूटने पर जनता ने बड़ा हर्ष मनाया तथा उत्साह से उनका स्वागत किया। वह स्वास्थ्य सुधार के लिए कुछ समय के लिये पूना से सिंहलगढ़ चले गये। स्वास्थ्य ठीक होने पर आप मद्रास के कांग्रेस अधिवेशन में गये। आपका जनता ने बड़ा स्वागत किया। वहां से रामेश्वरम् और लङ्का की यात्रा भी की। अगले वर्ष आप कांग्रेस के लखनऊ के अधिवेशन में भी गये और वहाँ से ब्रह्मदेश की यात्रा भी की।

पूना में मि० रैंड को मारने वाला गिरफ्तार नहीं हुआ। सरकार ने २० हजार रुपये का पुरस्कार बधक को गिरफ्तार करवाने के लिए घोषित किया। पुरस्कार के प्रलोभन से बधक के एक साथी ने अपने मित्र चाफेकर का नाम बता दिया। किन्तु नाम बतलाने वाला भी गोली से उड़ा दिया गया। इस गोलीकाण्ड का सम्बन्ध लोकमान्य से कुछ भी नहीं था, किन्तु बम्बई के 'टाइम्स' तथा इंगलैंड के 'ग्लोब' पत्रों ने इनका दोष लो० तिलक पर मढ़ने का यत्न किया। ग्लोब ने तो यहां तक लिखा कि तिलक की देख-रेख में बम्बई में राजद्रोही मण्डली कार्य करती है और तिलक का लक्ष्य भारत में पुनः मराठा-राज्य की स्थापना करना है।

मानहानि का मुकद्दमा

लोकमान्य ने इन पत्रों के सम्पादकों को मानहानि का मुकद्दमा करने की चेतावनी दी। बम्बई के टाइम्स ने तो सूचना मिलते ही क्षमा याचना कर ली। किन्तु ग्लोब अपने हठ पर तुला रहा। अन्त में वह भी झुका और अदालत के व्यय के रूप में ५० पौण्ड हरजाना भी दिया। इस पराजय के पश्चात् भारतीयों के हृदय पर विदेशी पत्रों का जो आतंक छाया हुआ था वह दूर होगया। भारतीय भी अपने को सम्मानित मानने लगे, आपकी सहायता से वीर सावरकर जी को श्याम जी कृष्ण वर्मा ने छात्रवृत्ति दी। क्योंकि श्याम जी और तिलक जी पूर्व से ही दोनों मित्र थे। अतः सावरकर इंगलैण्ड जाकर श्याम जी के पास "भारतीय भवन" में रहकर शिक्षा पाने लगे और उन्होंने देश के लिये जो बलिदान किया वह अन्यत्र पाठकों को पढ़ने को मिलेगा।

स्वस्थ होकर फिर लोकमान्य ने 'केसरी' को सम्भाला और राष्ट्रीयता का प्रचार प्रारम्भ किया। कांग्रेस के विषय में आप ने केसरी में लिखा था कि यह "संस्था शीघ्र ही पार्लियामैन्ट का रूप ग्रहण कर लेगी और देश की राजसत्ता पर पूरा स्वत्व पा लेगी" तिलक की यह भविष्यवाणी तो सच्ची हुई किन्तु कांग्रेस का स्वरूप ही बिगड़ गया। लोकमान्य का उन दिनों कांग्रेस के नेताओं से मत भेद रहता था क्योंकि तिलक को कांग्रेस के नरम दली नेताओं की भिक्षा वृत्ति राष्ट्रीय सम्मान के लिए विघातक प्रतीत होती थी। तत्कालीन नेता सभी नरम दल के ही थे। इसलिए लोकमान्य तिलक कांग्रेस के अध्यक्ष नहीं बन सके क्योंकि उस समय के भीरु नेता सभी तिलक जी का विरोध करते थे।

अतः कलकत्ते के १६०६ के अधिवेशन के अध्यक्ष दादा भाई थे, सबसे पहले कांग्रेस के अधिवेशन में दादा भाई ने ही कहा था कि "हमारा लक्ष्य स्वराज्य की प्राप्ति है भारत के सब रोगों का एकमात्र उपाय स्वराज्य ही है।" लोकमान्य ने दादा भाई द्वारा प्रयुक्त शब्द 'स्वराज्य' को देश के कोने-कोने में पहुंचा दिया। इसके पश्चात् नागपुर तथा सूरत में कांग्रेस के अधिवेशन हुए। दोनों दलों में खूब गड़बड़ रही। सूरत में तो हाथापाई भी हो गई। दोनों पक्षों के पृथक्-पृथक् अधिवेशन हुए। इसके पश्चात् नरम दल वाले नेता डूबते ही चले गये और गरमदल के हाथ में कांग्रेस आ गई।

माण्डले जेल में

बंग भंग के पश्चात् बङ्गाल में सशस्त्र क्रान्ति का जोर बढ़ गया और खुदीराम बोस ने एक बम फेंका जिस से दो अंग्रेज महिलायें समाप्त हो गईं। सरकार असली अपराधी को नहीं पकड़ सकी तो उस ने कांग्रेस के नेताओं की धरपकड़ प्रारम्भ की। मद्रास के चिदम्बरम् पिल्ले को १० वर्ष कठोर कारावास का दण्ड दिया। तिलक ने सरकार की इस नीति के विरुद्ध ११ मई के केसरी में लिखा "देश में बम गोले विद्यमान हैं यह देश का दुर्भाग्य है किन्तु बम चलाने के अनुकूल परिस्थिति उत्पन्न कर देने का दायित्व सरकार का ही है। सरकार की दमननीति ही इसके मूल में है।" सरकार ने इसी प्रकार के लेखों पर तिलक पर राजद्रोह फैलाने का मुकद्दमा चला दिया। लोकमान्य ने इस मुकद्दमे की खुद पैरवी की। लगभग २१ घण्टा १० मिनट तक वे बोलते रहे। एक सप्ताह में अभियोग पूरा हुआ। न्यायाधीश दावट ने अपना निर्णय देते हुए लिखा था "कानून की दृष्टि से मुझे चाहिये कि मैं तुम्हें आजन्म कालेपानी का दण्ड दूं किन्तु तुम्हारी आयु व अन्य कारण को भी दृष्टि में रखते हुए मैं वह दण्ड घटाकर केवल ६ वर्ष के कालेपानी का दण्ड देता हूँ।

उस समय तिलक की आयु ५२ वर्ष की थी। जीवन भर की तपस्या के कारण शरीर बहुत निर्बल था। मधुमेह के रोग ने शरीर को खा ही लिया था, ऐसी अवस्था में ६ वर्ष के कठोर कारावास का दण्ड मृत्युदण्ड से भी अधिक क्रूर और भयङ्कर था। इससे देश में शोक की घटनायें छा गईं। आपको पहले अहमदाबाद के पास साबरमती की जेल में रखा। वहां बड़ा कष्ट था, दस दिन में ही पौंड भार। घट गया फिर आपको माण्डले की जेल में ले जाकर काल कोठरी में बन्द कर दिया गया। लोकमान्य तिलक ने अंग्रेज सरकार के हाथों जितने कष्ट उठाये उतने कष्ट शायद ही किसी राजनीतिक नेता ने भोगे होंगे। कष्ट सहने की क्षमता उनमें असाधारण थी, वह शत्रु से दया की भीख मांगना अपनी मृत्यु समझते थे। उनकी आत्मा इतनी बलवान् थी कि वे शारीरिक कष्टों की चिन्ता से कभी खिन्न नहीं होते थे।

माण्डले की जेल की छोटी सी कोठरी में उन्हें बन्द रखा गया। उसके साथ एक छोटी सी रसोई और ४-५ फुट का एक छोटा सा आंगन था। कोठरी में लोहे का एक पलङ्ग और टेबल, कुर्सी लगी थी। एक कोने में पुस्तकों से भरी एक अलमारी रखी थी। इस भयंकर एकान्तवास में पुस्तकों का सहारा ही तिलक का सबसे बड़ा आश्वासन था। दिन का अधिक समय आप पुस्तक पढ़ने और लिखने में ही व्यय करते थे। यहीं पर आपने 'गीता रहस्य' के एक सहस्र पृष्ठों का लेखन कार्य किया। वेद विषयक कुछ पुस्तकें भी लिखीं तथा जर्मन व पाली भाषा का भी अभ्यास किया। मन को एकाग्र करने के लिए आप योगाभ्यास करते थे। सन् १९१२ में आपकी धर्मपत्नी का देहान्त हो गया। इस से

आपको बड़ा कष्ट हुआ शरीर पहले ही रोगी था, इस दुःख से और भी वज्रपात हुआ। आपका शरीर रोगों ने घेर लिया। भोजन नहीं पचता था। माण्डले का जलवायु आपके अनुकूल नहीं था। थोड़ा सा सत्तू लेते थे। अन्य कोई अन्न नहीं लेते थे। दूध पर ही जीवन चल रहा था। सरकार तो मारने पर तुली हुई थी। पूरे छः वर्ष के अखण्ड एकान्तवास के पश्चात् १६ जून १६१४ के दिन माण्डले से आपको पूना पहुँचा दिया।

वहां पर आपने एक सार्वजनिक सभा में बोलते हुए कहा "मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि मैं छः वर्ष की निन्द्रा के पश्चात् फिर जाग उठा हूं। छः वर्ष पूर्व मेरे जीवन का जो कार्यक्रम था वही अब भी रहेगा। मेरे मार्ग में परिवर्तन नहीं हुआ है। छः वर्ष की यातनाओं ने मेरी भी आत्मशुद्धि कर दी है। इस शुद्धिकार्य के लिए मैं सरकार का उपकार मानता हूं।"

खूफिया पुलिस की निगरानी भी चलती रही। कांग्रेस में सदैव दोनों दलों में झगड़े रहते थे। इससे बचने के लिए आपने होमरूल लीग की स्थापना की।

होमरूल लीग की स्थापना

होमरूल का हिन्दी में अर्थ है 'स्वराज्य'। स्वराज्य की प्राप्ति इस संस्था का उद्देश्य था। इसके सदस्य बनाने के लिए लोकमान्य तिलक ने अनेक प्रान्तों का भ्रमण करके अथक परिश्रम से ५०-६० हजार रुपये का संग्रह किया। स्वराज्य यज्ञ की अग्नि प्रज्वलित हो उठी और लोकमान्य का सूर्य फिर भारत के आकाश में जगमगा उठा।

अंग्रेज सरकार फिर घबराई और लोकमान्य को नोटिस दिया कि भविष्य में आप राजद्रोही भाषण नहीं करेंगे, यह वचन दें और जमानत के रूप में ४० हजार रुपये जमा करायें। यह केस हाई-कोर्ट तक गया। हाईकोर्ट के न्यायप्रिय न्यायाधीश न्यायमूर्ति लल्लूभाई आशाराम तथा मि० बैचलर ने दोनों पक्षों की युक्तियां सुनकर लोकमान्य तिलक को दोषमुक्त कर दिया और निर्णय में लिखा "होमरूल मांगना राजद्रोह नहीं है।" इस हाईकोर्ट के निर्णय से 'होमरूल' की हलचल को बहुत प्रगति मिली। होमरूल का महत्त्व कांग्रेस से भी अधिक बढ़ा हुआ दिखाई देने लगा। होमरूल की ओर से लोकमान्य और ऐनीबेसेण्ट के सम्मिलित डेपुटेशन ने इंग्लैण्ड की यात्रा की। लोकमान्य ने जनता में चेतना उत्पन्न की और "स्वराज्य हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है" इसके लिए जनता को निर्भयतापूर्वक सङ्घर्ष करना भी सिखा दिया।

एक लाख रुपयों की भेंट

आपकी आयु ६० वर्ष की हो चुकी थी। देशवासियों ने आपकी साठवीं जन्मतिथि पर उत्सव मनाया। विशाल सभा में मानपत्र दिया और आपकी सेवा में एक लाख रुपयों की थैली भेंट की गई। लोकमान्य ने मानपत्र स्वीकार करने के साथ यह घोषणा की कि "मुझे पैसे की आवश्यकता नहीं है, यह धन राष्ट्रीय कार्यों में व्यय किया जायेगा।" तब तक किसी भी एक राष्ट्रीय नेता को इतने धन की भेंट नहीं दी गई थी।

कांग्रेस के दोनों दलों का संगठन

आपने निरन्तर कई वर्ष तक यह यत्न किया कि कांग्रेस के दोनों नरम और गरम दल का सम-समझौता किया जाये। आपकी लखनऊ में जाकर सफलता हो गई। सब भेद भुलाकर सारे देश ने स्वराज्य की मांग की। गोखले की भी मृत्यु हो चुकी थी। इस समय सारे देश के एकमात्र सूत्रधार

लोकमान्य ही थे। लखनऊ के पश्चात् कांग्रेस का अधिवेशन दिल्ली में हुआ। दिल्ली के अधिवेशन के लिए आपको प्रधान बनाने का सब देशवासियों का भारी आग्रह था। किन्तु दैव को यह अभीष्ट न था क्योंकि उन्हीं दिनों आपने ब्रिटिश पत्रकार चिरोल पर मानहानि का मुकद्दमा चलाया हुआ था। उसने लिखा था, भारत की हिंसात्मक क्रांति के अग्रदूत स्वयं लोकमान्य हैं। लोकमान्य ने यह अभियोग चार वर्ष तक चलाया। इसमें तीन लाख रुपये खर्च हुए। रुपये का सब प्रबन्ध इनके मित्र श्री एन० सी० केलकर व तांत्या साहब ने किया था। चिरोल केस का निर्णय आपके विरुद्ध हुआ। लोकमान्य में अन्याय के विरुद्ध लड़ने की असाधारण क्षमता थी। सङ्घर्ष में उन्हें आनन्द आता था। उन्हें जय-पराजय की कोई चिन्ता न थी। चिरोल केस के पश्चात् फिर कांग्रेस में जुट गए।

कांग्रेस ने आपकी देख-रेख में ब्रिटिश कमेटी बना दी। जिसका कार्य ब्रिटेन में होमरूल का आन्दोलन करना था। आपने यह आन्दोलन अति वेग से किया और "माण्टेग्यू चेम्सफोर्ड सुधार" के सम्बन्ध में ब्रिटेन की पार्लियामेन्टरी कमेटी के सामने आपने बड़ी योग्यतापूर्वक साक्षी दी थी। आपने सैकड़ों सभायें ब्रिटेन में भारत की राष्ट्रीय भावनाओं के प्रचारार्थ कीं। विज्ञापन भी सैकड़ों की संख्या में निकाले कांग्रेस ने तो प्रचारार्थ थोड़ा ही धन दिया, शेष धन होमलीग की ओर से व्यय किया। इसी कार्य के लिए आपने लाला लाजपतराय को सत्तर हजार रुपये भेजे थे, जिससे लाला जी ने खूब कार्य किया।

महात्मा तिलक ने अपने पुरुषार्थ और कौशल से अमरीका के अध्यक्ष के पास भी भारत की स्वनिर्णय सम्बन्धी मांग पहुंचा दी। फिर आप भारत लौट आए। उस समय भारत में सरकार का भयङ्कर दमनचक्र चल रहा था। भारत की भाषण, प्रकाशन, लेखनादि की स्वतन्त्रता पर अंकुश रखने के लिए सरकार ने रौलट ऐक्ट बना दिया था। इसका विरोध करने के लिए महात्मा गांधी ने आन्दोलन की प्रबल तैयारी की थी। सरकार ने आन्दोलन को दबाने के लिए भीषण अत्याचार किये। गोली, लाठी और बर्छों से निहत्थी प्रजा पर हमले किये गये। जलियां वाले बाग में गोरे सैनिकों ने हजारों मनुष्य भून डाले। स्त्रियों और बच्चों पर भी बलात्कार और अत्याचार किए गये। लोकमान्य का भारत में आने पर बम्बई में भारी स्वागत किया गया। गांधी जी के साथ उस समय लोकमान्य का मतभेद था। वे उस समय सत्याग्रह के पक्ष में नहीं थे। अमृतसर के अधिवेशन में सत्याग्रह का प्रस्ताव पास हो गया और महात्मा गांधी ने सूत्रधार बनकर सत्याग्रह चलाया। मतभेद होते हुए भी दोनों नेता एक दूसरे का मान करते तथा परस्पर सहयोग भी करते थे।

देहत्याग

लोकमान्य का शरीर बहुत थक चुका था। केवल मनोबल से ही वे कार्य चला रहे थे। उनको ५-६ दिन तक ज्वर रहा और उनकी जीवन यात्रा पूर्ण हो गई। ३१ जुलाई को भारत माता का यह कर्मयोगी पुत्र विधाता ने छीन लिया। दो तीन लाख आदमी शवयात्रा के साथ गये। हजारों देवियां भी जलूस में थीं। लाखों व्यक्तियों ने उनके शव का अन्तिम दर्शन किया। महात्मा गांधी उस समय वहीं उपस्थित थे। बम्बई में 'बैंकवे' के समुद्र तट पर अन्त्येष्टि संस्कार किया गया। उस समय महात्मा गांधी ने लोकमान्य की स्तुति में भाषण भी दिया।

कांग्रेस में 'तिलक फण्ड' नाम से एक निधि इकट्ठी हुई। लोकमान्य के साथी नरसिंह चिन्तामणि केलकर ने १५०० पृष्ठों का विस्तृत जीवन चरित्र लिखा। लोकमान्य के लेखों का संग्रह ४-५ खण्डों में प्रकाशित हो चुका है। भारत के इतिहास में तिलक नाम सदैव अगाध श्रद्धा से स्मरण किया जायेगा।

महात्मा तिलक की विशेषतायें

महात्मा तिलक की वेषभूषा सदा भारतीय ढंग की और सरल-साधारण रहती थी। वस्त्रों की सजावट आदि से उन्हें घृणा थी। भोजन अल्पमात्रा में शरीर की आवश्यकतानुसार लेते थे। भोजन में बड़े संयमी थे। घर में सजावट की कोई सामग्री नहीं थी। एक मेज कुर्सी और एक शय्या थी। प्राचीन ऋषियों के समान आपके जीवन में तपस्या की मात्रा अधिक थी। गृहस्थी होते हुए भी आप कठोर तपस्वियों की भांति तपस्वी जीवन व्यतीत करते थे।

आप व्रत के धनी थे। एक बार देश सेवा का व्रत लेकर कभी उसको छोड़ा नहीं। व्रत के निभाने में दरिद्रता भी आई तो उसे सहर्ष स्वीकार किया। प्रियजनों से अपमान का व्यवहार मिला, उसे भी सहन किया। जेल जाना पड़ा तो हँसते-हँसते अनेक बार जेल गये। ६ वर्ष का कालेपानी का अखण्ड भयङ्कर एकान्तवास भी प्रसन्नतापूर्वक काटा। इस प्रकार ४० वर्ष तक देश सेवा का व्रत निभाया। आपने इस व्रत का निष्काम भाव से पूर्ण किया। आप सदैव निस्वार्थ बुद्धि से सेवा करते थे। सेवा के पुरस्कार की इच्छा भी करना पाप समझते थे। देश की सेवा का व्रत उन्होंने देश की दुर्दशा देखकर लिया था। वे राजनीतिक कार्य की अपेक्षा विद्याभ्यास को अच्छा समझते थे, किन्तु देश के दुःख से दुःखी होकर उन्हें आग में कूदना पड़ा। उन्होंने एक बार कहा था "मेरी इच्छा तो थी कि मैं अन्वेषक रहता और ग्रन्थ लिखता किन्तु घटनाओं ने मुझे राजनीति के क्षेत्र में ला पटका। उन्होंने अपनी सब इच्छाओं का 'बलिदान' अपने कर्त्तव्य के पालनार्थ कर दिया। इतना होते हुए भी आपने अनेक ग्रन्थ लिखे हैं। आपका वेदकाल निर्णय सम्बन्धी ग्रन्थ 'ओरायन' नाम अंग्रेजी में था। जिसका सारांश ओरियण्टल कांग्रेस में भेजा गया तो सब विद्वानों ने उनकी मुक्तकण्ठ से प्रशंसा की। १६०३ में आपने 'आर्कटिक होम इन दि वेदान्त' पुस्तक लिखी। इस पुस्तक ने पाश्चात्य विचारकों में हलचल मचा दी। इन पुस्तकों में वेदों का प्राचीनत्व सिद्ध किया गया था।

लोकमान्य ने गीता का अनेक बार पारायण किया और आपने गीता-रहस्य नाम की १००० पृष्ठ की पुस्तक लिखी जिसमें ज्ञान कर्म और भक्ति तीनों का सुन्दर समन्वय सिद्ध करके दिखाया। यह पुस्तक मराठी भाषा में ही ५० हजार से अधिक बिक चुकी है। भारत की अन्य सब भाषाओं में भी इसका अनुवाद प्रकाशित हो चुका है।

नवयुवकों के विचारार्थ

भारत के निर्भीक कर्मयोगी के कुछ विचार युवकों के कल्याणार्थ लिखते हैं।

(१) यह जगत् हमारी कृति नहीं है। अतः सब कार्य परमेश्वरार्पण करके और उसके प्रति उत्कट श्रद्धा रखकर ही हम संसार के व्यवहारों को चला सकते हैं। यही गीता का उपदेश है और यही मनुष्यों का कर्त्तव्य है।"

(२) सत्य की नीति सर्वोच्च है। अन्य मार्गों से राष्ट्र का हित नहीं हो सकता। सत्य की परीक्षा अग्नि में होती है। स्वर्ण के सत्य स्वरूप को सिद्ध करने के लिए हम उसे अग्नि में जलाते हैं। सत्य की परीक्षा केवल इसी प्रकार होती है।

(३) "पिछली शताब्दी में हमने अपनी विशिष्टता स्थिर रखने के लिए जातिधर्म, जातिबन्धन आदि की कल्पना की थी। इन शब्दों को अब अपने कोष से निकाल देना चाहिए। इन बन्धनों के

परिणाम से देश को बहुत क्षति पहुँच रही है, शीघ्र ही इनका अन्त होना आवश्यक है।"

(४) कोई भी आन्दोलन मनुष्य विशेष के आधार पर नहीं चलता। धन के आधार पर भी नहीं चलता। उसमें कार्य-सिद्धि तभी होगी जब कार्य करने वाले उसके लिए बलिदान करेंगे।

(५) "स्वदेशी के शत्रु और स्वदेश के शत्रु में कोई भेद नहीं है, जो स्वदेशी व्यापार (व व्यवहार) नहीं करते उनका पूर्ण बहिष्कार कर देना चाहिये।"

नवयुवकों को इन वाक्यों पर गम्भीरता से विचार कर आचरण कर अपना जीवन सफल बनाना चाहिये।

—०—

क्रांतिकारियों के राजकुमार हुतात्मा—

स्वातन्त्र्य वीर विनायक सावरकर

ओमानन्द सरस्वती (आचार्य भगवान्देव)

महाराष्ट्र में नासिक जिले के भगूर ग्राम में एक चितपावन ब्राह्मण गृहस्थ दामोदर पन्त सावरकर रहते थे। उनके चार सन्तान थीं। प्रथम गणेश पन्त वा बाला सावरकर, द्वितीय विनायक सावरकर, तृतीय कन्या मैनाबाई और चतुर्थ नारायण राव सावरकर थे। गणेश पन्त विनायक से चार वर्ष बड़े और डाक्टर नारायण उनसे पांच वर्ष छोटे थे। विनायक का जन्म १८८३ ई० हुआ था। यही वह दिव्य बालक था, जो आगे चलकर "क्रान्तिकारियों का राजकुमार" बना जिसे विदेशी लोगों ने भी हुतात्मा की पदवी दी और जिसे योरुपीय राजनीतिज्ञों ने मेजनी गेरी वाल्डी क्रोपाट किनु वुल्फटोन और एमेट कहकर उसकी खूब प्रशंसा की। और जिसे हिन्दुओं ने हिन्दू-राष्ट्रपति छत्रपति शिवा के रूप में मान्यता दी। आगे चलकर ये तीन भाई सावरकर बन्धु नाम से विख्यात हुए। और महाराष्ट्र और इंगलैंड में क्रान्तिकारियों के बड़े नेता श्री विनायक सावरकर के होने के कारण वह काल सावरकर युग ही कहलाया। विनायक के पिता दामोदर पन्त सावरकर अच्छे विद्वान् हीन हीं, किन्तु साथ ही बहुत अच्छे कवि भी थे। वे अपनी सन्तान में उच्च भावनाएँ भरने के लिए रामायण, महाभारत की शिक्षाप्रद कथायें, शिवाजी, महाराणा प्रताप, भाऊ बाजीराव प्रथम आदि देशभक्त वीरों के जीवन तथा गीत सुनाया करते थे। वे अपनी सन्तान में काव्यरस से प्रेम उत्पन्न करने के लिए महाराष्ट्र के प्रसिद्ध कवि वामन मोरो पन्त और सन्त तुकाराम की कवितायें सुनाया करते थे। इसी कारण विनायक की बुद्धि का विकास बाल्यकाल में ही होगया था, वे आठ वर्ष की आयु में ही कविता करने लगे थे। जब इनकी आयु दश वर्ष की थी, तभी इनकी बनाई हुई कवितायें मराठी के प्रसिद्ध पत्र जगद्धितेच्छु आदि में बड़ी उत्सुकता से छापी जाती थीं। किन्तु सम्पादक महोदयों को यह ज्ञात नहीं था कि इन कविताओं का रचयिता दश-बारह वर्ष की आयु का बालक है। विनायक को छत्रपति शिवाजी के चरित्र से अतीव प्रेम था। यह केसरी आदि पत्रिकायें महाभारत तथा अन्य मराठा वीरों की विजय यात्राओं को बड़ी श्रद्धा से पढ़ते थे और अपने साथियों को भी पढ़ने की प्रेरणा करते थे। उनके आमोद प्रमोद ने भी महाराष्ट्र और राजस्थान के वीरों की कथाओं का रूप धारण कर लिया था। वह अल्पायु में ही अपने मित्रों में विद्वान् देशभक्त और ओजस्वी वक्ता के रूप में पूज्य भाव में देखे जाते थे। सन् १८९३ से लेकर १८९५ तक सारे भारतवर्ष में धर्मान्धता के कारण हिन्दू मुस्लिम झगड़े हुए। महाराष्ट्र भी इनसे कैसे बच सकता था। पूना आदि नगरों में भी यह अग्नि भड़की। उस

समय मुसलमानों के अत्याचार का बदला लेने के लिए इस वीर बालक विनायक ने अपने ग्राम भगूर में अपनी बाल टोली को लेकर ग्राम से बाहर एक मस्जिद पर चढ़ाई कर दी। शत्रु कोई सम्मुख न आया, थोड़ी सी देर में ही इन १२ मराठा बालकों ने जिनकी आयु १४ वर्ष से अधिक न थी। मस्जिद के मीनार की भित्तियां तोड़-फोड़ कर उसे भूमिसात् कर दिया और अपना कार्य करके अपने इस नेता की आज्ञा से बालक चलते बने। स्कूल में मुसलमान लड़कों से इनकी टोली का कई बार झगड़ा हुआ। इनकी टोली वीरता से लड़ती थी और विजय इनके पक्ष की होती थी। एक मुसलमान अरब लड़के ने विनायक के मुख में मछली का मांस डालकर इन्हें बलपूर्वक मुसलमान बनाने की धमकी दी। किन्तु वीर विनायक इन थोथी धमकियों से कहां डरने वाले थे। इन्होंने अपने सैनिकों को सैनिक शिक्षा देने के लिए सैनिकशाला खोली और इनमें भावना भरने लगे। अनुशासन और सैनिक शिक्षणार्थ परस्पर नकली युद्धों की रचना रचकर अभ्यास कराते थे। इसी प्रकार उन्हें महाराष्ट्र के ऐतिहासिक दुर्गों में ले जाकर अपने प्राचीन वीर पुरुषों की वीर भावनायें भरते थे। कभी अपने साथियों को सिंहगढ़ के दुर्ग में ले जाकर वहां विजयी सेनापति ताना जी मालसुरे की वीरता की कथा सुनाकर ईश्वर से प्रार्थना करते थे कि हम में भी ऐसी शक्ति का सञ्चार हो कि जिससे हम अपनी जाति और देश को स्वतन्त्र करने के लिए अपना कर्त्तव्य पालन कर सकें। इसी प्रकार वे साथियों को राष्ट्र सेवार्थ तैयार करते थे। अपने पिता जी के साथ वे पूजा-वन्दना में भी पर्याप्त समय देते थे। वे घण्टों देव पूजा में लगा देते और सदैव देश, जाति को दुःखों से छुड़ाने की प्रार्थना करते थे। जब ये दस वर्ष के ही थे इनकी माता का देहान्त हो गया, फिर पालन पोषण का भार पिता जी पर ही पड़ गया। इनके पिता जी ने माता के समान ही अपनी सन्तान का पालन-पोषण किया। इनके पिता जी इनकी शिक्षा का भी बड़ा ध्यान रखते थे।

शिक्षा

विनायक सावरकर ने राजनीतिक कार्य करते हुए भी अपने अध्ययन की कभी उपेक्षा नहीं की और न अपने साथियों को करने दी। वे कभी भी किसी परीक्षा में अनुत्तीर्ण नहीं हुए। १६०१ में उन्होंने अधिकारी परीक्षा उत्तीर्ण कर नासिक को छोड़ पूना में पहुंच फार्ग्यूसन कालिज में प्रवेश किया। उससे जाते समय इनके मित्रों और प्रतिष्ठित लोगों ने विनायक को बड़े समारोह से विदा किया। स्कूल कालिज में पढ़ते समय उन्होंने अपना राजनीतिक कार्य भी खूब उत्साह से किया। चारों वर्ष कालेज में देशभक्ति और राष्ट्रीयता के अपने सिद्धान्तों का खूब प्रचार करते रहे। पढ़ते समय में भी इनकी इतिहास में स्वाभाविक रुचि थी। संसार की सभी क्रांतियों का इतिहास इन्होंने अपने विद्यार्थी जीवन में ही पढ़ लिया था। इनको पढ़ने में इतनी रुचि थी कि इनके सहपाठी इन्हें "किताबी कीड़ा" कहा करते थे। वे और उनके साथी अपने कार्य में तत्पर रहते थे। वे सब एक समान वस्त्र धारण करते थे, सरलता का जीवन बिताते, कठोर परिश्रम अध्ययनार्थ करते, नियमपूर्वक सब परीक्षाओं में उत्तीर्ण होते थे। शारीरिक व्यायाम करते थे, विद्यार्थी जीवन में इनकी राजनीतिक हलचलें भी इतिहास की अमर कथायें हैं।

विद्यार्थी जीवन में राजनीतिक संगठन

समाचार-पत्रों और राजनैतिक ग्रंथों के स्वाध्याय से वीर विनायक अपनी राजनीति के ज्ञान और योग्यता का सम्पादन अपने स्कूल के अध्ययन के साथ-साथ कर रहे थे। उस समय विदेशी वस्त्र

बहिष्कार की अनेक कवितायें भी समाचार-पत्रों में छपती थीं। एक दिन समाचार-पत्रों में उन्होंने पढ़ा कि चाफेकर बन्धुओं ने अत्याचारी अंग्रेज रैण्ड प्लेग कमिश्नर और उसके एक साथी गोरे को गोली से समाप्त कर दिया। तीनों चाफेकर बन्धुओं और उनके साथियों को फांसी का दण्ड दिया। लोकमान्य तिलक को जेल भेज दिया, नातुबन्धु निर्वासित हुए। विनायक के बाल हृदय पर इस घटना का बहुत प्रभाव पड़ा। उन्होंने आंसू भरी आंखों से फांसी आदि के दुःखद समाचार पढ़े, विनायक आप ही आप बोलने लगे "चाफेकर उठती जवानी में चले गये, उन्होंने अपनी मातृभूमि के लिए सब कुछ न्योछावर कर दिया तो क्या मुझे खा-पीकर मौज उड़ाना ही शोभा देता है? उनका कार्य अधूरा पड़ा है, उनकी इच्छायें अपूर्ण खड़ी हैं। क्यों न मैं प्रतिज्ञा करूँ कि उनके कार्य को पूरा करने में अपने प्राण तक दे डालूँ। मैं उसे पूर्ण करूँगा अन्यथा उसके प्रयत्न में जीवन दे डालूँगा।" तत्पश्चात् वे दुर्गा के सम्मुख उपस्थित होकर शिवा की भांति अपने उद्देश्य की पूर्ति के लिए प्रार्थना कर शक्ति मांगने लगे और फिर शांत खड़े होकर उन्होंने प्रतिज्ञा की "मैं भारत माता की शृङ्खलायें तोड़ने के लिए अपना जीवन अर्पण करूंगा, मैं गुप्त संस्थायें खोलूँगा, शस्त्र बनाऊँगा और समय आने पर हाथ में शस्त्र लेकर स्वतन्त्रार्थ लड़ता-लड़ता मरूंगा। इसी बालक ने युवा बनकर अपनी प्रतिज्ञा पूर्ति के लिए अपना सारा जीवन कंटकाकीर्ण बना लिया। उसी दिन से यह अपने कार्य में जुट गया। उसी दिन अपने साथियों को चाफेकर बन्धुओं की स्तुति में एक गीत बनाकर भाव भरने के लिए सुनाया। गीत बड़ा ही सुन्दर था, सब पर अच्छा प्रभाव पड़ा। इन्हीं दिनों आपने 'अभिनव भारत' नाम की संस्था की स्थापना करके अपनी विचारधारा का प्रचार करना आरम्भ किया। किन्तु इन्हीं दिनों प्लेग इतने जोर से फैला कि सैकड़ों व्यक्ति इसकी झड़प में आ गए। विनायक के पिता जी का देहान्त भी प्लेग से हो गया। पुलिस वालों ने आकर इनको घर से निकाल दिया। छोटा भाई ९-१० वर्ष का था, उस पर भी प्लेग ने आक्रमण किया। इनका सारा परिवार जंगल में चला गया, फिर वे एक मित्र की सहायता से नासिक आये। वहां बड़े भाई बाबा सावरकर को भी प्लेग ने दबा लिया। विनायक तथा उनकी भाभी ने दो भाइयों की इस अवस्था में खूब परिचर्या की। ईशकृपा से शीघ्र दोनों भाई स्वस्थ हो गये। इन्होंने वहां भी अपने साथी ढूंढ़ निकाले और "मित्र मेला" नाम से एक संस्था बनाई। यह इनका क्रांतिकारी सङ्गठन था। इसके द्वारा खूब कार्य किया। इस संस्था का उद्देश्य सशस्त्र क्रांति द्वारा स्वतन्त्रता प्राप्त करना था। यह संस्था अपना कार्य गुप्त तथा प्रकट रूप में दोनों प्रकार से करती थी। इसके अतिरिक्त नासिक की सभी प्रकट संस्थायें विनायक जी की अधीनता में कार्य करती थीं। वह इन दिनों विदेशी वस्तुओं का बहिष्कार आन्दोलन के संचालन का कार्य करते थे। इस १६-१७ वर्ष की आयु में एक दिन में तीन-तीन सभाओं में भाषण देने पड़ते थे। १९०१ में इनकी संस्था सारे भारत में फैल गई थी। शिवाजी जयन्ती और गणपति उत्सव इन्हीं की अध्यक्षता में मनाए जाते थे। प्रति सप्ताह इनकी सभा के अधिवेशन होते थे। उनमें देशभक्तों के जीवन की कथायें तथा राजनीतिक विषयों पर भाषण होते थे। विनायक की यह सभा उनके ही शब्दों में राष्ट्रीय शिक्षणालय था। यह इनकी संस्था चौथाई शताब्दी तक चली। इस संस्था ने देश के युवकों को देशभक्ति की शिक्षा देकर भारत माता की मुक्ति के लिए हँसते-हँसते मरना सिखाया था। सन् १९०१ में कालिज में प्रविष्ट हो वहां कालिज के विद्यार्थियों को देश सेवा की शिक्षा देनी प्रारम्भ की। भोजनशाला में ये एक हस्तलिखित साप्ताहिक पत्र भी निकालते थे। इसमें छपे लेख पूना के प्रसिद्ध पत्रों में और महाराष्ट्र भर में बड़ी रुचि से पढ़े जाते थे। ये उन दिनों खुले रूप में स्वतन्त्रता

लाला हरदयाल
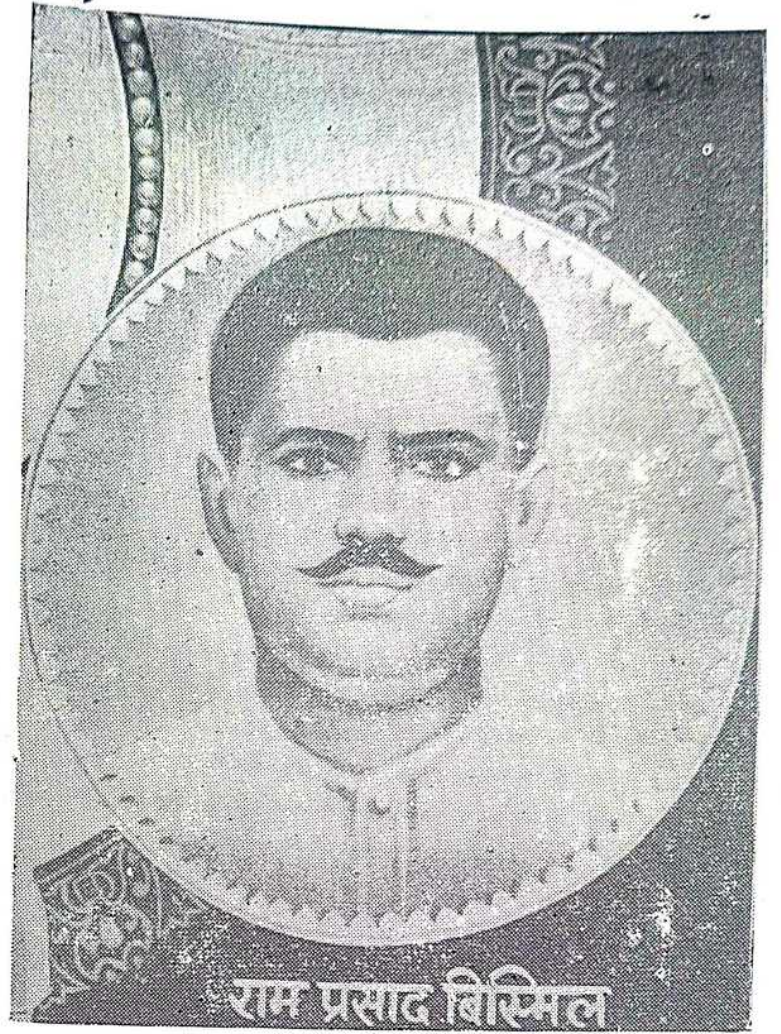
राम प्रसाद बिस्मिल

वासुदेव वलवन्त फड़के

चन्द्रशेखर आजाद

क्रान्तिकारियों के गुरु—
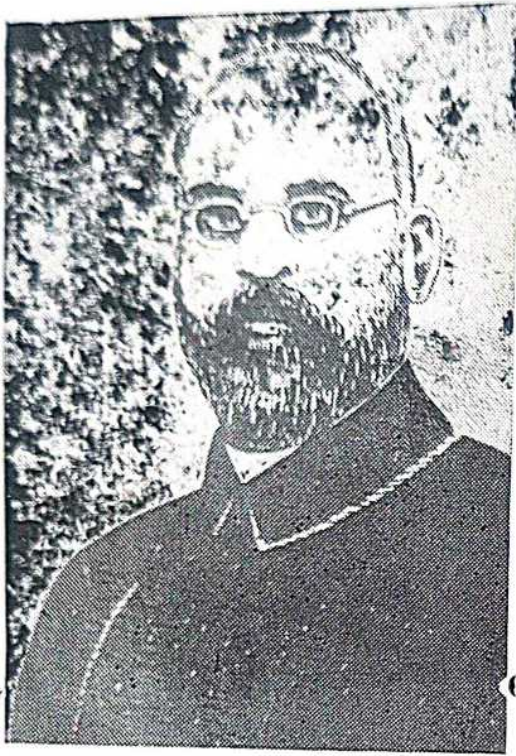
श्याम जी कृष्ण वर्मा

विनायक दामोदर सावरकर

मदनलाल धींगड़ा

सरदार ऊधमसिंह
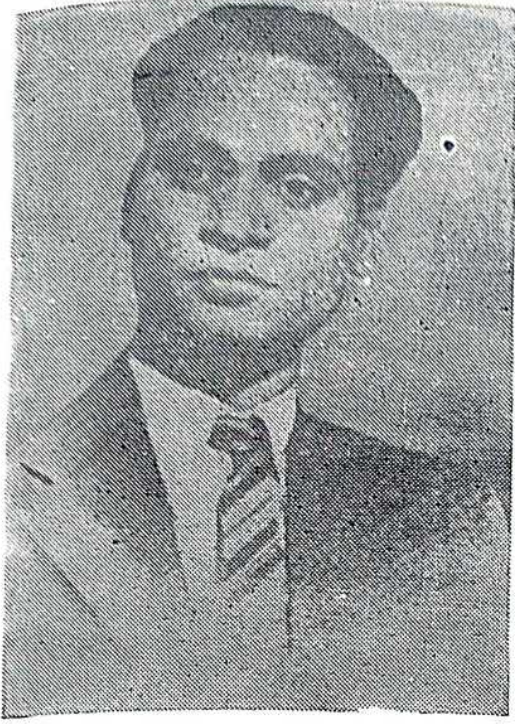
श्री लक्ष्मीकान्त
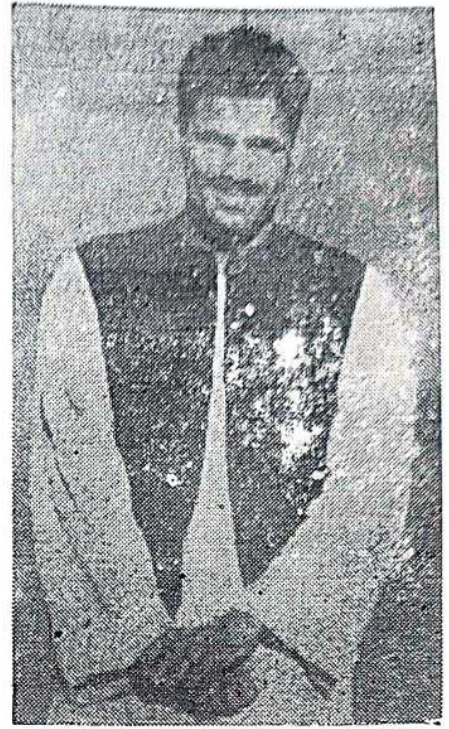
श्री दैवशरण
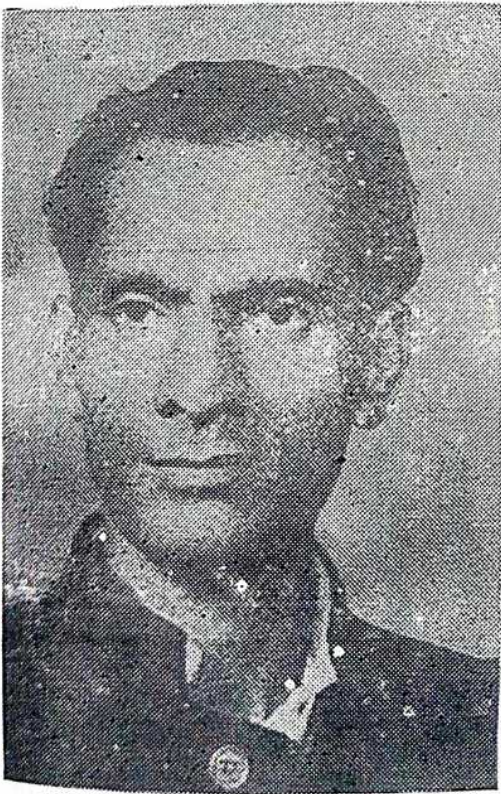
श्री सुरेन्द्रनाथ पाण्डेय

श्री मनमोहन गुप्त
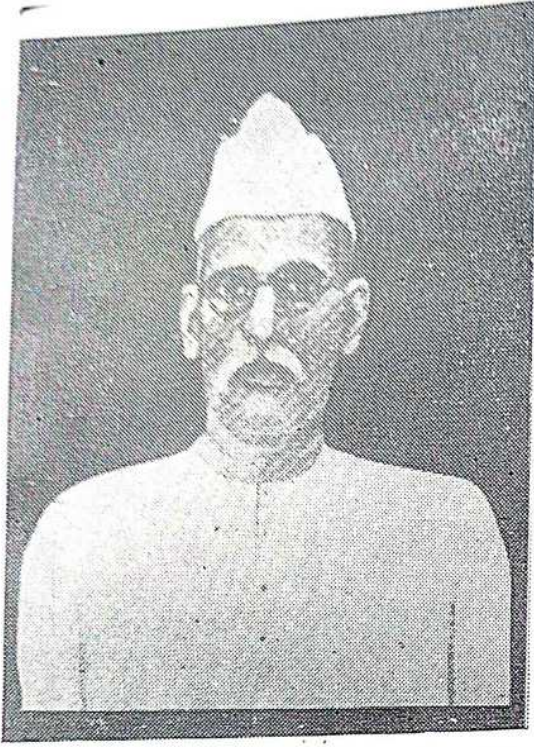
श्री अर्जुनलाल सेठी

प्रफुल्लकुमार चाकी

श्री विजयसिंह पथिक

राजेन्द्र लाहिड़ी

और क्रांति का प्रचार करते थे। "इटालियन क्रांति" और "क्रांति की सात सीढ़ियां" सावरकर के ये दो व्याख्यान जिन्होंने सुने थे वे आज भी श्रद्धा से स्मरण करते हैं। सावरकर का पूना में सार्वजनिक कार्यों में पूर्ण हाथ रहता था। १९०५-६ ई० में स्वदेशी आन्दोलन का जोर हुआ। सावरकर भी पूर्ण शक्ति से जुट गये। इन्होंने पूना, नासिक तथा महाराष्ट्र के अन्य स्थानों पर स्वदेशी प्रचार के ओजस्वी भाषण दिए। ग्रीष्मावकाश में ये घूम-घूम कर तीन-तीन और चार-चार भाषण देते हुए घूमने लगे। इनके भाषणों को सुनकर जनता मन्त्रमुग्ध हो जाती थी। वीर सावरकर ने विदेशी वस्त्रों की होली मनाने के लिए पूना की जनता को व्याख्यान देकर तैयार कर लिया। पूना के एक बड़े मैदान में कीमती विदेशी वस्त्रों का ढेर लग गया और उसमें आग लगाकर भारत में विदेशी वस्त्रों की सर्वप्रथम होली मनाई गई। इस समय वीर सावरकर ने भाषण में कहा—"विदेशी वस्त्रों को जला दो और बड़े प्रेम के साथ जला दो और उसी प्रेम के साथ जला दो, जो प्रेम आप इनके साथ सुन्दरतादि के कारण रखते हो। इन्हें जला दो और अधिकार के साथ जला दो। इसी पवित्र अग्नि को साक्षी देकर आप और अभी स्वदेशी का व्रत धारण करो। इस अग्नि के द्वारा उत्पन्न स्वदेश भावना को आज बुराइयों में नहीं गिना जा सकता। यह विदेशी वस्त्र नहीं बल्कि विदेशियों को ही हम जला रहे हैं और उसके साथ ही साथ विदेशियों से मिलकर उत्पन्न हुई राजद्रोही भावना की भी आज हम सदा के लिए अन्त्येष्टि कर रहे हैं। उसी दिन तिलक और परांजय ने भी जोशीले भाषण दिए। इस होली ने भारतीय पत्रों में हल-चल मचा दी। एक मास तक समाचार-पत्रों में इस होली पर टीका-टिप्पणियां होती रहीं। इसको पढ़कर कालिज के अधिकारी भयभीत हो गए और उन्होंने आन्दोलन के उग्र नेता सावरकर को दस रुपये का दण्ड देकर चौबीस घण्टे में कालिज छोड़ने की आज्ञा दी। स्वदेशी आन्दोलन में भाग लेने के कारण सरकारी सहायता प्राप्त भारतीय संस्था से निकाले गये विद्यार्थियों में हमारे वीर विनायक सर्वप्रथम विद्यार्थी थे। महाराष्ट्र के सभी राष्ट्रीय-पत्रों ने कालेज के इन नपुंसक नीच अधिकारियों की घोर निन्दा की। तिलक जी का केसरी पत्र इस फार्ग्यूसन कालेज के अधिकारियों के विरुद्ध कई सप्ताह तक आग उगलता रहा। अनेक शहरों में इसी प्रकार विदेशी वस्त्रों की होली जलाई गई। अनेक नगरों और कस्बों में सभायें हुईं। जिनमें सावरकर की प्रशंसा के प्रस्ताव पास हुए। अर्थ दण्ड पूरा करने के लिए चन्दा किया गया। वह धनराशि बहुत अधिक थी, अतः सार्वजनिक व्यावसायिक निधि को दान दी गई। बम्बई विश्वविद्यालय ने इस घटना की ओर कोई ध्यान नहीं दिया। अतः वीर सावरकर को परीक्षा में बैठने की आज्ञा दे दी और वीर सावरकर कुछ ही सप्ताहों की तैयारी से परीक्षा में उत्तीर्ण हो गया। इस सफलता पर महाराष्ट्र के राष्ट्रीय नेताओं ने इन्हें बधाई दी। १९०५ ई० में सावरकर ने बी० ए० पास किया। परीक्षा पास कर संस्थाओं के संगठन में लग गए। अपने सङ्घ का नाम बदलकर "अभिनव भारत" कर दिया। ये एक गायक मण्डली साथ लेकर महाराष्ट्र के अनेक नगरों में प्रचारार्थ गये। भाषण और गीतों का जनता पर प्रभाव पड़ता था। इससे चिढ़कर सरकार ने गीतों की सब प्रतियां जब्त कर लीं। प्रचार यात्रा से लौटकर सावरकर जी वकालत पढ़ने बम्बई चले गये। उन्हीं दिनों जगद्गुरु महर्षि दयानन्द के प्रिय शिष्य श्याम जी कृष्ण वर्मा ने घोषणा की कि वह भारतीय विद्यार्थियों को विदेश के स्वतन्त्र वातावरण में राजनीति का अध्ययन करने के लिए छः छात्रवृतियां, एक सहस्र रुपया प्रति छात्रवृत्ति के लिए मासिक देंगे। वीर सावरकर ने छात्रवृत्ति प्राप्त करने के लिए प्रार्थना पत्र भेजा। लोकमान्य तिलक और श्रीयुत परांजय के प्रशंसा पत्रों से यह कार्य सहज में पूर्ण हो गया। क्योंकि इनके साथ श्याम

जी का पूर्व से ही सम्बन्ध था। विदेश जाने से पूर्व इनका विवाह जाहर राज्य के काश्मीरी (दीवान) श्री चिपलूणकर की बड़ी लड़की से हो गया। इससे इन्हें आर्थिक कठिनाई से भी कुछ छुटकारा मिला। इस समय पुलिस की इन पर क्रूर दृष्टि थी। इनकी गिरफ्तारी की सम्भावना थी किन्तु सरकार ने विदेश जाने के कारण इनको गिरफ्तार नहीं किया। ये भी श्याम जी की "शिवाजी छात्रवृत्ति" मिल जाने से विदेश जाने की तैयारी करने लगे। देश छोड़ने से पूर्व इन्होंने अपनी गुप्त सभा में स्पष्ट घोषणा की कि "अब तक में पूना में फार्ग्यूसन कालिज में महाराष्ट्र के चुने हुए युवकों में अपने विचार फैलाता रहा हूं, परन्तु अब मैं विदेश जाकर भारत भर के धनी और योग्य विद्यार्थियों में प्रचार करूंगा। वे लोग जब बैरिस्टर आदि बनकर भारत लौटेंगे तो देश भर में क्रांति मचा देंगे। मैं शत्रु के गढ़ में जाकर भारतीय शक्ति का लोहा दिखाऊंगा। मैं रूसी आतङ्कवादियों से बम्ब और पिस्तौल बनाना सीखूंगा। इस प्रकार भारतीय स्वतन्त्रता शीघ्र ही हस्तगत हो जायेगी। इन्होंने विदेश जाने से पूर्व बम्बई में भी "अभिनव भारत" संस्था की एक शाखा खोली। अनेक कालेजों के विद्यार्थी इस में सम्मिलित हुए। बिहारी नाम का मराठी भाषा का एक पत्र भी निकाला गया, इसका विकास भी सहस्रों की संख्या में होने लगा।

विदेश यात्रा

मई १९०६ में २२ वर्ष की आयु में सावरकर ने लन्दन की ओर प्रस्थान किया। नासिक की जनता ने इन्हें सार्वजनिक विदाई दी। नासिक के निवासियों ने दुःखित होकर कहा—"हम चाहते हैं कि आप शीघ्र ही लौटकर हमारे पास आकर रहें।" यह किसको पता था कि अण्डेमान की काल-कोठरी इस प्यारे वीर को बड़ी देर तक दर्शन न करने देगी। नासिक निवासियों से विदाई लेकर जहाज पर सवार हो गये। जहाज में जाते समय भी यह भारतीय विद्यार्थियों में अपने विचारों का प्रचार करते रहे। एक उत्तर भारत का विद्यार्थी समुद्रीय रोग के कारण घबरा गया। वह मार्ग से लौट जाना चाहता था, उसे प्रेम से समझाकर धैर्य दिया। वह उत्तर का प्रसिद्ध बैरिस्टर बना, उसमें देभभक्ति के भाव भरते रहे। इसी प्रकार अपने विचारों का प्रचार करते हुए लन्दन पहुंचे।

ब्रिटिश राज्य की राजधानी लन्दन

इंगलैण्ड पहुंचने पर श्याम जी कृष्ण वर्मा ने वीर सावरकर का स्वागत किया। पण्डित श्याम जी उन दिनों होमरूल आन्दोलन चला रहे थे। जिसको चलाने से राष्ट्रीय महासभा (कांग्रेस) के मुख्य नेता भी उस समय डरते थे। परन्तु सावरकर ने लन्दन पहुंचकर एक ही वर्ष में इस तेजी से वातावरण बदला कि होमरूल आन्दोलन भी एक नरम आन्दोलन प्रतीत होने लगा। वहां पर "फ्री इण्डिया" नाम की संस्था खोली गई। प्रति सप्ताह सभाएँ होती थीं। उसमें सावरकर का इटली, फ्रांस, अमेरिका आदि देशों की क्रांति पर ओजस्वी भाषण होता था। ये सभायें खुले रूप में होती थीं। इनमें प्रत्येक भारतीय सम्मिलित हो सकता था। जो युवक कुछ क्रियात्मक रूप से क्रान्ति में भाग लेने को उद्यत होते थे उनकी परीक्षा करके "अभिनव भारत" संस्था में उन्हें ले लिया जाता था। इस प्रकार कैम्ब्रिज आक्सफोर्ड, मानचेस्टर आदि शिक्षणालयों के भारतीय विद्यार्थी बड़ी शीघ्रता से क्रांतिकारी सिद्धान्तों के भक्त बना लिए गए। पण्डित श्याम जी कृष्ण वर्मा ने अपने पत्र "इण्डियन साईकॉलोजिस्ट बोम्ब" और रूस की गुप्त संस्थाओं पर एक लेख लिखकर बड़ी वीरता से

खुले रूप में क्रांतिकारी संस्था में सम्मिलित होने की घोषणा की। यह वीर महर्षि दयानन्द का सच्चा शिष्य था। इस वीर का वह दृढ़ विश्वास था कि हमारा राष्ट्र तब तक पूर्ण स्वतन्त्र नहीं हो सकता जब तक कि भारतीयों के पास ब्रिटिश सरकार से अथक लड़ाई के लिए प्रचुर मात्रा में शस्त्र नहीं आ जाते। यह वीर श्याम जी भारतीय नेताओं में से उस प्रथम श्रेणी के नेता थे जिन्होंने राज-नीतिक उद्देश्य पूर्ण स्वतन्त्रता से घोषित किया था। इस घोषणा के पश्चात् श्याम जी ने होमरूल आन्दोलन को बन्द कर दिया और श्याम जी लन्दन का इण्डिया हाउस अपने प्रिय शिष्य सावरकर को सौंपकर पैरिस चले गये। श्याम जी सावरकर से अपने पुत्र समान प्रेम करते थे। वीर सावरकर भी उनका पितृतुल्य अथवा गुरु के समान आदर करते थे। इण्डिया हाउस सावरकर के हाथ में आने के पश्चात् "अभिनव भारत" इस संस्था ने वे आश्चर्यजनक कार्य किये जिनका सम्पूर्ण इतिहास आज तक जनता के सम्मुख किसी ने प्रकट नहीं किया। उस समय की भारत की राजनीतिक परिस्थिति में वर्णन करना कठिन था। पीछे खोज का प्रयास होना चाहिए था उतना नहीं किया गया। उस समय इंगलैंड में शिक्षा पानेवाले अनुपम प्रगतिशील भारतीय विद्यार्थी अपना राजनीतिक जीवन इसी संस्था द्वारा चलाते थे। लाला हरदयाल जी आई. सी. एस. परीक्षा पास करने इङ्गलैण्ड गये थे। इसी इण्डिया हाउस के सम्पर्क से सरकारी विश्वविद्यालय से मिलने वाली छात्रवृत्ति का परित्याग किया और भार-तीय स्वतन्त्रता के लिए जीवन अर्पण करने की प्रतिज्ञा की। जब तक वे जीवित रहे अपने देशानुराग के अपराध में अपनी प्रिय मातृभूमि से निर्वासित रहे। अन्तिम समय तक अपने सम्बन्धियों का मुख तक न देख सके और न ही मातृभूमि के दर्शन कर सके। स्वातन्त्र्य प्रेम को अपने दिल के पहलू में दबाये दूर अमेरिका में प्राणविर्जन किये। अपने जीवन काल में उन्होंने कभी गदर पार्टी द्वारा, कभी अमे-रिका में भारतीय विद्यार्थियों में प्रचार कर तथा कभी जर्मनी और टर्की के उच्च अधिकारियों से मिल-कर अंग्रेजों के विरुद्ध भारतीयों को शस्त्र देने की प्रेरणा कर भारत की मुक्ति के लिए अथक परिश्रम किया। ये हरदयाल भी इसी संस्था के सदस्य थे अथवा यों कहिए कि ये भी श्याम जी के भारतीय भवन में ही ढाले गए थे। इनके अतिरिक्त सरोजनी नायडू के भाई मि० चट्टोपाध्याय जी जो अपनी इस बहन से संसार में कम विख्यात हैं परन्तु जिनका देश प्रेम, कष्ट सहन और त्याग अपनी बहन नायडू से कहीं बढ़कर है और जो अपनी गाढ़ देशभक्ति के कारण निर्वासित होकर रूस में अपने दिन काटते रहे। ये सावरकर के ही साथी थे। इसी प्रकार वी० वी० एस० आयंगर जिनका नाम देश के लिए कष्ट उठाने के कारण मद्रास के घर घर में श्रद्धा से लिया जाता है। ये भी वीर विनायक के साथ कन्धे से कन्धा मिलाकर कार्य करते रहे। इनके प्रयत्नों से "अभिनव भारत" भारतीय राजनीति में ऐसी शक्ति-शाली संस्था बन गई कि अंग्रेजी सरकार वर्षों तक इसे कुचलने में व्यस्त रही। एक दिन भारतीय भवन में एक सभा हो रही थी, नवयुवक कुछ करने के लिए उतावले हो रहे थे। धन इकट्ठा किया गया। एक मराठा युवक, एक बङ्गाली और एक मद्रासी ये तीनों बम बनाना सीखने के लिए सावरकर की प्रेरणा पर पैरिस गये। इससे पूर्व भी भारतीय क्रांतिकारियों ने बम बनाना सीखने का यत्न किया, किन्तु अब तक शारीरिक तथा आर्थिक हानि ही उठाई, सफलता नहीं मिली थी। रूसी प्रोफेसरों ने इस बार भी धोखा देकर बहुत सा धन ठग लिया। किन्तु अन्त में एक सच्चा व्यक्ति रूसी क्रांतिकारी जो निर्वासित था, जिसकी खोज में रूसी सरकार परेशान थी, मिल गया। इसने बम बनाने व प्रयोग का सहज उपाय इन भारतीय क्रांतिकारियों को सिखाया। उसने पचास पृष्ठ की एक पुस्तक दी जिसमें सब प्रकार के बम बनाने की विधियां लिखी थीं और इस सब के बदले उसने कुछ भी न

लिया। यही पुस्तक सावरकर और उसके साथियों ने "इण्डिया हाउस" में साईक्लो टाइप पर छापकर गुप्तरूप से वितरित की। आगे चलकर इसकी कापियां कलकत्ता इलाहाबाद लाहौर और नासिक तक में खोजकर निकाली गई। इस पुस्तक के छापने के साथ-साथ अभिनव भारत में बम बनाने की विधि भी सिखाई जाती थी। स्वयं वीर सावरकर यह शिक्षा दिया करते थे। वीर विनायक भारतीय विद्यार्थियों को फ्री इण्डिया सोसायटी के भवन में इतिहास, राजनीति और अर्थशास्त्र पर सार्वजनिक व्याख्यान भी देते थे। क्रांतिकारी अपने प्रथम बम का प्रयोग इङ्गलैण्ड में ही करना चाहते थे, ऐसा करने से सावरकर ने उन्हें रोक दिया। क्योंकि भारत तक यह कला पहुंचने से पूर्व ही सब कार्य बिगड़ जाता। कुछ शिक्षक इस बम बनाने की कला को सिखाने के लिए भारत भेजे गए। इन्हीं बमों का फिर भारत में अनेक स्थानों पर प्रयोग किया गया। इस प्रकार इस समय "भारतीय भवन" आश्चर्य-जनक कार्यों का केन्द्र बना हुआ था। प्रतिदिन सहस्रों पोस्टर और पम्पलेट छापे जाते थे, उन्हें भारत के विविध भागों में बांटने के लिए भेजा जाता था, इन सब कार्यों में सावरकर का हाथ सबसे अधिक रहता था। यह सब कार्य करते हुए वे समय निकालकर लिखते भी थे। अतः उन्होंने जोजफ मोजिनी की आत्मकथा का मराठी अनुवाद किया। यह कार्य तो चार मास में ही करके भारत भेज दिया। नासिक में यह पुस्तक छपी। जनता ने इसे बहुत अपनाया। इसके विषय ने अपना रिकार्ड स्थापित कर दिया। धर्मग्रंथों के समान इसका आदर हुआ। पालकी में रखकर इसकी कई स्थानों पर शोभा-यात्रा निकाली गई। विद्यार्थियों ने इसे बड़े चाव से पढ़ा। समाचार पत्रों ने इस पर अग्रलेख लिखे। इसी कारण सरकार को यह खटकी और पुस्तक जब्त कर ली गई। दूसरा ग्रंथ १८५७ का स्वातन्त्र्य समर था, यह ग्रंथ पुराने सरकारी कागजों के आधार पर लिखा जा रहा था। इसकी भारतीय भवन में सावरकर जी कथा भी करते थे। अभी यह लिखकर पूर्ण भी नहीं हुआ था कि सरकार की क्रूर दृष्टि इस पर पड़ी और यह पूर्ण होने और छपने से पूर्व जब्त कर ली गई। यह संसार का प्रथम ग्रंथ था जो पूर्ण होने और छपने से पूर्व ही जब्त कर लिया गया। कई अंग्रेजी पत्रों में इस घृणित कार्य की निन्दा की गई। यह ग्रंथ क्रांतिकारी ढङ्ग से ही गुप्त रूप से छापा गया और बड़े उपायों से इसकी सैकड़ों प्रतियां भारत में पहुंचाई गईं। घरों और होस्टलों में इस पुस्तक को दूसरी पुस्तकों में भारतीय लोग छिपाकर रखते थे। इसकी एक पुस्तक सिकन्दर हयातखां जो अभिनव भारत के सदस्य थे उनको भेजी गई। यह पुस्तक इतनी बढ़िया थी कि क्रांतिकारियों के कट्टर विरोधी वैलन्टाईन शिरोल तक ने इसकी मुक्तकण्ठ से प्रशंसा की थी। ऐतिहासिक खोज की दृष्टि से पुस्तक का बड़ा महत्त्व है। वीर सावरकर ने इस ग्रन्थ में यह सिद्ध किया था कि ५७ का युद्ध सिपाही विद्रोह नहीं किन्तु हमारा प्रथम स्वातन्त्र्य संग्राम था। इस पुस्तक की खोज में अनेकों उत्साही युवक रहते थे। यहां तक कि इसकी एक प्रति दक्षिण अमेरिका में १३० रुपये में बिकती हुई एक सिक्ख ने देखी थी। पुस्तक से प्राप्त धन सब सार्वजनिक कार्यों में व्यय किया जाता था। इस पुस्तक का छपने का इतिहास निम्न प्रकार से है।

जिस समय यह ग्रन्थ वीर सावरकर ने लिखा उनकी आयु केवल २३ वर्ष की थी। यह ग्रन्थ सावरकर जी ने इंगलैंड में श्याम जी के भारतीय भवन में ही लिखा था। मूल ग्रन्थ मराठी भाषा में लिखा गया। स्वर्गीय लोकमान्य तिलक जी ने "इतिहास छात्रवृत्ति" के लिए सावरकर के विषय में क्रान्तिकारियों के भीष्म स्व० पं० श्याम जी कृष्ण वर्मा को अनुरोध कर भारतीय राष्ट्र का सदा के लिये उपकार किया। इससे हर कोई सहमत होगा जो इस ग्रन्थ को पढ़ेगा। क्योंकि यदि श्याम जी

द्वारा दी हुई छात्रवृति वीर सावरकर को न मिलती तो वे न तो इंगलैंड जाकर "भारतीय भवन" में निवास करते, न उनका पं० श्याम जी से सम्बन्ध होता और फिर न ही यह ग्रन्थ लिखा जाता।

ग्रन्थ की छपाई में कठिनाई

यह ग्रन्थ मराठी भाषा में ही पूर्ण किया गया था। सावरकर जी इसका अनुवाद अंग्रेजी में करके 'फ्री इण्डिया सोसायटी' की साप्ताहिक बैठकों में अपने भाषाणों में सुनाया करते थे। खुफिया पुलिस ने इस ग्रन्थ के विषय में अपना मत सरकार को बताया कि यह ग्रन्थ राजद्रोही अत्यन्त विद्रोह जनक क्रान्तिकारी साहित्य है। थोड़े दिनों में मूल मराठी ग्रन्थ के दो अध्याय लुप्त हुए प्रतीत होने लगे। पीछे पता लगा कि खुफिया पुलिस ने अपने हस्तकों द्वारा उन्हें चुराकर स्काटलैंडयार्ड में पहुँचा दिया था। फिर क्रान्तिकारियों ने इस ग्रन्थ की पाण्डुलिपि बहुत ही चतुराई से सबकी दृष्टि बचाकर प्रकाशनार्थ भारत में सुरक्षित स्थान पर पहुँचा दी। किन्तु सरकार के भय के कारण महाराष्ट्र की बड़ी से बड़ी मुद्रण संस्थाओं ने इसे छापने का साहस नहीं किया। निदान "अभिनव भारत" के एक सदस्य ने अपने ही मुद्रणालय में छापने का बीड़ा उठाया किन्तु भारत की खुफिया पुलिस को ज्ञात होने से उसने महाराष्ट्र की सभी मुद्रण संस्थाओं पर एक ही समय में अकस्मात् छापा मारकर तलाशियां लीं गई किन्तु यह सूचना सौभाग्य से एक पुलिस अफसर द्वारा ही इस साहसी सदस्य को मिल गई और पुलिस के वहां पहुंचने से पूर्व ही पाण्डुलिपि परिस भेज दी गई, वहां से लेखक के पास लन्दन पहुँच गई। फिर जर्मनी में इसे छपवाने का यत्न किया गया, क्योंकि वहां संस्कृत साहित्य छपता था वहांका देवनागरी टाइप सर्वथा रद्दी था और जर्मनी कम्पोजाटरों का मराठीभाषा से सर्वथा अनभिज्ञ होने से और धन व समय पर्याप्त व्यय होने के कारण यह विचार छोड़ दिया गया। फिर आई० सी० एस० में और बैरिस्ट्री पढ़ने वाले विद्यार्थियों ने इसका अनुवाद अंग्रेजी में किया। ये विद्यार्थी अभिनव भारत के सदस्य थे। वहां की सी० आई० डी० के चौकन्न होने से यह पुस्तक इङ्गलेड में नहीं छप सकी। फिर पेरिस भेजी गई। फ्रांसीसी सरकार उस समय अंग्रजों की भीगी बिल्ली थी, अत: वहां भी यह नहीं छप सकी। यह फिर हालेंड में अंग्रेजों को स्वराज्य मिलने से पहले ही छप गई और फ्रांस भेज दी गई। सरकार न इसे छपने से पूर्व जब्त कर लिया था। वीर सावरकर ने इस विषय में समाचार पत्रों में अंग्रेजी सरकार की आलोचना की। अन्य पत्रकारों ने भी अंग्रेजी सरकार की खूब निन्दा की। क्रांतिकारियों ने इसकी सैंकड़ों पुस्तकें छिपाकर भारतवर्ष में सुरक्षित पहुंचा दी। इस पुस्तक के प्रथम संस्करण की सब प्रतियां "अभिनव भारत" ने बिना मूल्य ही वितरित कीं। भेजने का व्यय भी स्वयं किया। १९०९ में फ्रांस में प्रकट रूप से प्रकाशित की गई। योरुप फ्रांस, आयरलैड, रूस, जर्मनी, मिश्र और अमेरिका आदि देशों के क्रान्तिकारियों ने इस पुस्तक का अच्छा स्वागत किया। इस ग्रन्थ का दूसरा संस्करण श्री हरदयाल, श्रीमती कामा, चट्टोपाध्याय आदि अभिनव भारत के सदस्यों ने निकालने का निश्चय किया। उस समय वीर सावरकरादि अपने सैंकड़ों साथियों के साथ गिरफ्तार हो चुके थे। ला० हरदयाल ने अमेरिका में अपने "गदर" पत्र द्वारा इसका अनुवाद उर्दू पंजाबी तथा हिन्दी में क्रमश: प्रकाशित किया, जिससे सैनिकों और सिखों में जो केलिफोर्नियां में थे, बड़ा अच्छा प्रभाव पड़ा। १९१४ में ई० में भारतीय सेना में जो विद्रोह करने की तैयारी की जा रही थी उसमें इस ग्रन्थ ने प्रचार का बड़ा अच्छा कार्य किया। इस ग्रन्थ की पाण्डुलिपि मराठी भाषा की देवी कामा के पास पेरिस भेज दी गई। वीर सावरकर गिरफ्तार हो चुके थे। देवी कामा ने यह पाण्डुलिपि "जेबर-बैंक आ पेरिस" में सुरक्षित रख दी। किन्तु जर्मनी के आक्रमण से तथा श्रीमती कामा की मृत्यु से न

पेरिस बैंक ही रहा, न जेवर की ग्राहक देवी कामा। बहुत खोज करने पर भी कुछ पता न चला। और वह मराठी साहित्य ग्रन्थ नष्ट ही हो गया। सम्भव है इसके कहीं और भी संस्करण निकले हों, पता नहीं। १९२९ में हुतात्मा वीर भगतसिंह ने यह ग्रन्थ गुप्त रूप से प्रकाशित कराया, जिस पर सावरकर का नाम भी दिया था। भारत में कहीं-कहीं भगतसिंह द्वारा प्रकाशित कापियां मिली हैं। १९४२ में पूज्य वीर नेता सुभाषचन्द्र जी ने ज्वालामुखी नाम से इसका प्रथम भाग प्रकाशित किया। नेता जी ने ग्रन्थ का पूर्ण लाभ उठाया और "चलो दिल्ली" का अमर नारा इसी ग्रन्थ ने लिया गया। १९४६ में प्रांतीय शासन सूत्र कांग्रेसियों ने सम्भाला तो बम्बई के नवयुवकों ने गुप्तरूप से इस ग्रन्थ का अंग्रेजी संस्करण पुनः मुद्रित किया और मंत्री मण्डल को चेतावनी दी कि हम जेल में जाने का जोखम उठाकर भी इस ग्रन्थ का विक्रय करेंगे। उसी समय बम्बई मंत्री मण्डल ने सावरकर साहित्य की जब्ती रद्द करने की घोषणा की और इस प्रकार ३८ वर्षों का अन्याय दूर हो गया। सारा भारत बम्बई मंत्रिमण्डल को धन्यवाद देता रहेगा। यह ग्रन्थ इतना उत्तम है जिस समय भारतीय स्वाधीनतार्थ 'अभिनव भारत' से सशस्त्र क्रांति का प्रारम्भ किया था, तब से नेता जी सुभाषचन्द्र बोस की आजाद हिंद सेना की चढ़ाई तक सबको प्रेरणा देने वाला यह अनमोल ग्रन्थ क्रान्तिकारियों का 'ग्रन्थ साहब' बन गया और आगामी क्रान्तिकारियों का प्रकाशस्तम्भ बना रहेगा। मेजिनी के चरित्र द्वारा सावरकर भारतीयों को योरुपीय युद्ध का पाठ पढ़ाना चाहते थे और सन् १८५७ के स्वातन्त्र्य-समर के इतिहास द्वारा विषम परिस्थितियों में क्रान्ति करना सिखाना चाहते थे। वह कार्य इन दोनों ग्रन्थों ने कर दिखाया। भारत के सभी क्रांन्तिकारियों ने वीर सावरकर के इन दोनों ग्रन्थों से भारत को स्वतन्त्र करने तक पूर्ण लाभ उठाया। १९०७ में अंग्रेज लोग सन् १८५७ की क्रांन्ति को जीतने की प्रसन्नता में अर्द्ध शताब्दी उत्सव मना रहे थे। इसका विरोध करने के लिए वीर सावरकर ने 'इण्डिया हाउस' में स्वतन्त्रता दिवस बड़ी धूम-धाम से मनाया, प्रतिज्ञायें कीं, उपवास रखे गये। ब्रिटिश राज्य की राजधानी में ब्रिटिशसत्ता के विरोधी नाना साहब, तांत्या टोपे, लक्ष्मीबाई, और कुंवर सिंह को 'हुतात्मा' के रूप में पूजना वीर सावरकर का असाधारण साहस था। शहीदों की स्मृति में हजारों पर्चे भारत और इङ्गलैंड में वितरित किये गये। उस दिन भारतीय विद्यार्थी ऑक्सफोर्ड और कैम्ब्रिज के कालिजों में अपनी छातियों पर "१८५७ के वीरों की जय" के बिल्ले लगाकर गये। अंग्रेज प्रोफेसर आपे से बाहर होकर बिल्लों पर टूट पड़े और बोले "वे हुतात्मा न थे, हत्यारे थे"। भारतीय विद्यार्थियों को क्षमा मांगने के लिए कहा। क्षमा न मांगने पर वे सब एक साथ कालिजों से बाहर हो गये। कुछ की छात्रवृत्तियां छीन ली गईं और कुछ ने अपनी इच्छा से त्याग दीं। कुछ एक के पिताओं ने वापिस बुला लिया। इस घटना से इङ्गलिश व भारत सरकार दोनों ही चिन्तित हो गईं। इङ्गलैंड के पत्रों ने भारतीय विद्यार्थियों के विरुद्ध नियमित आन्दोलन आरम्भ कर दिया। सभी इङ्गलिश पत्रों ने इण्डिया हाउस, अभिनव भारत की गुप्त सभायें, स्वतन्त्रता दिवस, क्रांतिकारी साहित्य और आतंकवादीता पर लम्बे-लम्बे लेख लिखकर सावरकर पर खुले रूप में आक्रमण किया। इस पत्रों की घृणात्मक चाल से बचने के लिए सावरकर ने आयरलैंड, सिनफिन और दूसरे क्रान्तिकारियों से सम्बन्ध स्थापित किया। अमेरिका के 'गैरिकअमेरिकन' आदि क्रान्तिकारी पत्रों में लेख लिखे। ये लेख बम्बई के 'बिहारी' और कलकत्ते के 'युगान्तर' पत्र में भी छपते थे। संसार के ब्रिटिश विरोधी समग्र राष्ट्रों को एक शृंखला में पिरोने के लिये, मिश्र, चीन, टर्की और आयरलेंड की क्रान्तिकारी संस्थाओं से अपनी संस्था का सम्बन्ध जोड़ा। ब्रिटेन द्वारा भारत के विरुद्ध किये जा रहे मिथ्या प्रचार का

खंडन करने के लिए सावरकर ने जर्मन, फ्रांच, आयरिश, चीनी और रूसी पत्रों में लेख छपवाये । वीर
सावरकर की अभिनव भारत संस्था ने १९०६ से १९१० तक अल्पकाल में योरुप में जो आश्चर्यजनक
कार्य किये उसी के कारण योरुपीय लोगों का ध्यान भारतीय राजनीति की ओर सर्वप्रथम हुआ।
पं. श्याम जी, ला. हरदयाल आदि अनेक देशभक्त फ्रांस, जर्मनी, अमेरिका आदि देशों में पूर्ण उत्साह के
साथ कार्य कर रहे थे । इन देशभक्तों के घोर परिश्रम का ही यह फल था कि १९१४ के महायुद्ध में
भारतीय स्वाधीनता इतना प्रमुख विषय बना कि जर्मनी के राजा कैंसर ने प्रैजिडैंटी विल्सन की मांगों
के उत्तर में जो प्रसिद्ध पत्र लिखा उसमें विश्वशांति के लिए भारत को स्वतंत्र करना आवश्यक शर्त
रखी गई थी । अभिनव भारत के कार्यों से घबराकर ब्रिटिश सरकार ने इसे कुचलने का निश्चय
किया । इङ्गलैंड में "स्काट लैंड यार्ड" भारतीय विद्यार्थियों का पीछा करने लगा और भारत में
साधारण सी० आई० डी० से लेकर गवर्नर तक दमन करने में जुट गये । इसके होते हुए भी मैडम कामा
की अध्यक्षता में "बन्दे मातरम्" पत्र "अभिनव भारत" द्वारा निकलता रहा और इस द्वारा स्कूल,
कालिजों, क्लबों यहां तक कि फौजी छावनियों में भी प्रचार होता रहा । पंजाबियों विशेषतया सिक्खों
में राष्ट्रीय भाव भरने के लिए पंजाब की छावनियों में गुरुमुखी में लिखे सहस्रों पर्चे बाँटे गये । लन्दन
में गुरु गोबिंदसिंह का जन्म बड़े समारोह से मनाया गया । उसमें सावरकर, ला० लाजपतराय, विपिन
चन्द्रपाल आदि हिन्दू नेताओं ने भाषण दिए । उस दिन "खालसा" नाम से एक पर्चा बांटा गया, यह
जब्त कर लिया गया । यह भारत के स्कूल कालिजों और विशेष रूप से पंजाब में भेजा गया।
इसका बड़ा प्रभाव पड़ा । वीर सावरकर ने मराठी भाषा में "सिक्खों का इतिहास" (महाराष्ट्र में
सिक्ख इतिहास के प्राचारार्थ) लिखा । यह भारत भेजा जा रहा था । सरकार ने मार्ग में ही निकाल
लिया । सावरकर ने जो भी ग्रन्थ लिखा उसी का गला सरकार ने जब्त कर घोट दिया। १९१४ में
पंजाब में जो क्रान्ति उत्पन्न की उसमें "अभिनव भारत" द्वारा किये गये आन्दोलन का पर्याप्त भाग
था । वैसे विशेष पुरुषार्थ ला० हरदयाल जी तथा रासबिहारी और करतारसिंह का था । "अभिनव
भारत" को समाप्त करने के लिए सरकार की दमन नीति की चक्की जोर से चलने लगी । ग्वालियर
में 'अभिनव भारत' के दर्जनों सदस्य पकड़े गये, उनके पास शस्त्र पाए गये । उन्हें लम्बी-लम्बी सजायें
दी गईं । लोकमान्य तिलक और परांजय भी पकड़े गये । इससे आन्दोलन दबने की अपेक्षा भड़क
उठा । बम्बई और नासिक में भयंकर लूट-मार हुई । इसके अपराध में बड़े भाई गणेश सावरकर को
दंगइयों का नेता कहकर छः मास का कठोर कारावास दिया गया । ब्रिटिश विरोथी आन्दोलन ने और
भी जोर पकड़ा ।

वीर गणेश सावरकर

सावरकर के बड़े भाई गणेश जी भारत के ही क्रान्तिकारियों के दल का संगठन कराते थे ।
१९०८ में गणेश सावरकर ने "लघु अभिनव भारत मेला" नाम के कुछ देश भक्तिपूर्ण भड़काने वाली
कवितायें प्रकाशित की थीं । इन कविताओं के कारण गणेश सावरकर को १२१ धारा के अनुसार
अर्थात् सरकार के विरुद्ध युद्ध छेड़ने के अपराध में आजीवन कालापानी का दण्ड दिया गया । कविताओं
के लिए कालापानी यही ब्रिटिश सरकार का न्याय था । बम्बई हाईकोर्ट के मराठा भाषी जज ने कहा
कि "लेखक का प्रधान उद्देश्य हिन्दुओं के कुछ देवताओं तथा वीरों का जैसे शिवाजी आदि का नाम
लेकर वर्तमान सरकार के विरुद्ध युद्ध घोषणा करना है । ये नाम तो सिर्फ बहाने हैं । लेखक का

कहना केवल इतना है कि शस्त्र उठाकर इस सरकार का विध्वंस करो, क्योंकि यह विदेशी तथा अत्याचारी है। गणेश सावरकर को ९ जून १९०९ के दिन आजीवन कारावास की सजा सुनादी गई और तार द्वारा इसकी सूचना लन्दन भेज दी गई। कहा जाता है इसके पश्चात् विनायक सावरकर ने लन्दन में भारतीय भवन की बैठक में बहुत तेजी से बोलते हुए कहा कि इसका बदला लिया जायेगा। पहली जुलाई को ही ठीक इसके पश्चात् सावरकर की प्रेरणा पर मदनलाल धींगड़ा ने कर्जन बायली को गोली से उड़ा दिया। रोलट साहब ने भी सन्देह प्रकट किया है। गणेश सावरकर पर मुकद्दमा करने वाले एक अंग्रेज मिस्टर जैकसन थे। जब गणेश सावरकर को सेशन सुपुर्द किया तो दल ने निश्चय किया कि मि० जैकसन की हत्या की जाय। तदनुसार औरंगाबाद के एक सदस्य ने २१ दिसम्बर १९०९ को मि० जैकसन को गोली मार दी। महाराष्ट्र में यह दूसरे अंग्रेज की हत्या थी। यह हत्या उन्हीं पिस्तौलों में से एक पिस्तौल से की गई थी जो लन्दन से आई थी। १९०९ फरवरी मास में विनायक सावरकर को २० ब्राउनिंग पिस्तौलें मय कारतूस मिली थीं। ये पेरिस से आई थीं। चतुर्भुज अमीन नाम का भारतीय भवन में एक रसोईया था। वह जब भारत लौटकर आ रहा था तो इसके सन्दूक में एक झूठा पैंदा लगाकर ये सब पिस्तौलें भारत भेजी गई थीं। जब गणेश सावरकर गिरफ्तार हुए तो गिरफ्तार होने से पूर्व ही वे अपने एक मित्र को बता गये थे कि इस प्रकार जहाज में २० पिस्तौलें आ रही हैं। गणेश के पकड़े जाने के पश्चात् उस मित्र ने यह सब सामान ले लिया था। इस प्रकार गणेश सावरकर का बदला लिया गया। उस समय आधा दर्जन भारतीयों को "कालेपानी" के कारावास का दण्ड दिया गया। उनमें से गणेश सावरकर एक था। यह सख्त दण्ड सावरकर दल को भयभीत करके समाप्त करने के लिए दिया गया था। किन्तु ये लोग पहले की अपेक्षा भी और अधिक उत्साह से कार्य करने लगे।

इन्हीं दिनों सावरकर ने बैरिस्टरी की अंतिम परीक्षा उत्तीर्ण कर जब प्रमाणपत्र देने का समय आया तो लार्ड मारले और कुछ इण्डियन्स ने सावरकर पर राजद्रोह का अभियोग चलाया। भारत सरकार ने भी सहायता की। सावरकर ने इन सब आक्षेपों का उत्तर दिया। न्यायालयों ने निर्णय दिया कि प्रमाण पत्र तो दे दिया जाये किन्तु आगे को राजद्रोह न करने की प्रतिज्ञा इनसे करा ली जाये। सावरकर ने उत्तर दिया "यह भी नहीं हो सकता क्योंकि यदि मैं कभी राजद्रोह करूं तो सरकार मुझ पर अभियोग चला कर दण्ड दे सकती है, फिर आश्वासन देने की आवश्यकता ही क्या है। इन्हें उस समय प्रमाणपत्र नहीं दिया गया। इनका प्रमाणपत्र जब्त कर लिया गया। बैरिस्टरी समान पद पर इस प्रकार लात मारने वाले पहले बैरिस्टर वीर सावरकर ही हैं।

मदनलाल धींगड़ा ने जब कर्जन वायली को गोली से मार दिया तो उसकी सार्वजनिक रूप से निन्दा करने के लिए लन्दन में एक बड़ी सभा की गई, जब निन्दा का प्रस्ताव पास किया जाने लगा तो सम्मति लेने के समय साहस पूर्वक वीर सावरकर ने इसका विरोध किया। इस पर एक यूरेशियन ने उनकी नाक पर घूंसा मारा। तब उसी समय एक भारतीय युवक ने उस यूरेशियन के सिर पर लाठी मारी, जिससे उसका सिर फट गया और वह गिर पड़ा। सभा में भगदड़ मच गई, उस समय सावरकर जी पकड़ लिए गये किन्तु उनको कुछ घण्टे के पश्चात् छोड़ दिया गया। सावरकर ने उस यूरेशियन पर भी अभियोग चलाने से इन्कार कर दिया। दूसरे दिन इसका स्पष्टीकरण करते हुए 'लन्दन टाइम्स" में कहा "अदालत के निर्णय से पूर्व किसी को हत्याकारी कहना अदालत का अपमान करना है।" अब लन्दन में पुलिस भारतीय विद्यार्थियों के पीछे छाया के समान रहने लगी। सावरकर

की आज्ञा से लन्दन के स्काटलैंडयार्ड की खुफिया पुलिस को भारतीय युवकों ने खूब तंग किया। सावरकर की प्रेरणा से कुछ युवक लन्दन की खुफिया पुलिस को उतने ही समाचार देते थे जितने सावरकर जी देने को कहते थे। कभी-कभी तो पुलिस को धोखे में डालने योग्य समाचार भी दिए जाते थे। ये युवक अपना मासिक वेतन अभिनव भारत संस्था में जमा करा देते थे। ऐसे ही एक युवक मद्रासी सज्जन थे। कुछ समय पश्चात् उनके इस रहस्य का पता सरकार को चल गया। वारण्ट निकले, किन्तु उन्हें पता चलते ही वे लन्दन छोड़कर पैरिस चले गये। इधर पुलिस की सरगर्मियों के कारण इङ्गलैंड के भारतीय विद्यार्थियों की दशा बहुत बुरी हो रही थी। उन्हें रहने के लिए कोई स्थान नहीं देता था, होटल और रैस्टोरेंट में उन्हें घुसने नहीं दिया जाता था और बातचीत करते हुए भी लोग इनसे डरते थे। खुफिया पुलिस का जाल इस प्रकार बिछा दिया गया कि अब "भारतीय भवन" में गुप्त सभायें करना असम्भव हो गया। अन्ततः इण्डिया हाउस बन्द कर दिया। प्रत्येक भारतीय युवक का घर ही "इण्डिया हाउस" बन गया। सब लोग प्रतिदिन रात को एक स्थान पर इकट्ठे होते और अपनी राजनीतिक प्रतिज्ञाओं को दोहराते थे। वे जोर-जोर से कहते थे "भारत स्वतन्त्र होकर रहेगा" भारत अवश्य एक स्वतन्त्र राष्ट्र बनेगा। भारत में एक भाषा और एक लिपि होगी। लिपि देवनागरी और भाषा हिन्दी होगी। राजा वा राष्ट्रपति जनता द्वारा निर्वाचित होगा। इससे स्पष्ट है कि क्रांतिकारी केवल ध्वंसात्मक कार्य ही नहीं करते थे किन्तु वे भारत के भावी शासन विधान की रूपरेखा भी बना रहे थे।

जब लन्दन में भारतीय विद्यार्थियों को कष्ट दिया जा रहा था उस समय भारत सरकार सावरकर के सम्बन्धियों और मित्रों पर भयङ्कर अत्याचार कर रही थी। उनके श्वसुर जो जाहर राज्य के दीवान थे, अपने पद से हटा दिए गए। उनके मित्रों की नौकरियां छीन ली गईं, सम्पत्ति जब्त कर ली गई। कितनों के धन्धे डूब गये। सावरकर से बातचीत करते हुए भी लोग डरते थे। इन्हें रहने को मकान नहीं मिलता था। होटल वाले भी अपने यहां इन्हें नहीं ठहरने देते थे। इन सब कष्टों के होते हुए भी सावरकर ने 'तलवार' नामक एक पत्र निकाला। इस पत्र द्वारा सशस्त्र क्रांति का प्रचार करते थे, फिर यह पत्र वीरेन्द्र चट्टोपाध्याय को सौंप दिया। सावरकर जी रोग के कारण वेल्स के एक आरोग्य भवन में ठहरे हुए थे। मित्रों ने खूब सेवा शुश्रूषा की। एक सम्पादक ने उन्हें तार दिखलाया कि गणेश सावरकर की सजा अपील में भी कायम रही। अनन्त कान्हेरे नाम के एक युवक ने नासिक के कलेक्टर मि० जैक्सन को गोली से मार डाला। इसके दूसरे दिन ही इङ्गलैण्ड के समाचार पत्रों ने प्रचार आरम्भ कर दिया कि इन सब अत्याचारों में सावरकर का हाथ है। अब सब मित्रों ने सावरकर से इङ्गलैण्ड छोड़कर पैरिस चले जाने का आग्रह किया। वीर सावरकर पैरिस पहुंचकर कामादेवी के पास रहने लगे। श्रीमती कामा ने इनकी सेवा शुश्रूषा करके इनको शीघ्र ही रोगमुक्त कर दिया। श्रीमती कामादेवी जी "वन्दे मातरम्" नाम का एक पत्र निकालती थी। यहां सावरकर जी तथा ला० हरदयाल दोनों मिलकर योजना बनाया करते थे। ब्रिटिश सरकार के गुप्तचर पैरिस में भी सावरकर पर कड़ी दृष्टि रखते थे। मि० जैक्सन की हत्या का मुकद्दमा समाप्त हो गया। पुलिस इस सम्बन्ध में सावरकर जी पर अभियोग चलाना चाहती थी किन्तु वह इस बात को गुप्त रखे हुए थी। भारतीय पुलिस इन्हें गिरफ्तार करने के लिए चुपचाप लन्दन पहुंच गई। इस बात का सावरकर को पता नहीं चला। इधर सावरकर अनन्त कान्हेरे के

मुकद्दमे में इस बात को सतर्कता से देख रहे थे कि मुकद्दमे में कहीं उनका नाम आता है या नहीं। मुकद्दमे की समाप्ति पर जब इन्हें यह विश्वास होगया कि मुकद्दमे में उनका नाम नहीं आया तो उन्होंने लन्दन में जाकर अधिक कार्य करने का निश्चय किया। पण्डित श्याम जी ने इनको समझाया कि "आप इस समय क्रांतिकारियों के सेनापति हो, बचकर कार्य संचालन करो। व्यर्थ जेल में पड़कर सड़ने वा फांसी पर चढ़ने से सब कार्य समाप्त हो जायेगा।" किन्तु वीर विनायक सोचते रहते थे "क्या यह मनुष्यता है कि मेरे साथी जो मेरे ही कारण इस मार्ग में आये हैं उन्हें आज आग में धकेल कर स्वयं इस फ्रांस की सुन्दर राजधानी में मौज करूँ। मैं कैसा सेनापति ? जब सारे साथी कष्टों में पड़े हैं, मेरी कराई प्रतिज्ञाओं के कारण बेड़ियां हथकड़ियां पहने भूखे प्यासे कारावास की अन्धेरी कोठड़ी में पड़े सड़ रहे हैं और मैं नदी तट पर आनन्द से घूम रहा हूं। यदि मैं भारत नहीं जा सकता तो इङ्गलैण्ड अवश्य जाऊँगा। मुझे वे सब कष्ट सहने होंगे जो मेरे साथी सह रहे हैं। मुझे संसार को बताना होगा कि मैं केवल त्याग ही नहीं कर सकता बल्कि विपत्तियां भी सहन कर सकता हूं। यदि मैं पकड़ा गया और मेरे प्राण भी चले गए तो मुझे अत्यन्त प्रसन्नता होगी। इस पुण्य भूमि के लिए मृत्यु आने तक कार्य करते रहने की मेरी प्रतिज्ञा पूर्ण हो जायेगी।" इन विचारों के वशीभूत हो वे पैरिस से साथियों के रोकने पर भी लन्दन को चल दिए। पैरिस के सभी साथी इन्हें पहुंचाने आये। विदा होते समय सावरकर जी बोले—"अब तक मैंने शक्तिभर कार्य किया है। किन्तु अब शक्तिभर कष्ट सहने जा रहा हूं। देश की वर्तमान परिस्थितियों में कष्ट सहना केवल कार्य करने से अधिक श्रेयस्कर है।" पैरिस से इङ्गलैण्ड जाने वाले जहाज पर सवार हो गए। जहाज इंगलैंड पहुंचा, सावरकर लन्दन जाने वाली रेलगाड़ी पर सवार हो गये।

लन्दन में गिरफ्तारी

जिस डिब्बे में सावरकर सवार हुए उसमें सशस्त्र गुप्त पुलिस का पहरा था। लन्दन के विक्टो-
रिया स्टेशन पर गाड़ी के पहुंचते ही सावरकर के डिब्बे को सशस्त्र पुलिस ने घेर लिया और
गिरफ्तार कर लिया। उनको इंगलैण्ड की ब्रिटिश जेल में रखा गया। इस जेल में वे एक बार मदन-
लाल धींगड़ा से भी मिलने आये थे। १३ मार्च १९१० को ये गिरफ्तार किये गये थे। अगले दिन
संसार के समस्त समाचार पत्रों में इनकी गिरफ्तारी का समाचार प्रकाशित हुआ। मुकद्दमा वहां की
अदालत में पेश हुआ। न्यायालय पहले से ही दर्शकों की भीड़ से भरा हुआ था। ज्यों ही सावरकर
कठघरे में घुसे सैकड़ों लोगों ने करतल ध्वनि से इनका स्वागत किया। भारतीय दण्ड विधान की १२१
धारा का अभियोग इन पर लगाया गया। फिर ये जेल भेज दिए गए। इनके मित्रों ने इन्हें छुड़ाने
के षड्यन्त्र भी किए किन्तु वे असफल रहे। अभियोग का निर्णय न्यायालय ने यह दिया कि इन्हें
भारत भेजा जाए। प्रीवीकोंसिल में अपील की किन्तु वहां से भी भारत भेजने का निर्णय हुआ।
भारत भेजने का अर्थ था कालापानी या फांसी। इस प्रकार अपनी मृत्यु निकट समझकर सम्बन्धियों
से मिलने की भी आशा न होने पर अपनी भावज के नाम मृत्यु पत्र लिखा जिसका सारांश यह था—
"हमने भारत माता को दासता से मुक्त कराने का व्रत लिया था। आज हमारा सारा परिवार उसी
के लिए अपने सर्वस्व की आहुति दे रहा है। आज हमारी प्रतिज्ञायें पूर्ण हुईं। अपनी मां को बन्धन
मुक्त कराने के लिए प्रज्वलित अग्निकाण्ड में अपना स्वार्थ जलाकर आज हम कृतार्थ होगए हैं। मेरी
मातृभूमि ! तेरे चरणों पर मैं अपना यौवन, देह, भोग, गृह, धन, कान्ता, ज्येष्ठ भ्राता सभी को चढ़ा

चुका हूं। अब मैं अपना देह भी चढ़ाने के लिए प्रस्तुत हूं। यही क्या, यदि हम सात भाई भी होते तो भी तेरी बलिवेदी पर मैं उन्हें चढ़ा देता। जो मातृभक्ति में लगे हुए हैं वे धन्य हैं। हमारा कुल भी उन्हीं में से एक है। प्यारी भावज! इस प्रकार विचार कर अपने व्रत का पालन कीजिए और अपने कुल की दिव्यता का वर्धन कीजिए। प्यारी भावज! तुम्हारा सारा व्यवहार वीरांगना की भांति होना चाहिए। देवी! यहां से मेरा तुम्हारे लिए यही सन्देश है। मैं तेरा बालक तेरे वत्सल चरणों को यहीं से प्रणाम करता हूं। मेरा प्रेमपूर्वक प्रणाम स्वीकार करो।" किस प्रकार सरकार सावरकर दल को कुचल रही थी इसका थोड़ासा वृत्त लिखता हूं।

नासिक तथा ग्वालियर का षड्यन्त्र

सावरकर बन्धु गणेश सावरकर के नेतृत्व में महाराष्ट्र का क्रांतिकारी आन्दोलन चल रहा था। उनको आजीवन कारावास का दण्ड मिलने पर मि० जैक्सन की हत्या हुई। इस हत्या के अपराध में सात व्यक्तियों पर अभियोग चलाया गया। जिनमें तीन को फांसी दे दी गई। ये सब चितपावन ब्राह्मण थे। नासिक में एक षड्यन्त्र चला, जिसमें ३८ व्यक्तियों पर केस चलाया। उसमें २७ आदमी दोषी ठहराये गए, उनको सजा मिली। पहले जिस संस्था का नाम मित्र मेला था वही "अभिनव भारत" संस्था बन गई। नासिक षड्यन्त्र के सब अभियुक्त सारे महाराष्ट्र में दूर-दूर से लाये गए थे, ये सब ही चितपावन ब्राह्मण थे। यह षड्यन्त्र सुदूर देश तक फैला हुआ था। ग्वालियर में भी दो षड्यन्त्र चले, एक में २२ व्यक्ति तथा दूसरे में १९ व्यक्ति फंस गये थे।

वायसराय पर बम

१९०९ में लार्ड मिन्टो और लेडीमिन्टो जब अहमदाबाद में आई थीं तो इनकी गाड़ी पर भीड़ से किसी ने बम फेंका था, वह बम फूटा नहीं। जब वहां खोज की गई कि क्या गिरा, तब एक व्यक्ति ने उसे उठाया तो उसका हाथ उड़ गया। यही लार्ड मिन्टो थोड़े दिनों के पश्चात् अण्डमान का निरीक्षण करते हुए एक पठान कैदी की छुरी से मारा गया था।

सतारा षड्यन्त्र

सन् १९१० में सतारा में एक षड्यन्त्र का पता चला। यहां तीन ब्राह्मण युवकों को जो "अभिनव भारत समिति" के सदस्य थे, बादशाह के विरुद्ध षड्यन्त्र का दोष लगाकर दण्ड दिया गया। इस प्रकार क्रांतिकारी आन्दोलन के प्रारम्भिक युग में दो षड्यन्त्र दल थे। १. चाफेकर बन्धु का दल। २. सावरकर बन्धु का दल। दोनों दलों में धार्मिक भावनाओं का बहुत ही महत्त्वपूर्ण संगठन किया गया। धर्म के नाम पर इन दलों ने सच्चा बलिदान किया। ये दल देश-सेवा को धर्म समझते थे। चाफेकर बन्धु ने तो प्रारम्भ से अपनी संस्था का नाम "हिन्दू धर्म बाधा निवारणी" रखा था। धर्म और राजनीति यथार्थ में पृथक् नही हैं। राजनीति धर्म का एक अङ्ग है। धर्म के बिना राजनीति अन्धी होती है।

समुद्र तरण

श्री सावरकर १९१० ई० में २६ वर्ष की आयु में बैरिस्टर के स्थान पर कैदी का वेश धारण कर मातृभूमि के अन्तिम दर्शनार्थ चल पड़े। भारतीय पुलिस और स्काटलैंडयार्ड के चुने हुए अधिकारियों

@VaidicPustakalay

का बड़ा सख्त पहरा था। उन्हें सावरकर को कैदी बनाने का बड़ा हर्ष था। उन दिनों भारत जाने के लिए इङ्गलिश खाड़ी को पार कर फ्रांस उतरकर रेल द्वारा इटली और फिर वहां से जहाज पर सवार हो भारत आते थे। किन्तु अंग्रेज सरकार इन्हें फ्रांसवाले मार्ग से न ले जाना चाहती थी, क्योंकि उन्हें ज्ञात होगया था कि सावरकर के फ्रांस की भूमि पर घुसते ही पं० श्याम जी कृष्ण वर्मा अंग्रेजी पुलिस पर सावरकर को बलपूर्वक कैद करने का दावा फ्रेंच न्यायालय पर चलायेंगे। अतः इस मार्ग को छोड़कर बिस्के की खाड़ी से ले जाने का निश्चय था। अंग्रेजी पुलिस सावरकर को पकड़ने की चतुराई के कारण बड़े अभिमान में थी। सावरकर भी मन में स्वतन्त्र होकर भागने का विचार कर रहे थे। जहाज को दूसरे मार्ग से जाना था किन्तु न जाने वह कैसे मार्सेल्ज (फ्रांस) होकर ही जाने लगा। सावरकर इस प्रतीक्षा में थे कि सम्भव है कि कुछ भारतीय वीर मेरी मुक्ति के लिए यहां आए हों। जहाज ने मार्सेल्ज में लङ्गर डाला, दूर तक वहां कोई सहायक दिखाई न दिया। अब स्वयं ही कुछ करने की सोच रहे थे, किन्तु पुलिस का पहरा पहले से भी सख्त था। शौच, स्नान के समय भी वह अड़कर खड़ी हो जाता थी। सामने लगे हुए दर्पण पर इनका प्रतिबिम्ब देख इनकी प्रत्येक चेष्टा पर ध्यान रखती थी। सावरकर की सारी रात इसी उधेड़बुन में बीती, प्रातःकाल हुआ और जहाज के चलने का समय हुआ। सावरकर ने निश्चय किया अभी कुछ हो सकता है। "अभी वा कभी नहीं।" वे अपनी कोठड़ी में घुसे। कोठड़ी के ऊपर एक छोटी-सी खिड़की (पोर्ट होल) कुछ खुली हुई थी। शीघ्रता से अपना गाउन उतारकर दरवाजे पर डाल दिया। सिपाही जो पहरे पर था उसका अन्दर का दृश्य दीखना बन्द हो गया। अभी सिपाही संभल भी न पाया था कि वे कूदकर खिड़की तक जा पहुंचे, सिपाही बोला "क्या करता है ? क्या करता है ?" द्वार बन्द था। उसने शोर मचाया, द्वार तो क्रोध में सिपाही ने तोड़ दिया किन्तु इस समय में वीर सावरकर शीघ्र ही खिड़की में घुसकर सिपाही के अन्दर आने से पूर्व बाहर निकलकर धड़ाम से समुद्र में कूद पड़ा। निशाना साधकर गोलियां चलाई गईं किन्तु वे डुबकी लगाकर निशाना बचाते हुए लहरों पर उछलते हुये आगे ही बढ़ते गये। और सिपाही खिड़की के पास आये पर किसी व्यक्ति का समुद्र में कूदकर पकड़ने का साहस नहीं हुआ। वे दौड़ और जहाज के कप्तान के पास गये। डाबिज पुल फैंका गया, सिपाही और अधिकारी उस पर दौड़ने लगे। इसी बीच में सावरकर किनारे लग गये, तट पर दीवार बड़ी ऊँची थी। "अभिनव भारत" में ऊँची दीवार पर चढ़ने का अभ्यास किया था, वह काम आया। दीवार पर चढ़कर ये फ्रांस की भूमि में पहुंचे। वहां की स्वतन्त्र भूमि में लम्बे-लम्बे श्वास लिए किन्तु इन्हें पकड़ने के लिए पीछे "चोर है" "पकड़ो" कहता हुआ अधिकारियों और सिपाहियों का बड़ा भुण्ड आ रहा था। ये भी उन्हें देखकर बचने के लिए भागे, उस समय ये थके हुए थे। एक मील तक दौड़ लगाई, पुलिस भी पीछे भाग रही थी। इन्हें भागते हुए कोई अपना सहायक नजर नहीं आया, पास से ट्राम गाड़ियां बड़ी तेजी से भाग रही थीं। पास में एक पैसा भी न था। यदि इस समय इनके पास तीन चार पैसे होते तो गाड़ी में बैठकर बच निकलते, किन्तु कैदी के पास पैसे कहां से आते। ये भागते-भागते एक फ्रेंच सिपाही के पास पहुंच गये और आत्म समर्पण कर दिया। टूटी-फूटी फ्रेंच भाषा में उसे समझाया कि मैं भारत की स्वतन्त्रतार्थ लड़ने वाला अंग्रेज सरकार द्वारा पकड़ा हुआ कैदी और फ्रांस का एक निर्दोष अभ्यागत हूं। अब मैं कैद से छूटकर फ्रांस की भूमि पर आगया हूं। आप मुझे फ्रेंच मजिस्ट्रेट के पास ले चलें। अंग्रेज पुलिस को मुझे इस देश में पकड़ने का कोई अधिकार नहीं है। परन्तु वह मूर्ख सिपाही इन ऊँची बातों को क्या समझता। उधर जरी के फीते लगाये हुये

बड़े डील डौल वाले अंग्रेजी सिपाहियों ने सोने की गिन्नियां उसे रिश्वत में भेंट कीं तो फ्रेंच सिपाही
ने प्रसन्नतापूर्वक सावरकर को अंग्रेजी सिपाहियों को सौंप दिया । वह एक गीला बनियान और
पाजामा पहने हुए छोटे कद के धूलि-धूसरित सावरकर की कब्र सुनता था । उसको सावरकर ने कहा
आह ! आप मुझे न्यायालय में पेश किए बिना किसी दूसरे को नहीं सौंप सकते ।" कानून रिश्वत के आगे
चुप हो गया । सावरकर को पकड़कर अंग्रेज पुलिस ले जाना चाहती थी । वे जाना न चाहते थे ।
इस समय एक गोरे ने उनके सिर पर एक घूँसा मारा, फिर क्या था सावरकर भी उस गोरे पर जोर से
टूट पड़े और बोले "इससे पूर्व कि तुम मुझे मारो मैं तुम में से कम से कम एक को अवश्य समाप्त कर
दूँगा ।" धमकी से डरकर मारपीट बन्द हुई और सावरकर पकड़कर फिर जहाज की उसी कोठड़ी में
बन्द कर दिए गये । अंग्रेज सिपाही इन पर अत्याचार करने वाले ही थे कि सावरकर ने उनको प्राणों
पर खेल जाने की धमकी दी । फिर वे विवश हो उन्हें कुछ न कहकर मन मारकर चुप बैठे रहे ।
जहाज बम्बई पहुंचा । इन्होंने नङ्गी क़िरचों के पहरे में मातृभूमि पर पैर रखा और जंजीरों से जकड़े
हुए हाथों से वीर सावरकर ने पुण्य भूमि को नमस्कार किया ।

भारत भूमि में बन्दी के रूप में

वहां से एक बन्द मोटर में बैठाकर स्टेशन पर ले जाया गया । वहां से वह स्वातन्त्र्य वीर कैदी के
रूप में नासिक ले जाकर पुलिस चौकी में रखा गया । चुने हुए पुलिस पहरेदार रखे गये, फिर भी इन
के मित्र हवालात में समाचार दे जाते थे । एक दिन एक अंग्रेजी पत्र में इन्होंने पढ़ा कि फ्रेंच सरकार
ने इंगलिश सरकार से उन्हें वापिस मांगा है । इन्हें सन्तोष हुआ कि मेरा यत्न वृथा न गया । अंग्रेज
अफसर बड़े चकित थे कि वीर सावरकर की मार्सेल्ज की घटना पत्रों में किस प्रकार छप गई । यह
समाचार पहले-पहले पैरिस से कार्लमार्क्स के पौत्र की अधीनता में निकलने वाले 'लाह्य मैनिटी'
नामक साम्यवादी पत्र में छपा था । उसे सावरकर से बहुत सहानुभूति थी । उसने फ्रांस में खूब हल-
चल मचाई । इसके पश्चात् दूसरे पत्रों ने भी तीव्र आन्दोलन किया । चीन से लेकर मिश्र तक सभी
पत्रों ने फ्रेंच मांग का जोरदार समर्थन किया । किन्तु संसार ने अच्छी प्रकार से देखा कि असहाय
और पीड़ितों की रक्षा का नगाड़ा पीटने वाली ब्रिटिश सरकार ने अन्तर्राष्ट्रीय कानून को तोड़कर
अपने विद्रोही सावरकर को फ्रांस भेजने से इन्कार कर दिया । फ्रेंच प्रतिष्ठा की अपील करते हुए एक
हृदय स्पर्शी लेख सावरकर ने नासिक की हवालात में लिखा और वह वहां से निकल कर पैरिस के
भारतीय क्रांतिकारियों पं० श्याम जी आदि के पास पहुंचा । उन्होंने उसे छापकर समस्त देशों में
वितीर्ण किया । उधर योरुप में यह आन्दोलन हो रहा था । फ्रांस सरकार की इस विषय में टक्कर
हो रही थी । इस झगड़े को शान्त करने के लिए यह विषय हेग के अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय को सौंप
दिया गया । इधर भारत और इङ्गलिश दोनों सरकारें इस पच्चीस वर्ष के भारतीय वीर युवक सावर-
कर के प्राण लेने के लिए लाखों रुपये व्यय करके हेग न्यायालय के लिये अपने केस तैयार कर रही थीं ।
इधर भारत के क्रांतिकारियों को दण्ड देने के लिए "स्पेशल ट्रिब्यूनल एक्ट" पास करके एक
ट्रिब्यूनल बनाया गया था । इसके निर्णय की अपील नहीं हो सकती थी । इसी ट्रिब्यूनल के सम्मुख
बम्बई हाई कोर्ट में सावरकर और उनके साथियों पर अभियोग चलाया गया ।

ट्रिब्यूनल का निर्णय

सशस्त्र सैनिकों द्वारा घिरी हुई बन्द मोटर में सावरकर को बम्बई के हाईकोर्ट में हथकड़ी पहना कर ले गये। इनके न्यायालय में घुसते ही इनके साथी तीस चालीस नवयुवक अभियुक्तों ने जंजीरों से जकड़े हुए हाथों से अपने वीर नेता का तालियों की गड़गड़ाहट से स्वागत किया। यह जंजीरों की झंकारों का अपूर्व स्वागत था। ये प्रायः सभी अभियुक्त सावरकर से सम्बन्ध रखने वाले थे। इन्हीं में इनका छोटा भाई नारायण सावरकर भी था। इन सभी युवकों ने घोर कष्ट सहे किन्तु विश्वासघात नहीं किया। अभियोग प्रारम्भ हुआ। सरकार ने अपने पक्ष का जोरदार समर्थन किया। भारतीय दण्ड विधान की १२१ धारा लगाई गई थी जिसका दण्ड फांसी या काला पानी ही मिलता था। मुख्याभियुक्त विनायक सावरकर थे किन्तु वे सर्वथा निरपेक्ष बैठे रहे। पूछने पर इन्होंने उत्तर दिया "मैं अभियोग में सर्वथा भाग नहीं लूँगा। मुझ पर ब्रिटिश न्यायालय का नियम नहीं चल सकता, क्योंकि मुझे अन्तर्राष्ट्रीय कानून तोड़कर बलपूर्वक फ्रैंच भूमि पर पकड़ा गया है। डेढ़ मास के पश्चात् लम्बा निर्णय पढ़कर वीर सावरकर को सुनाया। जज ने कहा "आप दोषी प्रमाणित हुए हैं, आपको प्राणदण्ड दिया जाना चाहिए था परन्तु हम आपको आजन्म काले पानी का दण्ड देते हैं। आपकी सब सम्पत्ति जब्त की जाती है।" सिर झुका कर 'वन्दे मातरम्' बोलकर ये पीछे हट गये। इसके पश्चात् सब अभियुक्तों को चौदह वर्ष से लेकर तीन-तीन वर्ष तक के कठोर कारावास का दण्ड दिया गया। अन्य अपराधों के अतिरिक्त इन पर 'स्वातन्त्र्य लक्ष्मी की जय हो' का नारा बोलने का भी अपराध था। निर्णय सुनते ही सब अभियुक्तों ने मिलकर जोर से 'स्वातन्त्र्य लक्ष्मी की जय हो' का नारा लगाया। जज चौंक उठा, अधिकारी घूमकर कहने लगे "पकड़ो, मारो, अब ये बन्दी हैं।" सिपाहियों ने तुरन्त विनायक सावरकर को हथकड़ी पहनाकर सबसे पृथक् कर दिया। सब साथियों से अन्तिम विदाई ली। अब इन्हें अपने स्वजनों, छोटे भाई और प्यारे देश से इस जीवन में फिर कभी मिलने की आशा नहीं थी। किन्तु सरकार एक जन्म के काले पानी के दण्ड से सन्तुष्ट न थी। नासिक के क्लेक्टर की हत्या करने में सहायता करने के अपराध में अभियोग चलाया। ये प्राणदण्ड की आशा से न्यायालय में गये, किन्तु अब की बार भी काले पानी की ही आज्ञा हुई। अपने मित्रों के हृदयस्पर्शी शब्दों में सफाई देने की प्रार्थना करने पर भी आपने पूर्ववत् मुकद्दमे में भाग नहीं लिया। इस प्रकार मृत्यु को खुली चुनौती देकर ब्रिटिश न्यायालय में सच्चा असहयोग करने वाला प्रथम असहयोगी वीर सावरकर ही है। दण्ड सुनकर वीर विनायक सावरकर बोले "मैं प्रसन्न हूं कि मुझे दो जन्म की काले पानी की सजा देकर सरकार ने हिन्दू धर्म का पुनर्जन्म का सिद्धान्त तो मान लिया। मेरा विश्वास है कि केवल कष्ट सहन और बलिदान से ही हमारी मातृभूमि यदि शीघ्र नहीं तो विलम्ब से निश्चित ही विजय प्राप्त करेगी। इसलिए मैं आपके विधान द्वारा दिए गये कड़े से कड़े दण्ड को सहन करने के लिए प्रस्तुत हूं।"

डोंगरी जेल

पचास वर्ष का कठोर कारावास देकर बम्बई के डोंगरी जेल में भेज दिये गये। अब हेग के अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय के निर्णय की प्रतीक्षा की जाने लगी। इसी बीच उन्हें जेल का भोजन और वस्त्र नहीं दिये। फिर भी ये जान बूझकर कुछ भी अच्छे पदार्थ नहीं खाते थे। एक दिन एक जेल अधिकारी

ने पूछा—आप "भोजन अच्छा बढ़िया क्यों नहीं खाते हैं ?" उन्होंने हँसकर कहा "भोजन अच्छा ही खाता हूं। पर हां वही वस्तुएं खा रहा हूं जो सामान्यतः बन्दियों को मिला करती हैं। इनका अभ्यास कर रहा हूँ जिससे आगे किसी प्रकार का कष्ट न उठाना पड़े।" हेग न्यायालय का निर्णय यह आया कि "अपराधी फ्रांस की भूमि पर होता तो इंग्लैंड वाले उसको किसी प्रकार भी नहीं पकड़ सकते थे किन्तु जब वह फ्रांस के एक सिपाही की अज्ञानता से अंग्रेजी सरकार के अधिकार में चला गया है तो उसको किसी भी प्रकार से लौटाने के लिए विवश नहीं किया जा सकता।"

सावरकर की सब सम्पत्ति जब्त होने से इनका सब सामान यहां तक कि गीता और उपनेत्र (चश्मा) भी छीन लिये गये। अगले दिन गीता और उपनेत्र लौटा दिए। जेल में नारियल की जटायें कूट कर रस्सी बटने का कार्य सौंपा गया। पहले कुछ संकोच हुआ। किन्तु इस होनहार बैरिस्टर ने यह विचार कर कि "जीवन स्वयं इसी प्रकार की उधेड़ बुन है, पंचमहाभूतों की जटायें मिलाकर यह जीवन रस्सी तैयार की जाती है। और अन्त में मृत्युरूपी दण्ड से छूटकर अपने प्रधानरूप प्रकृति में मिला दी जाती है। वनस्पति खाकर हम जीते हैं और मरने पर हमारे शरीर को वनस्पति खा जाती है। यही उधेड़ बुन चालू है। जीवन व्यर्थ नहीं जाता यह उधेड़ बुन उसी बड़ी उधेड़ बुन का आवश्यक भाग है।" यह सोचकर रस्सी बांटनी प्रारम्भ कर दी। इसी जेल में इनका साला इनकी धर्मपत्नी को लेकर इनसे मिलने आया। ये दुःखी हृदय से उनसे मिले और उनसे विदाई ली। इस विदाई का यही आशय था कि इस जन्म में फिर कभी दोनों की भेंट न होगी। एक दिन समाचार मिला कि "लन्दन में एक सभा में भारतीयों ने एक बड़ा चित्र वीर सावरकर का मंडप की दीवार पर लगाया। उस दिन सर हेनरी काटन ने सभा में बोलते हुए चित्र की ओर संकेत करके इनके त्याग, साहस और देशभक्ति की प्रशंसा की। इससे अंग्रेजों में बड़ी सनसनी फैल गई। किसी ने कहा सर हेनरी की पेन्शन बन्द करनी चाहिये, किसी ने कहा उनकी उपाधि छीन लेनी चाहिए। सरकार से डरकर उस समय के कांग्रेस के प्रधान वेडरवर्न और नेता सुरेन्द्रनाथ बैनर्जी ने कलकत्ते की सार्वजनिक सभा में घोषणा की, कि हमारी सावरकर और इनके साथियों से तनिक भी सहानुभूति नहीं है। यह थी उस समय की हीजड़ी कांग्रेस। इस जेल में एक मास रहने के पश्चात् इनको मायरवाला की कड़ी और एकान्त जेल में भेज दिया गया।

मायरवाला का बन्दीगृह

जेल में वीर सावरकर जी कविता बनाकर कण्ठस्थ करते रहते थे। इस समय तक इनका गुरु गोविन्दसिंह का काव्य पूर्ण हो चुका था। सप्तर्षि कविता भी समाप्त हो गई थी। इन्हें बहुत आग्रह करने पर केवल सन्ध्या समय पढ़ने के लिये बाईबिल मिल जाती थी। इनकी पुस्तकें पहले ही सब छीनी जा चुकी थीं। विदेश में घूमे हुए इस बैरिस्टर को मन लगाने के लिए कोई साधन तो चाहिए था अतः अब ईसामसीह का चरित्र मराठी में कविताबद्ध करने का सङ्कल्प किया। यहां रहते हुए इनके भाई नारायण ने जो इसी जेल में थे, एक पत्र भेजा, इसमें लिखा था "दिव्यव्रत की पूर्ति के लिए यदि इससे भी अधिक कष्ट उठाना पड़े तो कोई चिन्ता की बात नहीं।" ऐसे धैर्यप्रद सन्देश को पढ़ कर इन्होंने उत्तर दिया "जिस प्रकार भगवती सीता के दोनों पुत्रों ने गुरु आज्ञा से चारों ओर रामायण को प्रसिद्ध किया था, उसी प्रकार मैं भी अपने कुमारों के मुख से उस महाकाव्य को देश भर में प्रचलित करा दूँगा जिसे कि मैं इसी समय रच रहा हूँ।" एक दो दिन के पीछे नारायण को और किसी जेल में भेज दिया। दोनों भाई एक जेल में होते हुए भी परस्पर मिल न सके। इस जेल में कई

मास रहे। यहां एक पहरेदार इनको सदैव चिढ़ाता रहता था। यहां रहते हुए इन्होंने मानसिक कष्ट सहने का अभ्यास किया। फिर अण्डमान जाने का समय आ गया। अन्य बन्दियों के साथ बेड़िया खन-खनाते हुए हाथ में बर्तन लेकर बगल में बिस्तरा दवाये वीर सावरकर भी जेल द्वार से बाहर निकले।

अण्डमान को

बन्दी लोगों की यह सेना पंक्तिबद्ध बेड़ियों को ताल पर बजाती हुई मिलने वालों को नमस्ते, राम राम कहकर 'चले भइया कालेपानी को' जेल के आंगन से बाहर होगई और सशस्त्र सैनिकों की देखरेख में दिल्ली पहुँच गई। किन्तु वीर सावरकर को गोरों के पहरे में स्टेशन पर पहुंचाया गया। बन्दी लोगों में सावरकर का सन्मान सरकार के यत्न करने पर भी घटने की अपेक्षा अधिक-अधिक बढ़ता ही गया। सावरकर को गाड़ी के एक पृथक् डिब्बे में बन्द किया गया। हाथों में हथकड़ी और गोरों का सख्त पहरा साथ था। खिड़कियां बन्द थीं। केवल एक स्टेशन पर सावरकर के दर्शन के लिए आये हुए गोरों के लिए खिड़कियां खोली गईं। फिर गाड़ी चलकर मद्रास पहुँची। वहां एक छोटी नाव में बिठा-कर इन्हें "महाराजा" नाम के जहाज में बिठा दिया गया। सैकड़ों दर्शक—टकटकी लगाकर इन्हें जहाज पर चढ़ते हुये देख रहे थे। लोहे के गजों के पिंजड़े में इन्हें बन्द कर दिया गया पहरेदार 'नमस्ते' कहकर चले गये। जहाज में सावरकर के बिस्तरे के पास ही टट्टी का कनस्तर रखा था वह गिर गया। बिस्तरे के पास मलमूत्र वह निकला, दुर्गन्ध से सब कुछ सड़ गया किन्तु वीर सावरकर मस्त होकर लेटे रहे। इस प्रकार इनकी मस्ती को देखकर बन्दी लोग आश्चर्य करने लगे। कई दिन के पीछे जहाज अण्डमान पहुंच गया। सिपाहियों के पहरे में सभी बन्दी और सावरकर गोरों के पहरे में जेल द्वार पर ले जाये गये। द्वार खुला। द्वार में घुसते ही पहरेदारों ने इन्हें खड़े रहने की आज्ञा दी। द्वार बन्द हो गया और वह फिर १४ वर्ष के पश्चात् वीर सावरकर के लिए खुला। जेल का जेलर बारी साहब आया, वह अपने अत्याचारी स्वभाव के कारण प्रसिद्ध था, उसका नाम लेकर पहरेदार सावर-कर की परीक्षा लेना चाहते थे किन्तु वीर सावरकर किससे डरते थे? ये स्थिरचित्त होकर खड़े रहे। एक गोरा मुष्टण्डा हाथ में मोटी सी लकड़ी लिये खड़ा था यही बारी साहब जेलर था। अभिमान से बोला "छोड़ दो इसे यह कोई शेर नहीं है" पर मोटी लकड़ी सावरकर की ओर करके बोला 'मार्सेल्ज से भागने वाले क्या तुम ही हो?" सावरकर जी बोले "हाँ" फिर यह सुन बारी साहब कुछ ढीला पड़ गया और जिज्ञासा से पूछने लगा, आपने ऐसा क्यों किया? इन्होंने उत्तर दिया—इसके अनेक कारण थे, उनमें यह भी एक था कि "सब झंझटों से छुटकारा मिल जाये।" इस पर बारी साहब बोले "इससे तो आप और भी झंझटों में फंस गये" वीर सावरकर जी ने कहा "आपका कहना ठीक है परन्तु विशेषावस्थाओं के कारण इन झंझटों में फंसना मुझे अपना कर्तव्य जान पड़ा।" बारी साहब खुलकर बोले—"देखिये मैं अंग्रेज नहीं आयरिश हूँ। मैंने भी अंग्रेज के हाथ से आयरलैंड को मुक्त कराने के लिए युद्ध किया, किन्तु अब मेरा मत पलट गया है, मैं आपसे आयु में बड़ा हूं। आप युवक हैं, आप बैरिस्टर हैं और में अशिक्षित जेलर, मेरे कहे को तुच्छ न समझें—हत्या और रक्तपात से कभी स्वतन्त्रता नहीं मिल सकती।" सावरकर जी बोले—आप के वृद्ध होने से विचार बदल गये हैं। बुद्धि तो नहीं बढ़ी, पर उत्साह कम हो गया है। आप पहले यह बात आयरलैंड के सिनफिन वालों को क्यों नहीं सिखाते? फिर आपको यह किसने कहा कि मैं हत्या का पक्षपाती हूँ। फिर बारी साहब यह कह कर चले गये कि "आप यहां से भागना नहीं, बन्दी घर के नियमों का पालन करना।"

आपके मैं बड़ा काम आऊंगा। आप मेरी आज्ञा मानें।" जमादार को आज्ञा दे गया कि इन्हें ७ क्रमांक के ऊपर के भाग में बन्द कर दें। ये कोठड़ी में बन्द कर दिये गये। आस पास की कोठड़ी सब खाली करवा दी थीं जिससे यह किसी से बात न कर सकें। तीन कठोर स्वभाव के बलूची पठान पहरे पर रक्खे गये, राजबन्दी सब हिन्दू थे। अत: उन्हें कष्ट देने के लिए जान बूझकर सरकार ने मुसलमान पहरेदार रक्खे थे। मुसलमान वार्डरों ने बचपन से यह सीखा था कि हिन्दू को कष्ट देने से पाप छूट जाता है। अधिकारियों की सहायता मिलने से ये कुकर्मी मुसलमान हिन्दू बन्दियों को खूब सताते थे। सावरकर इन दुष्ट वार्डरों के हाथों से अपने हिन्दू बन्दियों को बचाने का सदा प्रयत्न करते थे। मुसलमान वार्डर ने इन्हें मारने की धमकी दी, किन्तु वीर सावरकर ने इसकी कुछ चिन्ता न करके अपना प्रयत्न जारी रक्खा। वीर सावरकर ने अंडमान में क्या कष्ट सहे यह लिखने से पूर्व अपने पाठकों को थोड़ा वृत्तान्त अंडमान द्वीप का बता देना उचित समझता हूँ।

अण्डमान द्वीप

कलकते से छ: सौ मील दूर बंग समुद्र में एक द्वीप-पुन्ज है जिसे अण्डमान कहते हैं। इस द्वीपसमूह की आकृति अंडे के समान होने से उसको अण्डमान कहने लगे। पहले यहां घने जंगल थे इससे निरन्तर वर्षा होती रहती थी। यहाँ तक कि ग्रीष्मऋतु में भी रिमझिम रिमझिम पानी बरसता था, परन्तु अब वहाँ जंगल काटकर खेती होने लगी है। वहां का तापमान भारत के उष्ण प्रदेश के समान हो गया है। जल और दलदलों की भरमार होने से पेड़ों और बेलों के पत्ते गिर गिर कर सड़ने ने जोर का मलेरिया फैलला है और लोग बहुत कष्ट पाते हैं। मक्खियां वहां इतनी और इतने प्रकार की हैं कि उनका वर्णन करना कठिन है। जोंक भी बहुत हैं। मनुष्यों की गन्ध आते ही ये आनन्द से मस्त हो जाती हैं। चलते समय मनुष्य के पैर के तलुवों के नीचे चिपक जाती हैं। खून चूस चूस कर मोटी हो जाती हैं। बड़े-बड़े बदमाश चोर और डाकू जो जेल की कठोर से कठोर यातना को भी कुछ नहीं समझते। जब वे जंगल में लकड़ी काटने भेजे जाते हैं तब वे जोकों के डर के कारण थरथर कांपने लगते हैं। यहां के जंगलों में कानखजूरे भी बहुत हैं। ये एक हाथ लम्बे और एक इंच से अधिक चौड़े होते हैं। इनके काटते ही मनुष्य को लकवा हो जाता है। कई सौ वर्ष तक इन जंगलों में मनुष्य का प्रवेश नहीं हुआ। इससे इन जन्तुओं की संख्या भयानक प्रमाण से बढ़ती ही गई। भारतीय पशु-पक्षी पहले तो यहां सर्वथा नहीं थे किन्तु कुछ वर्षों से ब्रिटिश सरकार ने मैंना, तोते, बाज, गिलहरियां और हरिण, कुत्ते, गीदड़ आदि बहुत से भारतीय पशु-पक्षी यहां लाकर छोड़े हैं। कौवों ने अपना डेरा यहां जमा रक्खा है। अब अण्डमान कुछ-कुछ भारत के समान लगने लगा है। यहां जो जंगली लोग रहते हैं उनमें जावरा नाम की जाति है। इनका कद चार से साढ़े चार फुट तक ऊंचा होता है। ये रंग में सर्वथा काले होते हैं। इनके सिर के बाल कड़े, छोटे और घुंघराले होते हैं। दाढ़ी, मूंछ इनके होती ही नहीं। ये नंगे रहते हैं। ये साधुओं के समान लाल मिट्टी पोत लेते हैं। यहां की स्त्रियां भी पुरुषों के समान नंगी रहती हैं। कोई-कोई स्त्री कमर पर पेड़ के पत्ते लटका लेती है। नई सभ्यता अभी यहां नहीं पहुँची है। ये सरलता की पराकाष्ठा को पार कर गये हैं। धनुष बाण इनका रात दिन का साथी है। कभी-कभी ये छिपकर सरकारी बस्तियों पर आक्रमण करते हैं और छापा मारकर भग जाते हैं। ये लोग नर मांस खाते हैं। जंगलों में रहते हुए ये सुरापान करते हैं। अण्डमान का आधुनिक इतिहास १७७६ से प्रारम्भ होता है। इससे पूर्व कालेपानी का दंड पाने वाले सिंगापुर, पेनांग, मलाक्का, टेनेसरीम

आदि द्वीपों में निर्वासित होते थे। १७७६ में इन्जीनियर कोलब्रुक और कप्तान ब्लेयर ने यहां उपनिवेश बसाने का प्रयास किया। इन्हीं ब्लेयर साहब के नाम पर अण्डमान का बन्दर आज भी "पोर्ट ब्लेयर" नाम से प्रसिद्ध है। यही मुख्य बन्दर इस द्वीपसमूह का है। इसके पश्चात् १८५७ के स्वातन्त्र्य युद्ध में जो भारतीय सैनिक निर्वासित किये गये थे वे इसी द्वीप में लाकर छोड़े गए थे। वासुदेव वलवन्त फड़के ने जो राज्य-क्रान्ति की थी उनके साथी भी यहां अण्डमान में भेजे गये थे। बम्बई के हिन्दू मुस्लिम दँगे के कैदी जो हिन्दू थे, मणिपुर की राज्य-क्रान्ति करने वाले अलीपुर और माणीक-तल्ला बोम्ब केस के अभियुक्त तथा विनायक के बड़े भाई गणेश पन्त सावरकर भी यहीं भेजे गये थे। इस प्रकार राजनीतिक तथा सार्वजनिक आन्दोलन में भाग लेने वाले सैकड़ों व्यक्तियों ने सावरकर से पूर्व ही इस भारतीय बैस्टाईल की यम-यातनाओं को सहा था तथा अब भी सह रहे थे। यहीं पर अपनी अस्थियों से अपनी समाधि चिनने के लिए अब सावरकर इसी अण्डमान की जेल में पड़े थे। बारी साहब जेलर एक दिन सावरकर से आकर कहने लगे "मैं तो आपका मित्र हूं लोग मुझे जेलर समझते हैं। मैं आप से खुलकर बात करना चाहता हूँ। मैंनें सुना है कि आपने सन् ५७ का नीचतापूर्ण इतिहास भी लिखा है। आप को दुष्टों की कथा लिखते हुए घृणा नहीं हुई। वे राक्षस थे अधम। नाना साहब ने अंग्रेजी स्त्रियों को महान् कष्ट दिये। नाना साहब और तांत्या टोपे समान नीचों से आपको घृणा क्यों नहीं हुई। वीर सावरकर बोले "यह बन्दी घर है मैं बन्दी हूं। ऐसी चर्चा करना उचित नहीं, फिर भी आप उचित उत्तर चाहते हैं तो मैं मित्रभाव से उत्तर दे सकता हूं।" बारी साहब बोले—"मैं मित्रभाव से पूछता हूं।" फिर सावरकर ने उत्तर दिया "मैं अपने राष्ट्रीय इतिहास का अपमान सहना भीरुता समझता हूं। सत्य कहनें पर यदि मुझे दंड भी सहन करना पड़े तो मैं उद्यत हूं। नाना साहब के विषय में अंग्रेजों के नियत सरकारी कमीशन ने खोज करके सिद्ध किया कि अंग्रेज स्त्रियों पर नैतिक अत्याचार करनें की कथायें असत्य और अतिरंजित हैं। इन पर तो यह झूठा दोष लगाया है किन्तु अंग्रेज सेनापतियों ने नील आदि अनेक स्थानों पर दश-दश बारह-बारह स्त्रियों का बध क्रान्तिकारियों को डरानें के लिए किया। ग्राम जला डाले। सार्वजनिक संहार और लूट निर्दोष भारतीय जनता की सैकड़ों स्थानों पर की। उनको आप दोष नहीं देते। उनकी तो इंगलैंड और भारत में मूर्तियां स्थापित कर प्रतिष्ठा बढ़ाई गई, उनका आप मान करते हैं फिर अपने देश को स्वतन्त्र करने के लिए नाना साहब और तांत्या ने अपूर्व बलिदान किया उनकी आप निन्दा करना कैसे उचित समझते हैं। सन् ५७ का विप्लव भारतीय जनता का स्वातन्त्र्य समर था आप ऐसा क्यों नहीं मानते"। इस पर बारी साहब इनका स्वास्थ्य पूछ कर चले गये।

यहां पर बन्दियों को बहुत कष्ट दिया जाता था। राजबन्दी सब पृथक्-पृथक् कोठड़ियों में बन्द कर रखे थे। आपस में एक अक्षर बोलने पर हथकड़ी, बेड़ी आदि कठोर दंड दिया जाता था। आपस में संकेत से कुशल पूछनें पर हाथ में हथकड़ियां डालकर सात दिन तक खड़े रहने का भीषण दंड दिया जाता था। नारियल का छिलका कूटनें का कार्य छुड़वा दिया गया था, उसके स्थान पर सबसे कठिन कार्य कोल्हू चलानें का लिया जाता था। बिचारे सुकुमार और सुशिक्षित युवक बन्दी जिनकी अवस्था २० वर्ष के लगभग थी, उनको यह भयंकर कार्य करना पड़ा था। कोल्हू चलाते-चलाते इनका दम फूल जाता था। सभी को चक्कर आने के कारण बैठ जाना पड़ता था। उसी समय जमादार चिल्लाता "काम करो बैठो मत। शाम तक तैल पूरा करना होगा, नहीं तो पीटे जाओगे, सजा अलग होगी"। जो बन्दी सायंकल तक पुरा तैल नहीं निकाल पाता था उसकी लातों घूसों और सोटों से बड़ी दुर्गति

की जाती थी। यदि किसी दिन नारियल गीले होते और तैल पूरा नहीं निकलता तो बारी साहब बन्दी घर में आ घुसते धमकाकर कहते "जो तीस पौंड तैल पूरा नहीं करेगा उसको भोजन सायंकाल का नहीं मिलेगा। पांच छः बजे बन्दीघर के सब कार्य बन्द हो जाते थे किन्तु तैल पूरा करने के लिए नियम विरुद्ध ९ बजे तक कोल्हू चलाना पड़ता था। प्रातःकाल छः बजे से रात को ९ बजे तक निरन्तर सुकुमार कोल्हू चलाते रहते थे। बीच में एक बार थोड़ा सा अन्न पेट में डालने का थोड़ा सा समय मिलता था। बीमारों से भी कार्य लिया जाता था। १०१ अंश डिग्री का ज्वर होने पर अधिकारी ज्वर समझते थे। इससे कम ज्वर को ढोंग समझा जाता था। चोर डाकू तक तो रोगी होने पर हस्पताल भेज दिये जाते थे किन्तु इन देश-भक्तों को रोगी होने पर मरने के लिए कोठड़ियों में बन्द कर दिया जाता था। कितने ऐसे ही होनहार नवयुवक तड़फ-तड़फ कर वहीं मर जाते थे। ऐसे कष्टभोगी बन्दियों में गणेश सावरकर विनायक सावरकर के बड़े भाई प्रमुख थे। इन्हें आधे सिर का दर्द घर से ही था। कोल्हू चलाने से इसने भीषण रूप धारण कर लिया था। भयंकर सिर की पीड़ा में भी कोल्हू चलाना पड़ता था किन्तु वहां तो दो शब्द सहानुभूति के भी कहने वाला न था। किस की चिकित्सा कहां को औषध। राजबन्दियों के लिए हस्पताल सर्वथा बन्द था। न उनके लिए कोई औषध ही मिलती थी। ये तो अण्डमान में सर्वथा अत्याचार करके मारने के लिए ही भेजे जाते थे। सख्त काम, अन्न-वस्त्र का अभाव, मारपीट का कष्ट, इन देश-भक्त कैदियों को दिया जाता ही था। इसके अतिरिक्त इन्हें मलमूत्र रोकने को भी विवश किया जाता था। बारी साहब के धर्मशास्त्र में प्रातः दोपहर सन्ध्या ये तीन समय छोड़कर अन्य समय में मलमूत्र त्याग के लिए जाना भयंकर अपराध था। सायंकाल छः बजे से प्रातः ६ बजे तक बन्दीघर का द्वार बन्द रहता था। पेशाब के लिए तो मटका था किन्तु टट्टी का कोई प्रबन्ध नहीं, यदि कोई विवश हो टट्टी वहीं कोठरी में कर देता तो उसकी सोटों से मरम्मत होती थी। एक बार गणेश सावरकर को हथकड़ियां पहना कर सात दिन के लिए लटका दिया गया तो उन्हें खड़े होकर ही मलमूत्र का त्याग करना पड़ता था। पशुओं से भी बढ़कर यहां मनुष्यों की दुर्गति की जाती थी। यहां पर कोई अधिकारी भी कष्ट-कहानी सुनने वाला न था। कष्टों को दूर फिर कौन करता। एक बार भारत के गृहमन्त्री गये। उस समय जेल में बारी साहब के विरुद्ध आन्दोलन खड़ा किया गया तब कहीं कुछ कष्ट कम हुए। कोल्हू चलाने से राजबन्दियों ने यह कहकर हड़ताल कर दी कि हम मनुष्य हैं बैल नहीं हैं, हम कोल्हू नहीं चलायेंगे। खूब अत्याचार हुए, भोजन के स्थान पर केवल काञ्जी और फिनायल मिक्चर तक पिलाया गया। हथकड़ी बेड़ियां लगीं। अनेक अमानुषिक अत्याचार किये गये। किन्तु ये वीर डट गये। अन्त में सरकार झुकी और कोल्हू से कुछ छुटकारा मिला। अन्य कैदियों के समान कुछ हल्का कार्य लिया जाने लगा। सावरकर से पहले नारियल कूटने का कार्य लिया गया। हाथों पर फफोले पड़कर फूटने लगे। हाथ लहुलुहान हो गये किन्तु कार्य फिर भी चालू रहा। कुछ दिन पीछे कोल्हू में जोत दिया गया। सिर चक्कर खाने लगा, जोड़ों में भयंकर पीड़ा हुई, ज्वर होने लगा, फिर भी कोल्हू चलाना पड़ता था। तैल पूरा न होता था। देश-भक्ति का फल इस होनहार सुकुमार बैरिस्टर के भाग्य में बैल बनकर कोल्हू चलाना था, कुछ दिन इस प्रकार कष्ट सहने के पश्चात् रस्सी बांटने का कार्य मिला। जेल में रहते हुए एक वर्ष में एक पत्र डालने को मिलना था। मिलना किसी सम्बन्धी से होता ही न था। भाई गणेश सावरकर से विनायक सावरकर इसी जेल में दोनों के रहते हुए मिल नहीं सकता था।

कुछ काल बीतने पर सायंकाल ४ बजे से ६ बजे तक पढ़ने के लिए पुस्तकें मिलने लगीं किन्तु

अपनी पुस्तक दूसरे बन्दी को नहीं दे सकता था। बारी साहब किसी कैदी को पुस्तक पढ़ते देख लेते तो गालियां देते और चिढ़कर कोल्हू चलाने का दंड दे देते थे। सावरकर ने वहां शिक्षा का प्रचार खूब किया। लोगों को लिखना पढ़ना सिखाने में ये बड़ा परिश्रम करते थे। इनके पुरुषार्थ से ७३ प्रतिशत बन्दी शिक्षित हो गये। इतनी सुविधायें बार-बार कैदियों की हड़तालों से मिली थीं। पहले गुप्तरूप से फिर प्रकट रूप से रविवार को सभायें होने लगीं। साप्ताहिक पत्र दीवारों पर लिखकर निकाला जाता था। प्रत्येक भीत पर एक ग्रन्थ बना हुआ था इन भित्ति-ग्रन्थों से कैदियों के ज्ञान में खूब वृद्धि हुई। वीर सावरकर ने इस विषय में खूब कार्य किया। वीर सावरकर के मन में बड़े भाई से मिलने की बड़ी तीव्र लालसा थी किन्तु कौन यहां इनकी प्रार्थना को सुनता था। एक दिन ये अपने कार्य का हिसाब देने गये थे तो इन्हें बड़े भाई के दर्शन हुए। गणेश देखकर क्षणभर के लिए विमूढ़ हो गये, उनके मुख से निकला "तात्या तू यहां किस प्रकार आया।" फिर गणेश ने एक गुप्त पत्र भेजा उसमें लिखा—"प्रत्यक्ष देखकर भी मुझे विश्वास नहीं होता। हाय ! हाय ! तू यहां कैसे आ गया ? तू पेरिस में होने पर इन लोगों के हाथ कैसे चढ़ गया ? अब कार्य क्या होगा। तेरी योग्यता मिट्टी में मिल जायेगी ना ? तू बाहर रहकर अपना उद्देश्य पूर्ण कर लेगा इसी कल्पना से मन में ढाढस बंध जाता था और मैं कालेपानी जैसे दंड को भी ध्यान में न लाता था।" विनायक ने इसका उत्तर दिया—"कि लक्ष्मीबाई को तलवार के एक साथ ही घाव से देह त्याग करना पड़ता है और किसी वीर को पहली झड़प में गोली खाकर आत्म-बलिदान के पुण्य का भागी होना पड़ता है। इस प्रकार देह त्याग से योग्यता की परीक्षा नहीं हुआ करती। इसकी परीक्षा सेना के अग्रभाग में अचल होकर जूझने से ही होती है। हम लोग इस परीक्षा में उत्तीर्ण हुए हैं इसलिए हम सांसारिक आशाओं को भस्म कर कारागार में आने वाले कष्टों को वीरता से झेलें।" अण्डमान के कष्टों की कहानी युक्त प्रान्त निवासी कैदी श्री होतीलाल ने एक गुप्त पत्र लिखकर कलकत्ते में श्री सुरेन्द्रनाथ के पास भेजी। इस निर्भीक सम्पादक ने अपनी टिप्पणी सहित बंगालीपत्र में यह कष्ट कहानी का पत्र छाप दिया। इसके पश्चात् अन्य पत्रों में भी इसकी चर्चा हुई। कौंसिल में भी इस विषय में बातचीत चली। सावरकर के कोल्हू में जुतने की चर्चा अमेरिकादि देशों में फैली। "अभिनव भारत" के सदस्यों ने इनके कोल्हू में जुतने का काल्पनिक चित्र देकर विज्ञापन तथा पैम्पलेट (हस्तपत्रक) छापकर बाँट दिया, इसका भारत सरकार पर भी प्रभाव पड़ा। १९११ में सम्राट् के राज्यारोहण की प्रसन्नता में सावरकर को छोड़कर सब राजबन्दियों के दंड में छूट दी गई। उस समय सावरकर का छोटा भाई नारायण जेल से छूट चुका था। उसे एक वर्ष में पत्र लिखन का अवसर मिलता था। उसमें भी ये जेल के कष्टों के विषय में लिखते थे। इनके सन्देश, कविता, लेख इत्यादि भारत में छः सौ मील पहुंचकर छपते और जनता में वितीर्ण हुए। भाई परमानन्द, रामसरनदास, हृदयराम आदि लाहौर षड्यन्त्र के कैदी १९१५ में अण्डमान पहुंचे। भाई परमानन्द और सावरकर में परस्पर अत्यन्त प्रेम था। अण्डमान में केवल एक बार ही इनका परस्पर मिलना हुआ।

सन् १९२० में चौ० बुग्गा, महाशय रत्नचन्द्र, बा० मदनसिंह आदि मार्शल लाँ के बन्दी अण्डमान पहुँचे। तब सावरकर ने शिक्षा का कार्य और उत्साह से किया। मुसलमान कैदी हिन्दू कैदियों को धर्म भ्रष्ट करने का यत्न करते रहते थे। सावरकर ने सैंकड़ों हिन्दुओं को इनके हथकंडों से बचाया। धर्मभ्रष्ट हिन्दुओं को शुद्ध करके फिर हिन्दू बनाया। कई बार मुसलमान गुण्डों से झगड़े हुए, बड़े भाई गणेश को तो एक बार चोट भी लगी, किन्तु सब कष्टों के होते हुए अपना कार्य ऊंचा रक्खा।

क्रान्तिकारी आन्दोलन के कारण "माँटेग्यु चैम्सफोर्ड सुधार" करने की घोषणा की और सावरकर
से दबाव देकर उनके विचार पूछे गये। १९३७ में अपने विचार लिखकर भेजे। (१) तुरन्त ही सब
क्रांतिकारियों को बिना शर्त छोड़ देना चाहिए। (२) केन्द्र का उत्तरदायित्वपूर्ण शासन अर्थात् जनता
द्वारा चुने हुए प्रतिनिधियों का केन्द्रीय व्यवस्थापिका सभा में बहुमत रहे। ये दो बातें हम लोगों को
सन्तुष्ट कर सकती हैं तथा हम अपने उद्देश्य को वैधानिक मार्ग से प्राप्त करने का उद्योग करेंगे। ऐसा
कौन व्यक्ति है जो जान-बूझकर आग से खेले और अपने हाथ पैर जलाये? यद्यपि सावरकर देश से
६०० मील दूर अंडमान की कोटड़ी में बन्द थे किन्तु भारतीयों ने अपने वीर नेता को एक दिन के
लिए भी नहीं भुलाया। देशभर में सावरकर सप्ताह मनाया गया, उनके छुटकारे के लिए सत्तर
हजार हस्ताक्षरों से युक्त प्रार्थना-पत्र सरकार को जनता ने भेजा। साधारण व्यक्ति से लेकर नेताओं
तक ने हस्ताक्षर किये किन्तु गांधी जी ने हस्ताक्षर करने से इन्कार कर दिया। १९२० में भाई परमा-
नन्द जी बिना शर्त के अंडमान से छोड़ दिए गये। भाई जी लाहौर पहुंचे। उन दिनों ब्रिटिश
पार्लियामेंट के प्रमुख सदस्य बैजवुड महोदय ला० लाजपतराय के यहां ठहरे थे। लाला जी ने भाई
जी का परिचय करा दिया। भाई जी ने बातचीत करते हुए अंडमान की चर्चा की और सावरकर
के स्वास्थ्य का वर्णन कर उन्हें तुरन्त छोड़ने का आग्रह किया।

बैजवुड ने एतदर्थ शक्तिभर यत्न करने का विश्वास दिलाया, उनके यत्न से सन् १९२४ में सावरकर
बन्धु अण्डमान से कलकत्ता लाए गये। चार दिन दोनों भाई साथ रहे। फिर गणेश जी अलीपुर जेल में
तथा विनायक जी रत्नागिरि जेल भेज दिए गये। रत्नागिरि जाते हुए इनको एक दो स्थान पर
उतरने की आज्ञा मिली। नासिक में शोभायात्रा निकली। नासिक के पंचवटी के मन्दिर में डा० मुञ्जे
के सभापतित्व में इनका सम्मान बड़े समारोह के साथ किया गया। शङ्कराचार्य कुर्त कोटी ने स्वागत पत्र
तथा एक दुशाला भेजा। श्री नरसिंह चिन्तामणि केलकर ने जनता की ओर से एक अभिनन्दन पत्र तथा
बारह हजार रुपये की थैली भेंट की। नेताओं को भाषण के पश्चात् सावरकर जी ने खड़े होकर स्वागत
का उत्तर दिया कि "अण्डमान की कालकोटड़ी में भी मैं सन्तुष्ट था, इस सम्मान की बात कभी भी मेरे
मन में नहीं आई। यहां बहुत से युवक बैठे हैं, इस सम्मान को देखकर वे यह न समझें कि समाजसेवा
सम्मान के लिए करनी चाहिए। आप निश्चय करें कि हमारा मार्ग कांटों से भरा हुआ है। मैं आपका
कृतज्ञ हूं, आपने मेरा इतना सम्मान किया। मुझसे हजार गुणा तेजस्वी और वीर्यशाली वीर आज
भी देश में हैं और आगे भी उत्पन्न होंगे।" इसके पश्चात् वे रत्नागिरि की जेल में पांच वर्ष तक बन्द
रहे। इसके पश्चात् ये जेल से हटाकर सारे रत्नागिरि जिले में बन्द कर दिए गये। जिले भर में घूमने
फिरने की स्वतन्त्रता इन्हें दे दी गई। इसका लाभ उठाकर इन्होंने हिन्दू सङ्गठन का कार्य प्रारम्भ
कर दिया। यह कार्य इतनी लगन से किया कि नजरबन्दी के तेरह वर्षों का इतिहास हिन्दू सङ्गठन
का इतिहास है। रत्नागिरि की हिन्दू महासभा संगठन की दृष्टि से इनके पुरुषार्थ से सर्व प्रमुख हिन्दू
सभा बन गई। अछूतोद्धार का आन्दोलन जोर से चलाया गया। सहभोज किये। पारस्परिक मिलाप
से दलितों की अपने को हीन समझने की भावना जाती रही। रत्नागिरि में "श्री पतितपावन अखिल
हिन्दू मन्दिर" का निर्माण किया गया। सावरकर जी की प्रेरणा पर श्रीमन्त भागों जी ने इसके
निर्माणार्थ २॥ लाख रुपया व्यय किया। इस मन्दिर में प्रत्येक हिन्दू किसी भी जाति का हो, जा
सकता है। इस प्रकार सावरकर जी स्वदेशी-असहयोग आदि विविध विषयों में गांधी जी से आगे हैं।
इसी प्रकार अछूतोद्धार में भी ये अग्रगामी हैं। यहां शुद्धि का भी कार्य किया। ३५० पथभ्रष्ट

हिन्दू जो मुसलमान हो गये थे उनको शुद्ध [करके पुनः हिन्दू धर्म में दीक्षित किया। मुसलमानों ने चिढ़कर सावरकर जी पर आक्रमण करके इन्हें घायल कर दिया। फिर सावरकर के साथियों ने उन्हें कानून और लाठियों से ठीक कर दिया। सब मुसलमान सीधे होगए और ईसाई पादरी तो रत्नागिरि जिले को छोड़कर भाग गए। इसी प्रकार और भी अनेक सुधार कार्य उन्होंने इन्हीं दिनों में किये। इन्हीं दिनों अपनी जन्मकथा लिखी, उसे सरकार ने जब्त कर लिया। इनके रचे हुये सप्तर्षि, गोमन्तक, कमलादि मराठी काव्य साहित्य की शोभा हैं। इनके सन्यस्त खड्ग और कालेपानी की विशदगाथा "कालापानी" दो ग्रंथ बहुत महत्त्वपूर्ण हैं।

१९३७ में बम्बई में कांग्रेस मन्त्रिमण्डल बना और उसमें जमनादास मेहता एक मन्त्री इस शर्त पर मंत्रीमण्डल में सम्मिलित हुए कि "मंत्रीमण्डल बनते ही वीर सावरकर को नजरबन्दी से मुक्त किया जाये।" इस शर्त के कारण वीर सावरकर १० मई, १९३७ को मुक्त कर दिए गये। यह वही पवित्र दिन था जिस दिन मेरठ में सन् ५७ का स्वातन्त्र्य समर प्रारम्भ हुआ था। दो जन्म के काले पानी के दण्ड पाए हुए वीर सावरकर स्वतन्त्र हो गये। इसका सम्पूर्ण श्रेय जमनादास मेहता को ही है। सावरकर की युक्ति से सारे देश में प्रसन्नता की लहर दौड़ गई। सभी पार्टियों ने उनका स्वागत किया। सावरकर के आगे यह समस्या थी कि वह किस राजनीतिक पार्टी में सम्मिलित हो। उन्होंने कांग्रेस के मान से मुख मोड़कर हिन्दू महासभा के मान में ही स्वाभिमान समझा। श्रीकृष्ण के समान दुर्योधन के स्वादु भोजन को त्यागकर महात्मा विदुर का ही ग्रहण किया। जिस प्रकार नैपोलियन ने रोम के पोप से राज्याभिषेक न कराकर राजमुकुट अपने शिर पर जनता की सहानुभूति से रखा था, उसी प्रकार सावरकर ने भी कांग्रेस के पोप गांधी जी द्वारा राष्ट्रीयता वा देशभक्ति का प्रमाणपत्र न लेकर अपने ही उद्योग से भारत का हृदय सम्राट् बनने के लिए घोषित किया "मैं हिन्दू राष्ट्र का नव-निर्माण कर सच्ची राष्ट्रीयता का प्रचार करूँगा।" १९३७ में दिसम्बर मास में हिन्दू महासभा के अहमदाबाद के महा अधिवेशन का प्रधान वीर सावरकर को बनाया गया। हिन्दू राष्ट्रपति के पद से वीर सावरकर ने अहमदाबाद में घोषणा की "शताब्दियों की पराधीनता और कांग्रेस के मिथ्यावाद के कारण हिन्दू अपने ही देश में अपने को ही हीन समझने लगे हैं। हिन्दू राजनीतिक संघर्ष में योग्यतम सिद्ध हुए हैं। हम कायरों की नहीं बलवान् वीरों की सन्तान हैं। कई सौ वर्ष तक ग्रीक, शक, यहूदी, हूण आदि ने भारत पर भयङ्कर आक्रमण किए। हमने वीर पुरुषों की सेनायें काट डालीं, उनका भारत से चिह्न ही मिटा डाला। ये जातियां कहां हैं ? मुसलमानों ने हमारे ऊपर आपस की फूट के कारण ६०० वर्ष तक हमें मिटाने के लिए हृदय हिला देने वाले लोमहर्षक भीषण अत्याचार किन्तु समय आया कि यहां के वीरों ने मुगलसाम्राज्य को छिन्न भिन्न कर सारे भारत पर दूर अटक दुर्ग पर आर्यों की धर्मध्वजा फहराई। महाराष्ट्र के वीरों ने दिल्ली जीतकर मुगल तख्त के टुकड़े कर डाले। आपस की फूट और चालाकी से हमारे राज्य को फिर अंग्रेजों ने हथिया लिया। १८५७ के स्वातन्त्र्य संग्राम में हमारे वीरों ने अपूर्व वीरता दिखाई। दुर्भाग्य से कुछ देशद्रोहियों के द्रोह से हम सफल नहीं हुए किन्तु एक दिन इसी पद से मैं अथवा मेरे से आगे की सन्तति अंग्रेजों को हटाकर फिर स्वतन्त्र हिन्दू राज्य की स्थापना करेगी।" इसके पश्चात् जो हिन्दू सभा एक धार्मिक संस्था समझी जाती थी उसने अब उग्रराजनीतिक संस्था का रूप धारण कर लिया। मृत हिन्दूसभा में वीर सावरकर ने जीवन फूंक दिया। इस हिन्दू राष्ट्र के नवीन सन्देश को लेकर भारत के प्रायः सभी प्रमुख नगरों में वीर सावरकर ने भ्रमण किया। सर्वत्र हिन्दू राजनीति का प्रचार किया। सब स्थानों पर हृदय

से जनता ने भव्य स्वागत किया। दिल्ली में इनका बड़ा भारी सम्मान किया गया। ५० सहस्र व्यक्ति इनका भाषण सुनने आये। १९३८ में आपको पुनः हिन्दूराष्ट्रपति चुना गया। नागपुर में इनकी ६ मील लम्बी शोभायात्रा निकली। हजारों हिन्दू युवकों ने सैनिक वेष में आपका स्वागत किया। रजतछत्र वाले रथ में वीर सावरकर बैठे हुए थे, ऊपर से विमान पुष्पवृष्टि कर रहा था। नागपुर के अधिवेशन में आपने अध्यक्ष पद से हिन्दुओं का एक राष्ट्र होने की घोषणा की। आपने कहा "हमें सम्प्रदाय कहना मूर्खता है, हम स्वतः एक राष्ट्र हैं। जिस प्रकार जर्मनी में जर्मन लोग राष्ट्र हैं और यहूदी सम्प्रदाय है। कांग्रेस हिन्दू सभा को सम्प्रदाय कहती है वास्तव में मुसलमान, ईसाई, पारसी आदि सम्प्रदायों की खिचड़ी होने से कांग्रेस स्वयं सम्प्रदाय है।" सावरकर ने मुस्लिम लीग की अन्तर्राष्ट्रीय प्रवृत्तियों का विरोध करते हुए चेतावनी दी कि "यदि मुसलमान देश के विरुद्ध आचरण करेंगे तो हिन्दुओं में कोई हिटलर हो, इन्हें देश से यहूदियों के समान भारत से बाहर करेगा।" इसी अधिवेशन में निजाम राज्य के विरुद्ध सत्यागह करने की हिन्दू महासभा ने भी घोषणा की। वर्षों से निजाम राज्य में आर्यों (हिन्दुओं) पर भयंकर अत्याचार हो रहे थे। वहां पर हिन्दुओं की मातृ-भाषा नष्ट करके बलपूर्वक इन पर उर्दू थोंपी गई थी। धार्मिक उत्सव करने और नगर कीर्तन निकालने पर प्रतिबन्ध था। भग्न मन्दिरों का निर्माण भी नहीं हो सकता था। फिर नए मन्दिर बनाने की बात तो दूर थी। विद्यार्थी अपने आश्रम में "वन्दे मातरम्" गान नहीं गा सकते थे। धर्म प्रचार विशेष रूप से वैदिक-धर्म-प्रचार में भीषण बाधायें थीं, बाहर से राज्य में आर्यसमाज के प्रचारक नहीं आ सकते थे। हवनकुण्ड तक नहीं बना सकते थे। कहीं-कहीं तो हवन करने और मृतक संस्कार करने पर भी दण्ड दिया जाता था। सैकड़ों आर्यसमाजियों को झूठे दोष लगाकर निजाम ने जेल में डाल रखा था। हजारों की संख्या में अरब से हिन्दुओं पर अत्याचार करने के लिए बुला रखे थे, हिन्दुओं पर मुस्लिम आततायी खुले रूप में भीषण अत्याचार करते थे किन्तु उनके विरुद्ध राज्य कोई कार्यवाही न करके उल्टा उनको प्रोत्साहन देता था। हिन्दू बन्दियों को बलपूर्वक मुसलमान बनाया जाता था। राज्य की ओर से ९५ प्रतिशत दान मुस्लिम संस्थाओं को दिया जाता था। निजाम राज्य लाखों रुपया हिन्दुओं को मुसलमान बनाने के लिए खर्च करता था। आर्यसमाज का संगठन हैदराबाद में बड़ा शक्तिशाली था जो हिन्दुओं की सर्व प्रकार की रक्षा करने में अपनी शक्ति लगा रहा था। वह इस अत्याचार के प्रतीकार के लिए खूब यत्न कर रहा था। आर्यसमाज के अनेक होनहार युवक मुसल-मानों द्वारा कत्ल किये जा चुके थे। कितने ही विद्वान्, प्रचारक और होनहार युवक जेल में सड़ रहे थे। आर्यसमाज ने जनता की ओर से प्रार्थना-पत्र भेजे। रेजीडेन्ट वायसराय तक से प्रतिनिधि मिले। सब वैधानिक उपाय विफल होने पर दिसम्बर १९३८ में आर्यसमाज ने अखिल भारतीय आर्य-महासम्मेलन करके "धर्मयुद्ध" अर्थात् सत्याग्रह की घोषणा कर दी। वीर सावरकर ने हिन्दू सभा की ओर से सर्वाधिकारी बनकर सत्याग्रह चलाया।

हैदराबाद का सत्याग्रह

यह आन्दोलन यथार्थ में धर्मयुद्ध था। यह धार्मिक युद्ध बड़ी वीरतापूर्वक आर्यसमाज ने लड़ा। हिन्दू महासभा ने भी वीर सावरकर की प्रेरणा और अध्यक्षता में अपनी आहुति डाली। सोलह सहस्र वीर योद्धा धर्म के दीवाने बनकर दक्षिण की ओर बढ़े। लोग विस्मित थे। शत्रु का हृदय कांप गया। १२ हजार* आर्यसमाजी धर्मध्वज लेकर निजाम राज्य के बन्दीगृह में अतिथि बनें। ४ हजार हिन्दुओं

ने निजाम राज्य की जेलों के कष्ट सहे। सब हिन्दुओं की सहानुभूति इस धर्मयुद्ध के साथ थी। यह युद्ध हिन्दुओं को एक सङ्गठन में बांधने वाला बना। सब भेद-भाव भुलाकर हिन्दुओं ने इसमें सहयोग दिया। हजारों आर्यवीर और हिन्दू अपने प्रियजनों और सम्बन्धियों को छोड़कर अपने प्राणों की बाजी लगाकर घरबार छोड़कर स्पेशल ट्रेन भरकर हैदराबाद के पीड़ित हिन्दुओं की सहायतार्थ चल पड़े, जिन्हें उन्होंने कभी देखा तक न था। सभी प्रान्तों से धनी व निर्धन और भिन्न-भिन्न सम्प्रदायों के लोग भी ओ३म् की पताका लेकर निकल पड़े। निजाम की जेलें भर गईं। कैम्पों में जेलों की रचना करनी पड़ी। सत्याग्रहियों ने अकथनीय कष्ट सहे। किरचों और लाठियों की मार भूख-प्यास और मृत्यु तक का सामना करना पड़ता था। दरजनों वीर शहीद हुए, सब कुछ सहा किन्तु पीछे पग नहीं हटाया। इस धर्मयुद्ध करने वालों को न तो कोई वेतन मिलता था न उनके परिवार को कोई पेन्शन मिलती थी। सब अपने काम-धन्धे नौकरियां छोड़कर इस धर्मयुद्ध में सम्मिलित हुए। ये सोलह सहस्र वीर योद्धा संसार के किसी भी युद्ध को लड़ने की अपेक्षा अधिक वीर और श्रेष्ठ सैनिक थे। इनका त्याग और वीरता सराहनीय है। हिन्दुओं के मन में ऐसी हीन भावनाओं ने जड़ जमा रखी थी कि कोई भी आन्दोलन चाहे वह देशहित की दृष्टि से कितना ही पवित्र क्यों न हो जब तक कांग्रेस उसे राष्ट्रीय होने का प्रमाण-पत्र न दे दे तब वह सफल नहीं हो सकता था। कांग्रेस के नेताओं ने इस का विरोध और निन्दा की। किन्तु जब यह सफल होता दिखाई देने लगा तो दबी जबान से इसकी सराहना की। यहां तक कि प्रारम्भ में महात्मा गांधी ने भी इसकी निन्दा की थी किन्तु पीछे विवश हो अपनी सहानुभूति दिखाई। कांग्रेस का मिथ्याभिमान और हिन्दुओं की हीन भावना इस आन्दोलन से दूर हुई। कांग्रेस ने इस आन्दोलन को साम्प्रदायिक असामयिक, गोलमाल गड़बड़घुटाला आदि शब्दों से सम्बोधित किया था। जैसे कि आजकल हिन्दी रक्षा आन्दोलन को बतला रही है। लोगों को इसमें भाग लेने से भी रोका था। पीछे इस पाप के लिए इन्हें प्रायश्चित्त करना पड़ा। कांग्रेस हैदराबाद में उसी समय सत्याग्रह करके निजाम राज्य में बुरी तरह हारी थी। इन्हें आर्यसमाज की विजय अच्छी न लगी। उसी समय छोटे से राज्य राजकोट से हार खाकर कांग्रेस का वीर नेता खाली हाथ लौटा था। उसी समय ब्रिटिश सरकार कांग्रेस व कांग्रेस सरकार के भयङ्कर विरोध और प्रतिबन्ध के होते हुए भी भारत के सबसे बड़े और सबसे अधिक निरंकुश राज्य हैदराबाद ने आर्य समाज के आगे घुटने टेक दिए। वीर सावरकर के कारण इसका श्रेय हिन्दूसभा को भी मिला। छः मास की लम्बी लड़ाई के पश्चात् १६ जुलाई को नवीन सुधारों की घोषणा कर आर्यसमाज की मांगों को स्वीकार किया। सब सत्याग्रहियों को हलवा खिलाकर और मार्ग व्यय तथा घर तक का रेल का किराया देकर विदा किया। वीर सावरकर और हिन्दू महासभा की भी इससे दक्षिण भारत में विशेष तथा सामान्य रूप से सर्वत्र प्रसिद्धि हुई। सत्याग्रह समाप्त ही हुआ था कि अंग्रेजों का जर्मन से महा-युद्ध प्रारम्भ हो गया।

भारत में सम्राट् के प्रतिनिधि वायसराय लार्ड लिनलिथगो साहब ने भारत की ओर से जर्मनी के युद्ध की घोषणा कर दी। ब्रिटेन को आपत्ति में फंसा देखकर भारत की विविध संस्थाओं ने सहयोग देने के लिए अपनी शर्तें ब्रिटिश सरकार के आगे रखीं। उसी समय हिन्दूसभा की ओर से वीर सावर-कर ने घोषणा की कि "पराधीन होने से भारत की रक्षा का विषय अंग्रेज और हिन्दू दोनों के लिए समान है। अंग्रेज हिन्दुओं से सहायता प्राप्त करना चाहते हैं, वचन दें कि साम्प्रदायिक निर्णय में संशोधन किया जायेगा। सेना में युद्धप्रिय और अयुद्धप्रिय का भेद हटाकर राष्ट्रीय दृष्टि से भर्ती

की जायेगी। भारत का भावी विधान हिन्दूसभा की स्वीकृति के बिना नहीं बनाया जायेगा। केन्द्र में उत्तरदायित्वपूर्ण शासन की स्थापना की जायेगी तथा युद्ध समाप्ति पर भारत को औपनिवेशिक स्वराज्य दे दिया जायेगा।" जनता से सहयोग लेने के लिए विविध संस्थाओं से भेंट की। ९ अक्तूबर, १९३९ को वायसराय ने हिन्दू सभा के प्रधान सावरकर से एक घण्टे तक वार्तालाप किया। समय का चक्र है जिस व्यक्ति को अंग्रेजी सरकार ने दो जन्म का कारावास दिया था, जिसे जीवित देखना वह पाप समझती थी, आज उसी व्यक्ति से उसी सरकार का प्रतिनिधि, हाथ पसार कर सहायतारूपी जीवन की भिक्षा मांग रहा है। पेशवा युग के पश्चात् यह प्रथम अवसर था जब अखिल हिन्दू राष्ट्र ने एक व्यक्ति के रूप में अपनी मांगें विदेशी सरकार के सम्मुख रखी थीं। इस भेंट से सावरकर का मान सारे भारतवर्ष में राजनीतिक दृष्टि से और भी बढ़ गया। १९३९ में वीर सावरकर तीसरी बार हिन्दू सभा के सभापति चुने गये। कलकत्ता में यह अधिवेशन बड़े ठाठ-बाट के साथ हुआ। भारत भर तथा बाहर बर्मा, चीन आदि के एक लाख व्यक्तियों ने इसमें भाग लिया। कलकत्ता में हिन्दू राष्ट्र की शासन प्रणाली की रूपरेखा रखी। इस भाषण का व्यापक प्रभाव पड़ा, सैकड़ों व्यक्ति जो कांग्रेस के मिथ्या राष्ट्रवाद में फंसे हुए थे उसे त्यागकर हिन्दूसभा में सम्मिलित होगए। भारत भर के पत्रों ने इस भाषण पर अग्रलेख लिखे। विरोधियों ने भी वीर सावरकर की उग्र देशभक्ति की प्रशंसा की। वायसराय और नेपाल नरेश उस समय कलकत्ता में ही थे। इस अधिवेशन का प्रभाव उन पर भी पड़ा। बङ्गाल के प्रधानमन्त्री मौ० फजलुलहक भी प्रभावित हुए बिना न रह सके और बङ्गाल प्रान्त के हिन्दू सभा के अधिकारियों से मिलकर समझौता करने को व्याकुल होगये। वीर सावरकर जी के कारण हिन्दू महासभा का प्रभाव खूब बढ़ा। हिन्दुत्व के आन्दोलन के आधार पर वीर सावरकर के व्यक्तित्व, त्याग, तप, धैर्य, देशभक्ति और इनकी अनुपम वक्तृत्व-शक्ति ने विशेष प्रभाव डाला। ईशकृपा से वीर सावरकर शतवर्ष से भी अधिक आयु को प्राप्त हों और भारतवर्ष के उत्थानार्थ अपनी विद्या-योग्यता और अनुभव से नवयुवकों को नया जीवन प्रदान करें यही प्रभु से प्रार्थना है।

@VaidicPustakalay

सन् १८५७ के स्वातन्त्र्य-संग्राम के पश्चात्

जनक्रान्ति के नेता

श्री वासुदेव बलवन्त फड़के

(ब्र० धर्मपाल)

आपका जन्म १८४१ ई० के लगभग शिर ढापे (महाराष्ट्र) में हुआ था, आप बाल्यकाल में युद्ध की कहानियां बड़े चाव से सुनते थे। वस्तुतः इन वीर-रस-पूर्ण कथाओं का प्रभाव हमारे चरित्रनायक पर पूर्ण रूपेण पड़ा। जब सन् १७७६ में पूना में भयंकर अकाल पड़ा तब जनता को बहुत दुःखी देखकर आप के मन में विद्रोह की भावना जागृत हुई। कुछ दिनों के पश्चात् न्यायमूर्ति रानाडे का स्वदेश पर व्याख्यान हुआ। उस व्याख्यान को सुनकर आपका मन और भी प्रभावित हुआ और आपने प्रतिज्ञा की कि—"मैं इन अंग्रेजों को भगाकर जनता के राज्य की स्थापना करूंगा"। इस प्रतिज्ञा को पूर्ण करने के लिए आपने पूना में शस्त्रचलाने का तथा मल्लविद्यादि का अभ्यास किया, एवं अपने घर को ताला लगाकर निज धर्मपत्नी (गोपिका बाई) को त्यागकर नासिक खान देश के रामोशी एवं नाईक तथा भीलों की सहायता से ब्रिटिश सरकार के विरुद्ध बीड़ा उठाया। इस प्रकार विद्रोह करते हुए वासुदेव बलवन्त फड़के को जब सरकार ने देखा तो बलवन्त फड़के को पकड़ने वाले के लिए ४०००) रुपया पारितोषिक घोषित किया और एक सैन्य दल थानेदार सहित उनका पीछा करने के लिए लगा दिया। बहुत दिनों तक फड़के उनके हाथ न आये परन्तु कोई आदमी कहां तक दौड़ सकता है, आखिर जब वे बहुत थक गये, तब एक वृक्ष के नीचे बैठ गये। दुर्भाग्यवश कुछ देर के बाद निद्रादेवी ने उनके ऊपर आक्रमण किया, इतने में ही पुलिस आगई और थानेदार साहब आपकी छाती पर बैठ गये आपकी एक तलवार एवं बन्दूक छीन ली और आपको गिरफ्तार कर लिया गया। आपके ऊपर अभियोग चलाया, वकील आपको बहुत चतुर मिला हुआ था, परन्तु आपकी अभिलाषा वकील की चालों से बन्धनमुक्त होने की नहीं थी अतः आपने स्पष्ट घोषणा की कि—अंग्रेजों को देश से बाहर निकालकर हिन्दू जनतन्त्र की स्थापना करना ही मेरा उद्देश्य है। अन्त में न्यायाधीश ने आपको राज-द्रोह का दोषी ठहराया और ७ नवम्बर १८७९ को आजीवन काले पानी का दण्ड घोषित कर एडन की जेल में रखा गया और वहीं आपका देहान्त हुआ।

महात्मा श्री गोपालकृष्ण गोखले

लोकमान्य तिलक की भांति गोखले का जन्म भी महाराष्ट्र की उसी प्रख्यात चितपवन ब्राह्मण जाति में ही हुआ था। इनका जन्मस्थान रत्नागिरि जिले के चिपलूण तालुके का काटलुक नामक एक छोटासा गांव था और जन्मतिथि थी ९ मई, सन् १८६६ ई०। विद्यार्थी काल में गोखले की आर्थिक दशा इतनी अधिक खराब थी कि दीपक जलाने तक को पैसा न रहने के कारण वे प्रायः सड़क के लैम्पों के नीचे बैठकर ही पढ़ा करते थे। वे बहुत ही बुद्धिमान् एवं चतुर थे। यही कारण था कि आपने अल्पायु में ही बी० ए० परीक्षा पास कर ली थी, उस समय आपकी उम्र १८ वर्ष की थी। आप महादेव गोविन्द रानाडे को गुरु मानते थे और इन्हीं की प्रेरणा से आपने जब १८९५ में पूना में कांग्रेस अधिवेशन हुआ तब स्वागतसमिति के मन्त्री पद का भार उठाया था। १९०५ में काशी में जो

कांग्रेस का अधिवेशन हुआ उसके आप सभापति बने थे। १९०५ में ही आपने राष्ट्र सेवा संस्था "भारत सेवा समिति" का शिलान्यास किया और आपने भारत को स्वतन्त्र कराने के लिए जो दूसरी बार विलायत की यात्रा की उस यात्रा में आपने ४५ व्याख्यान दिये। अनगिनत लेख लिखे। पच्चीसों राजनीतिज्ञों तथा पत्रकारों से भेंट की थी। उनके व्यक्तित्व का इंग्लैंड वालों पर कितना जबरदस्त प्रभाव पड़ा था इसका कुछ अनुमान "नेशनल पत्र" के महान् सम्पादक के शब्दों से कर सकते हैं। जिसमें उन्होंने कहा था कि "गोखले की टक्कर का कोई राजनीतिज्ञ आज के दिन इंग्लैंड में नहीं है।" यही कारण था कि महात्मा गांधी गोखले को अपना राजनीतिक गुरु मानते थे। तीसरी बार फिर गोखले विलायत गये, उस समय आप ब्रिटिश सरकार से मिले और भारत में जो दमनचक्र चल रहा था। उसकी तीव्र निन्दा करते हुए, जांच की मांग की थी। आपने दक्षिणी अफ्रीका के सत्याग्रह-संग्राम की सहायता के लिये लाखों रुपया एकत्रित करवाया था, अतः अनुमान किया जाता है कि यदि वह अधिक दिनों जीवित रहते तो महात्मा जी के भावी संग्राम के प्रति उनका क्या रुख होता! परन्तु विधाता को स्वीकार न था कि वह महान् जनसेवक बहुत काल तक हमारे बीच में रहता। आप १९ फरवरी १९१५ ई० के दिन स्वतन्त्र होकर ४७ वर्ष की आयु में इस संसार से सदा के लिए विदा होगये। आपकी मृत्यु के बाद आपके प्रबल आलोचक महात्मा तिलक ने कहा था, 'वह थे सचमुच ही भारत के हीरे' "महाराष्ट्र के रत्न" और देश-भक्तों में शिरोमणि और यदि कुछ नहीं तो उनके द्वारा प्रस्थापित आजन्म देश-सेवा और त्याग का व्रत लेने वाले चुने हुए लोकसेवियों की वह टोली 'भारत सेवक समिति' ही उनके नाम को अमर रखने के लिए पर्याप्त होगी।

श्री बलवन्त शंकर लिमये

आपका जन्म सन् १८८१ में हुआ था। आप बीजापुर जिले में भतकुमगी नामक देहात के रहने वाले थे। भतकुमगी में आप जागीरदार थे। प्रारम्भिक शिक्षा समाप्त करके आप पूना पहुंचे। बी० ए० पास होकर लोकमान्य तिलक की सहमति से अन्य कार्यकर्त्ताओं के अनुसार आप भी सार्वजनिक कार्य में जुट गये। राष्ट्रीय विचार से सैन्य में भी भरती होने का आपने विचार किया परन्तु आप सफल न हो सके। हुतात्मा चाफेकर बन्धु के सहयोगी न्यायमूर्ति रानाडे आपके सहपाठी थे, उनके ही सहवास से लिमये के मन में क्रान्तिकारी विचार उत्पन्न हुये। १९०७ में शोलापुर में आपने स्वराज्य नामक राष्ट्रीय साप्ताहिक पत्र चालू किया। क्रान्तिकारियों के राजकुमार वीर सावरकर के 'अभिनव भारत' के मेले की कुछ प्रश्नावली इसी मुद्रणालय में छपवाई थी। बंगाल के क्रान्तिकारी श्री होतीलाल वर्मा तिलक से मिले और आपकी ही सूचना अनुसार वर्मा जी शोलापुर गये थे। पाण्डीचेरी में बम का कारखाना चालू करने के लिये कुछ क्रान्तिकारी युवकों की सहायता करने का उत्तरदायित्व श्री लिमये ने ही लिया था। वीर सावरकर जी का विश्वविख्यात 'स्वातन्त्र्य समर' ग्रन्थ शासन के डर से छापने की हिम्मत किसी में नहीं थी। श्री लिमये जी उसके लिए आगे बढ़े। ग्रन्थ के १६-१७ फार्म छप भी चुके थे। परन्तु उसी समय 'स्वराज्य' साप्ताहिक में निकले किसी राजद्रोही लेख के अभियोग में श्री लिमये तथा मुद्रणालय के प्रबन्धक "श्री सायण्णानरम्" गानला? गिरफ्तार कर लिये गये, छापाखाने की तलासी ली गयी। उसमें स्वातन्त्र्य समर के फार्म मिल गये। राजद्रोही लेख के अभि-योग में लिमये जी को साढ़े तीन वर्ष का सश्रम कारावास का दण्ड दिया गया। श्री गानला जी को १ वर्ष की सजा हुई। लिमये जी के विषय में शासकों को बड़ी चिढ़ थी इसी से जेल में भी 'अभिनव

भारत संगठन' की जानकारी प्राप्त करने के लिये लिमये जी को बहुत सताया गया किन्तु आपने उनको किञ्चिन्मात्र भी परिचय नहीं दिया। आप स्वतन्त्रता प्राप्ति के लिये निरन्तर संघर्ष करते रहे।

अमर शहीद विष्णु गणेश पिङ्गले

विष्णु गणेश पिङ्गले का जन्म पूना के एक पहाड़ी प्रांत में हुआ था। इनके पिता का नाम गणेश पिङ्गले था। दक्षिण भारत में यह एक प्रथा है कि पहले तो अपना नाम लिखा जाता है तदनन्तर पिता का नाम और गोत्र का, इसी प्रकार विष्णु इनका नाम था एवं गणेश इनके पिता का नाम और पिंगले गोत्र था।

विष्णु गणेश पिंगले बड़े साहसी एवं चतुर थे। ये बाल्याकाल से बड़ी तेज प्रकृति के और तीक्ष्ण बुद्धि के थे। इनके पिता धार्मिक प्रकृति के एवं आर्यसमाजी विचार के थे। अतः इन्होंने इनको संस्कृत एवं मराठी भाषा का अभ्यास करवाया। इनके पिता धार्मिक ग्रंथों का स्वाध्याय किया करते थे। उनकी देखा देखी धार्मिक पुस्तक पढ़ने की इनकी भी रुचि इस ओर बढ़ी। जब गणेश पिंगले बालक ही थे तब इन्होंने समस्त गीता कंठाग्र कर ली थी। गीता के अध्ययन से विष्णु गणेश पिंगले को वैराग्य होगया और साधु बनकर घर से निकल गये। घर से निकलने के पश्चात् कुछ समय तक विष्णु गणेश पिंगले भारत के प्रसिद्ध तीर्थों एवं स्थानों में घूमते रहे। पिंगले बाल्यकाल से ही बुद्धिमान् थे, अतः भ्रमण से ज्ञान में परिपक्वता आगई और भ्रमण करते करते अपने घर चले गये। इस प्रकार घूमते घूमते इनको जीवन में एक प्रकार की घृणा हुई। इस घृणा से इन्होंने अंग्रेजी अध्ययन का अभ्यास किया। कुछ ही दिनों में इन्हें अंग्रेजी का पर्याप्त ज्ञान होगया।

मित्रों के कहने से इंजिनियरिंग पढ़ने के लिये इन्होंने अमेरिका जाने की घर वालों से इच्छा प्रकट की। घर वालों ने इनको जाने की आज्ञा प्रदान की। पिंगले घर वालों से विदाई लेकर अमेरिका चले गये और शिक्षा प्राप्त करने लगे।

अमेरिका में भी भारतीयों के हृदय में विप्लव की आग भड़क रही थी। वहां पर विप्लववादियों का एक अच्छा दल बना हुआ था। जो प्रतिदिन अनेक स्थानों पर जाकर संगठन एवं प्रचार करता था पिंगले में भी क्रांति की लहरें हिंडोरे लेने लगीं। उसी समय इन्होंने क्रान्ति के तत्कालीन साहित्य का अध्ययन किया एवं साथ ही देश की परिस्थिति का भी अध्ययन किया। जब इन्होंने अध्ययन करके भारत की अन्य स्वतन्त्र देशों से तुलना की तो इनका मन बहुत क्षुब्ध होगया। तभी से इनको भारत की परतन्त्रता अखरने लगी। भारत को परतंत्रता के बन्धन से मुक्त करना चाहिये, इस प्रकार के भाव आपके मन में आगये और आप तत्काल भारत आकर घर जाने की चिंता न करके सीधे बंगाल गये, वहां पर विप्लव दल का पता लगाया एवं पंजाब की क्रान्तिकारी परिस्थिति का भी ज्ञान किया। उस समय बंगाल एवं पंजाब के दलों का सम्बन्ध होगया था। विष्णु गणेश पिंगले बंगाल में रास-विहारी बोस से मिले। उस समय रासबिहारी बोस के हाथ में उत्तर-भारत के विप्लध दल का कार्य-भार था। गणेश पिङ्गले को पंजाब विप्लव दल के लिये बमों की आवश्यकता थी। अतः उसने बंगाल के दलों के साथ मेल किया। पंजाब में सचीन्द्रनाथ सान्याल पंजाब की स्थिति जानने के लिये एवं वहां की दशा का पूर्णरूपेण अध्ययन करने के लिये भ्रमण कर रहे थे। उस समय सान्याल का पिंगले के साथ साक्षात्कार हुआ। पिंगले ने पंजाब की सहायता के लिये सान्याल को कहा। श्री सान्याल

वंबा देकर फिर बंगाल चला गया। पंजाब से निश्चित समय पर बंगाल न जाने से सहायता न मिल सकी। पिंगले के कारण पंजाब विप्लव दल में फिर से नया जीवन आ गया। पिंगले के काम को देखकर रासबिहारी बोस एवं सान्याल को पूर्ण विश्वास हो गया था कि अब आन्दोलन अवश्य सफल हो जायेगा।

विष्णु गणेश पिंगले बंगाल से लौटकर बनारस चले गये। वहां पर यह निर्णय हुआ कि बम तो आप लोगों को पर्याप्त मात्रा में प्राप्त हो सकते हैं परन्तु उनके बनाने में रुपये अधिक लगते हैं अतः रुपयों की आवश्यकता है। पिंगले फिर पंजाब आये और कर्तारसिंह, पृथ्वीसिंह आदि कार्यकर्ताओं से मिले। सप्ताह में पंजाब का सब समाचार जानकर बनारस वापिस चले गये। जाते समय पंजाब के क्रान्तिकारियों ने पिंगले से कहा कि—पंजाब में रासबिहारी बोस को एक बार अवश्य भेजें। परन्तु रासबिहारी पंजाब में न आ सके उनके स्थान में शचीन्द्रनाथ सान्याल एवं पिंगले ने पंजाब की यात्रा की, सान्याल पंजाबी नहीं जानते थे किन्तु पिंगले जानते थे क्योंकि पिंगले के साथ अमेरिका में पंजाबियों का मेल था। यहां पर पिंगले ने संगठन दृढ़ किया।

पिंगले दक्षिणी थे किन्तु अपनी कार्य कुशलता के कारण पंजाब में नेतृत्व कर रहे थे। उस समय पंजाब विप्लव-दल के प्राणस्वरूप कायकर्ता श्री कर्तारसिंह एवं श्री विष्णु गणेश पिंगले ही माने जाते थे। शचीन्द्रनाथ सान्याल पंजाब की यात्रा करके बनारस चले गये और वहां पर पंजाब की व्यवस्था समझाने पर रासबिहारी बोस स्वयं पंजाब आये। पंजाब में विप्लव करने की तिथि २१ फरवरी थी। दिन धीरे-धीरे समीप आता गया। मनुष्यों में अपूर्व उत्साह था। क्रान्तिकारी २१ फरवरी की प्रतीक्षा में थे। क्रान्तिकारियों का समस्त प्रबन्ध हो चुका था। भारत के एक कोने से दूसरे कोने तक जोरों से क्रांति की आयोजना हो चुकी थी। परन्तु कौन अरिष्ट को जानता है? और कौन जानता है कि कल क्या होने वाला है? देश-द्रोहियों के कुकृत्यों से क्रान्तिकारियों का सारा प्रयत्न विफल हो गया। पुलिस के एक भेदिये ने भण्डा फोड़ कर दिया। सबकी आशाओं पर पानी फिर गया। क्रान्तिकारियों की धड़ाधड़ गिरफ्तारी होने लगी।

कर्तारसिंह सीमा लांघकर चला गया, एवं रासबिहारी और पिङ्गले बनारस को चल दिये। मार्ग में पिंगले के हृदय में विविध भावनाएं उठने लगीं। आशावादी पिङ्गले पीछे हटना अपना अपमान समझता था। पिंगले जीवन को धधकती आग में झोंक देना खेल समझता था। पिंगले रासबिहारी के रोकने पर भी मेरठ में उतर गया। वहां उतर कर छावनी में घुस गया और विद्रोह की आग भड़काने लगा।

विश्वासी मनुष्य भी कभी न कभी विश्वासघात कर जाता है। यही बात पिंगले के साथ बनी। पिंगले का एक विश्वास-पात्र मुसलमान हवलदार था। पिंगले उसकी प्रत्येक बात पर विश्वास करता था। उस हवलदार ने पिंगले को इस कार्य में सहायता देने की बहुत आशा दिलाई एवं विप्लव के कार्यों के लिए खूब उत्साह दिलाता रहा। परन्तु उस नरपिशाच कृतघ्नी ने एक दिन वीरप्रवर विष्णु गणेश पिंगले को पकड़वा दिया। जिस समय पिंगले गिरफ्तार हुआ उस समय उसके पास १० भयंकर बम थे। गिरफ्तारी के पश्चात् पिंगले पर अभियोग चलाया गया। अदालत में फांसी का दण्ड मिला। १६ नवम्बर १९१५ ई० फांसी का दिन निश्चित हुआ। गणेश पिंगले से पूछा गया "तुम्हारी क्या अभिलाषा है" पिंगले ने उत्तर दिया—दो मिनट प्रार्थना करना चाहता हूं। उसकी हथकड़ी खोल

दी गयी। हथकड़ी खोल देने के पश्चात् पिंगले हाथ जोड़कर प्रार्थना करने लगा। "भगवान् आज हम जिस लिए जीवन की बलि दे रहे हैं उसकी रक्षा का भार तुम पर है। एक यही इच्छा है कि भारत स्वतन्त्र हो" इतना कहकर उछलकर फांसी के फन्दे को स्वयं गले में डालकर इस लोक से परलोक पहुंच गया।

रौलट रिपोर्ट में लिखा था कि "विष्णु गणेश पिंगले के पास जो बम थे वे इतने भयंकर थे कि एक बम आधी छावनी को समाप्त कर सकता था।"

इसकी वीरता के विषय में रासबिहारी बोस ने अपनी डायरी में लिखा था कि "यदि मैं यह जान पाता कि पिंगले मुझे फिर न मिलेगा तो मैं उसको लाख कहने पर भी मेरठ न उतरने देता। वह बड़ा बहादुर एवं सदैव आज्ञाकारी सिपाही की भांति कार्य करने वाला था" हम सबको इसके जीवन से विशेष शिक्षा ग्रहण करनी चाहिए। जिससे हम भी जब भारत माता पर संकट आये तो प्राणों की आहुति दे सकें।

जैक्शन हत्याकाण्ड में शहीद श्री अनन्त लक्ष्मण कान्हेरे

श्री कान्हेरे जी रत्नागिरि जिले में खेड़ा तहसील के अयनी नामक ग्राम के निवासी थे। घर की गरीबी के कारण आप अपने मामा के परिवार में रहा करते थे। आगे चलकर आप औरङ्गाबाद के आर्टस् स्कूल में प्रविष्ट हुए। उसी 'अभिनव भारत' नामक गुप्त संगठन के आप सदस्य हुए।

क्रान्तिवीर बाबाराव सावरकर स्वातन्त्र्य वीर सावरकर के बड़े भाई को, आजीवन कारावास की सजा सुना दी गयी। इस सजा का बदला लेने के हेतु नासिक के जिलाधिकारी मि० जैक्शन पर गोली चलाई। २१ दिसम्बर १९०९ को नासिक के नाट्यगृह में किर्लोकिर संगीत नाटक कम्पनी का 'शारदा' नाटक रंगमंच पर चल रहा था। नाटक देखने के लिए जिलाधिकारी जैक्शन भी पधारे थे। अनन्त क न्हेरे ने लगातार सात गोलियां मारकर जैक्शन साहब को वहीं समाप्त कर दिया। अनन्त कान्हेरे को वहीं गिरफ्तार कर लिया गया। अभियोग में अनन्त कान्हेरे ने अपने वक्तव्य में स्पष्ट रूप से कह दिया कि बाबा सावरकर को दी गयी आजीवन कारावास की सजा का बदला लेने के लिए ही मैंने जैक्शन की हत्या की है। जैक्शन हत्याकाण्ड के मामले में सात व्यक्तियों पर मुकद्दमा दायर किया गया। ७ मार्च सन् १९१० को बम्बई हाईकोर्ट ने अपना निर्णय सुनाया। उसके अनुसार अनन्त कान्हेरे गोपाल कर्वे और देशपाण्डे को फांसी की सजा दी गयी। श० रा० सोमण वामणराव जोशी और गणु वैद्य को आजीवन कारावास और ऊडुशंकर जोशी को २ वर्ष की सजा दी गयी। १९ अप्रैल १९१० को ढाके की जेल में, कान्हेरे गोपाल कर्वे और देशपाण्डे को फांसी पर लटका दिया गया।

श्री वामन नारायण जोशी

श्री वामन जी नासिक की "अभिनव भारत" संस्था के सदस्य थे। जिलाधिकारी जैक्शन की हत्या के बारे में सहायता करने के अभियोग में श्री जोशी जी को आजीवन कारावास की सजा दी गई। अभियोग की पूछताछ के समय श्री जोशी जी को भीषण कष्ट सहने पड़े। इतना होने पर भी जोशी के मुँह से संगठन के बारे में एक शब्द भी न निकला। जोशी जी को अण्डमान भेजा गया था। अण्डमान में जाने वाले आप ही सबसे पहले क्रान्तिकारी वीर हैं, कालेपानी की सजा पूरी कर आप भारत लौटे। आजकल आप नासिक जिले में सिन्नर नामक ग्राम में रहते हैं। अभी कुछ दिन पूर्व प्रधान मन्त्री नेहरू जी ने आपकी सहायता के लिए ५००)रुपये का चैक भेजा था।

श्रीकृष्ण जी गोपाल कर्वे

श्री कर्वे जी 'अभिनव भारत' के प्रमुख सदस्य थे। 'अभिनव भारत' की नासिक की शाखा में
फूट के कारण मतभेद होने पर आपने अलग होकर कार्य किया। उस समय आपकी आयु केवल २२
व २३ वर्ष की थी। आप कानून की पढ़ाई कर रहे थे। साथ-साथ क्रांति का कार्य भी चल रहा था।
बाबाराव सावरकर की सजा से आपको बहुत दुःख हुआ। जैक्शन की हत्या का निर्धारण आपने
मनोनय किया। अभिनव भारत के एक सदस्य गोपालराव पाटस्कर और डा० वि० क० भट्ट की ओर से
आपने रिवालवर प्राप्त किया। १९ दिसम्बर, १९०९ के दिन नासिक के नाटक गृह में आप अनन्त
कान्हेरे के सहयोगी के नाते शस्त्र सहित उपस्थित थे। १९ अप्रैल को ढाका की जेल में आप फांसी के
तख्ते पर चढ़ गये।

श्री विनायक नारायण देशपाण्डे

श्री विनायक जी नासिक के अभिनव भारत के सदस्य थे और नासिक की प्रारम्भिक पाठशाला
में अध्यापक थे। जैक्शन की हत्या के लिए श्री अनन्त कान्हेरे को तैयार करने में आपका बड़ा ही
हाथ था। अनन्त ने जैक्शन की हत्या का निश्चय किया। श्री देशपाण्डे भी अनन्त कान्हेरे के सहयोगी
के नाते हाथ में पिस्तौल लिए नाटक गृह में उपस्थित थे। बम्बई हाईकोर्ट ने फांसी की सजा दी।
१९ अप्रैल को ढाका की जेल में आपको फांसी दे दी गई।

श्री शंकर रामचन्द्र सोमण

शङ्कर जी "अभिनव भारत" के सदस्य थे, क्रान्तिवीर बाबाराव सावरकर की सजा से आप
बहुत दुःखी हुये थे। अनन्त कान्हेरे को तैयार करने में आपका बहुत हाथ था। हत्या की जांच
पड़ताल में शङ्कर राव सोमण को बड़ी यातनायें सहनी पड़ीं। परन्तु आपने किसी भी सहयोगी का
नाम नहीं बताया। हत्या के मामले में आपको आजीवन कारावास की सजा दी गई। पेखड़ा जेल में
आप सजा भुगत रहे थे, उसी समय वीर सावरकर जी को दी गयी आजीवन सजा से तथा गिरफ्तार
हुए अपने साथियों के कारण तथा उन्हें जो यन्त्रणा सहनी पड़ी उससे सोमण जी के दिल को गहरी
चोट पहुंची। उसी से अन्त में २१ दिसम्बर १९११ में पेखड़ा जेल में ही आपका देहावसान हो गया।

श्री शिवराम राजगुरु

पूना के पास 'चाकन' नामक एक छोटा सा गांव है। जिस समय महाराष्ट्र केसरी छत्रपति श्री
शिवाजी महाराज ने अपना हिन्दू राज्य स्थापित किया था, उस समय तक 'चाकन' उस प्रान्त की
राजधानी था। शिवाजी के प्रपौत्र श्री शाहू जी के राज्यकाल में चाकन के एक पण्डित कचेश्वर नामक
ब्राह्मण ने सारे देश में अपना पाण्डित्य जमाया था। एक बार राज्य सम्बन्धी किसी कार्य के लिए
शाहू जी को चाकन आना पड़ा। वहां आपकी उपर्युक्त पण्डित जी से भेंट हुई। आप उनकी विद्वत्ता
पर इतने मुग्ध हुए कि उन्हें अपना गुरु मान लिया और 'राजगुरु' की उपाधि से विभूषित किया।
उसी समय से राजगुरु इस वंश की पदवी हो गई। श्री शिवराम हरि राजगुरु इसी प्रतिष्ठित वंश के
एक वंशधर थे।

पंडित जी के दो पुत्र थे, जिनमें छोटा तो वहीं सतारा में ही बस गया और बड़ा पूना के पास
खेड़ा नामक ग्राम में आकर रहने लगा। यही खेड़ा शिवराम का जन्म स्थान है। आपके पिता

श्री हरिनारायण राजगुरु के दो स्त्रियां थीं। हरिनारायण की दूसरी स्त्री से दो लड़के हुए, जिनमें बड़े दिनकर हरिनारायण हैं, और छोटे शिवराम राजगुरु थे।

श्री शिवराम का जन्म १९०९ में हुआ था। आप बचपन में बड़े दृढ़ और जिद्दी थे। ६ वर्ष की आयु में आपके पिताजी का देहान्त हो गया। आपके बड़े भाई दिनकर जी उन दिनों पूना में नौकरी करते थे। इसीलिये पिता जी की मृत्यु के बाद आप सपरिवार पूना में ही रहने लगे। श्री शिवराम प्रारम्भिक शिक्षा के लिये मराठी पाठशाला में भेजे गये। किन्तु उनका मन वहां पढ़ने लिखने में नहीं लगता था अपितु खेलने में अधिक रुचि थी। खेलने की प्रवृत्ति को देखकर बड़े भाई ने आपको धमका दिया कि—खेल कूद छोड़कर पढ़ने में मन लगाओ। इससे भयभीत होकर आपने पाठ्य पुस्तकों में से एक उपन्यास को लेकर पढ़ना आरम्भ कर दिया। इस पर भाई जी और बिगड़े और कहा कि यदि तुम्हें पढ़ना न हो तो घर से निकल जाओ।

यही हुआ श्री राजगुरु घर से निकल पड़े। उस समय जेब में केवल नौ पैसे थे। रात उन्होंने पूना स्टेशन के मुसाफिरखाने में काटी। प्रातःकाल उठे और बिना सोचे विचारे अपने जन्म-स्थान खेड़ा में पहुँचे। परन्तु गांव में इसलिये न घुसे कि लोग मुझे पहचान लेंगे। सारी रात बिना खाये-पीये एक मन्दिर में पड़े रहे। दूसरे दिन नारायण नाम के एक दूसरे गांव में पहुंचे और वहां भी गांव के बाहर एक कुएं पर रात बिताई। घर से जो ९ पैसे लेकर चले थे, उनके आम खरीदकर खा लिये थे। तीसरे दिन भूख के मारे अन्तड़ियां कुलकुला रही थीं। कुएं के नीचे एक पक्षी का आधा खाया हुआ आम पड़ा था, आपने उठाया और गुठली समेत निगल गये। इस गांव के स्कूल के मास्टर को बड़ी दया आई। उसने इनको अपने पास रख लिया, परन्तु इन्हें कहीं रहना होता तो घर छोड़ने की क्या आवश्यकता थी? दूसरे दिन बिना कहे सुने उठे और एक तरफ चल दिये। भूख लगने पर पेड़ों की पत्तियां चबा लेते, और रात को किसी चट्टान या मैदान में सो जाते। एक दिन एक गांव के बाहर मन्दिर के पास खेत में सो रहे थे कि कुछ आदमियों ने दूर से देखा और प्रेत समझकर ईंटें मारने लगे। जब उठे और पूछा कि मुझे क्यों मार रहे हो? तब उन लोगों का भ्रम निवारण हुआ। अन्त में इन्होंने कहा कि मुझे भूख लगी है, कुछ खाने को दो। उन लोगों ने कुछ खाने को दिया। खा पीकर आप आगे बढ़े और कई दिनों में इसी तरह १३० मील की यात्रा करके नासिक पहुंचे। वहां एक साधु की कृपा से, एक क्षेत्र में एक वक्त भोजन करने का प्रबन्ध हो गया। रात को साधु स्वयं कुछ दे दिया करते थे।

इसी तरह चार दिन व्यतीत हो गये। एक दिन पुलिस का सिपाही आया और पकड़ कर थाने में ले गया। वहां पूछताछ होने पर आपने बताया कि मैं विद्यार्थी हूँ और संस्कृत पढ़ने की इच्छा से यहां आया हूं।

इस तरह जब वहां से छुटकारा मिला तो आपने नासिक भी छोड़ दिया और घूमते घूमते झांसी पहुँचे। परन्तु वहां भी मन नहीं लगा। बिना टिकट के ही रेलगाड़ी में सवार होकर कानपुर चले आये। कानपुर के स्टेशन पर एक महाराष्ट्रीय सज्जन ने आपको भोजन कराया और अपने साथ लखनऊ ले गया। वहां से लखीमपुर खीरी होते हुए आप पन्द्रहवें दिन काशी पहुँचे। काशी आकर आप अहल्याघाट पर रहने लगे। कई दिन पश्चात् एक क्षेत्र में भोजन का भी प्रबन्ध होगया। एक पंडित जी के पास संस्कृत पढ़ने लगे और भाई को भी सूचना दे दी कि मैं काशी आगया हूँ और

संस्कृत पढ़ना आरम्भ कर दिया है। भाई ने ५ रु० मासिक पढ़ाई के लिये भेजना आरम्भ कर
दिया।

क्षेत्र में भोजन करना आपको पसन्द नहीं था इसलिए भोजन का प्रबन्ध सहपाठियों के साथ कर
लिया। परन्तु यह सिलसिला भी बहुत दिन तक नहीं चल सका। क्योंकि गुरु जी से अनबन हो जाने
के कारण पाठशाला छोड़ देनी पड़ी। पाठशाला छोड़ने पर अखबार पढ़ने और कुश्ती लड़ने का शौक
हुआ। परन्तु भोजन की बड़ी बाधा हुई, और यहां तक नौबत आ पहुंची कि फिर घास एवं पत्तियों का
आश्रय लेना पड़ा। अन्त में काशी से मन उचटा तो नागपुर पहुंचे। उद्देश्य था लाठी एवं गदा के खेल
सीखना। सन् १६२८ में फिर कानपुर चले आये। यहां आने के थोड़े ही दिन पीछे आपके विचारों में
परिवर्तन हो गया और आप फिर घूमते-घूमते पंजाब चले गये। वहां पर सरदार भगतसिंह श्री सुखदेव
आजाद की पार्टी में सम्मिलित हो गये और आप पंजाब में ब्रिटिश साम्राज्य को समाप्त करने के
लिए भगतसिंह का साथ देने लगे। इसी अवसर की दो तीन घटनाएं मैं आपके सम्मुख उपस्थित करता
हूं। जिनसे पता चलेगा कि श्री राजगुरु में ब्रिटिश साम्राज्य को समाप्त करने के लिए कितनी
श्रद्धा थी।

जब भगतसिंह ने लाला लाजपतराय के वध का बदला लेने का प्रस्ताव रखा और उसमें
निश्चित हुआ कि लाला जी के वध के जिम्मेदार लाहौर के पुलिस सुपरिण्टेण्डेण्ट स्कोट को गोली से
मार दिया जाये। तब राजगुरु ने जिद पकड़ी कि "मारूँगा मैं" भगतसिंह ने कहा—मगर-मगर पकड़े
जाने पर केस चलने पर एक ऐसा बयान दिया जाये, जिसको सुनकर जनता में जागृति हो। इस कारण
राजगुरु अकेला अयोग्य समझा गया और अन्त में निश्चय यह हुआ कि स्कोट को मारने के लिए
राजगुरु, भगतसिंह एवं आजाद जायें और जयगोपाल को मौका देखने और स्कोट साहब को पहचानने
तथा उनकी गतिविधि का ज्ञान रखने आदि के लिए नियुक्त किया गया। यही जयगोपाल का दुर्भाग्य
है कि बाद में लाहौर केस में माफीखोर सरकारी साक्षी बना।

चार दिन बाद यह टुकड़ी अपने काम पर जाती रही थी परन्तु स्कोट साहब निर्दिष्ट स्थान माल-
रोड पर पुलिस कार्यालय से निकला ही नहीं। निडर होकर राजगुरु ने आजाद से कहा—"अन्दर
जाकर ही ठीक किये आता हूं" अर्थात् पुलिस दफ्तर में काम करते हुये स्कोट को गोली से मार आता
हूं। आजाद ने इनकी बात न मानी, क्योंकि आजाद ने भी प्रोग्राम बनाकर ठीक काम किया हुआ था।

इतने में ही पुलिस अफसर कार्यालय से निकला, उनका मुन्शी, मोटर साइकिल लिए उसके साथ
था। जयगोपाल ने संकेत किया—देखो शायद वह आया। भगतसिंह ने संकेत किया अरे यह वह
मालूम नहीं होता। राजगुरु ने समझा कि—अभी मत मारो जरा इधर आने दो। अर्थात् वह भगतसिंह
के रेंज में जाये तो भगतसिंह गोली चलाये। भला राजगुरु को यह कब स्वीकार हो सकता था। अफसर
मोटरसाइकिल पर पैर रखने ही वाला था कि राजगुरु के रिवाल्वर से निकली हुई गोली उसके सिर के
पार हो गई वह वहीं ढेर हो गया। फिर भगतसिंह ने आगे बढ़कर पिस्तौल की आठ गोलियों से पुलिस
अफसर की लाश को रोड पर झुलसा दिया। घर अर्थात् निवास स्थान पर आने पर राजगुरु ने कहा
भगतसिंह ने आठ कारतूस बेकार खराब किये। (घर आने का समाचार भगतसिंहादि के जीवन चरित्र
में देख लेना) इसी गोली काण्ड के बाद ही फर्न्स नामक व्यक्ति राजगुरु को पकड़ने के लिए लपका।
जिसे देखकर राजगुरु ने अपना रिवाल्वर सीधा किया और बटन दबाया। परन्तु गोली किसी कारण-

वश न चली। राजगुरु ने रिवाल्वर कोट की जेब में डाला, और आगे बढ़कर फर्न्स से भिड़ गया और उसे मालरोड की कठोर भूमि पर ऐसा पछाड़ा कि वह वहां से उठ न सका। स्मरण रहे कि यह जो ऊपर पुलिस अफसर मारा गया वह सान्डर्स था, जो कि लाला लाजपतराय के वध का उतना ही जिम्मेदार था, जितना की स्कोट।

एक दिन योंही इस बात की चर्चा हो रही थी कि क्रान्तिकारियों पर पुलिस क्या-क्या अत्याचार करती है, कैसी शारीरिक यातनाएँ उन्हें देती है। उस दिन जब "गुलामचोर" में हारने के बाद जुर्माने के रूप में राजगुरु सब साथियों के लिए खाना पकाने बैठे तो आपने संडासी अंगीठी में गर्म होने के लिए रख दी। एक अन्य साथी से आप बड़े मजे में बातें करते जाते थे और अंगीठी में संडासी गर्म हो रही थी। वह खूब लाल हो गयी तो आपने वैसे ही हंसते-हंसते उठायी, उसे एक बार बड़ी अच्छी प्रकार देखा मानो उसके नेत्र मन ही मन लाल रंग की प्रशंसा कर रहे हों। जिससे आप बात-चीतकर रहे थे वह साथी इनकी इस चेष्टा को इनका बालकपन समझकर योंही इन्हें देखता रहा। जब आपने सहसा उस लाल जलती हुई संडासी को छम् छम् छम् तीन जगह अपनी छाती पर लगा लिया, तो उसने झट उनके हाथ से वह संडासी छुड़ाई और बोला यह क्या करता है ? आप बोले ! कुछ नहीं यार ! देख रहा था कि टार्चर से मैं विचलित तो नहीं हूंगा। आप किसी प्रकार की पीड़ा अनुभव न करते हुए उसी प्रकार स्वस्थता से काम करने में प्रवृत्त हो गये। साथियों ने इनके घाव की मरहम पट्टी करवाई। उस दिन से सब साथियों को ऐसा महसूस होने लगा कि राजगुरु किसी धातु का बना हुआ है।

तीसरा उदाहरण जब भगतसिंह ने दिल्ली की असेम्बली में बम फेंकने का प्रस्ताव रक्खा तब निश्चय यह हुआ कि असेम्बली में बम फेंका जाये, वहां अपने कार्य का स्पष्टीकरण करते हुए पर्चे भी फेंके जायें। वहां से भागा न जाये और अदालत में केस चलने पर एक बढ़िया-सा बयान दिया जाये तथा अभियोग का प्रचार एवं स्पष्टीकरण का साधन बनाया जाये। भगतसिंह ने हो यह प्रस्ताव रखा और हठ भी की कि उसे वे ही पूरा करेंगे। राजगुरु इस काम के लिए स्पष्ट ही उपयुक्त न थे। अपने साथ चलने के लिए भगतसिंह ने बटुकेश्वरदत्त को चुना।

राजगुरु को जब यह ज्ञात हुआ तो मानो उनके शरीर में आग लग गई। उन दिनों आजाद झांसी चले आये थे। भगतसिंह, बटुकेश्वरदत्त आदि दो चार साथी ही दिल्ली में रह गये थे। राजगुरु आजाद के पास आये और सभी भांति उन्होंनें आजाद को यह समझाने का प्रयत्न किया कि वे भगतसिंह के साथ जाने के लिए सर्वथा उपयुक्त हैं उनकी सबसे बड़ी युक्ति यह थी। रही वक्तव्य देने की बात इसके लिए यह क्या जरूरी है कि वह अंग्रेजी में ही दिया जाये, वह हिन्दी में भी दिया जा सकता है। यदि अंग्रेजी में ही देना हो तो मैं उसे जैसा कहो वैसा रट लूँगा। पंडित जी ! एक भी गल्ती नहीं करूँगा। अरे लघु सिद्धान्त कौमुदी पूरी "अइउण्" से लेकर "यूनस्ति" तक रटकर फेंक दी है, तो क्या अँग्रेजी के दो चार पन्नों का एक छोटा-सा बयान न रट सकूँगा।" अपना पिंड छुड़ाने के लिए आजाद ने उसे एक चिट भगतसिंह के लिए लिखकर दे दी कि—यदि भगतसिंह ठीक समझे, और कोई विशेष हानि न हो तो बटु के बजाय राजगुरु को ही अपने साथ ले जाये। राजगुरु बड़ी सावधानी से चिट लेकर दिल्ली पहुंचे। परन्तु भगतसिंह ने इन्हें उल्टे पैर वापिस भगा दिया। राजगुरु फिर आजाद के पास भगतसिंह की शिकायत लेकर झांसी आये, परन्तु आजाद ने उनकी बात पर

कोई ध्यान नहीं दिया । तब राजगुरु बिगड़कर साथियों को यह कहकर कि देखता हूं अकेले में भी कुछ कर सकता हूं कि नहीं, चला गया ।

फिर आप पूना में पकड़े गये और भगतसिंह और सुखदेव के साथ क्रान्तिकारी देशभक्ति का सर्वोच्च पुरस्कार—फांसी मिला । अन्त में २३ मार्च १९३१ फांसी का दिन निश्चित कर दिया गया । साधारणत: फाँसी प्रात:काल दी जाती है, पर सूरज की साक्षी से यह दुष्कृत्य करने का साहस अंग्रेज सरकार में भी नहीं था । सरकार ने रात में ही खत्म करने का निश्चय किया । जेल के सभी द्वार बन्द कर दिए गए, सात बजकर बत्तीस मिनट पर तीनों क्रान्तिकारी वीरों को कोठरी से निकाला गया । आंखों पर टोपी चढ़ाकर फांसी के तख्ते पर खड़ा कर दिया गया । ठीक इसी समय "डाउन-डाउन विद यूनियन जैक" के नारे लगाये गए । आवाज़ें एकाएक बन्द हुईं और उसके बाद तीन लाशें स्ट्रेचर रक्खी हुई दिवार के एक छेद से बाहर कर दी गईं । जेल से लाशें ले जाकर सतलुज के किनारे जहां कि लाला जी की मृत्यु हुई थी, वहां लाशों पर मिट्टी का तेल डालकर भस्म कर दी गईं । यह काम सरकार की ओर से बड़ी गुप्त रूप से झटपट पूरा किया गया और भस्म सतलुज नदी में बहा दी गई ।

@VaidicPustakalay

लोहपुरुष सरदार वल्लभभाई पटेल

(ब्र० धर्मपाल)

आपके पिता का नाम झेबर भाई पटेल था। आप ग्राम में खेती का काम किया करते थे और राजनैतिक कार्यों में भी भाग लिया करते थे, सन् ५७ के युद्ध में आप अंग्रेजों के विरुद्ध लक्ष्मीबाई की सेना में सम्मिलित होकर लड़े। इस वीर पिता का प्रभाव सरदार पटेल पर भी पड़ा।

सरदार पटेल का जन्म ३१ अक्तूबर १८७५ में हुआ था। आपके बड़े भाई का नाम विट्ठलभाई पटेल था। भाई जी बहुत दिनों तक असेम्बली के प्रधान रहे।

आपका बाल्यकाल पिता जी की देख-रेख में नदियान ग्राम में व्यतीत हुआ और पिता जी ने बालक का अक्षराभ्यास भी करवाया। इसके पश्चात् आप बड़ौदा स्कूल में प्रविष्ट हुए। किन्तु वहां के शिक्षक का अनुचित व्यवहार होने के कारण स्कूल छोड़कर नदियान ग्राम में ही किसी प्रकार मैट्रिक परीक्षा पास कर ली।

अपूर्व साहस

एक बार आपकी काख में फोड़ा निकल आया, कुछ लोगों ने यह अनुमति दी कि इसके ऊपर गर्म शलाका रखकर फोड़ देना चाहिए। पिता जी को यह भयंकर कर्म लगा, इसलिए उन्होंने निषेध किया फिर क्या था इन्होंने स्वयं शलाका गर्म करके फोड़े पर लगाई। इसका नाम है साहस एवं निर्भीकता।

मैट्रिक के बाद आपने मुख्त्यारी की परीक्षा पास की। इसके बाद आप अपना कार्य विस्तृत करने लगे, इसी लिए एक पत्र भी कम्पनी से मंगा लिया था, परन्तु बड़े भाई ने कहा कि पहले मुझे विलायत जाने दो फिर आप चले जाना। आपने यह बात स्वीकार कर ली। इसके बाद आप शनैः शनैः गृह एवं सामाजिक कामों में भी भाग लेने लग गये।

राजनीति की ओर

गुजरात प्रान्तीय कांग्रेस कमेटी ने एक रचनात्मक कार्यकारिणी बनाई। सरदार पटेल उसके मंत्री थे। आपने इस समिति को बड़े ही साहस के साथ चलाया। उस समय गुजरात प्रान्त में निम्न श्रेणी के कर्मचारियों से बेगार ली जाती थी। आपने उस विभाग के मन्त्री को लिखा कि वह बेगार प्रथा को रोक दें। कमिश्नर साहब छोटी-छोटी बातों से कब डरने वाले थे, सरदार पटेल ने पुनः दुबारा लिखा "यदि आपने सात दिन के अन्दर गुजरात बेगार प्रथा को बन्द न किया तो मुझको विवश होकर सत्याग्रह का शस्त्र उठाना पड़ेगा।" कमिश्नर साहब को सरदार के आगे झुकना पड़ा।

महात्मा गांधी के साथ आपका सम्बन्ध दृढ़ होता गया, किन्तु आपको दब्बू राजनीति में सर्वथा विश्वास नहीं था, आप सदा मारधाड़ पर विश्वास करने वाले थे। आपको स्वप्न में भी इस बात का विश्वास नहीं था कि हम अहिंसा एवं रक्तहीन क्रान्ति के द्वारा अपने लक्ष्य को प्राप्त कर सकेंगे, किन्तु जब आपने अहमदाबाद सत्याग्रहियों की सत्याग्रह के द्वारा सारी मांगें मनवा दीं, तब आपको विश्वास हो गया और महात्मा गांधी के साथ काम करने लगे। आपने विद्यार्थियों के लिए गुजरात विद्यापीठ की स्थापना की। विद्यापीठ के लिए धनसंग्रह भी किया।

इसी बीच ग्राम खेड़ा एवं बारदौली क्षेत्र में लगान के विरुद्ध सत्याग्रह किया और विजयी हुए।

असहयोग आन्दोलन के नेता आप ही थे, इस कारण आपके भाषणों पर प्रतिबन्ध लगा दिया गया, परन्तु आप न माने, जिस पर सरकार ने आपको तीन मास का कड़ा दंड एवं ५००) रु० जुर्माना किया।

न तो आपने जुर्माना दिया, और न किसी को देने दिया। इसलिए ४ मास की सजा काटने के पश्चात् जेल से मुक्त हो गये। लोकमान्य तिलक की मृत्यु के पश्चात् आपने उनकी बरसी मनाई। लाखों मनुष्यों की संख्या में जलूस निकला। दूसरी ओर पुलिस, जलूस भंग करना चाहती थी, परन्तु सरदार जी अडिग रहे। भीड़पर पुलिस ने लाठी-प्रहार, टियरगैसादि का प्रयोग किया, परन्तु कुछ परिणाम न निकला। सायंकाल सरदार पटेल को सरकारी घोषणा के अनुसार पुलिस ने गिरफ्तार किया, परन्तु कुछ दिनों के बाद मुक्त हो गये। इसके पश्चात् कराची में जब कांग्रेस सम्मेलन हुआ तब आप उस सम्मेलन के अध्यक्ष निर्वाचित हुए। सरदार भगतसिंह को फांसी का दंड देने के कारण कराची में जलूस निकालने की स्वीकृति सरदार ने नहीं दी।

जब सन् ४२ में गांधी जी ने "अंग्रेजो भारत छोड़ो" और "करो या मारो" का नारा लगाया तो गांधी जी को गिरफ्तार कर दिया गया। इसी समय मुस्लिम लीग ने घोषणा की कि "यदि हमारी धारणा के विपरीत भारत को स्वतन्त्रता मिल जायेगी, तो हम खून की नदियां बहा देंगे" इन धमकियों से सरदार पटेल कब डरने वाले थे। सरदार पटेल ने घोषणा की कि "जो व्यक्ति तलवार की धमकी देते हैं, वे भारत के पथ में रोड़े हैं,हम यह शुभ अवसर नहीं जाने देंगे। सरदार पटेल का मुस्लिम लीग पर प्रभाव पड़ा, सन् ४६ में अन्तरिम कांग्रेस एवं मुस्लिम लीग सरकार की घोषणा की गयी और एक दिन वह आया कि कांग्रेस, आर्यसमाज, हिन्दूसभा आदि के सत्प्रयत्नों से १५ अगस्त १९४७ के दिन २ बजकर ९ मिनट पर भारत स्वतन्त्र हो गया और आप स्वाधीन भारत के उपप्रधान मन्त्री एवं गृहमन्त्री नियुक्त हुए।

देशी राज्यों का एकीकरण

अंग्रेजों के राज्यकाल में हमारे यहां लगभग ६०० रियासतें थीं, जो अंग्रेजों के अधीन भी थीं, और कुछ स्वाधीन भी थीं। अंग्रेज सरकार ने घोषणा की कि वे राज्य दो राज्यों में से किसी भी संघ में सम्मिलित हो सकते हैं। सरदार ने अपने प्रेम एवं सद्व्यवहार से समस्त रियासतों को एक सूत्र में पिरो दिया। केवल तीन रियासतें शेष बचीं। १-काश्मीर, २-हैदराबाद, ३-जूनागढ़।

पहले तो सरदार ने इनको भी प्रेम से अपनाने का प्रयास किया, परन्तु जब ये लोग किसी भी प्रकार न माने तब अन्त में सरदार को पुलिस कार्रवाही करनी पड़ी, थोड़े ही कष्ट से पुलिस ने हैदराबाद और जूनागढ़ दोनों राज्यों को भारत में मिला दिया। केवल काश्मीर बचा। यदि कुछ दिन और जीवित रहे होते तो काश्मीर को भी भारत में मिला लेते। इस प्रकार इनका सारा जीवन संघर्ष में बीता, और कार्याधिक्य के कारण आपको हृद्रोग हो गया। आप १५ अक्तूबर सन् १९५० में परलोक सिधार गये।

यदि आप सन् १९५७ में जीवित होते तो फिरोजपुरकांड, बहुअकबरपुरकांड, जालन्धरकांड जैसे सैंकड़ों नृशंसकांड आज पंजाब में न होते, और पंजाब के हिन्दुओं को बलात् गुरुमुखी भाषा न पढ़ाई जाती। क्योंकि आप अन्याय के आगे सिर नहीं झुकाते थे। इसके उदाहरण आपने इस लेख में पर्याप्त

देख लिए होंगे। एक और उदाहरण मैं आपके सम्मुख प्रस्तुत करता हूं। जब यवनों ने पाकिस्तान लिया तो अकाली नेता मास्टर तारासिंह ने भी खालिस्तान की मांग की और बड़ा झगड़ा खड़ा कर दिया। तब गृहमन्त्री सरदार पटेल ने मास्टर जी को बुलाया, और कहा कि हम आपको खालिस्तान दे देते हैं, परन्तु एक शर्त है, यदि पाकिस्तान आपके ऊपर हमला करेगा तो हम आपकी सहायता नहीं करेंगे, मास्टर जी के पैर धरती से खिसक गये। ऐसे थे सरदार पटेल। फिर अब जब पटेल की मृत्यु हुई तब मौका पाकर मास्टर जी ने दुबारा वही मांगें दोहराईं, और नेहरू जी को गंगु ब्राह्मण कहकर और तलवार की धमकी देकर नेहरू को वश में कर लिया। नेहरू जी ने एक बन्द कमरे में मास्टर जी से समझौता करके पंजाब के शत प्रतिशत हिन्दी भाषी क्षेत्र में भी गुरुमुखी अनिवार्य रूप से लादकर पंजाब के हिन्दुओं के साथ घोर अन्याय किया है और अपनी कायरता का परिचय दिया है। यदि लोहपुरुष सरदार आज जीवित होते तो आज भारत का और ही रूप होता।

—०—

सेनापति फूलसिंह

ओमानन्द सरस्वती (आचार्य भगवान्‌देव)

फूलसिंह बाल्यकाल से ही महाराजा रणजीतसिंह के पास रहता था। वह अपने गुणों के कारण ही मुख्य सेनापति के उच्च पद पर पहुँच गया था। उनकी वीरता की धाक सारे पंजाब पर थी। अंग्रेज भी उसके नाम से डरते थे। अंग्रेजों ने उसकी बढ़ती हुई शक्ति को कुचलने के लिए अनेक षड्यन्त्र किये। अफगानों और रणजीतसिंह के बीच शत्रुता का बीज बो दिया और अपना स्वार्थ सिद्ध करना चाहा किन्तु इसमें अंग्रेजों को रणजीतसिंह के मुकाबले में कई बार मुख की खानी पड़ी। अंग्रेजों ने रणजीतसिंह से मैत्री करके उसे अफगानों पर अधिकार जमाने के लिए उकसाया। सरदार फूलसिंह ने वीरतापूर्वक युद्ध करके मुलतान, पेशावर और काश्मीरादि स्थानों को अपने अधिकार में कर लिया। इससे अंग्रेज और भी डर गये। क्योंकि वे तो फूलसिंह को मरवाना चाहते थे किन्तु उल्टी उसकी शक्ति बढ़ गई। अंग्रेजों ने फिर गुप्त रूप से राजा रणजीतसिंह से लाहौर में सन्धि कर ली। इसका जब फूलसिंह को पता चला वह बहुत बिगड़ा और नंगी तलवार लेकर दरबार में जाकर सिंहनाद करके कहने लगा—"विदेशी अंग्रेज हमारी प्रजा को बड़ा कष्ट दे रहे हैं, आप महाराज मेरी सहायता करें, मैं इनको राज्य से बाहर निकाल दूँगा, नहीं तो आपको वजीर अमीरों सहित जो शत्रु से मिल गये हैं मार डालूँगा।" महाराज ने उसे शान्त करने का यत्न किया और कहा—"अब तो मैं वचन दे चुका हूं, वचन भंग करना अच्छा नहीं, वे भी वचनबद्ध हैं, अंग्रेज हमारे राज्य में नहीं आयेंगे। आप काबुल के पठानों से युद्ध करो, वे तुम्हारा राज्य छीनना चाहते हैं। मैं भी सहायता करूँगा।" अंग्रेजों की कूटनीति चल गई। फूलसिंह अंग्रेजों को मित्र समझ और पठानों को अपना शत्रु जानकर प्रसन्न हो राजा रणजीतसिंह की आज्ञा से पठानों पर सेना लेकर चढ़ गया।

फूलसिंह ने कई स्थानों को जीत लिया। नौसेरा के युद्ध में काबुल के मन्त्री अजीयखां की विजय पर स्वयं भी काम आया। अंग्रेज उस वीर का मरना सुनकर हँसे और पंजाब पर चढ़ आये और कुछ काल पीछे सारे पंजाब पर अपना अधिकार कर लिया। किन्तु वह फूलसिंह वीर सदैव के लिए विस्मृति के पथ का पथिक बन गया। किसी को आज उसका स्मरण तक नहीं।

———

नामधारियों का बलिदान

(ले० ब्र० सोमदेव तथा ब्र० सत्यदेव)

जिस पञ्जाब के कारण भारतीय स्वतन्त्रता का प्रथम प्रयास व्यर्थ गया, अब उसी पञ्जाव ने इस विद्रोह मंत्र की दीक्षा लेकर सन् १८५७ के अपने कृत्य का प्रायश्चित्त करने का निश्चय किया। पंजाब के इस विद्रोह को इतिहास में 'कूका-विद्रोह' कहा जाता है।

इस आन्दोलन के जन्मदाता गुरु रामसिंह थे। गुरु रामसिंह का जन्म सन् १८२४ ई० में भैणी नगर जिला लुधियाना में हुआ था। आप युवावस्था में ही महाराजा रणजीतसिंह की सेना में सम्मिलित हो गये थे। परन्तु अधिकतर ईश्वरोपासना के कारण आप अपना काम ठीक न कर सके और वहाँ से लौट आये। गांव में आकर ईश्वरोपासना करने लगे। भक्तिभाव के कारण आप बहुत प्रसिद्ध हो गये। आपके दर्शनों के लिए बहुत दूर-दूर से मनुष्य आने लगे। आपने आर्यसमाज का प्रचार करना आरम्भ कर दिया। आपने शीघ्र ही यह भी अनुभव किया कि वास्तव में देश की उन्नति तभी हो सकती है जब राजनीतिक स्वतन्त्रता प्राप्त हो जाये। अत एव आप धार्मिक व्याख्यानों में राजनीतिक स्वतन्त्रता का भी प्रचार करने लगे। कहा जाता है कि रामदास साधु ने आपको राजनीतिक कार्य के लिए उत्साहित किया था। अब आपका एक धार्मिक समूह पृथक् बन गया जिसको नामधारी समूह कहा जाता था, इस समूह के गुरु रामसिंह जी थे।

उस समय आपने देश में असहयोग के साथ धार्मिक प्रचार किया और शिक्षा, अदालत आदि सब बदल डालीं,सरकार ऐसा देखकर क्रोधित हो उठी और आपके ऊपर विशेष प्रतिबन्ध लगाये गये।

गुरु रामसिंह ने कार्यक्षेत्र को और अधिक विस्तृत कर दिया। पञ्जाब को २२ भागों में बांटा और २२ ही अध्यक्ष नियुक्त किये, जो कि अपने सङ्गठन को बढ़ाते जाते थे। कुछ ही दिनों में यह धार्मिक राजनीतिक समूह जोर पकड़ गया और गुप्त रूप में उत्साहपूर्वक कार्य करने लगा। बाह्य काम कम होने के कारण सरकार ने प्रतिबन्ध हटा दिए और अंग्रेजों ने यह भी अनुभव किया कि गोहत्या योजना गुरु की नगरी श्री अमृतसर में सफल हो गई तो सर्वत्र सफल हो जायेगी। अत: अंग्रेजों ने एक कसाईखाना अमृतसर के लाहौरी दरवाजे के बाहर और दूसरा श्री हरिमन्दिर (स्वर्ण मन्दिर) के पास घंटाघर के मैदान में खोलने की आज्ञा दे दी।

प्रथम बलिदान फांसी, कालापानी

श्री सद्गुरु रामसिंह जी के नामधारी सिक्ख देश विदेश में घूमकर अंग्रेजों की कुटिल नीति को समझ गये थे। दस व्यक्तियों का एक जत्था घूमता-घूमता पञ्जाब की स्थिति की जाँच करता हुआ अमृतसर में पहुँचा और वहां बूचड़खाने को देखकर तिलमिला उठा। १३ जून सन् १८७१ की रात को उस नामधारी जत्थे ने अपना जीवन गोरक्षार्थ बलि देने का निश्चय कर लिया था। हवन करने के

बाद अपने सद्‌गुरु रामसिंह जी से प्रेरणा लेने के लिए प्रार्थना की और शक्ति की याचना की। १४ और १५ जून की मध्यरात्रि में दोनों बूचड़खानों और बूचड़ों का सफाया कर दिया, शहर में हा-हाकार मच गया।

प्रसिद्ध हिन्दू नेता, निहंग, महन्त और पुजारी गिरफ्तार कर लिए गए। इन लोगों ने पुलिस दमन से घबराकर निरपराध होते हुए भी अपराध स्वीकार कर लिया। उनको फांसी का हुक्म सुना दिया गया। इधर ये नामधारी श्री भैणी साहब गुरु स्थान पर पहुंचे। गुरु जी ने अमृतसर में बूचड़-वध काण्ड का वृत्तान्त पूछा। इन्होंने बतलाया कि हमारे इस काम के रहस्य को कोई नहीं जान सका, वहां तो कुछ और ही लोगों को फांसी का हुक्म सुना दिया गया है। तब सद्‌गुरु जी ने उनको सच्चे शूरवीर बनने का मार्ग बतलाया और आदेश दिया कि वहां वापिस जाकर अपने अपराध को स्वीकार कर लो। उन वीरों ने अमृतसर में जाकर अपने अपराध को स्वीकार कर लिया और मेजर डेविड सैशन जज अमृतसर ने ३१ अगस्त १८७१ को फैसला सुना दिया कि चार को फांसी, तीन को कालापानी और तीनों को देशद्रोही घोषित कर दिया गया।

१५ सितम्बर १८७१ को फांसी का दिन था। ये शूरवीर अमृतसर के पवित्र तीर्थ में स्नान करके ईश्वर भजन गाते हुए बाजारों से गुजर रहे थे। दर्शकों ने कहा ये नामधारी आज फांसी चढ़ेंगे। ये तो ऐसे अचिन्त हैं मानो इनको मृत्यु की सुध ही नहीं। बहुत से दर्शक इनके साथ हो लिए और बहुत से लोग पहले ही रामबाग गेट के बाहर (जहां आजकल तिबिया कालिज है) पहुँच चुके थे। वहां एक वट वृक्ष के साथ लटकी फांसी के फन्दे को स्वयं अपने गले में डालकर वे वीरगति पा गए। जिन्हें फांसी दी गई उनके नाम हैं—लहसनासिंह, फतेहसिंह, हाकिमसिंह, बीहलसिंह। जो कालापानी भेजे गए—लहियासिंह, लहणासिंह, सिपाही लालसिंह। शहीद हाकिमसिंह की माता ने फांसी के बाद चारों महापुरुषों के शरीरों का अन्त्येष्टि संस्कार किया। जब लोगों ने इकलौते बेटे के लिए चिन्ता प्रकट की तो माता ने प्रसन्नचित्त होकर कहा—"मैं भाग्यशालिनी हूं, मेरे पुत्र ने गोरक्षा, गरीब लोगों तथा देश के लिए अपने धर्म का पालन करते हुये शरीर दिया है।"

रायकोट जिला लुधियाना में एक ऐतिहासिक स्थान है। सद्‌गुरु जी के नामधारी वीर यहां भी आ पहुंचे। गुरुद्वारे के महन्त ने बड़े दुःख के साथ गुरुद्वारे के निकट गोवध की बात इन्हें बतलाई। सच्चे ईश्वरभक्त होने के कारण गो-वध की बात सुनकर कूका वीरों के मन रोष से भर गये, कहा अच्छा भगवान् भली करेंगे। इस काम के लिये तीन व्यक्ति सन्त गुरुमुखसिंह, सन्त मङ्गलसिंह, और सन्त मस्तानसिंह ने बूचड़खाना हटवाने का कार्य अपने ऊपर ले लिया। १५ जुलाई १८७१ की रात को ११ बजे बूचड़ों से मुकाबला हो गया, जिसमें कई बूचड़ मारे गये और वध होने वाली गायों को रस्से काट कर मुक्त कर दिया गया। सरकार की ओर से इन बूचड़ों के मारने वालों को पकड़ने के लिए एक हजार रुपया इनाम रखा गया। लालच में आकर छीनीवाले के दल्लू आदि तीन व्यक्तियों ने पांच मनुष्यों को पकड़वा दिया, जिनमें सूबा, ज्ञानसिंह और रत्नसिंह नाई वालिया बिल्कुल निर्दोष थे। पहले तीन व्यक्तियों ने अपना अपराध स्वीकार कर लिया। और साफ-साफ कह दिया कि ज्ञानसिंह और रत्नसिंह हमारे इस काम में साथी नहीं हैं परन्तु पुलिस वालों ने झूठे गवाह बनाकर पांचों को फांसी का दण्ड दे दिया। जो पुलिस ने झूठे साक्षी बनाये थे, वे छोड़ दिए। गुरुमुखसिंह, मङ्गलसिंह, मस्तानसिंह ५ अगस्त १८७१ को बसियावाली कोठी के निकट एक वृक्ष के साथ फांसी पर लटकाये गये। ज्ञानसिंह और रत्नसिंह को २६ नवम्बर को लुधियाना जिले की जेल में फांसी दी गई।

मालेरकोटला की घटना

यह एक महत्त्वपूर्ण ऐतिहासिक घटना है। इससे भयभीत होकर हिन्दुस्तान की ब्रिटिश सरकार को अपने दमनचक्र को और तेज करना पड़ा। रायकोट के ज्ञानसिंह और रत्नसिंह निरपराध फांसी पर लटकाये जाने एवं गुरुमुखसिंह नम्बरदार, जो गांव फरवाही रियासत मालेरकोटला का था, उसके सामने बैल पर अधिक भार लादने के कारण सरकारी अधिकारी का कूझड़े का पक्ष लेना तथा श्री गुरुमुखसिंह के सामने ही बैल का वध करवा देना इत्यादि घटनाओं से दुःखित होकर गुरुमुखसिंह सीधा भैणी साहब के पास पहुंचा। वहां ११-१२ जनवरी, १८७२ को माघी का एक बड़ा मेला था, अमृतसर, रायकोट आदि घटनाओं की पञ्जाब में बहुत चर्चा थी। विशेषकर रायकोट में दो निरपराध नामधारी वीरों को फांसी पर लटकाये जाने का नामधारी सिक्खों को बहुत दुःख था। सरदार हीरा-सिंह और सरदार लहनासिंह के नेतृत्व में अकाल बुङ्गा और श्री भैणी साहब में गुप्त विचार हुआ। सरदार हीरासिंह ने एक रेखा भूमि पर खींचकर आह्वान किया जो लोग गोरक्षार्थ अपने प्राणों की आहुति देना चाहते हैं वे इस रेखा से इधर आजायें। तत्काल १४० व्यक्ति जिनमें कुछ स्त्री और बच्चे भी थे, रेखा को पार कर आगये। १३ जनवरी, १८७२ को यह जत्था मालेरकोटला रवाना होगया। रास्ते में मपौद नामक गांव में शस्त्र प्राप्त करने का प्रयत्न किया। १५ जनवरी, १८७२ को प्रातःकाल सात बजे मालेरकोटला के बूचड़खाने पर आक्रमण कर दिया। वहां भी पुलिस और फौज ने बूचड़ों की रक्षा के लिए इनका मुकाबला किया, परन्तु विजय तो नामधारियों की ही हुई। नामधारी वीर बड़े धैर्य से वापिस चले आये। इस युद्ध में हीरासिंह का एक बाहु कट गया, परन्तु उसने एक बाहु से ही कई शत्रुओं को मौत के घाट उतार दिया। मार्ग में रठनामी गांव में जहां कि यह जत्था विश्राम कर रहा था, उत्तमसिंह थानेदार ने इस जत्थे को धोखे से गिरफ्तार करके शेरपुर की जेल में बन्द कर दिया। १७ जनवरी को नाभा, पटियाला, जीन्द आदि सिक्ख रियासतों से तोपें मंगवाकर मालेरकोटला के मैदान में रख दी गई।

निर्भय नामधारी वीरों को मालेरकोटला के मैदान में लाया गया, जिसका नाम आज उस समय से ही "कूकियां दा रक्कड़" चला आ रहा है। यह ईश्वरभक्त धर्मवीर गोरक्षा की आजादी के गीत गाते तथा भारतमाता की जय के नारे लगाते मैदान में आ पहुंचे। लुधियाना के डिप्टी कमिश्नर मिस्टर कावन ने कमिश्नर अम्बाला की आज्ञा की उपेक्षा करके बिना अभियोग चलाये, बिना आज्ञा के ४९ नामधारी वीरों को तोपों से उड़ा दिया। ये वीर बड़े उत्साह से बढ़-बढ़कर एक-एक करके तोपों के मुंह से बंधते और तोप के एक ही धमाके से आकाश में उड़ते दिखाई देते थे और न जाने कहां गये, यह दृश्य आंखों से नहीं देखा जा सकता। इस जत्थे में माता खेमकौर का १२ वर्षीय पुत्र इकलौता पुत्र विशनसिंह भी था। कावन की मेम ने उसको बचाने का प्रयत्न किया, मिस्टर कावन ने गाली देते हुए और भांति-भांति के अपशब्द गुरु रामसिंह को कहते हुए बालक से पूछा कि अगर तू यह कहदे कि मैं गुरु रामसिंह का शिष्य नहीं हूं तो तुझे छोड़ दिया जायेगा। परन्तु उसने स्वीकार नहीं किया। वह गुरु का निरादर न सहते हुए इतना क्रोध में भर गया कि तिलमिला कर काजियों के हाथों से निकल गया और मिस्टर कावन की दाड़ी को पकड़कर ऐसा हिलाया कि तलवार से हाथ काट देने पर और शरीर के टुकड़े-टुकड़े कर देने पर ही दाड़ी छोड़ी। सरदार हीरासिंह ने शहीद होते हुए कहा—"ओ बिलिया ! याद रख हम शीघ्र ही फिर जन्म लेकर आ रहे हैं। हम भारतवर्ष

से आपको निकालकर ही दम लेंगे और भारत से गोघातकों का नाश करके धर्म का झण्डा फहरायेंगे। नामधारी वीरों के बलिदानों ने ब्रिटिश साम्राज्य और उसके दलाल भारतीय राजा, महाराजाओं, जागीरदारों, महन्तों तथा पुजारियों को बहुत भयभीत कर दिया।

श्री सद्‌गुरु रामसिंह को देश निकाला तथा नामधारियों पर विपत्ति का पहाड़ :—

नामधारियों के वध से भी अंग्रेजों को सन्तोष नहीं हुआ। मालेरकोटला में नामधारियों के खून से होली खेलकर उसी दिन १७ जनवरी को ईश्वर विश्वासी, देश में स्वतन्त्रता तथा गोरक्षा की भावना उत्पन्न करने वाले श्री सद्‌गुरु रामसिंह जी को ११ सिक्खों के साथ देश निकाला दे दिया। कुछ दिन इलाहाबाद के किले में रखा। उसके बाद रंगून भेज दिया। भैणी साहब के गुरुद्वारे का सामान अधिकार में करके पुलिस चौकी बैठा दी। जहां-जहां नामधारी थे उनके साथ अपराधियों जैसा व्यवहार किया। कितने ही निरपराधियों को पकड़कर नजरबन्द किया। पटियाला के राजा ने इस कार्य में अंग्रेजों की पूरी सहायता की और देशद्रोही का प्रमाण दिया। राष्ट्र स्वतन्त्रता तथा गोरक्षार्थ श्री सद्‌गुरु रामसिंह जी तथा उनके शिष्य नामधारियों ने जो बलिदान दिये वे भारत के इतिहास में सदा स्मरणीय रहेंगे। १८ जनवरी को फिर १६ नामधारी मिस्टर कावन की आज्ञा से तोपों से उड़ा दिए गए। इन में सन्त विरयामसिंह जी जो महाराजा पटियाला के घनिष्ठ कौकुटुम्बिक सदस्यों में से थे, उनका कद छोटा था, मि० कावन नें सिफारिशी पत्र के कारण छोटे कद का बहाना करके उन्हें छोड़ना चाहा। तोपची ने कहा यह छोटा है, इसकी छाती तोप के मुख के सामने ठीक नहीं आती। सन्त विरयामसिंह ने यह सुनते ही निकट पड़ी हुई ईंटों को पैरों के नीचे रखकर और उन पर खड़े होकर छाती ठोककर कहा—अब मेरी छाती तोप के मुंह के सामनें ठीक बैठती है, फायर क्यों नहीं करते ? कावन ने आवेश में भरकर वध करने की आज्ञा दी और वह धमाके के साथ वीरगति पा गया। मालेरकोटला की इस घटना में ६ नामधारी गोभक्त शहीद हुए।

उधर गुरु रामसिंह जी १८७८ के रेगुलेशन के अनुसार गिरफ्तार कर लिए गये और बर्मा में भेज दिए गये। वहीं पर १८८५ ई० में पंजाब के केसरी गुरु रामसिंह इस संसार से चल बसे।

—०—

@VaidicPustakalay

गदरपार्टी की योजना

ओमानन्द सरस्वती (आचार्य भगवान्देव)

पंजाब और दिल्ली के क्रांतिकारियों का बलिदान

लाला हरदयाल पर श्याम जी कृष्ण वर्मा तथा वीर सावरकर की सङ्गति का प्रभाव यह पड़ा कि वे अपनी पढ़ाई परीक्षा से पूर्व ही छोड़कर भारत चले गये, वहां विद्यार्थियों में विशेषतया लाहौर में राजनीति की शिक्षा देते थे; किन्तु वहां से राजनैतिक कार्य में सफलता न देखकर निराश हो अलजीरिया (अफ्रीका) में जाकर एक तपस्वी का जीवन व्यतीत करने लगे। भाई परमानन्द जी अमेरिका आये हुए थे। ये ला. हरदयाल से मिलने मार्टनीक द्वीप गये। यहां एक मास ठहरकर वाद-विवाद करते रहे और उन्हें कर्मक्षेत्र में कार्य करने के लिए तैयार किया। भाई जी के यत्न से लाला हरदयाल चेम्सफोर्ड यूनिवर्सिटी में संस्कृत तथा हिन्दू दर्शनशास्त्र के प्रोफेसर बन गये। कुछ काल पश्चात् वे सानफ्रांसिस्को चले आये। अमेरिका में, कैनेडा में सिक्खों तथा भारतीय विद्यार्थियों से आपका बहुत घनिष्ठ सम्बन्ध होगया।

भाई जी तथा लाला जी कभी-कभी मिलते रहते थे। भाई जी तो फिर इङ्गलैंड चले गये किन्तु ला० हरदयाल ने १० मई १६१३ को कैलिफोर्निया के यूलो नामक नगर में एक भारतीयों की सभा की और इसी सभा में भारत में गदर कराने की दृष्टि से "गदर पार्टी" की स्थापना की। इसमें पं० जगतराम, कर्तारसिंह, दक्कीरूढ़सिंह, विजय, तारकदास, तारकनाथदास, बा० गोविन्द बिहारीलाल आदि अनेक सज्जन थे। पार्टी का मुख्य पत्र गदर निकालने का भी निश्चय हुआ। इसके छापेखाने का नाम "युगान्तर आश्रम" रखा गया। मुख्य कार्यालय सानफ्रांसिस्को बनाया गया। यह गदर का प्रथमांक १ नवम्बर १६१३ में हिन्दी, उर्दू, गुजराती और गुरुमुखी आदि भाषाओं में निकला। इसके प्रधान सम्पादक बाबू गोविन्द बिहारीलाल थे। पत्र की भाषा अत्यन्त ओजपूर्ण और उत्साहवर्धक होती थी। इसमें यह प्रेरणा होती थी कि योरुप में महायुद्ध होने वाला है। उस अवसर पर अंग्रेजों के युद्ध में फंस जाने पर भारत में विप्लव कराके अंग्रेजों को भारत से निकालकर अपने देश को स्वतन्त्र करना चाहिए। इस पत्र की प्रतियां भारत, बर्मा, चीन, लन्दन आदि सभी स्थानों पर जहां भी प्रवासी भारतवासियों का विदेशों में निवास था, सर्वत्र भेजी जाती थीं। गुजराती संस्करण सम्पादन श्री खेमचन्द जी करते थे। गदर पार्टी के साथ मिश्र, टर्की और जर्मनी आदि अनेक देश सहानुभूति रखते थे। ला० हरदयाल जी अपने साथियों रामचन्द्र और बरकतुल्ला आदि के साथ लेख तथा व्याख्यानों द्वारा खूब प्रचार करते थे; लाला जी २६ मार्च १६२४ को गिरफ्तार कर लिए गए। किन्तु लाला जी जमानत पर छुड़ा लिए गए। वे अपने कार्य रामचन्द्र को सौंप स्विट्जरलैंड चले गये, वहीं से फिर अपना कार्य जर्मनादि देशों में रहकर करते रहे। जिसका विवरण पृथक् दिया गया है।

सन् १६१३ में कनेडा में लगभग चार सहस्र भारतीय थे, इनमें अधिक सिक्ख थे। भारत में ब्रह्मा हांगकांग और शंघाई में अधिक आते थे। वहां से ही कनेडा, अमेरिका के भिन्न स्थानों को चले जाते थे। कनेडा में भारतीयों के साथ नित्य नए अत्याचार, अन्याय और घृणित व्यवहार होते थे। गदर

पार्टी का संगठन गोरों के अन्याय के विरुद्ध लड़ रहा था। इस अन्याय को दूर करने के लिए भागसिंह सुन्दरसिंह, हरनामसिंह, बलवन्तसिंह और अर्जुनसिंह आदि ने खूब कार्य किया। इन्होंने स्थान-स्थान पर गुरुद्वारे स्थापित कर भारतीयों को संगठित किया। श्मशान न होने के कारण हिन्दुओं को विवश हो अपने मुर्दे गाड़ने पड़ते थे। इन्होंने भूमि मोल लेकर श्मशान बनवाया, इस श्मशान में भाई अर्जुन-सिंह का पहला अन्त्येष्टि संस्कार हुआ। इसी प्रकार अन्याय के विरुद्ध सङ्घर्ष चालू रहा।

कलकत्ता से कोई सीधा जहाज अमेरिका नहीं आता था। कनेडा वालों ने यह कानून बनाया कि कनेडा में उतरने के लिए अपने देश से सीधे एक ही जहाज में वहां आना चाहिए। अमेरिका गोरे भारतीयों को हैण्डरस द्वीप में जिसका जलवायु अत्यन्त दूषित था भेजने का यत्न कर रहे थे। अब कोई नया भारतीय उपर्युक्त कानून के अनुसार कनेडा में नहीं उतर सकता था। नागरसिंह तथा उसके एक साथी ने हैण्डरस की दशा जाकर देखी। उन्होंने आकर वहां के दूषित जलवायु के कारण उस द्वीप को नरक से भी गया बीता बताया।

गदर पत्र द्वारा भी प्रकट किया तथा कुछ भारतीय भारत में कनेडा से अपने परिवार ले आये। इस पर भी बड़ा झगड़ा हुआ, दिन-प्रतिदिन गोरों का द्वेष भारतीयों से बढ़ रहा था। सैकड़ों भारतीयों को कनेडा से नये कानून के अनुसार लौटा दिया गया। वे सब हांगकांग में इकट्ठे हुए, उन्होंने एक योजना बनाई।

कोमांगातामारू जहाज की दुर्घटना

बाबा गुरुदत्तसिंह ने कनेडा तथा प्रवासी भारतीयों के कष्ट को जब सुना तो उन्होंने इसे दूर करने के लिए एक योजना बनाई। बाबा गुरुदत्तसिंह अमृतसर जिले के निवासी सिक्ख थे। बहुत समय तक सिंघापुर और मलाया में ठेकेदारी का कार्य कर चुके थे। ये भारत में १९०९ में लौटकर आये थे। सन् १९१० में गुरुनानक स्टमीनेवीग्रेसन कम्पनी की स्थापना की। इन्होंने कम्पनी की ओर से एक समूचा जहाज हांगकांग से एक जर्मन एजेन्ट द्वारा किराये पर लिया। इस जहाज का नाम "कोमांगातामारू" था। यह जापानी जहाज था। कलकत्ता में कोई जहाज यत्न करने पर भी नहीं मिलता था। धड़ल्ले से कनेडा के टिकट बेचने आरम्भ किये और उन्होंने मार्ग के बन्दरगाह शंघाई, मौज और योकोहामा तक के यात्रियों को अपने जहाज में ले लिया। इन सबको लेकर पहले कलकत्ता आये और कलकत्ता से फिर हांगकांग गए। कोमांगाता ४ अप्रैल १९१४ को हांगकांग से चला। मार्ग में इसके यात्रियों को गदर पत्र भी जहाज में पढ़ने को मिलता रहता था।

२३ मई, सन् १९१४ को यह जहाज कनेडा के मुख्य बन्दरगाह वैंकोवर जा पहुंचा। इस जहाज में ३५ सिक्ख तथा २१ पंजाबी मुसलमान यात्री थे। इनीग्रेशन वालों ने न तो जहाज को कहीं भी ठहरने की आज्ञा दी और न ही यात्रियों को कनेडा में उतरने दिया। भागसिंह के विशेष प्रयत्न से एक नया घाट खरीदा गया। वहां पर "कोमांगातामारू" जहाज ठहरा। अंग्रेजों ने जहाज के मालिक को बहकाया। वह जहाज का किराया किस्तों पर न लेकर एक साथ सारा मांगने लगा। यात्रियों के पास धन नहीं था। भागसिंह ने अपने मित्रों से मिलकर ३२ हजार डालर देकर जहाज का चार्टर अपने नाम लिखवा लिया। कनेडा की सरकार ने जहाज बन्दरगाह से खदेड़ने के लिए एक पुलिस का दल भेजा। किन्तु यात्रियों ने अस्त्र-शस्त्र से पुलिस को मार भगाया। फिर कनेडा की सरकार ने अपना

जंगी जहाज युद्ध करने को भेजा तो "कोमागातामारू" जाने को तैयार हुआ। यात्रियों के पास धन तथा खाने के लिए भोजन भी नहीं था। बलवन्तसिंह तथा भागसिंह आदि ने यत्न करके कनेडा सरकार से सब प्रबन्ध करवाया। जहाज २३ जुलाई को वापिस चल पड़ा। इस समय योरुप में महायुद्ध छिड़ चुका था। यात्रियों में भी बहुत जोश था। बाबा गुरुदत्त को योकोहामा में सूचना दी गई कि उनके जहाज को हांगकांग में नहीं ठहरने दिया जायेगा। कोबे की कौन्सिल ने कुछ सुविधायें जहाज को दीं। विवश होकर जहाज को कलकत्ता जाना पड़ा। यात्री भारत नहीं जाना चाहते थे, किन्तु इन्हें हांगकांग वा सिंघापुर कहीं भी उतरने नहीं दिया, यात्रियों को बड़ा कष्ट हुआ। कोमागातामारू हुगली नदी के सङ्गम पर पहुंचा। इसने २९ सितम्बर को ११ बजे प्रातः बजबज में लङ्गर डाला। खुफिया पुलिस ने इस जहाज के यात्रियों के विरुद्ध भयानक रिपोर्ट दे रखी थी। अतः इनको मार्ग में कहीं नहीं उतरने दिया और भारत में सब यात्रियों को उतारकर पकड़कर नजरबन्द किया जाये, यह सरकार का निश्चय था।

बजबज का गोलीकाण्ड

जिस समय "कोमागातामारू" जहाज कलकत्ता से बजबज पर आया तो सरकार की ओर से यात्रियों को निःशुल्क पंजाब ले जाने के लिए स्पेशल ट्रेन तैयार खड़ी थी, इन सबको सरकार अपने आर्डीनैन्स के द्वारा नजरबन्द बनाना चाहती थी। किन्तु इस जहाज के यात्रियों ने गाड़ी में चढ़ने से स्पष्ट निषेध कर दिया। वे कलकत्ता नगर में पंक्ति बनाकर जाने लगे। सरकार ने सेना द्वारा बलात् यात्रियों को वापिस खदेड़ दिया। इससे दंगा हो गया। सिक्खों के पास भी रिवालवर थे। गोलियां चलीं, दोनों ओर के व्यक्ति मरे। अन्त में ६० यात्रियों को जिनमें १७ मुसलमान थे सायंकाल गाड़ी में विवश कर बैठाया गया। इस दंगे में १८ सिक्ख मारे गए। जिनका बहुत समय तक पता न चला। गिरफ्तार लोगों में से अधिकांश लोगों को जनवरी सन् १९१५ में अपने घर जाने की आज्ञा दे दी। इनमें से ३१ को जेलों में नजरबन्द कर दिया गया। बाबा गुरुदत्तसिंह इस झगड़े में गोली से घायल हुए। उनके साथी उनको कन्धों पर उठाकर गोलियों की वर्षा से निकालकर बाहर कहीं ले गये। पुलिस उन्हें पकड़ने की चिन्ता में थी, बाबा जी की गिरफ्तारी के लिए दस हजार रुपये के पुरस्कार की घोषणा सरकार ने की। किन्तु सब कुछ करने पर भी सरकार उनको कभी नहीं पकड़ सकी। इस घटना का समाचार अमेरिका पहुंचने पर भारतीय प्रवासियों में उत्साह व जोश की सीमा न रही। उस समय यह खबर सब स्थानों पर फैल रही थी, कि जर्मनी, फ्रांस को लेकर इङ्गलैंड पर आक्रमण करेगा। भारतीयों की गदरपार्टी ने इस समय यही निश्चय किया था कि भारतवर्ष में जाकर भारतवर्ष की देशी सेना तथा जनता में प्रचार करके गदर कराया जाये। भारत की सेना को अंग्रेजों की सहायता करने से रोका जाये। भारत में भी पहले से देशभक्त पंजाब तथा बंगाल आदि प्रदेशों में गदर की तैयारी कर रहे थे। इस समय अमेरिका से वृद्ध और युवक सभी भारतीय अपने कार्य और सम्पत्ति को छोड़-कर भारत की ओर इसी योजना को पूर्ण करने के लिए चल पड़े।

कनेडा के अतिरिक्त संयुक्त राज्य, हांगकांग, चीन आदि सभी स्थानों से भारतीयों के दल के दल भारत को चल दिए। इधर कनेडा में भागसिंह, वचनसिंह और बेलासिंह आदि के बलिदान ने आग पर घृत का कार्य किया। लाला हरदयाल का इस गदर की योजना में पूरा हाथ था। अतः इनके विषय में पाठकों को अच्छी प्रकार ज्ञान कराना अत्यन्तावश्यक है।

देशभक्त लाला हरदयाल

ओमानन्द सरस्वती (आचार्य भगवान्देव)

ये दिल्ली के निवासी थे और बहुत प्रतिभाशाली थे। इन्होंने पंजाब विश्वविद्यालय से एम० ए० पास किया था और सरकारी छात्रवृत्ति लेकर विलायत पढ़ने के लिए गये। ला० हरदयाल जी १६०५ में इङ्गलैंड में आक्सफोर्ड विश्वविद्यालय में राजकीय छात्रवृत्ति से पढ़ते थे। इसी समय श्यामजी कृष्ण वर्मा (इण्डिया हाउस) भारतीय भवन की स्थापना कर और अपना एक मासिक पत्र निकाल कर भारत को स्वतन्त्रता का प्रचार कर रहे थे। इन्हीं दिनों लाला जी का श्याम जी कृष्ण वर्मा के साथ प्रेम हो गया था। श्याम जी के विचारों से प्रभावित हो वे भी उनके विचारों का प्रचार करने लगे और इसी समय भाई परमानन्द जी आर्यसमाज का प्रचार करने लन्दन में आये थे। वे भी इण्डिया हाउस में ठहरते थे, उनके साथ भी ला० हरदयाल जी का बड़ा स्नेह होगया। लाला हरदयाल जी को क्रांति की ओर प्रवृत्त करने वाले यही दो व्यक्ति थे। विशेषतया श्याम जी कृष्ण वर्मा की सङ्गति का आप पर बड़ा अच्छा प्रभाव पड़ा। श्याम जी को लाला हरदयाल जी के राजनीतिक गुरु कहें तो उचित ही है। इन्हीं दिनों श्याम जी कृष्ण की छात्रवृत्ति लेकर वीर सावरकर भी इङ्गलैंड पहुंचकर 'भारतीय भवन' में रहने लगे। ला० हरदयाल इनके साथ मिलकर सभी कार्यों को उत्साह से करते थे। १६०७ में श्याम जी कृष्ण वर्मा फ्रांस की राजधानी पैरिस में पहुंच गये। इसके थोड़े दिन पश्चात् लाला हरदयाल जी भी पेरिस पहुंचकर स्वतन्त्रतापूर्वक राजनीतिक कार्यों में उन्हें सहयोग देते रहे। लाला हरदयाल अपना अध्ययन छोड़कर १६०८ में इङ्गलैंड से भारतवर्ष आ गए थे। उन्होंने "अंग्रेजी शिक्षा का तरीका बुरा है" अचानक यह कहकर आक्सफोर्ड का पढ़ना तथा सरकारी छात्र-वृत्ति दोनों ही छोड़ दीं। भारत लौटकर लाला जी दिल्ली और लाहौर से विशेष रूप से राजनीतिक शिक्षा का प्रचार करते रहे।

उनके अनेक शिष्य अमीरचन्द, अवधबिहारी, जे० एन० चटर्जी और दीनानाथ आदि थे। किन्तु सरकार की सी० आई० डी० इङ्गलैंड से ही सन्देह के कारण आपके पीछे लगी हुई थी। अब भारत में भी उनकी गिरफ्तारी की सम्भावना अधिक दिखाई देने लगी। ऐसी अवस्था में वे भारत में अधिक समय तक न ठहर सके। दिल्ली में मा० अमीरचन्द जी उनके पीछे कार्य चलाते रहे। दिल्ली में इनके दल के लाला हनुमन्तलाल विदेशी माल के बड़े व्यापारी थे। उन्हें लाला हरदयाल जी के संसर्ग से यह ज्ञात हो गया था कि विदेशी शिक्षा का उद्देश्य हमारी दासता को सुदृढ़ करना तथा दास मनोवृत्ति को उत्पन्न करना है। उन्होंने १६०६ में अपने मकान चेलपुरी में राष्ट्रीय विद्यालय खोला। इसमें मा० अमीरचन्द तथा अन्य अध्यापक भी पढ़ाया करते थे। लाला हनुमन्तसिंह विदेशी माल के बहुत बड़े व्यापारी थे किन्तु लाला हरदयाल जी की सङ्गति से स्वदेशी का प्रण करने के पश्चात् उन्होंने अपने बड़े भारी लाभजनक व्यापार को लात मार दी। इसके पश्चात् दिल्ली का कार्य छोड़-कर लाला हरदयाल अमेरिका चले गये।

ये वहां जाकर सानफ्रांसिस्को में रहने लगे। लाला हरदयाल के योरुप से आजाने के कारण और वीर सावरकर के गिरफ्तार होने के कारण योरुप में भारतीय विप्लववाद का जोर कम होगया

था। १६०८ में सदैव के लिए भारत को छोड़कर पहले लन्दन गये। किन्तु वहां के राजनीतिक कार्य में निराशा देख पैरिस कुछ दिन रहकर ये अलजीरिया (अफ्रीका) में जाकर रहे। इस स्थान पर वे निर्धनों के समान जीवन व्यतीत करते थे। यहां वे तपस्या कर रहे थे। किन्तु वहां उन्हें मुसलमानों की सोसाइटी बहुत भयङ्कर प्रतीत हुई। अत: वहां से ये पुन: पैरिस लौट आये। वे इसके पश्चात् अपने लक्ष्य को सम्मुख रख मध्य अमेरिका में पश्चिम द्वीप समूह फ्रेंच टापू मार्टीनिक में जाकर रहे। यहां वे एक बहुत छोटे से कमरे में रहते थे। यहां पर लाला हरदयाल जी रहते हुए प्राय: पास वाली पहाड़ी पर तप करने जाया करते थे। भूमि पर बिना कुछ बिछाये ही सोते थे, कोई अन्न वा आलू उबालकर खाते, दिन में थोड़ा सा पढ़ते थे। शेष सारा समय ध्यान करने में व्यतीत करते थे। १६११ में जब भाई परमानन्द जी योरुप होकर अमेरिका आये तो वहां से लाला हरदयाल से मिलने मार्टीनीक द्वीप पहुंचे, यहां वे लगभग एक मास तक लाला जी के पास ठहरे। भाई जी को उन्होंने बताया कि मैं बुद्ध के समान एक नया धर्म चलाना चाहता हूं। इसी के लिए तप करके अपने आपको तैयार कर रहा हूं। विवश हो भाई जी भी उनके साथ इसी प्रकार रहने लगे।

इन दोनों देशभक्तों में अत्यन्त घनिष्ठ मित्रता तथा सच्चा प्रेम था। इनका परस्पर वादविवाद भी हुआ करता था। भाई परमानन्द जी उनके इस तप के कार्य को व्यर्थ समझते थे। वे उनको आर्य मिशनरी के समान कर्मक्षेत्र में देखना चाहते थे। अन्त में बहुत दिनों के वादविवाद के पश्चात् ला० हरदयाल इस बात पर सहमत हो गये कि वह हार्वर्ड विश्वविद्यालय में जाकर वहां प्रोफेसर के रूप में सेवा करते हुए एक नया केन्द्र कार्यार्थ बना दें। अत: भाई जी के पुरुषार्थ के फलस्वरूप ला० हरदयाल जी अपनी तपस्या छोड़कर हार्वर्ड जा पहुंचे, किन्तु वहां का जलवायु लाला जी को अनुकूल नहीं पड़ा। वहां से पुन: वे होनोलूलू द्वीप में जाकर तप करने लगे तथा भाई जी को ब्रिटिश गायना में भेज दिया। भाई जी वहां धर्म का प्रचार कर रहे थे। फिर भाई जी सान फ्रांसिस्को (अमेरिका) आकर पढ़ने लगे, फिर कुछ समय पश्चात् ला० हरदयाल भाई जी के पास ही सानफ्रांसिस्को आगये। भाई जी ने अपने मित्र डाक्टर द्वारा एक हाल किराये पर लेकर ला० हरदयाल जी के व्याख्यान हिन्दू दर्शन पर कराये। फिर बर्कले यूनिवर्सिटी में भारतीय विद्यार्थियों ने हिन्दू दर्शन पर ही लाला जी के व्याख्यान कराये। ला० हरदयाल जी की भाषा, वक्तृत्व शक्ति तथा योग्यता आश्चर्यजनक थी। अत: उनका यश इतना फैल गया कि बर्कले यूनिवर्सिटी का संस्कृत का प्रोफेसर उनका भक्त बन गया। उसके उद्योग से ला० हरदयाल चैम्सफोर्ड विश्वविद्यालय के संस्कृत तथा हिन्दू दर्शनशास्त्र के प्रोफेसर बन गए। लाला जी वेतन नहीं लिया करते थे। लाला जी का अत्यधिक सम्मान यहां पर हुआ। समाचार पत्रों में इनको हिन्दू ऋषि लिखा जाता था। अब उनके विचार समाजवाद और साम्यवाद की ओर झुक रहे थे। लाला हरदयाल जी मध्यमावस्था में नहीं रहते थे।

यूनिवर्सिटी तथा बाहर वे पूञ्जीवाद तथा सरकार के विरुद्ध खुला प्रचार करने लगे। यूनिवर्सिटी के अधिकारियों के साथ उनके विचार का मतभेद होने से वे यूनिवर्सिटी छोड़कर सान फ्रांसिस्को चले गये। भाई जी के साथ भी अनेक विषय में मतभेद रहता था। ला० हरदयाल जी ने वहां अमेरिका में भारतीय विद्यार्थियों तथा सिक्खों से मेल-जोल बढ़ाकर गदरपार्टी की स्थापना की। भाई जी तो कुछ समय पश्चात् अपनी पढ़ाई समाप्त कर इङ्गलैंड चले गये। ला० हरदयाल सब भारतीय सह-

योगियों को इकट्ठा कर भारत के राष्ट्रीय आन्दोलन को बढ़ाना चाहते थे। इसमें भाई परमानन्द जी को भी बुलाया था।

ला० हरदयाल जी का विचार एक छापाखाना खोलकर अखबार निकालकर राजनीतिक विचारों का प्रचार कर राष्ट्रीय भावना पैदा करने का था। इनकी इच्छा गदरपार्टी की स्थापना करने के पश्चात् पूर्ण हुई। इस योजना को पूर्ण करने के लिए रौलट कमेटी की रिपोर्ट के अनुसार एक मीटिंग ऐस्टोरिया नगर में ला० हरदयाल जी की अध्यक्षता में अमेरिका के अन्तर्गत ओरगांन राज्य में हुई। इसमें निश्चय किया गया कि प्रशान्त महासागर तट का एक हिन्दू ऐसोसिएशन बनाया जावे। इसकी शाखायें स्थान-स्थान पर हों, गदर नाम का पत्र भी निकालने का निश्चय किया गया। इसके लिए धन संग्रह करने का भी निश्चय हुआ। प्रेस का नाम "युगान्तर आश्रम" रखा गया। इस विषय में अन्यत्र लिखा जा चुका है। इस समय ला० हरदयाल तथा उनके साथी स्थान-स्थान पर सभा करके व्याख्यान देते फिरते थे। लाला जी के प्रधान साथियों में रामचन्द्र भूतपूर्व भारतीय सम्पादक तथा बरकतुल्ला थे। इस समय अंग्रेजी खुफिया पुलिस भी लाला जी का छाया के समान पीछा कर रही थी।

प्रवासी अमरिकनों के कथनानुसार ब्रिटिश सरकार को एक बड़ी रिश्वत ला० हरदयाल को गिरफ्तार करने के लिए दी। लाला हरदयाल को २५ मार्च, १६२४ को गिरफ्तार कर लिया गया। उस समय के अमेरिकन पत्रों को देखने से पता चलता है कि उस समय अदालत में जमानत देनेवालों की बड़ी भारी भीड़ इकट्ठी हो गई थी। अमरिकन धनिक तक थैलियां लिए हुए अदालत में खड़े थे। वह ला० हरदयाल जी के बदले में बराबर का सोना तक तोलकर देने के लिए तैयार थे। अन्त में लाला जी जमानत पर छुड़ाये गये। वे गदर पत्र और युगान्तर आश्रम छापेखाने का सब प्रबन्धभार रामचन्द्र पर छोड़कर स्वीट्जरलैंड चले गये। उस समय योरुप में युद्ध जोरों पर था। लाला जी ने जर्मनी से बातचीत की। कैसर ने उन्हें अपनी युद्ध समिति में ले लिया। कहा जाता है इसके पश्चात् लाला जी ने भारतीय समुद्र में कई युद्धों का सञ्चालन किया। किन्तु पीछे उन्हें पता चल गया कि जर्मनी की नीयत भी अंग्रेजों के समान ही है और जर्मनी पर अपने वचन पर स्थिर रहने की आशा नहीं की जा सकती। अतः वे वहां से गुप्त रूप से आकर हालैण्ड में रहने लगे।

इङ्गलैंड के भूतपूर्व प्रधानमन्त्री रामसे मैकडोल्ड लाला जी के मित्र थे। अतः जब वह फिर प्रधानमन्त्री बने,उन्होंने लालाजी को विश्वास दिलाया कि इङ्गलैंड में आकर वह स्वतन्त्रतापूर्वक रह सकते हैं। उन पर इङ्गलैंड में भारत के सम्बन्ध में कोई मुकद्दमा नहीं चलाया जायेगा। अतः लाला जी तब से लेकर सन् १६३८ तक इंगलैंड में रहे। इंगलैंड आकर उन्होंने कालिज में नाम लिखवाकर पी० एच० डी० की उपाधि प्राप्त कर ली। किन्तु भारत सरकार उनकी पूर्व की भांति विरोधी रही। उसने भारतीय व्यवस्थापिका सभा में सन् १६३७ में यह स्पष्ट कहा था "लाला जी के भारत आने पर कोई पाबन्दी नहीं है किन्तु उनके भारत आने पर मुकद्दमा चलाया जायेगा।"

किन्तु १६३८ के अन्त में उनको किसी सरकार के विरुद्ध कार्य में सम्मिलित न होने का वचन लेकर भारत आने की अनुमति दे दी गई। लाला हरदयाल की योजनानुसार सन् १६१४ में अमेरिका चीन आदि अनेक देशों से प्रवासी भारतवासी भारत आये। पं० जगतराम, करतारसिंह, बाबा सोहनसिंह, निधानसिंह, बाबा रूढ़सिंह और केसरसिंह आदि अनेक व्यक्ति इस समय बाहर से भारत

आये थे । भाई परमानन्द जी स्विट्जरलैंड में सरदार अजीतसिंह के दर्शन करके दिसम्बर १९१३ के अन्त तक बम्बई आ गए थे । उनके पीछे २४ घण्टे छाया के समान खुफिया पुलिस लगी रहती थी । लाला जी की योजनानुसार सहस्रों भारतीय जहाजों पर सवार होकर चल दिए । मार्ग में हांगकांग, सिंघापुर और रंगून आदि जहां कहीं जहाज ठहरते थे वे जहाज से उतरकर सेनाओं में जाकर सैनिकों को सरकार के विरुद्ध भड़काते थे । जिसके कारण सिंहापुर में भी विप्लव हुआ । इधर गदर नाम का पत्र पंजाब सरकार भी मंगवाती थी । इससे उसको प्रवासी भारतीयों की हलचलों और कार्यों का पता लगता रहता था । सरकार के गुप्तचर भी समाचार भेजते रहते थे । अतः सरकार ने निश्चय किया जो भी अमेरिका आदि देशों से आवे उसे पकड़कर नजरबन्द कर दिया जावे । अतः बाहर से आने वालों की बड़ी भारी संख्या जेल में डाल दी गई । कितने ही लोग बहाना करके कलकत्ता से बचकर निकल गये । कुछ लंका आदि की ओर से वे रोक-टोक आ गए । अनेक व्यक्ति नाम और वेष बदलकर गिरफ्तारी से बचकर निकल गए वा गिरफ्तार होकर भी छूट गए । इन्होंने पंजाब में घूमकर प्रचार करना तथा उपद्रव करने भी आरम्भ कर दिए । कुछ पकड़े जाने पर सरकारी गवाह बन गए । इनमें से सबसे पहला वादामाफ गवाह नवाब नामक मुसलमान था । अमेरिका से इनके साथ केवल यह एक ही आया था । उसका सारा व्यय भी अन्य यात्रियों ने अपनी जेब से दिया था ।

भाई परमानन्द ने इसके विषय में लिखा है कि यह अमेरिका में मुखबिरी का कार्य कर चुका था । इसने मार्ग की सब बातें विस्तृत रूप से सरकार को बता दीं । यह नीच मुसलमान होने से क्रांतिकारियों में एक लीडर के समान रहता था । उधर सरकार से मिला रहता था । इन लोगों ने पंजाब में आकर डाके आदि डाले तथा अन्य जो कार्य किए वे कर्त्तारसिंह आदि के कार्यों के साथ लिखे गये हैं । २९ अक्तूबर को तोसामार जहाज कलकत्ता में १७३ भारतीय यात्रियों को लाया । इसमें प्रायः सभी सिक्ख थे । इनमें से १०० व्यक्ति जेलों में नजरबन्द कर दिए गए । जो नजरगन्द नहीं किये जा सके थे उनमें से छः को लाहौर षड्यन्त्र में फांसी दे दी गई । छः को अन्य षड्यन्त्र में दण्ड दे दिया गया । छः को नजरबन्द कर दिया गया । कुछ वादामाफ गवाह बन गये । इस जहाज के यात्रियों को सरकार सबसे भयङ्कर समझती थी । किन्तु ये सब नजरबन्द होने से कुछ भी न कर सके ।

२१ फरवरी सन् १९१४ की अखिल भारतीय योजना के विफल होने से ला० हरदयाल की गदर-पार्टी का एक विशाल षड्यन्त्र और सारा पुरुषार्थ व्यर्थ चला गया । जो अन्यत्र पाठकों को पढ़ने को मिलेगा । रास बिहारी बोस, शचीन्द्रनाथ सान्याल और कर्त्तारसिंह ने मिलकर इन आने वाले प्रवासी सिक्ख भाइयों को व्यवस्था में रखकर अथक परिश्रम इस गदर योजना को सफल बनाने लिए किया । किन्तु अनेक कारण ऐसे उपस्थित हुए जिससे सारी योजना मिट्टी में मिल गई और सैकड़ों नवयुवक फांसी के तख्ते पर झूल गए । सहस्रों को जेल में सड़ना पड़ा ।

यह देश का दुर्भाग्य था कि १८५७ के पीछे यह ही देश को स्वतन्त्र कराने की बहुत बड़ी योजना थी वह भी विफल हो गई । इसके विफल होने का मुख्य कारण तो प्रवासी सिक्खों को गुप्त षड्यन्त्र किस प्रकार किया जाता है इसका अनुभव न होना था । इसे ही बड़ी भारी भूल कहा जाता है ।

प्रवासी सिक्खों की भूलें

इस समय अमेरिका, कैनेडा आदि देशों से जो भी यात्री भारत में विद्रोह करने के लिए आ रहे थे, उनमें प्रायः सिक्ख थे। ये सब यह नहीं जानते थे कि गुप्त षड्यन्त्र किस प्रकार किये जाते हैं। जहाज पर ये लोग खूब स्पष्ट खुलकर अपनी योजना के विषय में बातें करते रहते थे। गुप्त रूप से विचार करना और योजना बनाना उन्हें आता ही न था। खुल्लमखुल्ला मार्ग में उतरकर सेनादि में विप्लव का प्रचार करना, अपनी वीरता की बिना कुछ किए परस्पर डींगें मारना आदि इनकी योजना को विफल करने के लिए पर्याप्त कारण थे। इन्हीं में ये छुपे हुए गुप्तचर थे, कुछ विश्वासघाती भी निकल आये। इनके खुल्लमखुल्ला प्रचार के कारण योजना गुप्त न रह सकी। इनके भारत में आने से पूर्व ही सरकार के पास सब सूचनायें पहुंच चुकी थीं तथा सरकार चौकन्नी हो गई थी। उस समय भिन्न-भिन्न दलों में लगभग छः हजार सिक्ख देश में लौटकर आये। उनमें से उपर्युक्त कारणों से अधिकतर नजरबन्दी कानूनानुसार जेल में ठोक दिए गए। जो शेष बचकर रह गए उनके विचार बदल गए। जो शेष बचकर रह गये आधे से अधिक अपने घर-गृहस्थ के कार्यों में फंस गए; जिनके विषय में पृथक्-पृथक् लिखा गया है।

—o—

@VaidicPustakalay

पंजाब केसरी लाला लाजपतराय

ओमानन्द सरस्वती (आचार्य भगवान्देव)

लाला लाजपतराय के पिता का नाम राधाकृष्ण था। वे फिरोजपुर जिले के ढोडी ग्राम के निवासी थे। वहीं पर २८ जनवरी १८६५ ई० को लाला लाजपतराय का जन्म हुआ। इनके पिता जी भी पंजाब के एक छोटी सी तहसील के स्कूल में अध्यापक थे। छः वर्ष ग्राम के स्कूल में शिक्षा प्राप्त कर लाजपतराय जी ने लुधियाना के मिशन स्कूल में शिक्षा प्राप्त की। फिर अपने पिता जी के साथ अम्बाला पहुंच गये। यहां पर सन् १८८० में आपने पंजाब विश्वविद्यालय से मैट्रिक की परीक्षा अच्छे अङ्कों से उत्तीर्ण की जिससे आपको छात्रवृत्ति मिलने लगी। इससे आपके पिता जी को भी उत्साह मिला और उन्होंने आपको लाहौर गवर्नमेंट कालिज में पढ़ने के लिए भेज दिया। यहां से एफ० ए० की परीक्षा उत्तीर्ण कर मुखत्यारी की परीक्षा भी आपने पास कर ली। उन दिनों महर्षि दयानन्द के पवित्र क्रांतिकारी सुधारक विचारों से सारा देश विशेषतया पञ्जाब प्रभावित हो रहा था। लाहौर में १८७७ में आर्यसमाज की स्थापना हो चुकी थी। लोकसेवा अथवा देशसेवा के पथिक के लिए आर्यसमाज का क्षेत्र ही सबसे श्रेष्ठ था। अतः पंजाब के सब विचारक और होनहार युवक लेखराम, महात्मा मुन्शीराम, पं० गुरुदत्त, विद्यार्थी लाला लाजपतराय आदि आर्यसमाज के प्रमुख व्यक्ति माने जाते थे। ये स्वामी दयानन्द के सन्देश को पंजाब के युवकों तक बड़ी उत्सुकता से पहुं-चाने में संलग्न थे। आपने आर्यसमाज के सार्वजनिक कार्यों में भाग लेते हुए वकालत भी पास कर ली और हिसार में आर्यसमाज की स्थापनार्थ अपनी आय की सारी बचत १५००) दान में दे दी, उस समय तो यह बहुत बड़ा दान था। हिसार में आपने एक संस्कृत विद्यालय की स्थापना की। आप हिसार के म्युनिसिपल बोर्ड के अवैतनिक मन्त्री रहकर तीन वर्ष तक सेवा करते रहे। आपने लाहौर के मित्रों के आग्रह के कारण और पंजाब की सभी प्रगतियों का केन्द्र लाहौर समझकर हिसार को छोड़कर वहीं अपना डेरा जमाया। पं० गुरुदत्त विद्यार्थी, लाला हंसराज को श्री दयानन्द एंग्लो वैदिक कालिज की स्थापना में पूर्ण सहयोग दिया। उस समय यह स्वामी दयानन्द के आदर्शों को कार्यान्वित करने के उद्देश्य से स्वामी जी के स्मारक के रूप में बनाया गया था। किन्तु पीछे आकर यह केवल अंग्रेजी शिक्षा का केन्द्र ही रह गया, जिससे पं० गुरुदत्त विद्यार्थी तो निराश होकर इसे छोड़ गये। पं० गुरुदत्त जी, लाला हंसराज तथा लाजपतराय ने इसके लिए घोर परिश्रम किया और सरकार की बिना किसी आर्थिक सहायता के इसे चलाया था। लाला जी इस कालिज की कमेटी के छः वर्ष तक मन्त्री रहे। आप कालिज की सेवा का कार्य अवैतनिक रूप से करते रहे। पं० गुरुदत्त जी ने २५ वर्ष की अल्पायु में ही संसार की यात्रा पूर्ण कर दी। तत्पश्चात् लाला जी पर कार्यभार और बढ़ गया। आप आर्यसमाज की राष्ट्रीय शिक्षण संस्थाओं की स्थापना में तन, मन और धन से सह-योग देते थे। आप जालन्धर के एंग्लो संस्कृत कालिज के भी मन्त्री रहे। इन सेवाओं के कारण आपकी गणना भारत के शिक्षा विशेषज्ञों में होने लगी। इसी कारण जब लार्ड कर्जन ने १९०२ में शिक्षा सम्बन्धी जांच कमेटी का निर्माण किया तो आपको भी कमेटी के सम्मुख साक्षी देने का सम्मानपूर्ण निमन्त्रण दिया गया। आपकी रुचि शिक्षा प्रचार में पराकाष्ठा को लांघ गई। आप स्वयं सदा तपस्या का जीवन व्यतीत करते थे और अपनी आय से संचित धन को दान में देते थे। यही आपका स्वभाव बन गया था। आप अपने लिए बचाकर रखना पाप समझते थे, इसी कारण त्याग-

मय जी से प्रभावित हो जनता आपकी आज्ञा पर सर्वस्व न्योछावर करने को तैयार रहती थी। जनता आपके पीछे पागल थी। आपने अपनी खून-पसीने की कमाई में से ५० सहस्र रुपये शिक्षण संस्थाओं को अर्पण किये। उनकी बलिदान की भावना और सिंहगर्जना के कारण पंजाब की जनता ने आपको पंजाब केसरी के पद से सुशोभित किया। रोगी शरीर होते हुए तथा डाक्टरों के बार-बार विश्राम करने का परामर्श देने पर भी आपने जीवन के अन्तिम क्षण तक कभी विश्राम नहीं किया। रोगशय्या पर भी कार्य करते रहते थे।

समाज सेवा

शिक्षा-क्षेत्र के अतिरिक्त लाला जी ने समाज-सेवा देश-सेवा में कार्य में भी बढ़-चढ़कर भाग लिया। आपका हृदय तो जनता के प्रत्येक कष्ट से दु:खी होता ही था। देश की पराधीनता आपको कांटे के समान खटकती थी। इसलिए आप ऐसी अवस्था में विश्रामपूर्ण जीवन कैसे व्यतीत कर सकते थे। देश का दु:ख इनके लिए अपना निज का दु:ख था। सन् १८९६ में उत्तर भारत में भयङ्कर अकाल पड़ा और वह दुष्काल कुछ समय के लिए बढ़ता ही चला गया। १८९९ में यह बङ्गाल, मध्यभारत और राजपूताना में भी फैल गया, खेतियां सूख गईं, तालाबों में भी पीने को पानी न रहा। हजारों नर-नारी भूख के मारे तड़फ-तड़फ कर प्राण देने लगे, ग्राम के ग्राम खाली हो गए। हजारों अनाथ बालक गलियों में भटकने लगे। अंग्रेजी सरकार ने आंसू पोंछने के लिए नाम मात्र की सहायता की। इन विदेशी शासकों के मन में दया के स्थान पर निष्ठुरता कूट-कूट कर भरी हुई थी। इन्होंने एक धूर्तता और की जो ईसाई पादरी अकालग्रस्त माता पिताओं के अनाथ बच्चों को अपनी शरण में ले रहे थे उन पादरियों की इस कार्य में अंग्रेज सरकार ने सहायता की, इस प्रकार सहस्रों हिन्दू नि:सहाय अनाथ बालक ईसाई पादरियों के हाथ में आगए। अकेले राजपूताने में ही इसी प्रकार ७० हजार हिन्दू अनाथ बालक ईसाई पादरियों के चंगुल में जा चुके थे। लाला लाजपनराय ने इस दु:ख से दु:खी होकर झोली बांधी श्रीमानों के द्वार-द्वार पर घूम-घूमकर अन्न-धन्न इकट्ठा करने लगे और दुर्भिक्ष पीड़ितों को अन्न और वस्त्र से सहायता देनी प्रारम्भ की। अनाथ हिन्दू बालकों की रक्षार्थ आर्य-समाज की सहायता से कई नगरों में अनाथालय खोले। इन अनाथालयों में सहस्रों बालकों की रक्षा का स्थायी आश्रय मिल गया। फिरोजपुर में सबसे बड़ा अनाथालय खोला गया। लाला जी ने इसके सञ्चालन का भार अपने ऊपर लिया। लाला जी का यह उपकार कार्य हिन्दू जाति के इतिहास में चिरस्मरणीय रहेगा। लाला जी ने १९०१ में सरकार द्वारा नियुक्त दुर्भिक्ष कमीशन के सामने साक्षी देते हुए आग्रह किया कि हिन्दू अनाथ बालकों को ईसाई पादरियों को न दिया जाये किन्तु उसके सहधर्मियों को वा हिन्दू संस्थाओं को सौंपा जाये। इस प्रकार हिन्दू जाति की रक्षार्थ वे सदैव तत्पर रहते थे। दुष्काल के पश्चात् पंजाब (काङ्गड़ा) में भूकम्प से जन धन की बहुत बड़ी हानि हुई। वहां भी आपने घटना स्थल पर पहुंचकर खूब सेवा की। इसी प्रकार उड़ीसा और मध्यभारत में १९०७, १९०८ में दुष्काल के समय आपने खूब सेवा की।

अछूतोद्धार

सन् १९१२ में एक अछूतोद्धार सम्मेलन गुरुकुल कांगड़ी के वार्षिकोत्सव पर आपके सभापतित्व में हुआ। उस समय तक महात्मा गांधी को हरिजनों के उद्धार का विचार भी नहीं आया था, उन

दिनों आर्यसमाज हिन्दूसमाज के उपेक्षित वर्ग दलित भाइयों के उद्धारार्थ ठोस क्रियात्मक सेवा-कार्य कर रहा था। आप आर्यसमाज के सेवक थे ही अतः अछूत भाइयों की सेवा का कार्य आपने खूब बढ़-चढ़ कर किया। दलित वर्ग की शिक्षा के लिए लाला जी ने विशेष उद्योग किया। इस कार्य के लिए आपने चालीस हजार रुपये अपने पास से दान किये। इस रुपये से अछूतों के लिए अनेक शिक्षण संस्थायें खोलीं। आप अछूतों के घरों में जाकर उनके हाथ से भोजन करते थे और आपने सैकड़ों वर्ष की इस पुरानी रीति को इस प्रकार साहस से भङ्ग किया। लाला लाजपतराय अथवा आर्यसमाज द्वारा अछूतोद्धार का कार्य महात्मा गांधी के कार्य-क्षेत्र में उतरने से पूर्व ही प्रारम्भ हो चुका था। यह सब सेवा कार्य अपने पूज्य गुरु महर्षि दयानन्द की कृपा से ही लाला लाजपतराय ने सीखा था।

कांग्रेस में प्रवेश

सन् १८८५ ई० में लार्ड डफरिन की सम्मति से जो उस समय वायसराय थे, मि० ह्यूम ने इण्डियन नेशनल कांग्रेस की स्थापना की थी। इसका पहला अधिवेशन बम्बई में, दूसरा अधिवेशन १८८६ में कलकत्ता में दादा भाई नौरोजी की अध्यक्षता में हुआ। इनमें ला० लाजपतराय सम्मिलित नहीं हुये। चौथा अधिवेशन १८८८ में प्रयाग हुआ, इस में सर्वप्रथम लाला जी कांग्रेस में सम्मिलित हुये थे। उस समय आपकी २३ वर्ष की आयु थी। आपने इस अल्पायु में कौंसिल सुधार का बिल उपस्थित किया और आप बोले भी। १८९२ में फिर प्रयाग में कांग्रेस का अधिवेशन हुआ। इन दिनों सर सैय्यद अहमद सरकार से मिलकर कांग्रेस का विरोध कर रहे थे। लाला जी ने इस अधिवेशन में एक पत्रिका प्रकाशित करके बंटवाई जिसमें सर सैय्यद अहमद के कांग्रेस विरोधी विचारों का मुंह तोड़ उत्तर दिया था।

कांग्रेस का अगला अधिवेशन लाहौर में हुआ। पञ्जाब के मुस्लिम वर्ग ने सहयोग देना तो दूर रहा, डटकर विरोध किया। कांग्रेस के नेता घबराये हुए थे, क्योंकि कांग्रेस का प्रचार पञ्जाब में सर्वथा नहीं हुआ था। पंजाब में आर्यसमाज एक शक्तिशाली देशभक्त संस्था थी। यदि उस समय आर्यसमाज के नेता सहयोग न देते तो कांग्रेस का अधिवेशन लाहौर में नहीं हो सकता था। किन्तु आर्यसमाजियों ने कांग्रेस अधिवेशन का सब कार्यभार अपने ऊपर लिया। लाला जी ने रातदिन एक कर दिया। सभी आर्यसमाजी तन, मन और धन से जुट गए। लाला जी ने पंजाब के सभी नगरों से धन इकट्ठा किया और लाहौर के अधिवेशन को पूर्णतया सफल बनाया। आज के कांग्रेसी उस पुराने इतिहास को भूल गए कि आर्यसमाज ने उस समय कांग्रेस का सहयोग दिया था जब कांग्रेस का नाम-लेवा और पानीदेवा कोई भी नहीं था। इस कांग्रेस अधिवेशन के पश्चात् पंजाब सरकार की दृष्टि लेवा और पानीदेवा कोई भी नहीं था। इस कांग्रेस अधिवेशन के पश्चात् पंजाब सरकार की दृष्टि लाला लाजपतराय के प्रति क्रूर हो गई और लाला जी सरकार विरोधी पक्ष के नेता बन गए। लाला लाजपतराय ने १८९७ में विक्टोरिया महारानी के राज्य की हीरक जयन्ती मनाने तथा रानी की मूर्ति स्थापित करने का डटकर विरोध किया। इस समय महाराष्ट्र में महात्मा तिलक को रानी विक्टोरिया के हीरक जयन्ती का विरोध करने के कारण सरकार ने डेढ़ वर्ष कड़ी कैद का दण्ड दिया। कैद से छूटने के पश्चात् महात्मा तिलक की विचारधारा और भी उग्र हो गई। ला० लाजपतराय भी उग्र विचारों के समर्थक थे। समान स्वभाव होने से दोनों ने

मिलकर कांग्रेस की नीति को उग्र बनाने का निश्चय कर लिया। उन दिनों कांग्रेस नर्म दल के नेता गोखले वा दादा भाई थे। कई वर्ष दोनों दलों में खूब सङ्घर्ष चला। लाला जी स्वभाव से गर्मदली थे। वे विदेशी सरकार से लड़कर अपना अधिकार प्राप्त करने की नीति के पक्ष में थे। स्वराज्य की भिक्षा मांगने के सर्वथा विरोधी थे। लाला जी सरकार की नीति का विरोध करते रहते थे।

गिरफ्तारी

सरकार लाला जी को गिरफ्तार करने का बहाना ढूँढ़ रही थी। १९०५ में बंग भंग से सारे भारतवर्ष में अंग्रेजी सरकार के विरुद्ध प्रबल आन्दोलन हो रहा था। सरकार की दमन की चक्की भी चल रही थी। हजारों देशवासी जेल में बन्द कर दिए गए। पंजाब की सरकार भी कब पीछे रहने वाली थी। अतः १९१८ के बंगाल रेग्युलेशन का सहारा लेकर लाला लाजपतराय को पकड़कर देश निर्वासन का दण्ड दे माण्डले की जेल में बन्द कर दिया। आपको जेल में भी अनेक कष्ट दिए गए। यहां तक कि आपके छोटे भाई ला० धनपतराय को जो आप से मिलने माण्डले पहुंचे थे, मिलने नहीं दिया। १६ मई १९०७ को आपको माण्डले में बन्दी किया था। उन दिनों अंग्रेजी सरकार के गुप्तचरों ने इस प्रकार की रिपोर्ट दी थी कि "पंजाब में आर्यसमाजियों की एक लाख सेना लाला लाजपतराय की सहायता से विद्रोह करने के लिए तैयार है और आर्यसमाज विद्रोह का केन्द्र है।" इन सबके परिणामस्वरूप ही लाला जी और श्री अजीतसिंह को गिरफ्तार करके देश निर्वासन का दण्ड मिला था। लाला जी के निर्वासन से में देश असन्तोष की आंधी चल पड़ी। वायसराय की कमेटी में गोखले ने भी इस पर दुःख प्रकट किया। इसका प्रभाव लन्दन में भी बहुत अधिक पड़ा। वहां एक बड़ी सार्वजनिक सभा की गई जिसमें श्री हाइंडमैन ने तो एक लम्बी चौड़ी वक्तृता दी। इस सभा में उपस्थिति इतनी अधिक हुई कि सभाभवन में स्थान न मिलने के कारण एक मण्डप में सभा की गई जिसमें लाला जी का जीवन-चरित्र सुनाया गया। ब्रिटिश पार्लियामेंट में भी प्रश्न हुए। स्वयं लाला जी ने भारतमंत्री को निर्वासन आज्ञा के विरुद्ध पत्र लिखा। संसार के सामने कली खुल गई कि लाला जी का देश निर्वासन का दण्ड देना भारत सरकार की धींङ्गामस्ती थी। ब्रिटिश सरकार के मंत्री ने भारत सरकार से इस निर्वासन का कारण पूछा। भारत सरकार कोई सन्तोषजनक उत्तर न दे सकी। तब प्रधानमन्त्री ने लाला जी की मुक्ति का आज्ञापत्र निकाल दिया। लाला जी और श्री अजीतसिंह को माण्डले की जेल में ही रखा गया था। किन्तु आपस में मिलने की आज्ञा नहीं थी। अन्त में ११ नवम्बर १९०७ के दिन दोनों को छोड़ देने की आज्ञा हुई। किन्तु इनके छोड़ने की सूचना किसी को नहीं दी गई। अकस्मात् लाहौर में आपको अपने बीच पाकर जनता के हर्ष का ठिकाना न रहा। इस छः मास के निर्वासन से लाला जी सारे भारतवर्ष के नेता बन गये, यह कार्य अंग्रेजी सरकार ने कर दिया कि लाला जी पंजाब के ही नहीं सारे भारतवर्ष के नेता बन गए और पंजाब के शिरोमणि नेता हो गए।

लाला जी ने माण्डले से लौटकर सारे उत्तर भारत के नगरों का दौरा किया। वकालत के पेशे को लात मारकर अपना सारा शेष जीवन देशसेवा में समर्पित कर दिया। वकालत का व्यवसाय छोड़ कर देशसेवा को ही जीवन का व्यवसाय बना लिया। साथ-साथ आप आर्यसमाज का भी कार्य करते रहे। लाहौर के अनारकली बाजार से वेश्याओं को निकालने के आन्दोलन में आपने पूर्ण शक्ति लगाई।

विदेश यात्रा

श्री गोखले, महात्मा तिलक तथा ब्रिटेन मजदूर नेता रेम्जे मेकडानल्ड आदि का यह विचार था कि यदि भारत के कुछ उत्तरदायी नेता ब्रिटेन में आकर पर्लियामेंट के सदस्यों को अपने अनुकूल बना सके तो भारत को औपनिवेशिक स्वराज्य मिल सकता है। इन सबकी सम्मति से लाला लाजपतराय जी इङ्गलैंड गए थे। वहां पहुंचकर लाला जी ने वहां के प्रमुख राजनीतिज्ञों से भेंट की तथा वहां पर भारतीय भावनाओं को स्पष्ट करने के लिए वहां की जनता के सम्मुख अनेक भाषण दिए तथा इसी विषय का साहित्य तैयार किया। इन दोनों का बड़ा अच्छा प्रभाव पड़ा। परिणामस्वरूप ब्रिटिश जनता का बहुत बड़ा भाग भारत को स्वनिर्णय का अधिकार देने को तैयार हो गया था। इसी कार्य के लिए लाला जी को कई बार इङ्गलैंड जाना पड़ा। इंगलैंड में आपका सम्बन्ध श्याम जी कृष्ण वर्मा के साथ हो गया था। सन् १९१४ ई० में प्रवासी भारतीयों के प्रति विदेशों में जो दुर्व्यवहार हो रहा था उस के निराकरणार्थ आप कांग्रेस की ओर से शिष्टमण्डल लेकर इङ्गलैंड पहुंचे। शिष्ट-मण्डल का कार्य पूर्ण होने पर अन्य सदस्य तो भारत लौट आए किन्तु लाला जी वहीं रह गए। आपकी इच्छा जापान होकर लौटने की थी। जापान की यात्रा पूर्ण करके जब आप भारत लौटने लगे तभी भारत का महायुद्ध छिड़ गया।

पुनः देश निर्वासन

भारत सरकार ने ब्रिटेन स्थित भारतमन्त्री को लिखा कि युद्धकाल में लाला लाजपतराय को भारत जाने की आज्ञा न दी जाए। भारत सरकार को भय था कि लाला जाजपतराय की उपस्थिति से भारत में अंग्रेजों के विरुद्ध जो भावना भड़क रही थी वह प्रबल हो जायेगी। लाला जी युद्ध की समाप्ति तक भारत से निर्वासित कर दिए गये। जापान से इंगलैंड और फिर वहां से नवम्बर सन् १९१४ को अमेरिका चले गये। वहां रहकर आपने अमेरिका के जनमत को भारत के अनुकूल बनाने का अथक परिश्रम किया। ब्रिटिश पत्र अमेरिका में भारत के विषय में जो भ्रम फैलाते थे उन सब का निराकरण लाला जी ने अपने भाषणों तथा लेखों द्वारा किया। "तरुण भारत" नाम की एक पुस्तक लिखकर भारतीयों की राष्ट्रीय भावनाओं का सुन्दर चित्र खींचकर यह प्रचार किया कि भारतीय नवयुवक ब्रिटिश शासन को नहीं चाहते और भारत को स्वतन्त्र राष्ट्र बनाने के लिए बड़े से बड़ा बलिदान करने को तैयार हैं। अमेरिका में इस पुस्तक की सहस्रों प्रतियां हाथों हाथ बिक गईं। इस पुस्तक की एक-एक प्रति ब्रिटिश पार्लियामैन्ट के सदस्यों को भेंट की थी। उसी समय भारत सरकार ने इस पुस्तक की सब प्रतियां जब्त कर लीं। इस पुस्तक के प्रकाशन से ला० लाजपतराय का सम्मान अमेरिकनों की दृष्टि में बहुत बढ़ गया। फिर क्या था चारों ओर से भाषण और लेख लिखने के निमन्त्रण मिलने लगे। लाला जी ने भी अनेक संस्थाओं और विश्वविद्यालयों में खूब दिल खोलकर अपने देश की कथा सुनाई। भारत के विषय में अमेरिकन लोकमत को लेखों और भाषणों से बदल डाला। इससे पूर्व अमेरिकन भारतीयों को असभ्य एवं जङ्गली मानते थे। उनका विश्वास था कि अंग्रेजों ने भारत को अपने शासन में लेकर भारत पर महान् उपकार किया हुआ है। लाला जी के भाषणों तथा लोह लेखनी ने इस मिथ्या विश्वास को जड़ से हिला दिया। आपने वहां पर पुरु-षार्थ के बल पर क्रियात्मक कार्य भी किया। अमेरिकन लोग लाला जी को बड़ी श्रद्धा की दृष्टि से देखने लगे।

इण्डियन होमरूल लीग की स्थापना

अमेरिका में भारत की प्रतिष्ठा बढ़ाने के लिए आपने इण्डियन होमरूल लीग की स्थापना की थी। इस कार्य में आर्यसमाज के प्रसिद्ध उपदेशक डा० केशवदेव शास्त्री और डा० हार्डिकर ने भी सहायता की।

डाक्टर हार्डिकर लीग के मन्त्री और लाला जी सभापति बने। यह प्रचार का कार्य पहले तो स्वयं ही कर रहे थे, फिर महात्मा तिलक ने आपकी सहायता की। महात्मा तिलक ने १७ हजार रु० ला० लाजपतराय को भेजे थे। यह सहायता पाकर लाला जी ने अपना कार्य दुगुने उत्साह से प्रारम्भ कर दिया। आपने "यंग इण्डिया" नामक एक मासिक पत्र प्रकाशित किया और 'तरुण भारत', 'भारत का इंगलैंड पर ऋण', 'भारत के लिए आत्मनिर्णय' आदि अनेक पुस्तकों का फ्रांस, इटली, स्पेन, जर्मनी, रूस आदि में भी प्रचार किया गया। योरुप की सभी भाषाओं में इसका अनुवाद हो चुका है। यह सब प्रकार का कार्य लाला जी ने अपने निर्वासनकाल में किया। सरकार उनके दोनों निर्वासनों का कारण नहीं बता सकी; भारत की धारा सभा में जब यह प्रश्न पूछा गया "लाला लाजपतराय को भारत आने की आज्ञा क्यों नहीं दी जाती ?" तो "इस प्रश्न का उत्तर देना सार्वजनिक हित के के अनुकूल नहीं है" यह कहकर टाल दिया गया।

नेताओं ने ब्रिटिश सेना की सहायतार्थ भारतीयों की भरती को प्रोत्साहित किया था। यह सब किन्हीं आशाओं के आधार पर किया गया था। किन्तु भारतीयों को नामपत्र के अधिकार दिए गए। महात्मा गांधी ने इन सुधारों को स्वीकार करने से निषेध कर दिया। सरकार ने "रौलट एक्ट" कौंसिल में पास करने का निश्चय किया। किन्तु सारे भारतवर्ष में इसके विरोध में सभायें हुईं। अमृतसर के जलियां वाले बाग में इसका विरोध करने के लिए सभा हुई। वहां अंग्रेज सरकार के अत्याचारी गोरे सिपाहियों ने निहत्थे भारतीयों पर जिस निर्दयता से गोलियों की वर्षा की थी वह अंग्रेजी शासन के इतिहास का सबसे अधिक काला पृष्ठ है।

इस अत्याचार से भारतीय जनता भड़क उठी, किन्तु सरकार ने अपने अत्याचारी अधिकारियों को दंड देने के स्थान पर उनका पक्ष लिया। लाला लाजपतराय इन दिनों अमेरिका में ही थे। पंजाब में हुए इस भीषण अत्याचार के समाचार से व्याकुल हो उठे। अब भी भारत में आने की आप को आज्ञा नहीं थी। आपने फिर ब्रिटिश के राजनीतिज्ञों को बहुत कुछ लिखा पढ़ा। तब कहीं आपको अपने देश में आने की आज्ञा मिली। जिस समय आप भारत आये तो ब्रिटिश सरकार की क्रूरता को देखकर उनका विश्वास इन शासन सुधारकों से हट गया और यही निश्चय हो गया कि प्रस्तावित शासन सुधारों का बहिष्कार करना ही उचित है। देश ने आपके लौटने पर आपको राष्ट्र के सबसे ऊंचे आसन पर बिठाया। सन् १९२० में कांग्रेस का विशेष अधिवेशन कलकत्ता में बुलाया गया। वहां महात्मा गांधी के प्रभाव से सहयोग का कार्यक्रम पास हो गया। लाला जी असहयोग के युद्ध में उतर आये। लाला जी ने पंजाब के नगरों में घूम-घूम कर असहयोग का सन्देश जनता के कानों तक पहुंचाया।

गिरफ्तारी

३ सितम्बर सन् १९२१ के दिन राजद्रोही भाषण देने का अभियोग लगाकर सरकार ने डेढ़ वर्ष का दण्ड देकर जेल में डाल दिया। जेल की रूखी सूखी रोटी और चनों के कारण लाला जी का दुर्बल

वीरप्रवर श्री भगतसिंह अग्निपरीक्षा करते हुए

देवतास्वरूप भाई परमानन्द
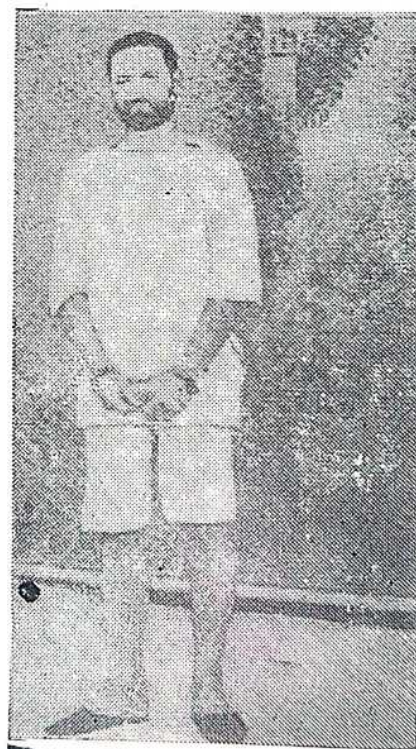
देवतास्वरूप भाई परमानन्द
बन्दी के रूप में

पंजाब केसरी लाला लाजपतराय—

लाहौर में लाठियों द्वारा बलिदान

वीरशिरोमणि सरदार भगतसिंह—

आपने साण्डर्स को मारकर लाला जी की मृत्यु का बदला लिया

आर्यसमाज के शहीद

दत्तात्रय (उमरी) राधाकृष्ण जी (निजामाबाद) श्यामलाल जी (हैदराबाद) विष्णुभगवान जी (ताण्डूर) शिवचन्द्र जी (हुमनाबाद) वेदप्रकाश जी (गंजोटी)

हुमनाबाद के ४ शहीद

शहीद सुनहरा
हैदराबाद सत्याग्रह में लाठियों से बलिदान

भाई वंशीलाल वकील

शरीर रोगग्रस्त हो गया। क्षयरोग ने आपको घेर लिया। अधिकारियों को बड़ी चिन्ता हुई, कभी लाला जी की मृत्यु जेल में न हो जाये। अतः आपको १६ अगस्त को बिना किसी शर्त के छोड़ दिया। आप सोलन पहाड़ पर गये। वहाँ के अच्छे जलवायु के कारण आप स्वस्थ हो फिर कार्यक्षेत्र में आ गये।

तिलक राजनीति विद्यालय

सभी प्रान्तों में राष्ट्रीय शिक्षा के लिए राष्ट्रीय नेताओं ने राष्ट्रीय विद्यालय खोल दिये थे। पंजाब में इसका अभाव था। इस विद्यालय के लिए आप ने स्वयं ४० हजार रुपये देकर और अपने रहने का मकान भी जिसका नाम "लाजपत राय भवन" था दान देकर 'तिलक राजनीति विद्यालय' की स्थापना की। अपना सुन्दर भवन देकर आप स्वयं पुराने मकान में रहने लगे। विद्यालय का संचालन आप की देख रेख में ही होता था। महात्मा तिलक से आपका बड़ा प्रेम था तथा आप के मनमें उनके प्रति बड़ा आदर था। अतः उन्हीं के नाम पर यह विद्यालय खोला गया। इस विद्यालय में देवतास्वरूप भाई परमानन्द तथा जयचन्द विद्यालङ्कार जैसे योग्य प्रोफेसर पढ़ाते थे। इसी में भगतसिंह, यशपाल, सुखदेव तथा भगवतीचरण आदि पढ़ते थे। इसी विद्यालय में देशभक्ति का पक्का रंग इन युवकों पर चढ़ा। इस विद्यालय में हरयाणे के भी बहुत छात्र पढ़ते थे। भाई जी उनसे बहुत प्रेम करते थे।

लोक सेवासंघ की स्थापना

लाला जी ने निर्वाहमात्र के लिए धन लेकर राष्ट्रीय सेवा में जीवन देनेवाले राष्ट्रीय कार्यकर्त्ता तैयार करने के लिए "लोक सेवासंघ" "पीपल्स सोसाइटी" की स्थापना की। लोक-सेवासंघ आज भी कार्य कर रहा है। पुरुषोत्तमदास टण्डन, अलगूराय शास्त्री आदि उसी के सदस्य हैं। इसी संस्था ने पंजाब में राष्ट्रीय भावनाओं का प्रचार किया। सत्याग्रह का युद्ध प्रारम्भ होते ही लोक-सेवासंघ के सब कार्यकर्त्ता जेल में चले गये।

हिन्दू संगठन का कार्य

गांधी जी के सत्याग्रह आन्दोलन में बलिदान करने वाले आर्यसमाजी विशेषत:,सामान्य रूप से हिन्दू ही थे। मुसलमान नेताओं में से एक दो को छोड़कर सभी ने सत्याग्रह में भाग लेने से इंकार कर दिया। अतः अंग्रेज सरकार ने मुसलमानों को सब प्रकार से बढ़ावा दिया। परिणाम यह हुआ कि हिन्दुओं पर संकट के बादल छा गये। अंग्रेज सरकार ने मुसलमानों से मिलकर हिन्दुओं को कुचलना प्रारम्भ किया। "चौरा चौरी" के हत्याकाण्ड के पश्चात् महात्मा गांधी जी ने नेताओं से बिना ही बिचार किए सत्याग्रह युद्ध बन्द कर दिया। महात्मा गांधी को छः मास के लिए सरकार ने जेल में बन्द कर दिया। सर्वत्र निराशा छा गई। सरकार के संकेत पर मुसलमान, हिन्दू अधिकारों को पददलित करने लगे। हिन्दुओं को हजारों की संख्या में, मुसलमान बनाया जाने लगा। गांव के गांव मुसलमान होते देख ला० लाजपतराय, स्वा० श्रद्धानन्द तथा पं० मदनमोहन मालवीय ने कन्धे से कन्धा मिलाकर हिन्दू संगठन, शुद्धि और अछूतोद्धार में पूर्ण शक्ति लगा दी। हिन्दू-समाज को बलशाली बनाना भी राष्ट्रीय कार्य था। समाज-सुधार ही राष्ट्रीय सेवा है। इस महत्त्वपूर्ण बात को ये नेता भलीभांति समझते थे। अतः शुद्धि और संगठन के कार्य में जुट गये, और अंग्रेज सरकार एवं मुस्लिम नेताओं की धूर्तता को

नहीं चलने दिया। लाला जी पहले से ही आर्यसमाजी होने से झूठी आलोचनाओं की कब परवाह करने वाले थे। अत: वे अन्त तक हिन्दू संगठन और शुद्धि के कार्य में लगे रहे। इससे हिन्दूसमाज में जागृति और जीवन आ गया। इसके लिए हिन्दू जाति ला० लाजपतराय आदि नेताओं की सदैव ऋणी रहेगी।

स्वराज्य दल

महात्मा गांधी की सत्याग्रह को स्थगित करते की भूल के कारण चारों ओर अकर्मण्यता और निराशा छा गई। सारा भारत मृतप्राय दिखाई देने लगा। ऐसे समय पर पं. मोतीलाल नेहरू, देशबन्धु चित्तरंजनदास तथा ला० लाजपतराय ने स्वराज्य दल का आयोजन किया। वे सब असेम्बली में जनता के प्रतिनिधि बनकर गये और सरकार से लड़ाई लड़ते रहे। पं० मोतीलाल जी के साथ मतभेद रहने के कारण स्वराज्य दल को कुछ समय के पश्चात् छोड़ पं० मदनमोहन मालवीय जी के साथ मिलकर स्वतन्त्र राज्य दल की स्थापना की, और इसकी ओर से चुनाव लड़ा। पं० मोतीलाल नेहरू ने आपके विरोध में कई उमीदवार खड़े किए थे। किन्तु लाला जी दो स्थानों से खड़े होकर दोनों स्थानों से जीतकर चुने गये। पं० मोतीलाल जी को नीचा देखना पड़ा। वैसे आप कांग्रेस के साथ मिलकर ही कार्य करते रहे।

साईमन कमीशन

भारत को अधिकार देने चाहियें वा नहीं, यह परीक्षा करने के लिए साईमन कमीशन भारत में भेजा गया। भारत के नेताओं ने यह माँग की थी कि इस कमीशन में भारत की जनता के कुछ प्रतिनिधि सम्मिलित करने चाहिएं। किन्तु ब्रिटिश सरकार ने उस उचित बात को नहीं माना अत: देश के नेताओं ने कमीशन के बहिष्कार का निश्चय किया। कमीशन जहां भी जाता था उसका काले झण्डों से स्वागत किया जाता था। "साईमन कमीशन गो बैक" "साईमन कमीशन वापिस जाओ" का नारा जनता लगाती थी। लाहौर में यह कमीशन ३० अक्तूबर १९२७ को आ रहा था। लाहौर में भी जनता हजारों की संख्या में काले झण्डे लेकर स्टेशन पर पहुंच गई। जलूस का नेतृत्व पंजाब केसरी लाला लाजपतराय जी कर रहे थे। पुलिस के अधिकारी सुपरिण्टेण्डेण्ट मि० स्काट साहब ने जलूस को तितर-बितर करने के लिए जत्थे के लोगों पर लाठी चलाने की आज्ञा दी। फिर क्या था लाठियां बरसने लगीं। लोगों के सिर फट गये। सब लहूलुहान हो गये। शायद ही कोई पुलिस की लाठी की मार से बचा होगा। फिर लाला जी कैसे बच सकते थे, वे तो जलूस के आगे-आगे थे। उन पर भी अनेक लाठियां पड़ीं। उनकी छाती पर घाव आये। छाती पर सूजन आ गई। ऊपर से चोट साधारण दिखाई देती थी किन्तु लाठी की चोटें शरीर में बहुत गहरी गईं थीं। लाला जी का वृद्ध और निर्बल शरीर इन चोटों को कैसे सहन कर सकता था। छाती की पीड़ा बढ़ती ही गई। १६ नवम्बर १९२८ के दिन उनके सारे शरीर में पीड़ा होने लगी। ज्वर भी बढ़ गया। रात बड़े कष्ट से कटी। १७ नवम्बर को प्रात: ६ और ७ बजे के मध्य में आपने प्राण त्याग दिए। चिकित्सकों का यह मत है कि शारीरिक घाव ही उनकी मृत्यु का कारण नहीं किन्तु सरकार की क्रूर नीति का भी आपके हृदय पर भारी प्रभाव पड़ा था। उनका मानसिक कष्ट शारीरिक कष्ट से अधिक दु:खदायी था। लाला जी जो अत्यन्त आत्म-सम्मानप्रिय व्यक्ति थे इस तिरस्कारपूर्ण व्यवहार को चुपचाप कैसे सहन कर सकते

थे। इस मानसिक कष्ट ने ही उनके प्राण ले लिए। लाला जी की मृत्यु के समाचार स सारे भारतवर्ष में शोक की घटायें छा गईं। शवयात्रा के साथ लाखों व्यक्ति थे। रावी नदी के तट पर अन्त्येष्टि संस्कार किया गया। पञ्जाब का सूर्य अस्त हो गया। आज भी लाला जी की याद देशवासियों के लिए दुःखप्रद है।

लाला लाजपतराय पर लाठीचार्ज तथा उनकी मृत्यु

उनकी मृत्यु के विषय में पं० जवाहरलाल जी अपनी आत्मकथा में लिखते हैं। साईमन कमीशन भ्रमण कर रहा था और जहां जाता था उसका विरोध करने के लिए जनता काले झण्ड लिए "गो बैक" 'उल्टे जाओ' के नारे लगाती हुई उनका पीछा करती थी। लाहौर में बात बढ़ गई। सारा देश क्रोध से कांप उठा। वहां जो साईमन कमीशन के विरोधी थे उनका नेतृत्व जलूस के रूप में लाला लाजपतराय जी कर रहे थे। वह सड़क के किनारे हजारों प्रदर्शन करने वालों के आगे खड़े थे। पुलिस के नवयुवक एक अंग्रेज अफसर ने झपट कर इनकी छाती पर लाठी मारनी आरम्भ कर दी। लाला जी की तो बात ही क्या है सारी भीड़ में किसी व्यक्ति ने भी किंचित् मात्र हिंसा का कार्य नहीं किया। किन्तु सब सर्वथा शान्त खड़े थे। इस पर भी पुलिस ने इनको और इनके साथियों को बुरी तरह से मारा। यह तो स्पष्ट है कि जो व्यक्ति सड़कों पर प्रदर्शन में सम्मिलित हो वह पुलिस से झगड़ा हो जाने पर सब आपत्तियों को सहन करता है।

लाला जी ने भी जानबूझ कर यह आपत्ति खरीदी थी किन्तु फिर भी जिस ढंग से उन पर लाठियों से आक्रमण किया गया और बिना कारण जिस निर्दयता से व्यवहार किया गया इससे असंख्य भारतीयों को कड़ी चोटें लगीं। इन दिनों हम पुलिस के लाठीचार्ज के अभ्यस्त नहीं थे अतः हमारी अनुभूति इस समय तक निरन्तर पाशविक अत्याचारों से कुण्ठित नहीं हुई थी।

हमारे इतने बड़े नेता और पंजाब के सबसे उच्च पूजनीय और सर्वप्रिय पितर (बुजुर्ग) के साथ यह व्यवहार अत्यन्त लज्जास्पद प्रतीत हुआ और दबे हुए क्रोध की एक लहर सारे भारतवर्ष में विशेषतया उत्तरभारत में फैल गई। हमारी विवशता और तिरस्कार का क्या ठौर ठिकाना था। हम अपने चुने हुए नेताओं के सम्मान की भी रक्षा नहीं कर सकते थे।

लाला जी के शरीर को जो हानि पहुंचो थी वह कोई न्यून न थी। इस लिए कि इन्हें बहुत समय से हृदय रोग था और चोटें भी वहीं इनकी छाती पर लगाई गई थीं। निश्चय रूप से तो यह नहीं कहा जा सकता कि इस मार का प्रभाव इनकी मृत्यु पर जो एक-दो सप्ताह के पश्चात् हुई किसी अवस्था तक अवश्य पड़ा। इनके चिकित्सकों की यह सम्मति थी कि इन चोटों के कारण वे इतने शीघ्र मृत्यु के मुख में चले गये। किन्तु मेरे विचार में भी निःसन्देह कि शारीरिक चोट के साथ जो मानसिक कष्ट उन्हें हुआ इससे वे अत्यन्त प्रभावित हुए। इनका चित्त क्रोध और चिन्ता से व्याकुल था। अपने व्यक्तिगत अपमान से अधिक उन्हें सारे राष्ट्र के अपमान का दुःख था जो इस आक्रमण के कारण हुआ था।

इस राष्ट्रिय अपमान का दुःख सारे भारत के हृदय और मस्तिष्क को आच्छादित किये हुए था। थोड़े ही दिन पीछे लाला जी का देहान्त हो गया तो जनता ने इसका कारण लाठियों की चोटों का ठहराया। जनता का हृदय उत्तेजना से परिपूरित हो उठा और दुःख के स्थान पर प्रतिहिंसा की

भावना भड़क उठी ।'' भगतसिंह सारे भारत का प्यारा और आंखों का तारा इसीलिए बन गया क्योंकि उसने अत्याचारी सांडर्स को गोली का निशान बनाकर ला० लाजपतराय जी और सारे भारत की लाज रख ली । इसलिए कुछ ही मास में पंजाब का प्रत्येक नगर वा ग्राम यहां तक कि सारा उत्तर भारत ही भगत के नाम से गूँज उठा । लाला लाजपतराय के खून का बदला लेने के कारण वीर भगतसिंह भी अमर हो गया ।

साईमन कमीशन के बहिष्कार में चोटें खाने के पश्चात् लाला लाजपतराय अखिल भारतवर्षीय कांग्रेस कमेटी के एक उत्सव में सम्मिलित होने के लिए देहली पधारे थे । उस समय भी उनके शरीर पर चोट के चिन्ह शेष थे और उनका कष्ट वा पीड़ा अभी तक दूर नहीं हुई थी । लाला जी ने भी उस समय भाषण दिया था । लेखक (भगवान्देव) उस समय देहली के सेंट स्टीफन हाईस्कूल में दशम श्रेणी में पढ़ता था । उस संस्था के प्रिंसिपल स्काट साहब ने जो स्काट्लैण्ड का निवासी और देशभक्त था, सारे स्कूल के विद्यार्थियों की यह कर छुट्टी कर दी थी कि—

''तुम्हारे देश का बहुत बड़ा व्यक्ति लाला लाजपतराय आज देहली में आया है जाओ उसके दर्शन करो और व्याख्यान सुनो ।''

लेखक का दुर्भाग्य था कि वह छुट्टी होने पर भी न जाने किस कारण से वहां न जा सका और पूजनीय लाला लाजपतराय जी के दर्शन और उपदेश श्रवण से वंचित रह गया ।

लाहौर जाकर उन्होंने अपने साप्ताहिक समाचार पत्र 'पीपल' में लेख-माला लिखनी आरम्भ की थी । अभी पहिला ही लेख निकला था । दूसरे लेख के छपने से पूर्व ही लाला लाजपतराय जी इस संसार से विदा हो गये और अपनी अमर कीर्ति देश में छोड़ गये ।

जिस दिन लाला लाजपतराय जी की मृत्यु हुई उस दिन भी हमारे स्कूल के उसी प्रिंसिपल स्काट साहब ने फिर स्कूल के छात्रों को एकत्रित किया और सभा की । स्काट साहब ने लाला जी की मृत्यु पर शोक प्रस्ताव करते हुए उनकी आत्मा की सद्गति के लिए ईश प्रार्थना की और यह कह कर संस्था के सभी विद्यार्थियों और शिक्षकों की छुट्टी कर दी कि ''मैं तो गिरजाघर में जाकर लाला जी की आत्मा की सद्गत्यर्थ ईश प्रार्थना करूंगा और साथ ही आप सब जो हिन्दू हैं वे मन्दिर में जाकर, जो मुसलमान हैं वे मस्जिद में, ईसाई गिरजा में जाकर उनकी आत्मा के लिए प्रार्थना करें ।

इसी देशभक्त पादरी स्काट साहब की कृपा से दशवीं श्रेणी में पढ़ते हुए ही मुझ पर देशभक्ति का रङ्ग चढ़ा और मैं कांग्रेस की ओर झुकता ही चला गया । वीर भगतसिंह को फांसी देने पर सन् १९३१ में कालेज छोड़कर कांग्रेस एवं देश सेवा के कार्य में जुट गया ।

—०—

वीरप्रवर मदनलाल धींगड़ा का बलिदान

स्वामी ओमानन्द सरस्वती (आचार्य भगवान्देव)

मदनलाल धींगड़ा का जन्म अमृतसर जिले में एक धनी खत्री घराने में हुआ था। पंजाब विश्व-विद्यालय से बी० ए० पास करके वह आगे पढ़ने के लिए इङ्गलैंड गया था। यह अच्छा छात्र था। यह विलायत जाते ही श्याम जी कृष्ण वर्मा के भारतीय भवन में आने-जाने लगा और वहां का सदस्य भी बन गया। खुफिया पुलिस इसके पीछे लग गई। खुफिया पुलिस की रिपोर्ट थी कि मदन लाल घंटों अकेले बैठकर पुरुषों का निरीक्षण करता रहता है। इससे प्रतीत होता है कि वह कवि है वा क्रान्तिकारी है। मदनलाल इण्डिया हाउस में रहकर यथार्थ में क्रान्तिकारी बन गया। एक दिन इसने अपने हृदय की व्यथा वीर सावरकर को वहीं इण्डिया हाउस में कह सुनाई। धींगड़ा कुछ करने के लिए व्याकुल हो रहा था। वीर सावरकर ने ध्यान से इसकी ओर देखा और इसकी परीक्षा लेनी चाही। वीर धींगड़ा ने संकेत पाते ही हाथ भूमि पर रख दिया। सावरकर ने उसके हाथ पर ऊपर से सुवा मार दिया। सुवा हाथ के पार निकल गया। खून की धार बह निकली। गुरु और शिष्य दोनों की आंखों में प्रेम के आँसू थे। मदनलाल की आकृति पर प्रसन्नता और धैर्य था। सावरकर ने सुवा निकालकर फैंक दिया और मदनलाल को छाती से लगा लिया।

इसके पश्चात् मदनलाल को कार्य सौंप दिया गया। वह चला गया और उसने सावरकर जी से मिलना जुलना कम कर दिया। इतना ही नहीं वे जाकर कर्जन की सभा में सम्मिलित होगये और भारतीय भवन में आना-जाना एकदम छोड़ दिया। यह देखकर भारतीय भवन के नवयुवक विद्यार्थी अत्यन्त क्रोधित हुए और मदन को देशद्रोही कहने लगे। इस रहस्य को यह विद्यार्थी नहीं जानते थे। श्री वीर सावरकर ने उन्हें कुछ समझाकर शान्त करने का यत्न किया। मदनलाल अपनी अग्नि परीक्षा की तैयारी में लगे हुए थे। मदनलाल का स्वास्थ्य अच्छा था नवयुवक और धनी घर का था। भोगैश्वर्य का द्वार उसके लिए बन्द नहीं था। किन्तु उधर न जाकर उसने मरने का खेल खेलने की धारणा कर ली। १९०९ की बात है, पहली जुलाई का दिन था। इम्पीरियल इन्स्टीट्यूट के जहांगीर हाल में एक सभा थी। सर कर्जन वायली भी वहां गये थे। वे दो व्यक्तियों के साथ बातें कर रहे थे कि मदनलाल धींगड़ा ने पिस्तौल निकाल कर उनके मुख की ओर तान दी। कर्जन साहब मारे डर के चीख उठे। किन्तु मदनलाल ने तुरन्त दो गोलियाँ उसकी छाती में दाग दीं जिनसे उसके प्राण पखेरू उड़ गये। थोड़ी देर के पीछे धींगड़ा जी पकड़े गये। यह कर्जन वायली इन दिनों भारत के मन्त्री का एडीकांग था। वह भारतीय विद्यार्थियों के पीछे खुफिया पुलिस लगाकर इस आन्दोलन को कुचलने का यत्न करता था, उसके आचरण की आलोचना अनेक बार इण्डिया हाउस में हो चुकी थी। इसी कारण मदनलाल को यह वीरतापूर्ण कार्य करना पड़ा।

सभा में हाहाकार मच गया। मदनलाल को पकड़कर जेल में बन्द कर दिया गया। मुकद्दमा चला, उस समय मदनलाल प्रसन्न और शान्तचित्त था। आनन्द से अदालत की कार्यवाही देख रहा

था। उसे उस समय मृत्यु का तनिक भी भय नहीं था। उसने यह बयान दिया—"मैं मानता हूं कि
मैंने उस दिन एक अंग्रेज का रक्त लेने की चेष्टा की यह उन निर्दयताभरी हत्याओं का एक अत्यन्त
तुच्छ सा बदला है जो भारत में सैकड़ों देशभक्त नवयुवकों को अमानुषिक फांसी तथा कालेपानी की
सजायें दी जा रही हैं। अपनी आत्मा के अतिरिक्त इस कार्य में और किसी की सम्मति नहीं थी।
अपने कर्त्तव्य बुद्धि के अतिरिक्त किसी के साथ षड्यन्त्र नहीं किया। एक जाति जिसको विदेशी
संगीनों से दबाये रक्खा जा रहा है, समझ लेना चाहिए कि वह बराबर युद्ध ही कर रही है। एक
निःशस्त्र जाति के लिए खुला युद्ध तो सम्भव है ही नहीं। मैं एक हिन्दू होने के कारण समझता हूँ
यदि हमारी मातृभूमि के विरुद्ध कोई अत्याचार करता है तो वह ईश्वर का अपमान करता है। हमारी
मातृभूमि का जो हित है वही श्रीराम का हित है। उसकी सेवा श्रीकृष्ण की सेवा है। मेरी भान्ति एक
हतभाग्य सन्तान के लिए जो वित्त तथा बुद्धि दोनों से हीन है, इस के अतिरिक्त और क्या है कि मैं
अपनी माता की यज्ञवेदी पर अपना रक्त अर्पण करूँ। भारतवासी इस समय केवल इतना ही कर
सकते हैं कि वे मरना सीखें। इसके सीखने का एकमात्र उपाय यह है कि वे स्वयं मरें। इसलिए मैं
मरूँगा और मुझे इस बलिदान पर गर्व है। ईश्वर से केवल मेरी यही प्रार्थना है कि मैं फिर उसी
माता के गर्भ में उत्पन्न होऊँ और फिर उसी पवित्र उद्देश्य के लिए अपने प्राणों को अर्पण कर सकूं।
यह तब तक के लिए चाहता हूँ जब तक कि वह विजयी तथा स्वाधीन न हो जाये ताकि मानव जाति
का कल्याण हो और ईश्वर की महिमा का विस्तार हो सके "वन्दे मातरम्।"

१६ अगस्त १९०९ को फांसी के तख्ते पर हँसते-हँसते मदनलाल चढ़ा और अपना बलिदान देकर अमर हो गया। उसकी लाश को जेल के अन्दर ही दफना दिया। जिस दिन उसको फाँसी दी गई, उस दिन इंगलैण्ड के विद्यार्थियों ने उपवास रखा। वे जेल के बाहर इकट्ठे हुए और उसका हिन्दू विधि से संस्कार करने की मांग की। परन्तु यह मांग अस्वीकार कर दी गई।

श्री मा० अमीरचन्द

मा० अमीरचन्द जी उत्तर भारत के एक प्रकार से क्रान्तिकारी कार्य के प्रथम संगठनकर्त्ता थे। दिल्ली के विप्लव दल के भी यही प्रमुख नेता थे। मा० अमीरचन्द जी पंजाबी थे, दिल्ली के मिशन स्कूल में अध्यापक थे, बड़ी धार्मिक प्रवृत्ति के पुरुष थे। स्वामी रामतीर्थ जी से भी अपका परिचय हो गया था। स्वामी जी के उपदेशों का आप पर अच्छा प्रभाव पड़ा। मास्टर जी स्वामी जी के शिष्य हो गये और सर्वप्रथम स्वामी जी के उपदेशों तथा सिद्धान्तों का प्रचार आरम्भ किया था। इनकी धार्मिक कार्यों में विशेष रुचि थी। किन्तु संसार से आप विरक्त नहीं थे, सामाजिक सुधार तथा राजनैतिक कार्यों में बड़े उत्साह से भाग लेते थे। मास्टर जी के जीवन में धर्म और कर्म दोनों समान रूप से विद्यमान थे। मास्टर जी एक चरित्रवान् व्यक्ति थे। इनका हृदय बड़ा कोमल था। ये विद्यार्थियों के
साथ बड़ा प्रेम का व्यवहार करते थे। इन गुणों के कारण विद्यार्थियों को भी इनके प्रति बड़ी श्रद्धा
और प्रेम था। मास्टर जी अंग्रेजी तथा उर्दू के अच्छे विद्वान् तथा लेखक भी थे। जिस समय १९०८
व ९ में सारे भारतवर्ष में विप्लव की अग्नि सुलग रही थी। मुख्य-मुख्य स्थानों पर विप्लव केन्द्र
बनाए जा रहे थे और सारा कार्य सुसंगठित रूप से हो रहा था। उस समय आप दिल्ली में उत्तर
भारत के संगठन-कार्य को अपने साथियों के साथ मिलकर कर रहे थे।

उधर लाहौर में लाला हरदयाल जी के प्रभाव से विप्लव का क्षेत्र बढ़ रहा था। लाला हरदयाल जी के विचारों से मास्टर जी भी प्रभावित थे। उनके साथ धीरे-धीरे सम्पर्क बढ़ता गया। एक प्रकार से लाला जी के आप शिष्य बन गए और उनके विचारों का आप खूब उत्साह से प्रचार करने लगे। वैसे मास्टर जी गम्भीर प्रकृति के थे। थोड़ी सी गर्मी से झिझकने वाले न थे। चुपचाप रहकर धैर्य से निरन्तर कार्य करनेवाले कर्मनिष्ठ व्यक्ति थे और ठोस कार्यकर्त्ताओं को ही पसन्द करते थे। वे एक निर्भीक स्वतन्त्रप्रकृति और प्रसन्नचित्त रहने वाले व्यक्ति थे। हंसमुख भी बहुत थे, अपने आपको बन्दर ही कहते थे। वे कहा करते थे कि मेरे मकान का कोई पता पूछे तो यह पूछ ले कि "बन्दर मास्टर का कौन सा मकान है" तो मेरा मकान उसे सहज में ही मिल जायेगा। लाला हरदयाल जी विदेश जाते हुए उत्तर भारत के विप्लव-कार्य का नेतृत्व भार मास्टर जी के ऊपर सौंप गए। लाला जी का आप पर पूर्ण विश्वास था। अतः आपको कार्य सौंप वे निश्चिन्त हो विदेश चले गये। इधर देश में कई स्थानों पर बम फैंके गए। चारों ओर क्रांति की लहर थी। लाहौर और दिल्ली में भीषण घटनायें हो चुकी थीं, गिरफ्तारियों की भी धूम थी। मास्टर अमीरचन्द जी के लाला हनुमन्तसहाय रईस अच्छे सहायक थे। पहले ये सब धार्मिक सुधार के क्षेत्रों में ही कार्य करते थे किन्तु जब स्वदेशी आन्दोलन और विप्लव कार्य के सङ्गठन में मास्टर अमीरचन्द जी जुट गये, तब लाला हनुमन्तसहाय भी इस कार्य में जुट गए। आप विदेशी माल के बहुत बड़े व्यापारी थे। उस भारी लाभदायक व्यापार को तिलाञ्जलि दे दी। लाला हरदयाल जी के विचारों से प्रभावित हो आपनें १९०९ में अपनें मकान में एक राष्ट्रीय विद्यालय खोला। एक राष्ट्रीय पुस्तकों का वाचनालय भी खोला गया। इस विद्यालय में मा० अमीरचन्द जी तथा कई अध्यापक और भी शिक्षा देने का कार्य करते थे। फिर वे ही आगे चलकर क्रांतिकारी आन्दोलन में प्रविष्ट हुए। यह विद्यालय आदि नए नए लोगों को क्रांतिकारी दल की सदस्यता में भर्ती करने का ढङ्ग था, इन सब में अवध विहारीलाल सबसे अधिक उत्साही था। इस दिल्ली के सङ्गठन का बङ्गाल के लोगों के साथ भी सम्बन्ध था। अवध विहारी मा० अमीरचन्द का प्रिय शिष्य था जो आगे चलकर इनका अच्छा साथी बन गया। यह दिल्ली का दल आदर्शवादियों का दल था।

श्री अवध विहारी

अवध विहारी बचपन से मा० अमीरचन्द के साथ रहते थे। पहले वह शिष्य रूप में उनसे पढ़ते रहे फिर साथी बनकर कार्य करने लगे। जब मित्र का रूप धारण किया तो इन दोनों का एक ही रूप हो गया। मास्टर जी ने इन्हें बनाया था अतः वे इन्हें बहुत प्यार करते थे। वे अन्त तक मास्टर जी की सङ्गति में रहे। यह बड़े होकर बड़े होनहार युवक सिद्ध हुए। इन्होंने बी० ए० पास कर लिया था, इनकी आयु २३ वा २४ वर्ष की थी, किन्तु वे कार्य बहुत बड़े-बड़े व्यक्तियों के समान करते थे। थोड़े ही समय में अपनी योग्यता के कारण दिल्ली के विप्लव दल के नेता हो गये। आपने लाहौर के ट्रेनिंग कालिज से जब बी० टी० पास की तब बी० टी० में आपको स्वर्ण पदक मिला था। आप के दल ने विप्लव करने की पूरी तैयारी की और बड़े वीरतापूर्ण तथा निर्भयता से कार्य किये।

इस दल में मा० गणेशीलाल खस्ता तथा महात्मा हंसराज के पुत्र बलराज जी भी दल के उत्साही सदस्य थे। इसी दल ने सबसे पहले पर्दे का रिवाज अपने सदस्य लाला हनुमन्तसहाय से

तुड़वाया था । उन्हें सुधार कार्यों में जनता का विरोध भी सहना पड़ा । किन्तु ये बड़े वीर और आदर्शवादी थे, किसी के व्यर्थ विरोध की कब परवाह करते थे ।

कलकत्ता में उनका नाम राजा बाजार के एक मकान की तलाशी में पहले पहल आया । उस समय यह भी पता चला कि अवध बिहारी देहली के मास्टर अमीरचन्द के मकान में रहता है । उस समय मा० अमीरचन्द जी संस्कृत हाई स्कूल (चरखेवालान) में मुख्याध्यापक थे । पुलिस ने अकस्मात् आकर आपके मकान की तलाशी ली । तलाशी में एक बम की टोपी० लिवर्टी नामक पर्चे का मास्टर अमीरचन्द के हाथ का लिखा हुआ मस्विदा और कुछ पत्र मिले । जिनमें अवध बिहारी के नाम शिमला से आया हुआ एक पत्र भी था । इस पत्र में भेजने वाले का नाम "एन० एस०" लिखा हुआ था । उसी समय घर से मा० अमीरचन्द उनके गोद लिए हुए बेटे (भतीजे) सुलतानचन्द और अवध बिहारी को गिरफ्तार किया गया । इसी समय लाहौर से एक दीनानाथ पकड़ा गया । उस धूर्त ने लाहौर की बम-दुर्घटनाओं को इस दल का कार्य बताया । इस दीनानाथ ने डर के मारे क्रांतिकारियों के सब गुप्त भेद खोल दिये । इससे बड़ी हानि पहुंची । यह दीनानाथ, जे० एन० चटर्जी आदि विद्यार्थी लाला हरदयाल से राजनीति की शिक्षा लिया करते थे । लाला जी भारत से जाते समय सब कार्य मास्टर अमीरचन्द को सौंप गये । उसी समय दीनानाथ भी देहली आकर मास्टर अमीरचन्द जी से शिक्षा प्राप्त करने लगा । यह अत्यन्त भीरु प्रकृति का था, इसने बलराज, भाई बालमुकन्द चरणदास, रासबिहारी तथा लाला हरदयाल आदि सबका नाम ले लिया । इन सब पर दिल्ली षड्यन्त्र का मुकद्दमा चला ।

दिल्ली षड्यन्त्र

यह मुकद्दमा सन् १९१४ मार्च मास में १३ अभियुक्तों दीनानाथ, सुलतानचन्द, मास्टर अमीरचन्द, अवध बिहारी, भाई बालमुकन्द, वसन्तकुमार विश्वास, बलराज, लाला हनुमन्तसहाय, चरणदास, मन्नूलाल, रघुवर शर्मा, रामलाल और खुशीराम पर चलाया गया । एक मुकद्दमे में इस्लामियां कालेज का बी० ए० का फजलेकराम विद्यार्थी था । यह सरकारी गवाह बन गया । लाला हनुमन्तसहाय को इसी मुसलमान विद्यार्थी ने फंसाया । दीनानाथ ने सरकारी गवाह बनकर सारा भेद खोलकर सर्वनाश कर दिया । पुलिस ने दबाकर सुलतानचन्द को भी सेशन की अदालत में सरकारी गवाह बना लिया । इस नीच कृतघ्न गोद लिए हुए बेटे सुलतानचन्द ने सरकारी गवाह बनकर जब अपने चाचा (धर्मपिता) मा० अमीरचन्द के विरुद्ध गवाही दी तब मास्टर अमीरचन्द की आंखों से जिरह करते हुए आंसुओं की झड़ी लग गई । यह सत्य है आत्मीयजन के विश्वासघात के दुःख को वे सह न सके और उस समय तक उनका दुःख दूर न हुआ जब तक वे फांसी की आज्ञा न सुन सके । फांसी की आज्ञा सुनते ही वे हंसने लगे, मुख पर प्रसन्नता छा गई । मानो उन्हें अभीष्ट वस्तु की प्राप्ति हो गई हो । सेशन जज ने ५ अक्टूबर, १९१४ को अपने निर्णय में मास्टर अमीरचन्द, अवधबिहारी और भाई बालमुकन्द को फांसी तथा बलराज, ला० हनुमन्तसहाय और वसन्तकुमार विश्वास को आजन्म कालापानी का दण्ड दिया । शेष सबको छोड़ दिया । अपील करने पर वसन्तकुमार की सजा कालापानी से बढ़ाकर फांसी कर दी गई । बलराज, हनुमन्तसहाय को कालापानी के स्थान पर सात-सात साल सख्त जेल का दण्ड दिया । फांसी की अपील की गई वह भी अस्वीकार हो गई ।

लार्ड हार्डिंग पर २३ दिसम्बर १९१२ में जब जलूस निकल रहा था, चांदनी चौक में बम फेंका गया। बम का निशाना कुछ ठीक नहीं बैठा। वायसराय कुछ जख्मी होकर मूर्च्छित हो गया। किन्तु इनके पीछे बैठा हुआ अंगरक्षक उसी समय मर गया। बम बड़ा भयानक था। पुलिस ने उसी समय सारे चांदनी चौक को घेर लिया। किन्तु खूब यत्न करने पर भी बम फेंकने वालों की छाया तक का भी पता न लगा। इसी के पांच मास पश्चात् मई १९१३ में सब सरकारी आफीसर लारेन्स गार्डन में इकट्ठे हुए थे, इन सबको उड़ाने के लिए एक बम रखा गया था। किन्तु बम के फटने से चपरासी को छोड़कर कोई नहीं मरा। सरकार के लाख प्रयत्न करने पर भी इस दुर्घटना का कुछ पता उस समय न लगा सकी। यही दोनों दोष दिल्ली षड्यन्त्र में मास्टर अमीरचन्द के साथियों पर लगाये गये थे। दिल्ली के लार्ड हार्डिंग के बम केस को तो सरकार सिद्ध न कर सकी, कोई गवाह भी इस विषय में कुछ भी न बता सका। सारे षड्यन्त्र के गुप्त भेद खोलने वाले दीनानाथ को भी दिल्ली-बमकेस के विषय में कोई ज्ञान न था। अतः वायसराय पर बम फेंकने वाली घटना का किञ्चित् भी वर्णन नहीं कर सका। फिर भी चार व्यक्तियों को फांसी पर चढ़ा दिया गया। फांसी के दण्ड से ये चारों वीर प्रसन्न थे। जिस दिन अवधबिहारी को फांसी होनी थी उस दिन एक अंग्रेज ने उनसे पूछा "आपकी अन्तिम इच्छा क्या है?" अवधबिहारी ने उत्तर दिया कि "यह अंग्रेजी साम्राज्य नष्ट हो जाए।" उस अंग्रेज ने कहा "शान्त हो जाइए। आज तो शान्तिपूर्वक प्राण दीजिए। अब इन बातों से क्या लाभ?" इस पर अवधबिहारी ने उत्तर दिया "आज शान्ति कैसी? मैं तो यह चाहता हूं कि आग भड़के और चारों ओर भड़के। जिससे तुम भी जलो, हम भी जलें, हमारी दासता भी जले और अन्त में भारत कुन्दन बनकर रह जावे।"

फांसी के समय इन वीरों ने स्वयं कूदकर गले में फांसी की रस्सी डाल ली और "वन्दे मातरम्" के साथ हंसते-हंसते देश पर प्राण न्यौछावर कर गये। गुरु और चेले दोनों ही देश की बलिवेदी पर बलिदान हो गये। भगवान् ऐसे ही भक्त गुरु शिष्यों के जोड़ों को भारत में जन्म दे। ये दोनों अत्यन्त धार्मिक थे। एक उर्दू की कविता उन्हें बड़ी प्रिय थी जिसे वे प्रायः गाया करते थे। तब उसके अनुरूप उनका आचरण भी था। पाठकों के ज्ञानार्थ नीचे उद्धृत करता हूं। कविता यह है—

"एहसान ना खुदा का उठाये मेरी बला।
किश्ती खुदा पर छोड़ दूं लङ्गर को तोड़ दूं॥

मा० अमीरचन्द के धर्माचरण की छाप प्रायः देहली के सभी कार्यकर्त्ताओं पर थी।

भाई बालमुकुन्द

इनका जन्म लगभग १८८५ ई० में पंजाब प्रान्त के जि० झेलम में चकवाल के निकट किसी ग्राम में हुआ था। भाई जी ने बाल्यकाल में चकवाल में ही शिक्षा पाई। इसके पश्चात् डी० ए० वी० कालेज लाहौर में आकर पढ़ने लगे। वहीं से बी० ए० पास किया। बालमुकुन्द बड़े होनहार बुद्धिमान् और शुद्ध विचारों के व्यक्ति थे। आप का सम्बन्ध भाई खानदान से था, जिसमें भाई मतिराम जी ने जन्म लेकर भाई खानदान को अमर कर दिया था। घटना इस प्रकार है जब औरङ्गजेब ने हिन्दू धर्म के बड़े नेताओं को इस्लाम न स्वीकार करने के कारण मृत्यु-दण्ड दिया तो उसी समय भाई मतिराम जी की भी बारी आई। तब इनसे पूछा गया "यदि जान

प्यारी है तो इस्लाम स्वीकार करो।" भाई मतिराम ने उत्तर दिया—"नहीं, नहीं, जान प्यारी नहीं, धर्म प्यारा है।" इस्लाम स्वीकार न करने पर आज्ञा दी गई, इन्हें खूब कष्ट दे देकर मारो। बात की बात में आरा चलने लगा और भाई मतिराम जी को खूब कष्ट देकर आरे से चीरकर मृत्यु के विकराल गाल में पहुंचा दिया गया। आपने कष्टों की कोई परवाह न की और धर्म पर हंसते-हंसते प्राणों की बलि चढ़ा दी। जब से देश-धर्म के लिए प्राण दिये उस समय से उनको भाई शब्द से स्मरण करते हैं। उन्हें और उनके परिवार को उस दिन से सब लोग भाई कहने लगे। भाई वंश ने विप्लव के इतिहास में एक महत्त्वपूर्ण कार्य किया है, भाई परमानन्द जी भी उन्हीं की सन्तान थी और भाई बालमुकुन्द भी उन्हीं की सन्तान थी, अतः उसी धर्मभावना से अनुप्राणित हो भाई बालमुकुन्द ने बी० ए० पास करके देशसेवा का व्रत धारण किया। उस समय राष्ट्रीय आन्दोलनों के सूत्रधार एवं संचालक पंजाब में लाला लाजपतराय माने जाते थे। भाई बालमुकुन्द लाला जी के तत्कालीन आन्दोलन अछूतोद्धार में कार्य करने लगे।

उस अन्धकार के युग में अछूतोद्धार का कार्य अत्यन्त कठिन था। उस समय बालमुकुन्द जी ने बड़ी तत्परता से कार्य किया। वे कठिनाइयों से घबराने वाले नहीं थे। इस गुण के कारण सभी साथी उनकी प्रशंसा करने लगे। इन दिनों पंजाब में विप्लव दल का सङ्गठन सरदार अजीतसिंह और सूफी अम्बाप्रसाद कर रहे थे। ला० हरदयाल जी ने लाहौर आकर विप्लव कार्य में एक प्रकार से नए प्राण फूंक दिए। थोड़े ही समय में बहुत युवक संगठन में सम्मिलित हो गए। उन्हीं में भाई बालमुकुन्द भी थे। ला० हरदयाल योरुप तथा सूफी जी और अजीतसिंह जी ईरान चले गये। भाई बालमुकुन्द जी दिल्ली आकर मा० अमीरचन्द से राजनीति की शिक्षा ग्रहण करने लगे। कुछ दिन पश्चात् लाहौर के विप्लव-दल का कार्यभार आपने सम्भाला और खूब दत्तचित्त होकर कार्य लगे। सन् १९१३ ई० के मई मास में पंजाब के सभी सिविलियन पदाधिकारी अंग्रेज लाहौर के लारेंस गार्डन में इकट्ठे हुए। उन सबको उड़ा देने के लिए वहां एक बम रखा गया। किन्तु उससे केवल एक हिन्दुस्तानी चपरासी मरा। सब बाल-बाल बच गये। बम रखने वाले का पता नहीं चला। इसी प्रकार सन् १९१२ में लार्ड हार्डिंग पर बम फेंका गया। उसी विषय में लाहौर दीनानाथ ने भाई बालमुकुन्द जी का नाम ले लिया। उन दिनों भाई बालमुकुन्द जी कुछ समय से जोधपुर में राजकुमारों के पढ़ाने का कार्य कर रहे थे। फिर जोधपुर से भाई बालमुकुन्द के साथ अनेक व्यक्ति गिरफ्तार करके दिल्ली लाये गए। तलाशी के समय उनके पास दो बम पाए गये। यह दीनानाथ की गवाही में भी कहा गया। भाई जी के गांव के मकान की सारी भूमि दो-दो गज गहरी खोद डाली गई। घर की सारी छतें उखाड़कर फैंक दीं। किन्तु वहां कुछ भी न मिला। भाई बालमुकुन्द पर दिल्ली में मुकद्दमा चला। वकील भी उन दिनों क्रांतिकारियों के मुकद्दमे तक नहीं लेते थे। सबको डर लगता था। उस समय भाई परमानन्द जी एम० ए० ने उनके मुकद्दमे की पैरवी की। उन्होंने प्रयत्न किया किन्तु उसका कोई फल न निकला। मुकद्दमे के निर्णयानुसार आपको भी फांसी का दण्ड दिया गया। फांसी की आज्ञा सुनकर बालमुकुन्द प्रसन्नता के मारे उछल पड़ा। उसने कहा—"मुझे आज अपार हर्ष हो रहा है कि मैं आज माता के चरणों में अपने आपको वहीं चढ़ा रहा हूं जहां हमारे पूज्य पुरखा वीर भाई मतिराम जी ने स्वतन्त्रता के लिए अपने प्राणों की आहुति दी थी।" फांसी के दिन बालमुकुन्द हंसते-हंसते फांसी के तख्ते पर जा खड़े हुए और अपनी मानवलीला समाप्त कर दी। भाई परमानन्द जी ने प्रिवी कौंसिल तक अपील की थी परन्तु उसका कोई प्रभाव नहीं हुआ।

सती रामरखी

सती रामरखी के पिता आर्यसमाजी थे और उसके पति भी आर्यसमाजी ही थे। १६ वर्ष की आयु में उसका विवाह हुआ था और १८ वर्ष की आयु में वह शहीद हो गई। भाई बालमुकुन्द का विवाह उनकी गिरफ्तारी से एक वर्ष पूर्व देवी रामरखी के साथ हुआ था। यह बहुत ही सौम्य स्वभाव की पतिव्रता देवी थी। साथ ही वह अत्यन्त सुन्दरी भी थी। पति की गिरफ्तारी सुनकर रामरखी व्याकुल हो उठी। इसका पाणिग्रहणमात्र ही हुआ था, गौणा नहीं हुआ था। दोनों अभी ब्रह्मचारी ही थे। पति के गिरफ्तार होते ही उसने भी तपस्या आरम्भ कर दी। वह पति से जेल में मिलने के लिए गई। पूछा "भोजन कैसा मिलता है ?" भाई बालमुकुन्द ने रेत मिली जेल की रोटी का एक टुकड़ा उसे दे दिया। देवी ने पूछा कहां सोते हो ? भाई जी ने मच्छरों से भरी कालकोटड़ी दिखला दी। रामरखी ने उसी दिन से वैसी ही रोटी बनाकर खानी आरम्भ दीं। उसने भूमि को हाथ भर खोदकर उसमें पुवाल डालकर अपने सोने के स्थान को भी वैसा ही मच्छरों वाला तथा वायुरहित बना लिया। रामरखी की इच्छा अपने पति के साथ सती होने की थी। किन्तु लाश न मिलने के कारण उसकी यह योजना पूरी नहीं हुई।

अब उसने एक दम निर्जल उपवास करना आरम्भ कर दिया। अठारहवें दिन उसने अपने हाथों से लाए जल से स्नान करके शुद्ध वस्त्र पहने। फिर उसने लौटकर कहा "प्यारे ! बहुत दिन तक परीक्षा ले चुके। आज तो दामन नहीं छोड़ूंगी, अब अलग न हो सकूंगी।" रामरखी ने यह कहकर एकदम प्राण छोड़ दिये। लोगों ने यह कहा रामरखी सती हो गई। किन्तु एक कवि ने कहा – "गुल पर बुलबुल निसार हो गई।" वह देवी अपने पति के साथ ही अमर हो गई।

@VaidicPustakalay

देवतास्वरूप भाई परमानन्द

(ब्र० महादेव)

यवन राज्य में प्रसिद्ध शहीद भाई मतिराम जी के वंश में भाई परमानन्द जी का जन्म हुआ था। आप सारस्वत ब्राह्मण थे। आपकी आरम्भिक शिक्षा "चकवाल" नामक ग्राम में हुई, वहीं से आपने मिडिल पास की और लाहौर में डी० ए० वी० विद्यालय में प्रविष्ट हो गए। आपका जन्म आर्य घराने में हुआ, अत एव आको जन्म से ही आर्यत्व की शिक्षा मिली थी। एफ० ए० उत्तीर्ण करके आपने एक वर्ष तक जालन्धर में रहकर वहां राजपूत स्कूल की स्थापना की, तत्पश्चात् आपने पुनः लाहौर आकर बी० ए० उत्तीर्ण किया व साथ ही विवाह संस्कार भी हो गया। इसके पश्चात् आप ऐंग्लों संस्कृत विद्यालय के प्राध्यापक हो गये। दो वर्ष के उपरान्त एक वर्ष के लिए कलकत्ता में पढ़ने के लिये गये, किन्तु एम० ए० की परीक्षा आपने पंजाब में ही आकर दी। इसके पश्चात् आप दयानन्द कालेज में प्रोफेसर हो गये। तीन वर्ष तक दयानन्द कालेज में प्रोफेसरी का कार्य करते रहे।

कुछ दिनों के बाद आप आर्य-प्रचारक बनकर अफ्रीका में गये। वहां आपने मुम्बासा नैरौबी-खुन-ट्रान्सवाल और कैप कालोनी में आकर आर्य-धर्म का प्रचार किया और जौहान्सवर्ग में आपने एक मास तक महात्मा गांधी जी के घर पर रहकर आर्यसमाज का प्रचार किया। वहां से आपकी इच्छा इङ्गलैंड जाने की हुई। आपने महात्मा गांधी जी द्वारा श्री श्याम जी कृष्ण वर्मा के तथा अन्य दो अंग्रेजों के नाम पत्र लिखवाये। वहां से आप इङ्गलैंड आकर कुछ समय तक श्री पं० श्याम जी कृष्ण वर्मा के "भारत भवन" में ही रहे। वहां रहकर इतिहास का अध्ययन करते रहे। वहां से आपने आक्सफोर्ड-कैम्ब्रिज आदि स्थानों में रहकर १॥ वर्ष तक भारतीय इतिहास की समुचित सामग्री एकत्रित की।

सन् १९०८ में स्वातन्त्र्य युद्ध को पचास वर्ष हो चुके थे। इधर बङ्गाल में बङ्ग-बङ्ग से तथा पंजाब में नहरी पानी और जमीन के नये कानून के बन जाने के कारण से प्रजा में भारी अशान्ति फैल रही थी। इससे इङ्गलैंड के पत्रकार अत्यधिक चिन्तित थे और यह संकेत कर रहे थे कि कहीं १८५७ की पुनरावृत्ति भारत में कहीं न हो जाए। उन्हीं दिनों अर्थात् १९०८ के मई मास से पंजाब केसरी लाला लाजपतराय जी और सरदार अजीतसिंह को पकड़कर भारत की अंग्रेजी सरकार ने वर्मा में नजबन्द कर दिया था। इससे भारत में तो खलबली मची ही परन्तु इङ्गलैंड में भी कई विरोध सभायें हुई। जिनमें भाई जी ने भी भाषण दिए। कुछ दिन पश्चात् आप पुनः भारत में पधारे और समाज का कार्य करने लगे।

भाई जी जब मद्रास-बम्बई-गुजरात की ओर आर्यसमाज का प्रचार करने गये थे। उसी समय आपके किराये के मकान में सरदार अजीतसिंह व श्री किशनसिंह जी रहते थे। वह मकान उसी समय "भारत माता" का कार्यालय माना जाता था। श्री अजीतसिंह जी के पास उनके साथी यहां आते जाते थे, किन्तु थोड़े ही दिनों में सरकार को अजीतसिंह जी का पता चल गया। तब वह अपने मित्र सूफी अम्बाप्रसाद जी के साथ करांची के मार्ग से ईरान चले गये। श्री किशनसिंह जी ने भी उस मकान को छोड़ दिया। परन्तु उसमें अभी सामान था, पुलिस के तलाशी लेने पर सन्दूकों में ऐसे

कागज मिले जिससे आपको (भाईजी को) पुलिस ने पकड़ लिया । यह घटना १६१० की है । श्री लाला दुर्गादास जी के भगीरथ प्रयत्न करने पर सरकार के तीन साल तक किसी राजनीतिक कार्य में भाग न लेने की प्रतिज्ञा पर आप छोड़े गये ।

तीन वर्ष का समय व्यतीत करने के लिए आप घर अर्थात् अपने गांव चले गये, परन्तु आपने अधिक दिन घर पर न रहकर पुन: अमेरिका को प्रस्थान किया । आप अमेरिका जाने से पूर्व पेरिस गये । वहां आपको ज्ञात हुआ कि लाला हरदयाल जी राजनीति से विरक्त होकर मार्टानिक टापू में रहते हैं । आपने उनसे मिलने का प्रयत्न किया परन्तु आप इसमें कृतकार्य न हो सके । वहां से आपने न्यूयार्क को प्रस्थान किया और वहां जाकर औषधि निर्माण का कार्य करने लगे । परन्तु आपका जी इस कार्य में न लगा । अत: आप पुन: मार्टानिक टापू में लाला हरदयाल के पास गये । वहां पर आपने एक मास तक निवास किया, लाला जी उस समय पर्वतों में तप करने लगे थे । आपका विचार था कि महात्मा बुद्ध की भांति एक नया मत चलाया जाये । किन्तु भाईजी ने कहा कि इससे तो यही अच्छा है कि आप अमेरिका में स्वामी विवेकानन्द के आरम्भ किए हुए काम को सुचारु रूप से बढ़ावें । इसके बाद आप ब्रिटिश गायना में चले गये और भारतीय बस्ती में जाकर कुछ दिन निवास किया । वहां आपने ईसाईयत के विरुद्ध प्रचार किया, क्योंकि भारतीय लोग अधिकांशत: ईसाई हो रहे थे । वहां से आप सान फ्रांसिस्को गये, वहां के लोग आप के लेख व व्याख्यानों से बड़े प्रभावित हुए, यहां तक कि आपको सन्त की उपाधि से विभूषित किया ।

सन् १६१३ में भाई जी इङ्गलैंड चले आये । लन्दन में आपने रसायनशाला के लिए जिसे कि भारत में खोलना चाहते थे, सामान खरीदा । आप इङ्गलैंड से इटली जहाज पर सवार होकर जनेवा होते हुए भारत पहुंचे । बम्बई बन्दरगाह पर आपके सामान की तलाशी ली गई और बम्बई से लाहौर तक बराबर आपके साथ खुफिया पुलिस अधिकारी गये । आप लाहौर में कुछ दिन ही निरापद रह पाए थे कि एक दिन आपको पञ्जाब और दिल्ली के षड्यन्त्रों की जड़ तथा लार्ड हार्डिङ्ग पर बम और "गदर-पार्टी" के कार्यों से सम्बन्धित बताकर आपको पकड़ लिया गया । न्यायालय में आपको फांसी की सजा सुनाई गई । जबकि आपके आरोपवादियों का पक्ष कमजोर था । यहां तक कि सरकारी वकील पिटमैन ने सरकार को सलाह भी दी कि भाई परमान्द जी से मुकद्दमा उठा लिया जाये किन्तु डायर ने इसे नहीं माना । २४ आदमियों को फांसी की सजा मिली, जिनमें आप भी थे । शेष को कालापानी, ४-५ छोड़ भी दिए गये ।

आपको मुक्त कराने के लिये देश व पंजाब के नेताओं ने बहुत प्रयत्न किया । अत: २४ में से १७ आदमियों को कालापानी की सजा हुई जिसमें आपका भी नम्बर आया । श्री करतारसिंह आदि सात व्यक्तियों को फांसी की सजा हुई । आपको कालापानी भेज दिया । वहां आपने सभी प्रकार की कठिनाइयां सहीं, वहां आपने नारियल की रस्सी बांटनी, कोल्हू में बैल की भांति चलना आदि कार्य किये । २१ वर्ष के बाद आपको छोड़ दिया गया, जब आप पंजाब आये तब आपका पंजाबवासियों ने भव्य स्वागत किया । यहां आकर आपने कुछ दिन कांग्रेस में काम किया । पुन: आप हिन्दू सभाई हो गए । किन्तु आप जहां भी रहे वहां आपने त्याग और सच्चाई से काम किया । आप में त्याग व तपस्या की पराकाष्ठा थी ।

—o—

तरुणवीर बागी कर्तारसिंह

ओमानन्द सरस्वती (आचार्य भगवानदेव)

कर्तारसिंह का जन्म सन् १८९६ में पंजाब प्रान्त में जिला लुधियाना के ग्राम में हुआ। उस ग्राम का नाम सरावा है। इनके पिता का नाम सरदार मंगलसिंह था। कर्तारसिंह जब बालक ही था तब ही इनके पिता का देहान्त हो गया। इनके दादा ने इनका पालण-पोषण किया। प्राइमरी का शिक्षण ग्राम के स्कूल में हुआ। अंग्रेजी कुछ समय यह खालसा हाई स्कूल लुधियाना में पढ़ते रहे। इनकी रुचि पढ़ने में नहीं थी। खेल-कूद, लड़ाई झगड़ा और उत्पात करना इन्हें बड़ा अच्छा लगता था। यह सदैव हंसमुख और प्रसन्नचित्त रहते थे। अतः इनका उत्पात साथी सहन कर लेते थे। इनके निर्भीकतादि गुणों के कारण इनसे सब प्रेम करते थे। इनको सब साथी प्रेम से अफला-तून कहते थे। बाल्यकाल में ही इनमें नेता के सब गुण दिखाई देते थे। ये मस्ती में आकर पंजाब छोड़ उड़ीसा चले गये। वहीं इन्होंने मैट्रिक पास की। वहीं कालिज में प्रविष्ट हो अपनी कालिज की पढ़ाई के साथ अन्य पुस्तकें भी पढ़ने लगे। समाचार-पत्र पढ़ने तथा देशभक्ति का साहित्य पढ़ने से इनके जीवन में विशेष परिवर्तन हुआ। देशभक्ति और स्वतन्त्रता की लहर चित्त में उठने लगी। क्रांतिकारी विचारों ने हृदय को हिला दिया। कालिज की पढ़ाई छोड़कर विदेश जाने की इच्छा करने लगे। घरवालों से आज्ञा लेकर अमेरिका चले गये। वहां जाकर इनकी आंखें खुल गईं। इस पराधीन देश के दास ने स्वाधीन देश में जाकर उस पवित्र आनन्द की अनुभूति की जिसे शब्द प्रकट नहीं कर सकते। जब इन्हें कोई कुली या हिन्दू कहकर पुकारता तो इन्हें अत्यन्त असह्य कष्ट होता था। वहां जाकर दास और स्वतन्त्र का भेद प्रत्यक्ष रूप में उसे अनुभव हुआ। अमेरीका में उस समय यह धारणा थी कि भारतवर्ष मजदूर, दास वा कुलियों का देश है। इसी प्रकार के अनेक कारणों से उस के विचारों में एक भयङ्कर क्रांति आई। उन्होंने निश्चय किया कि अपनी मातृभूमि भारत को जैसे भी हो स्वतन्त्र कराना चाहिये। सन् १९१२ में कर्तारसिंह ने सान फ्रांसिस्को में ही भारतीयों का अप-मान देखकर अपने उद्देश्य की पूर्ति के लिए मजदूरों का सङ्गठन प्रारम्भ कर दिया। रात दिन उसे यही चिन्ता रहती थी कि मेरा देश स्वतन्त्र कैसे हो। उसी समय पंजाब से निर्वासित देशभक्त भगवान्-सिंह अमेरिका पहुंचे। इनके मिलने से कर्तारसिंह का उत्साह बहुत बढ़ गया। ये द्विगुण उत्साह से कार्य करने लगे। कर्तारसिंह और जगतराम जी अमेरिका में प्रसिद्ध क्रांतिकारियों के समाचार पत्र 'गदर' के सम्पादन विभाग में कार्य करते रहे। जब यह 'गदर' पत्र का कार्य करता था उस समय वह पत्र को अपने हाथ से हैण्डप्रेस से छापा करता था। इसके पश्चात् इसने न्यूयार्क में हवाई जहाज की कम्पनी में भरती होकर हवाई जहाज चलाना सीखा। अब इसकी इच्छा भारत आने की हुई। इसने भारत को ही अपना कार्यक्षेत्र बनाने का निश्चय किया। सन् १९१४ में 'कोमांगातामारू' जहाज भारत लौट रहा था तो कर्तारसिंह बाबा गुरुदत्तसिंह से मिला। वह फिर अपने कई साथियों के साथ हवाई जहाज द्वारा जापान पहुंच गया। उस समय प्रवासी भारतीयों में विप्लव का खूब प्रसार था। जो भी भारतीय प्रवासी विदेश से लौटता था वही "भारत रक्षा" कानून का सहारा लेकर गिरफ्तार कर लिया जाता था। किन्तु चतुराई से "निपिनमारू" जहाज द्वारा १५-१६ सितम्बर को कोलम्बो पहुंचकर कर्तारसिंह जी सुरक्षित पंजाब पहुंच गये। योरुप में महायुद्ध छिड़ गया था। भारत में क्रांति

करने का अच्छा उपयुक्त अवसर था। अतः कर्तारसिंह भारत आते ही कार्य में जुट गया।
उसके हृदय में विप्लव की आग धधक रही थी। पंजाब में सैकड़ों देशभक्त अमेरिका से लौटकर आये
थे। इनके कारण पंजाब में विप्लव की आग धीरे-धीरे अपना उग्ररूप धारण कर रही थी। ऐसे वीरों
को सुसंगठित करने के लिए पंजाब में उस समय कोई नेता नहीं था। नेता की खोज में वीर कर्तार-
सिंह भाई परमानन्द जी से भी मिले। उन्होंने इसे बालक समझकर वा अन्य किसी कारण से इस पर
विश्वास नहीं किया। उस समय दिल्ली षड्यन्त्र के कारण रासबिहारी बोस का यश सुदूर अमेरिका
तक पहुंच गया था। अतः रासबिहारी को अपना उपयुक्त नेता समझ पंजाब से विप्लव की तैयारी
का समाचार लेकर अपने विश्वस्त व्यक्ति को कर्तारसिंह ने काशी भेजा। रासबिहारी को सब समा-
चार उस व्यक्ति ने बता दिए और प्रार्थना की कि इस समय पंजाब को आपकी अत्यन्त आवश्यकता
है। कई कारणों से रासबिहारी उस समय स्वयं पंजाब न आ सके। किन्तु उन्होंने शचीन्द्रनाथ
सान्याल को पंजाब की दशा की ठीक जांच करने के लिए भेज दिया। शचीन्द्र नवम्बर मास के अन्त
में लुधियाना गये। वहां उनको कर्तारसिंह जी भी मिले। कर्तारसिंह ने बताया कि दो सौ तीन सौ
इनके साथी लुधियाना में विद्यमान हैं जो आज्ञानुसार विप्लव में कार्य करने के लिए उद्यत हैं। वे
सब गुरुद्वारे में पढ़ने के बहाने से इकट्ठे होते हैं। यहां के समाचार जानकर शचीन्द्र, कर्तारसिंह को
साथ लेकर जालन्धर पहुंचे। वहां स्टेशन पर उतरकर पास बगीचे में गये। वहां पर उस दिन कर्तार-
सिंह के अतिरिक्त पृथ्वीसिंह, रामसरनदास, तलवार अमरसिंह और रामकरण थे। ये सब रास-
बिहारी की प्रतीक्षा में उन्हें न देखकर कुछ निराश हुए। इन सब ने शचीन्द्र को पंजाब की यथार्थ
स्थिति बताई। ये सिक्ख सेनाओं से भी बड़ी आशा रखते थे। उस समय शचीन्द्र ने उनको सङ्गठन
सम्बन्धी कुछ विशेष बातें बताईं और फिर कर्तारसिंह को कुछ रिवाल्वर और गोलियां दीं। शचीन्द्र
लाहौर गये, पंजाब की तैयारी देखकर वे बहुत प्रभावित हुए। साथ ही वहां के सङ्गठन की निर्बलता
भी भली-भांति समझ गये कि पंजाब के युवकों में उत्साह और शक्ति भी है किन्तु संयम नहीं है और
उतावलापन है। सिक्ख अनुशासन में रहकर कार्य न करेंगे तो सारा बना बनाया कार्य बिगड़
जावेगा। शचीन्द्र ने काशी पहुंचकर पंजाब की सब अवस्था रासबिहारी को बता दी। रासबिहारी
की सम्मति लेकर शचीन्द्र भी कार्य में लग गया। शस्त्र इकट्ठे किये। फौजी छावनियों में जाकर
सिपाहियों को विद्रोह के लिए तैयार किया जाने लगा। धन और शस्त्र की कमी को पूरा करने के लिए
डाके डालने का निश्चय किया गया। रासबिहारी ने बंगाल के क्रांतिकारी नेताओं को पंजाब के
विप्लव की तैयारी का समाचार सुनाने के लिए शचीन्द्र को बंगाल भेजा। पंजाब के समाचार सुनकर
उन्हें बड़ा उत्साह हुआ, अब उन्होंने निश्चय किया कि विप्लव की तैयारी खूब वेग से की जावे।
इसके लिए बम के गोले अधिक संख्या में बनाये जायें। शचीन्द्र काशी लौट आये। थोड़े ही दिनों में
शचीन्द्र का सेना के लोगों से अच्छा परिचय हो गया था। शचीन्द्र का एक महाराष्ट्रीय विप्लवी साथी
पिंगले जो अमेरिका से आया था, बड़ा ही होनहार था। वह पंजाबी अच्छी बोलता था। रासबिहारी
की आज्ञा से उसे पंजाब भेज दिया गया। शचीन्द्र ने पिंगले को कर्तारसिंह और पृथ्वीसिंह का परि-
चय देकर पंजाबियों की निर्बलता को भली-भांति जानने के लिए पंजाब भेज दिया। पिंगले पंजाब की
अवस्था का ठीक निरीक्षण करके एक सप्ताह में ही काशी लौट आया। इसके पश्चात् शचीन्द्र और
पिंगले ने पंजाब की यात्रा एक साथ की। ये दोनों अमृतसर के एक गुरुद्वारे में पहुंचे। वहां पिंगले
ने शचीन्द्र का परिचय मूलासिंह को कराया। यह मूलासिंह पहले पुलिस में रह चुका था। वहां

इसने पुलिस वालों की एक हड़ताल भी कराई थी। मूलासिंह ने शचीन्द्र को बताया कि जब विप्लव होगा तो पंजाब की सेनायें देशवासियों का साथ देंगी। वे हमारे अनुकूल हैं। शचीन्द्र ने इस पर विश्वास किया और इसे केन्द्र बनाकर सम्भालने को प्रेरणा दी। उसने केन्द्र का भार अपने ऊपर ले लिया। किन्तु पीछे पता लगा कि इसे केन्द्र का भार सौंपकर बड़ी भारी भूल की। इसके पश्चात् ये दोनों मुक्तसर गये। जब लौटकर ये अमृतसर आये तो कर्तारसिंह और अमरसिंह आदि गुरुद्वारे में उपस्थित थे। कर्तारसिंह शचीन्द्र को देखकर बड़े प्रसन्न हुए और बोले "बोलो रासबिहारी कब आवेंगे"। शचीन्द्र ने कहा बस अब उन्हीं का नम्बर है। उनके ठहरने का उचित प्रबन्ध हो जावे और आपका कार्य भी नियमित रूप से व्यवस्था में चलने लगे तो उनके आने में देर नहीं। इस समय केन्द्र की आवश्यकता बताते हुए कह दिया कि केन्द्र संभालने का भार मूलासिंह ने ले लिया है। रासबिहारी के लिए अमृतसर और लाहौर में दो दो मकान लेने का निश्चय किया गया। अमेरिका से सिक्खों का एक दल इसी समय अमृतसर में आया था। उसने अपनी गाढ़ी कमाई में से ५००) शचीन्द्र को दिये। शचीन्द्र इस बार इन लोगों के साथ एक सप्ताह पंजाब में रहकर काशी चले गए। कर्तारसिंह इस समय रात दिन भीषण परिश्रम करते थे। वह साईकिल पर बैठकर प्रतिदिन चालीस-चालीस पचास-पचास मील प्रचारार्थ देहात में जाकर लोगों को समझाते थे। पलटनों में जा-जाकर सैनिकों को समझाना, कभी मोगे, कभी फिरोजपुर छावनी में, कभी लाहौर कालिज के विद्यार्थियों में प्रचार करना, कभी शस्त्रों के लिए कलकत्ता जाना। इस प्रकार दिन-रात भागदौड़ में ही बीतते थे। प्रशंसा की बात यह है कि जितना भी वे परिश्रम करते थे उतना ही उत्साह, साहस और स्फूर्ति बढ़ती जाती थी। वैसे अनुभव कम होने से कार्यकर्त्ता भूलें भी करते थे। कार्य का ढंग अच्छा न होने से इन में से बहुतों की गिरफ्तारी के वारण्ट हो गए थे। एक दिन कर्तारसिंह को गिरफ्तार करने के लिए पुलिस ने एक गांव का घेरा डाला। कर्तारसिंह गांव के निकट किन्तु ग्राम से बाहर था। पुलिस के आने की सूचना मिलते ही साईकिल पर सवार हो ग्राम में आ गये। पुलिस उन्हें पहचानती न थी। कर्तारसिंह साहस के कारण ही बच गया। यदि वे ऐसा न कर भागने का यत्न करते तो मार्ग में ही पकड़े जाते। इस समय पंजाब के क्रांतिकारियों का व्यय इतना बढ़ गया कि दान के धन से व्यय नहीं चलता था। इसीलिए कर्तारसिंह ने धन के लिये डाका डालने का प्रस्ताव किया। डाके का नाम सुनकर कुछ साथी आश्चर्य में पड़ गये। कर्तारसिंह ने कहा "कोई डर नहीं है। भाई परमानन्द भी डाके के पक्ष में हैं।" १० दिसम्बर को हिसार में पीपी नाम के गांव में एक ब्राह्मण के घर डाका डाला गया। बाईस हजार हाथ आये। दिसम्बर में पंजाब सरकार ने लिखा कि "पिछले महीनों में पंजाब में डाक गाड़ियां लूटी गईं और रेलगाड़ियों को पटरियों से नीचे उतारने के प्रयत्न किये गये।" पंजाब सरकार ऐसा अधिकार चाहती है कि जिन व्यक्तियों को सरकार चाहे पकड़ सके और बिना मुकद्दमा चलाये अनिश्चित समय के लिए जेलों में डाल सके। इधर सरकार ऐसा अधिकार चाहती थी इधर पञ्जाब में बराबर डाके डाले जा रहे थे। २४-२५ दिसम्बर को जिला जालन्धर में करला और करनाम ग्रामों में डाके डाले गए। २७ दिसम्बर को चौरिआनु जिला गुरुदासपुर, १ जनवरी को होशयारपुर जिले में, ४ जनवरी को जालन्धर जिले में पुनः डाके डाले गये। इसी प्रकार और भी अनेक स्थानों में उन्हीं दिनों डाके डाले गये। एक डाका २ फरवरी को एक चाबा नाम के गांव जिला अमृतसर में ब्राह्मण के घर डाला गया। इस डाके में व्यक्तिगत शत्रुता तथा स्वार्थ था। मूलासिंह इस डाके का मुख्य नेता था। पीछे पता चला कि मूलासिंह नीच आदमी

था वह ईमानदारी से कोसों दूर था। उसने विप्लवकारियों का बहुत पैसा खा लिया। वह जब गिरफ्तार हुआ तो सरकारी गवाह बन गया। ३ फरवरी को लुधियाना के एवों गांव में डाका डाला गया। इस दल के अध्यक्ष कर्तारसिंह थे। इस घर में एक अत्यन्त सुन्दर युवति भी थी। उसे देखकर एक पापी नें उसका हाथ पकड़ लिया, इस पर लड़की घबराकर चिल्ला उठी। कर्तार ने उसी समय चीख सुनते ही उस नीच को पकड़ लिया और अपना रिवाल्वर तानकर उस दुष्ट के सिर पर धर दिया और बोले "अरे नीच! तूनें भीषण अपराध किया है इस अपराध का दण्ड मृत्युदण्ड ही है। तू इस युवति के चरणों में सिर रखकर क्षमा मांग और कह बहन! मुझ से भारी अपराध हुआ है। इसकी माता के चरणों में सिर रखकर कहो—"मां! मुझे इस नीचता के लिए क्षमा करो।" यदि ये तुझे क्षमा दे देंगी तो तेरी प्राणरक्षा होगी नहीं तो तुझे गोली से उड़ा दिया जावेगा।" उसने वैसा ही किया। मां-बेटियों ने उसे क्षमा कर दिया और इस पर उन मां-बेटी की आंख भर आईं। मन्त्रमुग्ध होकर मां बड़े आश्चर्य से कर्तारसिंह से बोली—'बेटा ऐसे प्रतिभा और सुशील युवक होकर इस नीच आचरण कुकर्म में क्यों सम्मिलित हुआ।" कर्तार ने सच्चे गले से उत्तर दिया—"मां रुपये के लोभ से नहीं अंग्रेजी राज्य के विरुद्ध लड़ने के लिए शस्त्रों की आवश्यकता है। धन के बिना शस्त्र कहां से मिलें। इससे विवश होकर यह नीच कर्म करना पड़ा।" मां ने कहा—"बेटा! इस लड़की का अभी विवाह करना है कुछ तो देते जाओ।" कर्तार ने सब धन माता के सामने रख दिया और कहा—"माता जितना चाहो ले लो।" माता ने थोड़ा सा धन लेकर बड़ी खुशी से सब धन उठाकर कर्तार की झोली में डाल दिया और आशीर्वाद दिया कि—"जाओ बेटा! तुम्हें सफलता प्राप्त हो। कर्तार-सिंह बहुत उच्च और पवित्र चरित्र का धनी था। उसकी सच्चरित्रता की यह घटना एक अच्छा प्रमाण है।

विप्लव दल की ओर से ३, ६, ७, १५, १८ और २१ जनवरी को रेल को पटरी से उतारने का प्रयत्न किया गया और अनेक डकैतियां हुईं। बङ्गाल के मुख्य क्रांतिकारी नेता काशी आये। शचीन्द्र तथा रासबिहारी से मिलकर पंजाब की स्थिति का ज्ञान करके वे बंगाल चले गये। उनके बंगाल चले जाने पर बंगाल में भी अनेक डकैतियां हुईं। इस प्रकार उस समय पंजाब से लेकर आसाम, बंगाल तक सारा देश एक संगठन में बंधा हुआ था और विप्लव के लिए तैयार हो रहा था। शचीन्द्र बाबू ने बंगाल सम्भाला और रासबिहारी बोस पंजाब को चल दिए। उस समय उनकी गिरफ्तारी पर इनाम था, किन्तु वे सुरक्षित अमृतसर पहुंच गये। इधर उत्तर प्रदेश, बंगाल, बिहार में विप्लवी छावनियों में जा-जाकर सेनाओं को विप्लव के लिए तैयार कर रहे थे।

कुछ दिन पश्चात् कर्तारसिंह अपने साथियों सहित काशी पहुंचा। उस समय उन्हें उत्तर भारत की सभी छावनियों की अवस्था का ज्ञान था। छावनियों में सैनिक लोग क्रान्तिकारियों का बड़ा आदर करते थे, ये उस समय भली-भांति परिचित थे कि देश में गोरी सेना बहुत थोड़ी और नौसिखिया है। प्रत्येक छावनी के अस्त्र-शस्त्रों के परिमाण का भी पता लगा चुके थे। देश की ग्रामीण जनता से भी अच्छा मेलजोल था और उत्तर प्रदेश के ठाकुरों से विशेष रूप से मेल बढ़ाया गया। इस प्रकार विप्लवार्थ अच्छी तैयारी और संगठन किया गया। रासबिहारी भी पंजाब में सैनिकों से मिलते-जुलते रहते थे किन्तु वह इस विषय में बड़ी सावधानी रखते थे। इनकी यह योजना थी कि एक दिन अकस्मात् उत्तर भारत की सब छावनियों में सब अंग्रेज सैनिकों पर ठीक एक समय, एकदम आक्रमण किया जाये और यह कार्य रात्रि के समय ही किया जावे। उसी समय शहर के तारादि काट दिए जायें।

अंग्रेजों को पकड़कर कैद करलें, फिर सरकारी खजाना लूट लें। जेल के कैदी मुक्त कर दिए जायें। नगरों का प्रबन्ध वहां के किन्हीं भी योग्य पुरुषों को सौंप दिया जाये। सारे विद्रोही दल पंजाब में इकट्ठे हों, जिससे वहां पर ठहरकर दृढ़ता से न्यून से न्यून एक वर्ष तक शत्रु के साथ युद्ध किया जा सके।

रासबिहारी ने कर्तारसिंह के साथियों के साथ मिलकर सारी व्यवस्था की और यह निश्चय किया कि २१ फरवरी को एक साथ सारे भारतवर्ष में विद्रोह किया जावे। इसकी सूचना काशी तथा सब छावनियों और केन्द्रों को भेज दी गई। पंजाब में चार रंग वाली पताका भी बना ली गई। युक्त प्रान्त के कुछ ग्राम भी विप्लव में सहयोग देने को तैयार थे। इस समय धड़ाधड़ बम बनाये जा रहे थे और शस्त्र इकट्ठे किये जा रहे थे। रसद का भी कहीं-कहीं प्रबन्ध हुआ। मोटर लारी आदि स्थानीय सवारियों की सूची भी बनाई गई।

उस समय युद्ध का घोषणापत्र भी तैयार किया गया। रेलवे लाइन और तारों को काटने के लिए औजार भी एकत्रित किये गये। इतना होने पर उत्तर भारत के सभी क्रांतिकारी बड़े उत्साह से पंजाब की ओर दृष्टि किये एक-एक दिन गिनने लगे। ऐसी आशा थी पंजाब में विप्लव होते ही क्षण भर में सारे देश में क्रांति की अग्नि धधक उठेगी।

देशद्रोही कृपालसिंह

अमृतसर के चम्बा ग्राम में मूलासिंह की अध्यक्षता में जो डाका डाला गया था इस डाके की खोज तथा मूलासिंह को पकड़ने के लिए एक मुसलमान पुलिस डिप्टी सुपरिण्टेंडेंट ने अपने एक सिक्ख गुप्तचर कृपालसिंह को लगाया। कृपालसिंह का एक रिश्ते का भाई क्रांतिकारी दल में था। उसकी सहायता से फरवरी में कृपालसिंह भी इस दल में सम्मिलित हो गया किन्तु क्रान्तिकारियों को इस पर शीघ्र ही सन्देह हो गया। उसका निरीक्षण करने पर यह देख लिया गया कि वह प्रतिदिन नियत समय पर अपने अफसरों से मिलने जाता है। इधर २१ फरवरी में दो चार दिन शेष रहते थे। यदि बंगाल में ऐसी घटना देखी जाती तो भेदिये को तुरन्त गोली मार दी जाती किन्तु पंजाबी क्रांतिकारी सोचने लगे कि कृपालसिंह के मार डालने से न जाने कैसी गड़बड़ मच जावे। इसी भूल से कृपालसिंह बच गया और २१ फरवरी के विद्रोह की तैयारी की सूचना राज्याधिकारियों के पास पहुंच गई। इसका पता कर्तारसिंह आदि को भी चल गया। अब कृपालसिंह को नजरबन्द करके विद्रोह की तिथि २१ फरवरी के स्थान पर १९ फरवरी कर दी गई। इस समय भी भारत के दुर्भाग्य से एक और घटना हो गई। इस नई तारीख की सूचना को छावनी में ले जाने का कार्य जिनको सौंपा था उन्होंने लौटकर रासबिहारी से कहा - "छावनी में १९ फरवरी की सूचना दे आया।" उस समय कृपालसिंह वहीं बैठा था और उस व्यक्ति को कृपालसिंह का हाल मालूम न था। जब सब लोग भोजन के लिए इधर-उधर चले गये तो कृपालसिंह भी बाहर चला गया। जो चौकीदार उसकी देखभाल के लिए नियुक्त था उसने भी उसे जाने से न रोका। कृपालसिंह के बाहर निकलते ही उसे पुलिस का भेदिया जो साईकिल पर चढ़कर इधर आ रहा था मिल गया। उसके द्वारा उसने १९ फरवरी की सूचना पुलिस में भिजवा दी। १९ तारीख को कुछ घण्टे बाद धड़-पकड़ आरम्भ हो गई। जिस मकान में कृपालसिंह था उसमें सात गिरफ्तारियां हुईं। अमरसिंह आदि कुछ मुखिया भी पकड़े गये। इस मकान में एक रिवाल्वर, बम बनाने की सामग्री और क्रांतिकारी झण्डे भी पकड़े गये।

रासबिहारी के असली मकान का किसी को भी पता नहीं था। अतः वह गिरफ्तार न हो सके। इधर मेगजीन पर देशी सिपाहियों के स्थान पर गोरों का पहरा बैठा दिया गया। नगरों के अंग्रेज फौजी तैयारी से युक्त कर दिए गए। उन सबको कैंप बनाकर रहने की आज्ञा दी गई। हथियारबन्द गोरे सैनिकों की टोलियां फौजी ढंग से बस्ती भर में गश्त करने लगीं। लाहौर, देहली और फिरोजपुर आदि सभी स्थानों पर यह प्रबन्ध किया गया। इससे विद्रोह में जो सम्मिलित होने वाले देशी सैनिक थे वे एकदम घबरा गये। देहात वालों को क्रांति की तारीख से दो दिन पहले क्रांति करने का पता नहीं चला, अतः वे निश्चित स्थानों पर इकट्ठे नहीं हुए किन्तु कर्तारसिंह पूर्व निश्चय के अनुसार ७०-८० साथियों को लेकर फिरोजपुर छावनी में पहुंच गये। बारकों में चौकसी रहने पर वे देशी पलटन के हवलदार से मिले किन्तु उसने इस समय कुछ भी करने में अपनी असमर्थता प्रकट की। विवश कर्तारसिंह को खाली बिना कुछ किये लौट आना पड़ा। यह १९ फरवरी का दिन भारतीय इतिहास में बड़े महत्त्व का है। इस दिन विप्लव की जितनी बड़ी तैयारी व्यर्थ हुई उतनी बड़ी तैयारी कूका विद्रोह के अतिरिक्त सन् १८५७ के विप्लव के पश्चात् पंजाब में और कभी नहीं हुई। कर्तारसिंह लाहौर में रासबिहारी के मकान पर पहुंचे। वे उस समय निराश हो मुर्दे के समान पड़े थे। कर्तार-सिंह भी निराश हो चारपाई पर दूसरी ओर लेट गये। इस समय पंजाब में धड़ाधड़ गिरफ्तारियां होने लगीं। २२ ता० को लाहौर में १३० व्यक्ति गिरफ्तार किये गये, चार मकानों की तलाशी ली गई, इनमें १२ बम मिले। इनमें पांच बम बङ्गाली नमूने के इतने भयङ्कर थे कि पूरी रेजीमेंट को उड़ाने के लिये एक ही बम पर्याप्त था। अमृतसर में बमों की बड़ी भारी सामग्री पकड़ी गई। लुधियाना में झाबेवाला नामक स्थान पर एक बम फैक्टरी का पता चला। लोहतबादी नामक गांव में एक बम का कारखाना पकड़ा गया। इस समय जो लोग पकड़े जाते थे वे अन्य पांच-सात आदमियों के नाम बतला देते थे। इस प्रकार मूलासिंह और अमरसिंह के पकड़े जाने पर वे वादामाफ गवाह बन गये। सबसे पहले नवाब खां ने आप ही पुलिस को सूचना दे दी। वह पार्टी का विशेष (सरगम) कार्यकर्त्ता था। उधर वह सारी बातें पुलिस को बताता रहता था। इस समय गोरी फौज किसी भी गांव को घेरकर बहुत से व्यक्तियों को एक साथ गिरफ्तार कर लेती थी। रावलपिंडी में एक देशी पलटन बर्खास्त कर दी गई। इस प्रकार विप्लवियों के जितने केन्द्र थे प्रायः पुलिस को सभी का पता चल गया। लाहौर के प्रत्येक मुहल्ले में खानातलाशी होने लगी। खूब धर-पकड़ हो रही थी। एक बार तो कर्तारसिंह के साथ काबुल जाने का निश्चय रासबिहारी ने किया किन्तु उन्होंने यह विचार बदल दिया और वे विनायकराव कापले नाम के मराठे युवक के साथ रात की गाड़ी से काशी को चले गये। कर्तारसिंह, जगतसिंह और हरनामसिंह टुण्डा तीनों ब्रिटिश भारत की सीमा से निकलकर एक नदी के तट पर बैठकर विचारने लगे और वहीं कुछ शान्ति से चने खाये और जल पीया। इनके वहां विचार बदल गये। इनके हृदय में यह भावना जागृत हुई कि हमारा इस प्रकार भागकर जान बचाना कदापि उचित नहीं। जब हमारे साथी गिरफ्तार हो रहे हैं, हम छिपकर बचना चाहते हैं। जो कुछ होगा देखा जावेगा अपने फंसे हुये साथियों को छुड़ाने का प्रयत्न करना चाहिए। यह विचार कर वे लौट आये। कर्तारसिंह इस विपत्ति के समय भी मस्ती से गाया करता था। उसकी धारणा थी कि किसी युद्ध में लड़ते-लड़ते प्राण देना अच्छा है। उन्होंने लौटकर सरगोधा के पास फिर अपना वही कार्य प्रारम्भ कर दिया। वहां चक नं० ५ में विद्रोह की चर्चा छेड़ने के कारण गिरफ्तार करके जंजीरों से जकड़ दिये गये। वे पकड़ में आकर लाहौर गये। पकड़े जाने पर भी यह १८ वर्षीय सिंह

प्रसन्न था, मुख पर हंसी थी। प्रत्येक अङ्ग से मस्ती टपक रही थी। उनके मुखमण्डल का तेज सबको अपनी ओर आकृष्ट करता था। लाहौर स्टेशन पर पहुंचते ही पुलिस कप्तान से कहा—"मि० टासकिन कुछ खाने को तो ला दो।" वे जेल में डाल दिये गये। वहां पर क्या कर्तारसिंह शान्त बैठने वाला था? ६० व ७० कैदियों ने निश्चय किया कि हम सब निर्दोष हैं अतः जेल को तोड़कर निकल लाहौर छावनी पर कब्जा करलें और विद्रोह कर डालें। परन्तु दुर्भाग्यवश भेद खुल गया और विचारा हुआ कार्य न हो सका। उस समय लोहा काटने के पेंच भी जेल के अन्दर आ चुके थे। पर सब व्यर्थ हुआ, तलाशी लेने पर कर्तारसिंह की सुराही के नीचे पृथ्वी में गड़े हुए सब पेंच मिल गये। सबको बेड़ियां पहना दी गईं और कोठरियों मे बन्द कर दिया गया।

लाहौर षड्यन्त्र का प्रथम मुकद्दमा

पर्याप्त अभियुक्त गिरफ्तार हो चुके थे। सरकार पर्याप्त खोज कर चुकी थी, अतः कर्तारसिंह भाई परमानन्द, झांसी वाले पण्डित परमानन्द, विनायक गणेश पिङ्गले, जगतसिंह और हरनामसिंह आदि ६१ व्यक्तियों पर मुकद्दमा चलाया। यह लाहौर षड्यन्त्र के नाम से प्रसिद्ध हुआ। इस मुमद्दमे में सरकार ने ४०४ साक्षी पेश किये। सफाई की ओर से २२८ साक्षी दिये गये। सरकारी गवाहों में अनेक विप्लवी भी थे। कर्तारसिंह ने इस मुकद्दमे में सारी बातें स्वीकार कर लीं। इस समय उसकी अवस्था कुल साढ़े अठारह वर्ष की थी। कितने आश्चर्य की बात है कि इस थोड़ी सी आयु में यह नवयुवक इतने भारी षड्यन्त्र का नेता था। जज कर्तारसिंह का सारा बयान आश्चर्य से सुनता रहा। पहले दिन उसने कुछ भी नहीं लिखा और कर्तारसिंह से बोला—"देखो खूब विचार कर उत्तर दो। इस प्रकार के बयान से और सब अपराध स्वीकार करने से मुकद्दमा सर्वथा बिगड़ जावेगा पुनः सोच विचार कर बयान दो।" कर्तारसिंह ने कहा—"फांसी से अधिक आपके पास क्या है? हम उससे नहीं डरते।" जज ने विवश होकर कहा—"जाओ कर्तारसिह आज मैंने तुम्हारी कोई बात नहीं सुनी। कल फिर सोच समझकर बयान देना।" उस दिन अदालत उठ गई। कर्तारसिंह के पवित्र ब्रह्मचर्य जीवन के कारण मुखमण्डल पर ब्रह्मचर्य का तेज चमकता था। उससे उसके मुख की पवित्र सुन्दर तेजोमय आकृति किसी भी देखने वाले मित्र वा शत्रु को मोह लेती थी। दूसरे दिन कर्तारसिंह ने फिर वही बयान दिया और षड्यन्त्र का सब उत्तरदायित्व अपने ऊपर ले लिया। उसकी इस शान्त वीरता पर सभी मुग्ध हो गए। डेढ़ वर्ष तक मुकद्दमा चला। अन्त में फांसी की आज्ञा हुई। इस मुकद्दमे में कर्तारसिंह, विष्णुगणेश पिंगले, जगतसिंह, पं० परमानन्द, पृथ्वीसिंह, मानसिंह और ऊधमसिंह आदि २४ व्यक्तियों को फांसी तथा अनेकों को कालापानी का दण्ड दिया। यह आज्ञा १३ सितम्बर, १९१६ को दी गई। कर्तारसिंह ने फांसी सुनकर "थैंक यू" कहकर जज का धन्यवाद किया। जज की आज्ञा कर्तार को फांसी न देकर कालापानी का दण्ड देने का विचार था किन्तु कर्तार-सिंह ने कहा कि "मैं फांसी को अधिक अच्छा समझता हूं ताकि मैं शीघ्र जन्म लेकर फिर भारत की स्वतन्त्रता के युद्ध में भाग ले सकूं और बार-बार ऐसे ही फांसी पर लटकाया जाऊँ तथा फिर जन्म लूं। जब तक कि भारत स्वतन्त्र न हो मैं इसी प्रकार की मृत्यु चाहता हूं। यदि पुनर्जन्म में मुझे पुरुष न बनाया स्त्री बनाया तो अपनी कोख से विद्रोही पुत्र उत्पन्न करूंगा।" कर्तार की वीरता और दृढ़ता की सभी प्रशंसा कर रहे थे। उसके मुख पर दिव्य आभा झलक रही थी। फांसी के तख्ते पर चढ़ने से पूर्व जब उसका भार लिया गया उस समय उसका भार १० पौंड बढ़ गया था। उसके शरीर में उत्साह, मन में उमङ्ग, मुख पर हास्य और तेज, आंखों में प्रेम, हृदय में साहस भरा हुआ

था । यथार्थ में वह मनुष्य रूप में देवता था । वह वीर "भारत माता की जय" बोलकर हंसता हुआ फांसी के तख्ते पर चढ़ गया । फांसी के समय जो लोग उससे मिलने आये उसने सबसे यही कहा—साहसपूर्वक मरने से मुझे बागी का खिताब देना, यदि भविष्य में कभी कोई मेरी याद करे तो "बागी कर्तारसिंह" कहकर मेरा परिचय दिया करना । करतारसिंह ने मरते समय अपने दादा से कहा—"मैं बिस्तरे पर पड़े रहकर मरना अच्छा नहीं समझता । मुझे तो फांसी की मृत्यु में ही आनन्द है ।" इस तरुणवीर कर्तारसिंह पर जो २० वर्ष की आयु में भारत माता के चरणों में अपने प्राणों की बलि चढ़ा गया, पंजाब प्रान्त अपने इस होनहार नवयुवक के बलिदान पर बङ्गाल के समान गौरव और गर्व की अनुभूति करता है । धन्य है ऐसे कर्तारसिंह समान वीरों को जिन्होंने भारत माता की दासता की बेड़ियों को काटने के लिए अपने प्राणों की बाजी लगा दी । स्वतन्त्रता के लिए अपना सारा जीवन कण्टकमय बनाया, संसार के ऐश्वर्य पर लात मारकर कठिन से कठिन विपत्तियों को झेला और हंसते-हंसते फांसी की जयमाला गले में डाल ली । उसका बलिदान प्रत्येक युवक के लिए अनुकरणीय है ।

हरनामसिंह (बर्मा)

हरनामसिंह का जन्म साहरी ग्राम जिला होशियारपुर में हुआ था । उनके पिता का नाम लाभसिंह था । आप पढ़ने-लिखने में बड़े चतुर थे, किन्तु हाई स्कूल में पहुंचते ही स्कूल छोड़ सेना में भरती हो गए । वहां पर बलवन्तसिंह के सत्सङ्ग का आप पर बड़ा अच्छा प्रभाव पड़ा । स्वतन्त्रता-प्रेम ने हृदय में गुदगुदी पैदा कर दी, फिर आप नौकरी कैसे करते । डेढ़ वर्ष के पश्चात् नौकरी छोड़कर घर चले आये । कुछ दिन घर पर रहकर फिर आप बर्मा चले गये । वहां से आप अमेरिका पहुंचकर विक्टोरिया में रहने लगे । आप आते ही कार्य में जुट गए । किन्तु आपने उच्च शिक्षा की न्यूनता का अनुभव कर संयुक्तराष्ट्र के सीएटल नगर में जाकर पढ़ना प्रारम्भ कर दिया । तीन वर्ष तक बड़े प्रयत्न से विद्योपार्जन करते रहे । कैनेडा में भारतीयों ने डेढ़ लाख की पूञ्जी से एक इण्डियन ट्रेडिंग कम्पनी खोली । उसका मैनेजर एक अंग्रेज बनाया गया । कम्पनी का कार्य भली-भांति चलने लगा । गोरे भला भारतीयों की व्यापार में उन्नति को कब सहन कर सकते थे । मैनेजर ने पक्षपात अथवा स्वार्थवश बेईमानी करनी प्रारम्भ कर दी । हरनामसिंह भी हिस्सेदारों में थे । आपने उनकी बेईमानी ताड़ ली । फिर तो झगड़ा प्रारम्भ हो गया । गोरे आप पर कड़ी दृष्टि रखते थे और आपको फांसने की चेष्टा भी करने लगे । आपके एक मित्र इसी भय से हरनामसिंह को संयुक्तराष्ट्र अमेरिका ले गये । कुछ दिन पश्चात् आप कैनेडा फिर आगये । वहां पहुंचकर "दि हिन्दुस्तान" नामक अखबार आपने निकालना प्रारम्भ किया । आपके बढ़ते हुए प्रभाव को देखकर वहां की सरकार चिन्तित होने लगी और उन पर बम बनाने और सिखाने तथा विद्रोह प्रचारादि का दोष लगाकर ४८ घण्टे के अन्दर कैनेडा छोड़ने की आज्ञा उन्हें दी गई । उन्होंने अपने एक अंग्रेज मित्र रैमिस्वर्ग को जो कि संयुक्त राज्य अमेरिका में रहते थे, तुरन्त तार दिया, उन्होंने कैनेडा सरकार को तार दिया कि उन्हें निर्वासित न किया जावे, मैं उन्हें लेने के लिए आ रहा हूं । वह उसी समय कैनेडा को अपनी किश्ती लेकर चल पड़े और उन्हें साथ लेकर अमेरिका आये । हरनामसिंह यहां आकर बर्कले यूनिवर्सिटी में फिर पढ़ने लगे । वहां पर "गदर" नामक पत्र में आप जोशीले लेख लिखने लगे । इधर भाई गुरुदत्तसिंह और दिलीपसिंह एक बम केस में पकड़े गये । उधर 'कोमांगातामारू' जहाज बन्दरगाह पर आ पहुंचा । हरनामसिंह अपने

अन्य साथियों सहित उपर्युक्त दोनों सज्जनों को छुड़ाने का प्रयत्न करने लगे। इसी झगड़े में आप पकड़े गये। इन्हें फिर वही देश निकाले का दण्ड मिला, आप विवश होकर भारत आनेवाले एक जहाज पर सवार हो गये। चीन, जापान और श्यामादि देशों में गदरपार्टी का कार्य करते हुए वर्मा पहुंचे। यह बात सन् १९१५ की है। उस समय सिंघापुर के विद्रोह का दमन हो चुका था। वर्मा में एक नए विद्रोह की योजना हो रही थी। उसकी पूर्ण शक्ति लगाकर तैयारी कर रहे थे। आप एक दिन सहसा माण्डले में गिरफ्तार कर लिए गये। अभियोग चलने पर मृत्युदण्ड मिला। आप इस बीच में जेल से भाग गए किन्तु शीघ्र ही पकड़े जाने के कारण इन्हें फांसी दे दी गई। हरनामसिंह बड़े स्वतन्त्र विचार के व्यक्ति थे। भागसिंह और बलवन्तसिंह से इनका बड़ा प्रेम था। इन तीनों का ही देश के लिये बलिदान हो गया।

अमर शहीद श्री सोहनलाल पाठक

सन् १९१४ की बात है कि गदरपार्टी की ओर से सभी देशों में गदर प्रचारार्थ पार्टी के सदस्य भेजे जा रहे थे। अतः सोहनलाल पाठक भी इसी योजनानुसार अपने साथी नारायणसिंह सहित अमेरिका से बर्मा भेजे गये। पहले आप बैंकाक पहुंचे। कुछ दिन वहां प्रचार करने के पश्चात् रंगून जा पहुंचे। यहां पर संगठन करके और अपना केन्द्र बनाकर कार्य करना प्रारम्भ कर दिया। उत्तरीय भारत में २१ फरवरी सन् १९१४ का दिन विप्लव के लिए नियत किया। सर्वत्र इसकी बड़े जोर से तैयारियां हो रही थीं। क्रांतिकारियों को पूर्ण आशा थी कि भारत स्वतन्त्र होगा और हमारे सुदिन आवेंगे। किन्तु ईश्वरेच्छा कुछ और थी, धरपकड़ प्रारम्भ हो गई। पाठक जी क्रांति की विफलता से तनिक भी हतोत्साह नहीं हुये। वे पूर्ण उत्साह और उमंग से फिर क्रांति की योजना में जुट गये। सिपाहियों में विद्रोह की अग्नि सुलगने लगी। उन्हें सैनिकों से कोई अनिष्ट होने की सम्भावना नहीं थी। किन्तु एक दिन एक जमादार ने उन्हें गिरफ्तार करवा दिया। सन् १९१४ का अगस्त मास था, पाठक जी मेमियों के तोपखाने के अन्दर गदर का प्रचार कर रहे थे। उस देशद्रोही जमादार ने उन्हें पृथक् ले जाकर पकड़ लिया। सोहनलाल जी उस समय खाली नहीं थे। उनकी जेब में तीन पिस्तौलें तथा २७० गोलियां थीं। जमादार भी अकेला ही था। यदि पाठक जी चाहते तो जमादार को एक क्षण में मृत्यु के मुख में पहुंचा देते। किन्तु न जाने पाठक जी ने उस समय अपने शस्त्रों का प्रयोग क्यों नहीं किया। उन्होंने उससे छुटकारा पाने का प्रयत्न भी नहीं किया। वे उसे डाटकर समझाने लगे कि मैं तेरा भाई हूं मुझे पकड़वाकर तुझे क्या मिलेगा? भाई के साथ विश्वासघात करने में क्या तुम्हें किंचित् भी लज्जा नहीं आती, तू कैसा भाई है कि अपने ही हाथों अपने भाई का गला काट रहा है। इन वाक्यों को सुनकर शायद पत्थर भी पिघल जाता किन्तु उस निष्ठुर हृदय पर कुछ भी प्रभाव न पड़ा। वह धूर्त कैसे पिघल सकता था उसे स्वार्थ ने अन्धा कर रखा था। उसने पाठक की एक भी न सुनी और उसे वह पकड़कर ले गया। पाठक अत्यन्त उदार थे। उन्होंने उस विश्वासघाती को भाई समझकर क्षमा कर दिया और उसकी कुछ हानि न करके अपने प्राणों की बाजी लगा दी। इस प्रकार के अनेक उदाहरण भारत के इतिहास में मिलते हैं। पाठक जी जेल में डाल दिये गये, उन पर मुकद्दमा चला। पाठक जी जेल के नियमों की परवाह न करते थे, वे किसी जेल अधिकारी के आने पर परेड या सलामी नहीं देते थे। वे विचित्र मस्ती में

रहते थे। जब जेल नियम पालन के लिए उनसे कोई कहता तो वे उत्तर देते–"जब मैं अंग्रेजों के राज्य को अन्यायी और अत्याचारी मानता हूं तो उनके जेल के नियमों को ही क्यों मानूं ?" सलाम करना तो दूर रहा वे किसी राज्य के या जेल के अधिकारी के आने पर खड़े भी नहीं होते थे। वैसे पाठक जी मृदुभाषी, अत्यन्त विनम्र और सुशील थे। किसी के साथ अशिष्टता का व्यवहार नहीं करते थे। वे साधारण व्यक्ति के साथ भी सभ्यता से खड़े होकर बातचीत करते थे। जेलर उसके सभ्य व्यवहार से परिचित था किन्तु पेट के कारण उसे जेल के नियमों का पालन करना पड़ता था, वह भी विवश था। एक बार बर्मा के लार्ड महोदय जेल देखने आये। पाठक जी से जेलर ने प्रार्थना की कि लार्ड के आने पर खड़े होकर स्वागत कर लेना। पाठक जी इस अनुरोध को मानने को तैयार नहीं हुए। अन्त में जेलर ने एक चाल चली। पाठक जी की सज्जनता का लाभ उठाया। जिस समय लार्ड महोदय जेल में आये तो जेलर पहले से ही पाठक जी के पास आकर खड़ा हो गया। पाठक जी भी सभ्यता के कारण उससे खड़े होकर बातचीत करने लगे। उसी समय लार्ड साहब उनके पास पहुंचे, वे खड़े थे ही उनसे भी बातचीत हो गई। अपनी दो घण्टे की बातचीत में लार्ड महोदय ने आपसे बहुत ही आग्रह किया कि तुम क्षमा याचना करके प्राणदण्ड से मुक्त हो सकते हो। किन्तु आपने सर्वथा अस्वीकार कर दिया। यदि चाहते तो क्षमायाचना करके प्राणरक्षा कर सकते थे किन्तु उस वीर ने क्षमा मांगना अपने गौरव को धब्बा लगाना समझा। उनकी यह धारणा थी कि जब हमने कोई दोष ही नहीं किया तो क्षमा कैसे मांगें। भारत हमारा है यदि हम भारत में अपना स्वराज्य चाहते हैं तो यह हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है, इसमें हमारा क्या अपराध है ? अपनी वस्तु को मांगना, अपने अधिकारों के लिए झगड़ा करना कोई अपराध नहीं है। मैं इसलिए क्षमा मांगने को तैयार नहीं। अन्त में फांसी का दण्ड मिला। वह दिन आगया, सोहनलाल को फांसी के तख्ते पर खड़ा किया गया। उस समय एक अंग्रेज मैजिस्ट्रेट ने आकर उन्हें फिर क्षमा मांगने को कहा। केवल एक बार मौखिक क्षमा मांग लें आप छूट जायेंगे। मृत्यु मुख पर सामने खड़ी है। फांसी के तख्ते पर खड़ा है, रस्सी का फन्दा ठीक हो चुका है। पर वाह रे शूरवीर ! तूने उस समय भी प्राण बचाने के लिए "क्षमा करें" ये दो शब्द नहीं कह दिए। जेल अधिकारी सोहनलाल के मुख की ओर देख रहे थे। कुछ क्षण शान्त रहने पश्चात् वह फांसी का पुजारी हंसते हुए कहने लगा–"फिर वही बात, मैं अंग्रेजों से क्षमा मांगू ? क्षमा ही मांगनी हो तो अंग्रेज हमसे क्षमा मांगें। हमने कोई अपराध नहीं किया जो क्षमायाचना करें। यथार्थ में अपराधी तो वे हैं।" सोहनलाल ने कहा—"आप फिर क्यों देर करते हो, तुम अपने कर्त्तव्य का पालन करो। मुझे अपना कर्त्तव्य पूरा करने दो।" उस वीर को फांसी दे दी गई। वह देशभक्त भी भारत के लिए हंसते-हंसते फांसी के तख्ते पर झूल गया।

वीर बन्तासिंह

बन्तासिंह का जन्म १८९० ई० में सगवाल नामक गांव जि० जालन्धर में हुआ था। आपके पिता का नाम श्री बूटासिंह था। आप पढ़ने में चतुर थे, सातवीं और आठवीं श्रेणी एक ही वर्ष में उत्तीर्ण करली। आप जालन्धर आर्य वैदिक हाई स्कूल में पढ़ते थे, उसी समय सन् १९०५ में कांगड़ा में भूचाल आया था। उस समय आपने दुःखियों की सेवा शुश्रूषा तन-मन और धन से की। आपने सेवा के लिए एक दल भी बनाया था, उसके द्वारा दीन-दुःखियों की सहायता करते थे। उस भूचाल में लोकसेवा का खूब कार्य किया। हाई स्कूल की शिक्षा प्राप्त कर आप चीन गये, फिर वहां

से अमेरिका चले गये। वहां आपने पद-पद पर दासता का भयङ्कर दुःख अनुभव किया। आपने निश्चय किया कि दासता से मरना अच्छा है और प्रण कर लिया यदि जीवित रहूंगा तो स्वतन्त्र होकर, नहीं तो स्वतन्त्रता के लिए प्राणों की बाजी लगा दूंगा। आपने स्वदेश लौटकर भारत को स्वतन्त्र कराने का सङ्कल्प किया। आप भारत लौट आये, अपने गांव में आपने एक स्कूल खोला और पंचायत बनाई। गांव के लोग आपका बड़ा मान करते थे। पंचायत का कर्त्ता-धर्त्ता आपको ही बनाया। सब लोग पंचायत द्वारा किये गए निर्णय को मानते थे। आपका लोगों पर इतना प्रभाव था कि चीफकोर्ट के फैसले को न मानकर आपके फैसले को मानते थे। इससे राज्य के अधिकारी बड़े चिढ़ते थे। उस समय अमेरिका से लौटे हुए पंजाबी आपके पास घर आया जाया करते थे। पुलिस की दृष्टि इन पर पहले से ही कड़ी थी। यह रिपोर्ट मिलने पर पुलिस को अच्छा अवसर मिल गया। पुलिस ने अकस्मात् आपके घर पर छापा मारा। उस समय आप घर पर नहीं थे। आपके लिखे हुए कई एक ट्रेक्ट थे उन्हें देखकर आपके वारण्ट हो गये किन्तु आप पकड़े न जा सके। पीछे आपको गिरफ्तार करनेवाले के लिए पुरस्कार भी घोषित किया गया। एक दिन आप अपने एक साथी सज्जनसिंह सहित लाहौर में किसी मीटिंग में जा रहे थे। उसी मार्ग में एक पुलिस इन्स्पैक्टर मिला। उसे इन पर सन्देह हुआ, वह इनकी तलाशी लेने का आग्रह करने लगा। ये समझा बुझाकर टाल रहे थे किन्तु वह इनका पीछा नहीं छोड़ता था। बन्तासिंह के लाख कहने पर भी वह किसी प्रकार नहीं माना। जब आपने देखा यह किसी भी प्रकार बातों से मानने वाला नहीं तो आपने कहा कि "अच्छा तलाशी ले लो।" वह तलाशी लेने के लिए आगे बढ़ा तो आपने धीरे से अपना पिस्तौल निकालते हुये कहा कि—"तलाशी न लेते तो अच्छा था, हमारे पास तो यही है सो लो" यह कहकर उस पर फायर कर दिया। गोली लगते ही पुलिस इन्स्पैक्टर भूमि पर धड़ाम से गिर पड़ा। आप अवसर मिलते ही भाग निकले। अभी भागे ही थे कि इनका साथी ठोकर लगकर गिर गया। आपने पिस्तौल का भय दिखाकर लोगों की भीड़ और पुलिस को रोककर साथी को खड़ा किया। किन्तु आपका साथी अधिक चोट लगने से भाग न सका। तब आप विवश होकर अकेले ही भागे। यह दोपहर की घटना है। आप बचकर निकल गये और स्टेशन पर पहुंच गए। वहां पर पहले ही पुलिस आपकी प्रतीक्षा में खड़ी थी, किन्तु आप लुक-छिपकर गाड़ी में चढ़ ही गये। उसी डिब्बे में बहुत से सिपाही भी चढ़ गये। आपने उनको देखा जब गाड़ी अटनी स्टेशन पर ठहरने लगी थी उस समय आप गाड़ी से कूदकर भाग गये। पुलिस वाले निराश हाथ मलते रह गये। वहां से आप जालन्धर पहुंचे। उस समय "ग़दर पार्टी" के प्रमुख कार्यकर्त्ता भाई प्यारसिंह को होशियारपुर के जेलदार चन्दासिंह ने पकड़वा दिया। आपने अपने साथियों से मिलकर निश्चय किया कि इन देश-द्रोहियों को दण्ड देना चाहिये। आपने बूटासिंह और निबन्दसिंह को साथ लेकर चन्दासिंह को उसके घर में घेरकर मार डाला। उसी समय अमृतसर के एक पुल को बम के गोले से उड़ा दिया गया। आप से पुलिस वाले बहुत डरते थे। पुलिस वाले इन्हें देखकर प्रायः भाग जाया करते थे। आपका शरीर बहुत सुदृढ़ था। आपने अमेरिका में दौड़ने का अच्छा अभ्यास किया था। एक बार घुड़सवार पुलिस ने आपका पीछा किया। आप साठ मील तक भागते चले गये, कहीं ठहरे ही नहीं। इतना परिश्रम करने के कारण आप रोगी हो गये। फिर आप अपने घर चले गये, बहुत दिनों तक वहीं विश्राम करते रहे। लाहौर षड्यन्त्र के अभियोग के कारण धर-पकड़ चल रही थी। इनके पीछे पुलिस लगी रहती थी। इनका स्वास्थ्य अच्छा न था अतः विवश होकर घर पर ही ठहरना पड़ा

ग्रौर वहां रहना पड़ा। इनका एक सम्बन्धी घर पर मिलने ग्राया ग्रौर उसने इन्हें ग्रपने घर ले जाने का बहुत प्रेम-पूर्वक ग्राग्रह किया। इन्होंने निषेध भी किया किन्तु वह किसी प्रकार भी नहीं माना ग्रौर ग्राग्रह-पूर्वक ग्रपने घर ले गया। यह कहने लगा कि मैं ग्रापकी सेवा करूंगा, ग्रापको कोई कष्ट नहीं होने दूंगा। वे उनका ग्राग्रह नहीं टाल सके। उस धूर्त्त ने विश्वासघात किया, ग्रपने घर पर उनको ठहरा कर पुलिस को सूचना दे दी। चारों ग्रोर से सशस्त्र पुलिस ने घर को घेर लिया। ऐसे ही धूर्त्तों के कारण भारत दीर्घकाल तक पराधीन रहा। पुलिस घर के ग्रन्दर घुस ग्राई। ग्राप एक छोटी सी कोठड़ी में थे, द्वार खुलते ही सन्मुख पुलिस को खड़ा देखा तो ग्राप खिलखिलाकर हँस पड़े। ग्रौर ग्रपने सम्बन्धी से कहने लगे—"भाई पुलिस को ही बुलाना था तो मुझे सर्वथा खाली हाथ क्यों छोड़ दिया, पिस्तौल, रिवालवर नहीं तो एक लाठी या डंडा ही रहने देते। एक वीर सैनिक की भांति लड़ता लड़ता प्राण तो दे सकता।" इस पर पुलिस ग्रफसर ने कहा—बड़े वीर बने फिरते हो? दूसरे सब लोगों को कायर समझते हो। ग्रापने हँसकर कहा—"इस समय मुझे निःशस्त्र समझ कर एक कोठरी में बन्द देखकर पकड़ने का साहस कर रहे हो। जरा बाहर निकलने दीजिये फिर देखूं कौन माई का लाल मुझे गिरफ्तार करता है। परन्तु इतना साहस उनमें कहां था जो उसे बाहर निकलने देकर उसका रणकौशल देखते। ग्राप को उस कोठड़ी से गिरफ्तार करके होशियारपुर भेज दिया गया। डिप्टी कमिश्नर ने ग्राप से एक घण्टा बातचीत की। वह ग्राप की योग्यता, वीरता ग्रौर धैर्य पर मुग्ध था। ग्रापके दर्शनों के लिए कचहरी के बाहर हजारों व्यक्तियों की भीड़ थी। ग्रापने डिप्टी कमिश्नर की ग्राज्ञा लेकर लोगों को कहा—"प्यारे भाइयो! ग्राज मेरी गिरफ्तारी से ग्राप लोग निराश न हों। हमारी मृत्यु से ग्राप घबरायें नहीं। हमारा बलिदान कभी व्यर्थ नहीं जायेगा। वह दिन शीघ्र ग्रा रहा कि हमारा देश विदेशियों के चंगुल से छूट कर स्वतन्त्र हो जावेगा।

वहाँ से ग्रापको लाहौर लाया गया। वहां लाहौर षड्यन्त्र का मुकद्दमा ग्रनेक व्यक्तियों पर चला। उसमें ग्रापको फांसी का दण्ड मिला। मृत्युदण्ड सुनकर ग्राप उछल पड़े ग्रौर कहने लगे—'हे परमात्मन्! तुझे कोटिशः धन्यवाद है कि तूने देश के लिए प्राणों की ग्राहुति देने का ग्रवसर प्रदान किया। मृत्युदण्ड की सजा सुनने के पश्चात् फांसी लगने के दिन तक ग्रापका ११ पौंड भार बढ़ गया एक दिन प्रातःकाल ग्रापको फांसी पर लटका दिया गया। यह ऐसा देश-भक्त वीर था कि इसकी वीरता की कहानियां पंजाब में लाखों मनुष्यों की जिह्वा पर हैं। वह देश के लिए बलि देकर सदा के लिए ग्रमर हो गये।

डाक्टर मथुरासिंह

डा० मथुरासिंह का जन्म झेलम जिले के ढंढियाल नामक गांव में सन् १८८३ ई० में हुवा था। ग्रापके पिता का नाम सरदार हरिसिंह था। ग्राप ग्राम में शिक्षा पाकर चकवाल के हाई स्कूल में प्रविष्ट हो गये। ग्राप कुशाग्रबुद्धि थे, शीघ्र ही मैट्रिक पास करके रावलपिण्डी ग्राकर डाक्टरी की उच्च शिक्षा पाने के लिए सन् १६१३ में ग्रमरीका को चल दिये। धन की कमी होने से ग्रापको सङ्घाई में ही रुकना पड़ा। वहीं पर डाक्टरी का कार्य करने लगे किन्तु ग्रापको कैनेडा जाना था ग्रतः पर्याप्त रुपया होने पर कैनेडा चले गये। वहां पहुँचने पर ग्राप तथा ग्रापके एक साथी को छोड़कर किसी को जहाज से उतरने की ग्राज्ञा नहीं मिली। पहले तो ग्रापने उतरना उचित नहीं समझा। ग्राप बहुत ग्राग्रह करने पर उतरे। इस ग्रपमान से ग्रापको बड़ा दुःख हुग्रा। इमीग्रेशन वालों में

झगड़ा हो गया। केस अदालत में गया। किन्तु जीत गोरों की हुई। अमरीका में रहते हुए आपको अनेक कष्ट अनुभव हुए। पद-पद पर अपमान सहना पड़ता था। इन सब बातों को देखकर आप पंजाब लौट आये। आपके पंजाब पहुँचने पर लोगों का संगठन खूब जोर से बढ़ने लगा। आपने बम बनाने का कार्य अपने ऊपर लेकर बम बनाने के कार्य में जुट गये। इसमें आप थे भी सिद्धहस्त। सारे पंजाब में १९१४ की गदर की तैयारी जोरों से हो रही थी। यह योजना विफल होने के कारण सारे देश में धर पकड़ होने लगी, किन्तु मथुरासिंह नहीं पकड़े जा सके। एकबार एक सरकारी गुप्तचर ने आपके पास सन्देश भेजा, "यदि आप सरकारी साक्षी बन जायें तो तुम्हें क्षमा के साथ कुछ पुरस्कार भी दिया जावेगा।" आपने इस पुरस्कार को ठुकरा दिया। एक बार एक गुप्तचर आफिसर आपसे मिलने आया। वह आपको अवसर पाकर गिरफ्तार करना चाहता था, किन्तु डाक्टर साहब की निर्भीकता के कारण अकेले यह साहस नहीं कर सका। उसने डाक्टर जी से कहा कि सरकार ने आप को क्षमा प्रदान की है तथा पुरस्कार देने का बचन दिया है। मैं यही कहने के लिए आया हूँ। आप यथार्थ रहस्य को समझ गये और उससे पिण्ड छुड़ाकर काबुल को प्रस्थान कर गये। किन्तु बीच में ही वजीरस्तान के स्टेशन पर उन्हें पकड़ लिया गया। पुलिस वालों को घूंस देकर यहां से भी बच निकले और कोहाट को चल पड़े। ट्रेन में पुलिस थी, स्टेशनों पर पुलिस थी। सर्वत्र पुलिस का पहरा था। पुलिस को पहले ही से सब पता था। मार्ग में ट्रेन की तलाशी ली गई, किन्तु आप पकड़े न जा सके। वहां से कुछ दिन पश्चात् वे काबुल पहुंच गये। काबुल में थोड़े से समय में ही आप खूब प्रसिद्ध हो गये। आपकी योग्यता देखकर आपको काबुल में मेडिकल आफीसर नियुक्त कर दिया गया। काबुल में उस समय भारत की अस्थायी सरकार बनी हुई थी, जो जर्मनी में बनी कमेटी से सहयोग करती हुई भारत की स्वतन्त्रता के प्रयत्न में लगी हुई थी। डाक्टर साहब भी इस कार्य में जुट गये। उसके सम्बन्ध में आपको जर्मनी जाना पड़ा। आप कुछ दिनों के पश्चात् फिर काबुल लौट आये। ईराक तक तो आपको कई बार जाना पड़ा। इन देशों के भारतीय क्रान्तिकारियों ने रूस के जार्ज के पास एक पत्र भारत के विप्लव में सहायता देने के लिए भेजने का निश्चय किया। इसी उद्देश्य से कुछ व्यक्तियों के साथ ऊंटों पर आप चल पड़े। इधर एक नीच भारत सरकार को सब समाचार भेजता रहता था। भारत सरकार को जब पता चला तो उसने इनका पीछा किया। ताशकन्द में आप पहुँचते-पहुँचते गिरफ्तार हो गये। फारस लाकर आप सबकी पहचान कराई गई। आप पर मुकमद्दमा चला। बहुत लोगों ने प्रयत्न किया कि आपको भारत सरकार को न सौंपा जाये। किन्तु अन्त में आप भारत सरकार को सौंप दिये गये। आप भारत लाये गये। अंग्रेजी अदालत में अभियोग, लाहौर षड्यन्त्र द्वितीय चलाकर फांसी का दण्ड दे दिया गया। आप फांसी का हुक्म सुनकर बड़े प्रसन्न हुए। आपके छोटे भाई मुलाकात करने आये। आपने पूछा—"क्यों भाई! मेरे मरने की आपको चिन्ता व दुःख तो नहीं?" बालक ने रो दिया। आपने उससे कहा—"यह समय आनन्द मनाने का है, क्या सिख लोग भी देश के लिए मरते समय रोया करते हैं? मुझे तो अत्यन्त आनन्द है। मैं भारतीय विप्लव को सफल बनाने के लिए जो मुझसे होसका, कर चुका हूं। मैं बड़ी शान्ति से फांसी के तख्ते पर प्राण त्याग करूँगा।" सन् १९१७ ई० की १७ मार्च को आपको फांसी होनी थी। उस दिन आप विशेष रूप से प्रसन्न थे। आपकी वीरता और उस समय की प्रसन्नता देखकर जेल के अधिकारी आश्चर्य में पड़ गये। आपको निश्चित समय पर फांसी दे दी गई। वह देश का होनहार सपूत अपने कुल को चार चान्द लगाकर देश पर हँसते-हँसते प्राणों की बलि चढ़ा गया।

भाई भागसिंह

भागसिंह का जन्म भिक्खोंविंड नामक ग्राम जिला लाहौर में सरदार नारायणसिंह जी के घर सन् १८७८ में हुवा था। आपकी माता जी का नाम मानकुँवारी था। आप २० वर्ष की आयु तक घर पर ही रहकर खेती-बाड़ी का कार्य करते रहे। इसी समय कुछ गुरुमुखी का ज्ञान भी कर लिया। यही आप की शिक्षा थी। इनका अधिकांश समय खेल-कूद तथा मस्ती में गुजरा। आप २० वर्ष की आयु में घर पर मन न लगने से फौज में भरती हो गये किन्तु आप स्वतन्त्र स्वाभाव वाले, सेना के सख्त अनुशासन का कैसे पालन करते ? पांच वर्ष नौकरी में जैसे तैसे बिताये। इसी कारण आप साधारण सैनिक ही रहे। आप नौकरी छोड़कर घर आये और फिर चीन चले गये और वहां पुलिस में भर्ती हो गये। हांगकांग में ढाई वर्ष रहकर जमादार के साथ बिगड़ जाने के कारण आप संघाई पहुँच गये। वहां म्युनिसिपैलिटी में भर्ती होगये। वहां से भी कुछ दिन पश्चात् मन उकता गया, फिर आप कैनेडा चले गये वहाँ जाकर सार्वजनिक जीवन में प्रवेश किया। अमेरिका में गोरों का भारतीयों के साथ बुरा व्यवहार आपको बहुत खटकता था। कैनेडा में भाई बलवन्तसिंह आदि के साथ घनिष्ठ प्रेम हो गया। वहां पर भारतीयों की अवस्था सुधारने के लिए उनका संगठन करके एक गुरुद्वारे की स्थापना थी। हिन्दुओं के मुर्दे जलाने के लिए थोड़ी-सी भूमि खरीदी थी। गोरे लोग हिन्दुओं को अपने मुर्दों को जलाने नहीं देते थे। विवश होकर मुर्दे गाड़ने पड़ते थे। इसका सब हिन्दुओं को दुःख था, यह तो दूर हो गया। गोरों ने निश्चय किया कि भारतीयों की संख्या अमरीका (कैनेडा) में बढ़ने नहीं देनी चाहिए। अतः भारतीयों को हंडूरास नामक द्वीप में भेजने का यत्न करने लगे। एक नया कानून बनाया गया। जिसके अनुसार कोई नया भारतीय कैनेडा में नहीं उतर सकता था। इस कानून के विरुद्ध सबने मिलकर आवाज उठाई। इधर हंडूरास द्वीप को देखने के लिए दो अपने आदमी भेजे, इन्होंने लौटकर सूचना दी कि हंडूराम द्वीप बहुत ही बुरा है। वहाँ का जलवायु स्वास्थ्य के लिए हानिकर है अतः उस द्वीप में भारतीयों का जाना रुक गया। गोरे अपनी चाल न चलने के कारण बहुत बिगड़े। दूसरा कोई उपाय सोचने लगे। भाई भागसिंह आदि ने विचार कर निश्चय किया कि इस कानून के लिए कोई प्रभावशाली कार्य करना चाहिये। अतः आप लोग अपने परिवार वालों को लेने के लिए भारत को चल पड़े। भाई भागसिंह अपने दो मित्रों सहित भारत पहुंच गये। आपकी स्त्री मर चुकी थी अतः आपने पुनः एक पेशावरी स्त्री से विहा कर लिया और उसे साथ लेकर अमेरिका चल पड़े। हाँगकांग आकर पता चला कि अमेरिका जाने के लिए टिकट न मिल सकेगा। बहुत प्रयत्न करने पर आपको वहीं पर्याप्त समय ठहरना पड़ा। वहीं पर आपके पुत्र ने जन्म लिया जिसका नाम जोगेन्द्र रखा गया। बहुत यत्न के पश्चात् बङ्कोवर पहुँचने पर बहुत अड़चनों के पश्चात् आपको जहाज से उतरने दिया गया। गोरों के दुर्व्यवहार से आप पर यही प्रभाव पड़ा कि जब तक भारत स्वतन्त्र नहीं होगा, तब तक हम दास भारतीयों को इसी प्रकार अपमान सहना पड़ेगा। भारतीयों में जागृति पैदा करने के लिए 'गदर' नामक पत्र अमेरिका में निकालना आरम्भ हुवा। इस कार्य में भागसिंह ने इस पत्र की उन्नति के लिए तन, मन, धन से खूब जी खोलकर सहायता की। सब साथियों के सहयोग से कैनेडा में इस पत्र की खूब खपत होने लगी। इमिग्रेशन बालों से पहले ही झगड़ा चल रहा था कि "कामा गाता मारू" जहाज कैनेडा आ पहुँचा। गोरों ने इसे घाट पर न उतरने दिया। भागसिंह ने एक नया घाट खरीद लिया। इस प्रकार वह जहाज इस घाट पर लगा। जब गोरों की यह चाल भी विफल हो गई तो उन्होंने जहाज के स्वामी को भड़काया कि जहाज का

बिचारे भारतीय बड़ी आपत्तियों में फंसे थे, उनके पास कुछ सामान
किराया एक साथ सारा ले लें। बिचारे भारतीय बड़ी लिए रुपये इकट्ठे कर जहाज का चार्टर अपने नाम
ही था, रुपया नहीं। इस संकट को दूर करने के लिए रुपये इकट्ठे कर जहाज का चार्टर अपने नाम
लिखा लिया। इसके पश्चात् भागसिंह जी अपने साथियों सहित इसी विषय पर विचार करने के लिए
ब्रिटिश कोलम्बिया गये, वहां पर आप साथियों सहित गिरफ्तार करके जेल में डाल दिये गये, किन्तु
पीछे छोड़ दिये गये। उस समय जहाज वापस जाने को तैयार था। बहुत से लोगों के पास खाने तक
के लिये रुपया नहीं था। आपने आते ही उन लोगों की सहायतादि का पूरा प्रबन्ध किया। जहाज की
सहायता आदि करने से गोरे आपसे चिढ़ने लगे। गोरों ने कई बार आपको गोली से मारने की धमकी
दी। किन्तु आप इन बन्दर घुड़कियों से डरने वाले न थे। यों ही हँसकर टाल देते थे और साहस
पूर्वक अपना कार्य करते रहे। गोरों ने बेलासिंह नाम के नीच सिख को अपने साथ मिला लिया। उसे
प्रलोभन देकर भागसिंह को खतम कर देने के लिए तैयार किया। एक दिन भागसिंह गुरुद्वारे में ग्रन्थ
साहब का पाठ कर रहे थे। सब कार्य समाप्त कर वे मत्था टेकने के लिए झुके तो बेलासिंह ने गोली
चलाई। गोली पीठ को पार करती हुई फेफड़ों में आ रुकी। घातक को पकड़ने का प्रयत्न करने में
भाई वतनसिंह भी मारे गये। भागसिंह अस्पताल में लाये गये वहां पर औपरेशन हुवा। आप ऐसी
अवस्था में भी होश में रहे, लोगों को उत्साह देते रहे। उस समय भी आप प्रसन्नवदन थे। जब
आप का लड़का आपके सम्मुख लाया गया तो आपने कहा—"यह लड़का मेरा नहीं वरन् जाति का है,
इसे दरबार में ले जाओ मेरे पास क्यों लाये हो।" अन्त समय आपने कहा—"मेरी इच्छा तो यह
थी कि स्वतन्त्रता की लड़ाई में आमने-सामने दो चार हाथ करके प्राण देता। किन्तु ईश्वर को यह
स्वीकार न था। इसमें मेरा क्या दोष है? खैर ईश्वर की यही इच्छा है।" ४४ वर्ष की आयु में
ही वे स्वर्ग सिधार गए। इस प्रकार एक वीरात्मा की देशद्रोही द्वारा मृत्यु हो गई। वह धूर्त सरकार
का वफादार नौकर होने के कारण छोड़ दिया गया। भारत राष्ट्र के अपमान को सहकर अपने देश-
वासियों की सेवा करते हुए इस वीर ने प्राण न्यौछावर कर दिए।

भाई वतनसिंह

आपने पटियाला राज्य में कुम्बवाल नामक ग्राम में भाई भगेलसिंह के घर जन्म लिया। आपको बचपन से गाय भैंस पालने का बड़ा शौक था। इसी कारण कैनेडा में लोग इन्हें गैयावाला वतनसिंह कहते थे। २२-२३ वर्ष की आयु तक घर पर रहकर फौज में भरती हो गये। आपके जीवन का अधिक समय बर्मा में बीता। फिर आप नौकरी छोड़कर घर आ गये। घर पर एक वर्ष रहे। मन न लगा, फिर हांगकांग चले गए। यहां पांच वर्ष पुलिस में गार्ड का कार्य करके कैनेडा पहुंच गये किन्तु वहां आपकी जान पहचान का कोई व्यक्ति न था। फिर आप वैङ्कोवर पहुंचकर गुरुद्वारे में पहुंच गए। कुछ दिन ठहरकर एक लकड़ी के कारखाने में अन्य सिक्खों के साथ कार्य करने लगे। भाई भागसिंह भी इसी कारखाने में कार्य करते थे। उनके सत्संग से प्रभावित होकर आप प्रतिदिन श्रद्धापूर्वक गुरुद्वारे में जाने लगे तथा वहां सब सेवा-कार्य भी करने लगे। आपको इसी कारण गुरुद्वारा कमेटी का मेम्बर बना लिया गया। गोरे लोगों की भारतीयों से अनबन रहती थी उन्होंने भारतीय नेताओं को समाप्त करने की योजना बनाई और एक नीच सिक्ख बेलासिंह को अपने साथ मिला लिया। एक दिन गुरु-द्वारे में जोरों से दीवान हो रहा था। सिक्ख गुरुओं की बलिदान की कहानी सुनकर सब में उत्साह और जीवन का संचार हो रहा था। दीवान समाप्त होते ही गोलियां चलनी आरम्भ हुईं। जब

लोगों ने देखा कि बेलासिंह नीच पिस्तौल ताने खड़ा है। उधर वीर भागसिंह इसकी गोली से घायल हुये पड़े हैं। वह नीच वतनसिंह को खोजकर मारना चाहता था किन्तु वतनसिंह अपने प्राणों की चिन्ता छोड़ हत्यारे को पकड़ने के लिए ललकार कर झपटा। उस नीच ने वतनसिंह पर गोली चला दी। गोली सीने पर लगकर पार हो गई। वीर का जोश शेर के समान चोट खाकर ही जागता है। वतनसिंह उस नीच को ओर लपके, दूसरी गोली लगी किन्तु वतनसिंह बढ़ते ही चले गये। अन्त में सात गोलियां लगने के पीछे अपने घातक की गर्दन जा पकड़ी। किन्तु अधिक खून निकलने के कारण शक्ति का ह्रास हो गया था। नीच बेलासिंह छुड़ाकर भाग गया। भाई वतनसिंह सर्वदार्थ गम्भीर निद्रा में सो गये। गुरुद्वारे में ही दो वीर शहीद हो गये। भाई वतनसिंह ने अपने एक देशभक्त भाई के लिए प्राण दिये यही इनका गौरव है। संसार में अपने लिए तो कौन नहीं मरता? किन्तु देश, जाति, धर्म के लिए जो मरता है वह अमर हो जाता है।

"जिन्दा है जो मर चुका इन्सान के लिए।
मरना भला न उसका जो अपने लिए जिए।।"

इस कवि के कथनानुसार भाई वतनसिंह की मृत्यु उसे अमर कर गई।

बलवन्तसिंह

इस वीर का जन्म गांव खुदपुर जिला जालन्धर में बुद्धसिंह के यहां १८८२ में हुवा। इनका परिवार बड़ा धनाढ्य था। सभी लोग आदर की दृष्टि से देखते थे। बलवन्तसिंह मिडल पास करने से पहले ही पढ़ाई छोड़कर सेना में भरती हो गये। वहां सन्त कर्मसिंह की संगति से आप पर अच्छा प्रभाव पड़ा। वे बड़े ईशभक्त थे। दस वर्ष नौकरी करके उसे छोड़कर विदेश जाने का विचार किया। १९०५ में कैनेडा पहुंच गये। वहां भागसिंह के साथ रहते थे, उनके दाहिने हाथ समझे जाते थे। आप सबने मिलकर गुरुद्वारा बनाया। यह विदेश में संगठन का स्थान था। इस प्रकार अनेक स्थानों पर गुरुद्वारे बनवाये। गोरों के अत्याचार का प्रतिशोध करने के लिए संगठनार्थ कार्य किया। मुर्दों को जलाने के लिए इन्होंने भूमि खरीदकर व्यवस्था की। आप ईश्वर के बड़े भक्त थे। ईश्वरभक्ति और देशभक्ति दोनों का ही आप प्रचार करते थे। आपको ईश्वरभक्त होने के कारण ग्रन्थी बनाया गया। आप बहुत आग्रह करने पर ग्रन्थी बने। भागसिंह के साथ ही सुन्दरसिंह को लेकर आप अपने परिवार को अमरीका में लाने के लिए भारत आये और परिवार को लेकर फिर कैनेडा को चले गये। बड़ी कठिनाई से बैङ्कोवर पहुँचे। वहां इन्हें तो उतरने की आज्ञा मिल गई किन्तु परिवार वालों को उतरने की आज्ञा नहीं मिली। अन्त में ओटावा से आज्ञा न आने तक जमानत पर परिवार वाले उतरे किन्तु परिवार वालों को कैनेडा में रहने की आज्ञा न मिली। इमिग्रेशन विभाग के कर्मचारी परिवार वालों को लेने के लिए आये। इस पर सिक्ख झगड़ने को तैयार हो गये। अतः गोरों को विवश हो लौट जाना पड़ा। कैनेडा में जो अत्याचार भारतीयों पर होते थे उन्हें सुनाने और अपने अधिकारों की मांग करने के लिए एक डेपुटेशन भेजा गया। उस डेपुटेशन ने दो वर्ष तक भारत से इङ्गलैंड तक का चक्कर लगाया किन्तु उस डेपुटेशन की किसी ने सुनी और सर ओडायर ने तो उसे अमेरिका की गदर पार्टी का समझा। डेपुटेशन का कोई परिणाम नहीं हुआ। सिक्खों ने अपनी कष्ट कहानी सब देशों के सम्मुख रखी। वैङ्कोवर लौटने पर बलवन्तसिंह ने एक बड़ा जोशीला भाषण दिया। वह उनका ऐतिहासिक भाषण था। उसमें उन्होंने बताया कि हमारी इस विवशता का एकमात्र कारण

हमारी पराधीनता है । हम स्वतन्त्र होकर ही इस अपमान से मुक्त हो सकते हैं । "कोमांगातामारू" जहाज के पहुंचने पर बलवन्तसिंह भागसिंह के साथ मिलकर अमेरिका सरकार से लड़े । इससे ये गोरों की आंखों में कांटे के समान खटकने लगे । कैनेडा वालों ने जितने दिन जहाज वहां ठहरा था उतने दिन ऐसी नीचता का व्यवहार किया जिसका वर्णन करना कठिन है । गोरों की नीचता के कारण बलवन्तसिंह के दो साथी बेलासिंह द्वारा गोली से मारे गये । बेलासिंह को कोई दण्ड नहीं दिया गया । गोरों का अत्याचार पराकाष्ठा पर पहुंचा हुआ था । सन् १९१४ में यूरोपीय महायुद्ध प्रारम्भ हो गया । उस समय बलवन्तसिंह भारत लौटने के लिए चल पड़ा किन्तु संघाई पहुंचकर आप वहीं रुक गये । वहां से आप बैङ्काक आये । वहां पर विद्रोह का पूर्ण प्रयत्न हो रहा था । आपने उस में भाग लिया किन्तु आप उस समय रोगी हो गये अतः कार्य छोड़कर अस्पताल पहुंचे । वहां फोड़े का ओपरेशन हुआ । अभी आप अच्छे नहीं हुये थे कि श्याम देश की पुलिस ने आपको गिरफ्तार कर लिया । आप जमानत पर भी नहीं छूट सके, आपको भारत सरकार को सौंप दिया गया । बलवन्तसिंह को सिंघापुर लाया गया । आपको षड़यन्त्र का भेद खोलने के लिये बहुत प्रलोभन दिये गये । लोभ से कार्य चलता न देखकर भय भी दिखाया गया किन्तु आप जैसे वीर कब पिघलने वाले थे । फिर आपको लाहौर षड्यन्त्र (द्वितीय) के मुकद्दमे में सम्मिलित करके मृत्युदण्ड दे दिया गया । २४ दिन तक मुकद्दमे का ढोंग किया गया । आपको कालकोठरी में बन्द कर दिया गया । किसी कैदी ने शरारत की, थोड़ी सी अफीम आपकी पगड़ी में बांध दी । जेल अधिकारियों ने आप पर तलाशी में अफीम मिलने पर आत्मघात करने का अभियोग लगाया । किन्तु फिर भेद खुल गया और अपराधी का पता चल गया । उसे सजा मिली । उस समय बलवन्तसिंह ने जेलर से कहा—"मृत्यु सामने खड़ी है उसके आलिङ्गन के लिए मैं तैयार हो चुका हूं । आत्महत्या कर मैं सुन्दरी को कुरूपा नहीं बनाऊंगा । विद्रोह के अपराध में मृत्युदण्ड पाने में मुझे गर्व है । फांसी के तख्ते पर भी वीरतापूर्वक प्राण दूंगा ।" बलवन्तसिंह फांसी के दिन प्रातःकाल उठे, ईश्वर वन्दना की, भारतमाता को अन्तिम नमस्कार किया, स्वतन्त्रता का गान गाया और हंसते हंसते फांसी के तख्ते पर झूल गये और अमर हो गए । इनको चुपचाप फांसी दे दी गई । इनकी धर्मपत्नी इनसे मिलने के लिए आई तो जेल अधिकारियों ने बताया कि उनको तो कल प्रातः फांसी हो गई । उनकी धर्मपत्नी कलेजा थामकर रह गई । बेचारी पर वज्रपात हो गया । वह अन्तिम दर्शन भी न कर सकी । वीर बलवन्तसिंह देश की स्वतन्त्रता को ही ईश्वर की सच्ची भक्ति समझते थे । इसी के लिए अपना सर्वस्व न्यौछावर कर अपना कर्त्तव्य पूरा कर गये ।

तरुणवीर ब्रह्मचारी दलीपसिंह

वीर दलीपसिंह का जन्म धमियां कलां जि० होश्यारपुर में हुआ था । इसके पिता का नाम श्री लालसिंह था । कुछ बड़ा होने पर स्कूल में पढ़ने लगा । बालक होनहार था, उसकी कुशलता का ज्ञान थोड़े ही दिनों में हो गया । अपने सद्गुणों के कारण वह शीघ्र ही सर्वप्रिय बन गया । वह सबसे इच्छानुसार कार्य करवाने में सिद्धहस्त था । उसकी कार्यकुशलता का ज्ञान सबको शीघ्र ही हो गया । "होनहार बिरवान के होत चीकने पात" लोकोक्ति के अनुसार वह छोटी सी आयु में ही वीर नेताओं के समान प्रतीत होता था ।

सन् १९२२ की बात है, बालक दलीपसिंह के बाल्यावस्था के खेल छूटने भी न पाए थे कि उसके कोमल हृदय पर एक गहरी चोट लगी । ननकाना साहब की दुर्घटना तथा सिक्खों पर किए गए

अत्याचारों ने उस बालक के हृदय को एकदम दुःखित तथा विचलित कर दिया। १९२३ ई० में लाड़-प्यार से पाले गए उस सुन्दर होनहार बालक दलीप ने घरबार पर लात मारकर क्रांतिकारी दल में प्रवेश किया। इसके पश्चात् आपने क्या-क्या किया उसके विषय में अदालत में निर्णय सुनाते समय आपके सम्बन्ध में कहे गए जज के शब्द ही आपकी प्रशंसा के लिए पर्याप्त हैं। आपके अदालत के बयान तथा आपकी सुन्दर तेजोमय आकृति प्रकट करती थी कि आप एक होनहार पवित्र ब्रह्मचारी, उच्च चरित्र के सदाचारी युवक थे। एक दिन सन्तासिंह कंसानकन्दी नामक स्थान पर कुछ पर्चे बांटने जा रहे थे कि एकाएक पुलिस ने घेरा डाल लिया। १२ अक्टूबर १९२३ ई० के दिन तरुणवीर ब्रह्मचारी दलीपसिंह जंजीरों से जकड़कर मुलतान जेल लाये गये। पुलिस ने इन्हें बालक समझकर डरा धमकाकर कुछ बातें जाननी चाहीं किन्तु जब उनके डराने का यत्न विफल होगया तो निराश हो क्रोध में आकर अत्याचारों का बाजार गर्म हुआ। मार पर मार पड़ने लगी। कभी-कभी बीच-बीच में लोभ दिया गया, किन्तु सब शस्त्र इस वीर ने कुण्ठित कर दिये। मौन धारण करके धैर्य से सब मार-पीट और अत्याचार सहन कर लिए। पुलिस को निराश और हताश होना पड़ा। दलीपसिंह सुशील तथा सरल प्रकृति के थे। इनकी आकृति सदाचार के कारण अत्यन्त सुन्दर आकर्षक और भव्य थी। मुखमण्डल ब्रह्मचर्य के तेज से चमक रहा था। आपकी भोली सुन्दर और तेजोमय आकृति, बाल्यावस्था, सत्यता, सदाचार और सरलता पर सैशन जज अंग्रेज मि० टेप मन्त्र-मुग्ध था। वह यह नहीं चाहता था कि इस होनहार युवक को मृत्युदण्ड दिया जावे किन्तु सभी गवाहों की गवाही आपके विरुद्ध सुनकर जज बहुत झुञ्झलाते थे। सब प्रकार से यही चेष्टा करते थे कि उन्हें दलीपसिंह के विरुद्ध कुछ न लिखना पड़े। कई दिन वे खींचातानी करते रहे। तब एक दिन दलीपसिंह हाथ जोड़कर जज महोदय के सामने जाकर खड़े हो गये और प्रार्थना की कि इस कृपादृष्टि के लिए मैं बहुत धन्यवाद देता हूं। किन्तु कृपा करके मेरा वक्तव्य पहले लिख लेवें। मैंने यह सभी कार्य किये हैं जो गवाहों ने गवाही दी है और यदि आज छूट जाऊं तो फिर यही सब कार्य करूंगा। आप मुझे जीवित रखने के लिए क्यों लालायित हो रहे हैं? मैं तो फांसी पर लटककर अपने प्राण देना चाहता हूं। उसका कारण यह है कि मुझे ईश्वर की कृपा से मानव देह जैसा दुर्लभ पदार्थ मिला है। इसे मैंने अभी तक किसी भी प्रकार अपवित्र नहीं किया है और इच्छा है कि आज इसी भांति इस पवित्र देह को माता के चरणों में भेंट कर दूं। कौन कह सकता है कि कुछ दिन और जीवित रहूं तो यह पवित्रता स्थिर रह सकेगी वा नहीं? इसके पश्चात् इस बलिदान का सारा महत्त्व और सौन्दर्य ही जाता रहेगा।

जज विस्मित होकर उसके मुख की ओर ताकने लगा। वह मन में विचारने लगा—"यह कैसा विचित्र बालक है? सारा संसार तो मृत्यु से बचने के लिए लाखों प्रयत्न करता है किन्तु यह उस कालाग्नि में निर्भयता से कूदना चाहता है। अभी यह बालक है संसार की गति को नहीं जानता। बहकाने से ऐसे कार्यों में रत हो गया है।" जज ने फिर कहा—"दलीप मैं तुम्हें फिर एक अवसर देता हूं। अपने वक्तव्य पर पुनः विचार करलो। सम्भव है तुमने किसी आवेश में आकर या अज्ञान के कारण ऐसा किया है। व्यर्थ मरना अच्छा नहीं।" किन्तु दलीपसिंह उसी वक्तव्य पर डटा रहा। अपने निश्चय को नहीं बदला। फांसी का दण्ड सुना दिया गया। जज विवश और दुःखी था। फांसी

के दिन हंसते-हंसते ईश्वर का स्मरण करते हुए वह पवित्र वीर फांसी के तख्ते पर झूलकर अमर होगया। इस नपुंसक युग में वह तरुण ब्रह्मचारी अपने पवित्र दिव्य जीवन की ज्योति दिखाकर आदर्श साहस, अदम्य उत्साह, उच्च लग्न और अपूर्व कार्यकुशलता की १७ वर्ष की छोटी सी अवस्था में अमिट छाप छोड़कर संसार से चलता बना। भारत माता आप समान वीर सदाचारी सुपुत्रों के पवित्र बलिदान से ही दासता की बेड़ियों से मुक्त हुई है। भारत के होनहार बालक अपने जीवन को आपका अनुकरण कर सफल बनायें। यही इच्छा है।

बन्तासिंह धामियां

श्री बन्तासिंह धामियां कलां के निवासी थे। आपका जन्म सन् १९१० ई० में हुआ था। ये बाल्यकाल से ही नटखट थे, खेलने-कूदने में सबसे आगे रहते थे। इनके उत्पात से मोहल्ले वाले सभी तंग रहते थे। पांच-चार वर्ष अपने ग्राम में पढ़ने गये किन्तु पढ़ने में रुचि न होने से कुछ ऐसे ही पढ़े। कुछ बड़े होकर सेना में भरती हो गये और तीन वर्ष ५५ नं० पलटन में कार्य करते रहे। नौकरी में भी मन नहीं लगा। इसे छोड़कर घर पर आकर रहने लगे। व्यायाम करना, अच्छा खाना, मस्त रहना यही आपका कार्य था। शरीर बहुत बलवान् था। दौड़ने में अत्यन्त दक्ष थे। शरीर मोटा न होने पर भी अपार शक्ति, साहस और वीरता से भरा हुआ था। आप बब्बर अकाली दल में सम्मिलित होकर तत्परता से कार्य करने लगे। आपकी यह धारणा थी कि पुराने पापों का प्रायश्चित केवल निज प्रणोत्सर्ग करने से ही हो सकता है। भारत यदि स्वतन्त्र न हुआ तो जीना व्यर्थ है और ऐसे जीवन पर धिक्कार है। इनका रक्त जोश के कारण खौलता था। शस्त्र के लिए धन चाहिए था। अत: इनके दल ने धन के लिए डाके डाले। बन्तासिंह ने इन में पूरा भाग लिया। १९२३ की ३ मार्च को इनके दल ने जलमेर नामक स्टेशन मास्टर के घर डाका डाला। उस समय इनके दल के एक पैशाचिक प्रकृति के व्यक्ति ने एक स्त्री को देखकर उस पर हाथ डालना चाहा। बन्तासिंह की दृष्टि उस पर पड़ी। आपने कहा—"माता अपने गहने आप स्वयं उतारकर दे देवें, हम आपको नहीं छुयेंगे। उस स्त्री ने रोकर उस नीच की नीचता की कथा सुनाई और तानें के ढंग पर कहा—"ऐसा ढोंग क्यों करते हो।" पहले तो बन्तासिंह समझा नहीं, किन्तु उसने सारे काण्ड की जांच की तो क्रोध से भड़ककर आग बबूला हो गया और गंडासा लेकर उस नीच को समाप्त करने के लिये चला। एक साथी ने आपका हाथ पकड़ लिया, बहुत प्रार्थना करने पर आप शान्त हुए। आपने कहा—"कि ऐसे नीच व्यक्ति ऐसे पवित्र आन्दोलन को बदनाम कर देंगे।" इस घटना के पश्चात् बन्तासिंह और भी तत्परता से कार्य करते रहे। कई एक देश-घातकों को मृत्युदण्ड दिया। १२ मार्च को एक पुलिस के पिट्ठू नम्बरदार बूटासिंह को जो राष्ट्रीय आन्दोलन को कुचलने के लिये सरकार की विशेष सहायता करता था उसका घर घेरकर यमलोक को पहुंचा दिया। पुलिस आपको गिरफ्तार करने के लिए यत्नशील थी। आपको गिरफ्तार कराने के लिए भारी पुरस्कार की घोषणा कर रखी थी। किन्तु आपको पकड़ना कोई सरल कार्य नहीं था। उस समय बब्बर अकालियों के नाम से पुलिस वाले बहुत डरते थे। अपने प्राणों को हथेली पर रखे बिना बन्तासिंह को कौन पकड़ सकता था। एक दिन घुड़सवार पुलिस से जङ्गल में भेंट होने पर आपने अकेले ही उन्हें युद्ध के लिए ललकारा। किन्तु वे डरकर यह कहकर चलते बने कि—"हम न तो आपको गिरफ्तार करना चाहते

हैं न मारना ही चाहते हैं, क्योंकि आप लोग न हों तो भला सरकार हमारा इतना आदर क्यों करे।"
वे इतने वीर थे कि एक दिन अकेले ही छावनी में घुसकर रिसाले के पहरेदार की राईफल और घोड़ा
छीनकर चलते बने। छावनी वाले भी देखते रह गए। इसी प्रकार आप पुलिस के फन्दों से बचते रहे
और बहुत दिनों तक पुलिस के साथ आंख मिचौनी खेलते रहे। अन्त में १२ दिसम्बर सन् १९२३ को
आप पुलिस के घेरे में आ गये। एक धूर्त जो इनका साथी बना हुआ था, जगत्सिंह नाम का था, वह
बन्तासिंह, ज्वालासिंह और वर्यामसिंह को अपने श्यामचुरासी गांव जो जालन्धर से १० वा ११ मील
है टिकाने ले गया। उन्हें घर पर टिकाकर पुलिस को खबर दे दी। थोड़ी देर में सशस्त्र पुलिस और
सेना के सिपाहियों ने गांव घेर लिया। जब इन्हें घिर जाने का पता लगा कि हम बुरी तरह से घिर
गए हैं तो वे एक चौबारे पर जा चढ़े। वह लड़ने की दृष्टि से अच्छा स्थान था। वहीं मोर्चा ले
लिया। दोनों ओर से खूब गोलियां चलीं और कई घंटों तक खूब गोलियों की वर्षा होती रही।
सैनिक तथा पुलिस वालों की गोलियां व्यर्थ जा रही थीं। मशीनगन तथा राईफलें इन वीरों का कुछ
न बिगाड़ सकीं। सामनें के मकान की छत पर भी मशीनगन लगाकर सैनिकों नें गोलियां चलाईं तब
भी इनका कुछ नहीं बिगड़ा। अफसरों ने फिर एक नीच उपाय का सहारा लिया, जिस मकान में ये
तीनों वीर थे उस पर पम्प से तेल छिड़ककर आग दे दी। मकान आग से धक-धक जलनें लगा।
अब तीनों ने जलते हुए मकान से निकलकर भागनें का प्रयत्न किया। ज्वालासिंह बुरी तरह से घायल
होकर गिर पड़ा। उसमें उठनें की शक्ति नहीं थी। बन्तासिंह मकान से निकलकर भागनें का प्रयत्न
करते हुए गोली लगने से बुरी तरह से जख्मी होकर गिर पड़े और गोली का उत्तर देनें में भी असमर्थ
हो गये, बन्तासिंह ने वर्यामसिंह को वेदनाभरे स्वर में कहा "वर्यामसिंह निकल भागो। बच सको
तो बच जाओ, यदि बचे रहोगे तो किसी न किसी दिन इनसे हमारा बदला लेना। मेरी एक प्रार्थना
है कि चलते हुए एक गोली रिवाल्वर से मेरे सिर पर वा छाती पर मार दो। मेरी इच्छा जीते जी
शत्रुओं के हाथ में आने की नहीं है।" वर्यामसिंह ने रिवाल्वर भरकर बन्तासिंह के हाथों में देकर
रुके हुए स्वर से कहा—"यह लो रिवाल्वर, जब आवश्यक समझो अपनें हाथ से गोली मार लेना।
मैं अपने सहोदर से प्यारे साथी पर गोली चलाने में असमर्थ हूं।" वर्यामसिंह नें बन्तासिंह को ऐसे
भयङ्कर समय में जब दनादन गोलियां बरस रही थीं अपनी छाती से लगाया और अन्तिम विदाई
लेकर भभकती हुई अग्नि में कूद पड़ा। वह वीर घर से निकल सिपाहियों पर गोली चलाता हुआ
बचकर निकल गया। बन्तासिंह कैसे शहीद हुए यह बात नहीं कही जा सकती। मकान धांय-धांय
जल रहा था। गोली भी बराबर चलती रहीं। उनके प्राण गोली से गये या आग से जलकर, इस
बात का पता नहीं चला। इन दोनों ने वीरगति प्राप्त की। वे शत्रु से लड़ते-लड़ते अमर हो गए।
इस वीर का लोहा शत्रु भी मानते हैं।

वर्यामसिंह धुग्गा

इस वीर का जन्म घुग्गा नाम के एक गांव में जि० होश्यारपुर में हुआ। आप बड़े सुदृढ़ और
शक्तिशाली व्यक्ति थे। शरीर सुगठित और बलवान् था। आपको विशेष शिक्षा नहीं प्राप्त हुई।
सैनिक जीवन से आपको प्रेम था। बड़े होकर सेना में भर्ती हो गए। सेना में भी आपकी वीरता
प्रसिद्ध थी। आप बहुत समय तक सेना में ही कार्य करते रहे। आपसे अफसर बड़ा प्रेम करते थे।

आपके घरवालों से एक व्यक्ति की शत्रुता थी। उसने इसके परिवार के व्यक्तियों को नष्ट कर डाला था। उस समय आप बालक थे। बालक होने से ये उस समय बदला न ले सके। किन्तु बदला लेने की इच्छा ने प्रबल उमङ्ग का रूप धारण किया और उस व्यग्रता को आप दबा न सके। आप सायं-काल की हाजरी देकर चल दिए। बीस मील दूरी पर पहुंच शत्रु को कत्ल कर अपना नाम घोषित कर प्रात:काल हाजरी से पहले ही पलटन में पहुंच गये। इसलिए आपके विरुद्ध कार्यवाही न हो सकी। फौज से नाम कटाकर घर पर आकर रहने लगे।

पीछे कुसङ्गति के कारण आप डाकू बन गए। दोआबे में आप प्रसिद्ध डकैत थे। आपकी धाक चारों ओर फैली हुई थी। पंजाब में क्रांतिकारी दल बनने पर आप इसमें सम्मिलित हो गये। बन्तासिंह के साथ मिलकर सब कार्यों में योग देते रहे। आप में बन्तासिंह की संगति से देशभक्ति के भावों की जागृति हुई। आपकी शिक्षा तो नाममात्र की थी किन्तु आप भावुक थे और बुद्धि तीव्र थी। इसलिए देशभक्ति का गहरा रङ्ग शीघ्र चढ़ गया। बन्तासिंह के कारण आपके जीवन में आमूलचूल परिवर्तन हुआ। १२ दिसम्बर १९२३ ई० को बन्तासिंह के साथ मुण्डेर ग्राम में एक साथी के विश्वास-घात के कारण घिर गये। उस समय पर बन्तासिंह के विषय में लिखते हुए लिखा जा चुका है। मकान में आग लगने पर आप साहस करके घेरे से भाग निकले। उस समय जिन सैनिकों ने आपका पीछा किया उन में से कई आपकी गोली से मारे गये। शेष सिपाही डर के मारे उलटे ही लौटकर चले गये। आप बचकर लायलपुर जिले में चले गए। उधर एक सम्बन्धी के घर पर ठहरे हुए थे। उसी सम्बन्धी ने बाल्यकाल से आपका पालण-पोषण किया था। किन्तु लोभ और स्वार्थ मनुष्य की बुद्धि को नष्ट कर देता है। उस सम्बन्धी ने हथियार गांव के खेतों में रखवा दिये। वर्यामसिंह भोजन करने के पश्चात् शस्त्र लेने के लिए जंगल में शस्त्रों वाले स्थान की ओर चल दिया। वहां जब पहुंचा तो उस स्थान पर सेना आ चुकी थी। पुलिस सुपरिटेण्डेण्ट मि० डी० गेल आपको जिवित पकड़ना चाहते थे। आपके चारों तरफ सेना का घेरा था। यह देखकर आप सब ताड़ गये। आप एक स्थान पर खड़े विचार ही रहे थे कि क्या करूं? इतने में मि० डी० गेल ने जोर से कहा—"वर्यामसिंह आत्मसमर्पण कर दो।" वर्यामसिंह ने कहा यदि कुछ साहस है तो एक बार शस्त्र ले लेने दो, फिर दो-दो हाथ ही हो जावें। मि० डी० गेल ने अवसर पाकर पीछे से पकड़ लिया। वर्यामसिंह ने अपने हाथ छुड़ाकर अपनी कृपाण से उसकी भुजाओं को बुरी तरह घायल करके उसे भूमि पर गिरा दिया। उसे जीवित पकड़ना चाहते थे किन्तु उसके हाथ में कृपाण देखकर किसी का उसके पास जाने का भी साहस नहीं हुआ। दो चार सिपाही पकड़ने के लिये आगे बढ़े घायल होकर पीछे हटना पड़ा। जब वह किसी प्रकार वश में आता दिखाई न दिया तो मि० डी० गेल की आज्ञा से चारों ओर से निहत्थे वर्यामसिंह पर गोलियों की वर्षा की गई। इस प्रकार वह वीर छाती पर गोलियां खाकर वीरगति को प्राप्त हुआ। उसका शव लायलपुर ले जाया गया। सहस्रों नर-नारी उसके दर्शनार्थ आये। उसकी वीरता की प्रशंसा आबाल-वृद्ध वनिता मुक्तकण्ठ से कर रहे थे। ऐसे ही वीरों की वीरता से राष्ट्र जीवित रहते हैं। भारत सन्तान में वीरता का सञ्चार करे तभी देश का उत्थान सम्भव है।

भाई मेवासिंह

श्री मेवासिंह का जन्म लोपो के ग्राम जि० अमृतसर में हुआ था। आप भी कैनेडा (अमेरिका)

में नौकरी के लिए पहुंच गये। वहां पर गदर पार्टी में आने जाने से आप पर भी देशभक्ति का रङ्ग चढ़ गया। भाई भागसिंह, बलवन्तसिंह आदि की सङ्गति से गुरुद्वारे में आने जाने लगे। उन दिनों विप्लव यज्ञ की तैयारी हो रही थी। स्थान स्थान पर भारतीय युवक रायफल और रिवालवर चलाने का अभ्यास किया करते थे। मेवासिंह ने भी १००) की गोलियां इस अभ्यास के लिए फूंक डाली थीं। नीच बेलासिंह वतनसिंह और भागसिंह को गोलियां मारकर छूटकर भाग गया था। वह तो गोरों से मिला हुआ था। अतः पकड़ा जाने पर भी अदालत से साफ छूट गया, इन्हीं दिनों मुकद्दमे में इमिग्रेशन विभाग के मुख्य अधिकारी मिस्टर हांपकिसन भी साक्षी देने आए। अचानक गोली चली और मिस्टर हांपकिसन सदा के लिए सो गये। निशाना अचूक बैठा। मेवासिंह के १००) सफल हो गए। जज लोग कुर्सियों के नीचे जा छिपे और वकील लोग गिरते पड़ते बाहर की ओर भाग चले। हांपकिसन को गिरता देखकर आपने अपना रिवाल्वर जज की मेज पर रखकर उच्च स्वर में कहा—"मैं भागना नहीं चाहता। आप लोग शान्त हों। मैं पागल नहीं हूं। मैं किसी और पर गोली नहीं चलाऊंगा। मेरा कार्य सफल हो गया।" इसके पश्चात् आपने पुलिस को पुकार कर चुपचाप आत्म-समर्पण कर दिया। यदि आप चाहते तो इस उथल-पुथल में भाग सकते थे, किन्तु उस वीर की इच्छा और जीने की नहीं थी। वह तो सात समुद्र पार कैनेडा की भूमि में अपने आत्मबलिदान से यही दिखलाना चाहता था कि पतित, पददलित, पराधीन देश भारत में प्राणों का कोई अंश भी शेष है। गिरफ्तारी के पश्चात् आपसे मुकद्दमे में हांपकिसन के मारने का कारण पूछा तो आपने पूछा—"क्या हांपकिसन सचमुच मर गया?" उत्तर में "हां" सुनकर आप बड़े जोर से प्रसन्न होकर हंस पड़े। आपने कहा—"आज मुझे सचमुच आनन्द हुआ है। पूछने पर आपने कहा—"हांपकिसन को मैंने जान बूझकर मारा है। यह देश और धर्म के अपमान का बदला लिया है और हमारे दो अमूल्य रत्न भागसिंह और वतनसिंह की हत्या का बदला है। मैं तो मिस्टर रीड (हांपकिसन के दूसरे साथी) को भी मारने के विचार से आया था परन्तु वह यहां न होने से बच गया।" हांपकिसन की पत्नी ने अपने पति की हत्या के उपर्युक्त समाचार को सुनकर कहा—"जिस व्यक्ति ने मेरे पति को भरी कचहरी में गोली से मारकर धैर्य के साथ आत्मसमर्पण किया उस वीर के मैं दर्शन करना चाहती हूं।" इस घटना के पश्चात् कैनेडा में भारतीयों को किसी ने घृणित शब्दों से सम्बोधित नहीं किया। फांसी के दिन इस तपस्वी के अन्तिम दर्शन के लिए कैनेडा निवासी भारतीयों की भीड़ का समुद्र टूट पड़ा। वीर के शव का जलूस बड़े ठाठ-बाट से निकाला गया। उसी समय वर्षा भी होने लगी किन्तु जलूस कम न हुआ। यहां तक कि अंग्रेज महिलाएं तक भी उसके साथ चलती ही रहीं। भाई मेवा-सिंह के अन्त्येष्टि संस्कार के पश्चात् एक सप्ताह तक गुरुद्वारे में उत्सव मनाया गया। इस वीर के बलिदान से कैनेडा के भारतीयों में जीवन आगया।

गन्धासिंह

गन्धासिंह का जन्म पञ्जाब में हुआ था। आप अमेरिका की गदर पार्टी के प्रमुख नेता थे। जब पार्टी की ओर से निश्चय किया गया कि भारत में विप्लव की तैयारी के लिए प्रचारार्थ अमेरिका से पार्टी के सदस्य जायें तो आप बजबज की दुर्घटना से पूर्व ही भारत आ गये थे। जब आपने देखा कि विदेश से आनेवाले प्रवासी भारतीयों को कलकत्ता में पकड़कर नजरबन्द किया जाता है तो आप

अपने एक मित्र के साथ हांगकांग गये। वहां आपने कलकत्ता आनेवाले भारतीय यात्रियों के टिकट बदलवाकर उनको बम्बई और मद्रास के टिकट दिलवाये। हांगकांग से लौटकर आप फिर भारत में विप्लव का प्रचार करने लगे। इसी समय २७ नवम्बर को घल खुर्द ग्राम जि० फिरोजपुर के पास से जाते हुए पुलिस ने इनके दल को घेर लिया। उसी समय तक पन्द्रह व्यक्तियों के ऐसे ही दल ने फिरोजपुर जिले के मोगा तहसील के खजाने को लूटने की योजना की थी। पुलिस को इसकी सूचना मिल गई थी। अतः वह योजना पूर्ण नहीं हो सकी और घल खुर्द में इसी कारण पुलिस से इनके दल की टक्कर हो गई। पुलिस थानेदार ने आपके एक साथी को गालियां देते हुए एक तमाचा मार दिया, इस पर युवक की आंखों में आंसू आगए। गन्धासिंह को इस पर इतना क्रोध आया कि उन्होंने उसी क्षण थानेदार को गोली से मार दिया। थानेदार के साथ एक तहसील का सरकारी व्यक्ति भी मारा गया। यह लोगतो पुलिस छककर चलते बने किन्तु दूसरे दल से टक्कर हुई।

पं० काशीराम और रहमत अली शाह

यह दल पं० काशीराम का था। ये हरयाणा प्रान्त के अम्बाला जिले के रहनें वाले थे। वहीं के रहमत अली शाह भी थे। पंडित काशीराम जी अमेरिका में एक बारुद के कारखाने में २०० रु० मासिक पर कार्य करते थे। पीछे आपने एक टापू पर सोने की खान का ठेका ले लिया था। आप २५ वा २६ नवम्बर सन् १९१४ में भारत में आये थे। कुछ दिन पीछे आपके दल की ही फिरोजपुर के जंगल में पुलिस के साथ मुठभेड़ हुई। उस समय आपके दल में सब १३ व्यक्ति थे। आपने पुलिस के साथ डटकर युद्ध किया, जिसमें आपके दो साथी मारे गए। आप और रहमत अली शाह सहित सात व्यक्ति पकड़े गये। शेष चार भाग गए। आप पर मिश्री ग्राम के डाके तथा थानेदार के कत्ल का झूठा अपराध लगाकर मुकद्दमा किया। जज ने सातों को फांसी की सजा दी। पं० काशीराम जी का चालीस हजार रुपया सरकार ने जब्त कर लिया। ये सातों व्यक्ति निर्दोष फांसी पर चढ़ाये गए। गन्धासिंह पहले तो सरकार के हाथ नहीं आए किन्तु कुछ समय पश्चात् खन्ना ग्राम के पास नत्था-सिंह नाम के अध्यापक ने विश्वासघात करके इन्हें पकड़वा दिया। फिर आप पर थानेदार के मारने के दोष में अभियोग चलाकर फांसी का दण्ड दे दिया गया। आपके अभियोग में जज ने लिखा था—"जो सात आदमी पहले फांसी पर चढ़ाये गये थे वे निर्दोष थे वास्तविक अपराधी नहीं थे। असली अपराधी गन्धासिंह है जिसे आज हम फांसी का दण्ड दे रहे हैं। आप ८ मार्च १९१६ को एक वीर के समान फांसी के तख्ते पर चढ़ गये और देश के लिये अपने प्राण न्यौछावर कर गये। गन्धासिंह जी से फांसी से पूर्व किसी ने पूछा कैसे हो? हंसकर बोले—"मित्रो! आनन्द में हूं वर्षों से इस दिन की बाट देखता था।" गेंद खेलते से फांसी पर चढ़ गये। इन्हें जेल में पुलिस वालों ने नङ्गा करके बहुत पीटा तथा मार से हाथ सूजकर जंघा के समान मोटे हो गये थे। इन्हें काल कोटड़ी में अकेले डालकर बहुत कष्ट दिया गया था। जिस सिंह से डरकर पुलिस वाले गीदड़ के समान भागते थे और मुठभेड़ में छिपकर ईख के खेत में पुलिस ने अपनी जान बचाई थी उन धूर्तों ने अत्याचार करके गन्धासिंह से जेल में बदला लिया।

वीर वीरसिंह

वीर वीरसिंह का जन्म बहोलाव जि० होश्यारपुर में हुआ था। आप १९०६ में कैनेडा चले

गये। आप भी अन्य यात्रियों के साथ विप्लवार्थ भारत लौट आये। इधर-उधर घूमकर विप्लव का प्रचार करने लगे। गिरफ्तारियों के पश्चात् आप भाग गये। एक दिन आप ६ जून १९१५ में चिट्टी गांव में एक कुएं पर स्नान कर रहे थे कि पुलिस ने घेरकर पकड़ लिया। आपको लाहौर षड्यन्त्र के दूसरे मुकद्दमे में मेगजीन पर हमला करने तथा डाका डालने का अभियोग लगाकर फांसी की सजा देकर फांसी की जयमाला पहना दी गई।

लाहौर षड्यन्त्र का दूसरा अभियोग

लाहौर षड्यन्त्र के इस मुकद्दमे में छः व्यक्तियों को फांसी का दण्ड दिया गया। इन वीरों के नाम वीरसिंह, भाई बलवन्तसिंह, डाक्टर मथुरासिंह, बन्तासिंह, रङ्गासिंह और ४२ को आजन्म कालापानी का दण्ड दिया गया। इसके अतिरिक्त इन सब अभियुक्तों की सारी सम्पत्ति भी जब्त कर ली गई।

रङ्गासिंह

रङ्गासिंह का जन्म १८८५ में जालन्धर जिले के खुर्दपुर गांव में हुआ था। स्कूल की कुछ शिक्षा के पश्चात् आपने सेना में भर्ती होकर नौकरी करली। २३ वर्ष की आयु तक रिसाले में नौकरी करने के पीछे १९०८ में आप अमेरिका चले गये। वहां छः वर्ष रहकर २१ दिसम्बर १९१४ को फिर भारत लौट आये। गहां गांव-गांव जाकर आप विप्लव का प्रचार करने लगे। जब विप्लव योजना विफल हो गई तो बहुत से नेता पकड़कर जेल में ठूंस दिये गये। तब यह निश्चय किया कि जेल पर आक्रमण करके इन्हें छुड़ाया जाये।

कपूरथला राज्य की मेगजीन को लूटने की योजना बनाई। इन सब लोगों में रङ्गासिंह नेता थे। किन्तु शक्ति थोड़ी थी अतः इस विचार को छोड़कर यह निश्चय हुआ कि बाला के पुल पर पुलिस वालों को मारकर पहले इनकी बन्दूकें छीनें और फिर इन्हें लेकर मेगजीन पर आक्रमण किया जाये। इस कार्य में धुदिली के एक अध्यापक ने भी सहायता दी थी। इस कार्य के लिये रंगासिंहादि कुछ व्यक्तियों को चुना गया। किन्तु आपके साथी सिपाहियों को सावधान देखकर आक्रमण करने से हिचकने लगे। इस पर आपने अपने साथियों को बहुत फटकारा और ११ जून १९१५ को बाला के रेलवे पुल पर आक्रमण कर ही दिया। इन्होंने दो सैनिकों को घटनास्थल पर मार दिया और उनकी बन्दूकें छीन लीं। लौटते समय इन्होंने दो आदमी और मार डाले। किन्तु किसी भेदिए के भेद देने पर २६ जून की रात को आपको एक शरबत वाले की दुकान पर चुपचाप पकड़ लिया गया और लाहौर षड्यन्त्र के दूसरे मुकद्दमे में आपको फांसी दे दी गई।

रामसिंह और रामचन्द्र

रामसिंह का जन्म पिण्ड तुलेता जिला जालन्धर में हुआ था। आप १९०७ वा आठ में कैनेडा चले गये। वहां ये व्यापारादि के द्वारा अच्छे धनाढ्य बन गये। जब सन् १९१४ में सिक्ख गदर कराने के लिए विदेशों से भारत जाने लगे तो आप संयुक्त राज्य अमेरिका आ गए और वहां के लोगों के

अनुरोध से वहीं ठहरकर कार्य करने लगे। ला० हरदयाल जी गदर पार्टी तथा युगान्तर आश्रम प्रेस का सब कार्य पं० रामचन्द्र को सौंपकर योरुप चले गये। रामचन्द्र किसी भी नियमादि की चिन्ता न करके अपनी मनमानी चलाता था। सारा कार्य उसके हाथों में था। सारा कार्य उसी की इच्छा पर चलता था। वह किसी अच्छे व्यक्ति को जो कार्य करने वाला हो सहन नहीं करता था, यही यत्न करता था कि अच्छा कार्य करने वाला व्यक्ति अमेरिका में ठहर न सके। रामचन्द्र को रामसिंह का यहां ठहरना खटकने लगा। उसने रामसिंह को निकालने के लिए एक चाल चली। रामचन्द्र ने एक जूते में एक कागज सींकर रामसिंह को देकर यह कहा—"इसे भारत में अमुक व्यक्ति के पास ले जाना है यह इतना आवश्यक है कि आपके अतिरिक्त और किसी पर विश्वास नहीं किया जा सकता। रामसिंह उसकी चाल में आगया और भारत चल दिया। आते समय मनीला (फिलीपाइन्स) में आपकी पुराने कार्यकर्त्ताओं से भेंट हो गई। उन्होंने रामचन्द्र का यथार्थ स्वरूप बताकर यह भी कहा कि इस समय भारत में जाना मृत्यु के मुख में जाना है। बूंट खोलने पर उस में साधारण छपे कागज के अतिरिक्त और कुछ न निकला। आप चीन जापान होते हुए फिर अमेरिका वापिस आगये। इस समय रामचन्द्र तथा अन्य लोगों में पर्याप्त झगड़ा बढ़ गया था। बहुत कुछ प्रयत्न करने पर भी झगड़ा न मिटा। आपने सन् १९१६ में कैलिफोर्निया के सैक्रोमेंट नामक नगर में सभा की और नए अधिकारी चुनकर कार्य आरम्भ कर दिया। रामचन्द्र ने इसे अनियमित बताकर एक और सभा बुलाई किन्तु इस सभा ने रामसिंह वाली सभा को उचित ठहराया और केवल तीन व्यक्ति बढ़ा दिए। इस सभा ने यह निश्चय किया कि पुराने कार्यकर्त्ता इस नई कमेटी को सात दिन में सारे कार्य सौंप दें। यदि ऐसा न हो तो बलपूर्वक सब पदार्थों पर अधिकार कर ले। किन्तु चार्ज न दिया गया। प्रेस पर अधिकार करते समय रामचन्द्र के साथी पुलिस को बुला लाये। किन्तु पुलिस ने सारी बातें सुनकर स्वयं ताला तोड़ प्रेस नई कमेटी के अधिकार में दे दिया। रामसिंह ने चारों ओर घूम-कर सङ्गठन कर डाला। आपको प्रधान बनाना चाहते थे। आपने कोई पद स्वीकार न किया। वैसे ही लगन से कार्य में जुटे रहे। उसी समय अमेरिका भी युद्ध में कूद पड़ा। अब गदरपार्टी के मुख्य-मुख्य कार्यकर्त्ता गिरफ्तार कर लिए गये। रामसिंह जी भी पकड़े गये। रामसिंह ने रामचन्द्र को अदालत में एक साथ मिलकर कार्य करने को कहा किन्तु वह सहमत नहीं हुआ। जब मुकदमा चला तो दोनों पार्टियों के पृथक्-पृथक् बयान होने से समाचार पत्रों ने इनके विरुद्ध खूब ऊटपटांग लिखा। पार्टी की बदनामी हुई। रामसिंह ने फिर पार्टीबाजी दूर करने का यत्न किया किन्तु उसे इस बार भी सफलता न मिली। मुकदमा जूरी को सौंपा गया। जिस समय जज लोग मध्याह्न के समय भोजन करने गये तो रामसिंह ने अदालत में ही रिवाल्वर निकालकर रामचन्द्र पर गोली चला दी। रामचन्द्र को गिरता देखकर हाथ नीचे किया तो सामने बैठे कोतवाल ने रामसिंह पर भी गोली चला दी। इस प्रकार अमेरिका की अदालत में यह आपस की फूट के कारण शहीद हो गया। आपस की फूट के कारण ला० हरदयाल का किया हुआ पुरुषार्थ व्यर्थ चला गया।

लाहौर षड्यन्त्र का तृतीय अभियोग

यह मुकदमा १२ व्यक्तियों पर चलाया गया। इस मुकदमे में उत्तमसिंह, डा० गरुड़सिंह, केहरसिंह, और जीवनसिंह को फांसी का दण्ड दिया गया। यह षड्यन्त्र गदर आन्दोलन का एक भाग

था। जिसका सम्बन्ध जर्मन एजेन्टों से भी था। सानफ्रांसिस्को में गदरपार्टी के नेता ने जर्मन के लोगों के साथ मिलकर यह योजना बनाई थी कि स्याम में विप्लव करके ब्रिटिश सरकार को हानि पहुंचाई जाए। युगान्तर आश्रम से सानफ्रांसिस्को ने एक पर्चा निकाला था जिसमें लिखा था—"जर्मनी के साथ युद्ध मत करो. वह मित्र है।" जर्मन कौंसिल अपने खर्चे पर गदर कार्यालय के छपे पर्चों को भारतीयों में सब कहीं बांटने के लिए ले गई और ब्रिटिश सरकार के विरुद्ध प्रचार करने के लिए अपने खर्च पर एजेन्ट भेजे थे। उपर्युक्त व्यक्ति इस योजना में सम्मिलित थे। यह इस मुकदमे में सिद्ध किया गया और उत्तमसिंह आदि को फांसी पर चढ़ा दिया गया। उत्तमसिंह और डा० अरुड़-सिंह के विषय में भी कुछ विशेष लिखा जाता है।

उत्तमसिंह

उत्तमसिंह का जन्म हंस ग्राम जि० लुधियाना में हुआ था। आप अमेरिका में गदरपार्टी के अच्छे कार्यकर्त्ता थे। आप पार्टी की आज्ञानुसार सन् १९१४ में कुछ साथियों सहित भारत में गदर का प्रचार करने के लिये आये। मार्ग में भी आपने गदर का प्रचार किया। कर्तारसिंह के साथ आपका पुराना परिचय था। भारत आकर आप अर्जुनसिंह, गन्धासिंह, बूटासिंह और पिंगले आदि के साथ मिलकर जोर से कार्य करने लगे। कर्तारसिंह के साथ फिरोजपुर छावनी पर हमला करने के लिए भी आप गए थे। उस विप्लव योजना के विफल होने से आपका भी वारण्ट निकला। किन्तु आप हाथ न आए। अपने साथियों को जेल से निकालने के लिए नये सिरे से अस्त्र शस्त्र इकट्ठे करने आरम्भ कर दिये।

आपका विचार पहले कपूरथला राज्य के मेगजीन को लूटने का था। किन्तु पीछे आपने केवल सात-आठ पिस्तौलधारियों को साथ लेकर १५ सिपाहियों से १५ राईफलें ७५० कारतूसों सहित छीन लीं। आप बम बनाना भी जानते थे। पीतल के लोटों से बम बना भी चुके थे। अभी आप जेल पर आक्रमण कर साथियों को छुड़ाने की तैयारी में लगे ही थे कि १९ दिसम्बर सन् १९१५ को जब आप अपने एक साथी के साथ फरीदपुर राज्य के माना-बघवाना नामक गांव के पास एक साधु की कुटिया में ठहरे थे, गिरफ्तार कर लिए गये और लाहौर षड्यन्त्र के तृतीय केस में आपको फांसी दे दी।

डा० अरुड़सिंह

डा० अरुड़सिंह का जन्म सगवाल ग्राम जि० जालन्धर में हुआ। शहीद बन्तासिंह भी इसी ग्राम के निवासी थे। ये दोनों एक साथ मिलकर कार्य किया करते थे। आप गुप्त भेद निकालने में बड़े चतुर थे। आपका वारण्ट होने पर भी निश्चिन्त होकर घूमते रहे। कभी थाने में जाकर भेद ले आते थे। एक अमेरिकन से आपका घनिष्ठ सम्बन्ध था। उसे आप अपना गुरु मानते थे। एक बार ज्ञात हुआ कि वे लाहौर की सैन्ट्रल जेल में गिरफ्तार करके रखे गये हैं, बस आप जेल में पहुंच गये और सारा भेद लेकर वापिस चले आये। एक दिन आप जेल के फाटक पर खड़े थे। पुलिस अफसर के नाम पूछने पर आपने अरुड़सिंह बतलाया।

अफसर को विश्वास नहीं हुआ और घूमकर चल दिया। न जाने उस समय आपके मन में क्या आया कि आपने उसे फिर बुलाया और अपने आपको गिरफ्तार करवा दिया। अन्त में अदालत से आपको भी लाहौर के तीसरे षड्यन्त्र में फांसी का दण्ड मिला। आपकी मस्ती पराकाष्ठा पर पहुंची

हुई थी। मृत्यु को सम्मुख देखकर भी आपकी मस्ती में कोई भी अन्तर न आया। जिस दिन प्रात:काल आपको फांसी आनी थी, उस दिन आप देर तक गहरी नीन्द में सोते रहे। अफसर के जगाने पर और यह कहने पर कि—"चलो तुम्हें फांसो दी जायेगी।" आपने खड़े होकर ऊँचे स्वर से "वन्दे मातरम्" कहा और हंसते हुए फांसी के तख्ते पर चढ़ गये। आपने अत्यन्त वीरता फांसी के समय दिखलाई।

श्री जगतसिंह

आपका जन्मकाल तथा निवास स्थान अज्ञात है। आप भी अमेरिका गये। गदर की बात छिड़ जाने पर स्वाधीनता के युद्ध में भाग लेने के लिए आप भी भारत लौट आये। इनका शरीर बड़ा सुन्दर, सुदृढ़ और बलिष्ठ था। इनके समान शरीर वाला कोई भी इनके साथियों में नहीं था। जब पंजाब के विप्लव का प्रयास विफल हो गया और रासबिहारी के सब साथी गिरफ्तार होगये। पुलिस धरपकड़ के लिए बड़ी भाग दौड़ कर रही थी। उस समय किसी विशेष महत्त्वपूर्ण कार्य के लिए ये दो साथियों सहित चले। लाहौर की घटना है। ज्यों ही ये तीनों तांगे पर सवार होकर जा रहे थे उसी समय पुलिस ने इन्हें आकर घेर लिया और इन्हें थाने में चलने के लिए विवश करने लगे। ये तीनों जानते थे कि थाने गए तो मृत्यु के मुख में फंस जायेंगे। अत: तीनों ने गोली चलानी आरम्भ कर दीं। कुछ देर गोली चलने के पश्चात् इनमें से एक तो निकलकर भागा एक पुलिस के हाथ में फंस गया। जगतसिंह जी पुलिस के हाथ से बचकर भाग निकले। आगे चलकर नल पर खड़े हो प्यास से व्याकुल जल पीकर मुख पूछने लगे। उसी समय एक बहुत शक्तिशाली मुसलमान ने पकड़ लिया और उसने ऐसा जकड़ लिया कि वे हिल न सके। उन्हें पुलिस गिरफ्तार करके ले गई। अभियोग चला और फांसी का दण्ड मिला। यह वीर हंसते-हंसते फांसी के तख्ते पर चढ़ गया।

श्री भानसिंह

इनका जन्म सुनेत नाम के गांव जि० लुधियाना में हुआ था। पहले आपने सेना में नौकरी की, फिर इसे छोड़कर आप अमेरिका चले गये, वहां कैलीफोर्निया में रहते हुये आपने सभी राजनैतिक कार्यों में बढ़ चढ़कर उत्साह से भाग लिया। आप स्वतन्त्रता संग्राम में भाग लेने के लिए महायुद्ध के छिड़ते ही सर्वप्रथम कोरिया तथा तोशामारू जहाज पर आ गये। मार्ग में आप गदर का प्रचार करते आये थे। १९१४ में कलकत्ता पहुंचते ही २९ अक्टूबर को पकड़ लिए गए। कुछ समय मिण्टगुमरी जेल में बन्द रहे फिर छोड़ दिए गये। विप्लव विफल होने पर आपको गिरफ्तार किया गया और कालापानी का दण्ड देकर अण्डमान भेज दिया। वहां जेलर और जेल अधिकारी देशभक्त कैदियों पर खूब अत्याचार करते थे। आप अपने साथियों को भूल करने पर ताड़ते रहते थे। इनके साथी हितभावना समझ सहर्ष सहन कर लेते थे। आपको किसी जेल अधिकारी ने गाली दे दी। आप कोठड़ी में बन्द थे अतः चुपचाप सहन करना पड़ा किन्तु आपने कार्य करने से इन्कार करदिया। इस पर जेलर ने छ: मास के लिए डण्डा बेड़ी पहनाकर कालकोठरी में बन्द कर दिया। साथ ही आधे भोजन का दण्ड भी दिया। जल भी बहुत थोड़ी मात्रा में दिया जाता था। इस ग्रीष्म जलवायु वाले द्वीप में यह दण्ड असह्य था। इस दु:ख की अवस्था में भी एक दिन यह मस्त देशभक्त झूम-झूमकर गा रहा था "मित्र प्यारे नुं हाल मुरीदां दा कहना।" जेलर उसे चुप रहने के लिए कहने लगा। किन्तु

ईश्वर भजन से वञ्चित रखने की उस निर्दयी की आज्ञा को वह देशभक्त वीर कैसे मान सकता था। अतः उन्होंने अपना गाना चालू रखा।

उन्हें दूसरी मञ्जिल की कोठरी से निकालकर तीसरी मञ्जिल की कोठरी में जो एक तङ्ग सन्दूक के समान थी, बन्द कर दिया गया। अढ़ाई वर्ग फिट की तङ्ग कोठरी में भी आप मस्त होकर गाते रहे। आपने अपना ईशभजन का गाना बन्द नहीं किया। निर्दयी जेल अधिकारी ने इन्हें बहुत बुरी तरह बार-बार पीटा। इनकी हड्डियां तक तोड़ डालीं। किन्तु गाना फिर भी बन्द नहीं हुआ। इस अत्याचार को देखकर अन्य कैदियों ने भी कार्य करना छोड़ दिया।

उन्हें भी वही आधी खुराक, काल कोठरी और डण्डा-बेड़ी का दण्ड मिला। भानसिंह को बहुत बुरी तरह से पीटा गया था। अतः उन की दशा चिन्ताजनक हो गई। मुख में पानी तक नहीं जाता था। प्राण बचने की कुछ भी आशा नहीं थी। जेल के भीतर उनकी मृत्यु न हो अतः उन्हें बाहर के अस्पताल में भेज दिया। कुछ दिन के पश्चात् यह वीर देशभक्ति का गान करते हुए आततायियों द्वारा निरन्तर अकथनीय यातनायें सहन करते हुए तिल-तिल करके प्राणों को न्यौछावर कर गया।

ऊधमसिंह

ऊधमसिंह का जन्म कैसल नाम के गांव में अमृतसर जिले में हुआ। आप युवावस्था में व्यवसायार्थ अमेरिका गये। वहां पर गदरपार्टी में सम्मिलित हो गये। महायुद्ध के छिड़ते ही आप भी अपने ३५० साथियों के साथ भारत लौटे और गिरफ्तार करके जेलों में डाल दिए गये। आपको लाहौर षड्यन्त्र केस में आजीवन कालापानी का दण्ड देकर अण्डमान भेज दिया गया। फिर १९२१ में आपको मद्रास की बलारी जेल में भेज दिया गया। यह अकेले बन्द कोठरी में एकान्त में जीवन के दिन बिता रहे थे। एक दिन जेल अधिकारियों ने प्रातःकाल इनकी कोठरी को आकर देखा तो ऊधमसिंह वहां पर नहीं मिले। कोठरी का ताला ज्यों का त्यों बन्द था। यह गुप्त रहस्य है कि पुलिस की कड़ी निगरानी से कब, कैसे और किधर से निकल गये।

ऊधमसिंह जेल से निकलकर काबुल पहुंचे। किन्तु देशभक्ति का अनुराग उन्हें फिर भारत उठा लाया और कुछ समय कार्य करके फिर काबुल पहुंच गये। पुलिस आपकी बड़ी खोज में थी। पुनः ये भारत लौट रहे थे कि इन्हें सीमा पर गोली मार दी गई और वे मार्ग में ही शहीद हो गये। यह भी ज्ञात नहीं कि गोली किसने मारी, यह आज तक रहस्य ही बना हुआ है।

श्री खुशीराम

आपका जन्म-स्थान पिण्डी सैदपुर जिला झेलम था। आपके पिता का नाम ला० भगवान्दास था। इनका जन्म २७ श्रावण १९०५ को हुआ। इनके पिता की मृत्यु के पश्चात् इनका पालन-पोषण लाहौर नवाकोट के अनाथालय में हुआ। आपका शरीर सुन्दर, सुदृढ़ और बहुत शक्तिशाली था। आपका जन्म का नाम भीमसेन रखा था, किन्तु पीछे खुशीराम नाम से प्रसिद्ध हो गया। आपने १६ वर्ष की आयु में शास्त्री की परीक्षा डी० ए० वी० कालिज से उत्तीर्ण की। १९१९ में सारे देश में जब हड़ताल हुई तब आपने भी कालेज के विद्यार्थियों का नेतृत्व किया। १२ अप्रैल को लाहौर की बादशाही मस्जिद में विराट् सभा हुई। फिर जलूस निकला। झण्डा खुशीराम जी के हाथ में था। आगे फौज ने मार्ग रोका।

हीरामण्डी के बाजार के पास नवाब मोहम्मद बरकतअली सेना का अध्यक्ष था। उसने जनता को बिखरने की आज्ञा दी 'जलूस नहीं निकलेगा' यह कहा। जलूस के नेता श्री खुशीराम जी ने कहा—"जलूस निकलेगा और अवश्य निकलेगा और जायेगा भी इसी मार्ग से।" नवाब ने आकाश में गोली चलाई, लोग डर के मारे इधर-उधर भागने लगे, तब खुशीराम ने गरज कर कहा—"भागकर व्यर्थ में क्यों कायर बनते हो? मरना तो एक दिन है ही, फिर वीरों की भांति क्यों न मरो। बड़ी लज्जा की बात है कि गीदड़ों के समान क्यों भाग रहे हो?" लोग रुक गये। नवाब ने फिर कहा -"जलूस को तोड़ दो" खुशीराम ने फिर गरजकर कहा—"नहीं, यह नहीं होगा, हमारा जलूस इसी प्रकार चलेगा।" वे आगे बढ़े और उधर से गोली चली। अब की बार गोली हवा में न गई सीधी खुशीराम की छाती में लगी। श्री खुशीराम जी दो कदम आगे बढ़े, एक और गोली लगी, वे आगे और बढ़े। इस प्रकार एक-एक करके सात गोलियां छाती में समा गईं। किन्तु वह वीर उसी प्रकार आगे बढ़ता चला गया। आठवीं गोली माथे से दाईं ओर और नवीं गोली बाईं ओर लगी। वे गिरे और अनन्त निद्रा में सो गये और फिर न उठे। उनके शव का जलूस निकला। जनता का समुद्र उसके साथ उमड़ पड़ा। जनसंख्या पचास हजार से अधिक थी। खुशीराम इस संसार में नहीं किन्तु वह, उसके कार्य, साहस और नाम से अमर है।

श्री नन्दसिंह

इनका जन्म १८९५ ई० में घुड़ियाल ग्राम जालन्धर जिले में हुआ। आपके पिता जी का नाम गंगासिंह था। आपके माता-पिता के शीघ्र मर जाने के कारण पालन-पोषण रावलपिण्डी में बड़े भाई ने किया। आपकी पढ़ने की अपेक्षा खेल-कूद में अधिक रुचि थी। अतः आप शीघ्र बढ़ई का काम सीखकर बसरा चले गये। १५ वर्ष की छोटी आयु में ही आपका विवाह हो गया था। अकाली आन्दोलन में भाग लेने के लिए आप भारत आये और गुरु के बाग के सत्याग्रह में छः मास की जेल काटी। जेल में अत्याचारों के कारण आपके विचार बदले और आप जेल से बाहर आते ही किशनसिंह बब्बर अकाली दल में सम्मिलित होगये। जब आप जेल में थे तभी बड़े भाई की मृत्यु हो गई। दूसरे भाई ने चाहा कि नन्दसिंह माफी मांगकर लड़के की शादी में सम्मिलित हो जाए। आपने कहा—"यदि बड़े भाई के बिना विवाह हो सकता है तो मेरे बिना भी हो सकता है। इन विवाह-समान घरेलू कार्यों के लिए मैं देश का कार्य नहीं रोकना चाहता।"

आपके जेल से आने के पीछे ग्राम का सूबेदार गेंदासिंह आपको बहुत तङ्ग करने लगा। आपकी सब बातों की सूचना पुलिस में दे देता था। अतः एक दिन आपने जाकर उसे मार दिया। पुलिस ११ दिन तक गांव वालों को तङ्ग करती रही। आपने पुलिस वालों को कहा कि जो कुछ किया है मैंने किया है क्यों व्यर्थ इन लोगों को तङ्ग करते हो? आपको गिरफ्तार करके अभियोग चलाया और फांसी का दण्ड दिया गया।

मरने से पहले आपने घरवालों से कहा—"तुम लोग चिन्ता न करना। मैं किसी बुरी मौत से नहीं मर रहा हूं। मुझे इस बात का बड़ा हर्ष है कि मेरे प्राण देश के कार्य के लिए दिए जा रहे हैं। मैंने भवन को नींव डाल दी है। अब यह देश का कर्त्तव्य है कि यदि वह स्वतन्त्र होना चाहता है तो उस नींव पर भवन बनाकर खड़ा करे।" आपने यह भी कहा कि "मरने के पश्चात् मुझे मेरे अन्य साथियों के सहित एक ही चिता पर जलाना और राख को रावी नदी में डाल देना।"

अन्त में २७ फरवरी १९२६ को लाहौर सैन्ट्रल जेल में आपको पांच साथियों सहित फांसी दे दी गई। उनके सम्बन्धियों ने उनका, उनकी इच्छानुसार पांचों साथियों का एक ही चिता पर संस्कार किया।

श्री सन्तासिंह

आपके पिता का नाम सूबासिंह था। जो लुधियाना जिले में हरयों खुर्द नामक गांव में रहते थे। सन्तासिंह युवा होने पर सेना में ५४ नं० रिसाले में सन् १९२० में भर्ती हो गये और दो वर्ष नौकरी के पश्चात् त्यागपत्र देकर खालसा हाई स्कूल लुधियाने में क्लर्क का कार्य करने लगे। आप अकाली दल में सम्मिलित होकर कार्य करने लगे। अपने बुद्धिचातुर्य और सच्ची लग्न के कारण आप शीघ्र ही बड़े नेताओं की पंक्ति में आ खड़े हुए। आपने सभी कार्यों में उत्साह से भाग लिया। अपने उद्देश्य में बाधक समझकर आपने बिशनसिंह जेलदार को अकेले ही जाकर मार दिया।

इसी प्रकार बूटासिंह, लाभसिंह, हजारासिंह, राला, दित्त् सूबेदार गेंडासिंह और नांगल समां के नम्बरदार आदि देश-द्रोहियों को उनके अपराध का दण्ड देने में भी आप सम्मिलित थे। अन्त में सम्बन्धियों के विश्वासघात से आप गिरफ्तार होगये। आपने सब अपराध स्वीकार कर लिये और कहा कि—"जो कुछ मैंने किया वह अच्छे के लिए ही किया था। अस्तु मैं उनमें से एक बात भी छिपाना नहीं चाहता।" सरकार ने फांसी का दण्ड दिया और आपको लाहौर सैन्ट्रल जेल में २७ फरवरी १९२६ को पांच साथियों सहित फांसी दे दी गई।

किशनसिंह गर्गज्ज

आपका जन्म जालन्धर जिले के बाड़िङ्ग नामक गांव में हुआ। आपके पिता जी का नाम श्री फतेहसिंह जी था। थोड़ी शिक्षा के पश्चात् आप सेना में भर्ती हो गये। कुछ वष नौकरी करके आप त्यागपत्र देकर देशभक्ति के आन्दोलन में भाग लेने लगे। ननकाना साहब की दुर्घटना के पीछे आप अकाली दल में सम्मिलित हो गये और उसके मन्त्री चुने गये।

पुलिस से पिटते रहना आपको अच्छा नहीं लगता था अतः आपने सशस्त्र गुप्त सङ्गठन की आयोजना की। आप बड़े अच्छे वक्ता भी थे अतः खूब व्याख्यान देकर ग्राम-ग्राम में प्रचार करते थे। गिरफ्तारी के समय तक आप ३२७ भिन्न-भिन्न स्थानों पर भाषण दे चुके थे। इन्होंने कर्मसिंह आदि की पार्टी के साथ अपने दल को मिलाकर कार्य किया। अनेक केन्द्रों की स्थापना की। अस्त्र-शस्त्रों का संग्रह किया गया। १८५७ की भांति ये स्वतन्त्रता युद्ध की योजना बना रहे थे कि भेद खुल गया और गिरफ्तारियां होने लगीं। आपको भी गिरफ्तार करके लाहौर लाया गया।

आपने अभियोग चलने पर सब बातें मान लीं और निम्नलिखित वक्तव्य दिया—"जब मैं सेना में था तभी सरदार अजीतसिंह की नजरबन्दी, बजबज काण्ड, रोलट एक्ट और जलियांवाला बाग की दुर्घटना और मार्शल्ला आदि के अत्याचारों के कारण मेरे हृदय में घृणा उत्पन्न हुई और अन्त में दासता के भार को अधिक न सह सकने के कारण मैंने सरकार की नौकरी छोड़कर राष्ट्रीय आन्दोलन में भाग लिया। मैं सरकार का कट्टर शत्रु था और इसी से जिस प्रकार भी हो अंग्रेजों को भारत से निकालकर बाहर करने की इच्छा से यह सब कुछ किया था।" न्यायालय से आपको फांसी का दण्ड मिला और एक दिन लाहौर जेल में फांसी पर लटका दिया गया।

कर्मसिंह

कर्मसिंह का जन्म श्री भगवानदास सुनार के यहां मनको नामक ग्राम में जिला जालन्धर में हुआ। आपकी खेलकूद में ही रुचि थी। आप बहुत चंचल थे और किसी की बात को सहन न करते थे। बड़े होने पर बब्बर अकाली दल में सम्मिलित हो गये। कुछ दिन आप प्रचार कार्य करते रहे। गेंदासिंह सूबेदार के मारने के षड्यन्त्र में आप भी सम्मिलित थे। १२ मई १९२३ को आप गिरफ्तार कर लिए गए। आप पर जेल में बड़े-बड़े अत्याचार किये गये और सब भेद खोल देने के लिए पुलिस ने बाध्य किया। इस वीर ने सब कष्ट हर्षपूर्वक सहे, किन्तु आपने किसी भी बात का उत्तर नहीं दिया। अदालत में आपने वक्तव्य दिया—"अदालत की सब कार्यवाही नाटक के समान है और सब लोग पुलिस के हाथ में खिलौने के समान हैं।" सरकार ने आपको फांसी का दण्ड दिया और २७ फरवरी १९२६ को लाहौर सैन्ट्रल जेल में पांच साथियों सहित फांसी पर लटका दिया गया।

श्री धन्नासिंह

इनका बाल्यकाल पञ्जाब की वीरभूमि के एक छोटे से ग्राम बईवलपुर में व्यतीत हुआ। गुरु के बाग के अत्याचारों से प्रभावित होकर आप अकाली दल में सम्मिलित हो गए। प्रचार कार्य तथा सामरिक कार्य दोनों में ही आपने खूब उत्साह से भाग लिया। १० फरवरी १९२३ को अपने तीन और साथियों को साथ लेकर रानी थाने के जेलदार विशनसिंह पुलिस के भेदिये को मार दिया।

इसी प्रकार बूंटा नम्बरदार के मारने में भी आपका हाथ था। कुछ दिन पीछे १९ मार्च १९२३ को तीन साथियों सहित मिस्त्री लाभसिंह को मार दिया और फिर २७ मार्च १९२३ को बईबलपुर गांव में हजारा नाम के व्यक्ति को जो पुलिस को आपकी सब सूचनायें पहुंचाता था मार डाला।

२५ अक्टूबर १९२३ को आप पुलिस के घेरे में आगए। इसके सम्बन्धी ज्वालासिंह ने, जिसने वीर बालक दलीपसिंह को भी गिरफ्तार करवाया था, धोखा दिया। उसने पुलिस को सूचना दे दी। इस धूर्त ने पुलिस की इच्छानुसार धन्नासिंह को होश्यारपुर के मननहाना नामक गांव के कर्मसिंह के मकान पर ठहरा दिया। ये उसी मकान में जब सो रहे थे तो पुलिस आई। ज्वालासिंह पुलिस को देखकर भाग गया। धन्नासिंह भी भागने लगा तो पुलिस ने चारों ओर से घेर लिया। पुलिस के ४० व्यक्ति थे। घिर जाने पर आप अपना रिवाल्वर निकालने लगे उसी समय पुलिस इन्पेक्टर गुलजारसिंह ने आप पर लाठी चला दी। धन्नासिंह अकस्मात् प्रहार होने से सम्भल न सके और भूमि पर गिर गए। फिर क्या था सब आप पर टूट पड़े। आप बड़ी कठिनाई से गिरफ्तार हुए। हथकड़ी लगा लेने पर भी आपने कई बार हाथ छुड़ाने का यत्न किया। आपको पुलिस वालों ने एक स्थान पर बिठा दिया, दोनों हाथ ऊपर करवा दिए और कई पुलिस वाले हथकड़ी की जंजीरों को पकड़कर बैठ गये। यह सदैव स्वतन्त्र रहने वाला वीर इस दासता को कैसे सहन कर सकता था। जिस समय आपको पुलिस वाले पकड़े खड़े थे उसी समय आपने अकस्मात् ऐसे वेग से बलपूर्वक झटका दिया कि हाथ नीचे आगया और साथ ही कमर के पास छिपे हुए बम में कोहनी की ऐसी चोट दी कि एकदम धड़ाका हो गया। देखते देखते चारों ओर भगदड़ मच गई और जहां पर धन्नासिंह जी बैठे थे वहां पर खून मांस और हड्डियों के अतिरिक्त कुछ भी शेष नहीं रहा। साथ ही पुलिस के भी पांच व्यक्ति तो जान से मारे गये और तीन बहुत बुरी प्रकार से घायल हुए, जिनमें से एक

सिपाही और मि० हार्टन हस्पताल में मर गये। इस प्रकार इस वीर ने शत्रुओं को यमालय पहुंचा कर वीरगति को प्राप्त हुआ

बोमेली युद्ध के चार हुतात्मा

कर्मसिंह जी दौलतपुर के, उदयसिंह रामगढ़ भुंगिता के, बिशनसिंह मंगत के और श्री महेन्द्र-सिंह व गङ्गासिंह पिण्डोरी के रहने वाले थे। जिस समय किशनसिंह गर्गज्ज ने अकाली आन्दोलन को प्रारम्भ किया तो इन चारों ने इस में भाग लिया। ये चारों ही एक दूसरे से बढ़कर वीर थे। ये कठिन से कठिन कार्य को बड़ी रुचि से करते थे। कुछ समय पश्चात् कर्मसिंह तथा उदयसिंह मुख्य कार्यकर्त्ताओं में गिने जाने लगे। कर्मसिंह ग्राम-ग्राम में घूमकर प्रचार करने लगे। ये "बब्बर अकाली" नामक पत्र का सम्पादन भी करते थे। दीवानों में इनके खूब व्याख्यान होते थे। आपके वारण्ट निकल गये। पुलिस इन की खोज में बड़ी दुःखी थी। इधर ये लोग शत्रु से युद्ध करने के लिए हथियारों के संग्रह करने में लगे हुए थे। आपकी गिरफ्तारी के लिए इनाम की घोषणा की गई। किन्तु गिरफ्तारी न हो सकी।

उदयसिंह जी से आपका बड़ा घनिष्ठ सम्बन्ध था। अधिकतर वे दोनों साथ ही रहते थे। फरार भी वे दोनों साथ ही हुये थे और अन्तिम समय भी दोनों ने साथ ही साथ युद्ध करके प्राण दिए। प्रेम और मैत्री का कैसा आदर्श उदाहरण है।

पुलिस को बब्बर अकालियों का भेद देने के अपराध में उदयसिंह ने १४ फरवरी १९२३ को हैयतपुर के दीवान को मार दिया। आप कहा करते थे कि में शत्रुओं को क्षमा प्रदान कर सकता हूं किन्तु घर के भेदिये को नहीं छोड़ सकता। बईबलपुर के हजारासिंह के कत्ल में भी आपका हाथ था। इसी प्रकार कई एक देशद्रोहियों को उनके अपराध का दण्ड दिया। मृत्यु का ही दण्ड नहीं दिया जाता था किन्तु अपराध न्यून होने पर नाक कान काटकर भी छोड़ दिया जाता था। एक दिन ये चारों वीर कपूरथला के बोमेली गांव के पास से होकर जा रहे थे तो किसी भेदिए ने पुलिस अफसर मिस्टर स्मिथ को सूचना दे दी। फिर क्या था तत्क्षण सेना के कुछ सैनिक और कुछ घुड़-सवार लेकर उन्होंने इनका पीछा किया। एक अन्य पुलिस अधिकारी फतेहखां भी पचास आदमी लेकर दूसरी ओर से भेजा गया। पुलिस अफसर स्मिथ को पीछा करते देख इन चारों ने चौंता साहब के गुरुद्वारे में आश्रय लेने का निश्चय किया। किन्तु पीछे से गोली चल रही थी अतः ये शत्रुओं से युद्ध करते हुए गुरुद्वारे की ओर हटने लगे। अभी तक फतेहखां के सिपाही एक ओर छिपे खड़े थे, किन्तु गोली चलने के शब्द को सुनकर वे सैनिक भी बाहर आ गए। गुरुद्वारे के चारों ओर एक नाला था। ये चारों वीर वीरतापूर्वक युद्ध करते-करते इस नाले के निकट पहुंच गये और जल में घुसे ही थे कि फतेहखां के सैनिकों ने गोली बरसानी आरम्भ कर दी। एक ओर तो केवल चार व्यक्ति और दूसरी ओर अस्त्र-शस्त्र से सजी हुई सेना थी। वे दो सेनाओं से कब तक युद्ध कर सकते थे। उदयसिंह और महेन्द्रसिंह गोली खाकर नाले के जल में गिर गये। कर्मसिंह किसी प्रकार से नाले को पार कर गए और शत्रुओं पर गोली बरसाने लगे। पुलिस ने आत्मसमर्पण करने के लिए कहा। उसने फतेहखां पर गोली चलाई वह चूक गई। किन्तु कर्मसिंह के माथे पर आकर गोली लगी वह सदा के लिए वहीं जल में गिरकर सो गया।

बिशनसिंह को कुछ अवसर मिल गया और वह झाड़ी में जा छिपा। झाड़ी के हिलने से सन्देह हो गया। दो सैनिक वहां देखने के लिए गए। उनके पास आते ही 'सत श्री अकाल' के नाद के साथ

ही बिशनसिंह ने उन पर तलवार से आक्रमण किया। एक सैनिक बुरी प्रकार से घायल हुआ। दूसरा पीछे हटा। किन्तु उसी समय एक गोली बिशनसिंह को लगी और वह नाले में गिरकर अपने साथियों के साथ ही वीरगति को प्राप्त हो गया। यह घटना प्रथम सितम्बर सन् १९२३ ई० को घटी।

पं० जगतराम हरियाणवी

पं० जगतराम का जन्म हरयाणा जिला होशियारपुर के नगमापरू नाम के कस्बे में हुआ। आप सदैव प्रसन्नवदन और मस्त रहते थे। मैट्रिक पास करके दयानन्द कालेज लाहौर में प्रविष्ट हुए, किन्तु परीक्षा देने से पूर्व आप उच्च शिक्षा प्राप्त करने के विचार से अमेरिका पहुंच गए। वहां पहुंचने पर देशभक्त ला० हरदयाल से आपकी भेंट हो गई। दोनों के हृदय में देशभक्ति की आग पहले ही विद्यमान थी। दोनों के मिलते ही और गुल खिल गया। दोनों में घनिष्ठ सम्बन्ध हो गया और दोनों मिलकर व्याख्यान तथा लेख द्वारा प्रचार करने लगे। अमेरिका में निवास करने वाले भारतीयों में देशभक्ति की आग लगा दी। कुछ दिन पश्चात् पं० जगतराम जी की यह धारणा हो गई कि भारत की सेवा भारत में रहकर अच्छी हो सकती है। इसी विचार से वे अमेरिका से अपने देश-बन्धुओं से विदाई लेकर भारत को चल दिए। भारत में आकर अपने विचार के कुछ युवकों का सङ्गठन बनाया और कार्य आरम्भ कर दिया। सन् १९१४ में पुलिस ने लाहौर षड्यन्त्र का केस पंजाब के अनेक नवयुवकों पर चलाया, इनमें पं० जगतराम भी थे। एक दिन पेशावर जाते हुए रावलपिण्डी में गिरफ्तार कर लिए गए। आप पर हत्या आदि का अभियोग चलाकर अदालत ने आपको फांसी का दण्ड दिया। आपने हंसते-हंसते फांसी का दण्ड सुना। इस समय एक बड़ी कारुणिक घटना घटी। इनके पिता और पत्नी दोनों दुःखी होकर अन्तिम भेंट करने जेल में आये। पण्डित जी जेल में भी बड़े प्रसन्न रहते थे। अपने पिता जी को देखकर बोले—पिता जी क्या आप मुझ से प्रसन्न हैं? पिता जी की आंखों से अश्रुधारा बह निकली और कहने लगे - "पुत्र! कल तुम फांसी के तख्ते पर लटकने जाते हो। मेरी आशाओं पर वज्रप्रहार होने वाला है। मेरा सर्वस्व लुट रहा है और तुम मुझ से ऐसा प्रश्न कर रहे हो।" पं० जगतराम ने उसी प्रकार प्रसन्नतापूर्वक कहा "क्या आपने गुरु गोविन्दसिंह के पुत्रों की बलिदान की कथा नहीं पढ़ी? ऐसे वीरों के लिये क्या आपके मुख से वाह! वाह! नहीं निकलता? फिर आप आज रो क्यों रहे हैं? यह वही नाटक तो है जो आपके ही घर खेला जा रहा है। इस पर तो आपको प्रसन्न होना चाहिए। मैं अपना यौवन मातृभूमि के चरणों पर अर्पण करने जा रहा हूं। क्या यह आपके लिये प्रसन्नता की बात नहीं है?" यह बातें सुनकर उनके पिता जी मौनभाव से पुत्र के मुख की ओर देखते रहे। वृद्ध पिता के अत्यन्त आग्रह करने पर पंडित जी ने हाईकोर्ट में अपील की। अपील में फांसी का दण्ड कालापानी के रूप में बदल दिया। पंडित जी की हजारों रुपये की सम्पत्ति जब्त कर ली गई। परिवार वालों को कहीं खड़े होने को स्थान नहीं था। पंडित जी का स्वास्थ्य सर्वथा नष्ट हो रहा था। आपकी चिकित्सा के लिए डा० अन्सारी, डा० खानचन्द्रदेव और डा० गोपीचन्द आदि को गुजरात के जेलखाने तक जाना पड़ा।

रोग से छुटकारा पाने पर अधिकारियों की कृपादृष्टि आप पर हुई और कई वर्षों तक लगातार जेल की अन्धेरी कोठरी में 'डण्डे गारद' में रखे गये। यहां तक कि छः वर्ष तक दीपक का प्रकाश भी देखने को नहीं मिला। सात वर्षों तक पहनने को जूता नहीं मिला, जिससे बिवाई फटने से आपको असह्य पीड़ा सहनी पड़ी। इस प्रकार से नाना कष्ट आपको सहने पड़े। किन्तु इन भयङ्कर कष्टों का

पंडित जी के मन पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा। इन कष्टों को अपना तप समझकर पंडित जी मस्त रहते थे। ज्यों-ज्यों आपको कष्ट दिये गये त्यों-त्यों आपका तपोबल बढ़ता गया। जिस जेलखाने में आप आते उसी के कैदी पंडित जी की ओर खिंचे चले आते थे। पंडित जी के व्यक्तित्व में महान् आकर्षण था। सभी कैदी आपके शिष्य बन जाते थे। आपके जीवन और उपदेशों का प्रभाव ऐसा पड़ता था कि कैदियों के जीवन में परिवर्तन होकर धार्मिकता आती थी। पंडित जी कैदियों के चरित्र को सुधारने का सदैव यत्न करते थे। जो उनको सदाचार का महत्त्व समझाया करते थे। जो कैदी रोगी हो जाते थे उनकी आप बड़ी लगन से सेवा किया करते। पीछे तो आपके इस व्यवहार से जेल के अधिकारी भी सदैव आप से प्रसन्न रहते थे।

यह गुण उनमें आर्यसमाज की कृपा से आये थे। यह दयानन्द कालिज के छात्र रह चुके थे। स्वामी दयानन्द सरस्वती के उपदेशों का आपके मानस पट पर गहरा प्रभाव पड़ा था। स्वामी विवेकानन्द और रामतीर्थ में भी आप श्रद्धा रखते थे। किन्तु आर्यसमाज की शिक्षा ने आपकी काया पलट दी थी। इसी कारण आपका चरित्र बड़ा उच्च और व्यक्तित्व बड़ा ही प्रभावशाली था। आप में प्रचार और सेवा की लगन थी। आप मनुष्यमात्र से प्रेम करते थे। सब को अपने सगे भाई के समान देखते थे। आपका मानस द्वेषरहित था। पंडित जी श्रमद्भगवद्गीता से भी प्रेम रखते थे।

आपने जेल में ही संस्कृत, गुरुमुखी और हिन्दी भाषा का अभ्यास किया था। आप इन भाषाओं में सुन्दर गद्य और पद्य लिख लेते थे। आप अपने उपदेशों में गीता के उद्धरणों का प्रयोग किया करते थे। गुजरात जेल में खान अब्दुल गफ्फार खां, डा० अन्सारी साहब, मौलवी मुफती किफायत, उल्ला साहब, खानचन्द्रदेव, डा० गोपीचन्द जी और चौधरी कृष्ण गोपाल आदि विद्वान् आपका गीतोपदेश सुनकर मुग्ध हो जाते थे। अब्दुल गफ्फार खां साहब तो आपकी गीता की व्याख्या पर इतने मुग्ध रहते थे कि प्रतिदिन एक घण्टा आप से गीता की व्याख्या सुना करते थे।

आज आप जीवित हैं वा नहीं यह कोई नहीं जानता। उधर पंजाब में भयङ्कर हत्याकाण्ड हो जाने से बहुत प्रयत्न करने पर भी उनका पता नहीं चला। पंडित जी की एक कविता जो अधूरी है, दी जाती है। उनका "खाकी" उपनाम तखुलुस था।

गर मैं कहूं तो क्या कहूं कुदरत के खेल की।
हैरत से तकती है मुझे दीवार जेल की॥
हम जिन्दगी से तंग हैं तिस पर भी आशना-
कहते हैं और देखियेगा धार तेल की।
जकड़े गये हैं किस तरह हम गम में क्या कहें,
बल खा के हम पे चढ़ गया, मानिन्द बेल की॥
'खाकी' को रिहाई तू दोनों जहां से दे।
आ ऐ अजल तू फांद के दीवार जेल की॥

*

श्री हरिकिशनसिंह

(ले० ब्र० सोमदेव)

श्री हरिकिशन का जन्म गल्लाढेर नामक ग्राम में हुआ था। आपके पिता का नाम गुरुदासमल था, जो गल्लाढेर के एक अच्छे जमींदार और रईस थे। हरिकिशन तीक्ष्ण-बुद्धि के होनहार युवक थे। आपने मिडल तक शिक्षा प्राप्त की थी।

हरिकिशन का खानदान विख्यात देश-प्रेमी था और इसी देश-प्रेम के अपराध में आपके भाई भगतराम पेशावर जेल में कैद रहे।

कहते हैं कि भाई की कैद ने श्री हरिकिशन को विशेष विक्षुब्ध कर दिया था और कभी-कभी हरिकिशन अपने पिता से कहते थे कि—"मैं काकोरी के शहीदों की तरह मरना चाहता हूं।" इसके पश्चात् आपने क्रांतिकारियों की पुस्तक पढ़नी आरम्भ कर दी, विद्या के अतिरिक्त आपको शिकार का भी बहुत शौक था। बन्दूक, पिस्तौल आदि बहुत अच्छी तरह चलाने आते थे। आप अपने गांव के आप-पास बन्दूक चलाने में प्रसिद्ध थे।

हरिकिशन अपने पिता को घर के कामों में भी सहायता देते थे। आपका स्वभाव शान्त था, परन्तु एक दिन अकस्मात् आपने घर छोड़ दिया और लापता हो गये।

आप २३ दिसम्बर १९३० को पञ्जाब विश्वविद्यालय के पारितोषिक वितरण उत्सव पर गये थे। विद्यालय के चान्सलर और गवर्नर परीक्षोत्तीर्ण छात्रों को उपाधि देने आये थे। विद्यालय के अन्दर और बाहर पुलिस का पहरा था। बिना टिकट के अन्दर कोई भी नहीं जा सकता था। इस प्रकार सभा की कार्यवाही निर्विघ्न समाप्त हुई। अन्त में सभा विसर्जित करके जब गवर्नर बाहर जा रहे थे तो अचानक नवयुवक ने हाल के अन्दर से फायर किया। गवर्नर की पीठ और भुजा पर दो गोलियां लगीं। इसके अभिरिक्त अन्य मनुष्यों को भी चोटें आईं और एक की मृत्यु भी हो गई। गवर्नर की मरहमपट्टी करने से वे अच्छे हो गये।

गोली चलाने वाला नवयुवक अभी हाल के बरामदे में खड़ा होकर गोलियां चला ही रहा था कि एक इन्स्पैक्टर ने उसे पकड़ लिया। इस नवयुवक का नाम हरिकिशन था।

जब जामा तलाशी ली तो हरिकिशन के पास एक पिस्तौल, छः गोलियां, एक चाकू और कुछ कागज प्राप्त हुए थे। ३ जनवरी १९३१ को लाहौर जेल में हरिकिशन के पहले मुकदमे की पहली पेशी हुई। हरिकिशन ने किसी भी प्रकार का वक्तव्य नहीं दिया और न किसी प्रश्न का उत्तर दिया। शान्त स्वभाव से अदालत में बैठे हुए थे, परन्तु अपना अपराध स्वीकार करते हुए आपने इतना अवश्य कहा था—

"यह नहीं बता सकता कि मैं लाहौर में कब आया, परन्तु मैं यहां गवर्नर को मारने के लिए आया था। मैं यह भी नहीं बताना चाहता कि लाहौर में कहां ठहरा था। मैं २३ दिसम्बर को टिकट के साथ यूनिवर्सिटी हाल में गया था। मैंने कुल छः फायर किये वे गवर्नर पर किये और अपने आपको बचाने के लिए न कि इस विचार से कि इससे कोई मारा जाये। अदालत में जो पिस्तौल

और गोलियां आदि पेश की गई हैं, वे मेरी हैं और कुछ नहीं कहना चाहता और न यह बताना चाहता हूं कि मैंने यह कार्य क्यों किया ? मैंने जो कुछ किया है वह अपनी इच्छा से किया है।

अदालत ने उसी दिन इस व्यक्ति को सेशन्स को सौंप दिया। इसके पश्चात् हरिकिशन के पिता भी लाहौर आगए। उस समय हरिकिशन ने भूख हड़ताल कर रखी थी। परन्तु पिता के अनुरोध करने पर उसने भूख हड़ताल तोड़ दी। इसके पश्चात् पिता के कहने पर मुकद्दमा चलाना आरम्भ कर दिया। २१ जनवरी १९३१ ई० को सेशन्स जज की अदालत में पेशी हुई। इस पेशी पर वकीलों ने धाराएँ ३०२ और ३०७ के अनुसार अपराधी बताया और साथ ही यह भी साक्षी दी कि कच्ची आयु का ध्यान देकर की दया जाये। परन्तु जज ने दया को अनुचित समझ हरिकिशन को फांसी की आज्ञा सुना दी। हरिकिशन ने दण्ड सुनकर गम्भीरता से उत्तर दिया—"बहुत अच्छा।"

इसके पश्चात् सरकार से फांसीदण्ड हटाने की अनेक प्रार्थनायें की गईं परन्तु सरकार ने कोई भी प्रार्थना स्वीकार नहीं की। ८ जून १९३१ को हरिकिशन के माता-पिता उनसे अन्तिम बार मिलने के लिए मियां वाली जेल में गये थे। उस समय हरिकिशन के मस्तिष्क पर प्रसन्नता थी, उन्होंने अन्तिम इच्छा यह प्रकट की थी कि मेरी लाश सम्बन्धियों को दे दी जाये और मेरा अन्तिम संस्कार वहीं हो जहां कि सरदार भगतसिंह आदि का हुआ था और मेरा पुनर्जन्म इसी देश में हो, ताकि मैं मातृभूमि को गुलामी के बन्धन से मुक्त करने में भाग ले सकूं।

परन्तु दुःख की बात है कि अधिकारियों ने उनकी अन्तिम इच्छा भी पूरी नहीं की। परिजनों के प्रार्थना करने पर भी शव न दिया गया। यहां तक कि उन्हें जेल के पास भी नहीं जाने दिया।

परन्तु आश्चर्य की बात यह है कि उनके भाई सरकारी कचहरी में नौकरी पर थे उन्हें वहां से हटा दिया गया और अन्तिम साक्षात्कार करने के लिए ८ जून को हथकड़ी लगाकर मियांवाली जेल में लाये गए। आपके भाई भगतराम ने अधिकारियों से बहुत प्रार्थनायें कीं, परन्तु एक भी न सुनी गई। अन्त में सुपरिण्टेण्डेंट के पास गए। उन्होंने इतना ही बताया कि हिन्दू धर्मानुसार संस्कार किया जायेगा।

८ तिथि को ११ बजे इन लोगों को मिलने का समय मिला था। वह भी केवल २० मिनट। मिलनेवालों को अन्दर आने की आज्ञा न देकर दो सौ फीट की दूरी पर धूप में मिलने की आज्ञा दी। तब मनुष्यों ने स्पष्ट निषेध कर दिया कि इतनी दूर से और ऐसी चिलचिलाती धूप में हम कैसे बात कर सकते हैं। इतना कहने पर जेल के अधिकारियों ने अन्दर जाने की आज्ञा दे दी। तब मिलने वालों को हरिकिशन ने वही इच्छा प्रकट की जो मैं ऊपर लिख चुका हूं।

इसके पश्चात् युवक श्री हरिकिशन को ९ जून सन् १९३१ को मियांवाली जेल में फांसी के तख्ते पर झुला दिया गया। फांसी के पश्चात् हरिकिशन के पिता ने फूल डालने के लिए अधिकारियों को तार किया परन्तु कोई उत्तर नहीं मिला। अन्त में मैजिस्ट्रेट ने कहा कि प्रातःकाल तक फूल आदि प्रवाह नहीं होगा। परन्तु अन्त में मालुम हुआ कि आधी रात को मुसलमानों की कब्र में जला दिया गया और जहां अन्त्येष्टि संसार किया वहां पुलिस का पहरा लगा दिया। फांसी के समय हरिकिशन का भार नौ पौंड बढ़ गया था।

———

शहीदशिरोमणि मृत्युञ्जय वीर भगतसिंह

(ब्र० महादेव)

भारतवर्ष के राष्ट्रीय इतिहास में वीरवर भगतसिंह का जीवन और बलिदान युग-युगान्तरों तक तथा कोटि-कोटि पुरुषों को सत्प्रेरणा देता रहेगा।

आप किशोर अवस्था से ही क्रांतिकारी आन्दोलन के अत्यन्त सम्पर्क में थे। इसका कारण आपके परिवार की क्रांतिकारी परम्परायें थीं। आपके पितामह सरदार अर्जुनसिंह जी जन्म से सिख होते हुए भी आर्यसमाज के सक्रिय कार्यकर्ता और प्रचारक थे। यह उस युग के लिए एक असाधारण बात थी। क्योंकि उस समय आर्यसमाज और सिक्खों में बड़ा विरोध था। अतः ऐसे समय जबकि प्रतिपक्षी के प्रति तीव्र घृणा और द्वेष की लहर बह रही हो, केवल इसलिए कि प्रतिपक्षी के समाज में राष्ट्रोद्धार की भावनायें दिखाई दे रही हैं। अपने ग्राम परिवार और आत्मीयों का विरोध सहन करते हुए भी उसका समर्थक बन जाना कैसे उत्कट साहस का कार्य था। इसका अनुमान सरलता से लगाया जा सकता है।

श्री अर्जुनसिंह जी कोई भी इस प्रकार का अवसर खाली न जाने देते थे जबकि सिख जनता पर आर्यसमाज के वैदिक सिद्धान्तों की सच्चाई का प्रभाव डाला जा सकता हो। इस विषय में आपका उत्साह किस प्रकार का था और आप में कहां तक वैदिक धर्म में श्रद्धा थी, उसका अनुमान निम्न घटना से लगाया जा सकता है।

एक बार विवाहोत्सव में सम्मिलित होने के लिए आपको अपने ग्राम से लगभग ६० मील दूरी पर जाना पड़ा। संयोगवश जब आप उत्सव में पहुंचे, ठीक उसी समय कोई पुरोहित सिख-आर्य-समाज के सिद्धान्तों की, विशेषतः अमर ग्रंथ सत्यार्थप्रकाश की कटुलोचना कर रहा था। आपने तुरन्त ही उस पुरोहित को चुनोती दी कि वह जो सत्यार्थप्रकाश के उदाहरण उपस्थित कर रहा है, वे सत्यार्थप्रकाश में नहीं हैं और पुरोहित सत्यार्थप्रकाश को बदनाम करने के लिए कल्पित उदाहरण उपस्थित कर रहा है।

उस पंजावी ग्राम में और जाट सिख के मध्य में इस प्रकार की चुनौती देना साधारण काम नहीं था। पुरोहित ने अपनी पूरी शक्ति के साथ आपके कथन का विरोध किया और यह घोषणा की कि यदि सत्यार्थप्रकाश सामने लाया जाये तो सिद्ध कर दूंगा कि जो मैंने उदाहरण दिये हैं वे सत्यार्थ- के हैं वा नहीं।

इसमें कुछ सन्देह नहीं कि पुरोहित ने बहुत ही सुरक्षित मार्ग अपनाया था। क्योंकि उस पिछड़े हुए युग में पंजाब के इन ग्रामों में सत्यार्थप्रकाश तो दूर ही रहा, कोई भी पुस्तक नहीं मिलती थी। इस कारण सत्यार्थप्रकाश उपलब्ध नहीं हो सका और पुरोहित उसी भावना से विवाह कार्य सम्पन्न कराता रहा। अकस्मात् कुछ अन्य व्यक्तियों ने अनुभव किया कि अर्जुनसिंह जी दिखाई नहीं दे रहे। परन्तु इस बात पर अधिक ध्यान नहीं दिया गया। क्योंकि यदि कोई व्यक्ति विवाद में हार जाता है तो उसका लोगों की आंखों से छिपना उसके लिए एक स्वाभाविक सी बात है। अतः उन लोगों ने कल्पना की कि यहीं किसी कोठरी में विश्राम कर रहे होंगे।

परन्तु दूसरे दिन प्रातः ही पुरोहित जी विपत्ति में पड़ गये। क्योंकि अर्जुनसिंह जी रातों-रात साठ मील जाकर साठ मील वापिस लौटकर अपनी सत्यार्थप्रकाश की प्रति ले आये। साथ ही यह भी स्मरण रहे कि आप पहले दिन साठ मील यात्रा कर चुके थे। इतना होते हुए भी आप यह सहन न कर सके कि कोई आर्यसमाज के विरुद्ध मिथ्या प्रचार आपके सामने करे और फिर बच निकले। अन्त में पुरोहित ने क्षमा मांगी और अपना पिण्ड छुड़ाना चाहा। आप नित्य हवन किया करते थे। जहां जाते वहां पोटली में हवनकुण्ड और हवन सामग्री बांध ले जाते थे।

आपके तीन पुत्र हुए उनके नाम इस प्रकार हैं श्री किशनसिंह, श्री अजीतसिंह और श्री स्वर्णसिंह। इन तीनों में ही अपने पिता जी की भांति क्रांति की भावनायें देदीप्यमान थीं। बीसवीं सदी के आरम्भ में इन तीनों भाइयों ने गर्म राजनीतिक दल का बीज वपन किया था। हमें यह भी ध्यान रखना चाहिए कि अन्य प्रान्तों की अपेक्षा पञ्जाब में यह कार्य अत्यन्त दुष्कर था। क्योंकि एक तो पञ्जाब भारतीय फौजों में वीर भेजने का मुख्य केन्द्र था। अतः अंग्रेज सरकार यह किञ्चित् मात्र भी नहीं सहन कर सकती थी।

इतना होते हुए भी श्री किशनसिंह जी ने अपने दोनों भाइयों के साथ इस कठिन कार्य का बीड़ा उठाया और अन्य प्रान्तों की भांति इस प्रान्त में भी स्वराज्य की ज्वालायें उठने लगीं। ये ज्वालायें किसान वर्ग तक जा पहुंचीं। सारे पंजाब में यह स्थिति पैदा कर दी कि श्री अर्जुनसिंह जी के तीनों वीर पुत्रों को पंजाब सरकार ने पकड़ना आवश्यक समझा, इसके पश्चात् इन वीरों का जीवन कभी कारावास में, कभी गुप्तावस्था में व्यतीत होने लगा। इन तीनों भाइयों में से श्री स्वर्णसिंह जी जेल की यातनाओं के पश्चात् पूर्ण युवावस्था में ही इस संसार से चल बसे। उसके पश्चात् श्री अजीतसिंह जी सन् १९०८ में भारत से अचानक विदेश चले गये और वहां ३८ वष तक घोर कठिनाइयों का सामना कर भारत माता की मुक्ति का कार्य करते रहे। अन्त में १९४६ में जबकि ब्रिटिस सरकार अपना बिस्तर गोल कर रही थी उसी समय बड़ी कठिनाइयों से आप भारत आ गये। किन्तु कुछ दिन पश्चात् १४ अगस्त १९४७को जबकि अगले दिन भारत अपना स्वतन्त्रता दिवस मनाने का उपक्रम कर रहा था उस समय आप दूसरे लोक में चल दिए। इस प्रकार अब श्री किशनसिंह ही रह गये। आपका भी स्वर्गवास अभी कुछ दिन पूर्व ही हुआ है। आप में स्वदेश भक्ति कूट-कूटकर भरी हुई थी। आप मरते समय तक अपनी मातृभूमि के लिए चिन्तित थे।

वीरवर भगतसिंह जी का जन्म आश्विन शुक्ला त्रयोदशी शनिवार सम्वत् १९०४ में लायलपुर जिले के बांगान नामक ग्राम में हुआ था जो पंजाब राज्य में स्थित है। आपके जन्म से पूर्व आपके पिता जी तथा चाचा दोनों माण्डले जेल के द्वीपान्तर वास में थे। जिस दिन आपका जन्म हुआ उसी दिन आपके पिता जी तथा चाचा भी बन्धन से मुक्त होकर आये। इसी कारण आपको "भाग्य वाला" कहते थे। आगे चलके आपका भगतसिंह नाम पड़ा। आपकी बाल्यावस्था दादी तथा माता जी की देखरेख में व्यतीत हुई। ये दोनों महिलायें धार्मिक थीं। अतः आप पर धर्म का पर्याप्त प्रभाव पड़ा। आपकी मेधा शक्ति बहुत अच्छी थी। आपने तीन वर्ष की अवस्था में गायत्री मन्त्र याद किया था। ५ वर्ष की अवस्था में आप स्कूल में पढ़ने चले गये। आपका यज्ञोपवीत संस्कार शास्त्रार्थ महारथी पं० लोकनाथ जी तर्कवाचस्पति द्वारा हुआ था। एक बार आपको अपने घर वालों

के साथ लाहौर जाने का अवसर मिला। लाहौर में आपके पिता जी के परम मित्र लाला आनन्द-किशोर जी यहां आये थे। लाला जी ने आपको बड़े प्रेम से उठाकर अपने कन्धे पर रखा और थपकियां देते हुए पूछा—"क्या करते हो ?" आपने अपनी तोतली जबान में उत्तर दिया—"मैं खेती करता हूं।" लाला ने पूछा—"तुम बेचते क्या हो ?" आपने उत्तर दिया—"मैं बन्दूक बेचता हूं।" यह बातचीत इतनी प्यारी थी कि इनका स्मरण बड़े होने पर भी हुआ करता था। बचपन में आप बड़े खिलाड़ी थे। बचपन में ही आप क्रांति दल बनाकर अपने साथियों के साथ युद्ध करते थे। आपको वीरतापूर्ण खेलों में अधिक रुचि थी, बालकपन से आपको तलवार बन्दूकादि से बड़ा प्रेम था। एक बार अपने पिता के साथ खेत में चले गये। बालक भगतसिंह ने पिता से पूछा कि "पिता जी ये लोग क्या कर रहे हैं ?" पिता ने उत्तर दिया कि अन्न बो रहे हैं। इस पर आपने कहा कि अनाज तो बहुत उत्पन्न होता है, परन्तु तलवार, बन्दूकादि सब जगह नहीं होतीं। अतः ये तलवार आदि क्यों नहीं बोते ?

आगे शिक्षा पाने के लिए आपको पिता जी ने दयानन्द ऐंग्लो वैदिक विद्यालय (डी० ए० वी० स्कूल) में प्रवेश कराया। वैसे तो सिख परिवार के बालक प्रायः खालसा स्कूल में शिक्षा प्राप्त करते हैं क्योंकि उनका यह शिक्षणालय जातीय था। परन्तु सिख होते हुए भी आपका परिवार आर्यसमाज की ओर था अतः आपने अपने पुत्र को डी० ए० वी० स्कूल में ही भर्ती कराया।

दयानन्द ऐंग्लो वैदिक विद्यालय में आपने नवीं कक्षा पास की। इसी समय १९२१ में महात्मा गांधी ने असहयोग आन्दोलन आरम्भ किया। सारे देश में सरकारी तथा सरकारी सहायता प्राप्त स्कूलों का बहिष्कार आरम्भ हुआ। इसलिए आप भी डी० ए० वी० कालेज छोड़ भारतीय विद्यालय में चले गए। उस समय उसके प्रबन्धकर्ता स्व० भाई परमानन्द जी थे। आपने भगतसिंह की परीक्षा लेकर एफ० ए० में प्रवेश कराया। सन् १९२२ में एफ० ए० की परीक्षा पास की, उसी समय आपका श्री सुखदेव तथा अन्यान्य क्रांतिकारियों से परिचय हुआ। उधर घरवालों ने आपके विवाह का आडम्बर रचा। जब इसकी सूचना आपको मिली तब आप अपना बिस्तर-बोरिया उठाकर लाहौर से अन्यत्र चले गये और पर्याप्त दिन के पश्चात् अपने आप पिता को पत्र लिखा जिसमें लिखा था कि "मैं विवाह करना नहीं चाहता, इसी कारण मैंने घर छोड़ दिया है आप मेरी कोई चिन्ता न करें। मैं बहुत अच्छी अवस्था में हूं।"

लाहौर से श्री जयचन्द्र विद्यालंकार से पत्र लेकर आप गणेशशङ्कर विद्यार्थी के पास कानपुर गये। वहां प्रताप प्रेस में कार्य करने लगे। वहां अपना नाम बलवान् रखा था। इसी नाम से आप लेखादि लिखा करते थे। उधर आपके घरवालों ने घर में हाहाकार मचा रखा था। आपकी दादी जी को बेहोशी के दौरे आने लगे थे। उधर आपका क्रांतिकारियों से पर्याप्त परिचय हो गया था। आप पंजाबी प्रान्त में पैदा होने पर भी हिन्दी से बहुत प्रेम करते थे। आप किशोर अवस्था से ही हिन्दी की पुस्तक पढ़ लिख लेते थे। इस प्रकार धीरे-धीरे अभ्यास करके साहित्यकार भी बन गये थे।

एक बार हिन्दी-साहित्य सम्मेलन ने किसी एक विषय पर सर्वोत्तम निबन्ध लिखने के लिए ५० रु० पुरस्कार की घोषणा की। उसमें तीन व्यक्तियों का नम्बर पहला आया, क्योंकि तीनों के निबन्ध एक ही कोटि के माने गये। उस में श्री भगतसिंह और यशःपाल एवं अन्य कोई था। इससे आपको हिन्दी साहित्य पर कितना अधिकार था, यह मालूम होता है।

इसी साल गङ्गा और यमुना में भयङ्कर बाढ़ आई थी। संयुक्त प्रान्त के कई स्थानों में गांव के गांव इस भयङ्कर बाढ़ में नष्ट-भ्रष्ट हो गये। श्री बटुकेश्वरदत्त उन दिनों कानपुर में ही रहते थे। बाढ़ पीड़ितों की सहायता के लिए श्री दत्त जी ने एक समिति स्थापित की, जिसके सरदार भगसिंह भी सदस्य थे। बड़े उत्साह और लगन से उनकी सेवा की। भगतसिंह और दत्त जी के एक साथ अधिक दिन काम करने से आपका घनिष्ठ सम्बन्ध हो गया। दोनों के कार्य का कानपुर जिले पर अमिट प्रभाव पड़ा और आपको बड़ी श्रद्धाभक्ति से देखने लगे। भगतसिंह को एक स्कूल का प्राध्यापक नियुक्त किया। इस समय आपका पता आपके पिता जी को मिला। आपके मित्र को तार देकर कहा कि भगतसिंह को कह दो कि माता जी अत्यन्त बीमार हैं। माता जी का समाचार सुनते ही आप पंजाब की ओर चल दिये और चलते समय तार कर दिया कि मैं आ रहा हूं।

लायलपुर में आपने एक भाषण दिया। जिसमें अंग्रेज को मारने वाले गोपीनाथ की सराहना की। इस पर पुलिस ने आप पर अभियोग चलाया। आपके पिता को भी यही इच्छा थी कि भगतसिंह जेल का कुछ अनुभव करे। वह भी इच्छा पूर्ण न हो सकी। फिर आप लाहौर चले गये और लाहौर से अमृतसर। आपने लाहौर में "अकाली" नामक समाचार पत्र के कार्यालय में कार्य आरम्भ किया। वहां पर पर्याप्त समय तक सम्पादक का काम करते रहे। परन्तु किसी कारणवश लाहौर जाना पड़ा। वहां पर पुलिस आपकी ताक में थी ही अतः वहां आपको पकड़ लिया और छः हजार की जमानत पर छोड़ दिया गया।

सन् १९२७ में आपने अपने पिता की आज्ञा से लाहौर में विशुद्ध दूध पहुंचाने के लिए एक कारखाना खोला। यह कारखाना कुछ दिन तो अच्छा चला परन्तु आपके जीवन का उद्देश्य दूध बेचना न था। अतः आप लापता हो गये। जब आप घर आये तो पिता जी ने दो सोटी मार दी। इसका फल यह हुआ कि वह दूध का कारखाना समाप्त हो गया।

लाहौर षड्यन्त्र वाले मुकद्दमे में एक दिन सरकारी वकील के किसी कथन पर भगतसिंह को हंसी आगई। इस सरकारी वकील ने अदालत से शिकायत की कि भगतसिंह हंसकर अदालत की तौहीन कर रहा है। वीरवर ने हंसकर उत्तर दिया—"मुझे तो ईश्वर ने हंसने के लिए ही पैदा किया है। मैं तमाम जिन्दगी हंसता रहूंगा, हंसता रहूंगा। आज अदालत में हंस रहा हूं और कल ईश्वर ने चाहा तो फांसी के तख्ते पर भी हंसूंगा। वकील साहब! इस समय तो मेरे हंसने की शिकायत कर रहे हैं, परन्तु जब मैं फांसी के तख्ते पर हंसूंगा तब किस अदालत से शिकायत करेंगे ?

३० अक्टूबर १९२८ को लाहौर में साईमन कमीशन आने वाला था। भारत के अपमान का जीवन्त प्रतीक साईमन कमीशन आज सरदार कर्तारसिंह की लाश पर पांव रखकर पंजाब के निवासियों से यह पूछने आया था कि क्या सचमुच स्वराज्य चाहते हैं? और क्या स्वराज्य के योग्य भी हैं। इस पर लाहौर की जनता ने यह निश्चय किया था कि जिस प्रकार देश के अन्य भागों ने बहिष्कार किया है उसी प्रकार यहां किया जायेगा। इस पर अत्याचारी सरकार ने इसको कुचलने के लिए धारा १४४ की घोषणा कर दी। यह समाचार प्रत्येक मनुष्य में फैल गया कि यह भी "जलियांवाला बाग बन जावेगा। बड़े बच्चों को धमका रहे थे कि आज बाहर न निकलना। परन्तु युवकों का हृदय उछल रहा था कि कब जलूस निकले और हम उसमें सम्मिलित होवें। शहर के चारों ओर पुलिस ही

पुलिस दिखाई दे रही थी। कायर देखते हैं तो कहते हैं कि यह पुलिस हमारे शरीर को मार देगी, परन्तु क्या वह हृदय के भावों को भी मार देगी ? ठीक समय पर जलूस निकला। चारों ओर मनुष्य ही मनुष्य दिखाई देने लगे। साथ ही पञ्जाब के सबसे अधिक सम्माननीय लाला लाजपतराय जी इस जलूस का नेतृत्व कर रहे थे और सबसे अगली पंक्ति में थे। इस वयोवृद्ध मूर्ति को देखकर सभी श्रद्धा से सिर झुका लेते थे। आपको "स्वाधीनता" शब्द पर जेल जाना पड़ा था तभी आपने सरकार से वीरतापूर्वक लोहा लिया था। जलूस स्टेशन पर पहुंचा। पंजाब की राजधानी उनके आगमन को किस दृष्टि से देखती है ? "साईमन गो बैक" और "वन्दे मातरम्" की ध्वनि से आकाश गूञ्ज उठा। सामने पुलिस का मोर्चा था, परन्तु पुलिस की कोई परवाह न करते हुए आगे चलते ही रहे। अकस्मात् पुलिस ने आगे बढ़कर लाठी चार्ज कर दिया। उस में एक गोरी कौम वाले अधिकारी ने आकर लाला लाजपतराय जी पर डण्डे बरसाने आरम्भ कर दिए। अन्य दर्शक चकित हुए। लाठी पड़ती रही परन्तु पीछे नहीं हटे, छाती तानकर वहीं खड़े रहे। इस पर नवयुवकों ने आगे बढ़कर यह वार अपने ऊपर लिया। कुछ देर पश्चात् यह अधिकारी वहां से चल दिया। चलते समय लाला जी ने पूछा—आपका क्या नाम है ? उसने मुंह को पिचकाया और घृणा पैदा कर कुछ न कहा। उसी समय एक नवयुवक ने मन ही मन में यह सोचा कि "मत बता तू नाम अपना ? लेकिन एक दिन तेरा नाम गली गली में मारा मारा फिरेगा। उस नवयुवक की आंखें अङ्गारे जैसी लाल हो रही थीं। उसका सारा शरीर भावावेश में कांप रहा था। उसी दिन सायंकाल एक विराट् सभा में भाषण देते हुए लाला जी ने कहा था कि "मेरे ऊपर की गई चोट ब्रिटिश साम्राज्य के कफन के लिए कील सिद्ध होगी।" वह युवक भी उसी सभा में विद्यमान था और यह विचार रहा था कि क्या सचमुच ही इस देवता का शाप अवश्य ही सफल होगा ? इस काण्ड के केवल १० दिन बाद ही १७ नवम्बर १९२८ को लाला जी उन घातक चोटों के कारण चल बसे।

इधर लाला जी की मृत्यु पर शोकसभायें होने लगीं। एक सभा में चितरञ्जनदास जी की धर्म पत्नी माता बसन्ती देवी ने कहा "मैं जब यह सोचती हूं कि किसके हिंसक हाथों ने स्पर्श करने का साहस किया था एक ऐसे व्यक्ति के शरीर को, जो इतना वृद्ध, इतना आदरणीय, भारत माता के तीस कोटि नर-नारियों को इतना प्यारा था तब मैं आत्मापमान के भावों से उत्तेजित होकर कांपने लगती हूं। क्या देश का यौवन और मनुष्यत्व आज जीवित है ? क्या वह यौवन और मनुष्यत्व का भाव इस कुत्सा को उसकी लज्जा और ग्लानि अनुभव नहीं करता है ? मैं भारतभूमि की एक अबला हूं। इस प्रश्न का उत्तर चाहती हूं। अतः युवक समाज आगे आकर उत्तर दे।"

भारत युवक-समाज ने सचमुच ही इसका उत्तर दिया। इस भीषण काण्ड के ठीक तीन मास पश्चात् १७ दिसम्बर, सन् १९२८ को उक्त अंग्रेज अधिकारी मि० साण्डर्स संध्या के लगभग ४। बजे ज्यों ही अपने दफ्तर से मोटर साइकल पर चला त्यों ही सामने से किसी के रिवाल्वर की गोली उसके सीने में आकर लगी। वह नीचे घायल होकर गिर पड़ा। पड़ते ही दो गोली और आकर लगीं। काम समाप्त हो गया। ये तीनों वीर मारकर वापिस आ गए। इन तीनों वीरों के नाम यह थे—श्री वीरवर भगतसिंह जी, श्री राजगुरु जी, श्री चन्द्रशेखर आजाद। तीनों साण्डर्स को यमलोक पहुंचाकर वहां से डी० ए० वी० कालेज के भोजनालय में गये। वहां पर्याप्त समय रहकर वहां से चल दिये।

दूसरे दिन लाहौर में सभी प्रमुख स्थानों पर लाल रङ्ग के छपे हुए इस्तिहार लगे हुए थे। जिनमें लिखा हुआ था "साण्डर्स मारा गया। लाला जी की मृत्यु का बदला ले लिया गया।"

राष्ट्रीय अपमान के इस बदले से राष्ट्र के हृदय में एक गौरव उत्पन्न हुआ। साण्डर्स के मारे जाने पर सरकारी अधिकारियों में बड़ी हल-चल मच गई। अपराधियों की शीघ्रातिशीघ्र खोज करने का कठिन आदेश दिया। पुलिस ने तत्काल ही लाहौर से बाहर जाने वाली सभी सड़कों पर अपना राज्य जमा लिया और स्टेशन पर भी विशेष गुप्तचर नियुक्त कर दिये। लाहौर के बड़े स्टेशन पर एक नौजवान सरकारी अधिकारी एक युवती के साथ दीख पड़ा। उसके साथ में टिफिन कैरियर लिए एक खानसामा भी था। उसकी चपरास पर उक्त अफसर का नाम लिखा हुआ था। थोड़ी देर में ट्रेन आई और वह अफसर कुलियों को इनाम देता हुआ प्रथम श्रेणी के डिब्बे में उस युवती के साथ जा बैठा। खानसामा भी सर्वेण्ट क्लास में बैठ गया। ट्रेन देहली की ओर चल पड़ी। यहां पचासों खुफिया आदमी विद्यमान थे और अनेक तो ऐसे थे जो भगतसिंह जी के कार्यों पर दृष्टि रखते हुए महीनों आपके साथ रहे थे। फिर भी वे यह न जान सके कि यह अफसर और कोई नहीं वही वीरवर भगतसिंह है जिसकी खोज में हम मारे-मारे फिरते हैं और यह युवती वही क्रांतिकारिणी समिति की सदस्या थी जिसका शुभ नाम सुशीलादेवी था और जो खानसामा था वह राजगुरु था। इस प्रकार ये बचकर निकल आये। इधर आकर आपने पर्याप्त क्रांति के कार्य किये। कई जगह अपनी विचारधारा के केन्द्र बनाये। आपने कलकत्ता के कार्नवालिस स्ट्रीट आर्यसमाज में कुछ समय निवास किया। वहां क्रांति का कार्य करते थे। जब आप वहां से आये तब तुलसीराम चपड़ासी को अपनी थाली, कटोरी देकर आये और कहा कि कोई देशभक्त आवे तो उसको इनमें भोजन करा देना। इस प्रकार कार्य चल रहा था। इधर केन्द्रीय विधान सभा में "ट्रेड डिस्ट्रिब्यूट" का बिल पास हो रहा था। यह जनता के लिए अच्छा न था। इससे जनता अत्यधिक असन्तुष्ट थी। अतः आपने इसका विरोध करने की ठानी, विरोध इस प्रकार का कि जब यह बिल पास हो तब सभा भवन में बम्ब फैंका जाये। इस कार्य के लिए आप और अपने अनन्य मित्र बटुकेश्वरदत्त को चुना। ९ अप्रैल १९२९ को इस बिल पर मत पड़ने वाले थे। उसी दिन ये दोनों वहां जा धमके। ठीक ग्यारह बजे अध्यक्ष ने घण्टी बजाकर दो विभागों में बांटने को कहा, यह स्मरण रहे कि यह बिल अध्यक्ष महोदय ने पूर्व भी ठुकराया था। परन्तु कौंसिल आफ स्टेट ने इसे फिर विचारार्थ भेजा था। श्रीयुत पटेल ने बड़ी मर्म वेदना के साथ यह देखकर कि विरोधियों की संख्या अधिक है अतः अपने सधे हुए कण्ठ से कहा "यह बिल पास" इतने में एक बम का धमाका हुआ। सभास्थ जनता घबरा उठी। इतने में दूसरा बम भी आ गया, सभा भवन धुएं से भर गया। इस आवाज के होते ही सदस्य वर्ग में भगदड़ मच गई। अध्यक्ष के पास बैठे हुए सर जान साईमन पल भर में छिप गये। होम मेम्बर सर जेम्स केसर कुर्सियों के नीचे छिपे। केवल दो सदस्य अपने स्थान पर स्थित थे। पं० मोतीलाल नेहरू और पं० मदन-मोहन मालवीय।

जब धुआं कुछ साफ हुआ तो लोगों ने देखा कि महिलाओं की गैलरी के पास यूरोपियन वेशभूषा से सुसज्जित दो युवक खड़े हुए मुस्करा रहे थे। जब सभा में कुछ शान्ति हुई तब दोनों ही युवकों ने लाल पर्चे वितरित करने आरम्भ कर दिए। जिसका प्रथम वाक्य था "बहरों को सुनाने के लिए

जोर से बोलना पड़ता है" और इसके नीचे "हिन्दुस्तान सोशलिस्ट रिपब्लिकन" के अध्यक्ष के हस्ताक्षर थे। पर्चे वितरण के पश्चात् यदि आप भागना चाहते तो अवश्य भाग सकते थे। परन्तु इन दोनों का कार्यक्रम और ही था। अतः वहीं खड़े रहे। कुछ देर बाद विधान सभा को घेर लिया गया परन्तु इन दो युवकों के पास कौन जावे। देखा कि ये हम से डरते हैं, इन दोनों ने भरे हुये रिवाल्वर अपने पास में से निकाल कर बगा दिए। फिर क्या था? पुलिस वाले इन वीर युवकों को वश में कर ले गये। इन युवकों ने चलते समय "इन्कलाब जिन्दाबाद" "साईमन का नाश हो" इन नारों से आकाश गुञ्जा दिया। इस समय इन युवकों के मुख पर कोई भय न था। वे एक स्वाभाविक मुस्कराहट के साथ अपने कार्य को सुचारु रूप से कर सकने पर सन्तोष प्रकट कर रहे थे।

इसके पश्चात् आप दोनों को देहली पुलिस चौकी में ले जाया गया। वहां आप दोनों को अलग-अलग ही रखा गया। कुछ देर बाद सी० आई० डी० विभाग का एक अधिकारी आया और कहा "तुम्हारे जैसे लड़कों को तो मैं मिनटों में ठीक कर देता हूँ। अपने आपको तुम क्या समझते हो? तुम्हारे साथियों ने सब कुछ स्वीकार कर लिया। यदि भला चाहते हो तो तुम भी बताओ नहीं तो··· ·······" इतना कहकर आपको वश में करना चाहा, परन्तु दाल न गली।

नौकरशाही इन वीरों को अपने मार्ग से विचलित न कर सकी। इन पर मुकदमा चलाया गया। ७ मई से मुकदमा चला, जो १२ जून सन् १९२९ को सेशन में जाकर समाप्त होगया। वीरवर भगतसिंह और बटुकेश्वरदत्त ने एक संयुक्त वक्तव्य दिया—"क्रांतिकारी दल का उद्देश्य देश में मजदूरों तथा किसानों का समाजवादी राज्य स्थापित करना है। क्रांतिकारी समिति जनता की भलाई के लिए लड़ रहीं है।" वीरवर भगतसिंह और बटुकेश्वरदत्त ने जो वक्तव्य अदालत में दिया वह बहुत ही विद्वत्तापूर्ण था। इससे पूर्व किसी भी क्रांतिकारी ने अदालत में खड़े होकर ऐसा वक्तव्य नहीं दिया।

२३ अक्तूबर सन् १९२८ को जो बम दशहरे के मेले पर फटा था, उससे दस तो यमलोक पहुंच गये और ३० घायल हो गये। नौकरशाही ने इस मामले की छानबीन करनी शुरु की। जिसके फलस्वरूप पता लगा कि मि० साण्डर्स की हत्या करने में वीरवर भगतसिंह का भी हाथ था। इस सम्बन्ध में १६ व्यक्तियों पर केस चला। बाकी ने अनशन किया। अनशन में यतीन्द्रनाथ शहीद हो गये। इससे मुकदमे में काफी समय लग गया। इधर जनता में प्रचार हो गया। और भी जागृति हो गई। सरकार ने एक आर्डिनेन्स गजट में प्रकाशित किया। मुकदमा मैजिस्ट्रेट से हटकर तीन जजों के एक ट्रिब्यूनल्ल के सामने आया। इन तीन जजों की अदालत को यह अधिकार दिया गया कि अभियुक्तों की अनुपस्थिति में भी उन पर मुकदमा चलाया जाये। ट्रिब्यूनल ने इस मुकदमे का फैसला ७ अक्तूबर सन् १९३० को इस प्रकार सुनाया—"वीरवर भगतसिंह, शिवराम राजगुरु और सुखदेव को फांसी। विजयकुमारसिंह, किशोरीलाल, शिव वर्मा, गयाप्रसाद, जयदेव और और कमलनाथ त्रिवेदी को आजन्म कालापानी की सजा। कुन्दनलाल को ७ साल और प्रेमदत्त को ३ साल की कैद।"

वीरवर भगतसिंह की फांसी के समाचारों पर देश के कोने-कोने से रोष प्रकट किया गया। हड़तालें हुईं। बम्बई में तो ट्रामें तक रुक गईं। ११ फरवरी सन् १९३१ को प्रीवी कौंसिल में इस मुकदमे की अपील की, किन्तु वह रद कर दी गई।

वीरवर भगतसिंह, शिवराम राजगुरु तथा सुखदेव फांसी घर में बन्द थे। नौकरशाही सरकार के जज महोदयों ने इन लोगों को फांसी की सजा देना ही ठीक समझा, लेकिन सारा देश इस सजा के

भगतसिंह के दादा सरदार अर्जुनसिंह

भगतसिंह के पिता सरदार किशनसिंह

पं० श्यामजी कृष्ण वर्मा का लन्दन स्थित इण्डिया हाउस

श्रीमती मैडम कामा
स्टुअर्ट गार्ड के द्वितीय विश्व समाजवादी सम्मेलन में सर्वप्रथम तिरंगा फहराती हुई।
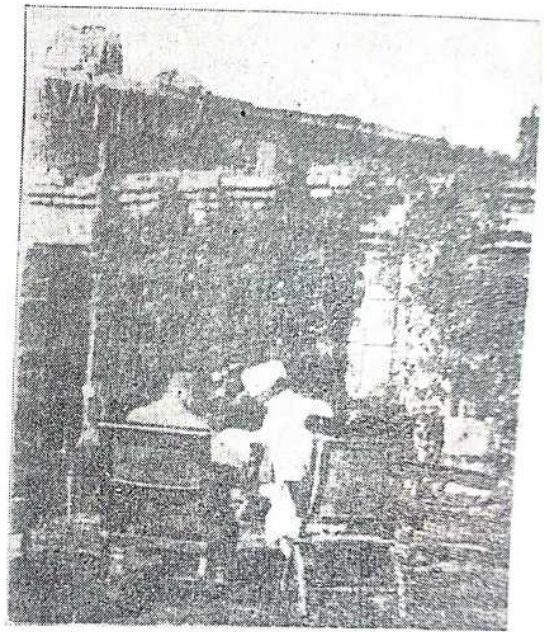
पं० मदनमोहन मालवीय और स्वामी श्रद्धानन्द जी १९१९ के पंजाब हत्याकाण्ड की जांच करते हुए।

The organ of the
Gadar Party
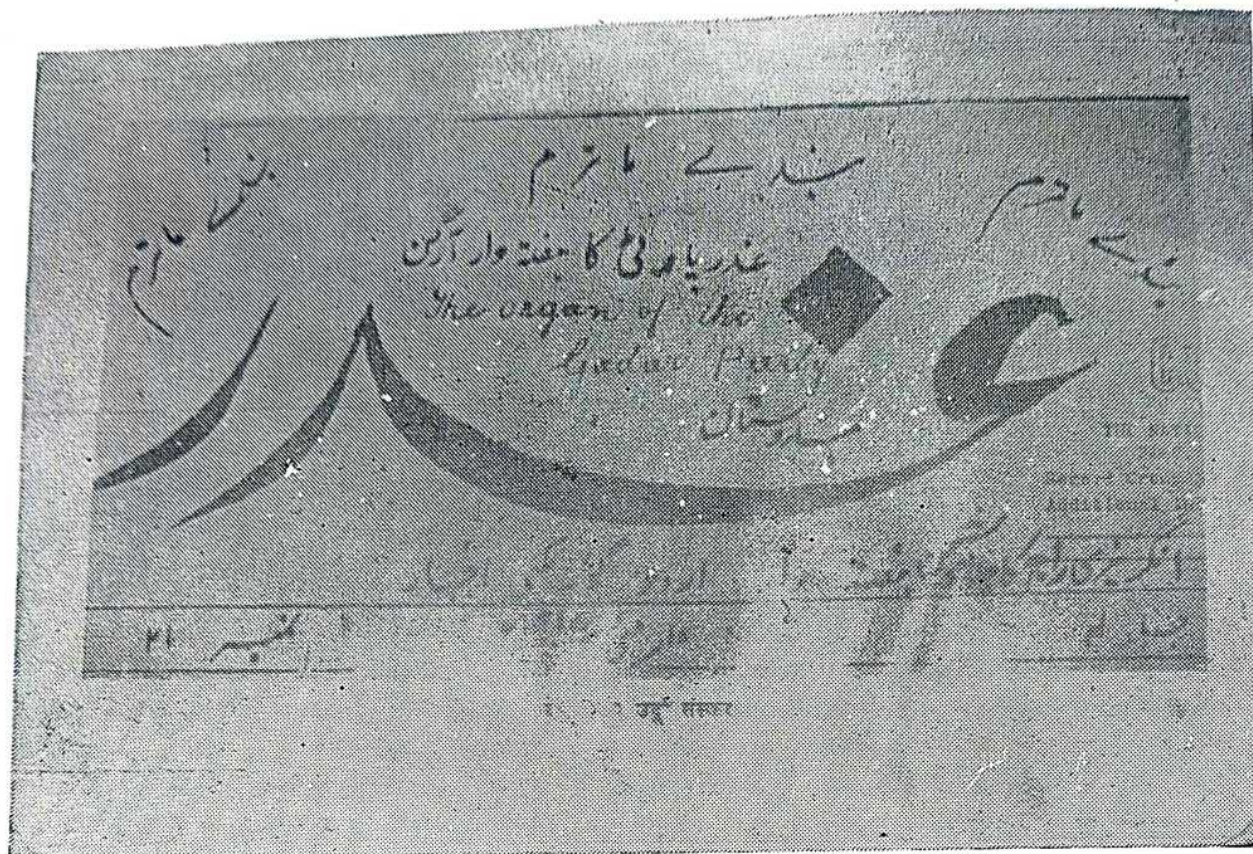
ग़दर पत्रिका का मुख पृष्ठ
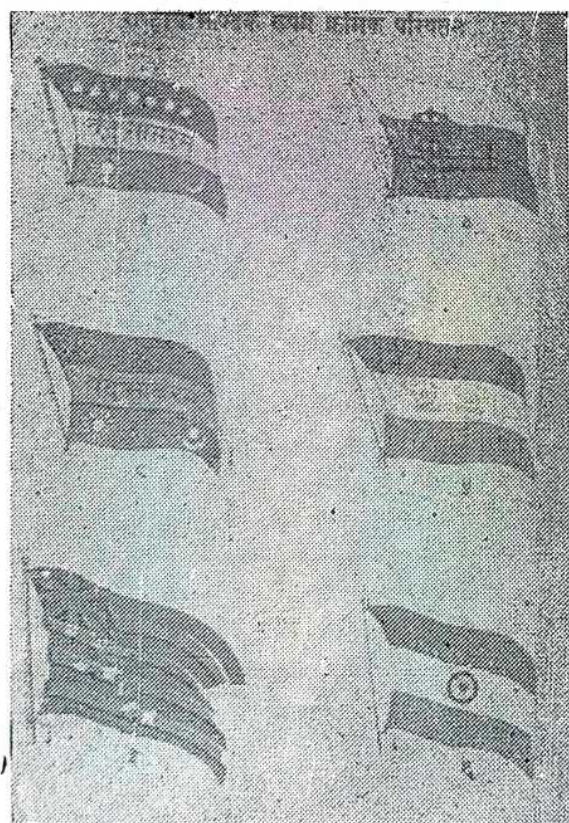
राष्ट्रीय झण्डे के बदलते रूप

विपरीत था। यहां तक कि कांग्रेस वाले भी जनता की सद्भावनाओं को साथ लेकर देश के इन पुजारियों को फन्दे से छुड़ाने का प्रयत्न करने लगे। महात्मा गांधी को वायसराय ने कहा कि मैं सरकार को इस सम्बन्ध में लिखूँगा और करांची कांग्रेस अधिवेशन हो लेने तक फांसी रुकवा दूंगा। इस पर महात्मा गांधी ने कहा—"यदि नौजवानों को फांसी पर लटकाना ही है तो कांग्रेस अधिवेशन के बाद ऐसा करने की बजाय पहले ऐसा करना ठीक होगा। इससे लोगों को पता चल जायेगा कि वस्तुतः उनकी स्थिति क्या है और लोगों के दिलों में झूठी आशायें न बन्धेंगी। पं० नेहरू ने अपनी आत्म-कथा में लिखा है—

"तारीख २३ मार्च सन् १९३१ को सायंकाल इन तीनों को फांसी दे दी गई। यों तो कायदा है सवेरे फांसी देने का किन्तु इनके लिए इस नियम को भङ्ग किया गया। उनकी लाशें सम्बन्धियों को नहीं दी गईं तथा उनको बड़ी बेपरवाही से मिट्टी का तेल डालकर जला दिया गया। उनके फूल अनाथों के फूल की भांति सतलुज में डलवा दिए गये। सारा देश आंखों की पंखुड़ियां बिछाकर जिनका स्वागत करने को तैयार था तथा जिनके "जिन्दाबाद" के नारे लगाते-लगाते मुल्क का गला बैठ गया था, उन पुरुषसिंहों की साम्राज्यवाद ने इस प्रकार हत्या कर डाली। कितनी बड़ी गुस्ताखी और कितना बड़ा अपराध था? सरकार जनमत की कितनी परवाह करती है? यह इसी बात से कांग्रेस के नेताओं पर जाहिर हो जानी चाहिए थी, किन्तु..............?"

पाठकों को आश्चर्य होगा कि महीनों फांसीघर में रहने के बाद भी वीरवर भगतसिंह का दिमाग और हृदय कितना स्वच्छ और साफ था। उन्होंने अपने छोटे भाई कुलतारसिंह के नाम अन्तिम पत्र लिखा था—

"अजीज कुलतार!

आज तुम्हारी आंखों में आंसू देखकर बहुत रंज हुआ। आज तुम्हारी बातों में बहुत दर्द था। तुम्हारे आंसू तो बर्दास्त नहीं होते।

खबरदार! परिश्रम से काम लेना, शिक्षा प्राप्त करना और सेहत का ध्यान रखना।

हौसला रखना। और क्या कहूं—

उसे फिक्र है हरदम नया तर्जे जफर क्या है
हमें यह शौक देखें सितम की इन्तहा क्या है
घर से क्यों खपा रहे, खर्च का क्यों गिला करें।
सारा जहां अदू साथी आओ मुकाबला करें।
कोई दम का महमां हूँ, ऐ अटले महफिल,
चिरागे सेहर हूं, बुझा चाहता हूं।
मेरी हवा में रहेगी ख्याल की बिजली,
यह मुश्ते खाक है, फानी रहे या न रहे।

अच्छा आज्ञा? खुश रहो अहले वतन! हम तो सफर करते हैं।" हौंसले से रहना। नमस्ते।

तुम्हारा भाई।

आपके फांसी के समय जवाहरलाल नेहरू ने इस प्रकार कहा था—

मैं भगतसिंह तथा उनके साथियों के बारे में अन्तिम दिनों में मौन धारण किये रहा, क्योंकि मैं डरता था कि कहीं मेरे किसी शब्द से फांसी की सजा रद्द होने की सम्भावना जाती न रहे। मैं चुप रहा, यद्यपि मेरी इच्छा होती थी कि मैं उबल पड़ूँ। हम सब मिलकर उन्हें बचा न सके। वे हमारे बहुत प्रिय थे, उनका महान् त्याग और साहस भारत के नौजवानों के लिए एक प्रेरणा की चीज थी और है। हमारी इस असहायता पर देश में दुःख प्रकट किया जायेगा। किन्तु साथ ही हमारे देश को स्वर्गीय आत्मा पर गर्व है और "जब इङ्गलैंड हमसे समझौते की बात करे तो हम भगतसिंह की लाश को भूल न जायेंगे।

अन्य कुछ विशेष घटनाएं

पंजाब में घी अधिक मात्रा में खाने का प्रचलन है। भगतसिंह को पंजाब निवासी होने के कारण घी, दूध का शौक किसी से कम नहीं था। लाहौर के अनारकली बाजार में काल्लू दूध, दही वाले के यहां किशनसिंह का उधार हिसाब चलता था। इस कारण भगतसिंह जी वहां जाकर दूध, घी खाते थे और साथियों को भी खिलाते थे। इसी प्रकार आप भोजन में भी किसी से कम न थे। यदि राजाराम शास्त्री होटल में दिखाई दें तो आप अत्यावश्यक कार्य को छोड़कर भी भूख न होने पर भी उनके कटोरे में से समस्त घी निकालकर पी जाते थे। शास्त्री जी हाथ फैलाये "देखो रे! देखो रे! क्या कर रहा है, अरे! देखो इस जाट को।" सहायता के लिए दुहाई देते रह जाते।

आपके पिता जी आपका विवाह करना चाहते थे। आपका विचार विवाह न करने के कारण एक दिन आपने कहा कि मुझे पढ़ने लिखने का शौक है। इसलिए लड़की भी पढ़ी लिखी होनी चाहिए। इस पर आपके पिता जी उबल पड़े—पढ़ी लिखी लड़की में कुछ और बढ़ जाता है क्या? पढ़ी लिखी औरत से पैदा बच्चे को क्या पढ़ाना नहीं पड़ता?

भगतसिंह और बटुकेश्वरदत्त के आत्मसमर्पण कर देने पर सशस्त्र पुलिस ने आपको बड़े साज-बाज से पकड़कर और बहुत सावधानी से उन्हें मोटर में बिठाकर नई दिल्ली के थाने की ओर ले गई। आपकी मोटर सड़क पर एक टांगे के पास गई। इस टांगे में क्रांतिकारी भगवतीचरण, भाभी दुर्गा-देवी और सुशीलादेवी जी विद्यमान थीं और सुखदेव जी टांगे का सहारा लिए साईकल पर चल रहे थे। टांगे के पास से भरी मोटरें गुजरने पर इन लोगों ने एक दूसरे को पहचाना परन्तु व्यवहार न पहचानने का किया। यह मन का कितना बड़ा संयम था। भगतसिंह को उस समय मृत्यु के हाथों से लौटा लेने के लिए अपने प्राण दे देना अधिक सरल था। संयम और अनुशासन का ऐसा उदाहरण मिलना कठिन है। परन्तु श्रीमती दुर्गादेवी की गोद में बैठा हुआ "सची" भगतसिंह को देखकर उस तरफ हाथ करके चिल्ला उठा – "लम्बे चाचा जी।"

इस पर दुर्गादेवी ने तुरन्त उसका मुंह गोद में दबाकर शान्त कर दिया। इस प्रकार से उन्होंने अपने प्राण बचाये।

*

अमर शहीद सुखदेव

(ले० ब्र० सोमदेव)

सरदार भगतसिंह के साथ फांसी पर लटकाये जाने वाले उनके अन्यतम साथी श्री सुखदेव खास लायलपुर (पंजाब) के रहने वाले थे। आपका जन्म मि० फाल्गुन सुदी ७ सम्वत् १८६२ को दिन के पौने ग्यारह बजे हुआ था। आपके पिता का देहान्त आपके जन्म से तीन मास पहले हो चुका था। इसलिए आपकी सेवा और शिक्षा का प्रबन्ध आपके चाचा अचिन्तराम ने किया था।

जब आपकी पांच वर्ष की आयु थी तो आपको "धनपतमल आर्य-हाई-स्कूल" में प्रविष्ट किया। इस स्कूल में आपने सातवीं श्रेणी तक शिक्षा प्राप्त की। इसके पश्चात् "लायलपुर सनातन धर्म स्कूल" में भेजे गये और सन् १९२२ में इसी स्कूल से आपने द्वितीय श्रेणी में इण्ट्रेन्स की परीक्षा पास की। आपकी बुद्धि बहुत तीव्र थी। आप किसी भी परीक्षा में अनुत्तीर्ण नहीं हुए। आपका स्वभाव शान्त और कोमल था। आपकी बुद्धि तर्क करने में बहुत चलती थी। आपका जन्म आर्य-समाजी घराने में होने के कारण आप पर आर्यसमाज का विशेष प्रभाव पड़ा। जहां भी आर्यसमाज का सत्संग होता था वहां पर आप अवश्य जाते थे और आपको हवन, संध्या, योगाभ्यास का भी शौक था।

सन् १९१९ में पंजाब के अनेक शहरों में "मार्शल ला" जारी था। उस समय आपकी आयु बारह वर्ष की थी और सातवीं श्रेणी में पढ़ते थे। आपके चाचा इसी "मार्शल ला" में गिरफ्तार कर लिए गये। बालक सुखदेव पर इस घटना का विशेष प्रभाव पड़ा। आपके चाचा अचिन्तराम का कहना है कि "जब मैं जेल में था तब सुखदेव मुझ से मिलने आता था। तब पूछता था कि चाचा जी क्या इस जेल में आपको कष्ट दिया जाता है?" और कहता था कि मैं तो किसी को भी नमस्ते तक नहीं करूंगा।

उसी समय एक दिन सारे शहर की पाठशालाओं के विद्यार्थियों को एकत्र करके "यूनियन जैक" ब्रिटिश झण्डे का अभिवादन कराया गया था। परन्तु सुखदेव इसमें सम्मिलित नहीं हुए और चचा के जेल से आते ही बड़े गर्व से कहा कि मैं झण्डे का अभिवादन करने नहीं गया।

सन् १९२१ में महात्मा गांधी ने असहयोग आन्दोलन प्रारम्भ किया तो सारे भारत में जागृति की लहर फैल गई। आपके भी जीवन में एक बड़ा भारी परिवर्तन हुआ। आपके ऊँचे विचार होते हुए भी आपको कीमती कपड़े बहुत अच्छे लगते थे परन्तु आन्दोलन प्रारम्भ होते ही आपने विलायती ढंग के कपड़ों का सदा के लिए परित्याग कर दिया और खद्दर के कपड़े पहनने लगे। इसके साथ हिन्दी भाषा पढ़नी प्रारम्भ कर दी और अपने साथियों में भी हिन्दी भाषा का प्रचार करते थे। आपका कहना था कि देश के उत्थान के लिए राष्ट्रभाषा की आवश्यकता है और उसकी पूर्ति हिन्दी भाषा ही कर सकती है।

इस असहयोग आन्दोलन ने सुखदेव के जीवन को बदल डाला। उधर माता विवाह करना चाहती थी परन्तु चाचा जी विरुद्ध थे। क्योंकि वे आर्य थे अतः आर्य सिद्धान्त के अनुसार विवाह

करना चाहते थे । आपकी माता जी जब जब कहती थी कि सुखदेव मैं तुम्हारी शादी करूंगी तो घोड़ी पर चढ़ोगे ? तब सुखदेव सदा यही उत्तर देता था घोड़ी पर चढ़ने के बदले फांसी पर चढ़ूंगा ।

सन् १९२२ में जब सुखदेव ने एन्ट्रेन्स की परीक्षा पास कर ली तब आपके चाचा ने जेल से आज्ञा दी कि उच्च शिक्षा पाने के लिए लाहौर डी० ए० वी० कालेज में प्रविष्ट हो जाना । परन्तु सुखदेव ने चाचा की आज्ञा का पालन न करके नेशनल कालेज में नाम लिखवा लिया । यहां पर ही आपका परिचय सरदार भगतसिंह आदि से हुआ था । आपकी मण्डली में पांच सदस्य थे और परस्पर बहुत प्रेम था । विद्यालय के छात्र आपको पञ्च पाण्डव नाम से पुकारते थे ।

श्री सुखदेव और सहपाठियों को पर्वतयात्रा का बहुत ही शौक था । सन् १९२० के ग्रीष्मकाल के अवकाश में कांगड़ा की पहाड़ियों पर भ्रमण करने गये । इस यात्रा में यशपाल भी सम्मिलित था । वापिस आने के समय इस पार्टी को दिन भर में बयालीस मील की यात्रा करनी पड़ी ।

साइमन कमीशन के आने पर इन पञ्च पाण्डवों ने निश्चय किया कि समारोहपूर्वक प्रदर्शन करना चाहिए । समारोह के लिए झण्डियां बना रहे थे । इस समय केदारनाथ भी थे । परन्तु उन्हें नीन्द आ गई तो वे सो गये । उधर सुखदेव जी सरदार भगतसिंह के घर सो रहे थे । भगतसिंह ने भी कहा कि मैं भी सोता हूं परन्तु मित्रों ने न सोने दिया । उसी समय भगतसिंह के अन्दर विचार आया कि यदि पुलिस हमारे घर पर घेरा डालेगी तो सुखदेव पकड़ा जायेगा । इसलिए सुखदेव को सावधान करने के लिए एक मित्र को भेजा । उसने थोड़े से समय में आकर कहा कि भगतसिंह के घर पर पुलिस पहुंच गई है ।

पुलिस ने श्री सुखदेव को पकड़ लिया और बहुत प्रश्न किए । परन्तु उन्होंने किसी प्रश्न का भी उत्तर नहीं दिया । आपको बारह घण्टे जेल में रखा गया । इसके पश्चात् कुछ लोगों ने जाकर आपको छुड़वा दिया । इसके पश्चात् कुछ लोगों में पार्टी बनाने का विचार हुआ तो भगतसिंह और सुखदेव ने यह प्रस्ताव रखा कि नवयुवकों को राजनीतिक-शिक्षा देनी चाहिए । सरदार भगतसिंह ने प्रचार का कार्य प्रारम्भ किया । इनके पश्चात् श्री सुखदेव को सौंपा गया । आप इस प्रचार कार्य को बहुत दिनों तक बड़ी सफलता के साथ करते रहे । आपका सिद्धान्त था कि "मैं केवल कार्य करना चाहता हूं प्रशंसा नहीं ।"

इसके पश्चात् १५ अप्रैल सन् १९१९ को श्री किशोरीलाल और प्रेमनाथ के साथ आपकी भी गिरफ्तारी हो गई । अन्त में सात अक्तूबर सन् १९३० को फांसी का दण्ड सुनाया और १३ मार्च सन् १९३१ को चौबीस वर्ष की आयु में आपको फांसी पर लटका दिया गया । आप अपना नाम अमर शहीदों में लिखवा गये ।

वीरवर इन्द्रपाल

(ब्र० महादेव)

इनका पहला नाम मंगतराम था । यह कांगड़ा जिले के निवासी थे । क्रांतिकारियों के संग में आकर आप भी क्रांतिकारी बन गये । क्रांतिकारी होकर आपने अपना नाम इन्द्रपाल रखा । एक दिन आपने अपने कष्ट सहन की परीक्षा करनी चाही, कार्तिक के दिन थे, मच्छरों की भरमार थी । संध्या

के समय रावी के किनारे जङ्गल में गये, वहां जगह-जगह पर पानी सड़ रहा था और कमर तक की ऊंची-ऊंची घास थी। वहां मच्छरों और डांसों की भरमार थी। डांस इस प्रकार के थे कि जिनके काटने से पशु भी तड़प उठते थे आदमी की तो क्या दशा होगी। परन्तु आप तो कपड़े उतार कर एक लङ्गोटी बांध पालथी मारकर घास पर बैठ गये। साथ में यह भी विचार किया कि मच्छर या डांस को हाथ से नहीं उड़ाऊंगा। साथ ही सूर्योदय से पूर्व भी नहीं उठना है यह निश्चय किया। यह वीर इस परीक्षा में उत्तीर्ण हो गया अर्थात् सारी रात इसी प्रकार बिताई।

वीरशिरोमणि भगतसिंह सुखदेवादि के पकड़े जाने के बाद विशेषकर भगवतीप्रसाद और यशपाल रह गये थे। इन दोनों ने वायसराय की रेल के नीचे बम रखने की योजना बनाई। उसमें सहयोग के लिए यशपाल् ने आपको पत्र द्वारा बुला भेजा। पत्र मिलते ही आप दिल्ली आगए। आने पर यशपाल ने घर का मोह छोड़कर कुछ समय मांगा। तब आपने कहा कि एक सप्ताह का समय दो मैं अपने दो भाई, एक आठ का दूसरा बारह वर्ष का है उनकी पढ़ाई का प्रबन्ध कर आता हूं। आपने कुछ सहायता भी मांगी। उस पर यशपाल जी ने आपको ३०) दे दिए। वह पुनः घर लौट आये।

इधर यशपाल और भगवतीप्रसाद ने तेरसखण्ड के पास रेलवे लाइन पर जो एक टूटी-फूटी सराय थी उसमें आपको रखने का निश्चय किया। दिसम्बर मास में आपको देहली बुलाया। आने पर उसी सराय में बाबा जी का वेश बनाकर रखा गया। साथ में आवश्यक चिमटा कमण्डलु इत्यादि सभी आवश्यक चीजें दे दी गई। भोजन के लिए पास के गांव से भिक्षा मांगकर खाने को कहा गया। आप साधुवेश धारण करके बैठ गये। तीन दिन के पश्चात् आपसे मिलने यशपाल गया। उस समय बाबा जी तो कौपीन मात्र में बैठे हुए थे। आस-पास कुछ ग्रामीण व्यक्ति विद्यमान थे। उनके सामने ही बनिया वेषधारी यशपाल ने बाबा जी को सम्बोधित करके आपके चरण छूकर प्रणाम किया। आपने उत्तर में कहा—खुश रहो बेटा ! पूछा - कहो सेठ जी कैसे आये ? यशपाल जमीन पर बैठकर कहने लगा—कल मथुरा से मुनीम जी आ रहे थे उन्होंने आपका समाचार दिया अतः आपके दर्शन करने के लिए आज आया हूं। "कभी-कभी आप हमारा घर पवित्र किया करें" लाला जी ने प्रार्थना की। इस पर पास बैठे एक ग्रामीण ने कहा "महाराज शहर के भीड़ भड़ाके में नहीं रहते, योगी तपस्वी हैं। दिल्ली में तो बड़े-बड़े लोग महाराज की चरणधूलि के लिए तरसते हैं। चढ़ती जवानी में संसार की माया से मुंह मोड़ बैठे हैं। साथ ही भगवान् ने ऐसा सामर्थ्य दिया है कि मुंह से जो निकलता है पूरा हो जाता है।" कुछ देर बाद अन्धकार होने पर ग्रामीण लोग चले गये। तब आप दोनों की एकान्त में बातें होने लगीं। बाबा जी ने कहा कि यहां बड़ी कठिनाइयां हैं। जब से यहां आया हूं भूखा हूं। समीप के गांव में भिक्षा के लिए गया तो अवश्य था, परन्तु संकोच से मांग न सका। केवल एक दरवाजे पर पुकार लगाई थी, किसी ने ध्यान नहीं दिया। पर्याप्त देर ठहरने के पीछे एक महिला ने एक मुट्ठी आटा लेकर कमण्डल में डाल दिया। जो भी आटा भिक्षा में मिला वह भी मैंने उसी गांव में चींटियों के बिल पर डाल दिया। दूसरे दिन दूसरे घर पर पुकार लगाई फिर भी एक ही मुट्ठी आटा भिक्षा में मिला वह भी मैंने पूर्व की भांति चींटियों को डाल दिया। पानी पीकर जीवन यात्रा चला रहा हूं। यह सुनकर यशपाल दुखी होकर उसी समय देहली को चला

गया। वहां जाकर खाने का सामान देकर भगवती भाई को उसी समय भेज दिया। भगवती भाई ने बाबा जी के पास जाकर उन्हें भोजन कराया।

आगे दो चार दिन भी बाबा जी एक-एक घर पर भिक्षा मांगते, एकाध मुट्ठी आटा मिलता उसे चींटियों के आगे डाल देते थे। एक दिन कुछ ग्रामीणों ने आपसे पूछा—महाराज एकाध मुट्ठी अन्न आपको मिलता है वह भी आप चींटियों को डाल देते हो क्या आप कुछ नहीं खाते ? तब बाबा जी ने उदारतापूर्वक उत्तर दिया "यह भी शिवजी की सृष्टि है इनका भी पेट भरना चाहिए। जब थोड़ा भोजन हो तो छोटे जीवों का पेट भरता है अधिक हो तो बड़े जीवों का।" इसका प्रभाव ग्रामीण जनता पर बहुत पड़ा। वह एक ही घर में भिक्षा मांगने के व्रत पर डटे रहे, किन्तु अब आप जिस द्वार पर पुकार लगाते हैं वहीं यथेष्ट भिक्षा मिल जाती है। यहां तक कि कभी-कभी भक्तजन स्वयं भोजन लेकर आपकी कुटिया पर दे आते थे। वहां आप आते-जाते लोगों को पानी पिलाने का भी कार्य करते थे। साथ ही आप पास के ग्राम में जाकर रामायणादि की कथा किया करते थे। एक दिन पास के रेलवे लाइन के फाटक का चौकीदार चेतराम बाबा जी के पास आकर रोने लगा। बाबा जी ने कहा प्याऊ पर बैठकर राम-राम जप और दस प्यासों को पानी पिला। इस प्रकार करने से कुछ नहीं बिड़ेगा।

चेतराम ने आपका आदेश पूरा किया, भाग्य की बात, उसको ईश्वर की कृपा से आठ आने दण्ड लेकर छोड़ दिया गया। यहां बाबा जी कुछ रोगियों को दवाई भी देते थे। जिसके कारण आपका प्रभाव आस-पास में फैल गया। इतना कष्ट उठाते हुए भी आपको यह न बताया गया था कि यहां क्यों रखा गया है ? इसका कारण यह था कि यदि आप इन कठिनाइयों से पहले ही भाग जाते तो आगे का जो प्रोग्राम था वह व्यर्थ न हो जाये इसलिए आपको नहीं बताया था।

एक दिन यशपाल ने आकर आप से कहा कि रात को यहां गाड़ी किस किस समय चलती हैं। इसकी ठीक-ठीक समय की जानकारी प्राप्त करो। पर्याप्त दिन होने के कारण आपको रात के समय की आने जाने वाली गाड़ियों के समय का ज्ञान हो गया था। रही-सही कसर दो चार दिन में और मिटा दी। एक दिन यशपाल ने आकर कहा कि रात को आपके पास कोई न ठहरे। क्योंकि आज मैं रात को देहली से बम लाऊंगा। वह बम हम दोनों मिलकर पटरी के नीचे रखेंगे और इसी से वायसराय को मारने का विचार है। यह सुनकर आप फूले न समाये। सदे हुए सब कष्टों को क्षण भर में भूलकर प्रसन्न वदन से कहने लगे यह काम हो जाये तो मेरी तपस्या सफल होगी।

उसी रात को लगभग साढ़े नौ बजे पीतल के बड़े-बड़े लोटों में दो बम और खोदने का सामान ले आया। अभी कार्य के आरम्भ करने में देरी थी। क्योंकि ग्यारह बजे एक रेल आती थी। अतः उस समय को काटने के लिए छत पर चढ़कर दोनों ही लाहौर काण्ड की बात और अपनी चालाकियों को याद कर-कर खूब जोर जोर से हंसने लगे। रात का समय होने के कारण आवाज दूर-दूर तक जाती थी। हंसते-हंसते नीचे से आवाज आई कि कौन है? खबरदार ! हाथ न हिलाना। जिस ओर से आवाज आई थी उस ओर देखा—वहां दो पुलिसियों ने उन दोनों को गोली का निशाना बनाया हुआ था। उस समय यशपाल ने बड़े भोले शब्दों में कहा आप कौन लोग हो हजूर ? तब सिपाहियों ने कड़क कहा तुन कौन हो ? उत्तर में बाबा जी ने कहा हम तो साधु महातमा हैं। एक मास से यहां हम

धूनी रमाये बैठे हैं । तुम लोग किसे ढूंढते हो ? तब सिपाही ने यशपाल की ओर संकेत कर पूछा कि यह कौन है ? बाबा ने उत्तर में कहा यह एक भक्तजन है । इधर यशपाल भी हाथ जोड़ गिड़गिड़ा कर बड़े दीन शब्दों में कहने लगा—हजूर क्या चाहते हो हम तो मथुरा जी के बनिया हैं । बात करते-करते खड़ा भी हो गया और कूदने का अवसर देखने लगा । नीचे देखा तो चारों ओर सराय को दस बारह आदमियों ने घेरा है । उनके हाथ में लाठियां हैं । इतने में बाबा जी ने पुन: सिपाहियों को सम्बोधन करके कहा—"हम साधु महात्मा हैं आप लोग सरकार हो आपको साधु महात्मा सताने नहीं चाहियें बल्कि आपका का काम है हमारी रक्षा करें । तब सिपाहियों ने उत्तर दिया बाबा हम आपको कुछ नहीं कहते । तुम राम नाम जपो, धूनी रमाओ, परन्तु आपके पास चोर डाकू नहीं होने चाहियें । तब बाबा जी ने यशपाल की ओर देखते हुए कहा कि क्या तू चोर डाकू है? इस पर यशपाल हाथ जोड़ गिड़गिड़ाया । नहीं बाबा जी ! हम तो मथुरा के बनिये हैं । सच्ची जानो बाबा जी ! जमना मैय्या की सौगन्ध । जब यह गिड़गिड़ा कर कह रहा था उस समय उसके हाथ रंगे हुए देखकर एक सिपाही ने कहा आजकल बम बनाकर इस प्रकार के अनेक बदमाश फरार हैं तब यशपाल और गिड़गिड़ा कर कहने लगा—हजूर ! भोजाई ने मेहन्दी पिसवाई थी मैंने भी तनिक सी लगा ली जिससे हाथ लाल हो गये हैं । ध्यान रहे आपके हाथ रोहतक में बम बनाने के कारण रङ्गयुक्त थे । इधर बाबा ने फटकार लगाते हुए कहा कि तुझे शर्म नहीं आती पुरुष होते हुए भी यह लगाता है । तब यशपाल ने जवाब दिया—महाराज क्या करूं, गरीब आदमी हूं, भोजाई का कहना न मानूं तो भैय्या पीटकर निकाल दें । यहां तक कि एक बार भाई ने मूसल ही उठाकर मार दिया । यह कहकर अपना सिर दिखाया । इस प्रकार डांट डपटकर यशपाल से वह दस रुपये लेकर चले गये ।

उनके जाने के बाद दोनों ने खोदकर बम ठीक ठिकाने लगा दिए । लगाकर अपनी जगह आगये । तीन बजे मालगाड़ी बड़ी धड़धड़ाती गई । उसमें कुछ बाधा न पड़ी । तब दोनों अपने कार्य में सफलता मिली है, सोचकर बड़े आराम से सो गये । प्रात: उठकर यशपाल दिल्ली को रवाना हो होगया । वहां जाकर आपने रात को घटी घटना सुना दी ।

दूसरे दिन भगवती भाई के साथ तीसरा बम लेकर यशपाल पुन: पहुंचा । समय साढ़े दस का था और सिपाहियों के चक्कर लगाने का समय भी यही था । अत: ये दोनों पास की टूटी हुई कन्दरा में बैठ गये । भगवती भाई का बम प्रयोग के कारण कण्ठ कुछ खूं खूं की आवाज देता था । अत: आपको छुपने में अधिक कठिनता हो गई । जब उन सिपाहियों के आने की आहट सुनाई दी तब आप सारा सांस रोककर योगी की तरह बैठ गये । पुलिस वहां आकर बाबा जी से मिलकर चली गई । इनके जाने में कम से कम दस पन्द्रह मिनट लग गये थे । उनके जाने के बाद तीसरा बम भी ठीक ठिकाने लगा दिया और रेलवे के आने जाने के कारण बम यदि दिखाई दे तो ढांपने आदि का कार्य बाबा जी को सौंपकर यशपाल और भगवती भाई दिल्ली को ओर चल दिये ।

बम का कार्य २४ ता० को करना था । इधर २१ ता० को भगवतीप्रसाद जी आजाद से मिलने गये । वहां जाकर आपने अपना सारा समाचार सुनाया । तब आजाद ने इस कार्य को करने के लिए नितान्त निषेध कर दिया । ठीक इसी प्रकार गणेशशङ्कर विद्यार्थी ने भी निषेध कर दिया । तब आप निराश होकर देहली आये यह समाचार जब यशपाल को सुनाया तब यशपाल की आशाओं पर पानी फिर गया । वह पहले तो न माना किन्तु समझाने पर मान गया । यशपाल ने इन्द्रपाल जी के पास

जाकर यह समाचार सुनाया। इस पर इन्द्रपाल जी भी असन्तुष्ट हो गये। वहां से डेरा उठाकर और बमादि लेकर वापिस देहली आगये। दिल्ली में कुछ दिन रहकर फिर आप लाहौर चले गये।

दूसरी बार वायसराय की गाड़ी के नीचे पुराने किले के पास विस्फोट हुआ, तब भी आपने इसमें बढ़ चढ़कर भाग लिया। १९३० में पंजाब में आपस में कुछ मतभेद हुआ। अतः आप इस दल से अलग होकर कार्य करने लगे। लाहौर के दूसरे षड्यन्त्र में आप पकड़े गये। जेल में एक दिन आपने यशपाल के छोटे भाई धर्मपाल के साथ बातें करते हुए कहा—इस समय हमारे पांच साथी जो कुछ जानते थे पुलिस को बता चुके हैं और प्राणभिक्षा से सरकारी गवाह बनने को तैयार हैं। यह लोग कम से कम १७ लोगों को फांसी पर लटकवा देंगे। अब्दुल अजीज (इस अभियोग का इन्चार्ज) मुझे सरकारी गवाह बनने के लिए फुसला रहा है। क्योंकि कोई भी गवाह अलग-अलग घटनाओं को जोड़ नहीं सकता और न इस अभियोग के फरार आजाद व यशपाल की मारफत पहले मुकदमे और दिल्ली मुकदमे को जोड़ सकता है। इस तरह पूरा षड्यन्त्र न बन पाता था। मैं सोच रहा हूं कि गवाह बनकर सब जिम्मेवारी अपने ऊपर ले लूं और सबको बचाने की कोशिश करूं, इसमें आपकी क्या सम्मति है। धर्मपाल ने उत्तर दिया—सरकारी गवाह बनने की बात तो किसी भी कीमत पर नहीं मान सकता। यदि आपको अपने पर विश्वास है तो इस पर विचार करें। आपने उत्तर में कहा—अच्छा, विचार करता हूँ।

तीन-चार दिन के बाद श्री फकीरचन्द ने धर्मपाल को रोटियों के साथ एक पर्ची भी दे दी। उसमें लिखा था—मैं सरकारी गवाह बन गया हूँ, यह स्वयं इन्द्रपाल जी ने लिखा था। डेढ़ मास तक आपकी और पुलिस की गहरी छानबीन होती रही। अन्त में अभियोग अदालत में पेश किया गया। इस अभियोग में साठ सत्तर गवाहों ने अपनें बयान दिये। इसके बाद आपका नम्बर आया, आपने लगातार सात दिन तक बयान दिया। आपके बयान समाचार पत्रों में निरन्तर छपते थे। बयान अक्षरशः सत्य थे। बाहर के क्रांतिकारियों को यह पढ़कर अपना सिर पीटकर कहना पड़ता था कि इसे क्या हो गया? इन बयानों में श्री आजाद, भगवतीशरण यशपालादि के कार्यों को खूब खोलखोलकर बताया। इधर आजाद को इस समाचार से भारी धक्का लगा और प्रायः मानसिक सन्ताप से कहने लगते कि अब किसी का विश्वास नहीं किया जा सकता। विश्वास उसी का जो पकड़े जाने से पहले अपने सिर में गोली मार ले। इधर आपका अन्तिम बयान था। आपका बयान जेल में बन्द क्रांतिकारियों के विषय में था। प्रतिदिन आपको नियमानुसार बयान देने से पूर्व धर्म की शपथ दिलाई जाती थी कि सच ही बोलना झूठ नहीं।

आठवें दिन आपनें अदालत में शपथ खानी मना कर दी। जब इसका कारण पूछा तब आपने बताया कि साहब धर्म की शपथ खाकर झूठ नहीं बोलूंगा? यह जन्म तो पुलिस ने बिगाड़ ही दिया अब परलोक नहीं बिगाड़ता, वहां तो पुलिस साथ नहीं जायेगी। शपथ खाने के बाद एक ही वाक्य कह सकता हूं कि पुलिस झूठा बयान दिलवा रही है। शपथ न दिलवाओगे तो जो पुलिस ने रटाया पढ़ाया है वह सब सुना सकता हूं। इस पर सरकारी वकील ज्वालाप्रसाद ने आपत्ति की। गवाह बेईमान हो गया है पुलिस पर झूठा आरोप लगा रहा है। अदालत ने आप से इस बात का प्रमाण मांगा कि पुलिस पढ़ा रही है। आपने तत्काल अपने कपड़ों में छुपाये हुए पुलिस वालों के लिखे हुए कागज दिखाये और साथ ही यह भी कह दिया कि यदि अदालत व सफाई वकील मेरे साथ चलकर

हवालात की कोठरी में रखे हुए कागजात देखें तो मैं दिखा सकता हूं। वहां हवालात में आपकी कोठरी में कई ऐसे कागज मिले और अकाट्य प्रमाण मिले जिनसे सिद्ध हुआ कि पुलिस पढ़ा रही है। आगे आपने अदालत में मांग की कि मैं सच्चा बयान उसी समय दे सकता हूं जब मुझे इस किले के पुलिस कब्जे से हटाकर जेल की हवालात में भेज विश्वास दिलाया जाये कि मेरे सच्चा बयान देने पर मेरे साथ अनुचित व्यवहार नहीं किया जायेगा। इस पर सरकारी वकीलों ने दोनों बयानों की लिखी हुई कापियां देखकर बहस की। उसे कहीं एक भी बात पर तारीख के बारे में उखाड़ नहीं पाये। केवल एक अवसर पर बहस के उत्तर में आपने कहा था मुझे तारीख याद नहीं। आपके उत्तर पर सरकारी वकील ने बड़े सन्तोष से कहा शुक्र है पंडित जी एक बार तो आपके मुंह से निकला कि मुझे याद नहीं। आपका सहारा पाकर मदनगोपाल भी बदल गया। इस कारण यह मुकदमा गिर गया। यह सन् १६३१ जनवरी के प्रथम व द्वितीय सप्ताह की बातें हैं।

इधर जब यह घटना 'लाहौर' षड्यन्त्र के मामले का सरकारी गवाह इन्द्रपाल पलट गया, उसने अदालत में कह दिया कि "पुलिस उसे परेशान करके झूठे बयान दिलाती रही इत्यादि"। जब यह बात समाचारपत्रों में छप गई तो आजाद आदि सब प्रसन्न हो गये। आजाद ने प्रसन्न होकर यहां तक कह दिया कि यह साला साधवा (साधु) अवश्य कोई ऐसी हरकत करेगा जो किसी ने न की हो। अब नौकरशाही सरकार ने आप से बदला लेने के लिए आप पर सरकार को धोखा देने और अदालत में झूठ बोलने का अभियोग चलाया। सैशन जज ने फांसी की सजा दी। बाकी सबका अभियोग गिर गया। केवल उन्हीं को छोटी-छोटी सजायें हुई जिन्होंने मरने के भय से हार मानकर या सरकारी गवाह बन जाने की आशा में अपने अपराध मजिस्ट्रेट के आगे स्वीकार किये थे।

आपको बचाने के लिए हाईकोर्ट में अभियोग चलाया गया। इसमें सफाई की ओर से मुख्य वकील रोहतक निवासी स्व० श्यामलाल जी थे। लाला जी ने असहयोग आन्दोलन में वकालत छोड़ दी थी। इनकी सहायता के लिए आपने वकालत पुनः आरम्भ कर दी थी। आपको अदालत की ओर से फीस रूप में प्रतिदिन ६४ रुपये मिलते थे। परन्तु वह सारा धन अभियुक्तों की आवश्यकताओं के पूर्त्यर्थ ही व्यय कर दिया जाता था। लाला जी व सरकारी वकील ज्वालाप्रसाद जी आपकी प्रशंसा करते करते नहीं थकते थे। अत्यधिक बल लगाने पर आपकी फांसी की सजा, आजीवन कालापानी की सजा में परिणत हो गई।

अदालत में अधिक बुद्धि के कार्य करने व पुलिस के दुर्व्यवहार से आपको जेल में ही अधरङ्ग (पैरेलसिस) की बीमारी होगई। कुछ दिन तो जेल वालों ने समझा कि इस आदमी में पाखण्ड व धूर्तता की कोई सीमा नहीं है। यह बीमारी का भी धोखा देता है यह कह कर आपकी परवाह नहीं की। जब रोग अत्यधिक बढ़ा तब इनकी चिकित्सा करने लगे। लाला श्यामलाल जी आपकी निष्ठा और साहस से अति प्रभावित थे। अतः वे स्वयं गांधी जी से मिले और इन्द्रपाल की प्राणरक्षा के लिए अनुरोध किया। तब गांधी जी ने उस समय के पंजाब के मुख्यमन्त्री के नाम पत्र लिखकर सरकार का ध्यान इस ओर आकृष्ट किया। सरकार ने बड़े-बड़े डाक्टर बुलाकर परीक्षायें कीं। परन्तु परिणाम यह हुआ कि सब ने यह कहा कि यह रोग असाध्य है आपके किसी समय भी प्राण निकल सकते हैं। इसी कारण आपकी जेल से मुक्ति हो गई। लाला श्यामलाल जी को बड़ा दुःख हुआ।

लाला श्यामलाल जी

साथ ही लाला जी का परिचय देना भी असङ्गत न होगा। आप गांधी जी के परम भक्त थे। आप उन लोगों में से थे जिन्होंने सन् १९३१ में असहयोग आन्दोलन में अपनी खूब पनपती वकालत छोड़ दी थी और दूसरे वकीलों की भांति आय के लोभ से कचहरी से कभी लाभ न लिया। केवल क्रांतिकारियों की सहायतार्थ ही पुनः वकालत आरम्भ की थी। आप क्रांतिकारियों के संग में आने के कारण क्रांतिकारियों से सहानुभूति और अनुराग अनुभव करने लगे। एक मुकदमे में एक बार वह विकट परिस्थिति में फंस गये। मामला हाईकोर्ट में पेश था। अभियुक्तों ने कुछ बातों से अपना असन्तोष प्रकट करने के लिए एक नोटिस दे दिया कि इस अदालत पर हमें विश्वास नहीं। यह काम अदालत की मानहानि का समझा गया। जजों ने इस पर खिन्नता प्रकट की। आपको ऐसे नोटिस पेश करने पर क्षमा मांगने के लिए कहा। इस पर आप क्षमा मांगने के लिए तैयार न हुए।

हाईकोर्ट के जजों ने आप पर मानहानि का मुकदमा चलाया। इस मामले में सजा की अवधि उस समय तक होती है जब तक अपराधी मानहानि के लिए क्षमा न मांगे। इस अभियोग में सारे अदालती संसार में हलचल मच गई। जिस दिन आपका मामला हाईकोर्ट में पेश हुआ लाहौरस्थ सभी कचहरियों के काम स्थगित होगये और सभी वकील हाईकोर्ट पहुंच गये। यहां तक कि लाला कालेज भी बन्द हुआ। लाहौर के सभी वकीलों ने मिलकर आप से प्रार्थना की कि भूल हो गई कहकर क्षमा मांग लें। परन्तु आप इससे सहमत न हुए और पेशी पर जब जाने लगे तो अपना बिस्तर भी साथ बांधकर ले गये। क्योंकि सजा होते ही वहीं से जेल चले जायेंगे। हाईकोर्ट में उन्होंने अपने व्यवहार पर दुःख प्रकट करने से साफ निषेध कर दिया और इस बात का आग्रह किया कि उनके मुअक्किल नेकनीयत, सच्चे और आत्माभिमानी व्यक्ति हैं और उनकी भावना अदालत के सम्मुख ईमानदारी से रखना उनका कर्त्तव्य है। उपस्थित सज्जन परिणाम की आशङ्का से चिन्तित थे। ऐसी अवस्था में हाईकोर्ट ने ही बड़ी बुद्धिमत्ता से काम लिया और आपकी नेकनीयत और ईमानदारी पर विश्वास कर भविष्य में सावधान रहने की चेतावनी दे दी और मामला समाप्त कर दिया।

जब इन्द्रपाल जी छूटे थे तब आप न चल सकते न बैठ सकते थे। यहां तक कि आप बोल भी न सकते थे। आपने जेल जाने से चार मास पहले विवाह किया था। आपकी पत्नी का नाम जगदीश्वरी था। इसने अपने पति की सेवा बहुत मन लगाकर की, इस कारण कुछ कुछ लाठी के सहारे से चलने लायक आप हो गये। सन् १९३८ में आपने कुछ अखबार सम्पादनादि का कार्य भी किया। सन् १९४७ में विभाजन के समय आपके मन पर मानसिक आघात बहुत भयङ्कर लगा। लाहौर से आप देहली आ गये और कुछ समय उपरान्त इस नश्वर शरीर को त्यागकर स्वर्ग सिधार गये।

क्रांतिकारी दम्पति—

अमर शहीद भगवतीचरण और दुर्गादेवी

(ब्र० सोमदेव)

भगवतीचरण के पिता का नाम शिवचरण था। कहते हैं कि आपके पूर्वज गुजरात से आगरा और आगरा से लाहौर आकर बसे थे। परन्तु भगवतीचरण तो अपने आपको पंजाबी ही कहते थे। आपके पिता रेलवे दफ्तर में ऊँचे पद पर काम करते थे। भगवतीचरण ने नेशनल कालिज में शिक्षा प्राप्त की थी। जब कालिज में पढ़ते थे तब आपका शरीर बड़ा सुडौल था और उसी कालिज में आप भगतसिंह के साथ क्रांतिकारी बने। इन दिनों पंजाब में गुप्त संगठन करने के लिए भारत सभा की स्थापना की। उसी सभा के मुख्य सूत्रधार भगतसिंह और भगवतीचरण थे। कुछ दिनों में ही यह सभा भारत के कोने-कोने में फैल गई। इस प्रकार भमतसिंह के साथ भगवतीचरण ने अनेक कार्य किये।

जब वीरवर भगतसिंह मि० साण्डर्स की हत्या कर सरकार की आंखों में धूल झोंककर लाहौर से निकले थे तब यदि हम भूले नहीं तो वीरवर भगतसिंह की क्रांति ज्वाला को जिसने अपने में पूर्ण रूप से प्रज्वलित कर लिया था, उस महान् क्रांतिकारी की धर्मपत्नी श्रीमती दुर्गादेवी ही उक्त संकट की यात्रा में वीरवर भमतसिंह के साथ थी।

वह महान् क्रांतिकारी भगवतीचरण था। जिसने धन का लोभ, यौवन का प्यार सब कुछ देश की स्वतन्त्रता के लिए न्यौछावर कर दिया।

इस युवक ने अपने आपको देश सेवा के लिए अर्पण करने के साथ-साथ अपनी धर्मपत्नी दुर्गादेवी को भी क्रांति का क्रियात्मक पाठ पढ़ाया। तभी वह बड़े हौसले के साथ बड़ी शान से अव्वल दर्जे की मुसाफिरी करते हुए महान् क्रांतिकारी वीरवर भगतसिंह को बचा ले गई। लाहौर में साण्डर्स हत्या से सतर्क पुलिस की सर्वव्यापी छाया में से भी बचा ले जाने के नाटक में अपना अभिनय निःशङ्क और सफलतापूर्वक पूरा कर वीरवर भगतसिंह को कलकत्ता पहुंचा दिया।

इधर जब क्रांतिकारियों ने आगरा आदि में बम के कारखाने खोले तो भगवतीचरण ने वीरवर भगतसिंह के साथ मुख्यतया उनका उत्तरदायित्व लिया।

प्रथम लाहौर षड्यन्त्र की गिरफ्तारियों के पश्चात् खासकर जब वीरवर भगतसिंह भी गिरफ्तार हो गया तो चिर फरार सेनापति चन्द्रशेखर आजाद के कन्धे से कन्धा भिड़ाकर भगवतीचरण क्रांतिकारी दल को विध्वंस होने से बचाने के लिए खड़े हुए। आजाद के बचे हुए साथियों में वे भी एक अत्यन्त सुलझे हुए क्रांतिकारी थे।

जब भुसावल बमकेस में फणीन्द्रघोष सरकारी गवाह बना तब भगवतीचरण ने इस विश्वासघाती को यमलोक पहुंचाने के लिए जेल में भी दल के सदस्यों के पास अपने कौशल से रिवाल्वर पहुंचा दी।

भगवतीचरण नित्य नये तरीकों से बम का प्रयोग करने में ही अपना अधिकांश समय व्यतीत करते थे। वे ता० १८ मई सन् १९३० के दिन सायंकाल को ४॥ बजे एक बम लेकर उसका परीक्षण

करने के लिए रावी के तट पर गये। जब बम फेंकने लगे तभी हाथों में ही बम फट गया और भगवतीचरण बुरी तरह घायल होगये। उस भयङ्कर जंगल में उनकी सहायता करने वाला कोई नहीं था। वे ४ घण्टे तक जीवित रहे। मरते दम तक उन्हें दल की चिन्ता ही घेरे रही। उनकी मृत्यु से जो क्षति हुई उसकी पूर्ति न हो सकी।

९ अक्तूबर सन् १९३१ की रात को बम्बई शहर के लैमिन्टन रोड थाने में मोटर से उतरते हुए सार्जेण्ट टेलर और उनकी बीबी को घायल करने का श्रेय भी स्व० भगवतीचरण की धर्मपत्नी श्रीमती दुर्गादेवी उर्फ 'भाभी' को ही प्राप्त था। यह भी इस कमाल से कि किसी की भी पकड़ में नहीं आई। यहां तक कि जब उन्होंने आत्मसमर्पण किया तब भी इस पर कोई केस न चल सका।

जब साण्डर्स के मारे जाने पर लाहौर में हलचल मची तब वीरवर भगतसिंह ने सोचा कि इस समय लाहौर से बाहर जाना ही उचित है। दुर्गादेवी की ही चाल से लाहौर से भगतसिंह बाहर निकले थे। स्टेशन पर पचासों खुफिया आदमी थे। अनेक तो ऐसे थे जो भगतसिंह के कार्यों पर दृष्टि रखने के लिए महीनों उसके साथ रहे, फिर भी वे यह न समझ सके कि यह अफसर और कोई नहीं वही भगतसिंह है जिसकी खोज में मारे-मारे फिर रहे हैं। वह युवति क्रांतिकारिणी समिति की एक सदस्या दुर्गादेवी थी, जिसका देहली षड्यन्त्र केस में मुखबिरों द्वारा "दीदी" के नाम से उल्लेख हुआ था। पुलिस ने उनका वारण्ट निकाला था किन्तु गिरफ्तार न कर सकी। इसके पश्चात् वह एक जलूस का नेतृत्व करके तीन मास का कारावास दण्ड भी भुगत आई। मजिस्ट्रेट को उन्होंने अपना नाम और पता बताने से निषेध कर दिया था। उन दिनों सत्याग्रही भी इसी प्रकार किया करते थे अतः दुर्गादेवी पर भी विशेष ध्यान नहीं दिया गया। यह पता तो तब लगा जबकि वह छूट गई कि यह क्रांतिकारिणी है। अपने चंगुल में आ जाने के पश्चात् भी इस प्रकार छोड़ देने पर देहली में और भी जोर से खोज करने लगे। इधर दीदी को सूझा भगतसिंह से लाहौर जेल में मिला जाये। वे लाहौर जाकर मिली। इसके पश्चात् दीदी के नाम एक पत्र आया, जिसके पास पत्र था वह असावधानी के कारण कहीं डाल आया। भाग्यवश वह पुलिस के हाथ लग गया। जब अधिकारियों को ज्ञात हुआ कि "दीदी" लाहौर में ही है तो उन्होंने तत्काल ही चारों ओर दौड़-धूप प्रारम्भ कर दी। लाहौर के लगभग डेढ़ दर्जन मकान बात की बात में घेर लिए गये और उनकी तलाशी प्रारम्भ हुई। दीदी को भी उन पत्रवाहक महोदय ने चेतावनी दे दी थी कि मुझ से पत्र कहीं गिर गया है अतः आप पर कुछ आपत्ति आ सकती है। "दीदी" ने यह चेतावनी पाते ही यह सन्देहास्पद स्थान छोड़ दिया और जहां-जहां पुलिस तलाशी ले रही थी वहां जा-जाकर तमाशा देखने लगी। जब पुलिस निराश होकर चली गई तो उन्हें यह चिन्ता हुई कि लाहौर से अब किस प्रकार निकला जाये। इसके लिए उन्होंने एक ग्रामीण वधू का वेष बनाया। हाथों में लाख की मोटी-मोटी भद्दी चूड़ियां, पैरों में महावर और लम्बा-सा घूंघट। इस वेष में देखकर यह किसे शंका हो सकती थी कि यह कालिज में शिक्षा प्राप्त की हुई एक सुशिक्षित लड़की है। एक देहाती से दीख पड़ने वाले महाशय के साथ वह ट्रेन में बैठ गई और सकुशल लाहौर से निकल गई।

बाबा ज्वालासिंह

(ब्र० सोमदेव)

पञ्जाब में हिन्दू राज्य समाप्त हो जाने पर अर्थ व्यवस्था छिन्न-भिन्न हो गई थी अतः बहुत से हिन्दू भारत से बाहर नौकरी करने के लिए जाने लगे। ऐसे ही एक ज्वालासिंह अपने पिता के साथ कैनेडा चले गये थे। वहां उन्होंने आलू की खेती से बहुत धन कमाया।

सन् १९१४ में जर्मन युद्ध छिड़ गया। स्वतन्त्र देश के वायुमण्डल में रहने के कारण प्रवासी भारतीयों को भी अपने देश को आजाद करने की इच्छा उत्पन्न हुई। वे टोल के टोल हिन्दुस्तान में आने लगे। ज्वालासिंह ने भी अपनी कैनेडा की कुछ सम्पत्ति बेच दी और नकद तीस हजार रुपया और थोड़े से हथियार लेकर हिन्दुस्तान को चल दिए। जब एक कैनेडियन ने पूछा कि यह सम्पत्ति किस लिए बेच रहे हो? तब ज्वालासिंह ने उत्तर दिया "अपनी एक बड़ी सम्पत्ति को बन्धन-मुक्त करने के लिए।" वहां पर सरकार को पता लग गया था। अतः वे जो भी जहाज आता उसी की तलाशी लेते थे। जब ज्वालासिंह के पास तीस हजार रुपये मिले तो उसके रुपये तो डाकखाने में जमा कर दिए और उसे पकड़ लिया गया। आजन्म कालापानी की सजा देकर अण्डमान की जेल में जीवन भर के लिए भेज दिया।

अण्डमान में कालापानी की सजा को उन्होंने भोगा। एक साल नहीं, दो नहीं, पूरे अठारह वर्ष। आजादी का मतवाला तरुण ज्वालासिंह इन अठारह वर्षों में उम्र से बाबा ही बन गया और जब वह पञ्जाब में आया तो सब लोग आदरपूर्वक "बाबा" के नाम से ही पुकारते थे।

अण्डमान में लोग इसलिए भेजे जाते थे कि वहां उनका शारीरिक स्वास्थ्य खराब हो जाता था और साथ ही देशभक्ति का साहस भी टूट जाता था। किन्तु ज्वालासिंह अण्डमान से लौटते ही किसान संगठन में लग गये।

वे सन् १९३३ में जेल से छूटे थे। सन् १९३४ से ही उन्होंने भारत में किसान मजदूरों का राज्य स्थापित करने के लिए मानो शपथ ही उठा ली। गांव-गांव जाकर उन्होंने किसानों को संगठित करना आरम्भ कर दिया और इतने परिश्रम से किया कि सन् १९३३ में उन्होंने अमृतसर के पास नौशेरवा गांव में जो सभा बुलाई उसमें दोनों दिन पचास पचास हजार की संख्या में किसान उपस्थित होते रहे।

कर्मवीर ज्वालासिंह का कर्म करते हुए कर्म-क्षेत्र में एक लारी दुर्घटना में सन् १९३८ में देहान्त हो गया।

@VaidicPustakalay

राजस्थान में क्रांति के सर्वेसर्वा—

वीर सेनानी श्री ठाकुर केशरीसिंह बारहट

(ब्र० धर्मव्रत)

चारण जाति क्षत्रियों के लिए राजनीतिक शिक्षागुरु, वीरता की प्रोत्साहक, विपत्ति में सहायप्रद एवं सब जातियों में पूज्य रही है। चारणों की वीरता से भारत के इतिहास के पृष्ठ खाली नहीं हैं। इसी चारण जाति के ५०० वर्ष पूर्व महाराणा हम्मीर का छूटा हुआ प्यारा चित्तौड़ अपने बुद्धि-वैभव एवं बाहुबल से फिर प्राप्त करानेवाले इतिहासप्रसिद्ध वीरवर "सौदा बारहट वारू" की सन्तान वीरता में आज तक अग्रणी रही हैं। उसी वीर-वंश की तेईसवीं पीढ़ी के सरदार केशरीसिंह थे। मेवाड़ के अन्तर्गत शाहपुरा राज्य में सरदार केशरीसिंह के पूर्वजों की जागीर चली आती थी। केशरीसिंह शाहपुरा राज्य के प्रथम श्रेणी के उमराव सरदारों से अधिक सम्मानित थे। इनके पिता का नाम कृष्णसिंह बारहट था जो स्वामी दयानन्द जी के अनन्य भक्त थे। इस कृष्णसिंह जी ने अपने बुद्धिवैभव से राजपूताना के समस्त नरेशों से सम्मानित पद प्राप्त किया था। ये अपने समय में राजपूताना और मध्यभारत में विशेष राजनीतिज्ञ माने जाते थे।

कृष्णसिंह जी के तीन पुत्र थे—केशरीसिंह, किशोरसिंह और जोरावरसिंह। केशरीसिंह का जन्म वि० सं० १९२९ के मार्गशीर्ष कृष्णा ६ को अपनी जागीर के देवपुरा ग्राम में हुआ था। इनके जन्म के एक मास पश्चात् माता का देहावसान होगया। केशरीसिंह ने अपनी तरुण अवस्था में ही बुद्धि-वैलक्षण्य से महाराणा फतेहसिंह (उदयपुर) के यहां सर्वप्रथम पद प्राप्त किया था। बैशाख सं० १९५६ में कोटा नरेश उम्मेदसिंह की गुणग्राहकता ने केशरीसिंह को खींचा और यहां कोटा में आकर रहने लगे।

केशरीसिंह का मन अपने देश की पतित अवस्था की ओर रहता था अत: उन्होंने अठारह उन्नीस वर्ष की अवस्था में ही जातीय एवं सामाजिक सुधारों में उत्साहपूर्वक भाग लेना प्रारम्भ कर दिया था। इन्होंने सन् १९११ में राजपूत जाति की सेवा में अपील निकाली। जिसके निकलते ही भारत की नौकरशाही चौकन्नी हो उठी। केशरीसिंह जी शिक्षा और संगठन का कार्य करते थे। ये 'स्वतन्त्र क्षात्र शिक्षा' और 'क्षात्र शिक्षा-परिषद्' चलाते थे। जिसका ढांचा बड़ा मजबूत था। जिसको डिगाया नहीं जा सकता था। क्योंकि स्वजाति हित से प्रेरित होकर राजपूताना और मध्यभारत के नरेश एवं बड़े-बड़े सरदार उसमें सम्मिलित थे।

जब सरकार ने देखा कि भारतीय सेना में जो राजस्थानी राजपूत सिपाही और अफसर हैं वे भी अपने असहाय बालकों के शुभ भविष्य और जाति गौरव के पुनर्दर्शन की आशा से केशरीसिंह जी की सेवा को अमूल्य समझकर उत्साहपूर्वक सहयोग देने लगे हैं, तब व्यग्र होगई। न सरकार ने सत्य की जांच की, न पड़ताल। परन्तु सन् १९१४ की ३१ मार्च को शाहपुरा नरेश को आगे रखकर सहसा केशरीसिंह को गिरफ्तार कर लिया। केशरीसिंह को तीन महीने तक इन्दौर की छावनी में भील पल्टन में बन्द रखा गया। उसी समय 'दिल्ली षड्यन्त्र', 'आरा केस' आदि चल रहे थे। उनमें केशरीसिंह को फंसाने के लिए सरकार ने बहुत चेष्टायें कीं परन्तु निष्फल रहीं। क्योंकि उस समय

वे कानूनी प्रान्त थे । तब सरकार ने चालाकी चली कि—"सम्राट् का शासन उलट देने की नीयत" के अभियोग में राजस्थान के किसी राजा के हाथ से सजा दिलाई जाये। जिससे प्रत्येक नरेश कांप जाये और क्षात्र शिक्षा का कार्य छिन्न-भिन्न हो जाये। साथ ही राज्यों में सरकारी पुलिस का भी द्वार खुल जाये। राजद्रोह के साथ एक कत्ल की पूंछ लगाना तो अंग्रेज सरकार का सनातन धर्म रहा है। सरकार ने कोटे को ही युक्त समझा और केशरीसिंह का मुकदमा वहां ही चलाया। वहां पर प्राय: भारत के समस्त बड़े-बड़े प्रान्तों के अंग्रेज पुलिस आफिसर आये। "पायोनियर" और "टाइम्स आफ इण्डिया" सरदार केशरीसिंह के विरुद्ध आग उगल रहे थे।

राजपूताना और मध्यभारत के सब नरेशों की आंखें कोटे पर लगी हुई थीं। क्योंकि देशी राज्यों में यह कांड अभूतपूर्व था। राजद्रोह का कोई भी प्रमाण सरकार को न मिला। सरकार को अधीन राज्य को घुड़की से मना लेने की आशा थी। परन्तु केवल घुड़की से हां कह देने पर केशरीसिंह से सम्बन्धित रियासतें व्यर्थ विपत्ति में पड़ जातीं। अत: साहसी कोटा दीवान स्व० चौबे रघुनाथदास ने गला दबाया जाने पर भी इस केस में राजनीतिक अपराध स्वीकार न किया। फिर भी सरकार ने सरदार केशरीसिंह को बीस वर्ष का दंड देकर जेल में ठोंस दिया।

केशरीसिंह को सरकार भयंकर मानती थी। इसी से जगह जगह खुले हुए राजपूत-बोर्डिंग हाउस और संगठन के बिखर जाने पर, केस और विद्रोह भड़कने की आशंका मिट जाने पर नौकरशाही ने केशरीसिंह को कोटे से सुदूर हजारीबाग (बिहार) जेल भेज दिया।

केशरीसिंह ने जिस दिन गिरफ्तार होकर शाहपुरा राज्य छोड़ा उसी दिन से अन्न न खाने की प्रतिज्ञा की। केवल दूध ही पीते थे। हजारीबाग (बिहार) पहुंचते ही केशरीसिंह जी की कठिन परीक्षा लेनी प्रारम्भ की। सरकार को वीरों को संकल्प से च्युत करने में अधिक आनन्द आता है। लङ्घन शुरु हुआ। १८ दिन तक निराहार बिताये। दूध भी नहीं पीया। जब अधिकारियों ने देखा कि कष्ट भोगने से पूर्व ही कहीं पक्षी उड़ न जाये। उन्नीसवें दिन थोड़ा सा दूध दिया। प्रतिज्ञा तो अन्न न न खाने की थी, दूध तो ले लिया, परन्तु अन्न खाना प्रारम्भ न किया। परन्तु सरकार एक सप्ताह के बाद जबरदस्ती चावलों के मांड का पानी नासिका के द्वारा देने लगी। इस प्रकार का युद्ध १८ मास तक चलता रहा। इतने लम्बे काल के बीत जाने पर भी वे काल कोठरी से नहीं निकाले। अन्त में सरकार परास्त हुई।

बिहार और उड़ीसा जेलों के अधिकारी (आई० जी०) ने आकर कहा कि केशरीसिंह! राणा-प्रताप की हिस्ट्री से हम मेवाड़ के पानी की ताकत को पहले से जानते थे। शाबास बहादुर! तुम जीत गये हम परास्त हो गये। आज से दूध ही मिलता रहेगा। रहस्य दूध में न था अपितु संकल्प की अचलता में था।

सन् १९१९ में सरकार ने स्वयं अपनी तरफ से केशरीसिंह से अपने केस की वायसराय के नाम अपील की। जेल अधिकारियों के अति आग्रह पर ही यह अपील की गई थी और सन् १९१९ में जून के अन्त में केशरीसिंह को छोड़ दिया गया। इसके पश्चात् का इतिहास नहीं मिलता।

———

राजस्थान केसरी—

वीरप्रवर कुँवर प्रतापसिंह बारहट

(ब्र० धर्मव्रत)

राजस्थान ने स्वतन्त्रता के लिए जितना रक्त बहाया है वह किसी से छिपा हुआ नहीं है। हजारों नहीं लाखों राजपूतों ने अपने प्राण हथेली पर रखकर अपने प्यारे चित्तौड़ के लिए आहुतियां दी हैं। महाराणा प्रताप ने आजीवन कष्टों का सामना किया, किन्तु दुष्ट यवनों की पराधीनता एवं किङ्करता स्वीकार न की। उसी वीर देशभक्त महाराणा प्रताप के रक्त का सञ्चार वीर कुंवर प्रतापसिंह की धमनियों में विद्यमान था। प्रतापसिंह भी प्रताप के प्रताप को देखकर पागल हो जाता था। प्रतापसिंह ने अंग्रेजों की किङ्करता स्वीकार न की।

प्रतापसिंह का जन्म उदयपुर (राजस्थान) में वि० सं० १६५० ज्येष्ठ शुक्ला ६ को हुआ था। इनकी माता का नाम श्रीमती माणिकदेवी था। सबसे पहले प्रताप ने कोटा में शिक्षा प्राप्त की थी तत्पश्चात् "दयानन्द ऐंग्लो-वैदिक हाई स्कूल व बोर्डिङ्ग" अजमेर में भेज दिया गया। वहां पर मैट्रिक तक पढ़ा, परन्तु परीक्षा में न बैठा। उसे सार्टिफिकेट (प्रमाण पत्र) की इच्छा नहीं थी। अंग्रेजी पढ़ी ही इसलिए थी कि इसके द्वारा भारत के किसी भी प्रान्त में सेवा कर सके और अपने को खपा सके। सरदार केशरीसिंह यूनिवर्सिटी की शिक्षा को दासत्व का सांचा मानते थे अतः उन्होंने प्रताप को पन्द्रह वर्ष की आयु में स्वतन्त्र शिक्षण के लिए जयपुर के प्रसिद्ध देशभक्त अर्जुनलाल सेठी के जैन विद्यालय में पढ़ने के लिए भेजा। वह जैन विद्यालय जयपुर से इन्दौर गया तब प्रतापसिंह दिल्ली के देशभक्त अमीरचन्द के यहां रहे थे। इनके पिता का नाम सरदार केशरीसिंह था जो क्रांतिकारियों के सर्वेसर्वा माने जाते थे। इनका परिवार राजस्थान में गणमान्य धनिक जमींदारों में गिना जाता था। परन्तु देशसेवा के निमित्त अपनी सारी समृद्धि को नष्ट करना पड़ा एवं घर-बार को छोड़कर दर-दर का भिखारी बनना पड़ा।

दिल्ली षड्यन्त्र में प्रतापसिंह और उनके बहनोई पकड़े गये थे। परन्तु इनके विरोध में कोई विशेष प्रमाण न मिला। अतः इनको छोड़ दिया गया। इसके कुछ दिन पश्चात् कोटा में एक राजनीतिक मामले में कुंवर प्रतापसिंह के पिता सरदार केशरीसिंह बारहट को आजन्म कालापानी का दण्ड हुआ। सरदार केशरीसिंह का स्वास्थ्य उन दिनों अच्छा न था, अतः उन्हें अण्डमान न जाना पड़ा परन्तु वे अपने देश की ही जेलों में रहे। कुंवर प्रतापसिंह के सगे चाचा के नाम भी वारन्ट निकला था। इस कारण सरदार केशरीसिंह एवं उसके भाई की सारी सम्पत्ति जब्त हो गई थी। उनके परिवार के लोगों की भी सम्पत्ति (जायदाद) इसलिए जब्त कर ली थी कि इनका सम्बन्ध प्रताप-के परिवार के साथ था। इस प्रकार से एक समृद्ध सम्पन्न परिवार को भिक्षुक बनना पड़ा।

समस्त परिवार के भिक्षुक बन जाने पर प्रतापसिंह की माता अकेली घर रह गई थी। उसको भी बहुत कष्ट दिया गया था। यदि आज एक सम्बन्धी के पास रहती तो दूसरे दिन दूसरे के पास

रहना पड़ता। जब इसकी माता ने किसी प्रकार से गुजारा न चलता देखा तो पिता के घर जाकर अपने दिन बिताने लगी। प्रताप के मामा के घर की अवस्था अच्छी न थी। परमेश्वर की लीला विचित्र है। जिससे वे कार्य कराना चाहते हैं अथवा जिसको वे उन्नत पथ पर बढ़ाना चाहते हैं, उसकी वह प्रथम परीक्षा कष्टों में लेते हैं। कुंवर प्रतापसिंह से भी भगवान् देश हित करवाना चाहता था। अतः प्रतापसिंह की कष्टों द्वारा ही परीक्षा ली। बड़ी भारी विपत्ति में पड़ करके भी प्रतापसिंह बराबर विप्लव का काम करता रहा। प्रतापसिंह अपना स्वार्थ साधने के लिए क्रांतिकारी दल में प्रविष्ट नहीं हुए थे अपितु अपने कर्त्तव्य को निभाने के लिए प्रविष्ट हुए थे। जो मानव केवल मित्रता के कारण एवं मित्रों के अनुरोध से कार्य करता है, उसमें उत्साह नहीं लेता। परन्तु जो हार्दिक इच्छा से कार्यक्षेत्र में उतरता है वह ही सफल होता है एवं उसकी ही आत्मा दृढ़ होती है। प्रतापसिंह सदा हंसमुख रहते थे। जो भी उनके पास ठहरता था उसको भी वह हंसमुख कर लेता था। निराशा तथा भीरुता उसमें तनिक भी नहीं थी। प्रतापसिंह राजस्थान के चारण वंश के थे। राजपूतों में चारण वंश वाले ही पूज्य माने जाते हैं।

प्रतापसिंह के पिता केशरीसिंह बारहट उदयपुर के राणा फतेहसिंह के विशेष मित्र थे। जिस समय कर्जन के अत्यधिक आग्रह से महाराणा फतेहसिंह दिल्ली दरबार जाने को तैयार होगये थे, उसमें इनका जाना राजस्थान निवासियों को खटका। स्वामी दयानन्द के शिष्य एवं केशरीसिंह के पिता शाहपुरवासी श्री कृष्णसिंह बारहट ने जो राजस्थान के क्रांतिकारी स्वाधीनतावादी दल के एक नेता थे, उन्होंने अपने पुत्र केशरीसिंह से चुभती हुई कविता लिखवाकर महाराणा के पास भिजवाई। जो कविता "चेतनावणीश चूँगट्य" के नाम से प्रसिद्ध है। केशरीसिंह ने लिखा था—

कठिण जमानो कौल बांधे नर हिम्मत बिणा।
यो वीरां हन्दो बोल, पातक सांगे देखियो ॥
मान मोद सीसोद राजनीति दल राखणौ।
पण गरमिण्ट री गोद मीठा फल दीढ़ा फतां ॥

इसका अर्थ यह है कि—"जमाना कठिन है ऐसा कौल (सिद्धान्त) मनुष्य बिना हिम्मत बांधता है।" वीरों के इस वचन को पातऊ अर्थात् प्रताप और सांगा ने पहचाना था। सीसोदियों के मान का मजा राजनीति में रखने से था। परन्तु हे फतेहसिंह! तुझे अब गर्वनमेंट (अंग्रेज सरकार) की गोद में मीठे फल नजर आ रहे हैं।

बताया जाता है कि यह कविता महाराणा फतेहसिंह को चित्तौड़ से रेल में बैठकर दिल्ली रवाना हो जाने के बाद रास्ते में सरेटी स्टेशन पर मिली। उसे बड़ा पछताना पड़ा। दिल्ली पहुंचकर भी वह कर्जन की उस प्रदर्शनी में सम्मिलित न हुआ। परन्तु रोगी का बहाना बनाकर उदयपुर वापिस लौट आया था। इससे यह पता चलता है कि इनकी किस प्रकार की मित्रता थी। एक मित्र ने अपने मित्र को पाप के गर्त में जाने से बचाया, इसी को सच्ची मित्रता कहते हैं।

कुंवर प्रतापसिंह के दादा उदयपुर के महाराणा फतेहसिंह के यहां मन्त्री पद पर नियुक्त थे। इनकी जागीर मेवाड़ के अन्तर्गत शाहपुरा राज्य में थी।

कुंवर प्रतापसिंह ने एक दिन अपनी माता से कहा—"मात धोती फट गई,कहीं से तीन रुपये का प्रबन्ध कर दो तो धोती लाऊं। आज चाहिए।" माता के हाथ तो सर्वथा खाली थे। प्रयत्न करके दो रुपये मिले वे पुत्र के हाथ में दिए। प्रताप के लिए माता का दिया हुआ यही

अन्तिम आशीर्वाद था। बिना कुछ कहे मन ही मन माता को अन्तिम नमस्कार कर, सायंकाल होते ही वह निकल पड़ा। वहां से शहर में अपने पिता के एक मित्र के पास पहुंचा और कहा—"जो कुछ भी तैयार है भोजन यहीं करूंगा।" भोजन करते समय मित्र ने कहा कुंवर साहब ! अब आपकी क्या इच्छा है ?" प्रताप ने कहा—'शादी करनी है।' क्या कहते हो शादी ? आज तक तो स्वीकार न की अब इस घोर विपत्ति में शादी ? यह क्या सूझी ? प्रतापसिंह ने कहा - "हां निश्चय ही शादी, लग्न भी आ गया है। उसी के लिए जाता हूँ। कहां ? तुम सब सुन लोगे।" यह कहते हुए जोर से "वन्दे मातरम् !" का नारा लगाया और अदृश्य हो गया। उसके बाद प्रताप को कोटे में किसी ने नहीं देखा। बेचारा मित्र क्या समझे कि प्रताप की शादी क्या है ? दूसरे दिन जब प्रताप घर नहीं लौटा, तो वही मित्र आया और शादी की बात कही। चतुर माता समझ गई और कहा—"ठीक है, परन्तु उसने मुझसे नाहक़ ही छिपाया। मैं उसे तिलक करके और चुम्बन लेकर बिदा करती।" यह थी सच्ची माता। जब देश में सच्ची भावना वाली माताएं होंगी तभी भारत का कल्याण होगा।

कुंवर प्रतापसिंह का सम्बन्ध क्रान्तिकारियों से धीरे-धीरे बढता गया। प्रतापसिंह ने अपना कार्य क्षेत्र राजस्थान ही बनाया। शचीन्द्रनाथ सान्याल जिस समय उत्तर भारत की गतिविधि को जानने के लिये रासबिहारी वसु के आदेश से भ्रमण कर रहे थे उसी समय कुंवर प्रतापसिंह भी शचीन्द्रनाथ सान्याल के साथ दिल्ली गया था। अवधविहारी के गिरफ्तार हो जाने के बाद दिल्ली विप्लव दल का भार लक्ष्मीनारायण और गणेशीलाल पर पड़ा। कुछ दिनों तक इन्होंने बड़े उत्साह से कार्य किया परन्तु कुछ ही दिनों में वे शिथिल हो गये। इनके शिथिल हो जाने पर दिल्ली दल का भी कार्य शिथिल हो गया। इस विप्लव दल को सुदृढ बनाने के लिये प्रतापसिंह एवं शचीन्द्रनाथ सान्याल दिल्ली आये थे। प्रतापसिंह ने दिल्ली में एक मकान खरीदा और वहां पर निवास करने लगे। जब आवश्यकता होती तब राजस्थान चला जाता। वहां पर रहकर पुनः दिल्ली चला आता। इस प्रकार का क्रम उसने बहुत दिनों तक चलाया। कुंवर प्रतापसिंह राजस्थान से कुछ युवकों को लाया जिनसे उसने दिल्ली विप्लव दल का कार्य बड़े जोरों से चलाया।

विष्णु गणेश पिंगले के गिरफ्तार हो जाने पर दल का भार शचीन्द्रनाथ सान्याल पर पड़ा। उसने भारत में क्रान्ति के लिये वातावरण और संगठन बनाये रखने के लिए प्रतापसिंह के साथ राजस्थान जाने का विचार किया। परन्तु शचीन्द्रनाथ सान्याल का स्वास्थ्य दिल्ली में रहने से खराब हो गया था। उसे कुछ दिन तक विश्राम करने की आवश्यकता थी। इसलिये प्रतापसिंह शचीन्द्र को कलकत्ते छोड़ आया। प्रतापसिंह की उस समय लाहौर, दिल्ली, बनारस आदि के षड्यन्त्रों के मुकद्दमों में मांग थी। परन्तु इसके वारण्ट होने के कारण इसने इनकी मांगें स्वीकार न कीं। वारण्ट होने के कारण प्रतापसिंह को राजस्थान से बाहर सिन्ध हैदराबाद जाना पड़ा। वहां पर प्रताप कम्पाउडर का काम करता था और क्रान्ति का भी प्रचार करता था। पुलिस को उसके हैदराबाद होने की बात भी मालूम हो गई। बात का पता होने पर वहां सुरक्षित रहना असम्भव था। अतः प्रतापसिंह चौधरी रामनारायण को वहां से बीकानेर ले आया। जहां प्रतापसिंह का रिश्तेदार था, एवं जो राज में पर्याप्त ऊँचे पद पर नियुक्त था, वहां पर रखा।

अन्त में फिर पंजाब को प्रताप की आवश्यकता हुई तब आह्वान पाकर वह उधर लपका। हैदराबाद के कार्य को दूसरों के हाथ में सोंप, गर्मी, भूख और चार-पांच दिन का जागरण सहता हुआ रेल से जोधपुर होकर निकला। जोधपुर से अगले छोटे-से-स्टेशन 'आसानाडा' पर स्टेशन मास्टर परिचित था। वहां ठहरकर कुछ आराम कर लेने और कुछ नई बात हो तो जान लेने के विचार से प्रताप वहां उतर गया। उसे क्या मालूम था कि वह विश्वासघाती के चंगुल में जा रहा है। स्टेशन मास्टर को इस बीच में पुलिस ने फोड़ लिया था। स्टेशन मास्टर ने प्रताप को देखते ही कहा—"पुलिस तुम्हारे लिए चक्कर लगा रही है। कोई देख लेगा, मेरी कोठरी में जा बैठो, कुछ खाओ-पिओ।" वह प्रताप को अपनी कोठरी में ले गया। प्रताप ने कहा—'निद्रा सता रही है सोऊंगा।' विश्वासघाती ने कहा—"निशङ्क सो जाओ, ताला लगा देता हूँ ताकि किसी को भ्रम न हो।" प्रगाढ निद्रा होने पर स्टेशन मास्टर ने कोठरी में से प्रताप का शस्त्र और दूसरी सब चीज निकाल ली ताकि मुकाबले के लिए प्रताप के हाथ में कुछ भी न रहे। फिर उसने जोधपुर पुलिस को टेलीफोन कर दिया। बस फिर क्या था पुलिस फौजी रिसाला और दल-बल के साथ जा पहुँची। आसानाडा घेर लिया गया। कोठरी के द्वार और खिड़कियों पर बर्छी और संगीनें अड़ा दी गईं। चुपके से ताला खोल कर सोते प्रतापसिंह पर पुलिस टूट पड़ी और बेचारा गिरफ्तार कर लिया गया।

उस समय प्रताप की उग्र मुख-मुद्रा, जोश भरी लाल आंखें, फड़कते हुए होठ और उलझते हुए बाहुओं को, जिनकी आंखों ने देखा वे आज भी कहते हैं कि वह सच्चा वीर था, सम्भल जाता तो अवश्य वीर खेल जाता।

आज भी आंखों में पानी भरकर पुलिस के काले आफिसर मुक्तकण्ठ से कहते हैं—"हमने आज तक प्रताप जैसा वीर और विलक्षण बुद्धि का बालक नहीं देखा। उसे तरह तरह से सताया जाने में कसर नहीं रखी गई, परन्तु वाह रे धीर! टस-से-मस न हुआ। गजब का सहने वाला था। सर चार्ल्स क्लीवलैण्ड (भारत के डाईरेक्टर आफ सी० आई० डी०) जैसे घाघ का दिमाग भी चकरा गया। हम सब हार बैठे उसी की दृढता अचल रही।

आसानाडा में प्रतापसिंह दिल्ली षड्यन्त्र में गिरफ्तार हुआ। गिरफ्तार करके जेल भेज दिया गया। प्रताप पर क्रान्तिकारी दल में सम्मिलित होने का दोष लगाया गया था जिसका इसको कठोर कारावास दण्ड मिला। गिरफ्तार होने के कुछ दिन पश्चात् भी पुलिस अनेक प्रलोभन देकर उन्हें सब गुप्त बातें प्रकट करने के लिए दुःखी करती रही। पुलिस कहती थी, यदि तुम सब गुप्त बातें प्रकट कर दोगे तो तुम्हें और तुम्हारे पिता को छोड़ दिया जायेगा एवं चाचा का मुकद्दमा भी उल्टा ले लिया जायेगा। तुम्हारी समस्त सम्पत्ति भी उल्टी कर दी जायेगी। इससे पृथक् और भी पुरस्कार दिया जायेगा। यह ही नहीं, पुलिस ने भेद खोलने के लिए और भी बहुत दबाव डाले एवं अत्याचार किये। उसकी माता का हृदयद्रावक वर्णन उसको सुनाया गया।

प्रतापसिंह पुलिस की सब बातें सुन लेता था। परन्तु उत्तर एक का भी न देता था। पुलिस ने अपनी सारी शक्ति लगा ली किन्तु प्रतापसिंह से कुछ भी पता न पा सकी। पुलिस समझती थी कि यदि प्रताप को समझा लिया जावे तो बड़ी-बड़ी बातों का रहस्योद्घाटन हो सकता है। वह वीर था, अपनी माता के कष्टों को दूर करने के लिए जान देने को तैयार था, पर बात बताने को तैयार न हुआ। पुलिस ने साम-दाम आदि से व्यवहार किया था।

एक दिन प्रतापसिंह के साथ पुलिस की तीन घण्टे तक बात-चीत हुई। प्रताप उनके बहकाने में आ गया था किन्तु पुलिस से कह दिया था कि एक दिन और सब बातें सोच लेता हूं फिर कहना होगा तो कह दूंगा। दूसरे दिन पुलिस मिलने आई। तब प्रताप ने उत्तर दिया—"देखिये! बहुत सोचा-विचारा, अन्त में यही तय किया कि कोई भी बात न खोलूंगा।" और कहा—अभी तो मेरी एक माता दुःख भोग रही है। यदि मैं तुम्हें भेद बता दूं तो न जाने उस जैसी और कितनी माताओं को वैसा ही दुःसह कष्ट भोगना पड़ेगा। एक माता के सुख के लिये मैं सैकड़ों माताओं को विपत्ति में डालना नहीं चाहता। जो चाहो करो, मैं हरगिज तुम्हें कुछ न बताऊंगा।

कुंवर प्रतापसिंह को बरेली जेल में रखा गया जो कि उस समय भारत में सबसे अधिक बदनाम थी। वहां पर उसका सुख में पला २५ वर्ष का सुकुमार गात विदेशी शासकों के नृशंस अत्याचारों को सहने में उसकी अदम्य आत्मा का साथ अधिक दिन न दे सका। अन्त में उसने स्वतन्त्रता की वेदी पर वि० सं० १९७५ (सन् १९१९) की वैशाख पूर्णिमा को अपनी बलि चढ़ा दी। भारत का दुर्भाग्य है कि कुंवर प्रतापसिंह जैसे वीर आज हमारे मध्य में नहीं हैं। क्रांतिकारियों के इतिहास में इस प्रकार का परिवार सावरकर को छोड़कर नहीं हुआ, जिसने देश के हित के लिए अपना बलिदान किया हो एवं देश के लिये भिखारी बन गया हो, भिखारी ही नहीं अपने प्राणों को स्वतन्त्रता की वेदी पर बलि चढ़ा दिया हो। ऐसे परिवार का नाम भारतीय क्रांतिकारी इतिहास में स्वर्णाक्षरों में लिखा रहेगा।

*

वीरभूमि राजस्थान के क्रांतिकारी वीर—

ठाकुर जोरावरसिंह बारहट

(ब्र० धर्मव्रत)

भूतल पर बल खाती हुई उस नील जलधारा के उत्तुंग कगारों पर आच्छादित घनी झाड़ियों के मध्य एक छोटी सी अपरिचित बस्ती राजस्थान के दक्षिण दिशा में है। दिनान्त की धूलि धूसरित आभा जब उन खपरेलों के घरों पर पड़ने लगी तब जलचरों की दीर्घ प्रतिध्वनि पुनः कर्णरन्ध्रों में निनादित होने लगी और नेत्रों के प्रकोष्ठ में आत्मानुभूति की तीव्र वेदनामय सृष्टि अदृष्ट सी झलकने लगी, तो वह ग्राम प्रदेश एक अनुपम आल्हाद, गौरव और तीर्थरूप बनकर हृदय में प्रतिबिम्बित हो उठा। इस पावन स्थान को चाहे अन्य न जानें, इसमें जीवन यापन करने वाले प्राणी-विशेष की महती तपश्चर्या का वैभव तथा आडम्बर में चुन्धियाई हुई विश्व की आंखें मूल्यांकन न कर सकें और त्याग, संकल्प एवं कष्ट सहिष्णुता की प्रतिमूर्ति उस तपस्विनी देवी को आजन्म विपत्ति-विभीषिका से आक्रान्त ही रहना पड़े, लेकिन देश और दलित मानवता की सेवार्थ बीता हुआ एक निमेष, उच्छ्वसित श्वास और त्यक्त अश्रु भी शून्य में निष्फल नहीं जाते। फिर यह तो एक युग से भी अधिक की हुई महान् साधना थी। शरीर की अजस्र तपस्या थी और मन की अमर भक्ति। जिसका प्रारम्भ उनके पतिदेव के फरार हो जाने पर क्रांतिकारी जोरावरसिंह की स्त्री ने अपने गृह

'खरकटा' नामक ग्राम में की थी। इसीलिए तो वह भूमिखण्ड अपनत्व और स्वाभिमान का साकार रूप लेकर एक विशेष स्पन्दन के साथ मानस के अङ्ग-अङ्ग में समा रहा था। जिसमें जोरावरसिंह की घोर साधना ने सम्बल प्रदान किया।

भारत की ऐसी ही आदर्श उत्तराओं ने अनेक अभिमन्यु तैयार किए और इन्हीं देवियों के महान् त्याग से देशभक्तों का सृजन हुआ। जिस बल पर जोरावरसिंह आजन्म अपनी देश-सेवा के अपराध में दर-दर भटकते रहे। विपक्षियों और खुफिया पुलिस के बिछे हुए दकियानूसी जाल से सदा मुक्त रहे और बेड़ी को लोह-शलाका अपने समर्थ हाथों को न छूने दी। यह उस आदर्श अर्धाङ्गिनी की अद्वितीय और दुर्लभ त्यागभावना ही थी। जोरावरसिंह के समान यह देवी अनोपकुंवरबाई अपने परिवार की ज्वलन्त देशभक्ति की स्फुरणाओं से नहीं डरी और पतिदेव को भी उस यज्ञ में आहुत होने के लिए अग्रसर कर दिया। निरन्तर छब्बीस (२६) वर्ष फरार रहने के बाद इस तपस्विनी देवी को एकाकी छोड़कर जोरावरसिंह अमर पद में लीन होगये और दो साल पश्चात् वह देवी भी अपने सौभाग्य के पदचिह्नों का अनुसरण कर गई।

यह क्रांतिकारी जोरावरसिंह के ससुराल 'अतरालिया' ठिकाने के पट्टा का एक ग्राम 'खरकड़ा' जिसमें राजनीतिक आन्दोलनों में भाग लेने के कारण पैतृक गृह, गांव आदि जब्त हो जाने के पश्चात् उनकी गृहलक्ष्मी ने अपने यातनामय जीवन के पिछले क्षण बिताये। राजस्थान में जहां पुरुषों में अपूर्व वीरता की सृष्टि हुई वहां नारी के आदर्श की महत्ता भी अक्षुण्ण रही और जोरावरसिंह तथा अनोपकुंवरबाई इसके अनुपम उदाहरण हैं। जिस समय स्वतन्त्र भारत के सच्चे इतिवृत्त का सृजन होगा और वास्तविक त्याग तथा शौर्य की प्रछन्न मणियों का दिग्दर्शन होगा तब ये दोनों गुप्त रत्न अपनी अतुल प्रभा के साथ भावी संतति के लिए अनुकरणीय आदर्श के रूप में उपस्थित होंगे।

सरस्वती जैसी सरितायें किसी काल में रेगिस्तान के गर्भ में लुप्त हो चुकी हैं और पर्वतमालाओं का भूकम्प में अदृश्य होना सम्भव है लेकिन देश और समाज की बलिवेदी पर सर्वस्व स्वाहा करने वाले स्व० ठा० जोरावरसिंह जैसे उद्‌भट क्रांतिकारी सदा अमर रहेंगे।

राजस्थान के एक संस्कृत, समृद्ध प्रतिष्ठित घराने में जोरावरसिंह ने जन्म लिया। इनके पिता लब्धप्रतिष्ठ, इतिहासज्ञ, उद्‌भट विद्वान् और सूक्ष्म राजनीतिक "कृष्णसिंह बारहट शाहपुरा थे।" कृष्णसिंह बारहट के तीन पुत्र थे। तीनों भ्राताओं में प्रातःस्मरणीय राजस्थान-केसरी ठा० केशरीसिंह अग्रज थे। इतिहासवेत्ता ठा० किशोरसिंह बार्हस्पत्य मध्यम थे और छोटा जोरावरसिंह था। जोरावरसिंह का बाल्यकाल शाहपुरा, उदयपुर और जोधपुर में राजसिक ठाठ बाट के साथ अपने पिता के साथ व्यतीत हुआ। जहां पर जीवन के प्रारम्भिक दिनों में अनुशासन, सुव्यवस्था, निर्भीकता, सत्य-कथन और वीरता के संस्कार इस भावी वीर पर स्वतः ही पारिवारिक विशेषताओं के साथ अन्तर्मानस में दृढ़ हो गये। यह गौरवर्ण शरीर, ऊर्ध्व ललाट, दीर्घनेत्र और ओजस्वी मुखाकृति वाला बालक वीर जोरावरसिंह अपने परिवार के लिए कितना प्रिय था। वह इस जीवन मे सब प्रकार से सुखी, सम्पन्न और निश्चिन्त था। ऐश्वर्य के साथ जब सजीव हृदय और सुसंस्कारों का मेल होता है तब ऐसे आदर्श व्यक्तित्व का सृजन होता है जिसका सानी अलभ्य होता है और ये ही विशेषतायें जोरावरसिंह में थीं। जिस युवक जोरावरसिंह को युवावस्था के आमोद-प्रमोद से अवकाश ही न था

और जिसे अपने पिता के स्वर्गवास के बाद "जोधपुर महाराजा ने उसी इज्जत व तनख्वाह पर महारानी का कामदार नियुक्त किया था। यही जोरावरसिंह एक दिन वायसराय पर बम फेंकने वाला बागी बन गया और ब्रिटिश सरकार ने इस फरार जोरावरसिंह को प्राणदण्ड दिया।" इस जीवन में ऐसा नाटकीय परिवर्तन किस प्रकार संभव हुआ।

यही जोधपुर राजकुमारों के अध्यापक स्व० शहीद बालमुकुन्द जी के जीवन में हुआ था। बालमुकुन्द पंजाब प्रान्त के निवासी थे। जोरावरसिंह को भौतिक सुखों की लिप्सा क्षण भर के लिए भी रोक न सकी। सुवर्ण और रजत के उन अर्थभरे उपकरणों ने इसे आकर्षित नहीं किया और उन सत्ताधारी नरेशों की सर्व समर्थ ब्रिटिश सरकार के अपरिमित साधनों की बलशीलता ने इसे तनिक भी भयभीत नहीं किया।

राजाओं के दरबार में आने वाला जोरावरसिंह अदालती मुलजिम करार दिया गया और वह भी अपने व्यक्तिगत स्वार्थों से नहीं। विजातीय सरकार और उसके शक्तिहीन महाराजाओं का स्वामी भक्त बनकर जोरावरसिंह अवश्यमेव एक अति प्रतिष्ठित, सम्पत्तिशाली और गौरवशाली बन सकता था। लेकिन इसमें सन्देह नहीं कि पाशबद्ध भारत माता को मुक्त करने में इसका हाथ कदापि न होता और स्वाधीन भारत जिन प्रच्छन्न शहीदों की आहुति पर अपने स्वर्णिम युग का निर्माण करने जा रहा था उसमें इस महान् मौन आहुति का अभाव रहता, जिसके चरणों पर अनेकों मस्तक झुकेंगे। "बंगभंग से लेकर सन् १९८२ की अन्तिम क्रांति तक जितने भी बलिदान पराधीन भारत में हुए उनमें यदि अतुलित त्याग, अद्वितीय धैर्य और अपरिमित कष्टसहिष्णुता की तुला में उन पुरुषपुंगवों को रखा जाये तो ठा० जोरावरसिंह का स्थान सर्वोत्तम शहीदों में होगा।" राजस्थान का तो सौभाग्य है कि उस महान् बारहट परिवार में उसे एक साथ ठा० केशरीसिंह जी, बरेली जेल में शहीद हुए उनके सुपुत्र कुंवर प्रतापसिंह जी प्राप्त हुए।

सन् १९१४ में जोरावरसिंह के बड़े भाई ठा० केशरीसिंह जी को कोटा षड्यन्त्र में जहां आजन्म कालापानी की सजा हुई, वहां जोरावरसिंह को न्यायाध्यक्ष ने सात साल का कठिन कारावास प्रदान किया। लेकिन छोटा भाई जोरावरसिंह देशभक्ति की होड़ में कहां पीछे रहने वाला था। "बिहार प्रान्त के प्रसिद्ध 'आरा षड्यन्त्र' में फरार जोरावरसिंह को प्राणदण्ड की सजा दी गई किन्तु वह फरार था। जोरावरसिंह को पकड़ने के लिए कोटा सरकार ने ६०० रु० का और बिहार सरकार ने ६००) रु० के इनाम (पारितोषिक) की घोषणा की और ब्रिटिश सरकार ने अपने इस भयंकर शत्रु का जी-जान से पीछा किया।"

जिस दिन गोरी सरकार की पुलिस ने और मिलिट्री ने इनकी पैतृक सम्पत्ति (शाहपुरा) में धर पकड़ शुरु की उसी दिन से जोरावरसिंह फरार हो गये और राजस्थान के अतीत वीरों की भांति न जाने किन-किन दुर्गम घाटियों में और अत्तुँग पहाड़ों और निरापद स्थानों में भटकते रहे। अपना सम्मिलित प्यारा परिवार जिस दिन से उस वीर ने छोड़ा, उसके पश्चात् आजन्म फिर एकत्रित रूप से कभी न मिल सका और देशभक्ति के अपराध में यह दर-दर घोर कष्टों का सामना करते हुए सी० आई० डी० के चंगुल से अपने शरीर को बन्दी बनाने से बचाते रहे। इस क्रांतिकारी ने अपनी वेषभूषा और बोलचाल को बदलकर गुप्त वेष धारण कर लिया और युग पर्यन्त अज्ञातवास की

कठिनतम यन्त्रणाओं के सम्मुख क्षण के लिए भी विचलित न हुए। इनकी ओजस्विनी वाणी पर करुण कराह की काली छाया न पड़ सकी और उन तेजोमय चक्षुओं में पश्चात्ताप का एक भी आंसू प्रकट नहीं हुआ। दुर्बल मानस और घातक अधीरता इन्हें छू न सकी। प्रचण्ड तूफान के बीच अडिग खड़े रहने वाले अश्वत्थ वृक्ष की तरह उन घोर विपत्तियों में भी ये कभी अपने पथ से चलायमान न हुए।

सांसारिक सुखों को लात मारकर इस वीराग्रणी ने सर्वदा सङ्कटमय जीवन का वरण किया। इसके सम्पन्न गृह को शाहपुरा में अंग्रेजों के राजाधिराज ने लूट लिया और उनकी जागीर के गांव को भी खुशामदवश हड़प बैठा। जोरावरसिंह का प्रतिष्ठित परिवार इनकी देशभक्ति के कारण खानाबदोश वन चुका था लेकिन इसे इस दयनीय अवस्था की भी चिन्ता न थी। क्योंकि ये जानते थे कि राज्यशक्ति का सामना करने पर फांसी और कारावास के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। जोरावर-सिंह को पकड़ना तो पुलिस ने सबसे सहज समझा था क्योंकि इनके ललाट पर 'लशन' का चिह्न था। परन्तु इसने तो न जाने किस प्रकार अपनी पगड़ी और साफा बांधना शुरु किया कि धीरे-धीरे वह निशान भी ऊंचा चढ़ा दिया और बाद में तो वह बालों के समीप ही आ गया था।

फरार होने के कई वर्षों बाद जोरावरसिंह अपरिचित वेष में मेहमान के रूप में कभी-कभी राजस्थान केसरी के परिवार में और कभी-कभी 'खरकड़ा' ग्राम में गृहलक्ष्मी अनोपकुंवर से मिलने आते थे। सब मनुष्य जोरावरसिंह को महाराज नाम के नाम से पुकारते थे। बालकों को केवल इतना ही बताया जाता था कि ये 'महाराज' तुम्हारे बहुत प्रिय हैं। रात को यहां रहते और प्रातः-काल उठकर चले जाते, कहीं पुलिस को पता न लग जाये। एक बार तो दुर्भाग्यवश 'कोटा' में मकान का घेरा लगा दिया गया। सब मनुष्य किंकर्त्तव्य विमूढ हो गये। "परन्तु वह देशभक्त जोरावरसिंह एक मञ्जिल से कूद पड़ा और भयानक शीत में श्मशानों की छत्रियों में जा छिपा।" वहां पर पुलिस ने पीछा किया परन्तु यथा समय यह वहां से निकल गया। कुछ दिनों के बाद मेवाड़ के एक नीच मनुष्य ने जोरावरसिंह के साथ धोखा करके पुलिस के हवाले कर दिया।

जोरावरसिंह २६ वर्ष तक फरारी जीवन व्यतीत करता रहा। यह कहता था कि 'मैं स्वतन्त्र मौत से मरूंगा।" ब्रिटिश सरकार की जेलें मुझे बन्दी नहीं बना सकतीं।

भारत में सशस्त्र क्रांतिकारियों में ठा० जोरावरसिंह का भी नाम है। ये निर्भीक होकर अपने अग्रज भाई स्वनामधन्य केशरीसिंह राजस्थान केसरी के पदचिह्नों पर चलते रहे। अमर शहीद प्रतापसिंह जोरावरसिंह का भतीजा था। ठा० केशरीसिंह और जोरावरसिंह, कुंवर प्रतापसिंह ये तीनों अपने पार्थिव जीवन को मातृ-मन्दिर में बलि दे गये। भारत में बहुत ही कम ऐसे परिवार मिलेंगे जिसमें सभी ने अपना बलिदान किया हो।

जोरावरसिंह ने अधिकतर अपने फरारी जीवन के दिवस मालवा की ओर अपने घनिष्ठ मित्रों में बिताये। जब कांग्रेस ने सर्वप्रथम मिनिस्ट्री प्रान्तों में बनाई थी उस समय राजस्थान केसरी ठा० केशरीसिंह ने बा० पुरुषोत्तमदास टण्डन, बिहार के मुख्य सचिव श्री कृष्णनारायणसिंह और गृह सचिव अनुग्रह नारायणसिंह से मिलकर जोरावरसिंह का वारण्ट रद्द कराया जो आरा षड्यन्त्र के सम्बन्ध में तत्कालीन सरकार ने जारी किया था। दोनों सचिवों ने वचन दे दिया था कि जोरावरसिंह

स्वतन्त्र हो जाएगा । परन्तु भगवान् को यह स्वीकार न हुआ कि देशभक्त स्वच्छन्द हो जाए, उन्हीं दिनों सन् १९२९ में ये निमोनिया रोग में भारत से सर्वदा के लिए छिन गये ।

इनके स्वर्गवास के कुछ वर्ष पश्चात् जोरावरसिंह बारहट के सम्बन्ध में मरुमालव के श्रेष्ठ पत्रकार तारानाथ 'रावल' ने बताया कि "लार्ड हार्डिंग पर बम चलाने वाले वास्तव में ठा० जोरावरसिंह और कुंवर प्रतापसिंह ही थे जिन्होंने बुर्का ओढ़कर बम लार्ड हार्डिंग पर फेंका था ।

जब ये बम डालने निकले तो कुछ साथी पहले साथ-साथ गंगा से नाव में पार हो रहे थे तो इनसे पूछा गया कि तुम्हारे पास इतना सामान कैसे है ? तब इन्होंने कहा कि 'माहेरा' लेकर जा रहे हैं। इधर इन्हें यह भी शक हो गया था कि कहीं पुलिस सन्देह न कर ले । वहीं से इन्होंने अपने अन्य साथियों को लौटा दिया और प्रताप ने जोगिया कपड़ा पहना । हाथ इनका इतना सधा हुआ था कि ऊपर ओढ़ी हुई चद्दर का पल्ला ऊपर उठा तेजी से हाथ से बम निकाल देते थे । जब सवारी निकलने लगी तब फेंका और भीड़ में उसी क्षण गायब हो गये । आगे जाकर नदी में बाढ़ मिली । प्रताप जंजीर पकड़कर सात घण्टे तक नदी में लटकता रहा, फिर कुछ तैरा और कुछ बहा । किनारे पर दो सिपाहियों को सन्देह हुआ तो जोरावरसिंह ने उनको तलवार से मौत के घाट उतार दिया और प्रताप को कन्धों पर डालकर ले गया । जोरावरसिंह ने भारत को स्वतन्त्र करने के लिए बहुत कुछ कार्य किए हैं ।

यद्यपि आज जोरावरसिंह का कोई चित्र अथवा मूर्ति आंखों के सामने नहीं है और विस्मृति के धूमिल पट उस महान् त्यागी व देशभक्त की स्मृति पर पड़ चुके हैं और एक क्षीण याद थोड़े से मनुष्यों को शेष रह गई है परन्तु स्वातन्त्र्य यज्ञ में दी हुई यह आहुति असफल नहीं गई । अन्तरिक्ष से टूटने वाले नक्षत्र क्षण भर के लिए दर्शकों की आंखों में चकाचौंध अवश्य कर देते हैं परन्तु दूर क्षितिज पर हल्के प्रकाश से चमकने वाले तारक रात्रि पर्यन्त उसी प्रारम्भिक शोभा के साथ अक्षुण्ण रहते हैं । सर्वस्व की आहुति देने वाले जोरावरसिंह ने अपने नश्वर शरीर से अमर कार्य किया । वैभव को तिलाञ्जलि देकर देशप्रेम में परवाने की तरह अपने जीवन को न्यौछावर कर दिया । राजस्थान का गरिमामय "अरावली पर्वत" ऐसी मौन आहुतियों से ही अपने आपको गौरवान्वित समझ रहा है ।

राजस्थानी—वीर विजयसिंह पथिक

(ब्र० धर्मव्रत)

वीर विजयसिंह पथिक उन वीरों में से हैं जिन्होंने अपने प्राण हथेली पर रखकर भारत माता के त्राण के लिए अपने अमूल्य जीवन को न्यौछावर कर दिया । इस वीर को पाकर राजस्थान गौरवान्वित है। वैसे तो राजस्थान ने सैकड़ों वीरप्रवर एवं राजा महाराजा पैदा किए हैं। उनमें विजयसिंह पथिक का नाम भी स्वर्णाक्षरों में लिखने योग्य है।

@VaidicPustakalay

विजयसिंह पथिका का पूर्व नाम भोपसिंह था। भोपसिंह के पूर्वज व्रज के जिला बुलन्दशहर के पास मालागढ़ के रहने वाले थे। इसके दादा मालागढ़ के नवाब एक पठान सरदार के दीवान थे। १८५७ के स्वाधीनता युद्ध में नवाब लखनऊ को अंग्रेजों के घेरे से छुड़ाने के लिए गया। तब मालागढ़ की अंग्रेज आक्रान्ताओं से रक्षा का काम उनके दादा पर छोड़ा गया था। उसकी रक्षा उन्होंने मरते दम तक वीरता से की थी। युद्ध की विफलता के पश्चात् अंग्रेजों ने नवाब को पकड़कर फांसी पर लटका दिया और धन सम्पत्ति अपहरण कर उसके कृतघ्न नौकरों में जागीरदारियों के रूप में बांट दी थी। जिनमें से दो गांव एक गुठावली कलां और गुठावली खुर्द—सैय्यद मुश्ताक अली के वंशजों के पास अभी तक विद्यमान हैं। भोपसिंह (विजयसिंह) के पिता और परिवार के दूसरे लोगों को १८५७ के बाद बहुत दिन तक फरार का जीवन बिताना पड़ा था तथा अन्त में आम क्षमा की घोषणा के बाद जब वे अपने ग्राम में वापिस जाकर रहने लगे तब भी अंग्रेजी पुलिस और उन देशद्रोही जमींदारों के कारण बहुत दिन तक उन्हें त्रास भोगना पड़ा। भोपसिंह के पिता का देहान्त उसकी छोटी अवस्था में इन सब कठिनाइयों की दशा में हुआ था और भोपसिंह के चाचा आदियों को भी उस त्रास से मुक्ति अंग्रेजों की फौज में नौकरी स्वीकार करने पर ही मिली थी। भोपसिंह का एक चाचा बलदेवसिंह मऊ की छावनी में सूबेदार था। जब इन्दौर का महाराजा शिवाजी होल्कर १८६२ के बाद अंग्रेजों के विरुद्ध सैनिक विप्लव खड़ा करने की चेष्टा कर रहा था, उसमें महाराजा के साथ बलदेवसिंह का मुख्य हाथ था। मऊ की छावनी की फौजों का सम्पर्क महाराजा के साथ इसी कारण से था। बालक भोपसिंह का लालन-पालन और शिक्षा-दीक्षा सब अपने इसी चाचा के पास मऊ और इन्दौर में हुई थी। १९१० एवं १९११ में इन्दौर में पढ़ते समय ही अपने एक साथी द्वारा उसका शचीन्द्रनाथ सान्याल से सम्पर्क हुआ, और भोपसिंह शचीन्द्रनाथ सान्याल के दल में सम्मिलित हो गया। सन् १९११ में भोपसिंह (विजयसिंह) शस्त्रास्त्र संग्रह और राजपूतों से सम्पर्क बनाने के लिए रासबिहारी वसु द्वारा राजस्थान भेजा गया था।

२३ दिसम्बर १९१२ सन् को लार्ड हार्डिंग ने बड़ी सजधज के साथ अपनी नयी राजधानी दिल्ली में प्रवेश किया। पहले इसकी राजधानी कलकत्ता थी। उसको इसने किसी कारण छोड़ दिया था। क्रान्तिकारियों ने रासबिहारी वसु के नेतृत्व में चांदनी चौक के बीच में उसकी सवारी के हाथी पर बम फैंककर अंग्रेजों के उस रोष को गहरा आघात पहुंचाया और अंग्रेजों को मानो यह सूचना दी कि बंगभंग रद्द करने से वे शान्त होने वाले नहीं हैं। रासबिहारी वसु और उसके साथी उस काण्ड के बाद दिल्ली से अंग्रेजों की पुलिस और फौज के घेरे से निकल गये और साल भर तक पुलिस लाखों प्रयत्न करके भी उनका कोई सुराख न पा सकी। इससे उनके संगठन की धाक और भी अधिक बैठ गई।

क्रान्तिकारियों ने इसी समय से देश में सशस्त्र-राजक्रान्ति की तैयारियां प्रारम्भ कर दी थीं। हार्डिंग पर बम फैकने के महत्त्व को समझाने वाले पर्चे देश में सर्वत्र व्यापक रूप से बांटे गये। उन पर्चों ने राजस्थान, महाराष्ट्र आदि के निवासियों को, जो भारत की पूर्ण स्वाधीनता के नारे को पहले पहल उन्नत करके, १९०९ एवं १९१० के बाद ढीले पड़ चुके थे, फिर से चेतन होकर बंगालियों के साथ मिलकर मातृभूमि की बेड़ियां काटने को उद्यत किया गया।

विलायत में इसी बीच एक समय में एक कारतूस भर कर चलानेवाली पुरानी तोड़ेदार हैड्री

मार्टिन बन्दूकों की जगह एक ही वार तीन-चार कारतूस भर एक के वाद एक चला सकने वाली नई बन्दूकों की आज्ञा हुई थी। अंग्रेजों ने भारत में अपनी फौज और सशस्त्र पुलिस को भी यही शस्त्र दिया। अपनी पुरानी उतरी हैड़ी मार्टिन बन्दूकें उन्होंने राजस्थान में जहां अभी शस्त्र कानून लागू न था, अच्छे दामों पर बाजारों में बेच दीं। किन्तु उसमें चालाकी यह थी कि सौ से अधिक कारतूस एक बन्दूक के साथ किसी को न दिये जायें। वाद में उन कारतूसों का वेचना बिल्कुल वन्द कर दिया। जिससे बेकार होकर वे वन्दूकें यहां बहुत सस्ते पर दस-दस, पन्द्रह-पन्द्रह रुपयों में वड़ी भारी संख्या में मिलने लगीं। क्रान्तिकारियों ने उनका संग्रह करने के लिए भोपसिंह (विजयसिंह) को अजमेर भेजा। कारतूसों की कमी को पूरा करने के लिये भोपसिंह पुराने कारतूसों को फिर भरने और नये कारतूस बनाने तथा टूटी बन्दूकों की मरम्मत का काम सीखने को अजमेर के रेलवे कारखाने में भर्ती हो गया। इसकी सहायता से क्रान्तिकारियों ने उन कारतूसों के बनाने, भरने और वन्दूकों की मरम्मत के कई गुप्त कारखाने भी राजस्थान में खोल दिये।

क्रान्तिकारियों को जनता, सेना आदि में प्रचार और देश-विदेशों में शस्त्रास्त्र संग्रह के लिये चल रही इस प्रकार की अपनी अनेक योजनाओं के लिए इस समय धन की बड़ी आवश्यकता थी। राजस्थानी रियासतों के राजाओं से भी उन्हें उसके लिये कुछ सहायता मिलती थी। जोधपुर, ईडर का शासक कर्नल सर प्रताप, बीकानेर का गंगासिंह और बड़ोदे का सयाजीराव आदि कुछ तो इनकी बनाई हुई वीर भारत समिति के सदस्य हो गये थे।

जोधपुर, बीकानेर आदि के राठौड़ आपस में प्रायः चर्चा करते थे कि यदि क्रान्ति सफल हो गई जिसके सफल होने की उस समय चारों तरफ चल रही गुप्त तैयारियों को देखते हुए बहुत कुछ आशा थी, तो क्रान्तिकारियों में अधिकांश तो उनमें खप चुके होंगे और जो शेष रहेंगे उन्हें वे अपने वश में कर वरिष्ठ शस्त्रास्त्रों और साधनों से सरलतापूर्वक अधिकार हथिया लेने में शीघ्र ही सफल होंगे। क्रान्तिकारी भी उनकी इस मनोवृत्ति को शीघ्र जान गये थे। भोपसिंह अपने को राठौड़ कहता था और उनके संगठनों में खूब हिला-मिला रहता था। इस बात की सूचना भी भोपसिंह ने रासबिहारी वसु आदि क्रान्तिकारियों को दे दी।

राजस्थान के कुछ राजाओं ने अंग्रेजों का विरोध किया था, उन पर अंग्रेजों की नजर पड़ी। इस अवसर का लाभ क्रान्तिकारियों ने "राजा लोग समय पर कोई विपरीत कार्य न कर सकें" इसके लिये उन पर नजर रखने को अपने व्यक्ति रिसायतों में रखवा देने से उठाया। विजयसिंह पथिक खर्वा के ठा० राव गोपालसिंह का प्राइवेट सेक्रेटरी नियत हुआ। पंजाब का एक वीर युवा बालमुकुन्द जोधपुर कुमार के शिक्षक रूप में नियुक्त किया गया। इसी प्रकार बीकानेर आदि में बा० मुक्ताप्रसाद आदि अनेक क्रान्तिकारी लगा दिये गए। राजनीतिक विभाग और रियासतों के बीच का गुप्त पत्र-व्यवहार इस प्रकार इन क्रान्तिकारियों की दृष्टि में रहता था।

क्रान्ति की सब तैयारियां पूरी हो जाने पर उसका प्रारम्भ स्वयं अपने निरीक्षण में कराने को रासबिहारी वसु जनवरी १९१५ में बनारस से लाहौर चला गया। दिल्ली, राजस्थान की ओर इन्तजाम करने के लिये शचीन्द्रनाथ सान्याल को भेजा गया। २१ फरवरी १९१५ को क्रान्ति प्रारम्भ करने की तिथि निश्चित थी। उस दिन करतारसिंह अपने दल के साथ फिरोजपुर के शस्त्रागार पर जो भारत में सबसे बड़ा था आक्रमण करने वाला था। उसकी सूचना मिलते ही और सब दल अपना

काम प्रारम्भ करने को थे। राजस्थान में ठा० गोपालसिंह को दामोदरदास राठी से मिलकर ब्यावर पर और विजयसिंह पथिक को अजमेर, नसीराबाद पर कब्जा करने का काम सौंपा गया था। जनवरी के अन्त तक यह सारी व्यवस्था कर शचीन्द्र बनारस लौट गया, जहां क्रान्ति की बागडोर स्वयं उसके हाथ में थी।

इस प्रकार की सब तैयारियां भारत में बड़े गुप्तरूप से की जा रही थीं। परन्तु यूरोप आदि से आये हुए भारतीय मन्त्रगोपन में इतनी सावधानी न कर सके। फ्रांस की पुलिस ने युद्ध करने के कुछ मास पश्चात् अंग्रेजों को सूचना दी कि यूरोप के भारतीय प्रान्तों में हिन्दुस्तान में शीघ्र ही व्यक्त होने वाले किसी सैनिक विप्लव की चर्चा हो रही है। इस बात को सुनकर भारत में पुलिस चौकन्नी हो उठी। यथार्थ बात को जानने के लिये पुलिस ने १९१५ में एक भेदिये को क्रान्तिकारियों की बात जानने के लिये भेजा, जिसमें पुलिस सफल हो गई। क्रान्तिकारियों को जब मालूम हुवा तो वे इस पर कड़ी निगाह डालने लगे और उसे समाप्त कर देने की ठानी। परन्तु क्रान्तिकारी इस कार्य के करने में भी असफल रहे।

राजस्थान में विजयसिंह पथिक, ठा० गोपालसिंह आदि क्रान्तिकारी उस रात खर्वा स्टेशन के निकट जंगल में अपने दो हजार साथी स्वयंसेवकों का दल लिये कार्य करने के लिये सन्नद्ध होकर संकेत पाने की प्रतीक्षा में थे। रात को दस बजे अजमेर से अहमदाबाद जाने वाली रेलगाड़ी वहां से गुजर रही थी। उससे खर्वा स्टेशन के निकट जंगल में एक बम धमाका कार्यारम्भ का संकेत था। परन्तु वह धमाका हुवा नहीं। अगले दिन सन्देश वाहक ने आकर लाहौर में घटी घटना की सूचना विजयसिंह आदि को दी। इनके पास शस्त्रास्त्र जिनमें ३० हजार के लगभग पुरानी हैड्री मार्टिन बन्दूकें और बहुत सा दूसरा गोला बारूदादि था। इन्होंने वह सब सामान तत्काल यथास्थान पहुंचा दिया और स्वयंसेवक सैनिक दल बिखर गया। विजयसिंह दिल्ली के रहने वाले अपने एक साथी रलिया-राम के साथ बड़ौदा तक जाकर अपने सब साथियों को भी सावधान कर आया। सात आठ दिन बाद ही पुलिस ने खर्वा पर छापा मारकर विजयसिंह एवं उनके साथी ठा० गोपालसिंह आदि के पकड़ने की तैयारी की। जिसकी खबर क्रान्तिकारी भेदियों द्वारा प्राप्त हो गई थी। विजयसिंह पथिक के कहने पर चुपचाप आत्मसमर्पण कर अंग्रेजों की जेल में अनिश्चित काल तक सड़ने या साधारण चोर, डाकुओं और खूनियों की भांति फांसी पर लटकवाये जाने की अपेक्षा उन सबने लड़कर मरने का निश्चय किया। दूसरे साधारण सदस्यों को विजयसिंह ने खर्वा ग्राम से हटा दिया। इसके बाद विजयसिंह पथिक, ठा० गोपालसिंह और इसका चाचा मोडसिंह, रलियाराम "जो दिल्ली निवासी थे" सवाईसिंह आदि पांच साथी बहुत सा शस्त्रास्त्र और खाने पीने के लिये ८-१० दिन के लगभग चलने योग्य सामग्री लेकर खर्वा के गढ़ से निकल कर रातों रात पास के जंगल में बनी एक शिकारी बुर्ज में मोर्चा बन्दी पर जा डटे। अगले दिन अजमेर का अंग्रेज कमिश्नर स्वयं ५०० सैनिकों की टुकड़ी लेकर उन्हें खोजता हुवा वहां पहुंचा और उन्हें चारों ओर से घेर कर आत्मसमर्पण करने के लिये बाधित किया। किन्तु क्रान्तिकारियों को मरने मारने के लिये सज्जित हुए देखकर अंग्रेज कमिश्नर को भय हुवा कि कहीं सचमुच हमें दो चार दिन इनसे लड़ना पड़ा तो चारों तरफ की जनता इनकी सहायता करेगी और हमारे विरुद्ध हो जायेगी। कमिश्नर को साथ की हिन्दुस्तानी टुकड़ी की राजभक्ति पर भी विश्वास न था। ऐसी दशा में यदि मुकाबला जम जाता तो सारे राजस्थान में आग भड़क उठना भी

असम्भव न था। अतः जहां तक हो सके गोली चलने देने की आपत्ति न आने देने का आदेश उसे ऊपर से भी था। उसने क्रान्तिकारियों को समझाया कि अभी तो तुम पर कोई विशेष अभियोग या दोषारोपण नहीं है किन्तु रक्षा के लिये तुम्हारी गिरफ्तारी की जा रही है। यह भी सम्भव है कि उनमें किसी पर कोई अपराध प्रमाणित ही न हो, इस अवस्था में सरकार से व्यर्थ मुकाबला कर अपराध ओढने में बुद्धिमत्ता भी न होगी। इस प्रकार बहुत वाद-विवाद के पश्चात् यह समझौता हुवा कि उन्हें किसी हवालात या जेल में बन्द न कर किसी ऐसी जगह नजरबन्द किया जायेगा जहां आस-पास के जंगल में शिकार की पूरी सुविधा हो। शिकार के लिये बन्दूक, तलवार आदि शस्त्र और सवारी के लिये घोड़े तुम्हें सदा मिले रहेंगे और तुम्हारे आस-पास जहां तक दृष्टि पड़े कोई फौज आदि का पहरा न दिया जायेगा। सरकार को भय था कि यदि फौज आदि का पहरा दिया गया तो ये जान जायेंगे कि हम कैदी हैं। ये छूट भी गये तो फिर हाथ आने वाले नहीं हैं।

उपर्युक्त समझौते के पश्चात् इनको मेवाड़ सीमा पर स्थित टाडगढ़ के किले में नजरबन्द किया गया। जहां आस-पास तीन-तीन मील तक जंगल में उन्हें शिकार आदि के लिये उनकी खुली छुट्टी हो गई थी। नजरबन्दी के १५ दिन बाद ही सोमदत्त के मुखबिर हो जाने से लाहौर षड्यन्त्र के मामले की जाँच में विजयसिंह पथिक का नाम भी लिखा गया था, जिससे उसे गिरफ्तार कर तत्काल लाहौर भेजने की आज्ञा टाडगढ़ पहुंची। विजयसिंह अपनी गिरफ्तारी की बात को पहले ही जान गया और वहां से भाग निकला। मेवाड़ के राजा फतहसिंह की सहायता से और अनेक सरदारों एवं जनता की सहायता से वह दुबारा नहीं पकड़ा गया। ठा० गोपालसिंह एवं मोडसिंह आदि उसके साथी भी विजयसिह पथिक के बाहर जाने पर सवारी का सब प्रबन्ध कर देने से दूसरे ही दिन टाडगढ़ से निकल पड़े।

इस प्रकार निकल जाने पर उन दिनों मेवाड़ में बड़ी सनसनी और उत्सुकता का वातावरण था। अंग्रेजों के गुप्तचर और सशस्त्र पुलिस दल स्थान-स्थान पर इनकी खोज में घूम रहे थे। मेवाड़ दरबार को भी ऊपरी दवाव से उनकी गिरफ्तारी के लिये जगह-जगह पुलिस और फौजी दस्ते नियत करने पड़े थे। वैसे तो यह अंग्रेजों के विरुद्ध था, परन्तु उसने ये काम ऊपर से दिखाने के लिये किए थे।

जिस समय विजयसिंह टाडगढ़ से निकल कर भागा था उस समय वह रात को किसी जंगल में रास्ता भटक जाने से थक कर एक चट्टान पर सो गया था। कुछ समय पश्चात् एक जंगली जानवर ने उसको पैर पकड़ कर घसीटा, जिससे उसके एक घाव हो गया था। उस दिन वह अपने पास पिस्तौल होने के कारण प्राण-रक्षा कर सका। यदि उस दिन उसके पास पिस्तौल न होता तो मृत्यु का मुख देखना पड़ता। उस जंगल से बाहर वह अगले दिन प्रकाश होने पर बड़ी कठिनता से निकल पाया था। खुली सड़क पर आकर उसने देखा कि सड़क के एक ओर एक ग्राम बसा हुवा है तथा दूसरी तरफ एक झोंपड़ी बनी हुई थी। विजयसिंह गांव से बचकर झोंपड़ी की ओर जा रहा था। उस समय एक ६० वर्ष की बुढ़िया ने उसको देखा। वह बुढ़िया झोंपड़ी के समीप बैठी हुई थी। उसने विजयसिंह को हाथ के इशारे से अपने पास बुलाया और अंग्रेजों का विद्रोही है ऐसा समझकर उस बुढ़िया ने अपनी झोंपड़ी में छिपा दिया। बाद में उसकी मरहम पट्टी कर अपने लड़के द्वारा ग्राम के धोबी का घोड़ा चरने के स्थान से चुपचाप पकड़वा कर बुढ़िया ने अपने लड़के के साथ उसके गन्तव्य स्थान तक सुरक्षित पहुंचाने का सारा प्रबन्ध किया। इसी प्रकार मेवाड़ के उसी प्रान्त के एक जागीरदार

ने अंग्रेजों द्वारा अपने स्थान की तलाशी होने का पूरा भय रहते हुए भी अपने गढ़ में महल के जनाने भाग का एक भाग खाली कराकर एक महीने तक अपने यहां विजयसिंह पथिक को छिपाये रखा था। इसी तरह से उधर ठा० गोपालसिंह, मोडसिंह आदि इसके साथियों को टाडगढ़ से निकलने और फरार जीवन बिताने में भी मेवाड़ के लोगों का गहरा और सहानुभूतिपूर्ण सहयोग बराबर मिलता रहा। उदयपुर के महाराणा का भी आभ्यन्तर आदेश अपने गुप्तचरों को उन्हें गिरफ्तार न करने एवं गुप्त रूप से उनकी सब तरह से भरसक सहायता करने का था।

मेवाड़ में भी लोगों ने जगह-जगह पर क्रान्तिकारियों के नमूने पर अपने छोटे-छोटे समूह और दल बना रखे थे। जिनमें देशभक्ति की चर्चा की जाती थी एवं कुछ ऐसे साहसपूर्ण कार्य करने के लिये अवसर की प्रतीक्षा में थे। ऐसे ही एक दल ने भोपसिंह (विजयसिंह) को काँकरोली में अपने यहां कुछ दिन तक रख पथ-प्रदर्शन करने की प्रार्थना की थी। इनके दल का नेता चुंगी अधिकारी पुरोहित किशनसिंह था और आस-पास के युवक राजपूत, जागीरदार इसके सदस्य थे। इनके प्रबन्ध से विजयसिंह वहां राजसमुद्र तालाब के पार भाषण नामक ग्राम में एक धनिक सेठ डालचन्द के मकान पर रह कर वी० एस० पथिक के नाम से बहुत दिनों तक एक पाठशाला चलाता रहा। उन्हीं दिनों विजयसिंह के दूसरे साथी ठा० गोपालसिंह और मोडसिंह आदि सलोमाबाद में एक मन्दिर में रहते थे। पुलिस ने उनका पता पाकर उनको घेर लिया। इसकी सूचना कांकरोली पहुंची। तब उस मण्डली ने विजयसिंह पथिक के नेतृत्व में ऊंटों पर जाकर उन्हें सहायता देने का प्रयत्न किया, परन्तु उनके पहुँचने से पूर्व ही गोपालसिंह आदि कुछ प्रतिज्ञाओं पर आत्मसमर्पण कर चुके थे।

इस घटना के कुछ दिनों पश्चात् भाणा ग्राम में भो सरकारी गुप्तचरों का आना जाना हो गया। अतः विजयसिंह को वहां से जाना पड़ा। वह वहां से चित्तौड़ गया। चित्तौड़ के पास एक ओछड़ी नामक ग्राम विद्यमान है, उसमें यह ठिकानेदार का अतिथि बना। उस समय राजस्थान में बोजोल्यां कृषक-आन्दोलन चल रहा था। इसी ओछड़ी ग्राम में विजयसिंह पथिक का उसके नेताओं के साथ सम्पर्क हुवा था।

१९१५ के अन्त में विजयसिंह अपने मित्र ईश्वरीदास के साथ ओछड़ी से बीजोल्यां में आकर उसके निवास स्थान पर रहने लगा। रियासत की ओर से एक भाटी राजपूत उन दिनों बीजोल्यां में मुन्सिफ था। विजयसिंह ने अपना डेरा उसी के निवास स्थान पर डाला। विजयसिंह शीघ्र ही बीजोल्यां के सब सरकारी कागजों एवं मुकदमों का कार्य मुन्सिफ के नाम से करने लगा। रियासत की सरकार से लिखा पढ़ी करके इसने शीघ्र ही वहां एक पाठशाला भी खोली। युवकों की एक सेवा-समिति बनाकर इसने इस प्रान्त में नवीन जागृति का सूत्रपात किया। इसके कार्यों से जागीरदार आदि सब घबरा गये। रियासती अमला १९१६ की उन्हालू रवी की फसल की उगाही के साथ उन्हीं दिनों सरकारी युद्ध ऋण का चन्दा भी किसानों से बलात् लिया जा रहा था। विजयसिंह की सलाह से किसानों ने उसे देने से अस्वीकार कर दिया। इस प्रकार के कार्य से रियासती कर्मचारी भी अड़चन में पड़ गये। कुछ लोगों ने इसकी शिकायत उदयपुर में अंग्रेजी रेजीडेन्सी में पहुंचाई एवं दूसरी कार्य प्रवृत्तियों का भी पता रेजीडेन्सी के पास दिया। विजयसिंह को तत्काल पकड़ कर उदयपुर भेजने का आदेश मुन्सिफ के पास आया। पथिक को सात मास के निवास के बाद एकाएक बीजोल्यां ग्राम त्यागना पड़ा। वहां की पाठशाला एवं युवकों, किसानों के संगठन के कार्य के लिये पथिक ने अपने मित्र मणिकलाल वर्मा को नियुक्त किया।

विजयसिंह पथिक के शिष्य, घनश्याम जोशी, जयसिंह धाड़क आदि ने और युवक कृषक कार्य-कर्त्ताओं ने समस्त कार्यों को चलाया।

बीजोल्यां से भागकर पथिक खेराड़ के रास्ते से बूंदी होते हुए कोटा पहुंचे। जहां पर केशरीसिंह बारहट (जो कुँवर प्रतापसिंह के पिता थे और क्रान्तिकारियों के सरदार माने जाते थे) उनके श्वसुर कविराज दुर्गादास जो कोटड़ी के जागीरदार थे, तथा 'अभिनव-भारत' सभा के आर्थिक संकटों का निवारण करने वाले थे, उनके पास जाकर रहे।

१९१६ में बीजोल्यां ग्राम में वर्षा न होने से खरीफ की फसल नष्ट हो गई थी। किन्तु लगान की दरें पूर्व से भी अधिक कर दी थीं एवं लोगों से युद्ध आदि का भी चन्दा लिया जा रहा था। जिससे जनता बहुत असन्तुष्ट थी। जनता को असन्तुष्ट देखकर उनके नेतागण विजयसिंह के पास आ गये और कहा कि आप नेतृत्व ग्रहण कर लें। विजयसिंह ने उनका कहना मान लिया और उसने सलाह दी कि अब की बार न तो युद्ध चन्दा दिया जाये, न ही खेती का लगान दिया जाये। युद्ध चन्दा और खेती लगान न देने पर महाराणा ने किसानों को खूब डराया एवं धमकाया। ऊपर कहा जा चुका है कि महाराणा वैसे तो जनता का हित चाहते थे परन्तु अंग्रेजों को ऊपर से दिखाने के लिए ऐसा किया था। परन्तु वे शान्त रहे और अपने पक्ष के न्याय के लिए लड़ते रहे। विजयसिंह का मेवाड़ की सीमा में घुसना खतरे से खाली न था अतः वह कोटा की तरह से मेवाड़ की पूर्वी सीमा पर गुप्तरूप से बैठा हुवा, सारे आन्दोलन का कार्य संगठित करता रहा।

महात्मा गांधी द्वारा चलाया गया सत्याग्रह एवं अन्य नेताओं के चलाये हुए सत्याग्रह देश में बड़े जोरों से चल रहे थे। बीजोल्यां का भी कृषक-सत्याग्रह उस समय जोरों से चल रहा था। इन सत्या-ग्रहों में जितने भी अत्याचार अंग्रेज सरकार ने किए थे उन सब पर विचार करन के लिए १९१८ दिसम्बर में कांग्रेस का अधिवेशन दिल्ली में बुलाया गया। दिल्ली प्रान्त के निकट होने से कांग्रेस के उस अधिवेशन पर राजस्थान के विभिन्न रियासतों से बहुत लोग दिल्ली में इकट्ठे हुए। चम्पारन और खेड़ा में चलाये हुये किसानों के संघर्षों में गांधी की सफलता से आकृष्ट बीजोल्यां के किसान नेता विजयसिंह पथिक ने उनसे सम्पर्क कर लिया। विजयसिंह अपने साथियों सहित दिल्ली पहुंचा। वहां पर विजयसिंह पथिक, गणेश शंकर विद्यार्थी, चान्दकरण शारदा (जिनका अन्त में नाम चन्द्रानन्द सरस्वती हुवा। ये आर्यसमाज के एक स्तम्भ माने जाते थे) इत्यादि के प्रयत्न से दिल्ली कांग्रेस अधि-वेशन पर "राजपूताना मध्य-भारत सभा" नामक सार्वजनिक संस्था की स्थापना हुई। जिसके सभापति वर्धा निवासी सेठ रायबहादुर जमनालाल बजाज चुने गये एवं गणेश शंकर विद्यार्थी उपसभापति। गणेश शंकर विद्यार्थी मध्यभारत से 'प्रताप' नामक एक अखबार निकालता था जो युक्त प्रान्त और राजस्थान के प्रारम्भिक सार्वजनिक एवं राजनीतिक जीवन के निर्माण में बड़ा सहायक हुवा था।

इसी बीच १९१९ में नमक कानून बना। जिसके लिए गांधी जी ने सत्याग्रह चलाया। गांधी जी को ८ अप्रैल को दिल्ली आते समय गिरफ्तार कर लिया एवं बम्बई भेज दिये गये। तब गांधी जी ने कुछ कारणों से सत्याग्रह स्थगित कर दिया था। इस सत्याग्रह के बाद पंजाब में हृदयविदारक 'जलियां वाला बाग' का काण्ड हुवा, जिसमें सैकड़ों मनुष्य भूने गये। सारे पंजाब पर फौजी कानून घोषित कर दो महीने तक भीषण आतंक और अत्याचारों का दौरा-दौरा था।

इसके पश्चात् १६१६ दिसम्बर में कांग्रेस का साधारण अधिवेशन अमृतसर में किया गया। साथ ही 'राजपूताना मध्यभारत सभा' का भी दूसरा अधिवेशन हुवा। उसमें संगठन को व्यापक रूप देने के लिये समस्त कार्य महात्मा गांधी को सौंपा गया।

अंग्रेज सरकार ने देश के वातावरण को शान्त करने के लिये १६२० फरवरी तक सब राजबन्दी एवं कुछ क्रान्तिकारियों को छोड़ दिया। जिसमें राजस्थान के अर्जुनलाल सेठी, ठा० गोपालसिंह, केशरीसिंह बारहट आदि भी छूट कर आ गये। विजयसिंह पथिक के वारण्ट भी रद्द कर दिये गये। सबके छूट जाने के पश्चात् विजयसिंह आदि ने १६२० मार्च में 'राजपूताना मध्यभारत सभा' का अधिवेशन सेठ जमनालाल बजाज के सभापतित्व में किया। उस अवसर पर विजयसिंह ने यह घोषणा की थी कि जो सरकार मुझे विजयसिंह के नाम से अब तक ढूंढ़ती रही थी, वह भोपसिंह का नाम का मैं हूं। तब अनेक खुफिया विभाग के अधिकारी भी, जो विजयसिंह पथिक को बराबर देखते रहे थे, हैरान रह गये। उसी समय 'राजपूताना मध्यभारत सभा' का कृषक-आन्दोलन ठीक चलाने के लिए एक पत्र निकालने की योजना बनाई। परन्तु गांधी जी ने किसी कार्य के लिए विजयसिंह आदि को वर्धा बुलाया, जिससे वह योजना सफल न हुई।

वहीं वर्धा में जमनालाल बजाज ने 'राजस्थान केसरी' पत्र निकालने के लिए विजयसिंह पथिक को पांच हजार रुपया प्रेसादि की व्यवस्था के लिए दिया। इस समय बीजोल्यां का कृषक आन्दोलन अच्छी तरह चल रहा था। विजयसिंह ने 'राजस्थान केसरी' पत्र के सम्पादक का कार्य वर्धा में केशरीसिंह बारहट और अर्जुनलाल सेठी को दिया। पुन: राजस्थान लौट आया। इन महानुभावों ने कुछ दिन तक पत्र का कार्य सुचारु रूप से चलाया परन्तु सम्पादकीय अभ्यास न होने से इन्होंने कार्य करना छोड़ दिया। फिर विजयसिंह को इसका कार्य सम्भालना पड़ा।

इसके बाद गांधी जी ने असहयोग आन्दोलन चलाया। अंग्रेजों ने इसको दबाने के लिए बहुत अत्याचार किये। इनके अत्याचारों की स्पष्टीकरण के लिए बीच-बीच में कांग्रेस के अधिवेशन भी होते रहे। १६२० के अन्त में नागपुर में एक कांग्रेस अधिवेशन हुवा। जिसमें भाषावार प्रान्तों का निर्माण विषयक प्रस्ताव पारित करना था। जिसको सभी ने स्वीकार किया। इसी अधिवेशन के साथ-साथ 'राजस्थान मध्यभारत सभा' का चौथा अधिवेशन भी हुवा। जिसमें पंजाब, मध्यभारत, हिमाचल, गुजरात, महाराष्ट्र आदि प्रान्तों के ४ हजार व्यक्ति प्रतिनिधि रूप से सम्मिलित हुए। वहीं पर 'राजपूताना मध्यभारत सभा' वालों ने देशी राज्यों में चल रहे जन-आन्दोलन और वहां साम्राज्य-शाही के कारिन्दों और सामन्ती शासन तन्त्र के कल पुर्जों द्वारा जनता पर किये जाने वाले जुल्मों की एक प्रदर्शिनी संगठित कर राजस्थान के जन-जागरण के लिये एक महत्त्वपूर्ण कदम बढ़ाया। उस प्रदर्शिनी के प्रधान विजयसिंह पथिक, जमनालाल सेठ, अर्जुनलाल सेठी, केशरीसिंह बारहट, गणेश शंकर विद्यार्थी चुने गये एवं मध्यभारत के गोविन्ददास प्रधान चुने गये। चान्दकरण शारदा प्रधान मन्त्री एवं चौ० रामनारायण और नृसिंहदास सहकारी मन्त्री चुने गये।

१६२१ में विदेशी कपड़े का वहिष्कार आन्दोलन चलाया गया। जिसको दबाने के लिए अंग्रेजों ने मारपीट से दमन प्रारम्भ किया। उस आन्दोलन की गूंज राजस्थान में सर्वत्र फैली हुई थी। राजस्थान ने जितना इस आन्दोलन में भाग लिया उतना अन्य किसी ने नहीं लिया। इसी समय में

राजस्थान एवं मध्यभारत के कार्यकर्त्ता कांग्रेस में मिले थे। विजयसिंह पथिक और चौ० रामनारायण भी 'राजस्थान' पत्र का कार्य छोड़कर १९२० में वर्धा से राजस्थान आ गये थे।

राजस्थान में अपना सारा समय सार्वजनिक सेवा में देने का व्रत लेने वालों के लिये 'राजस्थान सेवासंघ नामक संगठन विजयसिंह पथिक की अध्यक्षता में स्थापित हुआ। जिसमें चौ० रामनारायण, इनकी पत्नी, माणिकलाल वर्मा, हरिभाई किंकर, नानूराम व्यास, शोभालाल गुप्त, लादूराम जोशी आदि उस संघ में सम्मिलित हुए। इनका कार्य बड़े जोरों से चला। अन्त में १९२३ दिसम्बर में सभी कार्यकर्त्ता गिरफ्तार कर लिये गये। परन्तु कुछ दिन मुकद्दमा चलाकर, राजस्थान प्रवेश निषेध कानून लगाकर छोड़ दिये गये। विजयसिंह पथिक को राजद्रोह के अपराध में १९२४ में गिरफ्तार किया गया और १९२७ के अन्त में छोड़ा गया। १९२४ से पूर्व ही बीजोल्यां कृषक आन्दोलन सफल हो गया था। छूटने के बाद विजयसिंह पथिक ने अपना सारा जीवन कांग्रेस के कार्यों के लिए लगाया। इस वीर नेता के क्या-क्या कार्य गिनाऊँ? इसने तो अपना सारा जीवन जनता के भावों को प्रबल बनाने और भारत माता को स्वतन्त्र करने के लिए न्यौछावर कर दिया।

१९२८ से १९५२ तक कांग्रेस में काम करते रहे। तत्पश्चात् १९५४ में हरिभाऊ उपाध्याय ने विजयसिंह पथिक को राज्य की ओर से शहीदों का इतिहास लिखने को कहा, परन्तु वे इसको पूरा न कर सके और संसार से चल बसे।

श्री अर्जुनलाल सेठी

(ब्र० धर्मव्रत)

अर्जुनलाल सेठी की जन्मभूमि राजस्थान थी। निवास स्थान का कोई विशेष निर्णय नहीं मिलता। यह भी विजयसिंह पथिक के दल का क्रान्तिकारी था। इसने क्रान्ति की भावना जनता के हृदय में कूट-कूट कर भरने के लिए एक पाठशाला खोली। उसमें अध्यापन का कार्य विष्णुदत्त नामक मिर्जापुरी ब्राह्मण युवक करता था। इस पाठशाला का सम्बन्ध बंगाल की अनुशीलन समिति से था। उसी की ओर से अर्जुनलाल सेठी राजस्थान में कार्य करता था। अर्जुनलाल सेठी खर्वा के ठा० गोपालसिंह के पास भी (जो क्रान्तिकारियों और रियासती दलों के बीच उन दिनों मुखिया का काम करता था) आया-जाया करता था। जिससे उसके साथ सम्बन्ध हो गया।

बम्बई बम काण्ड के तीन महीने बाद ठा० गोपालसिंह ने अर्जुनलाल सेठी की पाठशाला के चार विद्यार्थियों—मोतीचन्द, माणिचन्द (जो महाराष्ट्र में शोलापुर के रहने वाले जैन युवक थे) जयचन्द काश्मीर का था, जोरावरसिंह केशरीसिंह का छोटा भाई था, इनको साथ लेकर बिहार के आरा जिले में स्थित नीमेज ग्राम के जैन उपासरे पर २० मार्च १९१३ ई० को छापा मारा। वहां पर धन पर्याप्त मात्रा में समझा जाता था। इसलिये वहां का महन्त इन्होंने मार दिया। परन्तु वहां की चाबी न मिली, अतः वे रुपयों से वंचित रह गये। तभी कोटा का दल, जिसमें केशरीसिंह बारहट, हीरालाल

जालोरी, गुरुकुल कांगड़ी के संस्थापक महात्मा मुन्शीराम जी की पुत्री के पति रुद्रदत्त और कोटा राज्य का प्रमुख जागीरदार और उच्च पदाधिकारी आबजी, जो बाद में अरसे तक कोटा राज्य का दीवान भी रहा था, इत्यादि लोग सम्मिलित थे, जोधपुर के एक प्रसिद्ध धनी महन्त से समझा बुझाकर क्रान्ति के लिये सहायता पाने का प्रयत्न कर रहा था, वह महन्त अपनी एक पोली लाठी में बहुत से कीमती जवाहरात भरे रखता था। उसके स्वेच्छा से कुछ देने ने पर क्रान्तिकारियों ने लाठी लेने के लिए उस महन्त को मार दिया। जब उन्होंने लाठी को देखा तो उसमें केवल कोयले मिले। क्योंकि महन्त अपने जवाहरात उससे पहले ही कहीं छुपा चुका था। जिसका पता क्रान्तिकारियों को न लगा। इस समय कोटा के दल को रुपयों की आवश्यकता थी। पंजाब के क्रान्तिकारी नेता बाबा गुरुदत्तसिंह की "कोमागातामारू" योजना में सहायता देनें के लिये थी। कैनेडा में उस समय भारतीय श्रमिकों का आना रोकनें के लिये ऐसा कानून बनाया गया था कि वे ही श्रमी वहां प्रविष्ट हो सकें जो अपने देश के जहाज में आयें। गुरुदत्तसिंह एक जापानी 'कोमागातामारू' को भाड़े पर लेकर उसमें पंजाबी मजदूरों को ले गया। वह यह देखना और पंजाबी मजदूरों को दिखा देना चाहता था कि बरतानवी साम्राज्य के उपनिवेशों में भारतीयों की क्या अवस्था है ?

अर्जुनलाल सेठी की जैन पाठशाला की ओर जनता का ध्यान उन दिनों में बहुत आकृष्ट हो रहा था। चौ० रामनारायण शेखावाटी के निवासी अपने एक छोटे भाई को पाठशाला में प्रविष्ट कराने आये थे। उन्हीं दिनों अर्जुनलाल सेठी से उनका सम्पर्क हुआ था एवं धीरे-धीरे क्रान्तिकारियों में सम्मिलित हो गये।

उपर्युक्त काण्डों के बाद पुलिस की निगाहें भी पाठशाला पर पड़ने लगीं। अत: अर्जुनलाल को जयपुर के सेठ कल्याणमल आदि की आज्ञा से, जो उस समय पाठाशाला की सारा खर्च देते थे, शीघ्र ही उठाकर इन्दौर चला जाना पड़ा।

नीमेज और कोटा काण्डों के बाद १७ मई १९१३ को लाहौर के लारेन्स बाग के फाटक पर बम फटा। उसके निरीक्षण के सिलसिले में पुलिस को दिल्ली बम काण्ड का भी पता १९१४ तक लग गया था। उसमें मा० अमीरचन्द आदि पकड़े गये। अर्जुनलाल सेठी पर भी सन्देह हो गया। इन्दौर में तलाशी के समय शिवनारायण नामक युवक उसकी पाठशाला का एक पुराना छात्र ठहरा था, जिसकी जेब में कुछ सन्देहजनक कागज मिले। उसके व्याख्यानों से नीमेज और कोटा काण्डों के रहस्य भी खुल गये। नीमेज काण्ड में विष्णुदत्त और मोतीचन्द पकड़े गये। माणिकचन्द और जोरावरसिंह फरार हो गये। कोटा में केशरीसिंह, हीरालाल जालोरी आदि पर महन्त की हत्या का लम्बा मुकद्दमा चला। उनकी समस्त सम्पत्ति जब्त कर ली। यही नहीं, शाहपुरा में केशरीसिंह के भाई आदि की, जिनका राजनीति से कोई घुणाक्षर सम्बन्ध भी नहीं था, जागीरें जब्त हो गईं।

दिल्ली का मुकद्दमा १९१४ के अन्त तक समाप्त हो गया था। उसमें १३ अभियुक्तों में ७ को सजा हुई, ५ को अपराध न होने से छोड़ दिया। मा० अमीरचन्द, अवधबिहारी, वसन्तकुमार विश्वास और बालमुकुन्द, इन चारों को फांसी की सजा हुई। तीन को आजन्म कारावास का दण्ड मिला, जिसमें महात्मा हंसराज का पुत्र बलराज भी था। इनकी अपीलें लाहौर हाईकोर्ट में चल रही थीं। उसमें अर्जुनलाल सेठी का नाम दिल्ली और नीमेज के काण्डों के मुकद्दमों में लिया गया। परन्तु उनके विरोध में कोई प्रमाण न मिला, अत: छोड़ा नहीं अपितु जयपुर की जेल में नजरबन्द कर दिया।

क्रान्तिकारियों ने एक योजना बनाई थी। उसमें यह था कि जितने भी क्रान्तिकारी जेलों में हैं उन सब को छुड़ाया जावे। दिल्ली के अभियुक्तों में छोटेलाल जैन भी था, परन्तु वह छूट गया था। उसने अर्जुनलाल सेठी को छुड़ाने का पर्याप्त प्रयत्न किया। वहां पर उसने एक मंडली बनाई थी। परन्तु पूरी शक्ति न होने के कारण न छुड़वा सका। १९२० के अन्त में देश के वातावरण को शुद्ध करने के लिये अंग्रेजों ने सब क्रान्तिकारियों को छोड़ दिया। उनमें अर्जुनलाल सेठी भी छूट गये।

अर्जुनलाल सेठी ने विजयसिंह पथिक के साथ रहकर 'राजस्थान-केसरी' पत्र के सम्पादन का भी कार्य किया था।

महात्मा गांधी द्वारा चलाये गये असहयोग आन्दोलन में अर्जुनलाल सेठी ने भी बड़ा भाग लिया था। अर्जुनलाल सेठी, चान्दकरण शारदा, मौलाना मुहनुद्दीन चिश्ती इत्यादि के प्रयत्नों से अजमेर ने भी इस आन्दोलन में भाग लिया।

राजस्थान के चिरस्मरणीय नेता—

बाबा नृसिंहदास

(ब्र० धर्मव्रत)

बाबा नृसिंहदास राजस्थान के उन चुने हुये नेताओं में से थे जिन्होंने अपने जीवन में सदैव त्याग, तप और बलिदान के संकटाकीर्ण पथ को चुना। पहले नृसिंहदास मद्रास में अंग्रेजी दवाइयों के व्यापारी थे परन्तु असहयोग आन्दोलन की आवाज सुनकर मैदान में कूद पड़े। तब से लेकर मृत्यु तक उन्होंने सदैव श्रमिकों, शोषितों और उत्पीड़ितों का साथ दिया। नृसिंहदास कहा करते थे—"मेरे विचार ही मेरे सब से बड़े शत्रु हैं।" यह अक्षरशः सत्य है। उनके विचारों ने उन्हें कभी बैठने नहीं दिया। वे सदैव उद्विग्न, उत्तेजित और क्रियाशील रहते थे। कितनी बार उन्होंने मशाल हाथ में ली और उसकी लपट ने उन्हें झुलसाया। यह एक लम्बी कथा है। आज उनके न रहने पर यह कहा जा सकता है कि बलिदानों की जिस परम्परा ने राजस्थान में स्वतन्त्रता मन्त्र के जन्मदाता अर्जुनलाल सेठी को दरगाह में दफनाया, बीजोल्यां के सेनानी वीर विजयसिंह 'पथिक' को अनेक भावों के बीच जीवन व्यतीत करने के लिए विवश किया, उसी ने नृसिंहदास को अन्तिम समय तक अपने घातक प्रभाव से मुक्त न किया। श्री सरस वियोगी जी ने इनके विषय में लिखा है कि—'मैंने इस महामानव को जीवन के अन्तिम नौ वर्षों में निकट से देखा है और मैं कह सकता हूं कि उनके निधन से मानवता ने एक बहुत बड़े व्यक्ति को खो दिया।" आगे और भी लिखते हैं—"बाबा नृसिंहदास से मेरा परिचय उस समय हुआ था जब 'त्याग भूमि' अजमेर के बन्द हो जाने पर मैंने 'विश्वामित्र दिल्ली' का सम्पादन भार ग्रहण किया। उन दिनों मेरी पूर्व पत्नी राजयक्ष्मा रोग से अजमेर में पीड़ित थी और मैं दिल्ली में कार्य कर रहा था। बाबा नृसिंहदास मुझे अखिल भारतीय अग्रगामी दल के सभापति एवं नेताजी के संचालक लाला शंकरलाल जी के निवास-स्थान पर मिले। मैं वहीं श्रद्धेय विजयसिंह 'पथिक' के एक आवश्यक पत्र को लेकर गया था। वह दिन था और अन्तिम दिन—मेरे उनके सम्बन्ध

में कभी कोई बल न पड़ा। मृत्यु के दो दिन पूर्व उन्होंने मुझसे मिलना चाहा और सन्देशा भेजा। पर खेद है कि वह सन्देशा उनके न रहने पर मुझे मिला। मैं स्वयं भी उनसे मिलना चाहता था, पर विधि की कठोर इच्छा थी कि अचानक हृदय की गति रुक जाने पर १९५७ जुलाई की २२ तारीख को बाबा जी हमको छोड़कर चल बसे।" इनके चले जाने से राजस्थान की राजनीति से एक बड़ा नक्षत्र उठ गया। आज राजस्थान में अनेक नेता विद्यमान हैं। उन्होंने खूब नाम कमाया है पर अर्जुनलाल सेठी, विजयसिंह पथिक और नृसिंहदास की परम्परा से ऐसा प्रतीत होता है कि बाबा जी के निधन के साथ ही चल बसी।

वे क्रान्ति के अग्रदूत थे। गाँधीवादी क्रान्ति की प्रेरणा से वह राजनीति में आए। पर अन्त तक उस विचारधारा से चिपटे न रहे। उन्होंने समयानुकूल अपने विचारों में परिवर्तन किया और उसके गंभीर परिणाम भोगे। इससे इनका मूल्य समय और इतिहास की आँखों में घटा नहीं, किन्तु बढ़ गया है। नृसिंहदास के लिये जीवन, द्वन्द्वात्मक स्थिति का नाम था। जहाँ संघर्ष और सृजन नहीं है वहाँ जीवन का दर्शन तृष्णा मात्र है। नृसिंहदास सदैव इस मृगमरीचिका से ऊपर उठे रहे। यही उनकी एक विशेष महत्ता है। कितने प्रलोभन उनके सामने आये, पर जिस कंचन के मादक प्रभाव से उन्होंने मुक्ति पाली थी, उसे ग्रहण न किया। गांधी आश्रम हटूंडी व सस्ता साहित्य मंडल के शैशव काल ने नृसिंहदास जी की सेवाओं से लाभ उठाया। पर नृसिंहदास ने एक बार जिस गली को छोड़ दिया, उसकी ओर पुनः झांकने का लोभ न हुआ। श्री सरस वियोगी लिखते हैं कि "जीवन के अन्तिम दिनों में जब परिस्थितिवश हटूंडी जाकर रहने की बात आई, तब बाबा जी ने मुझसे चर्चा की। उन्होंने कहा कि "शान्ति का स्मारक होने के नाते उन्हें शायद अन्तिम क्षणों में शान्ति न मिले।" शान्ति नृसिंहदास जी की पत्नी का नाम था। इनकी पत्नी मारवाड़ी थी, पुनरपि उसने सोने-चाँदी का मोह त्याग कर नृसिंहदास का साथ दिया तथा बलिदान और त्याग के पथ का अनुसरण करते हुए स्वर्ग प्रयाण किया। नृसिंहदास हटूंडी 'गांधी आश्रम' व सस्ता साहित्य मंडल में गये। वहाँ पर 'श्री हरिभाऊ उपाध्याय' जो पहले अजमेर के मुख्य मन्त्री थे, अब भी किसी पद पर आरूढ़ हैं' इन्होंने उनकी जितनी हो सकी सेवा की। पर किसी ने कहा भी है—"जोगी किसका मीत।" वहाँ से नृसिंहदास फिर अजमेर चले आये।

यह विधि की कितनी विडम्बना है कि जो व्यक्ति सामान्य पढ़ा-लिखा भी न हो वह क्रान्तिकारी विचारों का पोषक और जनक हो। नृसिंहदास जी भी ऐसे ही थे। श्री सरस वियोगी जी दिल्ली से विश्वमित्र पत्र का सम्पादन छोड़कर बाबा नृसिंहदास के साथ जयपुर चले गये। बाबा जी उन दिनों 'प्रभात' पत्र का सम्पादन करते थे। सरस वियोगी जी ने जयपुर जाकर 'प्रभात' का सम्पादन कार्य ग्रहण किया। 'प्रभात' पत्र विचार-क्रान्ति का प्रतिपादक था। क्रान्ति विचारों से होती है। वैचारिक क्रान्ति हो जाने पर ही क्रिया में उसका रूप बदलता है। अतः नृसिंहदास अपने सारे जीवन में वैचारिक-क्रान्ति के पोषक रहे। जब-जब क्रिया का समय आया, भावना के आवेग से व्यतिक्रम उपस्थित हुआ, पर जहाँ तक विचार का सम्बन्ध था, नृसिंहदास ने कभी भी किसी से समझौता न किया नीच को नीच कहा एवं पापो, अनाचारियों को कभी क्षमा प्रदान न की। नृसिंहदास जी अपनी भावनाओं को ठीक से अभिव्यक्त न कर सकने के कारण लेखकों एवं पत्रकारों से प्रभावित रहे। कोई भी कलम का धनी मिलता वे उसका स्वागत किया करते। वे वाणी का विलास नहीं चाहते थे, वे तो सदा क्रान्ति को लपटें किस प्रकार फैल सकती हैं? इस धुन के पक्के थे। अतः इन्होंने उन लेखकों

और पत्रकारों को अपनाया जिनकी कलम स्याही से नहीं, परन्तु खून से चलती थी।

नृसिंहदास अपना व्यवस्थित जीवन व्यतीत करते थे। वे सदा कागज पत्रों को सुरक्षित रखा करते थे। उनकी भोजन विषयक रुचि सात्विक वृत्ति की थी। ये एक फटा सा पैजामा और उस पर फटा सा कमीज पहनते थे। चश्मा और छाता के वे बड़े शत्रु थे। ये एक थैला लेकर दिल्ली से लेकर बम्बई तक की यात्रा किया करते थे। जहाँ रुपयों की आवश्यकता हुई वहीं से व्यवस्था कर लेते थे। किसी ने कहा भी है—'संतन को कहा सीकरी सों काम'। स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् नृसिंहदास जी का बुरा हाल हुआ। ये शासन-सत्ता के साथ नहीं चल सकते थे। शासन-सत्ता के विरोध में सफल संगठन करने में असफल रहे। फिर भी नृसिंहदास जी बात के धनी और कार्य के यशस्वी थे, अतः वे चुप्पी साधे न बैठे रहे। भले ही सफलता ने उनका चरण-चुम्बन न किया हो, परन्तु साहित्यकार सुमन के शब्दों में 'आग के जलते हुए और कभी न बुझने वाले एक अंगारे के रूप में, नृसिंहदास की कीर्ति चिरस्मरणीय रहेगी। क्योंकि किसी कवि ने कहा भी है कि—'कीर्तिर्यस्य स जीवति' जिसकी कीर्ति है वह सदा जीवित रहता है मरता नहीं। इनके क्रान्तिकारी विचारों का संग्रह इधर-उधर बिखरा हुआ पड़ा है, उसको एकत्रित करके सम्पादित किया जा सकता है।

ऊपर कहा जा चुका है कि ये 'प्रकाश' पत्र का सम्पादन करते थे। ये निर्भीक पत्रकार थे। इन्होंने पैसे कमाने के लिये लेखनी नहीं उठाई थी, परन्तु जनता में क्रान्ति की लहरें फैलाने के लिये उठाई थी। इनके सार्वजनिक जीवन का श्रीगणेश 'भारत-तिलक' पत्र के प्रकाशन से एक पत्रकार के रूप में हुआ। 'भारत-तिलक' पत्र मद्रास से निकला था। यह राष्ट्रीय विचारधारा का पोषक था। नृसिंहदास के साथ सहायक क्षेमानन्द राहत थे। क्षेमानन्द राहत ने बम्बई से 'वीर-भूमि' और जयपुर से 'प्रभात' निकाला। 'त्याग-भूमि' के पश्चात् 'वीर-भूमि' पत्र का प्रकाशन ठीक ही था। परन्तु काल की कराल वक्र गति के सम्मुख न तो 'त्याग-भूमि' ही रहा और न ही 'वीर-भूमि' रहा। किन्तु 'प्रकाश' का प्रकाशन भी बाबा जी के जीवनकाल में ही बन्द हो गया। जीवनभर प्रेस, पत्र और स्वतन्त्र पत्रकार की स्थिति की कल्पना करते रहे। पर यह कल्पना कितनी रमणीय और भयावही है, इसे इनके निकट के सभी मनुष्य ठीक जानते हैं। नृसिंहदास जी का मूल्य समय से ऊपर उठकर सत्य को इस आराधना से काफी बढ़ गया। यही चिन्ता विजयसिंह पथिक को भी जीवन के अन्तिम क्षणों तक व्यग्र किये रही। बात यह है कि भारतीय प्रेस से धीरे-धीरे स्वतन्त्र विचार परम्परा का लोप होता जा रहा है। उसके निर्वाह के लिए स्व० विजयसिंह 'पथिक' जी व नृसिंहदास जी ने जो कुछ किया, भले ही उसमें उन्हें सफलता न मिली हो, पर वह निःसंदेह वरणीय और अभिनन्दनीय है।

बाबा नृसिंहदास सच्चे मानव थे। सच्चे मानव इसलिये कि उन्होंने कभी भी भौतिक मूल्यों के आगे मानवीय मूल्यों की उपेक्षा नहीं की। वे कितने सहृदय थे यह तो वे ही जानते हैं जो उनके सम्पर्क में रहे। बाबा जी की यह एक महत्ता थी कि वे मानवीय सम्बन्धों की रक्षा के लिये आज के परमाणु युग में भी इतना त्याग दूसरों के लिये कर सकते थे। जब वे स्वयं किसी के यहाँ जाते तो इस तरह रहते कि वातावरण पर उनका भार न पड़े। अपनी कम से कम आवश्यकताएँ दूसरों के सामने रखना, दूसरों की अधिक से अधिक कठिनाइयाँ अपने सिर पर ओढ़ना तथा समरस और समदृष्टि होकर जीवन में चलना, यह इनकी कुछ विशेषतायें थीं। जिनके कारण उनको 'सच्चे मानव' की संज्ञा मिली।

नृसिंहदास भारत-माता को स्वतन्त्र करने के लिए बहुत बार जेल में गये और छूट कर आये। ये भी विजयसिंह पथिक, केशरीसिंह बारहट आदि क्रान्तिकारियों के साथी थे। एक बार नृसिंहदास ने अदालत में कहा—"मेरा पेशा इस विदेशी सरकार को नष्ट करना है। इसलिये मुझे दो वर्ष की जगह सरकार को फांसी की सजा देनी चाहिये। अन्यथा छूटकर आते ही फिर मैं वही काम करने लगूंगा।" बाबा नृसिंहदास कितने चरित्रशाली थे, उसका इसी से पता लग जाता है।

बाबा नृसिंहदास सूखे तिनके के समान थे जो किसी भी क्रान्ति की ज्वाला की समिधा बनने के लिये सदैव तैयार रहते थे। मजदूरों, किसानों, अछूतों, स्त्रियों, बेरोजगारों और समाज के गिरे पड़े वर्ग को ऊपर उठाने के लिये ये सदैव प्रयत्नशील रहे। स्वयं विशेष पढ़े लिखे न होकर भी मूलतः वे बुद्धिवादी थे। उन्होंने कभी ऐसी कोई चीज स्वीकार न की जो बुद्धि की कसौटी पर खरी न उतरती हो। राजस्थान के सर्वाङ्गीण विकास में इनका विशेष हाथ था। अपना काम करते हुए न उन्हें खाने, पीने, और न सोने की चिन्ता थी। समय का उन पर कोई प्रभाव न था। उनका कार्य अबाध गति से चलता था। वे साफ और खरी बात के कहने में पीछे न हटते थे। स्वभाव से उग्र और क्रोधी होने के कारण वे कभी-कभी सत्य को बड़े कठोर शब्दों में रखते थे। इन्हें उन नेताओं से घृणा थी जो समाज सेवा का दम्भ भरते थे और मायामोहिनी के कुचक्र में पड़े रहते थे। उनके लिए इनका शिवरूप अभद्र होकर भी देखते बनता था। ऐसे कई उदाहरण हैं जिनमें इन्होंने ऐसे छद्मवेशी नेताओं को करारे शब्दों से फटकारा है। उनका सारा जीवन राजनीति, साहित्य, खादी, भूदान, ग्रामोद्योग आदि रचनात्मक प्रवृत्तियों की क्रान्तिकारी सेवा में बीता। नृसिंहदास जी सेठ जमनालाल बजाज के प्रिय मित्र थे। नृसिंहदास यद्यपि विशुद्ध गांधीवादी विचारधारा के साथ अन्त तक न चल सके, फिर भी उन्होंने गाँधीवादी नेतृत्व का स्नेह व विश्वास पूर्ववत् पाया। इन्होंने अपने अन्तिम दिन अजमेर के कांग्रेसी परिवार श्रीकृष्ण गोपाल गर्ग के यहाँ बिताये। अन्त में १९५७ की २२ जुलाई को इस संसार से विदा हो गये। आज उनको १ वर्ष हो गया है (२२ जुलाई १९५८ को), परन्तु फिर भी उनकी कीर्ति सजीव बनी हुई है।

राजस्थान के—

किसान आन्दोलन के शहीद

ओमानन्द सरस्वती (आचार्य भगवान्देव)

सभी रजवाड़ों में राजे महाराजे और बड़े जागीरदारों व जमीदारों की ओर से प्रजा और किसानों पर बड़े अत्याचार होते थे। शासकों के अत्याचार से पीड़ित होकर प्रजा "त्राहि माम्" करती थी। राजस्थान के बहुत से ठिकानों में तो बहुत ही बुरी अवस्था थी। जयपुर राज्य के शेखावाटी प्रान्त में सीकर और खेतड़ो के पाँच सौ-पाँच सौ ग्रामों के दो बड़े-बड़े ठिकाने माने जाते हैं। इनके अन्तर्गत भी छोटे-छोटे ठिकाने विद्यमान हैं। खेती करने वाले लोग इन ठिकानों में अधिकतर जाट ही हैं। यहाँ के जाट ठाकुरों के आगे खाट पर नहीं बैठ सकते थे, घोड़े, ऊँट आदि की सवारी

नहीं कर सकते थे। स्त्रियां आभूषण नहीं पहन सकती थीं। ठाकुरों का जाटों तथा अहीरों के साथ सारे राजस्थान में ऐसा व्यवहार था जैसा कि अन्य प्रान्तों में जाट अहीरादि अछूत वर्गों के साथ करते थे। मुझे ग्राम कंवरपुरा के निवासी चौ० रामसिंह जी मिले वह अपने नाम के साथ ठाकुर रामसिंह लिखते हैं। यह पुराने आर्यसमाजी सज्जन हैं। मैंने इनसे पूछा आप जाट होकर अपने नाम के साथ ठाकुर क्यों लगाते हैं ? उसने बताया इस प्रकार का साहस हमारे अन्दर आर्यसमाज की कृपा से आया है। क्योंकि ठाकुर लोग मुझे रामसिंह के स्थान पर रामूड़ा कहते थे। रामसिंह नाम के साथ सिंह को देखकर जलते थ इसलिए उनको जलाने के लिए मैंने ठाकुर और लगाना आरम्भ कर दिया।

शेखावाटी के इलाके में पहले-पहले आर्यसमाज का प्रचार हुआ था। फिर वह जाट सभा तथा आगे चलकर किसान सभा के रूप में बदल गया। ढाणी जैतपुरा के महाशय जीवनराम जी आर्यसमाज के पुराने भजनोपदेशक हैं जिन्होंने सारा जीवन ही आर्यसमाज के प्रचार में लगाया। जिन्होंने बीकानेर और शेखावाटी में आर्यसमाज का खूब प्रचार किया। इनके सुपुत्र मोहरसिंह जी आज राजस्थान असेम्बली के मेम्बर हैं। यह भी उपदेशक के रूप में बहुत दिनों तक आर्यसमाज का अवैतनिक प्रचार करते रहे हैं। बहुत अच्छे उपदेशक हैं जो आजकल किसान सभा का ही कार्य करते हैं। मानसिंह आर्य वनगोठड़ी निवासी ने भी उधर आर्यसमाज का अच्छा प्रचार किया। पन्नासिंह सुपुत्र जालूराम देवरोड के निवासी ने भी पिलानी और शेखावाटी में आर्यसमाज का अच्छा प्रचार किया। यह सदैव अपने साथ सत्यार्थ प्रकाश रखते थे। चौ० रामसिंह कंवरपुरा के भाई लैफ्टीनैण्ट पैन्शनर कट्टर आर्यसमाजी हैं कोई नशा नहीं करते। यह फौज में भी सत्यार्थ प्रकाश आदि धार्मिक पुस्तकें रखते थे। इनको पुस्तकें पकड़ी जाने पर इनकी परमोशन (उन्नति) रोक दी गई थी। इन्होंने भी पंजाब में जब हिन्दी सत्याग्रह हुआ तो अपना फार्म भर कर भेजा।

पं० कालूराम जी ने जिन्होंने महर्षि जी के दर्शन भी किये थे, सेठों के रामगढ़ में १९६० में आर्य समाज की स्थापना की थी। १९९२ में आर्यसमाज पिलानी में चौ० छोटूराम जी आये थे। उन्होंने भी जागीरदारों के अत्याचारों को दूर करने के लिए लाम्बा गोठड़ा सीकर आदि स्थानों में सभा की। ठा० देशराज ने भी सीकर और शेखावाटी में १९८८ के बाद अच्छी जागृति की। ठा० रत्नसिंह ने भी अच्छी सेवायें कीं। मा० रत्नसिंह जी जो पिलानी में रहते थे, उन्होंने भी खूब घूम-घूम कर प्रचार किया। चौ० निहालसिंह तक्षक ने भी इस इलाके में अच्छा कार्य किया। शेखावाटी में १०० से अधिक पाठशालायें इन्हीं के प्रयत्न से खुलीं जिससे शिक्षा का प्रचार हुआ। पिलानी, झूँझनू, भादराँ आदि में जाट बोर्डिंग हाउस खोले गये। संगरिया में स्वामी केशवानन्द जी ने बड़ा प्रचार किया। सेठ छाजुराम और जुगलकिशोर बिड़ला ने भी पाठशालायें खोलकर इस जागृति में भाग लिया। प्रारम्भ में जितने यह कार्य हुए उनके कर्ता धर्ता आर्यसमाजी ही थे। चौ० रामसिंह आर्य ने इन कामों में बढ़ चढ़ कर भाग लिया। सेठ ज्वालाप्रसाद गोयनका ने भी इन पददलित लोगों को उठाने का अच्छा प्रयत्न किया। आरम्भ में जब इस इलाके में आर्यसमाज का प्रचार हुआ और जाट आदि किसानों ने जनेऊ लिये तो राजपूत ब्राह्मण आदि ने इसका विरोध किया। सेना में एक जाट युवक भागीरथ सिंह नाम का था। वह राजपूताना रायफल में था। उसमें सूबेदार मोहनसिंह और मेयसिंह थे इन्होंने बड़ा शोर मचाया और भागीरथसिंह के स्थान पर भागीरथराम नाम रख दिया। यह बटालियन आर्डर निकालकर ऐसा काम किया गया। यह १९३९ की घटना है।

आर्यसमाज ने सबको वीर और साहसी बनाया था। बस फिर क्या था इस अन्याय का

प्रतीकार करने के लिए पुष्कर, झूंझनू, बगड़ आदि में जाट महासभायें की गईं। उस समय जाट महासभाओं में भी यज्ञ हवन होते थे और सबको जनेऊ दिये जाते थे। जाट बोर्डिंग हाउस में सब विद्यार्थियों को जनेऊ देकर प्रविष्ट किया जाता था। एक प्रकार से सभी संस्थाओं पर आर्यसमाज की छाप थी। मण्डावे में भी सेठ देवीवक्ष ने आर्यसमाज की स्थापना की थी। वह भी जाटों में खूब आर्यसमाज का प्रचार करते थे। १९९२ में सीकर में जाट महायज्ञ रचाया गया। जिसमें १०१ मन घृत खर्च हुआ। वहाँ के १० हजार जाट आदि कृषकों ने जनेऊ लिये। पं० जगदेवसिंह सिद्धान्ती इसके ब्रह्मा थे। सीकर में हाथी पर जलूस निकालने का विचार था किन्तु वहां के ठाकुर लड़ने मरने के लिए तैयार हो गये और किसी जाट को हाथी पर नहीं चढ़ने दिया। फिर एक जन्म के ब्राह्मण आर्य-समाजी पण्डित को हाथी पर बैठाकर जुलूस निकाला गया।

इस प्रकार के दुर्व्यवहार के कारण लोगों में आर्यसमाज के प्रचार के कारण कुछ वीरता के भाव आये और अत्याचारों के प्रतीकार की भावना भी जागरित हो गई। इसीलिये पहले जाट महा-सभा तथा किसान महासभा के रूप में किसानों का संगठन हुआ। इस प्रकार किसान आन्दोलन ने उग्ररूप धारण कर लिया। राजस्थान में जाटकुल में करनीराम ने भोजासर ग्राम जिला झूँझनू में जन्म लिया। वह शिक्षित होकर झूँझनू में वकालत करने लगे। गरीब किसानों से वकालत की फीस नहीं लेते थे। अपनी सेवाओं के कारण वह उदयपुरवाटी का गांधी कहलाता था। उदयपुरवाटी में इन्होंने चुनाव लड़ा था। जागीरदार देवीसिंह तलवार के बल पर इनसे जीत गया। उदयपुरवाटी के भूमियां किसानों से आधा भाग लेते थे। इस वाटी के किसान माली जाट और गूजर हैं। जब किसान आन्दोलन ने प्रबल रूप धारण कर लिया तो छटा भाग देना निश्चित किया। भूमियां लोगों ने नहीं लिया। किसान छटे से अधिक देना नहीं चाहते थे। करनीराम ने किसानों से मिलकर तिहाई भाग देने को कहा। इस पर दोनों ही तैयार हो गये। किन्तु जाट के पञ्च बनने और निर्णय करने पर राजपूतों को बड़ा दुःख हुआ। चौरा नाम के स्थान पर किसानों की पञ्चायत हुई। उदयपुर में दादू-पन्थी जमायत के पास ही करनीराम ठहरे थे। साधुओं के साथ होने के कारण उनका वे कुछ न विगाड़ सके। किन्तु ठाकुरों ने करनीराम को कत्ल करने के लिए कुछ गुण्डों को दिखा दिया। ठा० भोपालपुर भूमियां दीयपुरा का इनका अगुवा था। अगले दिन चौरा नाम के स्थान पर पंचायत हुई। किसान आये किन्तु भूमियां ठाकुर नहीं आये। रामफल गूजर की ढाणी में करनीराम तथा उनके साले रामदेवसिंह युवक ठहरे हुए थे। ठाकुरों ने पुलिस थानेदार से मिलकर सब प्रबन्ध पहले ही कर लिया था। तीन घुड़सवार ठाकुर बन्दूक लेकर वहां पहुंच गये। इनमें भूपालसिंह का लड़का और एक सेवक भी था। करनीराम ने उनको आदर पूर्वक बैठने को सिराहना दिया, किन्तु ठाकुर ने उन्हें गधा कहकर पहले रामदेव को गोली मारी और नीचे उतरकर फिर करनीराम को गोली मारी। करनी-राम तो एक गोली से ही समाप्त हो गये, रामदेव तीन गोली खाकर मरे। राजस्थान सरकार की पुलिस ने कुछ नहीं किया। उदयपुरवाटी का मामला केन्द्र की पुलिस सी० आर० पी० तक पहुंचाया गया। सरकार ने उदयपुरवाटी को अशान्त घोषित कर दिया। भूमियां ठाकुर सब घर बार छोड़कर चौरे के पहाड़ पर लड़ाई करने के लिए इकट्ठे हो गये। पुलिस ने मशीनगन आदि उनको उड़ाने के लिये लगा दी। ठाकुर भीमसिंह एम० एल० ए० ने जागीरदार भूमियों को समझाकर समझौते के लिये तैयार किया। अपराधी पीछे पकड़े गये, केस चला, और सजायें हुई। लगान बन्दोबस्त के अनु-सार हो गया। इन दो बलिदानों के पीछे अत्याचार घटे और आर्यसमाज की, की हुई जागृति किसान

आन्दोलन के रूप में सफल हुई। रामदेव जी का ग्राम ढाणी गीलावाली वह उदयपुर में है। वे कांग्रेस के कार्यकर्त्ता थे। करनीराम का पालन-पोषण उनके मामा मोहनाराम ने अजाड़ी ग्राम में किया था। बाल्यकाल में इनके माता-पिता गुजर गये थे। करनीराम के पिता का नाम देवाराम था।

इसी प्रकार एक नौजवान हनुमान ग्राम चनानकाण्ड में जागीरदारों के अत्याचार से ठाकुरों की सभा में गोली से मारे गये। चौधरी टीकाराम हल चलाते हुए जयसिंहपुर के ठिकाणे डूँडलोद में मारे गये। यह संक्षेप में किसान आन्दोलन के शहीदों के विषय में लिखा गया है। विस्तार से लिखने के लिये न समय है और न स्थान।

गोरक्षा के लिये—

वीर जुझार तेजा का बलिदान

(श्री बंशीधर अग्रवाल, कुचामन सिटी)

(लेख की सत्यता का उत्तरदायित्व लेखक पर ही है। वीर तेजा का बलिदान तो प्रसिद्ध है किन्तु उनके जीवन की घटना वास्तव में कैसी था. यह नहीं कहा जा सकता) —वेदव्रत शास्त्री

हिन्दुस्तान के इतिहास का एक बहुत बड़ा खजाना बड़े बूढ़ों के हृदय-मंदिर में छिपा हुआ है। ऐसे ही हृदय-मंदिर में छिपे हुए इतिहास के एक पृष्ठ पर वीर जुझार तेजा के जीवन का वृत्तान्त है। राजस्थान की "दंत-कथा" ने वीर तेजा का नाम अब स्वतन्त्र भारत के नव निर्मित इतिहास के लिये योग्य आसन पर ला दिया है।

तेजा एक साधारण जाट था। वह नागोर, जिला परबतसर तहसील के पास रूपनगर नाम के गांव का रहने वाला था। वह बुद्धिमान्, ईमानदार तथा ईश्वरभक्त था। उसके पास गाय और बैल थे। प्रात: और सायंकाल दोनों समय वह गायों को पुचकार कर तथा उनका नाम ले-लेकर सेवा किया करता था।

जुझार तेजा हृष्ट-पुष्ट तथा बलवान् था। सारा गांव उसकी ईमानदारी तथा शक्ति का लोहा मानता था।

तेजस्वी तेजा का विवाह गांव पनेर, राज्य किशनगढ़ में हुआ था। एक दिन अपनी स्त्री को लेने वह पनेर गया। मार्ग में उसे जलता हुआ एक जंगल दिखाई दिया। वह गोचर भूमि थी। गो ग्रास अर्थात् गाय का चारा जलते देख उसने लाख प्रयत्न करके आग बुझाई। वीर तेजा ने जलती हुई आग में से एक नाग की रक्षा की। नाग ने नागिन के विछोह में उसे काटना चाहा परन्तु उसी समय तेजा ने ईश्वर का ध्यान किया और नागराज से ससुराल जाने की आज्ञा मांगी और कहा कि मैं स्वयं तुम्हारे पास अपने किये का फल पाने को आ जाऊँगा। इस पर नागदेव ने उसे मार्ग दिया। वह ससुराल पहुंचा और भोजन करने बैठा ही था कि उसे हायतोबा सुनाई दिया। जुझार तेजा को पूछने पर पता चला कि गूजरों की गायों को डाकू भगा ले गये हैं। तेजा समझ गया कि गायों को

डाकू मुसलमानों के हाथ बेचकर पैसे लेंगे और मुसलमान गायों के मांस से अपनी उदर-पूर्ति का स्वांग रचेंगे। अतः तेजस्वी तेजा ने गायों का उद्धार करने का दृढ़ निश्चय किया और भूखे पेट थाली हटा दी तथा गायों की रक्षा हेतु चला गया।

तीरन्दाज तेजा ने तब तक कहीं विश्राम नहीं लिया जब तक गायों को लिये हुए मीने दिखाई न दिये। अन्त में उसे गोधूलि दिखाई दी और फिर गायें भी दीख पड़ीं। गायों की रक्षा-हेतु बिना प्राणों का मोह किये वीर तेजा उन मीनों के भुण्ड पर दीपक पर पतंग की भाँति टूट पड़ा। लड़ते-लड़ते उसका सारा शरीर छिन्न-भिन्न हो गया था। शरीर के खून से उसके कपड़े रंग गये थे। अन्त में उसके तीखे तीरों की मार को डाकू सहन न कर सके और गायों को छोड़कर भाग गये। गायों की रक्षा हुई परन्तु जुझार तेजा के शरीर की रक्षा नहीं हुई। वह अपनी ससुराल आया और वहाँ से रूपनगर के लिये रवाना हुआ। उसकी स्त्री, कहते हैं ससुराल से साथ हो गई थी। मार्ग में उसने नागदेव को बांबी का पता लगाया। प्रार्थना करने पर नागदेव बाहर आये और तेजा के चारों ओर चक्कर लगाने लगे। बिना खून से रंगा हुआ शरीर न पाकर नागदेव क्रोधित हो फुफकारने लगे। वीर तेजा यह सब कुछ समझ गया और तब उसने अपनी जीभ बाहर निकाल दी। नागदेव ने तेजा की जीभ का खून पीकर अपना कलेजा ठंडा किया। इधर तेजा ने गोरक्षा के साथ ही अपनी प्रतिज्ञा पूरी कर दी।

वीर तेजा की वीर स्त्री ने चिता बनाई और स्वयं पति को गोद में लेकर चिता में भस्म हो गई। कहते हैं कि नागदेव भी उन्हीं के साथ उसी चिता में जलकर भस्म हो गये थे। इस प्रकार तेजा का परलोक गमन भाद्र शुक्ला १० को हुआ।

वीर तेजा की असाधारण बहादुरी, उसका अप्रतिम साहस, उसका अद्वितीय प्रतिज्ञा-पालन, उसकी असीम सत्यनिष्ठा, उसका अनुकरणीय आत्म-विसर्जन आज भी राजपूताना के लाखों नर-नारियों को प्रेरणा देता है। समस्त राजपूताना में भाद्रपद शुक्ला १० को तेजा दशमी के नाम से आज भी बड़ा भारी समारोह मनाते हैं। परबतसर में इनके नाम का बड़ा भारी गोवंश का मेला लगता है। तेजा जी की चिता पर चबूतरा है।

---

१०० साल पहले दो जाटों ने छः महीने तक महाराजा जीन्द का मुकाबिला किया था

(श्री कपिलदेव शास्त्री)

जिला रोहतक के पश्चिम में (जहां रोहतक की सीमा समाप्त होकर जीन्द की सीमा प्रारम्भ होती है) रोहतक से २५ मील पश्चिम और पटियाला संघ के जीन्द शहर से १५ मील पूर्व में "लजवाना" नाम का प्रसिद्ध गांव है। १०० साल पहले उस गांव में दलाल गोत के जाट बसते थे। गाँव काफी बड़ा था। गाँव की आबादी पाँच हजार के लगभग थी। हाट, बाजार से युक्त गाँव धन-

@VaidicPustakalay

धान्य पूर्ण था। गांव में १३ नम्बरदार थे। नम्बरदारों के मुखिया भूरा और तुलसीराम नाम के दो नम्बरदार थे। तुलसीराम नम्बरदार की स्त्री का स्वर्गवास हो चुका था। तुलसी रिश्ते में भूरा का चाचा लगता था। दोनों अलग-अलग कुटुम्बों के चौधरी थे। भूरे की इच्छा के विरुद्ध तुलसी ने भूरे की चाची को लत्ता (करेपा कर लिया) उठा लिया, जैसा कि जाटों में रिवाज है। भूरा के इस सम्बन्ध के विरुद्ध होने से दोनों कुटुम्बों में वैमनस्य रहने लगा।

समय बीतने पर सारे नम्बरदार सरकारी लगान भरने के लिये जीन्द गये। वहाँ से अगले दिन वापिसी पर रास्ते में बातचीत के समय भोजन की चर्चा चल पड़ी। तुलसी नम्बरदार ने साथी नम्बरदारों से अपनी नई पत्नी की प्रशंसा करते हुए कहा कि—"साग जैसा स्वाद (स्वादिष्ट) म्हार भूरा की चाची बणाव है, वैसा और कोई के बणा सकै सै"। भूरा नम्बरदार इससे चिढ़ गया। उस समय तक रेल नहीं निकली थी, सभी नम्बरदार घर पैदल ही आ रहे थे। भूरा नम्बरदार ने अपने सभी साथी पीछे छोड़ दिये और डग बढ़ाकर गाँव में आन पहुंचा। आते ही अपने कुटुम्बी जनों से अपने अपमान की बात कह सुनाई। अपमान से आहत हो, चार नौजवानों ने गाँव से जीन्द का रास्ता जा घेरा। गाँव के नजदीक आने पर सारे नम्बरदार फारिग होने के लिये जंगल में चले गये। तुलसी को हाजन न थी, इसलिये वह घर की तरफ बढ़ चला। रास्ता घेरने वाले नवयुवकों ने गड़ासों से तुलसी का काम तमाम कर दिया और उस पर चद्दर उढ़ा गाँव में जा घुसे। नित्य कर्म से निवृत्त हो जब बाकी के नम्बरदार गाँव की तरफ चले, तो रास्ते में उन्होंने चद्दर उठाकर देखा तो अपने साथी तुलसीराम नम्बरदार को मृतक पाया। गाँव में आकर उन्होंने तुलसी के कत्ल की बात उसके छोटे भाई निघांईया को बताई। निघांईया ने जान लिया कि इस हत्या में भूरा का हाथ है। पर बिना विवाद बढ़ाये उसने शान्तिपूर्वक तुलसी का दाह कर्म किया, तथा समय आने पर मन में बदला लेने की ठानी।

कुछ दिनों बाद रात के तीसरे पहर तुलसीराम के कातिल नौजवानों को निघांईया नम्बरदार (भाई की मृत्यु के बाद निघांईया को नम्बरदार बना दिया गया था) के किसी कुटुम्बीजन ने तालाब के किनारे सोता देख लिया और निघांईया को इसकी सूचना दी। चारों नवयुवक पशु चराकर आये थे और थके मांदे थे। बेफिकरी से सोये थे। बदला लेने का सुअवसर जान निघांईया के कुटुम्बीजनों ने चारों को सोते हुए ही आ कत्ल किया। प्रातः ही गाँव में शोर मच गया और भूरा भी समझ गया यह काम निघांईया का है। उसने राजा के पास कोई फरियाद नहीं की। क्योंकि जाटों में आज भी यही रिवाज चला आता है कि वे खून का बदला खून से लेते हैं। अदालत में जाना हार समझते हैं। जो पहले राज्य की शरण लेता है, वह हारा माना जाता है, और फिर दोनों ओर से हत्यायें बन्द हो जाती हैं। इस तरह दोनों कुटुम्बों में आपसी हत्याओं का दौरा चल पड़ा।

उन्हीं दिनों महाराजा जीन्द (स्वरूपसिंह जी) की ओर से जमीन की नई बाँट (चकवन्दी) की जा रही थी। उनके तहसीलदारों में एक वैश्य तहसीलदार बड़ा रौबीला था। वह बघरा का रहने वाला था, और उससे जीन्द का सारा इलाका थर्राता था। यह कहावत बिल्कुल ठीक है कि—

बणिया हाकिम, ब्राह्मण शाह, जाट मुहासिब, जुल्म खुदा।

अर्थात् जहां पर वैश्य शासक, ब्राह्मण साहूकार (कर्ज पर पैसे देने वाला) और जाट सलाहकार (मन्त्री आदि) हो वहाँ जुल्म का अन्त नहीं रहता, उस समय तो परमेश्वर ही रक्षक है।

तहसीलदार साहब को जीन्द के ग्रास पास के खतरनाक गाँव समूह "कंडेले ग्रौर उनके खेड़ों" (जिनके विषय में उस प्रदेश में मशहूर है कि—"ग्राठ कंडेले नौ खेड़े भिरड़ों के छत्ते क्यों छेड़े") की जमीन के बँटवारे का काम सौंपा गया। तहसीलदार ने जाते ही गाँव के मुखिया नम्बरदारों ग्रौर ठोलेदारों को बुला डाँट दी ग्रौर जो ग्रकड़ा उसे रगड़ा। सहमे हुए गाँव के चौधरियों ने तहसीलदार को ताना दिया कि "ऐसे मर्द हो तो जाग्रो "लजवाना" जहां की धरती कटखानी है" ग्रर्थात् मनुष्य को मारकर दम लेती है। तहसीलदार ने इस ताने (व्यंग) को ग्रपने पौरुष का ग्रपमान समझा ग्रौर उसने कंडोलों की चकबन्दी रोक, घोड़ी पर सवार हो "लजवाना" की तरफ कूच किया। लजवाना में पहुंच चौपाल में चढ़ सब नम्बरदारों ग्रौर ठोलेदारों को बुला उन्हें धमकाया। ग्रकड़ने पर सबको सिरों से साफे उतारने का हुक्म दिया। नई विपत्ति को सिर पर देख नम्बरदारों ग्रौर गाँव के मुखिया, भूरा व निघांईया ने एक दूसरे की तरफ देखा। ग्रांखों ही ग्रांखों में इशारा कर चौपाल से नीचे उतर सीधे मौनी बाबा के मन्दिर में जो कि ग्राज भी लजवाना गाँव के पूर्व में एक बड़े तालाब के किनारे वृक्षों के बीच में ग्रच्छी ग्रवस्था में मौजूद है, पहुंचे ग्रौर हाथ में पानी ले ग्रापसी प्रतिशोध को भुला तहसीलदार के मुकाबले के लिये प्रतिज्ञा की। मन्दिर से दोनों हाथ में हाथ डाले भरे बाजार से चौपाल की तरफ चले। दोनों शत्रुग्रों को एक हुग्रा तथा हाथ में हाथ डाले जाते देख गांव वालों के मन ग्राशंका से भर उठे ग्रौर कहा "ग्राज भूरा निघांईया एक हो गये भलार (भलाई) नहीं है"। उधर तहसीलदार साहब सब चौधरियों के साफे सिरों से उतरवा उन्हें धमका रहे थे ग्रौर भूरा तथा निघांईया को फोरन हाजिर करने के लिये जोर दे रहे थे। चौकीदार ने रास्ते में ही सब हाल कहा ग्रौर तहसीलदार साहब का जल्दी चोपाल में पहुँचने का आदेश भी कह सुनाया। चौपाल में चढ़ते ही निघांईया नम्बरदार ने तहसीलदार साहब को ललकार कर कहा "हाकिम साहब साफे मर्दों के बन्धे हैं, पेड़ के ठुण्डों (ठूठों) के नहीं, जब जिसका जो चाहा उतार लिया"। तहसीलदार बाघ की तरह गुर्राया। दोनों ग्रोर से विवाद बढ़ा, ग्राक्रमण, प्रत्याक्रमण में कई जन काम ग्राये। छूट, छुटा करने के लिये कुछ ग्रादमियों को बीच में ग्राया देख भयभीत तहसीलदार प्राण रक्षा के लिये चौपाल से कूद पड़ोस के एक कच्चे घर में जा घुसा। वह घर बालम कालिया जाट का था। भूरा, निघांईया ग्रौर उनके साथियों ने घर का द्वार जा घेरा। घर को घिरा देख तहसीलदार साहब बुखारी में घुसे। बालम कालिया के पुत्र ने तहसीलदार साहेब पर भाले से वार किया, पर उसका वार खाली गया। पुत्र के वार को खाली जाता देख बालम कालिया साँप की तरह फुफकार उठा ग्रौर पुत्र को लक्ष्य करके कहने लगा—

> जो जन्मा इस कालरी, मर्द बड़ा हड़खाया।
> तेर त यू कारज ना सध, तू बेड़वे का जाया॥

ग्रर्थात्—जो इस लजवाने की धरती में पैदा होता है वह मर्द बड़ा मर्दाना होता है। उसका वार कभी खाली नहीं जाता। तुझसे तहसीलदार का ग्रन्त न होगा, क्योंकि तेरा जन्म यहाँ नहीं हुग्रा। तू बेड़वे में पैदा हुग्रा था। (बेड़वा, लजवाना गाँव से दश मील दक्षिण ग्रौर कस्बा महम से पाँच मील उत्तर में है) ग्रकाल के समय में लजवाना के कुछ किसान भागकर बेड़वे ग्रा रहे थे, यहीं पर बालम कालिए के उपरोक्त पुत्र ने जन्म ग्रहण किया था। भाई को पिता द्वारा ताना देते देख बालम कालिए की युवति कन्या ने तहसीलदार साहब को पकड़कर बाहर खींचकर बल्लम से मार डाला।

मातहतों द्वारा जब तहसीलदार के मारे जाने का समाचार महाराजा जीन्द को मिला तो उन्होंने "लजवाना" गाँव को तोड़ने का हुक्म अपनी फौज को दिया। उधर भूरा-निघांईया को भी महाराजा द्वारा गाँव तोड़े जाने की खबर मिल चुकी थी। उन्होंने राज सैन्य से टक्कर लेने के लिए सब प्रबन्ध कर लिए थे। स्त्री बच्चों को गाँव से बाहर रिश्तेदारियों में भेज दिया गया। बूढ़ों की सलाह से गाँव में मोर्चे बन्दी कायम की गई। इलाके की पंचायतों को सहायता के लिए चिट्ठी भेज दी गई। वट वृक्षों के साथ लोहे के कढ़ाये बाँध दिये गये, जिससे उन कढ़ाहों में बैठकर तोपची अपना बचाव कर सकें और राजा की फौज को नजदीक न आने दें। इलाके के सब गोलन्दाज लजवाने में आ इकट्ठे हुए। महाराजा जीन्द की फौज और भूरा-निघांईया की सरदारी में देहात निवासियों की यह लड़ाई छ: महीने चली। ब्रिटिश इलाके के प्रमुख चौधरी दिन में अपने-अपने गाँवों में जाते सरकारी काम-काज से निबटते और रात को लजवाने में आ इकट्ठे होते। अगले दिन होने वाली लड़ाई के लिए सोच विचार कर प्रोग्राम तय करते। गठवालों के चौ० गिरधर रोज झोटे में भरकर गोला बारूद भेजते थे जो राजा की शिकायत पर अंग्रेजी सरकार ने वह भैंसा पकड़ लिया। जब महाराजा जीन्द (सरदार स्वरूपसिंह) किसी भी तरह विद्रोहियों पर काबू न पा सके तो उन्होंने ब्रिटिश फौज को सहायता के लिये बुलाया। ब्रिटिश प्रभुओं का उस समय देश पर ऐसा आतंक छाया हुआ था कि तोपों के गोलों की मार से लजवाना चन्द दिनों में सर कर लिया गया। भूरा निघांईया भाग कर रोहतक जिले के अपने गोत्र बन्धुओं के गाँव "चिड़ी" में आ छिपे। उनके भाइयों ने उन्हें तीन सौ साठ के चौधरी श्री दादा गिरधर के पास आहूलाणा भेजा। (जिला रोहतक की गोहाना तहसील में गोहाना से ३ मील पश्चिम में गठवाला गोत के जाटों का प्रमुख गांव आहूलाणा है। गठवालों के हरयाणा प्रदेश में ३६० गांव हैं। कई पीढ़ियों से इनकी चौधर आहूलाणा में चली आती है। अपने प्रमुख को ये लोग "दादा" की उपाधि से विभूषित करते हैं। इस वंश के प्रमुखों ने कभी कलानौर की नवाबी के विरुद्ध युद्ध जीता था। स्वयं चौधरी गिरधर ने ब्रिटिश इलाके का जेलदार होते हुए भी लजवाने की लड़ाई तथा सन् ५७ के संग्राम में प्रमुख भाग लिया था) जब ब्रिटिश रेजिडेण्ट का दबाव पड़ा तो डिप्टी कमिश्नर रोहतक ने चौ० गिरधर को मजबूर किया कि वे भूरा-निघांईया को महाराजा जीन्द के समक्ष उपस्थित करें। निदान भूरा-निघांईया को साथ ले सारे इलाके के मुखियों के साथ चौ० गिरधर जीन्द राज्य के प्रसिद्ध गांव कालवा (जहां महाराजा जीन्द कैम्प डाले पड़े थे) पहुंचे, तथा राजा से यह वायदा लेकर कि "भूरा-निघांईया को माफ कर दिया जावेगा" महाराजा जीन्द ने गिरधर से कहा— मर्द दी जबान, गाड़ी दा पहिय्या टुरदा चंगा होव है। दोनों को राजा के रूबरू पेश कर दिया। माफी मांगने व अच्छे आचरण का विश्वास दिलाने के कारण राजा उन्हें छोड़ना चाहता था, पर ब्रिटिश रेजिडेण्ट के दबाव के कारण राजा ने दोनों नम्बरदारों (भूरा व निघांईया) को फांसी पर लटका दिया।

दोनों नम्बरदारों को १८५६ के अन्त में फांसी पर लटकवा राजा ने ग्राम निवासियों को ग्राम छोड़ने की आज्ञा दी। लोगों ने लजवाना खाली कर दिया और चारों दिशाओं में छोटे-छोटे गांव बसा लिए जो आज भी "सात लजवाने" के नाम से प्रसिद्ध हैं। मुख्य लजवाना से १ मील उत्तर पश्चिम में 'भूरा" के कुटुम्बियों ने "चुडाली" नामक गांव बसाया। भूरा के बेटे का नाम मेघराज था।

मुख्य लजवाना ग्राम से ठेठ उत्तर में १ मील पर निघांईया नम्बरदार के वंशधरों ने "भेहरड़ा" नामक गांव बसाया। जिस समय कालवे गांव में भूरा निघांईया महाराजा जीन्द के सामने हाजिर

किये गये थे तब महाराजा साहब ने दोनों चौधरियों से पूछा था कि "क्या तुम्हें हमारे खिलाफ लड़ने से किसी ने रोका नहीं था।" निघांईया ने उत्तर दिया मेरे बड़े बेटे ने रोका था। सूरजभान उसका नाम था। राजा ने निघांईया की नम्बरदारी उसके बेटे को सौंप दी। अभी दो साल पहले निघांईया के पोते दिवाना नम्बरदार ने नम्बरदारी से स्तीफा दिया है। इसी निघांईया नम्बरदार के छोटे पुत्र की तीसरी पीढ़ी में चौ० हरीराम थे जो रोहतक के दस्युराज दीपा द्वारा मारे गये। इन्हीं हरीराम के पुत्र दस्युराज हेमराज उर्फ हेमा को (जिसके कारण हरयाणे की जनता को पुलिस अत्याचारों का शिकार होना पड़ा था। और जिनकी चर्चा पंजाब विधान सभा, पंजाब विधान परिषद्, भारतीय संसद तक में हुई थी) विद्रोहात्मक प्रवृत्तियां वंशपरम्परा से मिली थीं और वे उसके जीवन के साथ ही समाप्त हुईं।

लजवाने को उजाड़ महाराजा जीन्द (जीन्द शहर) में रहने लगे। पर पंचायत के सामने जो वायदा उन्होंने किया था उसे वे पूरा न कर सके इसलिए बड़े बेचैन रहने लगे। ज्योतिषियों ने उन्हें बताया कि भूरा-निघांईया के प्रेत आप पर छाये रहते हैं। निदान परेशान महाराजा ने जीन्द छोड़ संगरूर में नई राजधानी जा बसाई। सरदार पटेल ने रियासतें समाप्त कर दीं। महाराजा जीन्द के प्रपौत्र जीन्द शहर से चन्द मील दूर भैंस पालते हैं और दूध की डेरी खोले हुए हैं। समय बड़ा बलवान् है। १०० साल पहले जो लड़े थे उन सभी के वंश नामशेष होने जा रहे हैं। समय ने राव, रंक सब बराबर कर दिये हैं। समय जो न कर दे वही थोड़ा है। समय की महिमा निराली है।

जाट वंश के बलिदान

जिनके अमर बलिदानों की गाथा किसी ने लिखी नहीं

(श्री कपिलदेव शास्त्री)

लेखक ने यह लेख जाटवंश के वीरों की कुछ घटनाओं को लेकर ही लिखा है, इसका अर्थ यह नहीं कि अन्य वंशीय लोगों के बलिदानों को भुला दिया। वह स्वयं लिखता है कि "इस लेख में मैं केवल जाटों से सम्बन्धित कुछ बातें लिखूंगा। बाकी लोगों के सम्बन्ध में अन्य लेखों में।" वैसे लेखक ने जाट, अहीर, राजपूत, ब्राह्मण और वैश्य आदि सभी का सामान्यत: इसमें उल्लेख किया है। जाति-पाँति के झंझट में फंसना हमारा सिद्धान्त नहीं, किन्तु पृथक्-पृथक् नामों से कुछ समूह प्रसिद्ध हो चुके हैं। उनका उसी नाम से वर्णन करने में कुछ सुविधा रहती है। जाट एक क्षत्रिय वंश है उसके नाम मात्र को सुनकर नाक भौं सिकोड़कर साम्प्रदायिक कहना उचित नहीं। लेखक को इतिहास सामग्री से लाभ उठाना ही अभिप्रेप्सित होना चाहिये। —वेदव्रत सम्पादक

पिछले पांच हजार साल से भारत के भाग्य निर्णायक युद्ध हरयाणे की वीर-भूमि में लड़े जाते रहे हैं। धर्मक्षेत्र, कुरुक्षेत्र में भाई-भाई का जो युद्ध हुआ उससे ऐसी परम्परा पड़ी कि—आज भी इस धरती पर भाई से भाई लड़ता कतराता नहीं। और इसी हरयाणे की पवित्र भूमि के ठीक मध्य में

दिल्ली है जो न्यूनाधिक अपनी स्थापना से आज तक इस राष्ट्र की राजधानी चली आई है। इसके चारों ओर भारी संख्या में जाट वंशीय लोग बसते हैं। हजारों साल से वे देश के स्वातन्त्र्य युद्धों में सामूहिक रूप में भाग लेते आये हैं। परन्तु इतिहास में उनके अमर बलिदानों की कहानी का उल्लेख नहीं हुआ है। जाट रणभूमि में अपने जौहर बार-बार दिखला चुका है, फिर भी राजपूत, सिख, मराठों जैसी युद्ध सम्बन्धी प्राचीन दन्त-कथायें उसके भाग्य में नहीं हैं। परन्तु अपनी मातृ-भूमि के लिए जिस दृढ़ता से जाट लड़ सकता है, उनमें से कोई भी नहीं लड़ सकता। अधिक से अधिक प्रतिकूल परिस्थिति में भी पूर्ण रूप से शान्त बने रहने और घबरा न उठने की प्राकृतिक शक्ति से जाट भरपूर होता है। भय तो जाट को छू भी नहीं सकता। जो भी चोट उस पर पड़ती है, उससे वह और भी कड़ा बन जाता है। उद्योग और साहस में तो जाट अद्वितीय होता है। शारीरिक संगठन, भाषा, चरित्र, भावना, शासन-क्षमता, सामाजिक परिस्थिति आदि के विचार से जाट ऊँचा स्थान रखता है।

भारतीय इतिहास के निर्माण में जाट वंश का महत्त्वपूर्ण भाग रहा है। हिन्दू जाति और हिन्दू धर्म के लिए जाटों ने जो-जो कार्य किये हैं, वे सदैव स्वर्णाक्षरों में लिखे जाने योग्य हैं। परन्तु आज भी आम हिन्दू में जाटों के प्रति जो भावना है उसे भला नहीं कहा जा सकता है। प्रेस और प्लेट फार्म से दिन-रात राजपूत, मराठा, सिख, गोरखों का यशोगान करते रहिये। आपको कोई कुछ न कहेगा पर आपने भूल कर भी जाट के लिये कुछ लिख दिया या कह दिया तो आप फौरन साम्प्रदायिक घोषित कर दिये जावेंगे। जिन जाटों के लिए देश पर बलि देना बांये हाथ का खेल रहा है, जिनके रक्त में पवित्र कर्त्तव्य-पालन और देश-भक्ति के भावों के परमाणु पूरी तरह से मिले हुए हैं, जो आन पर लड़ना और जान पर मरना खूब जानते हैं। आन के लिये घर बिगाड़ना जिस जाट के लिए साधारण बात रही है। उसके यशोगान से नफरत करना क्या हिन्दू जाति की ऐसान-फरामोशी नहीं है?

विशाल हिन्दू जाति में से प्रसिद्ध इतिहासज्ञ श्री कालिका रंजन कानूनगो ही ऐसे हैं, जिन्होंने इस ऋण से अनृण होने का प्रयत्न किया है, जाटों के सम्बन्ध में श्री कानूनगो के जो विचार हैं उन्हें मैं उद्धृत करना आवश्यक समझता हूं। वे लिखते हैं—"एक जाट उतना कल्पनाशील और भावुक नहीं होता जितना सुदृढ़ और धर्मशाली। शब्द प्रमाण की अपेक्षा उस पर प्रत्यक्ष उदाहरण का विशेष प्रभाव पड़ता है। स्वातन्त्र्य-प्रियता और परिश्रम-शीलता उसके विशेष गुण हैं। उसे अपने व्यक्तित्व का बड़ा ध्यान रहता है। वह स्वजाति सत्ता का समर्थक होने के साथ संगठन-कला में भी दक्ष होता है। जाट जिस बात को ठीक समझता है उसे करने में तुरन्त प्रवृत्त हो जाता है। यद्यपि वह स्वतन्त्र-प्रकृति का होने के कारण, अपनी इच्छानुसार ही सब कुछ कर डालता है तथापि वह उचित बात को सुनने, समझने और तदनुसार काम करने के लिए सदैव तैयार रहता है।"

भारतीय इतिहास में जाटों की जो उपेक्षा की गई है, उसके दोषी जाट स्वयं किसी से कम नहीं हैं। जाटों ने लेखकों का कभी सम्मान नहीं किया, न ही कभी खुद लिखा। पीढ़ियों से उनके दो ही काम रहे हैं। देश की पुकार पर युद्ध करना और शान्ति के समय हल चलाकर, अन्न पैदा कर देश का पेट भरना। आज जाटों में पढ़े लिखों की कमी नहीं। उनमें अनेक डी० लिट्०, पी०-एच० डी०, एम० ए०, बी० ए०, आचार्य, शास्त्री, प्रभाकर, मौलवी फाजिल, ज्ञानी इत्यादि हैं। उनके अपने अनेक कालिज हैं, जिनमें अनेक नवयुवक सुन्दर सुखद भविष्य की कल्पना में लीन हैं। आज जाटों के

पास साधनों की भी कमी नहीं है। उनमें अनेक शक्तिशाली पुरुष हैं। पर क्या इनमें से कोई माई का लाल है जो जयचन्द्र विद्यालंकार की तरह अपने जीवन को शोध में लगा दे? क्या जाटों की कोई संस्था है जो ऐसे जन की रोटी, कपड़े, लत्ते की व्यवस्था कर सके? ईरान से इलाहाबाद तक के विशाल भूखण्ड में जाटों के वीरत्व-पूर्ण बलिदानों की कहानियां चप्पा-चप्पा भूमि में बिखरी पड़ी हैं। उनका संग्राहक चाहिये। जीवन की बाजी लगाने वाला चाहिये। जो भारतीय इतिहास की अनेक टूटी कड़ियों को मिला सके, अपनी शोध द्वारा।

दो हजार वर्ष पूर्व दुर्दान्त हूणों के आक्रमण से अपने प्रबल पराक्रम द्वारा जाटों ने भारत की रक्षा की और उन्हें देश से निकाल बाहर किया।

छठी शताब्दी में जाट राजा हर्षवर्धन उत्तर भारत के सर्व-शक्तिमान् सम्राट् थे। जिनके राज्य प्रबन्ध की प्रशंसा चीनी यात्रियों ने भी की है। इन्हीं के राज्य में बाण जैसा कवि था जिसके सम्बन्ध में प्रसिद्ध है कि—"बाणोच्छिष्टं जगत् सर्वम्।" संस्कृत साहित्य का कोई ऐसा शब्द न होगा जिसका बाण ने प्रयोग न किया हो। १६ सौ वर्ष पूर्व उत्तर भारत में जाटों के अनेक उदाहरण थे जिनमें रोहतक का यौधेय-गण-राज्य सर्वाधिक प्रसिद्ध था। यहां के वीर क्षत्रियों ने अपने रक्त की अन्तिम बूंद तक बहाकर पंचायती राज्य की रक्षा के लिए अकथनीय बलिदान दिये। उनके समृद्धिशाली राज्य की कहानी रोहतक का खोखरा कोट पुकार-पुकार कर कह रहा है। थानेसर, कैथल, अग्रोहा, सिरसा, भादरा आदि इनके प्रसिद्ध जनपद थे।

१०२५ में जब महमूद गजनवी गुजरात के संसार-प्रसिद्ध देवालय सोमनाथ को लूटकर रेगिस्तान के रास्ते वापिस गजनी जा रहा था तब भटिण्डा के जाट राजा विजयराव ने उसे सिन्ध के मरुस्थल में घेरा और उसकी असंख्य धनराशि अपने कब्जे में की तथा उसे खाली हाथ लौटने के लिए (प्राण बचाकर भागने के लिए) विवश किया। ९ सौ साल पहले बुटाना के जाटों ने अत्याचारी मुगलों को धातरट (सफीदों के पास) के मुकाम पर हराया और गठवाले (मलिक) जाटों ने पठानों को कलानौर में शिकस्त दी।

मुगलिया सल्तनत के दौरान में हरयाणा के वीर-पुत्रों ने सर्वखाप पंचायत के मातहत अनेक लड़ाइयां लड़ीं और महत्त्वपूर्ण बलिदान दिये जो अलग ही एक लेख का विषय है। औरङ्गजेब ने ब्रज के गोकुला जाट को मुसलमान न बनने पर जिन्दा चर्खी पर चढ़ा दिया था और माडू जाट की जिन्दा जी खाल (चमड़ी) उतरवा ली थी। उसी समय बोदर के महन्तों की बैरागी फौजों में शामिल होकर जाट मुगलों से निरन्तर संघर्षरत होते रहे।

महाराजा सूरजमल ने हिन्दू धर्म की रक्षा के लिए जो किया उसे भुलाना कृतघ्नता होगी। ढीली पड़ती मुगलिया सल्तनत की कमजोरी से लाभ उठा उन्होंने विशाल राज्य स्थापित किया। वे शरणागत-वत्सल थे। जिस समय जयपुर पर राजपूताने के राजाओं और मराठों की सम्मिलित शक्ति का आक्रमण हुआ तो महाराजा ईश्वरीसिंह की करुण कथा सुन तथा दूत द्वारा केवल पत्र पुष्प ही ग्रहण कर, २० सहस्र जाट सैनिकों के साथ आमेर जा पहुंचे। राजपूतों तथा मराठों की सम्मिलित शक्ति को पराजित कर ईश्वरीसिंह को निष्कंटक राजा तो बना ही दिया, अपनी शक्ति की धाक भी सब पर जमा दी। वे उस समय के उत्तर भारत के सर्वाधिक शक्तिशाली राजा थे। जिस समय

अहमदशाह अब्दाली ने भारत पर १९६१ में चतुर्थ आक्रमण किया और पेशवा के प्रतिनिधि सदाशिवराव भाऊ ने इसके आक्रमण का प्रतिरोध करने के लिए हिन्दू शक्ति का आह्वान किया उस समय जहाँ राजपूत राजाओं ने भाऊ का साथ देने से इन्कार किया वहां महाराजा सूरजमल अपने पचास हजार रणबांकुरों को लेकर मैदान में आ पहुँचे। यही नहीं, उन्होंने विशाल मराठा वाहिनी के लिए अपने खजाने से एक महीने का राशन भी दिया।

बादली के युद्ध में घायल दत्ता जी सींधिया को उठाकर जाट सैनिक-कुम्भेर के दुर्ग में ले गये। अब्दाली के आतंक के कारण दिल्ली के जिस वजीर गाजीउद्दीन को कोई शरण देने के लिए तैयार न था, और जो महाराजा सूरजमल का प्रबल विरोधी था, उसे भी उन्होंने शरण दी। यदि सदाशिवराव भाऊ महाराजा सूरजमल कीसलाह मान गुरिल्ला युद्ध ठान लेते तथा प्रतापी जाट राजा को अपमानित नहीं करते तो भारत वर्ष का इतिहास ही दूसरा होता। महाराजा सूरजमल के जाने के बाद भाऊ जब पानीपत के मैदान में खेत रहे उनका खजाना लुट गया। (आज भी हरयाणे में भाऊ की लूट मुहावरे के रूप में प्रसिद्ध है) मराठा सैनिकों और स्त्रियों को कहीं ठिकाना न रहा, तब महाराजा भरतपुर ने अपने दुर्ग के द्वार शरणागतों के लिए खोल दिये। अपने राज्य की प्रजा को आदेश दिया कि वे युद्ध से बचकर भागे मराठा सैनिकों का यथाशक्ति सम्मान करें। स्वयं भरतपुर दुर्ग में महारानी किशोरी अपनी देख रेख में चालीस-चालीस हजार आहत सैनिकों को दोनों समय भोजन कराती थी। एक पखवाड़े तक यह क्रम जारी रहा। इसके उपरान्त उनको विदा करते समय प्रत्येक बड़े सरदार को एक सहस्र रुपये, प्रत्येक सैनिक को सौ रुपये लत्ते, कपड़े तथा अन्न दिया और अपनी सेना की देख-रेख में ग्वालियर दुर्ग तक भेजा,यदि महाराजा सूरजमल आड़े न आते तो बहुत थोड़े मराठे नर्मदा पार कर अपने देश को पहुँच पाते। यदि वे बदला लेने पर उतारू होते तो एक भी मराठा सैनिक बचकर ग्वालियर न पहुँच पाता। एक मराठा सरदार लिखता है "महाराजा सूरजमल ने हाथ जोड़ कर हम से कहा "मैं तुम्हारे पास का हूं, मैं तुम्हारा एक सेवक हूं, यह राज्य तुम्हारा ही है" सूरजमल जैसे उदार प्रवृत्ति के मनुष्य संसार में बहुत कम हुए हैं।

जब महाराजा सूरजमल शाहदरा के पास धोखे से मारे गये तो महारानी किशोरी (होडल के प्रभावशाली सोलंकी जाट नेता चौ० काशीराम की पुत्री) ने महाराजा जवाहरसिंह को एक ही ताने में यह कहकर कि "तुम पगड़ी बाँधे हुए फिरते हो तुम्हारे पिता की पगड़ी शाहदरा के झाऊओं में उलटी पड़ी है" युद्ध के लिए तैयार कर दिया। महाराजा जवाहरसिंह ही पहले हिन्दू नरेश थे जिन्होंने आगरे के किले और दिल्ली के लाल किले को जीतकर विजय वैजयन्ती फहराई थी। दिल्ली के लाल किले के युद्ध में जब किसी भी तरह किला फतह न हो पा रहा था तब महाराजा जवाहरसिंह के मामा और महारानी किशोरीबाई के भाई वीरवर बलराम ने किले के फाटकों के लम्बे-लम्बे कीलों पर छाती अड़ा हाथी के मस्तिष्क पर बड़े-बड़े तवे बन्धवा पीलवान से हाथी हूलने को कहा। हाथी की मार से किले के किवाड़ों और तवों के बीच में बलराम का शरीर निर्जीव हो कीलों में उलझ गया पर उनके अमर बलिदान से अजेय दुर्ग के फाटक टूट गये और वह जीत लिया गया। भारतीय इतिहास में ऐसे अपूर्व बलिदान की एक ही कहानी और मिलती है और वह है उदयपुर के महाराणा अमरसिंह के समय रणथम्भौर के आक्रमण में चूडावतों व शेखावतों के झगड़े में शेखावत सरदार की आत्माहुति।

जिस दिल्ली को कोई जीत न सका था, उसी दिल्ली का मान मर्दन कर वीरशिरोमणि जवाहरसिंह ने चित्तौड़ के किले से लाये अष्टधाती किवाड़ दिल्ली से ले जाकर भरतपुर दुर्ग के दरवाजे पर चढ़वा दिये, जो आज तक विद्यमान हैं। माही पुरातिव आदि राज्य चिन्हों को अपने तोशखाने में रखवा दिया। जिनका प्रदर्शन आज तक दशहरे के जुलूस में होता है। आगरे के किले और ताजमहल की अनेक बहुमूल्य वस्तुओं को डीग के भवनों में लाकर स्थापित किया था।

कौन नहीं जानता कि भारतेन्द्र महाराजा जवाहरसिंह ही एकमात्र ऐसे हिन्दू नरेश थे जिन्होंने हिन्दू जाति के मुसलमानों द्वारा नष्ट किये हुए गौरव की रक्षा करके हमारी मान मर्यादा को सुरक्षित किया था। इतिहास-वेत्ता और इतिहास-प्रेमी पाठकों से यह बात छिपी हुई नहीं है कि महमूद गजनवी, चंगेजखाँ, तैमूरलंग, औरंगजेब आदि मुगल आक्रान्ताओं लुटेरों और बादशाहों ने हिन्दुओं के अनेक मन्दिरों को तोडा, मूर्तियों को खण्डित किया, मन्दिरों में शंख घड़ियाल व घण्टों का वजाना बन्द करा के उनमें आरती होने तक को बन्द करा दिया था। अनेक हिन्दुओं को बलात् मुसलमान बना लिया था। यहां तक कि हिन्दुओं की बहिन-बेटियों को छीनकर मुसलमान बना लिया था। यदि इन अत्याचारों का बदला किसी ने लिया तो सच्चे वीर क्षत्रिय महाराजा जवाहरसिंह ने आगरा आदि नगरों में अपने राज्य बल से मुल्लाओं को प्रातः सायं बांग देने से रोक दिया था। आगरा की जामा मस्जिद में बाजार लगवा दिया था परन्तु उसे तुड़वाया नहीं। इससे उन्होंने अपनी बुद्धिमत्ता का परिचय दिया था। अन्यथा वे चाहते तो क्षण भर में नष्ट भ्रष्ट करा देते और उसका चिन्ह तक मिटा देते। देहली से लौटते हुए उन्होंने सैकड़ों नव मुस्लिमों को जाट बना लिया था, जो आज भी हिन्दू जाति का गौरव बढ़ा रहे हैं। वही एक ऐसे प्रातः स्मरणीय हिन्दू नरेश हुए हैं जिन्होंने सच्चे अर्थों में हिन्दुत्व की रक्षा की तथा अकवर के सिंहासन पर बैठकर आगरे में शासन किया।

१८०५ में भरतपुर के दुर्ग पर जब अंग्रेजों ने आक्रमण किया तो महाराजा रणजीतसिंह ने अंग्रेजों के जिस तरह दाँत खट्टे किये वह तो इतिहास की अद्वितीय गाथा बन गया है, और उसी समय से यह कहावत प्रसिद्ध हो गई है कि—

"आठ फिरङ्गी, नौ गोरे, लड़ें जाट के दो छोहरे।"

कविवर वियोगी हरि ने भी अपनी वीर सतसई में लिखा है—

एही भरतपुर को दुग्ग है, जंह जट्टन के छोहरे।
.................................दिये अंग्रेज सुभट्ट पछारी॥

मातृ-भूमि के पैरों में से दासता की बेड़ियाँ उतरवाने के लिए, उसकी स्वतन्त्रता प्राप्ति के हित जो अंग्रेजों के विरुद्ध १८५७ का युद्ध लड़ा गया, उसमें सबसे बढ़ चढ़ कर भाग अहीरों और जाटों ने लिया। जिसका फल इन्हें अंग्रेजों के राज्य में वहुत बुरी तरह भोगना पड़ा और इन्हें अनेक राज्यों में विभक्त कर दिया गया।

१०२ वर्ष पूर्व जीन्द राज्य के प्रसिद्ध गाँव लजवाना में भूरा और निघांईया दो जाट चौधरी बसते थे। मजदा और दुर्गा के बहकाने से महाराजा जीन्द ने उन पर आक्रमण किया। यह युद्ध छः महीने तक चला, भूरा और निघांईया की मदद चारों ओर की जटैत करती थी। जो समय के अनुसार घटती, बढ़ती रहती थी। धन, जन की कभी कमी न रहती थी। भूरा और निघांईया अपने मातहत

काम करने वालों को आठ रुपये महीना देते थे। तोपची को सोलह रुपये महीना। सात सौ हेड़ी उनकी फौज में तोपची का काम करते थे। गोला, बारूद, रसद उन्हें, रिठाना, फड़वाल और खुडाली (किला-जफरगढ़) के ठिकानों से पहुंचती थी। खुडाली में तो पुराने घरों में अब तक शोरा, गन्धक, पुरानी बन्दूक, गंड़ासे आदि बड़ी तादाद में खुदाई पर निकल आते हैं। इस युद्ध में पटियाला, नाभा, जीन्द आदि राज्यों की बीस हजार से अधिक फौज काम आई थी। अंग्रेजी फौज ने आकर बड़ी कठिनाई से लजवाना को फतह किया था। आज भी पटियाला के देहात में बहनें यह गीत बड़े दर्द के साथ गाती हैं कि—

"लजवाने तेरा नाश जाइयो, तैंने बड़े पुत्त खपाये।"

हरयाणा के स्वाभिमानी पुरुष अंग्रेजी राज्य की स्थापना के कितने विरुद्ध थे, यह उपर्युक्त घटना से अच्छी तरह ज्ञात हो जाता है। अन्त में भूरा और निघांईया पकड़े गये तथा उन्हें कालवा (जीन्द राज्य का प्रसिद्ध गाँव) में फांसी पर लटका दिया गया। फांसी गांव से बाहर वृक्षों पर दी गई तथा सारे इलाके के लोगों को बुलाकर। जिससे अंग्रेज की दहशत सब पर छा जावे और कोई भी ब्रिटिश प्रभु के खिलाफ सिर न उठा सके।

सन् १८०९ में जब कर्नल वारिन पलटन लेकर भिवानी फतह के लिये गये, उस समय उसके चारों ओर बसने वाले जाटों, राजपूतों, ब्राह्मणों और वैश्यों ने डटकर लोहा लिया था। और तो और जिन वैश्यों को व्यापारी कहकर उपेक्षा की जाती है, उनके अगुआ ला० नन्दराम अपने चार बेटों के साथ युद्ध में काम आये। कोसली के प्रसिद्ध पंडित तुलसीराम जी अपने भाई तोताराम के साथ अंग्रेजों के विरुद्ध युद्ध में जूझे थे। १८०२ में जार्ज थाम्स ने पहले पहल हरयाणा की भूमि पर कब्जा किया। उसने बेरी, झज्जर तथा महम अपने अधीन किये, तथा सारे पंजाब पर कब्जा करने का विचार करने लगा। उसकी सफलता का कारण था तत्कालीन राजाओं व नवाबों का आपसी विग्रह। परन्तु हरयाणा वाले जल्दी ही संभल गये और उन्होंने बापू जी सींधिया तथा भरतपुर के जाट नरेश महाराजा रणजीतसिंह की अध्यक्षता में युद्ध करके जार्ज थाम्स को इस प्रदेश पर से भगा दिया था। बाद में ईस्ट इण्डिया कम्पनी की शासन सत्ता छा गई। और यहाँ के निवासी सन् ५७ तक अन्दर ही अन्दर अंग्रेज के विरुद्ध धधकते रहे। १८५७ के स्वातन्त्र्य युद्ध में हरयाणे के राजाओं, नवाबों, सैनिकों और जन साधारण ने जो महत्त्वपूर्ण भाग लिया है वह अलग ही लेख (लेख नहीं पुस्तक) का विषय है। इस में कोई सन्देह नहीं कि हरयाणा के वीर पुत्रों (सभी जातियों) ने जो भाग आजादी की लड़ाई में लिया उसका उल्लेख बहुत कम हुआ है। रामपुरा, रिवाड़ी, फर्रुखनगर, बहादुरगढ़, झज्जर, बल्लभगढ़, नसीरपुर (नारनौल), श्यामड़ी, रोहतक, थानेसर, पानीपत, करनाल, पाई, कैथल, सिरसा, हाँसी, नंगली, जमालपुर, हिसार आदि सभी स्थान विद्रोहियों के केन्द्र रहे हैं। उपरोक्त सभी स्थानों पर कुछ न कुछ दिन आजादी के दीवानों की हुकूमत रही है। इस लेख में मैं केवल जाटों से सम्बन्धित कुछ बातें लिखूंगा। बाकी लोगों के सम्बन्ध में अन्य लेखों में।

१० मई को मेरठ से जो चिनगारी छूटी वह ११ को देहली आ पहुँची। मेरठ की फौजों में सबसे अधिक हरयाणे के जाट और राजपूत थे। उनके बाद अहीर। उन फौजी सिपाहियों द्वारा यह आग सारे प्रदेश में व्याप्त हो गई। उस समय तक तब रोहतक बंगाल के गवर्नर के मातहत था, तथा

कमिश्नरी का हेड क्वार्टर आगरा। यहाँ के डिप्टी कमिश्नर जोहन एडमलीक थे। २३ मई को बहादुरगढ़ में शाही फौज ने प्रवेश किया और २४ मई को रोहतक पहुंची। डिप्टी कमिश्नर गोहाने के रास्ते करनाल भाग गया। रहे हुए अंग्रेज अधिकारी मारे गये। जेल के दरवाजे खोल दिये गये, कचहरी को आग लगा दी गई। शाही दस्ते ने शहर के हिन्दुओं को लूटना चाहा पर जाटों ने ऐसा न करने दिया। दो दिन ठहर कर विद्रोहियों ने खजाने से दो लाख रुपया निकाल लिया। माँडौठी, मदीना, महम की चौकियां लूट ली गई। सांपला तहसील को आग लगा दी गई। सभी अंग्रेज स्त्रियों को जाटों ने मुस्लिम राजपूतों (रांघड़ों) के विरोध के बावजूद सही सलामत उनके ठिकानों पर पहुंचा दिया। गोहाना पर गठवाले जाटों ने कब्जा जमा लिया। ३० मई को अंग्रेजी फौज अंबाला से रोहतक चली, पर देशी फौजों के बिगड़ने से श्यामड़ी के जंगल में हार गई। बचे, खुचे अंग्रेज दिल्ली को भागे लुकते-छिपते ये लोग १० जून को सांपला पहुँचे। डिप्टी कमिश्नर सख्त धूप न सह सकने के कारण अन्धा हो गया। रोहतक के विद्रोही १४ जून को दिल्ली पहाड़ी की लड़ाई में सम्मिलित हुए थे। जब अंग्रेज रोहतक पर किसी तरह भी काबू न पा सके तो मजबूर होकर उन्होंने २६ जुलाई सन् ५७ को एक घोषणा द्वारा रोहतक को जीन्द के महाराजा स्वरूपसिंह को सौंप दिया। दिसम्बर के अन्त तक जहां लोग अंग्रेज से लड़ते रहे, वहां जाटों की खापें आपस में भी एक दूसरे पर आक्रमण करती रहीं और बीच-बीच में रांघड़ों और कसाइयों से भी लड़ते रहे।

जब गदर समाप्त हुआ तो प्रायः सभी गावों के मुखिया लोगों और खासकर नम्बरदारों को फांसी पर चढ़ा दिया गया था। झज्जर के चारों ओर की सड़कें उल्टे लटके मनुष्यों की लाशों से सड़ उठी थीं। मुसलमान राजपूत गांवों के नम्बरदारों को तथा श्यामड़ी गांव के १० जाट नम्बरदारों व १ ब्राह्मण को रोहतक की कचहरियों व शहर के बीच नीम के वृक्षों पर (वर्तमान चौधरी छोटूराम की कोठी के सामने के वृक्षों पर) फांसी पर लटका दिया गया था। फांसी देने से पहले दसों जाट नम्बरदारों को बुलाकर अंग्रेज हाकिमों ने पूछा—बोलो क्या चाहते हो? जाटों ने कहा कि–हमारे ग्यारहवें साथी मुल्का ब्राह्मण को छोड़ दो। मुल्का ब्राह्मण ने अपने साथियों से अलग होने से इन्कार कर दिया। उसे भी उनके साथ ही फाँसी दे दी गई। सारी लाशें गाँव में लाकर जलाई गयीं। फांसी पाने वालों के खोज करने के बाद ९ नाम जान सका। दो नामों का पता न चला। क्रमशः नाम ये हैं १- मुल्का ब्राह्मण २- हरदयाल ३- श्योगा ४- हरकू ५- बहादुरचन्द ६- जमनासिंह ७- हरिराम ८- शिल्का ९- भाईय्या। (सब जाट)

कप्तान हड़सन १६ अगस्त सन् ५७ को १२ बजे रोहतक पहुँचा था। उसने कुछ लोगों को इकट्ठे देखकर गोली चला दी जिससे १६ आदमी मारे गये। यह घटना चारों ओर के देहात में फैल गई। अगले दिन १७ अगस्त को, सिंधपुरा, सुन्दरपुर, टिटौला आदि के १५ सौ आदमी चढ़ आये, जिनमें से ५० रणभूमि में ही खेत रहे। झज्जर के नवाब अब्दुर रहमान खाँ को २३ दिसम्बर सन् ५७ को फांसी के तख्ते पर लटका दिया गया। २१ अप्रेल सन् ५८ को बल्लभगढ़ नरेश नाहरसिंह फांसी पर झुला दिये गये और उन्हीं के साथ नवाब झज्जर के तीन वजीरों में से एक वजीर बादली के गुलाबसिंह जाट भी फांसी पर चढ़ा दिये गये। राव तुलाराम व राव कृष्णगोपाल ने जो अतुल पराक्रम दिखाया वह स्वर्णाक्षरों में अंकित होने योग्य है। इसी अर्से में बहादुरगढ़, दादरी, फर्रुखनगर के नवाब समाप्त कर दिये गये। फर्रुखनगर के नवाब मुहम्मदअली को फांसी दी गई और उनके ११ साथियों को गोली

से उड़ा दिया गया। महाराजा नाहरसिंह के साथ फांसी पाने वालों में कुंवर खुशालसिंह और ठाकुर भूरेसिंह भी थे।

हिसार में सन् ५७ में हरयाणवी फौज की लाइट पलटन तैनात थी। और १४ वां घुड़सवार रिसाला था। पंजाब के तत्कालीन चीफ कमिश्नर सर जान लारेन्स ने एक अनुभवी सेना नायक जनरल वान कोट लैंड को भेजा। हिसार, सिरसा, हांसी और उनके देहात में जहाँ भी, जो भी अंग्रेज फंसा समाप्त कर दिया गया। जहाँ रोहतक-करनाल के युद्धों में सिक्खों ने अंग्रेजों की सहायता की वहाँ हिसार के युद्ध में महाराजा बीकानेर के ८०० सिपाही अंग्रेज की ओर से लड़े। हांसी के देहात में जो मार काट मची वह रोंगटे खड़े करने वाली है। जो अमानवीय अत्याचार यहाँ हुए वह लिखे नहीं जा सकते। यदि उनका मुकाबला किया जा सकता है तो सन् १९४७ के नरमेध से। जमालपुर मंगली आदि गांव राख के ढेर बना दिये गये। युद्ध की समाप्ति पर देहात से पकड़कर १५० के लगभग लोगों को फांसी पर सरे आम लटका दिया गया।

कुरुक्षेत्र के ब्राह्मणों के आदेश से हरयाणवी फौज ने इलाके के जाटों के साथ मिलकर थानेसर की सरकारी इमारतें जला दीं और तहसील पर कब्जा कर लिया। पाई के जाटों ने कैथल जीत लिया। असन्ध के मुसलमान राजपूत पानीपत तक चढ़ आये। खरखोदा (रोहतक) के लोग दिल्ली की बादशाही फौजों से जा मिले। खरखोदा को देहात के २० आदमी गोली से उड़ा दिये गये और १४ फाँसी पर लटका दिये गये।

इस तरह हरयाणा के अन्दर फैले विद्रोह को दबाने के लिये सिक्ख व राजपूत फौज के साथ अंग्रेजी फौज ने भारी अत्याचार किये तथा सन् ५७ के अन्त तक सम्पूर्ण प्रदेश पर अधिकार कर लिया। लार्ड केनिंग चाहते थे कि हरयाणे की शूरवीर जातियों का सम्मान करना चाहिये। पर जनरल नील और मिंट गुमरी सम्मान करना तो दूर रहा, उजाड़ने पर तुले हुए थे।

क्रान्ति १८५७ में हुई थी पर सन् १९०२ तक हरयाणा की सड़कें व जंगल उजाड़े जाते रहे। ग्रामों में संस्कृत की पाठशालाएं बन्द की गईं। मन्दिर उजाड़े गये। दो और तीन हजार के बीच पंचायतें तोड़ी गईं। न्यायालयों में हिन्दी के स्थान पर उर्दू जारी की गई। जिन पंजाब वालों से हरयाणा का न रहन-सहन मिलता है, न बोल-चाल उन्हीं के साथ हरयाणा को आगरा से अलग कर मिला दिया गया। कुछ भाग जीन्द, नाभा, पटियाला की रियासतों के साथ मिला दिये गये। पंजाब के मुकाबले में इस प्रदेश की भारी उपेक्षा की गई। नये-नये कर लगाये गये। यहाँ के पैसे से पंजाब में नहरें निकाली गईं। कर्नल रैनक नामक अंग्रेज को डिप्टी कमिश्नर बनाकर, २० वर्ष तक बारी-बारी करनाल, रोहतक, हिसार, गुड़गाँव जिलों में भेजा जाता रहा जो इस प्रदेश के स्वाभिमानी वीर क्षत्रियों के हृदयों को ठेस लगाता रहा। उसने क्रान्ति में भाग लेने वाले अनेकों वंशों की जागीरें छीनीं, अमानुषिक दण्ड दिये। पर कर्नल रैनक के अत्याचार भी इस प्रदेश की वीरतापूर्ण भावना को दबा न सके।

ऋषि दयानन्द की कृपा इस प्रदेश पर हुई, आर्यसमाज का प्रचार धीरे-धीरे बढ़ा। सभी जाट आर्यसमाजी हो गये। स्वदेशी की भावना पनपी। जहां उन्होंने सन् १४ के विश्व युद्ध में फौज में भरती होकर जर्मन जैसी विश्वशक्ति को युद्ध में पछाड़ा (पहले विश्व-युद्ध में ६ नं० जाट पलटन के

जौहर प्रसिद्ध हैं। उनके शौर्य की प्रशंसा शत्रुओं ने भी की है।) वहाँ उन्हीं दिनों उनके कानों में जाट सरदार अजीतसिंह की यह आवाज भी पड़ी कि "पगड़ी संभाल ओ जट्टा, पगड़ी संभाल"। उन्होंने गान्धी जी के आन्दोलनों में बढ़ चढ़ कर भाग लिया तथा अनेकों लोगों ने घर द्वार छोड़ देश की आजादी के लिये सर्वस्व न्यौछावर किया।

राजा महेन्द्रप्रताप आजादी की चसक में रियासत छोड़कर ३३ साल तक संसार के अनेक देशों की खाक छानते फिरे परन्तु उनके बलिदान की कीमत किसने की? आज अनेकों नाकारा राजनीतिज्ञ राज्यपाल बने बैठे हैं पर राजा जी लोक सभा में आये तो कांग्रेस के विरोध में।

द्वितीय विश्व युद्ध में जब जनरल मोहनसिंह ने आजाद हिन्द फौज बनाई और नेता जी सुभाषचन्द्र बोस ने उसका नेतृत्व संभाला तब उसमें सबसे बड़ी संख्या जाटों की थी। यह बात दूसरी है कि उन्हें वह यश नहीं मिला, जो दूसरे लोगों को। कर्नल दिलसुखमान इतने सीनियर आफीसर थे कि वे आज स्थल सेनाध्यक्ष होते। पर आज वे आजाद हिन्द फौज के कारण घर बैठे हैं। उन्हें कोई पूछने वाला नहीं। मांडौठी के कप्तान कंवलसिंह ने नेता जी सुभाषचन्द्र के साथ बर्लिन से टोकियो तक पनडुब्बी में यात्रा की और रंगून से जापान के लिये उड़ने से पहले तक उनके साथ रहे, इस बात को कौन जानता है? काश्मीर युद्ध में रिटौली, कबूलपुर के जमादार हरद्वारीलाल ने १० हजार फुट की ऊँचाई पर टैंक चढ़ाकर संसार में अद्भुत आश्चर्य उत्पन्न किया था। आज तक कोई भी इतनी ऊंचाई तक टैंक नहीं चढ़ा सका है। समाल गाँव के हुशियारसिंह अभी पिछले दिनों नागा पहाड़ियों में नागाओं से लड़ते हुए काम आये। भगतसिंह क्रांति की ज्वाला जलाते-जलाते फाँसी पर झूल गये। ऊधमसिंह सात समुद्र पार जनरल ओडायर को मारकर बलि हो गये। ऊधमसिंह-ताराचन्द अभी पिछले दिनों जोधपुर में डाकू कल्याणसिंह के मुकाबले में कुर्बान हो गये और उनकी कुर्बानी का ही यह परिणाम है कि आज राजस्थान, पाकिस्तान की सीमा डाकू-विहीन हो गई है।

जिन मि० जिन्ना से सारे हिन्दुस्तान के राजनीतिज्ञ मुकाबला करते घबराते थे उन्हीं जिन्ना साहब को विचक्षण जाट राजनीतिज्ञ चौ० छोटूराम ने कान पकड़कर पंजाब से निकाल दिया था। सन् ४२ में भक्त फूलसिंह जी आततायियों के हाथ कत्ल हो गये। स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी महाराज गोरक्षा के लिये बलि हो गये।

सन् ४७ के गृह-युद्ध में यदि जाट गिरिराजशरणसिंह उर्फ बच्चूसिंह के नेतृत्व में मेव आक्रमण का मुकाबला न करते तो भारतीय इतिहास की धारा ही दूसरी होती और शायद दिल्ली हमारी न होती। इस गृह-युद्ध में जिन लोगों ने जिस वीरता के साथ भाग लिया है, वह किसी जानकार की लेखनी ही लिख सकती है। यह लम्बी कहानी है। वर्तमान हिन्दी सत्याग्रह संग्राम में जाटों ने ही सब से बढ़-चढ़कर बलिदान दिया। हैदराबाद के धर्मयुद्ध में भरतखण्ड में सबसे अधिक सत्याग्रही हरयाणा से गये और उनमें भी सबसे ज्यादा थे जाट। पर यश जो उन्हें मिलना चाहिये था नहीं मिला। आज भी जाटों में बलिदाताओं की कमी नहीं है। यदि कमी है तो उनको प्रकाश में लाने वालों की। हो सकता है नई पढ़ी लिखी सन्तति इस तरफ कुछ ध्यान देकर विशाल भू-प्रदेश में बिखरे अपने इतिहास को संग्रहीत करने का प्रयत्न करे। जाटों का इतिहास उत्तर-भारत का इतिहास है। आर्यों के विशाल साम्राज्य का इतिहास है। काश! जाट तलवार की तरह कलम का भी धनी होता,

तो उनका इतिहास यों छिन्न-भिन्न न होता। इस धर्म-निरपेक्ष गणतन्त्र में वे सँभल जायें तो भी अच्छा है। आशा है दूसरे लोग भी जाटों से बिदकना छोड़कर उनकी उदारता से नाजायज लाभ उठाना छोड़ेंगे।

महाराजा श्री किसनसिंह जी बहादुर के जीवन की एक झाँकी

(लेखक—चौधरी मूलचन्द)

भरतपुर की भूमि वीर-प्रसूता रही है। भरतपुर की भूमि ने अनेक वीरों, दूरदर्शी नेताओं तथा अत्यन्त सफल लोकप्रिय राजाओं को जन्म दिया है। वर्तमान राजवंश के राजाओं ने भरतपुर राज्य की स्थापना सन् १७३३ ई० में की थी। इसी पुण्य भूमि में ४ अक्तूबर १८९९ में एक बालक का जन्म हुआ जो बाद में "लैफ्टिनैन्ट कर्नल हिज हाइनेस, महाराजा श्री व्रजेन्द्र सवाई कृष्णसिंह बहादुर जंग' के नाम से प्रसिद्ध हुआ। श्री रामसिंह को गद्दी से उतारने पर श्री कृष्णसिंह जी को २६ अगस्त १९०० ई० में राज्याधिकारी घोषित किया। सन् १९१८ तक जब तक ये नाबालिग रहे राज्य का प्रबन्ध कौंसिल आफ एजेन्सी द्वारा किया जाता था, जो कि ब्रिटिश सरकार के पोलिटीकल एजेन्ट की देख-भाल तथा नियन्त्रण में कार्य करती थी। इनकी माता गिरराजकौर सी० आई० इस काल में राज-प्रबन्ध की पूरी देखभाल रखती थी। २८ नवम्बर को कृष्णसिंह जी राजगद्दी पर बैठे। इसके राजा होने पर प्रजा को बड़ी प्रसन्नता हुई। सर्वत्र खुशियाँ मनाई गईं। महाराजा जसवन्तसिंह के बाल्य-काल में भी राज-प्रबन्ध एक पंचायत द्वारा किया जाता था जो कि राज्य कार्यकारिणी सभा थी। उसी पंचायत का संगठन पुनः किया गया और उसका नाम अब 'स्टेट कौंसिल' रखा गया। इस कौंसिल के प्रधान धाऊ बख्शी रघुवीरसिंह जी के ऊपर बाल महाराजा श्री कृष्णसिंह के पालन-पोषण का पूर्ण उत्तरदायित्व था। राजमाता अत्यन्त समझदार विदुषी थी। वही श्री कृष्ण को शिक्षा दिलाती थी। इन्होंने प्रारम्भ में इनको मेयो कालेज अजमेर भेजा। सन् १९१६ में इन्होंने वहाँ से डिप्लोमा प्राप्त किया। कालेज के जीवन काल में भी आपसे प्रिंसीपल तथा प्रोफेसर बड़े प्रभावित हुए।

सन् १९१६ में महाराजा ने जार्ज पंचम 'प्रिंस आफ बेल्स' तथा साम्राज्ञी 'मेरी प्रिंसेज आफ वेल्स' से आगरे में भेंट की। १९१७ में जार्ज पंचम के राज्याभिषेक पर आपने देहली दरबार में आयोजित सभा में भाग लिया। आपने सन् १९१० में 'कमोरी महल' से भेंट की और १९१४ में इंगलैण्ड की यात्रा की। इस प्रकार बाल्यकाल से ही इन्होंने अंग्रेज शासकों से भी सम्पर्क बना लिया।

सन् १९१४ में प्रथम विश्वमहायुद्ध की ज्वाला प्रज्वलित हुई। छोटी आयु होते हुए भी इन्होंने युद्ध में जाने की बड़ी इच्छा प्रकट की। ब्रिटिश सरकार ने इनकी बड़ी प्रशंसा की। युद्ध में जाने की अनुमति न दी। भरतपुर की सेनायें भेजीं जो वीरता में सारे यूरोप में प्रशंसनीय थीं। महाराजा को इससे बड़ी प्रसन्नता हुई कि भरतपुर के वीरों ने अपनी वीरता दिखाकर गौरव रखा। भरतपुर के

हैं। इन भारतीय वीरों की यशोगाथा अतीत के निबिड़ अंधकार में निहित है।

सूफी जी अंग्रेजों के भारत-दमन काल में उत्पन्न हुए तथा ईरान दमन के समय में सन् १९१५ में कारागृह की काल कोठड़ी में समाधि लगाई और नश्वर देह छोड़ दिया।

सूफी अम्बाप्रसाद का जन्म ऐसे समय में हुआ जब सन् सत्तावन के संग्राम की युद्धाग्नि भली-भांति शांत न हो पाई थी। अंग्रेज सरकार भारतीय जनता का दमन कर अपना साम्राज्य स्थापित कर रही थी। तभी सन् १८५८ में मुरादाबाद में सूफी जी का जन्म हुआ। इनका दाहिना हाथ जन्म से ही कटा हुआ था, अतः ये हँसी में कहा करते थे—"अरे भाई हमने सन् सत्तावन में अंग्रेजों के विरुद्ध युद्ध किया था, हाथ कट गया, मृत्यु हो गई, पुनर्जन्म हुआ, हाथ कटे का कटा आ गया।"

शिक्षा

आपकी शिक्षा मुरादाबाद, बरेली, जालन्धर आदि में हुई। एफ० ए० उत्तीर्ण करने के उपरान्त आपने वकालत पढ़ी, किन्तु की नहीं। उर्दू के प्रभावशाली लेखक होने के कारण सूफी जी ने लेखन-कला को ही अपनाया। आप पांव से लेखनी पकड़कर भली-भाँति लिख सकते थे।

कार्य क्षेत्र में

३२ वर्ष की अवस्था में आप कार्यक्षेत्र में आये और सन् १८९० में अपने जन्म स्थान मुरादाबाद से ही उर्दू का साप्ताहिक पत्र "जाम्युल अलूम" निकालना प्रारम्भ किया। वे हास्यरस के प्रसिद्ध लेखक थे, किन्तु गम्भीरता भी कुछ कम न थी, साप्ताहिक पत्र का प्रत्येक शब्द इनकी अन्तःस्थिति का परिचय देता था।

इसी समय भोपाल स्टेट में रेजिडेण्ट कुछ गड़बड़ कर रहे थे और स्टेट को हड़पना चाहते थे। वहाँ की स्थिति जानने के लिए 'अमृतबाजार पत्रिका' की ओर से सूफी जी को भेजा गया। सूफी जी एक पागल का रूप बनाकर रेजिडेन्ट के पास नौकरी के लिए गये। उनको केवल भोजन पर ही नौकर रख लिया गया। जब यह पागल (गुप्तचर) पात्र माँजता था, तब मिट्टी में लथपथ हो जाता था, मुखादि अंगों पर मिट्टी का लेप कर लेता था। किन्तु बाजार की वस्तुएँ लाने में बड़ा ही निपुण था। अतः वस्तु खरीदने के लिए इसी को भेजा जाता था।

उधर 'अमृत बाजार पत्रिका' में रेजिडेण्ट के विरुद्ध लेख सूचना आदि पर्याप्त संख्या में निकलने लगे। अन्त में उसकी ऐसी दुर्गति बनाई गई कि उसको पदच्युत कर दिया गया।

इधर रेजिडेन्ट ने कह रखा था कि जो कोई मेरे भेद खोलने वाले को पकड़वायेगा, उसे पारितोषिक दिया जायेगा।

जब रेजिडेण्ट पदच्युत होकर रियासत से बाहर निकल गया, तब वही पागल सा व्यक्ति हैट लगाये हुए, पतलून, कोट, बूट पहने हुए उसकी ओर आया। उसे देखकर रेजिडेण्ट आश्चर्य-चकित हो गया। उसने विचारा यह तो वही पागल है जो मेरे पात्र मांजता था, किन्तु आज पागल नहीं है। उसने आते ही अंग्रेजी में वार्तालाप आरम्भ कर दिया। फिर क्या था, रेजिडेण्ट के पावों के नीचे से भूमि निकल गई और काँपने लगा। अन्त में रेजिडेण्ट ने कहा कि—"तुमको पारितोषिक दे दिया है अब मेरे पास क्यों आ रहे हो?

वीरों की सर्वत्र प्रशंसा होने लगी। ये सैनिक फ्रांस, यूनान, अफ्रीका आदि के रण-क्षेत्रों में भी गये, सब स्थानों पर भरतपुर की वीरता व साहस की अमिट छाप छोड़ गये। इन वीरों की रणप्रशंसा का स्मारक विक्टोरिया होस्पीटल के समीप बना हुआ है। यह सेनाएं युद्ध के समाप्त होने पर ही भरतपुर लौटी। महाराजा ने अंग्रेजों को आर्थिक सहायता भी पर्याप्त दी। महाराजा का हृदय उदार था। भिन्न भिन्न फण्डों में आपने १५ लाख रुपये की सहायता दी। एक बात ध्यान देने योग्य है कि भरतपुर की सेनायें युद्ध समाप्ति तक रणक्षेत्र में रहीं किन्तु अन्य किसी राज्य की न रही।

३ मार्च १९१३ को महाराजा का विवाह पंजाब की रियासत फरीदकोट के राजा की छोटी बहिन के साथ बड़ी धूम-धाम से हुआ। महाराज के ७ सन्तानें हुईं। जिनमें ४ राजकुमार तथा ३ राजकुमारियाँ थीं। ३० नवम्बर १९२८ को सबसे बड़े राजकुमार सवाई ब्रजेन्द्रसिंह का जन्म हुआ जो कि भरतपुर के वर्तमान महाराजा हैं। महाराजा कृष्णसिंह का सम्बन्ध नाभा तथा जीन्द रियासतों से था तथा वैवाहिक सम्बन्ध पटियाला तथा फरीदकोट रियासतों से था।

महाराजा ने १९१९ में सैनिक बोर्ड की स्थापना की। अनाथ, अपाहिज अंग-भंग, सैनिकों को सहायता दी। प्रजा को सन्तान के बराबर समझते थे। वीरगति को प्राप्त हुए सैनिकों के परिवारों को आर्थिक सहायता देते तथा बड़ी सहानुभूति रखते थे। प्रजा भी आपको पिता समान समझती थी। सारा राज्यप्रबन्ध आपने बड़े सुचारु रूप से चलाया। राज्य में एक राजा होते हुए भी प्रजातन्त्र था। भरतपुर की आर्थिक स्थिति को आपने सुदृढ़ किया। सारा रुपया प्रजा का है। वह प्रजा के काम में आना चाहिए यह आपका विश्वास था। वह अपने आपको ट्रस्ट का ट्रस्टी समझते थे। जनता में पूर्ण सन्तोष था। महाराजा ने राज्य की सर्वतोमुखी उन्नति की। सेना का सगठन व पुनर्गठन किया। महाराजा स्वयं सैनिकों की देख-भाल करते थे। उनकी सुविधा का ध्यान रखते थे। उनसे व्यक्तिगत सम्पर्क रखते थे। महाराजा गौवों के बड़े भक्त थे। स्वयं गाय रखते थे और नगरों में गोशालायें स्थापित करवाते थे। इन्होंने राज्य में अनेक सुधार किये। म्युनिसिपैलिटी की स्थापना भी आपने की। प्रजा के हितार्थ अनेक परिवर्तन भी शासन व्यवस्था में किये। सारी प्रजा सम्पन्न तथा प्रसन्न थी। श्रीमान् जी अनुभवी तथा कुशल शासक रहे। २४ सितम्बर १९२२ ई० को इनकी माता का देहान्त हो गया। जिससे सारी प्रजा को बड़ा दुःख हुआ। राजमाता बड़ी न्यायप्रिय और दयालु थी। महाराजा को भी उनकी मृत्यु से बड़ा धक्का लगा। वे इसी कारण रोगग्रस्त हो गये। सारी प्रजा में दुःख के बादल छा गए। सर्वत्र मन्दिर मस्जिदों में उनके स्वस्थ होने की प्रार्थना की जाने लगी। उनके स्वस्थ होने पर प्रजा फूली न समाई।

महाराजा को शिक्षा से बड़ा प्रेम था। प्रारम्भिक शिक्षा को अनिवार्य कर दिया। पठित जनों को आदर दिया। योग्य छात्रों को छात्रवृत्तियां दी जाने लगीं। हिन्दी भाषा को बड़ा महत्त्व दिया। सभी राज्यकार्य हिन्दी में होने लगा। सारा कार्य सरकारी विभागों में भी हिन्दी में ही कराया जाने लगा। इसीलिये आपने भरतपुर में हिन्दी साहित्य सम्मेलन भी करवाया जिसमें रवीन्द्रनाथ टैगोर भी सम्मिलित हुए। आपने जनता के हितार्थ 'भारत वीर' नामक पत्र भी प्रकाशित कराया।

इन्होंने एक एक्ट जारी किया जिसमें भरतपुर राज्य की विधवाओं को सहायता देकर उनका उपकार किया। सहकारी समितियां तथा सहकारी बैंक व ग्राम पंचायतों की स्थापना की और इनके

सम्बन्ध में एक एक्ट जारी किया। उसके प्रबन्ध का अधिकार जनता को दे दिया। ग्रामों में आयुर्वेदिक अस्पताल खुलवाये। पशुओं के लिए प्रदर्शनी खुलवाई जिसका नाम जसवन्त नुमाइस पड़ा जो अब भी दशहरे के अवसर पर होती है। व्यापार तथा वाणिज्य की वृद्धि के लिए राजा ने सारे शहर में टेलीफोन तथा बिजली का भी प्रबन्ध कराया।

सन् १९२८ ई० में जयपुर तथा अलवर राज्य का पानी बाँध टूटने पर भरतपुर के चारों तरफ भर गया। उस समय महाराजा ने प्रजा के प्राणों की रक्षा की, जन और धन की रक्षा की, आहतों को सहायता प्रदान की। इस प्रकार के कार्यों से वह सर्वजन के हृदय में प्रीतिभाजन हो गए।

महाराजा को जाट होने का गौरव था। १९२५ ई० में पुष्कर में आयोजित जाट महासभा के अध्यक्ष पद को आपने ही ग्रहण किया था। आप में कर्तव्य-परायणता कूट-कूट कर भरी थी। वे किसी भी जाति व धर्म से द्वेष नहीं करते थे। किसनसिंह बड़े उच्च भाव वाले पथप्रदर्शक नृपति थे। आपने अनेक संशोधन राज्य के प्रबन्ध में किए जिसके कारण भरतपुर राज्य का भविष्य उज्ज्वल बन सका। भूमिसुधार की ओर भी आपने अनेक सुधार किए।

इतना होते हुए भी सन् १९२८ में तत्कालीन भारत सरकार ने इन्हें राज्य छोड़ने पर विवश किया। इन पर अपव्ययता तथा राज्य कुप्रबन्ध के आरोप लगाये। इनके भरतपुर प्रवेश पर रोक लगा दी गई। जिससे इनके हृदय को बड़ी ठेस पहुँची। इन्होंने सरकार का विरोध किया। वे न्याय के लिए अन्त तक लड़ते रहे। भरतपुर निर्वासन के १६ महीने बाद २९ मार्च १९२८ को यह सितारा हमेशा के लिए विलीन हो गया।

महाराजा अनन्य देशभक्त, वीर तथा महान् समाज-सुधारक थे। भरतपुर की जनता इस महारथी को सदैव स्मरण करती रहेगी।

देशभक्त सूफी अम्बाप्रसाद

(वेदव्रत शास्त्री, गुरुकुल झज्जर)

इस पवित्र भारत भूमि पर सहस्रों देशभक्त हुए हैं जिन्होंने भारत को स्वतन्त्र कराने के लिए अपना सर्वस्व न्यौछावर किया है। जिन्होंने नि:संकोच भाव से स्वाधीनता के यज्ञ में अपनी आहुति दी है। पराधीनता की जंजीरों से जकड़ी और पददलित हुई अपनी जन्म भूमि को बन्धनमुक्त कराने के लिए, उन्नति के शिखर पर चढ़ाने के लिए, सोई हुई आर्य जाति को जगाने के लिए, लुप्त हुए प्राचीन गौरव को पुन: प्राप्त करने के लिए, जन्म मृत्यु के खेल को हँस-हँस कर खेला है। ऐसे वीर-शिरोमणियों में से एक वीर श्री अम्बाप्रसाद सूफी थे।

ये सच्चे देश-भक्त थे। इनके हृदय में देश को स्वतन्त्र बनाने के लिए दु:ख था, दर्द था और था सर्वस्व स्वाहा करने का महान् सङ्कल्प। ये भारतमाता की प्रतिष्ठा देखना चाहते थे, और चाहते थे इसे सब देशों का मुकुट-मणि बनाना। इन देशभक्तों के विषय में बहुत कम व्यक्ति हैं, जो कुछ जानते

हैं। इन भारतीय वीरों की यशोगाथा अतीत के निबिड अंधकार में निहित है।

सूफी जी अंग्रेजों के भारत-दमन काल में उत्पन्न हुए तथा ईरान दमन के समय में सन् १९१५ में कारागृह की काल कोठड़ी में समाधि लगाई और नश्वर देह छोड़ दिया।

सूफी अम्बाप्रसाद का जन्म ऐसे समय में हुआ जब सन् सत्तावन के संग्राम की युद्धाग्नि भली-भांति शांत न हो पाई थी। अंग्रेज सरकार भारतीय जनता का दमन कर अपना साम्राज्य स्थापित कर रही थी। तभी सन् १८५८ में मुरादाबाद में सूफी जी का जन्म हुआ। इनका दाहिना हाथ जन्म से ही कटा हुआ था, अत: ये हँसी में कहा करते थे—"अरे भाई हमने सन् सत्तावन में अंग्रेजों के विरुद्ध युद्ध किया था, हाथ कट गया, मृत्यु हो गई, पुनर्जन्म हुआ, हाथ कटे का कटा आ गया।"

शिक्षा

आपकी शिक्षा मुरादाबाद, बरेली, जालन्धर आदि में हुई। एफ० ए० उत्तीर्ण करने के उपरान्त आपने वकालत पढ़ी, किन्तु की नहीं। उर्दू के प्रभावशाली लेखक होने के कारण सूफी जी ने लेखन-कला को ही अपनाया। आप पांव से लेखनी पकड़कर भली-भाँति लिख सकते थे।

कार्य क्षेत्र में

३२ वर्ष की अवस्था में आप कार्यक्षेत्र में आये और सन् १८९० में अपने जन्म स्थान मुरादाबाद से ही उर्दू का साप्ताहिक पत्र "जाम्युल अलूम" निकालना प्रारम्भ किया। वे हास्यरस के प्रसिद्ध लेखक थे, किन्तु गम्भीरता भी कुछ कम न थी, साप्ताहिक पत्र का प्रत्येक शब्द इनकी अन्त:स्थिति का परिचय देता था।

इसी समय भोपाल स्टेट में रेजिडेण्ट कुछ गड़बड़ कर रहे थे और स्टेट को हड़पना चाहते थे। वहाँ की स्थिति जानने के लिए 'अमृतबाजार पत्रिका' की ओर से सूफी जी को भेजा गया। सूफी जी एक पागल का रूप बनाकर रेजिडेन्ट के पास नौकरी के लिए गये। उनको केवल भोजन पर ही नौकर रख लिया गया। जब यह पागल (गुप्तचर) पात्र माँजता था, तब मिट्टी में लथपथ हो जाता था, मुखादि अंगों पर मिट्टी का लेप कर लेता था। किन्तु बाजार की वस्तुएँ लाने में बड़ा ही निपुण था। अत: वस्तु खरीदने के लिए इसी को भेजा जाता था।

उधर 'अमृत बाजार पत्रिका' में रेजिडेण्ट के विरुद्ध लेख सूचना आदि पर्याप्त संख्या में निकलने लगे। अन्त में उसकी ऐसी दुर्गति बनाई गई कि उसको पदच्युत कर दिया गया।

इधर रेजिडेन्ट ने कह रखा था कि जो कोई मेरे भेद खोलने वाले को पकड़वायेगा, उसे पारितोषिक दिया जायेगा।

जब रेजिडेण्ट पदच्युत होकर रियासत से बाहर निकल गया, तब वही पागल सा व्यक्ति हैट लगाये हुए, पतलून, कोट, बूट पहने हुए उसकी ओर आया। उसे देखकर रेजिडेण्ट आश्चर्य-चकित हो गया। उसने विचारा यह तो वही पागल है जो मेरे पात्र मांजता था, किन्तु आज पागल नहीं है। उसने आते ही अंग्रेजी में वार्तालाप आरम्भ कर दिया। फिर क्या था, रेजिडेण्ट के पावों के नीचे से भूमि निकल गई और काँपने लगा। अन्त में रेजिडेण्ट ने कहा कि—"तुमको पारितोषिक दे दिया है अब मेरे पास क्यों आ रहे हो?

आपने कहा था कि "जो मनुष्य मेरा भेद खोलने वाले गुप्तचर को पकड़वायेगा, उसको पारितोषिक दिया जायेगा।"

रेजिडेण्ट ने कहा—"हाँ, कहा तो था, क्या तुमने उसे पकड़ लिया ? उत्तर में सूफी ने कहा—हाँ, हां पारितोषिक दीजिए वह गुप्तचर मैं स्वयं ही हूं।

रेजिडेण्ट ने क्रोध से कांपते हुए कहा—"यदि राज्य के अन्दर ही मुझे तेरा पता लग जाता तो बोटी-बोटी उड़वा देता।' किन्तु अब उसके पास क्या शक्ति थी, जो कुछ कर सके। उसने अपने कथनानुसार सूफी को एक सोने की घड़ी दी और कहा—"यदि तुमको स्वीकार हो तो मैं गुप्तचर-विभाग से १०००) मासिक वेतन दिलवा सकता हूं। किन्तु उस देशभक्त के हृदय में धनैषणा न थी। उसने उत्तर दिया—"यदि वेतन ही लेना होता तो तुम्हारे बर्तन क्यों साफ करता ?"

सन् १८६७ में आपको राजद्रोह के अपराध में डेढ़ वर्ष का कारावास दण्ड मिला। जब १८६६ में छूटकर आये तब उत्तर प्रदेश के छोटे-छोटे राज्यों में अंग्रेज सरकार हस्तक्षेप कर रही थी। सूफी अम्बाप्रसाद जी ने वहाँ के तात्कालिक राज्याधिकारियों का भाण्डा फोड़ किया। अत एव इन पर मिथ्यादोष आरोपण कर अभियोग चला दिया और ६ वर्ष के कठोर कारावास का दण्ड दिया, तथा इनकी समस्त धन सम्पत्ति (जायदाद) जब्त कर ली गई। जेल में भी उनको अनेक यातनाएँ सहन करनी पड़ीं, किन्तु वह देशभक्त कभी अपने मार्ग से विचलित होकर पथभ्रष्ट की पंक्ति में सम्मिलित न हुआ।

सूफो जो को एक दिन एक गन्दी कोठरो में बन्द कर दिया था इसलिए वे रुग्ण हो गये, रुग्ण हो जाने पर औषधि तो क्या, पानी का भी ठीक प्रबन्ध न किया गया। जेलर आता, और हँसता हुआ प्रश्न करता—"सूफी, तुम अभी तक जिन्दा हो ?"

यथाकथञ्चित् ६ वर्ष के कारावास को समाप्त कर १९०६ के अन्त में आप बाहर आये। सूफी जी का निजाम हैदराबाद से घनिष्ठ सम्बन्ध था अतः जेल से छूटते ही हैदराबाद चले गये। निजाम ने उनके लिए एक सुन्दर भवन बनवाया और भवन के तैयार हो जाने पर निजाम ने कहा कि—"आपके लिए भवन तैयार हो गया है।" सूफी जी भी—"हम भी तैयार हो गये हैं" कहकर अपने वस्त्रादि उठाकर पंजाब की ओर चल दिये और लाहौर में आकर "हिन्दुस्तान" अखबार का कार्य करने लगे। आपकी कार्यकुशलता और वाक्पटुता को देखकर यहाँ भी सरकार की ओर से आपको १०००) मासिक गुप्तचर विभाग की ओर से मिल सकता था, किन्तु इस देशभक्त ने धन की अपेक्षा दरिद्रता और कारावास को ही श्रेष्ठ समझा अतः ठुकरा दिया। कुछ दिन पीछे "हिन्दुस्तान" सम्पादक से भी आपकी न बनी, अतः त्यागपत्र दे दिया।

इन्हीं दिनों में सरदार अजीतसिंह ने "भारतमाता-सोसाइटी" की स्थापना की और पंजाब के "न्यूकालोनी-बिल" के विरुद्ध आन्दोलन आरम्भ कर दिया। सूफी जी की उनसे मित्रता हो गई और वे भी इस आन्दोलन की ओर आकृष्ट हुए।

सन् १९०७ में पंजाब के देशभक्तों को अंग्रेज सरकार ने पुनः पकड़ना प्रारम्भ कर दिया, अतः सरदार अजीतसिंह के भाई किशनसिंह और "भारतमाता-सोसाइटी" के मन्त्री मेहता आनन्दकिशोर, सूफी जी के साथ नेपाल चल दिये। वहाँ पर नेपाल रोड के गवर्नर श्री जंगबहादुर जी से सूफी जी का

परिचय हो गया और उन्होंने इनके साथ अच्छा व्यवहार किया। पश्चात् सूफी जी को आश्रय देने के अपराध में गवर्नर श्री जंगबहादुर को पदच्युत कर दिया गया और उनकी धन-सम्पत्ति जब्त कर ली गई। सूफी जी को भी नेपाल से पकड़कर लाहौर लाया गया और लाला पिण्डीदास जी के "इण्डिया" पत्र में प्रकाशित लेखों के विषय में इन पर अभियोग चलाया गया, किन्तु निर्दोष होने पर इनको छोड़ दिया। तदुपरान्त सरदार अजीतसिंह को भी छोड़ दिया गया।

सन् १९०८ में सूफी जी और सरदार अजीतसिंह जी ने "भारतमाता-बुक-सोसाइटी" की स्थापना की। इसका अधिकतर कार्य सूफी जी ही किया करते थे। इसी संस्था की ओर से सूफी जी ने "बागी मसीह" वा "विद्रोही ईसा" पुस्तक का प्रकाशन किया, सरकार ने जब्त कर दिया।

इसी वर्ष लोकमान्य तिलक पर अभियोग चलाया गया और उनको ६ वर्ष के कारावास का दण्ड मिला। उस समय "देशभक्त" मण्डल के सभी सदस्य साधु बनकर पर्वतों की यात्रा करने के लिए चल दिये। उनके साथ एक भक्त (गुप्तचर) भी आया जो कि बूट-सूट लगाकर पूरा जैण्टिलमैन बना हुआ था। जब साधु इकट्ठे होकर बैठे तब भक्त ने सूफी जी के चरणों पर सिर झुकाकर नमस्ते की और पूछा -"बाबा जी आप कहाँ रहते हैं?" सूफी भोले भाले न थे, पक्के गुप्तचर थे अत: वे इस बगुले भक्त को पहचान गये और कठोर शब्दों में उत्तर दिया—"रहते हैं तुम्हार सिर में।

भक्त ने कहा "साधु जी आप नाराज क्यों हो गये?"

सूफी जी ने उत्तर दिया—"अरे मूर्ख तूने मुझे ही क्यों नमस्कार किया? और भी अनेक साधु बैठे हैं, इनको क्यों नहीं किया?" भक्त ने पुन: निवेदन किया कि—"महाराज मैंने आपको ही बड़ा साधु समझा।"

सूफी जी ने कहा—"अच्छा, जाओ, खाने पीने की बस्तुएँ लाओ" भक्त कुछ काल पश्चात् उत्तमोत्तम पदार्थ लेकर आया। भोजन करने के उपरान्त सूफी जी ने उसको बुलाया और कहा—"क्यों बे! हमारा पीछा छोड़ेगा या नहीं?"

भक्त ने कहा—"भला मैं आपसे क्या कहता हूं जी?

सूफी जी ने उसको धमकाया —"क्यों चालाकी से बात करता है? आया है जासूसी करने, जा-जा अपने बाप से कह देना कि सूफी पहाड़ में गदर करने जा रहा है" इतना सुनते ही गुप्तचर सूफी जी के चरणों पर गिर गया और कहने लगा—"महाराज! पेट के लिए सब कुछ करना पड़ता है।"

सन् १९०९ में सूफी जी ने 'पेशवा' नाम से एक पत्र निकाला। उन्हीं दिनों में बङ्गाल में क्रान्तिकारियों का आन्दोलन वेग से चल रहा था। सरकार को चिन्ता हो गई कि कहीं यह विद्रोहाग्नि पंजाब में भी न धधक उठे, इसलिए पहले ही जनता का दमन प्रारम्भ कर दिया।

दमन चक्र को देखकर सूफी जी, सरदार अजीतसिंह और ज्याउलहक ईरान जा पहुँचे। वहाँ जा कर ज्याउलहक के मन में लोभ आ गया। उसने विचारा कि इन दोनों को पकड़वा दूं तो मुझे पारितोषिक मिल जायेगा और मैं दण्ड से भी बच जाऊंगा। किन्तु सूफी जी बड़े नीति-निपुण व्यक्ति थे, वे उसकी विचारधारा को समझ गये, उन्होंने उसी को आगे भेज दिया। उसने वहाँ रिपोर्ट की और स्वयमेव पकड़ा गया। सूफी जी और सरदार अजीतसिंह दोनों बचकर निकल गये।

सूफी जी ईरान में कैसे रहे और क्या किया, यह तो ज्ञात नहीं, किन्तु अंग्रेज सरकार ने वहाँ भी उनका पीछा न छोड़ा, गुप्तचर सदा पीछे लगे ही रहते थे। इसलिए इनको अनेक बार विपत्तियां उठानी पड़ीं।

एक स्थान पर सूफी जी को घेर लिया गया, वहाँ से निकलना कठिन हो गया। वहां पर ऊंटों वाले व्यापारी ठहरे हुए थे, उनके ऊंटों पर अनेक सन्दूक वस्त्रादि से भरे हुए लद रहे थे। एक ऊंट के दोनों सन्दूकों में सूफी जी और सरदार अजीतसिंह को बन्द किया गया और वहां से बचाकर निकाला गया।

इसी प्रकार एक दिन किसी धनाढ्य व्यक्ति के घर ठहरे हुए थे, पुलिस को पता लग गया और उसने घेरा डाल दिया। उसी समय इन दोनों को बुरका पहनाकर स्त्रियों में बैठा दिया गया। पुलिस ने छानबीन की। अन्त में स्त्रियों की भी तलाशी आरम्भ की, एक-दो स्त्रियों के बुरके उठाये भी गये, किन्तु मुसलमान लड़ने-मरने को तैयार हो गये। अन्य किसी महिला का बुरका नहीं उतारने दिया गया। इस प्रकार ये दोनों वहाँ से बच गये। जब-जब भी इन पर विपत्तियां आईं, सर्वदा इसी भाँति चतुरता और कार्य-पटुता के कारण बचते रहे।

इसके पश्चात् सूफी जी ने ईरान से ही "आबेहयात" नाम का पत्र निकाला। सरदार अजीतसिंह जी टर्की चले गये और सम्पूर्ण कार्यभार इन्हीं पर आ गया। इसलिए ये वहाँ पर "आका सूफी" के नाम से प्रसिद्ध हो गये।

समाधि

सन् १९१५ में अंग्रेजों ने ईरान में अपना प्रभुत्व स्थापित करना चाहा। तब पुनः उथल-पुथल आरम्भ हो गई। उस समय सोराज पर घेरा डाला गया, सूफी जी ने वहाँ बायें हाथ से रिवाल्वर चलाकर अंग्रेज सरकार का सामना किया। अन्त में उनके वशवर्ती हो गये।

सूफी जी के सम्बन्ध में कोर्टमार्शल (सैनिक न्यायालय) में विचार किया गया तथा निश्चय हुआ कि सूफी जी को कल गोली से उड़ा दिया जाये। इस निर्णय को सुनकर सूफी जी ने उसी रात्रि को अपनी कारावास कुटीर में ही समाधि लगाकर पाञ्चभौतिक शरीर को त्याग दिया। ऐसे वीरों के लिए मरना भी नव-जीवन है। नवीन उमंग और नये उत्साह के साथ पुनः संसार मञ्च पर आते हैं और अपने कर्तव्य का नाटक खेलकर पुराना चोला बदलने के लिए चले जाते हैं।

सूफी जी की मृत्यु के वृत्तान्त को सुनकर सर्वत्र सन्नाटा छा गया। असंख्य नर-नारी उनके शव के साथ गये थे। उनकी कब्र बनाई गई और वहाँ पर प्रतिवर्ष मेला लगाया जाता है। इस देशभक्त का नाम सुनकर ईरानी लोग अब भी श्रद्धा से सिर झुका लेते हैं।

श्री गणेशशंकर विद्यार्थी

(ब्र० वेदपाल)

भारत के स्वतन्त्रता के इतिहास में जिला कानपुर का "प्रताप" पत्र और उसके सम्पादक श्री गणेशशंकर विद्यार्थी का स्थान बहुत ऊंचा है। उत्तरप्रदेश, बिहार, मध्य भारत और समस्त राजस्थान के वे आधार स्तम्भ हैं। श्री गणेशशंकर विद्यार्थी दृढ़ देशभक्त और आजादी का उज्ज्वल रत्न था। साधारण से घराने में जन्म लेकर एक उच्च पद को प्राप्त करना कोई सरल बात नहीं है। प्रताप पत्र उनकी ही तपस्या का फल है। प्रताप ने १५ करोड़ जनसंख्या वाले क्षेत्र में नवजीवन का संचार किया था।

उस क्षेत्र निवासी लोगों के दुःखों का प्रकाशन और सहायता कार्य जो "प्रताप" ने किया वह भुलाया नहीं जा सकता। श्री गणेशशंकर विद्यार्थी अहिंसक क्रांति के पुजारी थे, किन्तु अंग्रेजों के विरुद्ध किसी तरह भी लड़ने वालों के साथ सब प्रकार से उनकी सहानुभूति थी। आप उनके कार्य को प्रकाशित करने के लिए सदा तैयार रहते थे। काकोरी षड्यन्त्र से लेकर लाहौर षड्यन्त्र तक के क्रांतिकारियों को जो भी महत्त्व वे अपनी लेखनी से दे सके खूब दिया। हिन्दी को राष्ट्रभाषा बनाने के लिए जो यत्न आप ने किया आज तक किसी बिरले सम्पादक ने ही किया होगा।

जहां आप देशभक्त थे वहाँ कुशल साहित्यकार भी थे। आप अभिमान, दम्भादि से सर्वथा दूर थे। आप सभी को निर्धन हो या धनी सहायता करते थे। श्री भगतसिंह तथा श्री आजाद जैसे वीर क्रांतिकारियों की भी इन्होंने पूरी-पूरी सहायता की थी।

२५ मार्च १९३१ में दो जातियों में भयङ्कर लड़ाई हुई। कानपुर की गलियां रक्त से लाल हो गई। सड़कों और गलियों में लाशों पर लाशें बिछ गई। गणेशशंकर विद्यार्थी ने दोनों जातियों को बड़ी कुशलता से समझाया, तब कुछ शान्ति का वातावरण उत्पन्न हुआ।

उत्तरप्रदेश की नौकरशाही सरकार ने आपको खूब सताया और जेलों में डालकर अत्यधिक कष्ट दिये थे। आपको कठिनतम यन्त्रणायें देकर इतना तंग किया कि आपके यौवनकाल का सौन्दर्य नष्ट हो गया और जब जेल से निकले तब अस्थि-पिंजरमात्र शरीर को लेकर निकले।

सन् १९२० में आपको दो वर्ष के कारावास का दण्ड मिला। तत्पश्चात् आपको फिर गिरफ्तार कर लिया गया और १९२५ तक आपको जेल में रखा गया।

एक दिन की बात है कि वे सायंकाल तक आफिस और घर नहीं आये। अन्वेषण करने पर पता चला कि किसी नर पिशाच ने आपका संहार कर दिया। इस दुःखद समाचार को सुनकर समस्त देश में सन्नाटा छा गया।

———

आजादी का परवाना—

चन्द्रशेखर आजाद

(ब्र० वेदपाल)

अलीपुर राज्य (मध्यभारत) की झाबुआ तहसील में एक छोटा सा ग्राम है जिसका नाम भावरा है। इस ग्राम में पं० सीताराम जी तिवारी के घर में एक होनहार बालक ने २३ जुलाई १९०६ को माता जगरानीदेवी के गर्भ से जन्म लिया, जिसका नाम चन्द्रशेखर था। वस्तुतः चन्द्रशेखर के पिता जी यू० पी० के उन्नाव जिले के ग्राम बदरका के रहने वाले थे। तिवारी जी की आर्थिक अवस्था अच्छी न थी। वे भावरा में सरकारी बाग की रखवाली करके ८) या १०) रु० मासिक वेतन लिया करते थे। अन्नादि वस्तुओं के सस्ता होने के कारण जैसे-तैसे निर्वाह हो जाता था।

चन्द्रशेखर का बाल्यकाल खाने और खेलने में ही बीत रहा था। चन्द्रशेखर को गुड़ बहुत प्रिय था। गांव में शिक्षा का कोई प्रबन्ध न था। यह ऐसी दशा में देशी बारूद लेकर तथा उसे एक खिलौने में भरकर तोप चलाने का खेल खूब खेलता था। किन्तु खेलने के लिए इच्छानुसार पैसा नहीं मिलता था।

एक दिन आजाद ने बाग में से आमादि कुछ फल तोड़कर जिसको रखवाली इसके पिता जी किया करते थे, बाजार में बेच डाले। इन पैसों से यह गुड़ तथा बारूद खरीदना चाहता था किन्तु किसी कारणवश ऐसा न कर सका।

एक दिन की बात है कि चन्द्रशेखर अपने माता पिता को छोड़कर उस कुटिया से चल पड़ा जिस में वे रहते थे। कुटिया में कोलाहल मचा, बाहर पिता जी चुपचाप बैठे हैं और अन्दर उनकी माता जी दीवारों पर शिर पटक रही हैं। पूछने पर पता चला कि आजाद घर से गायब है। कुछ दिन पीछे आजाद का पत्र आया। जिसमें उन्होंने लिखा था कि मैं कुशल हूं, आप चिन्ता न करें, मैंने संस्कृत पढ़ना आरम्भ कर दिया है। इस वृत्तान्त से माता के हृदय में कुछ शान्ति हुई क्योंकि इनके पहले भी तीन सन्तानें हो चुकी थीं किन्तु तीनों अपनी क्षणिक लीला की स्मृतियां छोड़कर अन्तर्धान हो गई थीं। इस कारण इनके माता-पिता अत्यधिक दुःखी रहते थे।

असहयोग आन्दोलन

सन् १९२१ में असहयोग आन्दोलन चला, इस आन्दोलन के नेता महात्मा गांधी थे। इस आन्दोलन रूपी आंधी को भला कौन भूल सकता है। इसमें एक यह विशेषता थी कि इस आन्दोलन में ऐसे वर्ग सम्मिलित हुए, जिनके सम्बन्ध में स्वप्न में भी विचार नहीं किया जा सकता कि ये लोग भी क्या कभी राजनीति में भाग ले सकते हैं। उनमें एक आजाद भी था, यह बनारस में संस्कृत पढ़ने वाला एक विद्यार्थी था। इसके शिर पर मोटी चोटी, अद्भुत वेष-भूषा, विचार धार्मिक; पर यह भी इस आन्दोलन में अतुल धैर्य के साथ कूद पड़ा।

काशी में इस वृतान्त से भारी सनसनी फैल गई कि संस्कृत के कुछ अल्पायु के छात्र गिरफ्तार कर लिए गये हैं। इनमें एक छात्र केवल १४ वर्ष का बच्चा ही है। जब इन सबका मुकदमा चला तो खरेघाट नामक मजिस्ट्रेट ने आजाद से पूछा—

तुम्हारा क्या नाम है ?

बालक—आजाद ।

मजिस्ट्रेट— तुम्हारे पिता का क्या नाम है ?

बालक—स्वतन्त्र ।

मजिस्ट्रेट—तुम्हारा निवास स्थान कहां है ?

बालक—जेलखाना ।

इस पर उस बालक को १५ बेंत की सजा मिली । जिस समय १४ वर्ष के इस बालक के कोमल शरीर पर सड़ासड़-सड़ासड़ बेंत पड़ रहे थे तो उसने किञ्चितमात्र भी कायरता न दिखलाकर प्रत्येक बेंत के साथ 'महात्मा गांधी की जय' 'वन्दे मातरम्' के नारों से जेल को गुञ्जा दिया । इन नारों को सुनकर साहब और जल्लाद का दिल कांप उठा । यह देखकर उन्होंने सोचा यह बालक फौलाद का बना हुआ तो नहीं है तथा बेंत लगाने और लगवाने वाले दोनों दंग रह गये । आजाद व्यायाम प्रिय था ।

जिस समय बालक जेल से निकला उस समय इसके मुख-मण्डल पर शौर्य चमक रहा था । बात की बात में यह समाचार सारे शहर में बिजली की तरह फैल गया । नगर कमेटी ने इस बालक के अभिनन्दनार्थ एक सभा का आयोजन किया । सारी काशी इस १४ वर्ष के बालक के अभिनन्दन के लिए उमड़ आई क्योंकि इस छोटे से बालक ने ब्रिटिश राज्य की अवज्ञा और उपहास किया था ।

चन्द्रशेखर को एक मञ्च पर खड़ा किया गया, क्योंकि बालक ही था तथा फूलमालाओं से लाद दिया । चन्द्रशेखर के इस अपूर्व साहस से बड़े-बड़े नेताओं का ध्यान भी इस ओर आकृष्ट हो गया था । इस प्रकार आजाद ने इस पहली टक्कर में ही ब्रिटिश साम्राज्य को करारी चोट पहुंचाई । कहा जाता है कि अन्तिम काल तक आजाद के शरीर पर उन बेंतों के घाव ज्यों के त्यों बने रहे । बेंत लगनेवाले दिन से आजाद ने एक दृढ़ प्रतिज्ञा की थी कि—मैं इस ब्रिटिश नौकरशाही को अपने देश से निकाल कर ही दम लूंगा । हुआ भी यही ।

इस घटना के अनन्तर आन्दोलन भी बन्द हो गया । आन्दोलन बन्द होने पर आजाद को कोई मार्ग दिखाई नहीं दिया ।

इसके पश्चात् आजाद फिर काशी विद्यापीठ में भरती हो गया । कुछ समय तक वह विद्यापीठ में किसी प्रकार अपने दिन काटता रहा किन्तु अन्त में वह वहीं से किसी अज्ञात स्थान पर चला गया । आजाद अब किसी ऐसे कार्य में रत रहना चाहते थे जिसमें अपना सारा भावी जीवन व्यतीत कर सकें ।

आजाद तो युद्ध में गोलियों बौछारों के बीच स्वदेश की स्वतन्त्रता के हेतु लड़ने के लिए और निज साहस और धैर्य प्रदर्शित करने के लिए संसार में आया था, उसे स्कूल और विद्यालयों की पढ़ाई कहां अच्छी लगती । इसलिए पढ़ाई से उसका मन ऊब गया ।

असहयोग आन्दोलन के अकस्मात् बन्द हो जाने से देश में यह प्रतिक्रिया हुई कि देश की पराधीनता की बेड़ियों को काटने के लिए युवकों ने पुनः क्रांतिकारी समितियों का संगठन करना आरम्भ कर दिया । इसी के अनुसार बंगाल की सुप्रसिद्ध क्रांतिकारी समिति अनुशीलन पार्टी ने अपने कुछ

संगठनकर्त्ताओं की पार्टी संयुक्तप्रान्त में संगठन करने के लिए भेजी। इसी समय श्री रासबिहारी वसु के पुराने और सुप्रसिद्ध क्रान्तिकारी साथी श्री शचीन्द्रनाथ सान्याल ने भी संयुक्त प्रान्त में संगठन कार्य आरम्भ किया। श्री शचीन्द्रनाथ सान्याल असहयोग आन्दोलन से कुछ ही दिन पूर्व अण्डमान से छूटे थे। बंगाल से कुछ क्रान्तिकारियों ने काशी में भी अड्डा जमाया। इनको भोजन का अत्यन्त कष्ट रहता था। यहां पर इन्होंने एक मकान किराये पर ले लिया और अपना काम आरम्भ कर दिया। इन्होंने अपने मकान के आगे 'कल्याण आश्रम' का बोर्ड लगाया। कुछ ही दिनों में ये अपने कार्य में सफल होगये। इसके पश्चात् ये वापिस बंगाल चले गये और इनके स्थान पर श्री योगेशचन्द्र चटर्जी आगये। ये इनसे अधिक प्रभावशाली थे। अब संगठन कार्य सुदृढ़ तथा विस्तृत होने लगा।

बनारस में इस समय दो पार्टी चलती थीं। इनका एक ही लक्ष्य होने के कारण दो दलों का होना कुछ लोगों को पसन्द नहीं था। स्वयं श्री शचीन्द्रनाथ भी इसमें कोई लाभ नहीं देख रहे थे अतः इन्होंने अनुशीलन समिति से बातचीत करके दूसरे दल को अपने ही दल में मिला लिया। इस दल का नाम "हिन्दुस्तान रिपब्लिकन ऐसोसिएशन" रखा और इसका विधान भी प्रकाशित कर दिया। श्री राजेन्द्रनाथ लाहिड़ी, जिनको बाद में 'काकोरी षड्यन्त्र' में फांसी हुई, बनारस जिले के संगठनकर्ता नियुक्त किये गये। पुनः पुराने क्रांतिकारियों से भी सम्पर्क स्थापित हो गया। इसी समय श्री 'रामप्रसाद बिस्मिल' जो कि राजनीतिक क्षेत्र से विरक्त हो गये थे, इन्होंने फिर से क्रांतिकारी आन्दोलन का नेतृत्व आरम्भ कर दिया।

इसी समय इस दल के सदस्य श्री प्रणवेश चटर्जी का ध्यान श्री चन्द्रशेखर आजाद पर गया जो विद्यापीठ से विदा होकर संस्कृत का अध्ययन कर रहे थे। श्री मन्मथनाथ तथा श्री प्रणवेश ने आजाद को पार्टी का परिचय दिया। आजाद उसी समय पार्टी के सदस्य हो गये। इसके बाद चन्द्रशेखर शनैः शनैः आगे बढ़ते गये और पार्टी में सबसे योग्य निकले। श्री आजाद ने ब्रह्मचारी गोविन्दप्रकाश तथा जोगेन्द्र शुक्ल एवं अन्यों को भी पार्टी में शामिल किया। आजाद का एक लुहार भी मित्र था जो कि इनकी बन्दूक आदि को ठीक करता था। उसने एक तमञ्चा भी बनाया था किन्तु यह तमञ्चा अधिक काम का नहीं था।

क्रांतिकारियों के पास कुछ धन एकत्र हो जाने पर इन्होंने एक पर्चा निकाला जिसका नाम 'क्रांतिकारी' रखा गया। इसमें जो लोग इन्हें देश में अशान्ति फैलाने वाले एवं अराजकतावादी कहते थे उनको उत्तर दिया था। उसमें लिखा था कि जो लोग हमारे मार्ग में अंग्रेज या कोई हिन्दुस्तानी रोड़ा अटकायेगा उसे समाप्त कर दिया जायेगा, इत्यादि। चन्द्रशेखर का इन पर्चों के बांटने में बहुत प्रमुख हाथ था।

आजाद को धन के लिए एक महन्त के चक्कर में भी पड़ना पड़ा। किन्तु वहां से ये जल्दी ही आ गये। क्योंकि वहां पर गुरुमुखी रटनी पड़ती थी किन्तु आजाद इससे बिल्कुल विमुख थे।

काकोरी ट्रेन डकैती

९ अगस्त सन् १९२५ को काकोरी के समीप एक चलती हुई गाड़ी को रोककर लूट लिया गया। यह इन्होंने निश्चित कर लिया था कि रेलगाड़ी काकोरी के समीप लूटनी है। इनका दल रेलगाड़ी में बैठ गया। जब गाड़ी काकोरी के पास आई उसी समय गाड़ी की जंजीर खींचकर गाड़ी को रोक लिया गया। सब नीचे उतर आये दश मिनट में लूटकर चम्पत हो गये। इस कार्य में आजाद का

अमर सेनानी—

श्री चन्द्रशेखर आजाद

श्री राजा महेन्द्र प्रताप
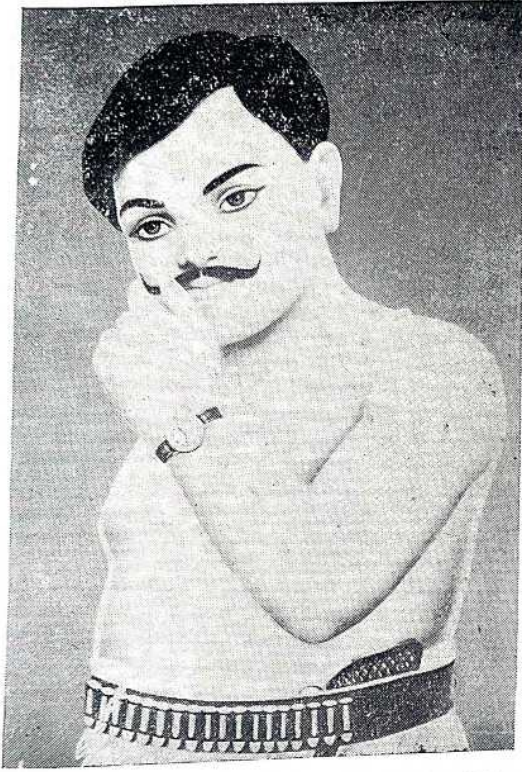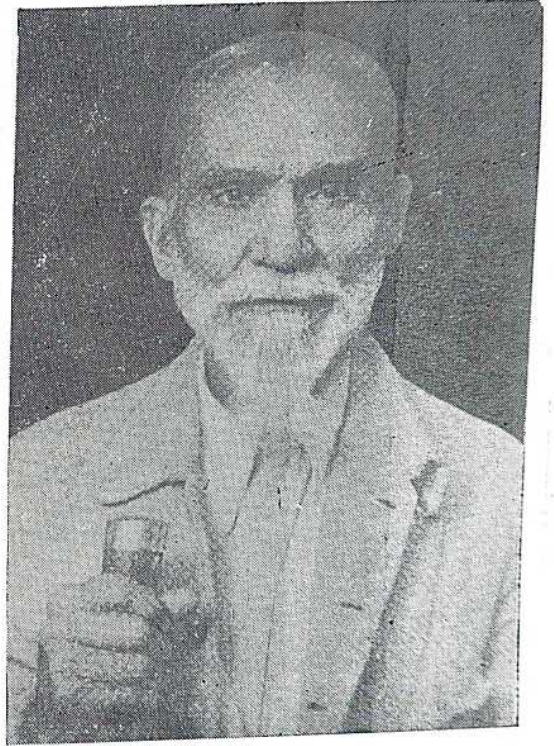
श्री गणेशशङ्कर विद्यार्थी

श्री विजयकुमार
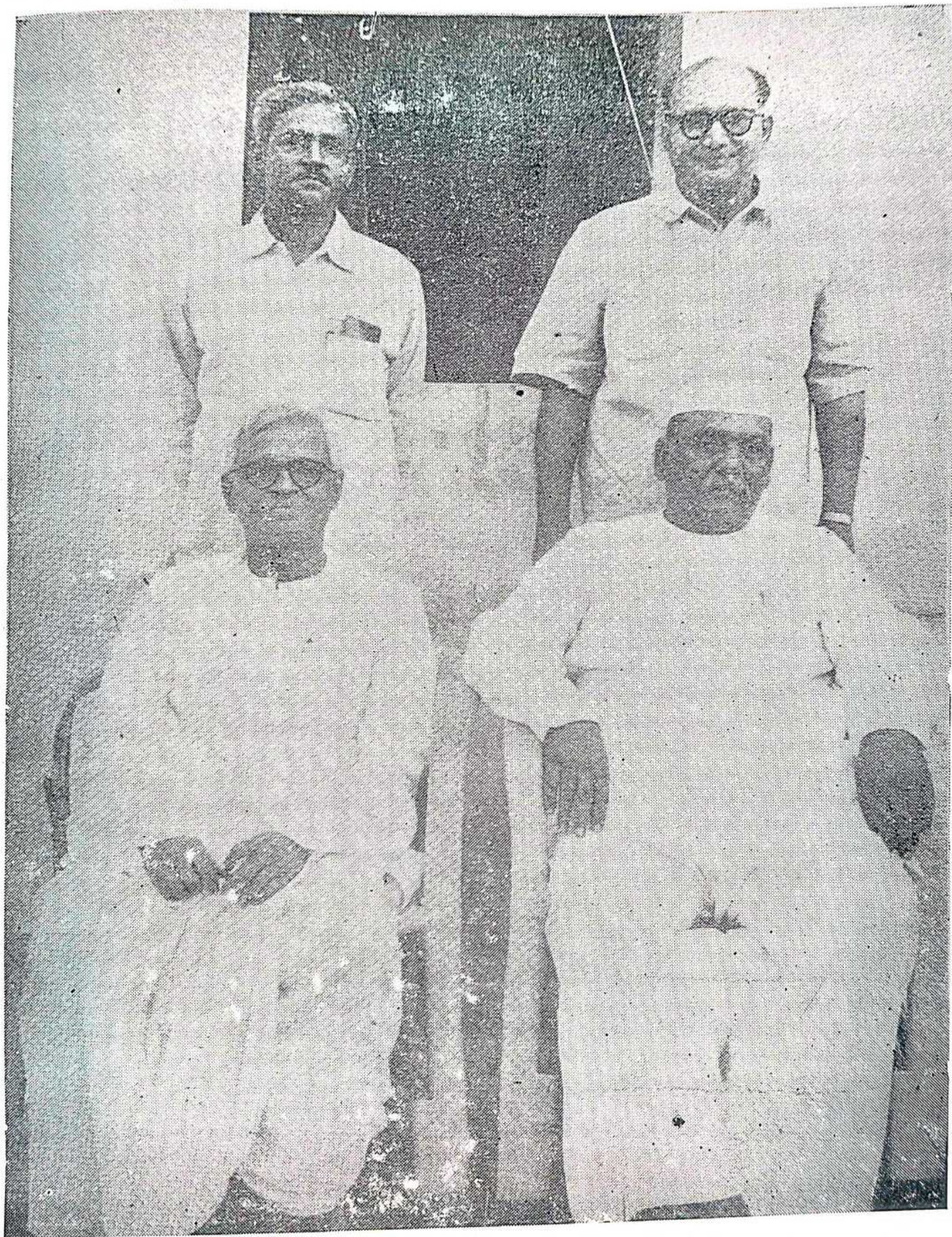
खड़े हुए—१ श्री भूपेन्द्रनाथ सान्याल, २ श्री मन्मथनाथ गुप्त
बैठे हुए—२ श्री योगेश चटर्जी, श्री विष्णुशरण दुबलिस

काकोरी केस के चार अमर शहीद—

१ श्री रोशनसिंह, २ श्री अशफ़ाक उल्ला, ३ श्री रामप्रसाद बिसमिल, ४ राजेन्द्र लाहिड़ी

प्रमुख हाथ था। इस ट्रेन में इनके १०-११ साथी और थे। इसके पश्चात् वहां पर कुछ दिन गिरफ्तारियां भी हुईं। इसी समय श्री आजाद फरार हो गये। इस समय इन्हें बहुत कष्ट उठाने पड़े। किन्तु जो प्राणों को हथेली पर लिए घूमता हो उसे कष्टों से क्या भय। कुछ दिनों के बाद जो क्रांतिकारी पकड़े गये थे उन्हें लखनऊ जेल में ले जाया गया। आजाद इसी अवसर की प्रतीक्षा में थे कि लारियों को रोककर पुलिस से युद्ध किया जाये और अभियुक्तों को छुड़ा लिया जावे। किन्तु शस्त्रादि साधनों की कमी होने के कारण यह काम नहीं हो सका।

इस निराशा से आजाद बहुत ही उत्तेजित हुए और काकोरी षड्यन्त्र में सबूत जुटाने वाले पुलिस अफसर खान बहादुर तसद्दक हुसैन को मारकर स्वयं फांसी पर चढ़ने का विचार किया, किन्तु साथियों ने ऐसा करने से रोक दिया। इसके बाद ये बम्बई और यू० पी० में घूमकर झांसी में काम करने लगे। यहां पर इन्होंने निशाना लगाना तथा मोटर चलाना भी सीखा।

जिन दिनों काकोरी षड्यन्त्र का मुकदमा चल रहा था उन दिनों कई क्रांतिकारियों ने जेल से भागने का भी निश्चय किया किन्तु असफल रहे। १८ मास तक मुकदमा चलता रहा। इसके बाद फैसला सुनाया गया। इस निर्णय में चन्द्रशेखर के चार साथियों को फांसी की सजा मिली उनके नाम हैं—

१—पं० रामप्रसाद बिस्मिल।
२—श्री राजेन्द्रनाथ लाहिड़ी।
३—श्री रोशनसिंह।
४—श्री अशफाकउल्ला खां।

श्री आजाद को इन प्यारे साथियों की मृत्यु का कितना दुःख हुआ होगा, यह तो वही जानते थे। वे फरार होते हुए भी हर समय घूमते रहते थे। इस समय इनका दल खूब सङ्गठित था। इनके अतिरिक्त उस दल में श्री भगतसिंह तथा भगवतीचरण वर्मा जैसे सुयोग्य क्रांतिकारी भी विद्यमान थे।

एक बार एक आदमी के कहने पर इन्होंने एक जगह डाका डाला। इस डाके के पीछे डाका डलवाने वाले का भी स्वार्थ था। डाके के समय वह आदमी भी उपस्थित था। उसने एक स्त्री से व्यभिचार करने के लिए कुचेष्टाएं कीं, यह देखकर आजाद ने उसको गोली मारकर समाप्त कर दिया और उस स्त्री से क्षमा मांगकर बिना डाका डाले ही आ गये। इस घटना से उनके चरित्र का अनुमान लगाया जा सकता है कि वे कितने सदाचारी थे तथा स्त्रियों का मान करते थे।

आगरे की घटना है। असेम्बली में बम फेंकने का निश्चय हुआ। सब अपने कार्य में व्यग्र थे। उन्हीं दिनों बटुकेश्वरदत्त बंगाल से आये थे। उनके स्वागत के लिए एक साथी ने डबल रोटी ख़रीद ली, इस पर उसको खूब डांटा। इस प्रकार आजाद जो कोई अधिक खर्च करता था उस पर बहुत क्रुद्ध होते थे।

सन् १९२८ ई० में अंग्रेज सरकार ने कुछ अंग्रेजों को भारत भेजा। इस दल का नेता साइमन था अत एव इस दल का नाम 'साइमन कमीशन' था। यह दल यह देखने आया था कि भारत में कौन-से सुधार लागू किए जा सकते हैं। कुछ क्रांतिकारियों ने इस दल का विरोध करने का निश्चय किया। किन्तु किसी कारणवश इस कार्य में सफलता नहीं मिली। लखनऊ में भी इसका विरोध

@VaidicPustakalay

हुआ । जब यह दल लाहौर पहुंचा तब लाला लाजपतराय ने इसका डटकर विरोध किया । लाला जी को पुलिस ने खूब पीटा तथा इनकी कुछ दिन बाद इसी कारण मृत्यु भी हो गई ।

इस खून का बदला लेने के लिए क्रान्तिकारी दल ने निश्चय किया कि पुलिस सुपरिण्टेण्डेण्ट साण्डर्स की हत्या की जाये । इस प्रकार उसको मौत के घाट उतार दिया गया । इस घटना के कुछ दिन बाद ३ क्रान्तिकारी पकड़े गए । उनमें भगतसिंह और राजगुरु को फांसी का दण्ड मिला ।

लाहौर षड्यन्त्र में आजाद को सबसे ज्यादा दोषी ठहराया गया । यदि ये वहां पकड़े जाते तो उसी समय फांसी पर लटका दिए जाते । काकोरी षड्यन्त्र में आजाद का नाम अवश्य था किन्तु मुखिया न होने के कारण इतना दोषी नहीं समझा गया ।

७ अप्रैल सन् १९२९ को एक बिल का विरोध करने के लिए सरदार भगतसिंह ने असेम्बली भवन में बम फैंका और श्री दत्त ने इनका पूरा साथ दिया । इस केस में स० भगतसिंह को काला पानी की सजा मिली ।

आजाद के जीवन के अन्तिम दिन बहुत ही सङ्घर्षमय थे । आजाद ने अनेकों ऐसे कार्य किये हैं जिनको याद कर निर्वीर्य मनुष्य में भी एक बार अवश्य ही वीरता की लहर दौड़ने लगे । साहस के वे पुतले थे । उनकी वीरता पर आज भारत को गर्व है ।

आजाद ने सन् १९२४ में क्रान्तिकारी जीवन अपनाया था । इस क्रांतिकारी जीवन में उन्हें भयङ्कर कष्ट उठाने पड़े । इस प्रकार आजाद के प्रायः सभी साथी स्वर्ग सिधार चुके थे । आजाद ही एक प्रमुख क्रान्तिकारी शेष था ।

इलाहाबाद की घटना है कि आजाद इलाहबाद में एक सज्जन से कुछ रुपये लेने गये थे । कहा जाता है इस व्यक्ति ने एक तरफ तो आजाद को रुपयों के लिए बुला लिया और दूसरी तरफ पुलिस को सूचना दे दी कि आजाद यहां आ रहा है । यह रुपया क्रांतिकारी दल का ही था ।

२७ फरवरी १९३१ को प्रात:काल दस बजे के लगभग आजाद तथा उनके अङ्गरक्षक एलफ्रेड पार्क में बैठे हुए थे । इसी समय एक कार इनके पास आकर रुकी । इस कार से उतरते ही पुलिस अफसंर ने आजाद पर गोली चलानी आरम्भ कर दी । एक गोली आजाद की जङ्घा पर लगी । किन्तु फिर भी इस वीर ने एक पेड़ की आड़ ले ली और इसने भी गोली चलानी आरम्भ कर दी । दोनों तरफ से धड़ाधड़ गोली चल रही थीं । एक तरफ तो अकेला वीर आजाद और दूसरी तरफ पुलिस इसी समय इनका अङ्गरक्षक वहां से निकल गया । आजाद की गोलियों ने पुलिस अफसर तथा अन्य कई पुलिसियों को घायल कर दिया । लगभग आध घण्टे तक दोनों ओर से गोलियों की वर्षा होती रही । अन्तिम गोली आजाद ने अपनी कनपटी में मार ली और आहत होकर भूमि पर गिर गया । गिरने के बाद भी पुलिस आजाद के पास जाने से डरती थी । यहां तक कि आजाद के भूमि पर गिरने के बाद भी उन पर गोलियां चलाती रही । जब पूर्णत: निश्चय हो गया कि आजाद अब निष्प्राण हैं तब पुलिस को उनके समीप जाने का साहस हुआ ।

इस प्रकार इस संसार से वह जलता दीपक एकदम बुझ गया । इस वीर की एक-एक घटना रोमाञ्चकारी है । इनको पकड़ने के लिए अंग्रेज सरकार ने १०,०००) का इनाम घोषित कर रखा

था। खुफिया पुलिस इनके पीछे सदा लगी रहती थी। काशी का कोना-कोना छान मारा किन्तु आजाद को पुलिस पकड़ न सकी। जब आजाद की लाश उठा ली गई उस समय उनके खून से लथपथ मिट्टी को भी लोगों ने नहीं छोड़ा जिसे जितनी मिली ले गया। उनका शव जनता को नहीं दिया। इसलिए उनकी अस्थियों का बड़ा भारी जुलूस निकाला। पुरुषोत्तमदास पार्क में एक बिराट् सभा हुई जिसमें बड़े-बड़े नेताओं के व्याख्यान हुए। इस प्रकार इस वीर का जीवन भारत को परतन्त्रता के पाशों से मुक्त करने में हो काम आया।

अमर शहीद सेनानी आजाद

(रामस्वरूप शर्मा)

कुछ नाटा, हृष्ट-पुष्ट, गोल और उभरा हुआ चेहरा, उज्ज्वल एवं शुभ्र ललाट, पूर्ण बलिष्ठ, रंग सांवला, मुंह पर चेचक का दाग, फिर भी अनोखा ओज, आँखें बड़ी और साफ, मूंछें ऐंठी हुई, मानो फांदता हुआ शेर ताव दे रहा हो। ऐसा वीरपुंगव स्वर्गीय श्री चन्द्रशेखर आजाद, जिसके नेतृत्व में दल ही क्यों देश के युवक आगे बढ़ रहे थे, प्राणों की बाजी लगा रहे थे। वह हिन्दुस्तान समाजवादी, प्रजातन्त्र सेना का सफल सेनानायक आज हमारे बीच में नहीं है किन्तु उसकी स्मृति, कृतियां एवं आहुतियाँ जन मन में सदा गून्जती रहेंगी। वे भारत के स्वातन्त्र्य संग्राम की तेजोमय विभूतियों में से थे। देश को दासत्व एवं बहुमुखी शोषणों से मुक्त करने के लिए इन हुतात्माओं के नेतृत्व में जो-जो प्रयास हुए थे वे किसी भी देश के इतिहास के लिए गौरव की वस्तु हो सकती है। हिन्दुस्तान समाजवादी प्रजातन्त्र सेना की बम फैक्टरी पर पुलिस के धावे, जयगोपाल को गिरफ्तारी, एवं उसके मुखबिर बन जाने के बाद क्रान्तिकारियों की जबरदस्त धरपकड़ हुई। सारे भारत में ब्रिटिश सरकार द्वारा आतंक फैलाया जा रहा था। जब सारा दल छिन्न-भिन्न हो रहा था उस समय वही था जो अजेय चट्टान को तरह दल के कार्यों में संलग्न हो बढ़ता जा रहा था। यद्यपि उन क्रांतिकारियों का मार्ग सफल नहीं हुआ, १९१५ का विद्रोह पहले ही दबा दिया जा चुका था। यदि सफलता मिल गई होती तो भारत का रूप आज कुछ दूसरा ही होता तथापि असफलताओं के बावजूद देश-प्रेम से प्रेरित हो जिस आत्मत्याग एवं शौर्य का परिचय उन बहादुरों ने दिया था वह जन मन में श्रद्धा एवं समादर का स्थान सदा बनाये रहेगा।

साधारण पढ़ा-लिखा किन्तु पूर्ण अनुभवी और ज्ञानी फिर भी अहङ्कार से परे नर नाहर आजाद अपनी धुन में मस्त थे। वे सदा व्यक्ति से दल को अधिक प्रमुखता देते थे। वस्तुतः उस सेनानी ने दिखा दिया था कि अक्षर ज्ञान ही वास्तविक ज्ञान नहीं है बल्कि विद्या कुछ और वस्तु है। सेनापति केवल योग्यता से ही नहीं बल्कि विश्वास से भी होता है। बिना विश्वास के सफलता नहीं मिल सकती। भाड़े की सेना के लिए भड़े के टट्टू सेनानी सम्भव हैं किन्तु स्वेच्छया समाज एवं राष्ट्र के लिए बलिदानियों की सेना का सेनानी चुना जाना ही दल के प्रति एकान्तनिष्ठा एवं कर्मण्यता का परिचायक है। निर्भीक व दुस्साहसी, जैसा कई व्यक्तियों ने उनके बारे में लिखा है, ही नहीं थे बल्कि सूझ-बूझ एवं रणकौशल में भी पूर्ण पारंगत थे। सरदार भगतसिंह को जेल से निकालने के प्रयास में जेल फाटक पर पहुंचना और स्थिति को भांपकर चुपचाप लौट जाने का संकेत इसका प्रत्यक्ष

प्रमाण है। वे पूर्ण प्रगतिशील थे और यदि आज जीवित होते तो रूढ़िवाद और प्रतिक्रियावाद के समर्थन की आशा उनसे कभी नहीं की जा सकती थी। वह फौलाद था झुकना जानता ही नहीं था। शेर की तरह रहा और शेर की तरह गया भी। उन्होंने पहले ही कहा था कि जब कभी घिर जाऊँगा, लड़ूँगा ही, किन्तु अन्तिम गोली बचा लूंगा। हुआ भी वही। इलाहाबाद के अल्फरेड पार्क में वह शहीद हुआ। वह पार्क अभी भी अल्फरेड पार्क है, जनता भले ही आजाद पार्क घोषित करे किन्तु नाम अल्फरेड पार्क बना ही हुआ है। समाधि एवं स्मारक बनाना तो दूर स्वतन्त्र भारत सरकार ने पार्क का नाम अभी तक आजाद पार्क नहीं रखा है, पालिका ने भी कुछ नहीं किया। वस्तुतः यह हमारे लिए लज्जा की बात है।

आजाद का जन्म अलीपुर राज्य के भावरा नामक एक छोटे से गांव में सन् १९०६ ई० में हुआ था। आपके पिता का नाम श्री सीताराम तिवारी था। बचपन में आजाद बहुत ही उग्र थे। निराला स्वभाव था। सर कटे तो कट जाये किन्तु झुकने की उनकी प्रवृत्ति नहीं थी। १९२१ ई० के असहयोग में वे कूद पड़े और बारह बेंत की सजा भी बनारस जेल में भुगतनी पड़ी थी। लेकिन इससे उन्हें असन्तोष हुआ और वे आतंकवादियों के गिरोह में शामिल हो गये। काकोरी षड्यन्त्र सरकार को आजाद की चुनौती थी और उसी समय से वे फरार जीवन व्यतीत कर रहे थे। उन्हें देश की प्रतिष्ठा का पूरा ध्यान था। स्वर्गीय पंजाबकेसरी लाला लाजपतराय की मृत्यु के कारण साउण्डर्स को स्वर्गीय वीर भगतसिंह के साथ गोली से मौत के घाट उतार चम्पत होने में उन्होंने कमाल कर दिखाया। वे एक कर्मठ सैनिक थे। वीरता, निर्भीकता और निशाने में सर्वोत्कृष्ट थे। किन्तु २८ फरवरी १९३१ को इलाहाबाद के अल्फरेड पार्क में वह सच्चा देशसेवक स्वाधीनता की बलिवेदी पर सदा के लिए सो गया। उनका बलिदान हमेशा हमें त्याग और बलिदान की प्रेरणा देता रहेगा, यह निश्चित है।

काकोरी के अमर शहीद, क्रान्तिकारी नेता—

पं० रामप्रसाद बिस्मिल

(ब्र० यशपाल)

ग्वालियर राज्य में तोमर घाट में चम्बल नदी के किनारे शाहजहांपुरा ग्राम विद्यमान है। उस ग्राम में मुरलीधर नाम का एक व्यक्ति रहता था, मुरलीधर के घर में ज्येष्ठ शुक्ला ११ सम्वत् १९५४ में एक बालक ने जन्म लिया, उस बालक का नाम "रामप्रसाद" रखा गया। आपके घर की अवस्था अच्छी नहीं थी। पिता जी बड़े डील डौल के थे, जब आठ वर्ष के हुए तब आपको पिता जी ने हिन्दी के सामान्य अक्षरों का ज्ञान कराया, उर्दू पढ़ाने के लिए एक मौलवी साहब के पास भेजते थे। बालकपन से गाय पालने का बहुत शौक था। बाल्यकाल में बहुत उद्दण्ड थे, परन्तु उद्दण्डता नहीं छोड़ते थे, थोड़े दिन के बाद पैसों की चोरी भी करने लग गये तथा उपन्यास ग्रन्थ उन पैसों से खरीद खरीद कर पढ़ा करते थे, भांग भी पीने लग गये। एक दिन की बात है भांग पीकर सन्दूक से पैसे निकाल रहे थे, बेहोशी के कारण ट्रंक की आवाज हो गई। आपकी माता जी ने उस आवाज को सुन लिया, उस दिन आप चोरी करते हुए पकड़े गये और बहुत से रुपये प्राप्त हुए तथा उपन्यासों की पुस्तकें। उस दिन आपको बहुत दण्ड दिया गया।

एक दिन आपके गाँव में आर्यसमाज के प्रसिद्ध स्वामी सोमदेव जी आये। उनके पास आपका आना जाना होने लगा। आपके जीवन ने पलटा खाया, आप आर्यसमाजी बन गये और ब्रह्मचर्य का पालन करने लगे। कुछ दिनों में आपने सब दुर्व्यसनों को छोड़ दिया। महात्मा, संन्यासियों के उपदेश रुचि से सुनने लग गये। इससे देश सेवा का भाव मन में उत्पन्न हो गया, और देश सेवा का व्रत ले लिया, तब से शरीर को सुदृढ़ बनाने का प्रयत्न करने लग गये। प्रतिदिन नियमपूर्वक व्यायाम, यज्ञ करते थे, इसके फलस्वरूप आप थोड़े ही दिनों में असाधारण शक्तिशाली हो गये। घोड़ा, साइकिल, तैरने आदि में बड़े निपुण थे और साठ-साठ मील पैदल चले जाते थे, तब भी हिम्मत न हारते थे। व्यायाम और प्राणायाम इतना करते थे कि देखने वाले दंग रह जाते थे और व्याख्यान बहुत जोशीला दिया करते थे। जब आप अंग्रेजी की नवीं कक्षा में पढ़ते थे तब कुछ स्वदेशी पुस्तकों का अवलोकन किया, उससे स्वदेश प्रेम उत्पन्न हुआ। शाहजहाँपुरा में सेवा समिति की नींव पं० श्रीराम बाजपेयी जी ने डाली। उसमें ये बड़े उत्साह से काम करते थे। आपके हृदय में दूसरों के प्रति सेवा का भाव उत्पन्न हुआ, समझने लग गये कि वास्तव में देशवासी बड़े दुखी हैं, उसी वर्ष अ० भा० कांग्रेस का उत्सव था, ये भी उसमें सम्मिलित हुए। उसमें निश्चय हुआ कि देश के लिये विशेष कार्य होना चाहिये। भारतवासियों के दु:ख तथा दुर्दशा की जिम्मेवारी गवर्नमेंट पर है। अत एव सरकार को पलटना चाहिये, आपने भी इन विचारों का अनुमोदन किया। कांग्रेस के उत्सव में महात्मा तिलक के पधारने की खबर थी, इस कारण गर्म-दल के व्यक्ति भी आये हुए थे। कांग्रेस के सभापति का स्वागत बड़ी धूमधाम से हुआ। दूसरे दिन लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक की स्पेशल गाड़ी आने का समाचार मिला, बहुत जनता वहाँ पर विद्यमान थी। स्वागत कारिणी समिति के सदस्यों ने निश्चय किया कि शहर में उनकी सवारी न निकाली जाये, जिसका कारण यह था कि वे जानते थे कि उनका स्वागत कांग्रेस के प्रधान से भी अधिक होगा, तब रामप्रसाद जी से तथा उनके साथियों से यह सहन न हो सका, सबने मिलकर निश्चय किया कि उनकी सवारी शहर में से निकाली जायेगी। जब वे स्टेशन पर आये तब उन्हें मोटर में बिठाकर शहर से बाहर ही ले जाना चाहते थे तो रामप्रसाद जी तथा उनके साथी गाड़ी के आगे लेट गये। बहुत कहने पर भी वे न माने, और भी मनुष्य गाड़ी के आगे लेट गये। एक युवक ने मोटर का टायर काट दिया और लोकमान्य तिलक को घोड़े की गाड़ी में बिठाकर हाथों से गाड़ी को खींचना शुरू किया। इस प्रकार लोकमान्य का स्वागत बड़ी धूम धाम से हुआ।

कांग्रेस के उत्सव के अवसर पर ज्ञात हुआ कि एक गुप्त समिति है जिसका मुख्य उद्देश्य क्रान्तिकारी आन्दोलन में भाग लेना है। इस बात को सुनकर आप उस समिति के सदस्य बन गये। रुपयों की समिति में आवश्यकता थी तो आपने एक पुस्तक प्रकाशित की, उससे धन प्राप्त किया। पुस्तकें सब बिकने भी न पाई थीं कि देशवासियों के लिए एक सन्देश प्रकाशित किया और सर्वत्र पर्चे बाँट दिये गये, क्योंकि पं० गेंदालाल जी अपने दल के सहित ग्वालियर में गिरफ्तार हो गये थे। उनको छुड़ाना था। इसको देखकर सरकार ने पुस्तक जब्त कर ली।

आन्दोलन के लिये हथियार चाहियें, हथियारों के लिये रुपये। अब चिन्ता हुई कि पैसे हथियारों के लिये कहाँ से लाये जायें,। इधर-उधर से पैसे बहुत कठिनता से प्राप्त किये तथा उनसे हथियार खरीदे। हथियार भी अच्छे नहीं मिले और पैसे भी अधिक आपसे ले लिये, क्योंकि हथियारों की आप को जानकारी नहीं थी।

एक दिन की बात है कि आपको एक खुफिया पुलिस ने आकर कहा कि आओ आपको मैं बहुत अच्छे हथियार दिलाऊं। उसके साथ चल पड़े, खुफिया पुलिस इन्स्पेक्टर के घर पकड़वाने के लिए ले गया, आपको शंका हुई कि यह कहाँ ले जाता है। जब इन्स्पेक्टर के घर के सामने पहुँचे उस समय इन्स्पेक्टर घर पर न थे, तब आपको किसी से पूछने पर पता चला कि यह घर तो इन्स्पेक्टर का है तब उससे आंख बचाकर चलते बने। फिर अपना रहने का स्थान बदला, तथा जिससे आप हथियार खरीदते थे उसका भी खुफिया पुलिस ने पता चला लिया। उस समय आप लोगों के पास दो राइफलें, चार रिवाल्वर तथा दो पिस्तौल खरीदे हुए मौजूद थे। उस दिन एक मनुष्य हथियार लेकर जाने वाला था। इस बात का खुफिया पुलिस को पता चल गया, उन्होंने सर्वत्र तार कर दिये तथा सारी रेलगाड़ी की तलाशी ली गई, उस दिन आप गिरफ्तार हो जाते परन्तु पुलिसियों की असावधानी के कारण बच गये।

इधर आप अपने काम में व्यस्त थे। मैनपुरी के सदस्य ने एक आदमी से रुपयों की आवश्यकता की पूर्ति के लिये कहा कि आप किसी के यहाँ डाका डलवाओ, उसके मना करने पर, उसने मारने की धमकी दी। उसने पुलिस को सूचना दे दी, मामला खुल गया, मैनपुरी में गिरफ्तारियां आरम्भ हो गईं। उसमें आपके वारण्ट जारी हो गये। उन्हीं दिनों दिल्ली में कांग्रेस की बैठक होने वाली थी। आपने एक पुस्तक लिखी थी वह यू० पी० सरकार ने जब्त कर ली थी, वहां गये तथा पुस्तकें बेचीं, पुलिस को पता चलने पर पुस्तकें लेकर शाहजहांपुरा में आ गये, वहां पर भी पुलिस ने पकड़ना शुरू कर रखा था। शाहजहांपुरा से चलकर दूसरे शहर में ठहरे। रात्रि के समय में मालिक ने बाहर से ताला डाल दिया। ग्यारह बजे आपका एक साथी आया। साथी को ताला देखकर सन्देह हो गया। वहां सबके सब दीवार के ऊपर से कूद कर चल दिये। अंधेरी रात थी, आप सब थोड़ी दूर गये थे कि अकस्मात् एक आवाज आयी कि ठहरो, नहीं तो गोली मारते हैं। सबके सब खड़े हो गये, दरोगा तथा सिपाही बन्दूक हाथ में लिये आपके पास आ गये। आपसे पूछा कौन हो, और कहां जा रहे हो? आप ने उत्तर दिया विद्यार्थी हैं, स्टेशन पर जा रहे हैं। दरोगा को शक हुआ क्योंकि गाड़ी पाँच बजे आती थी, तब दो बजे थे। आप सब लोगों के चेहरे पर रौनक देखकर शक जाता रहा, अन्यथा सब उस दिन गिरफ्तार हो जाते।

आप प्रयाग में धर्मशाला में निवास करते थे। वहां पर एक दिन संध्या कर रहे थे तो एक व्यक्ति ने आकर आपके ऊपर तीन वार किये, परन्तु आपको वार न लगे, वार करने वाला, पहले आपका दुश्मन था, परन्तु बीच में मित्रता हो गई थी, आपको इस बात को देखकर बहुत प्रसन्नता हुई कि दो गज के फासले से वार किया, परन्तु आपको न लगा। इसका विचार करके, गद्गद् होकर परमात्मा का स्मरण करने लग गये। प्रसन्नता में आपको मूर्च्छा आ गई, यदि उस समय कोई पास होता तो मृत्युलोक को पहुंचा सकता था।

आपको पता चला कि मैनपुरी में होने वाले षड्यन्त्र के सभी गिरफ्तार छोड़ दिये गये हैं और आपके भी वारण्ट वापिस ले लिये गये। तब आप शाहजहांपुरा में आ गये। घोषणा के पश्चात् पुलिस का बड़ा प्रकोप था, कोई मनुष्य आपस में नमस्ते तक न कर सकता था, बात की तो बात ही क्या।

इसके पश्चात् आप खेती का काम करने लग गये। खेती आप बहुत अच्छी प्रकार से किया करते थे। काम को देखकर कोई कह नहीं सकता था कि यह शहर का रहने वाला है।

जिनको आप आदर की दृष्टि से देखते थे उन्होंने आपको आकर कहा कि फिर क्रान्तिकारियों का संगठन करें परन्तु आपने मना कर दिया। साथियों के अधिक कहने पर स्वीकार कर लिया। आप को काम यह सौंपा कि दल की देखभाल करें। कुछ मनुष्य दल में खराब भी आ गये। एक ने अपने पास वेश्या ला रखी थी, उसकी ताड़ना की जिससे कि वह रुष्ट हो गया। तभी एक आदमी पकड़ा गया, उसने कइयों के नाम बता दिये, जिससे दल के तीस चालीस मनुष्य पकड़े गये। इसी बीच में कुछ महानुभावों ने कुछ नियमादि बनाकर दिखाये, उसमें एक यह भी नियम था कि जो व्यक्ति समिति का काम करे उसे मासिक व्यय समिति की ओर से दिया जाय। आपने इस नियम को अनिवार्य रूप से मानना अस्वीकार कर दिया। आप यहाँ तक सहमत थे कि जो व्यक्ति सर्वप्रकारेण समिति का काम करे उसको गुजारा मात्र समिति की ओर से दिया जा सकता है। जो व्यक्ति कोई व्यवसाय करते हैं उनको कुछ भी समिति की ओर से न दिया जाये। जब आपने उनके विपरीत नियम न माने तब आपको मारने का षड्यन्त्र रचा गया। आपको वे मार देते परन्तु एक के हृदय में दया आ गई तथा आपके पास आकर मारने के षड्यन्त्र का ज्ञान कराया। उससे आप सतर्क हो गये। आप को इस बात को सुनकर बड़ा दुःख हुआ कि जिनको मैं पिता के समान मानता हूं वे मेरे साथ कैसा षड्यन्त्र कर रहे हैं। आपको मारने में मुख्य तीन आदमी थे।

फिर आप आकर नौकरी करने लग गये, क्योंकि माता-पिता को धन की बड़ी आवश्यकता थी। थोड़े ही दिनों में आपने पिताजी को धन की कमी न रहने दी। फिर आपको पता चला कि संयुक्त प्रान्त में क्रान्ति आरम्भ हो गई है, आप पहले निश्चय कर चुके थे कि मैं क्रान्ति में भाग न लूँगा, परन्तु दिल की आग ने आपको निश्चल न बैठने दिया। आपने फिर क्रान्तिकारियों का एक संगठन बनाया, बहुत आपत्तियाँ आईं, कभी-कभी तो यहाँ तक कि रोटी भी न प्राप्त हुई। रुपयों की बहुत आवश्यकता थी, रुपया कहीं से मिलता न था तो फिर विचार आया कि डकैती की जाय, किसी एक व्यक्ति को दुःख न दिया जाय, अतः सरकारी खजाने पर डकैती की जाये।

उसी समय से आपके अन्दर यह धुन सवार हो गई। डकैती का समय तथा स्थान निश्चित किया, ६ अगस्त १९२५ ई० को सन्ध्या के आठ बजे की गाड़ी में दस नवयुवक बैठ गये। गाड़ी हरदोई से लखनऊ जा रही थी। एकाएक काकोरी तथा आलमनगर के बीच में ५२ नम्बर खम्बे के पास दूसरे दर्जे से जंजीर खेंची गई, गाड़ी खड़ी हो गई। एकदम दस नवयुवक उतरे और सबको कह दिया कि कोई मुसाफिर गाड़ी से न उतरे, हम सरकारी खजाना लूटेंगे, किसी यात्री को कोई कुछ न कहेगा। दो मनुष्य गाड़ी के दोनों तरफ पहरा देने लग गये, जिससे कोई गाड़ी से न उतरे। साथ-साथ थोड़ी-थोड़ी देर में गोली चलती थी, इधर गार्ड को पिस्तौल दिखाकर कह दिया कि जमीन पर सीधा लेट जा। तिजोरी बाहर निकाली गई, तिजोरी पर घन मारा परन्तु टूटी नहीं। अन्त में अशफाक ने बहुत परिश्रम से उस तिजोरी को तोड़ा, इसी बीच में एक मनुष्य गाड़ी से उतरकर दूसरे डिब्बे में जा रहा था, तो वह गोली का शिकार हो गया। लगभग आध घण्टे के बाद में ये दस मनुष्य धन लेकर चले गये। उस डकैती में बहुत धन प्राप्त हुआ, सारा कर्जा चुका दिया तथा हथियार भी मोल ले लिये, काम अब अति तीव्र वेग से चलने लगा। २५ दिसम्बर को गिरफ्तारियाँ प्रारम्भ हो गईं, २५ दिसम्बर की रात्रि को आप एक मित्र के यहां जा रहे थे, रास्ते में खुफिया पुलिस का सिपाही मिला। आपने उसकी कोई चिन्ता न की, रात्रि को निश्चिन्त होकर सो गये। प्रातःकाल चार बजे शौचादि क्रिया के लिये

जा रहे थे, दरवाजे पर बन्दूक के शब्द सुनाई दिये। तभी आप समझ गये कि पुलिस आ गई, दरवाजा खोल दिया, पुलिस अफसर ने आकर आपको गिरफ्तार कर लिया। तलाशी ली गई, दुर्भाग्यवश एक पत्र भी प्राप्त हो गया, जेल में भेज दिये गये, वहां पर भी खुफिया पुलिस का प्रबन्ध कर दिया गया, आपको चिन्ता इस बात की थी कि कभी क्रान्ति कम न हो जाये, जब कोई मिलने आता था तब आप पूछते थे कि काम ठीक चल रहा है या नहीं? जेल के अन्दर आपके पास खुफिया पुलिस आती थी, और आपसे इधर-उधर की बातें पूछती थी, परन्तु आपने किसी का कोई परिचय नहीं दिया, एक दिन आपसे जिला कलेक्टर मिले, कहने लगे फाँसी होगी, बचना है तो बयान दे दो। आप उस समय चुप रहे। तत्पश्चात् बात करते-करते कहा 'यदि बंगाल का कुछ परिचय देकर बयान दे दो तो आपको थोड़ी सी सजा कर देंगे, तथा १५०००) पारितोषिक दिया जावेगा'। परन्तु कुछ न बताया। इसी प्रकार बहुत बार आये परन्तु परेशान होकर चले जाते थे। मुकद्दमा चला, मुकद्दमे में पैसों की आवश्यकता थी, पैसों की बहुत कमी थी, और न ही कोई गवाह बना। उधर पुलिस की अफसर अत्यधिक सहायता करते थे। अन्त में १९ दिसम्बर १९२७ को फांसी की आज्ञा सुना दी गई। बहुत प्रयत्न किये गये परन्तु फांसी न हटी,।

फांसी से पहले माता पिता तथा उनका छोटा भाई मिलने के लिये गये, माताजी को देखकर बिस्मिल की आंखों में आंसू आ गये। उस समय माता के कहे वे शब्द ध्यान रखने योग्य हैं, ऐसी ही माता इस संसार में हीरा उत्पन्न करके संसार को स्वतन्त्र बनाती हैं। "मैं तो समझती थी तुमने अपने ऊपर विजय पाई है किन्तु यहां तो तुम्हारी कुछ और ही दशा है। जीवन पर्यन्त देश के लिये आंसू बहाकर अब अन्तिम समय में तुम मेरे लिये रोने बैठे हो, इस कायरता से क्या होगा, तुम्हें वीर की भांति हंसते हुए प्राण देते देखकर मैं अपने आपको धन्य समझूँगी। मुझे गर्व है कि इस गए बीते जमाने में मेरा पुत्र देश की वेदी पर प्राण दे रहा है। मेरा काम तुम्हें पाल कर बड़ा करना था इसके बाद तुम देश की चीज थे और उसी के काम आ गए। मुझे इसमें तनिक भी दुःख नहीं है।" उत्तर में कहा 'माताजी तुम तो मेरे हृदय को भली-भांति जानती हो। क्या तुम समझती हो कि मैं तुम्हारे लिए रो रहा हूँ अथवा इसलिये रो रहा हूँ कि मुझे कल फांसी हो जायेगी। यदि ऐसा है तो मैं कहूँगा कि तुमने जननी होकर भी मुझे समझ न पाया, मुझे अपनी मृत्यु का तनिक भी दुःख नहीं है। हां यदि घी को आग के पास लाया जायेगा तो उसका पिघलना स्वाभाविक है। बस उसी प्राकृतिक सम्बन्ध से दो चार आंसू आ गए। आपको मैं विश्वास दिलाता हूं कि अपनी मृत्यु से बहुत सन्तुष्ट हूं। इन बातों को सुनकर जेल के सब मनुष्य दंग रह गये।

१९ दिसम्बर को प्रातःकाल ६॥ बजे फांसी है, उसी दिन प्रातःकाल तीन बजे उठते हैं। शौच स्नान आदि नित्य कर्म करके यज्ञ करते हैं, फिर ईश्वर स्तुति करके फाँसी के तख्ते पर यह कहते हुए लटक जाते हैं कि "मैं ब्रिटिश साम्राज्य का नाश चाहता हूं।"

@VaidicPustakalay

देशभक्त अशफाक उल्ला खां

(ब्र० यशपाल)

अशफाक उल्ला खां का जन्म शाहजहांपुर में हुआ था। इनका खानदान वहाँ के प्रसिद्ध रईसों में से था। ये बचपन से ही खेल-कूद, कुश्ती आदि में बहुत रुचि रखते थे। इनका शरीर लम्बा चौड़ा था। चेहरे पर रौब था। तैरना, घोड़े की सवारी तथा शिकार आदि खेलने में ये सिद्धहस्त थे। आप जन्म से मुसलमान थे, परन्तु आप मुसलमान और हिन्दुओं में कोई भेद नहीं समझते थे। सबको यही कहा करते थे कि हम सब एक ही परमेश्वर के पुत्र हैं, फिर हिन्दू, मुसलमान आदि में भेद क्या है ? यह आपने अपने आचरण से भी स्पष्ट कर दिखलाया। आप बचपन में कविता सुन्दर बनाते थे तथा गाया करते थे। बचपन में आप देश के अन्दर अत्याचारों को देखकर बहुत ही सोच विचार किया करते थे। इन्हीं विचारों के कारण आपके मन के अन्दर क्रांति की भावना उत्पन्न हुई। आप क्रांतिकारी दल के सदस्य बन गये। इसी समय मैनपुरी षड्यन्त्र में शाहजहांपुर के निवासी रामप्रसाद "बिस्मिल" के वारण्ट हो गये। इस बात को सुनकर आप बहुत प्रसन्न हुए कि मेरे विचारों वाला एक व्यक्ति शाहजहाँपुर में है। उससे मिलने के लिए आपने बहुत प्रयत्न किये, किन्तु वारण्ट होने के कारण उससे न मिल सके। जब उनके वारण्ट समाप्त होगये तब उनसे मिलने के लिए गये। पहले रामप्रसाद जी ने निषेध कर दिया, परन्तु उनके आग्रह को देखकर इन्हें अपना साथी बना लिया। रामप्रसाद जी के साथ रहने के कारण आपके सम्बन्धी कहा करते थे कि "तू काफिर हो गया है।" इसका ये किञ्चिन्मात्र भी विचार नहीं करते थे।

अशफाक उल्ला खां के सामने आर्यसमाज मन्दिर तथा मस्जिद एक समान थे। शाहजहांपुर में एक वार हिन्दू तथा मुसलमानों का झगड़ा हो गया। सारे शहर में मारपीट शुरू हो गई, उस समय में आप बिस्मिल जी से आर्यसमाज मन्दिर में बात कर रहे थे। कुछ मुसलमान मन्दिर के पास आ गये और आक्रमण करने के लिए तैयार हो गये। आपने अपना पिस्तौल लिया और आर्यसमाज मन्दिर के सामने आकर मुसलमानों से कहने लगे कि मैं कट्टर मुसलमान हूं परन्तु इस मन्दिर की मुझे एक-एक ईंट प्राणों से प्यारी है। मेरे सामने मन्दिर मस्जिद एक समान हैं। यदि किसी ने दृष्टिपात किया तो गोली का निशाना बनना पड़ेगा। यदि तुमको लड़ना है तो दूर जाकर लड़ो। उनकी इस सिंहगर्जना को सुनकर सब मुसलमानों के होश गुम हो गये।

आप तथा बिस्मिल जी दोनों में गूढ़ मित्रता थी। एक दूसरे को प्राणों से प्यारा समझते थे। एक दिन की बात है कि अशफाक जी को दौरा आ गया। उस समय "राम" "राम" "राम" कह रहे थे। घरवाले न समझ पाये कि राम क्या है ? उसी समय एक ने कहा, "राम" रामप्रसाद बिस्मिल है। ये दोनों आपस में राम, कृष्ण कहते थे। बिस्मिल जी आये तब कहा आ गये "राम" इतने में दौरा समाप्त हो गया।

काकोरी षड्यन्त्र में आप शामिल थे। जब रेल रोकी गई, तब आपको तथा आजाद को यह काम सौंपा गया कि कोई मनुष्य रेल से नहीं उतरे, यदि कोई उतरे तो गोली से मार दिया जाये। रेल से तिजूरी निकाली गई परन्तु किसी से उसका ताला नहीं टूटा। फिर आपने आकर उसका ताला तोड़ा। उस षड्यन्त्र में बहुत व्यक्तियों के वारण्ट हो गये और साथ-साथ आपके भी वारण्ट हुए। इससे आप फरार हो गये।

उस समय में आपको बहुतों ने कहा कि आप दूसरे देशों में चले जायें, किन्तु आपने उत्तर दिया "काम तो मेरा यहां है मैं दूसरे देशों में जाकर क्या करूंगा।" अन्त में ८ दिसम्बर १९२६ में दिल्ली में पकड़े गये। गिरफ्तार करके लखनऊ में लाये गये। अदालत में पहुँचने पर स्पेशल मैजिस्ट्रेट सैयद अईनुद्दीन ने पूछा—"आपने मुझे कभी पहले देखा है।" आपने कहा "मैं तो आपको बहुत दिनों से देख रहा हूं जब से काकोरी षड्यन्त्र का मुकदमा आपकी अदालत में चल रहा था तब से मैं आपको कई बार देख चुका हूं। जब पूछा कि मैं कहां बैठता था? उत्तर दिया साधारण मनुष्यों के बीच राजपूत वेश में बैठा करते थे।

एक दिन सुपरिण्टेण्डेण्ट खां साहब ने कहा "देखो अशफाक! तुम मुसलमान हो और हम भी मुसलमान हैं। हमें तुम्हारी गिरफ्तारी से बहुत दुःख है, रामप्रसाद आदि हिन्दू हैं, इनका उद्देश्य हिन्दू राज्य स्थापना करना है। तुम पढ़े-लिखे खानदानी मुसलमान हो। तुम कैसे इन काफिरों के चक्कर में आ गए।" यह सुनते ही अशफाक जी की आँखें लाल हो गईं और तीव्र स्वर से कहा—बहुत हुआ। खबरदार ऐसी बात फिर कभी न कहियेगा।" असल में रामप्रसाद जी आदि सच्चे हिन्दुस्तानी हैं और आप जैसा कहते हैं अगर यह सत्य है तो भी मैं अंग्रेजी राज्य से हिन्दू राज्य अधिक पसन्द करता हूं। आपने जो रामप्रसाद जी को काफिर कहा है उसके लिए मैं आपको इस शर्त पर छोड़ता हूँ कि आप मेरे सामने से चले जायें।" सुपरिण्टेण्डेण्ट साहब नीचा मुंह करके चले गये।

अदालत में दर्शक और कर्मचारी आपका निर्द्वन्द्वतापूर्ण व्यवहार देखकर दंग रह गये। फाँसी का तख्ता सिर पर झूल रहा था, परन्तु उन्हें कुछ भी परवाह न थी। अन्त में फैसला सुनाया गया। इन पर पाँच अभियोग लगे थे, तीन में फांसी और दो में कालापानी की सजा हुई थी। अदालत में आपको बिस्मिल का लेफ्टीनेन्ट कहा गया था।

इसके बाद अपील की, किन्तु सभी प्रयत्न व्यर्थ सिद्ध हुए और फांसी देना निश्चित हो गया।

फाँसी की बात सुनकर आपको किंचिन्मात्र भी दुःख अनुभव न हुआ। आप मुकदमा समाप्त होते ही फैजाबाद जेल में भेज दिए गए। वहाँ पर कुछ साथी आपसे मिलने के लिए आये, तब आप कुछ दुर्बल हो गये थे, आपके मित्रों ने देखकर आश्चर्य किया, तब आपने उत्तर दिया कि आप समझते होंगे कि काल कोठरियों ने मुझे दुबला कर दिया परन्तु बात ऐसी नहीं है। मैं आजकल बहुत कम खाता हूं और ईश्वर की भक्ति करता हूं। कम खाने से परमेश्वर की भक्ति में ज्यादा ध्यान लगता है।

फाँसी से एक दिन पहले कुछ साथी उनसे मिलने आये। उसी दिन उनको पुराने कपड़े मिले थे, उन्हें धोकर पहने तथा पैरों में जूता पहना, उबटन लगाकर स्नान किया। बाल कुछ लम्बे थे उनको साफ करके, फिर प्रसन्नता के साथ मित्रों से मिलने के लिए गये। मित्रों से कहा आज मेरी शादी है, दूसरे दिन प्रातः ६॥ बजे फाँसी होनी थी।

फांसी से एक दिन पहले उन्होंने एक पत्र देशवासियों को लिखा था वह इस प्रकार है "भारतमाता के रंगमञ्च का अपना पार्ट अब हम अदा कर चुके हैं। हमने गलत या सही जो कुछ किया, वह स्वतन्त्रता प्राप्ति की भावना से किया। हमारे इस काम की कोई निन्दा करेंगे, और कुछ प्रशंसा करेंगे, क्रांतिकारी बड़े वीर होते हैं वे सदा अपने देश के लिए भलाई सोचते हैं। मनुष्य कहते हैं कि हम देश को भयत्रस्त करते हैं, किन्तु यह बात गलत है। इतने लम्बे समय तक मुकदमा चला परन्तु हमने किसी एक गवाह तक को भयत्रस्त करने की चेष्टा न की, न किसी मुखबिर को गोली मारी। हम चाहते तो किसी खुफिया पुलिस के अधिकारी या अन्य किसी आदमी को मार सकते थे। किन्तु यह हमारा उद्देश्य नहीं था, हम तो कन्हाईलाल दत्त, खुदीराम बोस, गोपीमोहन शाह आदि की स्मृति में फांसी पर चढ़ जाना चाहते थे।"

"भारतवासी भाइयो ! आप कोई हों। चाहे जिस धर्म या सम्प्रदाय के अनुयायी हों। परन्तु आप देशहित के कामों में एक होकर योग दीजिए। आप लोग व्यर्थ में झगड़ रहे हैं। सब धर्म एक हैं। रास्ते चाहे भिन्न-भिन्न हों, परन्तु लक्ष्य सबका एक है। फिर झगड़ा बखेड़ा क्या ? हम मरने वाले काकोरी अभियुक्तों के लिए आप लोग एक हो जाइए और सब मिलकर नौकरशाही का मुकाबला कीजिए। यह सोचकर कि सात करोड़ मुसलमान भारत में हैं। सबसे पहला मुसलमान मैं हूं जो भारत की स्वतन्त्रता के लिए फांसी पर चढ़ रहा हूँ। मन ही मन में अभिमान का अनुभव कर रहा हूं किन्तु मैं यह विश्वास दिलाता हूं कि मैं हत्यारा नहीं, जैसा कि मुझे साबित किया गया है।

ऐसा कहकर ६॥ बजे प्रातःकाल अशफाक उल्ला खां फांसी पर चढ़कर परलोक सिधार गये। फांसी के बाद उनके सम्बन्धी शव को प्राप्त करना चाहते थे। पहले तो निषेध कर दिया, किन्तु अधिक कहने पर उनका शव रिश्तेदारों को दे दिया गया। शाहजहांपुर ले जाते समय जब शव लखनऊ पहुँचा तब कुछ मनुष्यों ने उनके दर्शन किये, उनका कहना है कि फांसी के १० घण्टे बाद भी उनके चेहरे पर रौनक थी तथा मधुरता थी, केवल आंखों के नीचे कुछ पीलापन था।

अमर शहीद ठा० रोशनसिंह

(ब्र० वेदपाल)

ठा० रोशनसिंह जी शाहजहांपुर जिले के नवादा नामक ग्राम के निवासी थे। आपके पिता अत्यन्त धनवान् थे। आपके पिता के दो पत्नियां थीं। इस ग्राम में प्रायः क्षत्रिय लोग ही रहते थे। यहां पर पढ़ने लिखने का रीति रिवाज अत्यल्प था, इसी लिये आपको बाल्यकाल में ही पिता जी ने तलवार आदि के चलाने में खूब अभ्यस्त बना दिया था। बन्दूक चलाने में तो आप अत्यधिक

निष्णात थे। आप मल्लयुद्ध भी करते थे, इसीलिए काकोरी षड्यन्त्र में आप सबसे बलिष्ठ थे। आगे चलकर इन्होंने हिन्दी, उर्दू, बंगला और थोड़ी बहुत अंग्रेजी भी सीखी थी। इनके विचार आर्य-समाजी थे। व्यायाम नियमपूर्वक प्रतिदिन किया करते थे। धैर्य का तो मानो ये समुद्र थे। जिस समय ये जेल में थे उस समय इनके पिता जी का देहान्त हो गया। इस समाचार को सुनकर भी ये अपने मार्ग से किंचिन्मात्र भी विचलित नहीं हुए। आंखों में आंसू तक भी नहीं आये। केवल दो तीन बार 'ओ३म् तत्सत्' कहा था।

असहयोग आन्दोलन के ससय ही इन्होंने क्रांतिकारी कार्य आरम्भ कर दिया था और शाहजहां-पुर एवं बरेली जिले के ग्रामों में घूम-घूमकर ग्रामीणों में स्वराज्य का सन्देश सुनाते थे। इन्हीं दिनों बरेली में गोली चली। इसी सम्बन्ध में इन्हें दो साल की कड़ी सजा भुगतनी पड़ी। सजा के पश्चात् ये रामप्रसाद बिस्मिल से मिले और क्रांति दल में प्रविष्ट हो गये। ये बहुत उत्साही वीर थे। फांसी के समय इनकी आयु ३६-३७ वर्ष के लगभग थी। काकोरी षड्यन्त्र में इनका पूरा हाथ था। इसी समय में गिरफ्तार हुए और लखनऊ जेल में इनको ले जाया गया। इनका सारा जीवन देश सेवा में ही व्यतीत हुआ। जेल में क्रांतिकारियों के साथ अच्छा व्यवहार नहीं होता था इसलिए इन्होंने अनशन कर दिया। अनशन में भी इन्होंने पूरी वीरता के साथ काम किया। कभी भी दिनचर्या में अदल बदल नहीं हुई, नियमित रूप से कार्य करते थे। जिस किसी कार्य को एक बार उठा लिया उस पर हिमालय की तरह अडिग रहे। मामले की सम्पूर्ण कार्यवाही में इनके विरुद्ध कोई गवाही न थी, फिर भी सेशन जज ने उन्हें फांसी की सजा दे दी। इनको फांसी भी हो जायेगी यह वृत्त किसी को ज्ञात नहीं था। फांसी की सजा सुनकर भी इन्होंने ऐसे धैर्य और साहस का प्रदर्शन किया जिसे देख कर सभी आश्चर्यान्वित हो गये। फांसी के एक सप्ताह पूर्व इन्होंने अपने एक मित्र के पास पत्र लिखा था कि "आप मेरे लिए किसी प्रकार का शोक न करें। जो संसार में आया है उसे जाना अवश्य है। संसार में खराब काम करके अपने को बदनाम न करें। मरते समय ईश्वर को याद करें। मुझ में ये दोनों बातें विद्यमान हैं इसलिए मेरी मृत्यु किसी प्रकार के शोक के लिए नहीं है। जगत् की कष्टमयी यात्रा समाप्त करके मैं अब आराम करने जा रहा हूं। आप मेरी तरफ से निश्चिन्त रहें।

जिन्दगी जिन्दादिली को जान ए रोशन।
वरना कितने मरे और पैदा हो जाते हैं॥

अन्तिम नमस्ते
आपका "रोशन"

फांसी के दिन रोशनसिंह पहले से ही तैयार थे। जब फांसी की आज्ञा हुई तो गीता हाथ में लेकर चल दिए। फांसी पर चढ़ते समय "वन्दे मातरम्" का गान तथा ओ३म् का उच्चारण करते हुए फांसी के तख्ते पर झूल गए। सरकार ने इनके शव का जुलूस नहीं निकालने दिया।

इस प्रकार इस वीर ने इस क्षणभंगुर संसार को त्याग दिया।

क्रान्तिकारी वीर श्री मन्मथनाथ गुप्त

(ब्र० वेदपाल)

श्री मन्मथनाथ जी का जन्म सन् १९०७ ई० में काशी में एक प्रतिष्ठित वैश्य वंश में हुआ था। इनके पिताजी का नाम श्री वीरेश्वरदत्त था। इनके पितामह श्री आद्यनाथ गुप्त १८८० ई० में हुगली (बंगाल) से बनारस में आ बसे थे। आप ५ वर्ष की आयु में ही गणित में प्रवीण हो गये थे। आपकी प्रारम्भिक शिक्षा स्कूल में न होकर आपके पिताजी की देख-रेख में हुई थी। इसके बाद आपको संन्यास की दीक्षा देने की इच्छा से पढ़ने के लिए एक संन्यासी गुरु के पास भेज दिया गया। कुछ दिन पश्चात् आपका मन संस्कृत पढ़ने से हट गया। इसलिए आप वहाँ से आकर अपने पिताजी के पास रहने लगे। आपके पिता वीरट नगर (नेपाल) में हाई स्कूल के मुख्याध्यापक थे। यहाँ पर आप दो वर्ष तक रहे और फिर वहाँ से आने के कुछ दिन पश्चात् असहयोग आन्दोलन प्रारम्भ हो गया और आपको पिताजी ने गान्धी राष्ट्रीय विद्यालय काशी में प्रविष्ट करा दिया।

सन् १९२१ में युवराज भारत में आये थे। उनके बहिष्कार के लिए प्रत्येक स्थान पर हड़ताल आदि हुईं। इसी सम्बन्ध में वहाँ के नेताओं के साथ नोटिस बाँटते हुए आपको भी गिरफ्तार कर लिया गया और तीन मास का दंड मिला। इनके पिताजी ने इनको पहले से ही सूचित कर दिया था कि "नोटिस बाँट रहे हो इसलिए तुम्हें जेल जाना पड़ेगा।" इस समय इनकी आयु केवल १४ वर्ष की थी। आपके पिताजी ने कहा कि तुम अभी जेल की यन्त्रणाओं को सहन नहीं कर सकोगे। श्री मन्मथनाथ ने वीरता के साथ उत्तर दिया—'बाबूजी' मैं अपनी मातृ-भूमि के लिए सब कुछ सहन करने के लिए तैयार हूं। यह आपके पिताजी की शिक्षा का ही प्रभाव था। जिससे आप इस प्रकार के वीर देशभक्त और सहिष्णु व्यक्ति बन सके।

इस मुकद्दमे में फँसने से पहले ही ये सार्वजनिक कार्यों में भाग लेने लगे थे। इनके पिताजी ने देशभक्ति तथा सच्चरित्रता का बीज पूर्व ही बो दिया था। असहयोग आन्दोलन और काशी विद्यापीठ के राजनीतिक वातावरण ने देशभक्ति की भावना को सींचकर और भी हरा-भरा बना दिया। तीन मास की सजा के पश्चात् ये महात्मा गाँधी द्वारा संस्थापित राष्ट्रीय संस्था काशी विद्यापीठ में फिर प्रविष्ट हो गये और वहाँ की विशारद (मेट्रिक) परीक्षा पास कर वहीं विद्यापीठ के कालिज में ही पढ़ने लगे।

सन् १९२३ ई० में इनकी भेंट बंगाल के एक सुप्रसिद्ध क्रान्तिकारी से हुई और बहुत वाद-विवाद के पश्चात् इनको निश्चय हुआ कि यदि देश का कल्याण हो सकता है तो इसी मार्ग से हो सकता है। तब ये क्रान्तिकारी दल में सम्मिलित हो गये।

काकोरी के षड्यन्त्र से बहुत पहले से ही पुलिस की नजर इन पर थी, इसलिए बराबर इनका पीछा किया जाता था। काकोरी षड्यन्त्र की गिरफ्तारी की निश्चित तारीख सन् १९२५ के २६ दिसम्बर को ये गिरफ्तार कर लिये गये। षड्यन्त्र के मुकद्दमे की सब बातों की इन्हें जानकारी नहीं थी। इस कारण इन्होंने यह सोच लिया था कि मुझे फाँसी की सजा मिलेगी। यह सोचकर इन्होंने

एक दिन अपने पिताजी से (जो कि जेल में इनसे मिलने आये थे) कहा—अब आप मुझे इस संसार में न समझिये। यह कहते समय पिता के सामने ही इनकी आँखों में से आंसू आ गये। अपने वीर पुत्र के इस प्रकार आंसू देखकर वीर पिता ने कहा—"मैं अपने पुत्र की आंखों में आंसू देखना नहीं चाहता।"

काकोरी के अभियुक्तों में से एक को छोड़कर श्री मन्मथनाथ जी सबसे छोटे थे। इतना होते हुए भी ये बहुत ही गम्भीर थे। यह गम्भीरता उनके विशेष अध्ययन का ही फल थी। मुकद्दमे में आप मुख्य अपराधियों में समझे जाते थे। सरकार की दृष्टि में आप भयंकर व्यक्तियों में गिने जाते थे। यह ख्याल है कि आज से कई वर्ष पूर्व "यङ्ग इंडिया" में प्रकाशित कुछ लेख इन्हीं के लिखे हुए थे। इस पत्र के लेखों से राजनीतिक जगत् में एक सनसनी फैल गई थी। मुकद्दमे में सेशन जज ने आपको १४ वर्ष की कठोर सजा दी। पुलिस ने इसे कम जानकर अपील की, किन्तु इनके मामले में उसे मुँह की खानी पड़ी। सजा के पश्चात् ये श्री विष्णुशरण दुबलिस के साथ नैनी जेल में भेजे गये। वहाँ आपके साथ साधारण कैदी के समान व्यवहार किया गया। इसके विरोध के लिये आपने दल की आज्ञानुसार अनशन व्रत प्रारम्भ कर दिया। ४६ दिनों तक बराबर अनशन चलता रहा। इसके पश्चात् श्री गणेश शंकर विद्यार्थी ने बहुत आग्रह-पूर्वक कहकर इनका अनशन व्रत तुड़वाया। इससे पहले भी आपने १५ दिन का अनशन किया था। जब आपका स्वास्थ्य कुछ ठीक हुआ तब कष्ट देने की इच्छा से अधिकारी आपको चक्की चलाने का कार्य देने लगे, किन्तु आपने स्पष्ट शब्दों में इसका प्रतिकार कर दिया। इस पर अधिकारी लोगों का पारा १०८ तक पहुंच गया और धमकी दी गई कि हम चक्की पिसवाकर छोड़ेंगे, किन्तु आप अपने निश्चय से टस से मस भी नहीं डिगे। इससे आपको सजा पर सजायें दी जाने लगीं, किन्तु सब निष्फल हुईं।

आपके मस्तिष्क में सोते जागते सदा एक ही विचार चक्कर लगाता रहता था कि देश का उद्धार कैसे हो? बनारस से इन्होंने एक पत्र भी गुप्त रूप से निकाला था। जिसका नाम "अग्रदूत" था। श्री शचीन्द्रनाथ सान्याल इनको कहा करते थे कि—"परमात्मा इसे दीर्घजीवी करे।" हवालात में आप कहा करते कि "अगर मैं रामप्रसाद बिस्मिल वीर जैसे के सेनापतित्व में कुछ करूँ तो अपना सौभाग्य समझूँगा।" आपकी राजकुमार सिन्हा के साथ घनिष्ठ मित्रता थी। इनको अनेकों बार सजायें भुगतनी पड़ीं।

आज इस प्रकार के वीर भारत में बहुत ही कम हैं। आप बहुत ही उत्साही कार्यकर्ता थे। आप कष्टों से कभी भी नहीं घबराये।

@VaidicPustakalay

फांसी से केवल तीन दिन पहले

(ले० स्व० पं० रामप्रसाद 'बिस्मिल')

सर फरोशाने वतन फिर देखलो मकतल में है ।
मुल्क पर कुर्बान हो जाने के अरमां दिल में हैं ॥
तेग हैं जालिम को यारो और गला मजलूम का ।
देख लेंगे हौसला कितना दिले कातिल में है ॥
शोरे महशर बावपा है मार का है धूम का ।
बलबले जोशे शहादत हर रगे 'बिस्मिल' में है ॥

आज १६ दिसम्बर १६२७ ई० को निम्नलिखित पंक्तियों का उल्लेख कर रहा हूं, जब कि १६ दिसम्बर १६२७ ई० सोमवार को ६॥ बजे प्रातःकाल इस शरीर को फाँसी पर लटका देने की तिथि निश्चित हो चुकी है अत एव नियत समय पर यह लीला संवरण करनी होगी ही । यह सब सर्वशक्तिमान् प्रभु की लीला है । सब कार्य उसकी इच्छानुसार ही होते हैं । यह परमपिता परमात्मा के नियमों का परिणाम है कि किस प्रकार किस को शरीर त्यागना होता है । मृत्यु के सकल उपक्रम निमित्तमात्र हैं । जब तक कर्मक्षय नहीं होता, आत्मा को जन्म-मरण के बन्धन में पड़ना ही होता है, यह शास्त्रों का निश्चय है । यद्यपि यह वह परब्रह्म ही जानता है कि किन कर्मों के परिणामस्वरूप कौनसा शरीर इस आत्मा को ग्रहण करना होगा, किन्तु अपने लिये यह मेरा दृढ़ निश्चय है कि मैं उत्तम शरीर धारण कर नवीन शक्तियों सहित अतिशीघ्र ही पुन: भारतवर्ष में ही किसी निकटवर्ती सम्बन्धी या इष्ट मित्र के गृह में जन्म ग्रहण करूँगा, क्योंकि मेरा जन्म-जन्मान्तर यही उद्देश्य रहेगा कि मनुष्यमात्र को सभी प्राकृतिक पदार्थों पर समानाधिकार प्राप्त हो । कोई किसी पर हकूमत न करे । सारे संसार में जनतन्त्र की स्थापना हो । वर्तमान समय में भारतवर्ष की बड़ी शोचनीय अवस्था है अत एव लगातार कई जन्म इस देश में ग्रहण करने होंगे और जब तक कि भारतवर्ष के नर-नारी पूर्णतया सर्वरूपेण स्वतन्त्र न हो जावेंगे, परमात्मा से मेरी यही प्रार्थना होगी कि वह मुझे इसी देश में जन्म दे, ताकि मैं उसकी पवित्र वाणी 'वेदवाणी' का अनुपम घोष मनुष्यमात्र के कानों तक पहुंचाने में समर्थ हो सकूँ । सम्भव है कि मैं मार्गनिर्धारण में भूल करूँ, पर इसमें मेरा कोई विशेष दोष नहीं, क्योंकि मैं भी तो अल्पज्ञ जीवमात्र ही हूँ, भूल न करना केवल सर्वज्ञ से ही सम्भव है । हमें परिस्थितियों के अनुसार ही सब कार्य करने पड़े और करने होंगे । परमात्मा अगले जन्म में सुबुद्धि प्रदान करे कि मैं जिस मार्ग का अनुसरण करूँ वह त्रुटिरहित ही हो ।

अब मैं उन बातों का भी उल्लेख करना उचित समझता हूं जो काकोरी षड्यन्त्र के अभियुक्तों के सम्बन्ध से सेशन जज के फैसला सुनने के पश्चात् घटित हुईं । ६ अप्रैल सन् २७ ई० को अवध चीफ कोर्ट में अपील हुई । इसमें कुछ की सजायें बढ़ीं और एकाध की कम भी हुई । अपील होने की तारीख से पहले मैंने संयुक्त प्रान्त के गवर्नर की सेवा में एक मेमोरियल भेजा था । जिसमें प्रतिज्ञा की थी कि अब भविष्य में मैं क्रान्तिकारी दल से कोई सम्बन्ध न रखूँगा । इस मेमोरियल का जिक्र मैंने अपनी

अन्तिम दया-प्रार्थनापत्र में जो मैंने चीफ कोर्ट के जजों को दिया था, उसमें कर दिया था। किन्तु चीफ कोर्ट के जजों ने मेरी किसी प्रकार की प्रार्थना न स्वीकार की। मैंने स्वयं ही जेल से अपने मुकद्दमे की बहस लिखकर भेजी, जो छापी गई। जब यह बहस चीफ कोर्ट के जजों ने सुनी तो उन्हें बड़ा सन्देह हुआ, कि यह बहस मेरी लिखी हुई न थी। इन तमाम बातों का यह नतीजा निकला कि चीफ कोर्ट अवध से मुझे महाभयंकर षड्यन्त्रकारी की पदवी दी गई। मेरे पश्चात्ताप पर जजों को विश्वास न हुआ और उन्होंने अपनी धारणा का प्रकाश इस प्रकार दिया कि यदि रामप्रसाद छूट गया तो फिर वही कार्य करेगा। बुद्धि की प्रखरता तथा समझ पर कुछ प्रकाश डालते हुए 'निर्दयी हत्यारे' के नाम से विभूषित किया गया। लेखनी उनके हाथ में थी जो चाहे सो लिखते, किन्तु काकोरी षड्यन्त्र का चीफकोर्ट का आद्योपान्त फैसला पढ़ने से भली-भाँति विदित होता है कि मुझे मृत्युदण्ड किस ख्याल से दिया गया। यह निश्चय किया गया कि रामप्रसाद ने सेशन जज के विरुद्ध अपशब्द कहे हैं, खुफिया विभाग के कार्यकर्ताओं पर लांछन लगाये हैं, अर्थात् अभियोग के समय जो अन्याय होता था उसके विरुद्ध आवाज उठाई है अतएव रामप्रसाद सबसे बड़ा गुस्ताख मुलजिम है। अब माफी चाहे वह किसी भी रूप में मांगें, नहीं दी जा सकती।

चीफकोर्ट से अपील खारिज हो जाने के बाद यथानियम प्रान्तीय गवर्नर तथा फिर वायसराय के पास दया प्रार्थना की गई। रामप्रसाद बिस्मिल, राजेन्द्रनाथ लहरी, रोशनसिंह तथा अशफाक उल्ला खाँ के मृत्यु-दण्ड को बदलकर अन्य दूसरी सजा देने की सिफारिश करते हुए संयुक्त प्रान्त की कौंसिल के लगभग सभी निर्वाचित हुए मेम्बरों ने हस्ताक्षर करके निवेदन पत्र दिया। मेरे पिता ने ढाई सौ रईस, आनरेरी मजिस्ट्रेट तथा जमींदारों के हस्ताक्षर से एक अलग प्रार्थना-पत्र भेजा, किन्तु श्रीमान् सर विलियिम मेरिस की सरकार ने एक भी न सुनी। उसी समय लेजिसलेटिव असेम्बली तथा कौंसिल आफ स्टेट के ७८ सदस्यों ने भी हस्ताक्षर करके वायसराय के पास प्रार्थना-पत्र भेजा कि काकोरी षड्यन्त्र के मृत्युदण्ड पाये हुओं को मृत्युदण्ड की सजा बदलकर दूसरी सजा कर दी जावे, क्योंकि दौरा जज ने सिफारिश की है कि यदि यह लोग पश्चात्ताप करें तो सरकार दण्ड कम कर दे। चारों अभियुक्तों ने पश्चात्ताप प्रकट कर दिया है। किन्तु वायसराय महोदय ने भी एक न सुनी।

इस विषय में माननीय पं० मदनमोहन मालवीय जी ने तथा अन्य असम्बली के कुछ सदस्यों ने वायसराय से मिलकर भी प्रयत्न किया कि मृत्युदण्ड न दिया जावे। इतना होने पर सबको आशा थी कि वायसराय महोदय अवश्यमेव मृत्यु-दण्ड की आज्ञा रद्द कर देंगे। इसी हालत में चुपचाप विजयादशमी से दो दिन पहले जेलों को तार भेज दिये गये कि दया नहीं होगी। सबकी फाँसी की तारीख मुकर्रर हो गई। जब मुझे सुपरिण्टेण्डेण्ट जेल ने तार सुनाया, मैंने भी कह दिया कि आप अपना कार्य कीजिये। किन्तु सुपरिण्टेण्डेण्ट जेल के अधिक कहने पर कि एक तार दया-प्रार्थना का सम्राट् के पास भेज दो। क्योंकि यह उन्होंने एक नियम सा बना रखा है कि प्रत्येक फाँसी के कैदी की ओर से जिस की दया भिक्षा की अर्जी वायसराय के यहाँ से खारिज हो जाती है वह एक तार सम्राट् के नाम से प्रान्तीय सरकार के पास अवश्य भेजते हैं। कोई दूसरा जेल सुपरिण्टेण्डेण्ट ऐसा नहीं करता। उपरोक्त तार लिखते समय मेरा कुछ विचार हुआ कि प्रीवी कौंसिल इंग्लेण्ड में अपील की जावे। मैंने श्रीयुत मोहनलाल सक्सेना वकील लखनऊ को सूचना दी, बाहर किसी को वायसराय की अपील खारिज होने की बात पर विश्वास भी न हुआ। जैसे-तैसे करके श्रीयुत मोहनलाल द्वारा प्रीवी कौंसिल में अपील

कराई गई। नतीजा तो पहले से ही मालूम था। वहां से भी अपील खारिज हुई। यह जानते हुए कि अंग्रेज सरकार कुछ भी न सुनेगी, मैंने सरकार को प्रतिज्ञा-पत्र क्यों लिखा। क्यों अपील की, क्यों अपील दया-प्रार्थना की ? इस प्रकार के प्रश्न उठते हैं, मेरी समझ में सदैव यही आया है कि राजनीति एक शतरंज के खेल के समान है। शतरंज के खेलने वाले भली-भाँति जानते हैं कि आवश्यकता होने पर किस प्रकार अपने मोहरे भी मरवा लेने पड़ते हैं। बङ्गाल आर्डिनेन्स के कैदियों के छोड़ने या उन पर खुली अदालत में मुकदमा चलाने के प्रस्ताव जब असेम्बली में पेश किये गये तो सरकार की ओर से बड़े जोरदार शब्दों में कहा गया कि सरकार के पास पूरा सबूत मौजूद है। खुली अदालत में अभियोग चलाने से गवाहों पर आपत्ति आ सकती है। यदि आर्डिनेन्स के कैदी लेखबद्ध प्रतिज्ञा-पत्र दाखिल कर दें कि वे भविष्य में क्रान्तिकारी आन्दोलन से कोई सम्बन्ध न रखेंगे तो सरकार उन्हें रिहाई देने के विषय में विचार कर सकती है।

बङ्गाल में दक्षिणेश्वर तथा सोना बाजार बमकेस आर्डिनेन्स के बाद चले। खुफिया विभाग के डिप्टी सुपरिण्टेण्डेण्ट के कत्ल का मुकदमा भी खुली अदालत में हुआ और भी कुछ हत्यारों के मुकदमे खुली अदालत में चलाये गये। किन्तु एक भी दुर्घटना या हत्या की सूचना पुलिस न दे सकी। काकोरी षड्यन्त्र केस पूरे डेढ़ साल तक खुली अदालतों में चलता रहा। सबूत की ओर से लगभग ३०० गवाह प्रस्तुत किये गये। कई मुखबिर तथा इकबाली खुले तौर से घूमते रहे। पर कहीं कोई दुर्घटना या किसी को धमकी देने की पुलिस ने कोई सूचना न दी। सरकार की इन बातों की पोल खोलने की गरज से ही मैंने लेखबद्ध बन्धेज सरकार को दिया। सरकार के कथनानुसार जिस प्रकार बङ्गाल आर्डिनेन्स के कैदियों के सम्बन्ध में सरकार के पास पूरा सबूत था और सरकार उनमें से अनेकों को भयंकर षड्यन्त्रकारी दल का सदस्य तथा हत्याओं का जुम्मेदार समझती तथा कहती थी तो इसी प्रकार काकोरी के षड्यन्त्रकारियों के लेखबद्ध प्रतिज्ञा-पत्र करने पर कोई गौर क्यों न किया ? बात यह है कि 'जबरा मारे रोने न देय' मुझे तो भली-भाँति मालूम था कि संयुक्त प्रान्त में जितने भी राजनैतिक अभियोग चलाये जाते हैं उनके फैसले खुफिया पुलिस की इच्छानुसार लिखे जाते हैं। बरेली पुलिस कांस्टेबिलों की हत्या के अभियोग में नितान्त निर्दोष नवयुवकों को फँसाया गया और सी० आई० डी० वालों ने अपनी डायरी दिखलाकर फैसला लिखवाया। काकोरी षड्यन्त्र में भी अन्त में ऐसा ही हुआ, सरकार की सब चालों को जानते हुए भी मैंने सब कार्य उसकी लम्बी-लम्बी बातों की पोल खोलने के लिए ही किये। काकोरी के मृत्यु-दण्ड पाये हुओं की दया-प्रार्थना न स्वीकार करने का कोई विशेष कारण सरकार के पास नहीं। सरकार ने बंगाल आर्डिनेन्स के कैदियों के सम्बन्ध में जो कुछ कहा था सो काकोरी वालों ने किया। मृत्युदण्ड को रद्द कर देने से देश में किसी प्रकार की शान्ति भंग होने अथवा किसी विप्लव हो जाने की सम्भावना न थी। विशेषतया जब कि देश भर के सब प्रकार के हिन्दू मुसलमान असेम्बली के सदस्यों ने इसकी सिफारिश की थी। षड्यन्त्रकारियों की इतनी बड़ी सिफारिश इससे पहले कभी नहीं हुई। किन्तु सरकार तो अपना पासा सीधा रखना चाहती है। उसे अपने बल पर विश्वास है। सर विलियम मेरिस ने ही स्वयं शाहजहाँपुर तथा इलाहाबाद के हिन्दू-मुस्लिम दंगे के अभियुक्तों के मृत्युदण्ड रद्द किये हैं जिनको कि इलाहाबाद हाईकोर्ट से मृत्युदण्ड ही देना उचित समझा गया था और उन लोगों पर दिन दहाड़े हत्या करने के सीधे सबूत मौजूद थे। ये सजायें ऐसे समय माफ की गई थीं, जब कि नित्य नये हिन्दू-मुस्लिम दंगे बढ़ते ही जाते हैं। यदि

काकोरी के कैदियों को मृत्युदण्ड माफ करके, दूसरी सजा देने से दूसरों का उत्साह बढ़ता तो क्या इसी प्रकार मजहबी दंगों के सम्बन्ध में भी नहीं हो सकता था ? मगर वहाँ तो मामला कुछ और ही है, जो अब भारतवासियों के नरम-नरम दल के नेताओं के भी शाही कमीशन के मुकर्रर होने और उसमें एक भी भारतवासी के न चुने जाने, पार्लियामैन्ट में भारत सचिव लार्ड बर्कन हेड के तथा अन्य मजदूर दल के नेताओं के भाषणों से भली-भाँति समझ में आया है कि किस प्रकार भारतवर्ष को गुलामी की जञ्जीरों में जकड़े रहने की चालें चली जा रही हैं।

मुझे प्राण त्यागते समय निराश हो जाना नहीं पड़ रहा है कि हम लोगों के बलिदान व्यर्थ गये। मेरा तो विश्वास है कि हम लोगों की छिपी हुई आहों का ही यह नतीजा हुआ कि लार्ड बर्कन हेड के दिमाग में परमात्मा ने एक विचार उपस्थित किया कि हिन्दुस्तान के हिन्दू-मुस्लिम झगड़ों का लाभ उठाओ और भारतवर्ष की जंजीरें और कस दो। गये थे रोजा छोड़ने नमाज गले पड़ गई। भारतवर्ष के प्रत्येक विख्यात राजनैतिक दल ने और हिन्दुओं के तो लगभग सभी तथा मुसलमानों के भी अधिक-तर नेताओं ने एक स्वर होकर रायल कमीशन की नियुक्ति तथा उसके सदस्यों के विरुद्ध घोर विरोध किया है और अगली कांग्रेस पर सब राजनैतिक दल के नेता तथा हिन्दू-मुसलमान एक होने जा रहे हैं। वायसराय ने जब हम काकोरी के मृत्यु-दण्ड वालों की दया-प्रार्थना अस्वीकार की थी उसी समय मैंने श्रीयुत मोहनलाल जी को पत्र लिखा था कि हिन्दुस्तानी नेताओं को तथा हिन्दू-मुसलमानों को अग्रिम कांग्रेस पर एकत्रित हो हम लोगों की याद मनानी चाहिए। सरकार ने अशफाक उल्ला को रामप्रसाद का दाहिना हाथ करार दिया। अशफाक उल्ला कट्टर मुसलमान होकर पक्के आर्यसमाजी रामप्रसाद का क्रान्तिकारी दल के सम्बन्ध में यदि दाहिना हाथ बन सकते हैं, तब क्या भारतवर्ष की स्वतन्त्रता के नाम पर हिन्दू मुसलमान अपने निजी छोटे-छोटे फायदों का ख्याल न करके आपस में एक नहीं हो सकते ?

परमात्मा ने मेरी पुकार सुनली और मेरी इच्छा पूरी होती दिखाई देती है। मैं तो अपना कार्य कर चुका। मैंने मुसलमानों में से एक नवयुवक निकालकर भारतवासियों को दिखला दिया जो सब परीक्षाओं में पूर्णतया उत्तीर्ण हुआ। अब किसी को यह कहने का साहस न होना चाहिए कि मुसल-मानों पर विश्वास न करना चाहिए। पहला तजर्बा था जो पूरी तौर से कामयाब हुआ। अब देश-वासियों से यही प्रार्थना है कि यदि वे हम लोगों के फांसी पर चढ़ने से जरा भी दुःखित हुए हों तो उन्हें यही शिक्षा लेनी चाहिए कि हिन्दू-मुसलमान तथा सब राजनैतिक दल एक होकर कांग्रेस को अपना प्रतिनिधि मानें। जो कांग्रेस तय करे, उसे सब पूरी तौर से मानें और उस पर अमल करें। ऐसा करने के बाद वह दिन बहुत दूर न होगा जबकि अंग्रेजी सरकार को भारतवासियों की मांग के सामने सिर झुकाना पड़े और यदि ऐसा करेंगे तब तो स्वराज्य कुछ दूर नहीं। क्योंकि फिर तो भारतवासियों को काम करने का पूरा मौका मिल जावेगा, हिन्दू-मुस्लिम एकता ही हम लोगों की यादगार तथा अन्तिम इच्छा है चाहे वह कितनी कठिनता से क्यों न हो।

जो मैं कह रहा हूँ वही श्री अशफाक उल्ला खाँ वारसी का भी मत है, क्योंकि अपील के समय हम दोनों लखनऊ जेल में फांसी की कोठरियों में आमने-सामने कई दिन तक रहे थे। आपस में हर तरह की बातें हुई थीं। गिरपतारी के बाद से हम लोगों की सजा पड़ने तक श्री अशफाक उल्ला खाँ की बड़ी भारी उत्कट इच्छा यही थी कि वह एक बार मुझसे मिल लेते। जो परमात्मा ने पूरी कर दी।

श्री अशफाक उल्ला खाँ तो अंग्रेज सरकार से दया-प्रार्थना करने पर राजी ही न थे। उनका तो अटल विश्वास यही था कि खुदाबन्द करीम के अलावा किसी दूसरे से दया की प्रार्थना न करनी चाहिये परन्तु मेरे विशेष आग्रह से ही उन्होंने सरकार से दया-प्रार्थना की थी। इसका दोषी मैं ही हूँ जो मैंने अपने प्रेम के पवित्र अधिकारों का उपयोग करके श्री अशफाक उल्ला खाँ को उनके दृढ़ निश्चय से विचलित किया। मैंने एक पत्र द्वारा अपनी भूल स्वीकार करते हुए भ्रातृ द्वितीया के अवसर पर गोरखपुर जेल से श्री अशफाक को पत्र लिखकर क्षमा-प्रार्थना की थी। परमात्मा जाने कि वह पत्र उनके हाथों तक पहुंचा भी या नहीं। खैर! परमात्मा की ऐसी ही इच्छा थी कि हम लोगों को फांसी दी जावे। भारतवासियों के जले हुए दिलों पर नमक पड़े, वे बिलबिला उठें, और हमारी आत्मायें उनके कार्य को देखकर सुखी हों। जब हम नवीन शरीर धारण करके देश-सेवा में योग देने को उद्यत हों, उस समय तक भारतवर्ष की राजनीतिक स्थिति पूर्णतया सुधरी हुई हो। जन साधारण का अधिक भाग सुशिक्षित हो जावे। ग्रामीण लोग भी अपने कर्त्तव्य समझने लग जावें।

प्रीवी कौंसिल में अपील भिजवाकर मैंने जो व्यर्थ का अपव्यय करवाया उसका भी एक विशेष अर्थ था। सब अपीलों का तात्पर्य यह था कि मृत्युदण्ड उपयुक्त दण्ड नहीं। क्योंकि न जाने किसकी गोली से आदमी मारा गया। अगर डकैती डालने की जिम्मेवारी के ख्याल से मृत्युदण्ड दिया गया तो चीफकोर्ट के फैसले के अनुसार भी मैं ही डकैतियों का जिम्मेदार तथा नेता था, और प्रान्त का नेता भी मैं ही था। अत एव मृत्युदण्ड तो अकेला मुझे ही मिलना चाहिए था। अन्य तीन को फांसी नहीं देनी चाहिए थी। इसके अतिरिक्त दूसरी सब सजायें स्वीकार होतीं। पर ऐसा क्यों होने लगा। मैं विलायती न्यायालय की भी परीक्षा करके स्वदेशवासियों के लिए उदाहरण छोड़ना चाहता था कि यदि कोई राजनीतिक अभियोग चले तो वे भूल करके भी किसी अंग्रेजी अदालत का विश्वास न करें। तबियत आये तो जोरदार बयान दें। अन्यथा मेरी तो यही राय है कि अंग्रेजी अदालत के सामने न तो कभी कोई बयान दें और न कोई सफाई पेश करें। काकोरी षड्यन्त्र के अभियोग से शिक्षा प्राप्त कर लें। इस अभियोग में सब प्रकार के उदाहरण मौजूद हैं। प्रीवी कौंसिल में अपील दाखिल कराने का एक विशेष अर्थ यह भी था कि मैं कुछ समय तक फांसी की तारीख हटवाकर यह परीक्षा करना चाहता था कि नवयुवकों में कितना दम है, और देशवासी कितनी सहायता दे सकते हैं। इसमें मुझे बड़ी निराशापूर्ण असफलता हुई। अन्त में मैंने निश्चय किया था कि यदि हो सके तो जेल से निकल भागूं। ऐसा हो जाने से सरकार को अन्य तीनों फांसी वालों की सजा माफ कर देनी पड़ेगी, और यदि न करती तो मैं करा लेता। मैंने जेल से भागने के अनेकों प्रयत्न किये किन्तु बाहर से कोई सहायता न मिल सकी, यही तो हृदय पर आघात लगता है कि जिस देश में मैंने इतना बड़ा क्रान्तिकारी आन्दोलन तथा षड्यन्त्रकारी दल खड़ा किया था वहाँ से मुझे प्राणरक्षा के लिये एक रिवाल्वर तक न मिल सका। एक नवयुवक भी सहायता को न आ सका। अन्त में फाँसी पा रहा हूँ। फाँसी पाने का मुझे कोई भी शोक नहीं क्योंकि मैं इस नतीजे पर पहुँचा हूं कि परमात्मा को यही मंजूर था। मगर मैं नवयुवकों से भी नम्र निवेदन करता हूं कि जब तक उन्हें कर्त्तव्य-अकर्त्तव्य का ज्ञान न हो जावे, तब तक वे भूलकर भी किसी प्रकार के क्रान्तिकारी षड्यन्त्रों में भाग न लें। यदि देश सेवा की इच्छा हो तो खुले आन्दोलनों द्वारा यथाशक्ति कार्य करें, अन्यथा उनका बलिदान उपयोगी न होगा। दूसरे प्रकार से इससे अधिक देशसेवा हो सकती है, जो अधिक उपयोगी सिद्ध होगी। परिस्थिति अनुकूल न होने से

ऐसे आन्दोलनों से अधिकतर परिश्रम व्यर्थ जाता है। जिनकी भलाई के लिये करो वही बुरे-बुरे नाम धरते हैं और अन्त में मन ही मन कुढ़-कुढ़ कर प्राण त्यागने पड़ते हैं।

देशवासियों से यही अन्तिम विनय है कि जो कुछ करें, सब मिलकर करें, और सब देश की भलाई के लिये करें। इसी से सबका भला होगा। बस।

मरते 'बिस्मिल' 'रोशन' 'लहरी' 'अशफाक' अत्याचार से।
होंगे पैदा सैकड़ों इनके रुधिर की धार से॥

श्री रामदुलारे त्रिवेदी

(ब्र० वेदपाल)

श्री रामदुलारे त्रिवेदी का जन्म कानपुर जिले में हुआ था। आप बंगला, हिन्दी तथा अंग्रेजी के अच्छे विद्वान् थे। आपने असहयोग आन्दोलन में भी भाग लिया था। १९२३ ईस्वी में आपने श्री योगेशचन्द्र चटर्जी के साथ शाहजहाँपुर, अलीगढ़ तथा झाँसी आदि कई स्थानों पर क्रान्तिकारी दल के संगठन के लिये भ्रमण किया। काकोरी षड्यन्त्र में आपको ५ वर्ष का दण्ड मिला था। जेल में आपने कई बार अनशन किये जिससे आपका बहुतसा धन जब्त कर लिया गया।

जब फैजाबाद में बी० क्लास के बन्दी एकत्र किये गये तब आपको भी फतेहगढ़ जेल से वहाँ भेजा गया था, किन्तु आपने वहाँ अपने उग्र विचारों व उपायों से बहुत खलबली मचा दी, इसलिये आप फिर फतेहगढ़ जेल में लौट आये। यहाँ आप बहुत दिन तक मणीन्द्रनाथ बनर्जी के साथ रहे। फिर बरेली जेल में भेज दिये गये। वहीं से आप छूटे।

काकोरी षड्यन्त्र के समय ये स्काउट मास्टर थे। इसी समय "हिन्दुस्तानी सेवा दल" पुनः खुला। इसके आप शिक्षक नियुक्त हुए। जब आप हवालात में थे तब पुलिस अधिकारी आप पर बहुत ही क्रुद्ध हुए और कहा "हम इसे जेल में ही मरवा देंगे।" एक बार आपने एक ओजस्वी भाषण दिया, इसलिये आप धारा १४४ में पकड़ लिये गये किन्तु कांग्रेस मन्त्रिमण्डल ने आपको छुड़वा दिया।

श्री राजकुमार सिन्हा

(ब्र० वेदपाल)

१९२५ ई० में देश और विदेश में क्रान्तिकारियों ने काशी से सर्वत्र क्रान्ति पैदा करने के लिये पर्चे बाँटे थे।

हिन्दू विश्वविद्यालय काशी में भी ये पर्चे बंटे थे। प्रातःकाल विद्यार्थी तथा विद्यालय के अधिकारीगण उठे तब उन्होंने देखा कि प्रत्येक कमरे की दीवार पर पर्चा लगा हुआ है। यहाँ तक ही नहीं टट्टियों की दीवरों पर भी पर्चे लगे हुए थे। इन्होंने भी अपने कमरे के द्वार पर पर्चा देखा और पढ़ा। ये पर्चे आजाद आदि क्रान्तिकारियों ने ही लगाये थे।

हिन्दू विश्वविद्यालय के बङ्गाली युवकों की "बंगला छात्र परिषद्" नामक एक संस्था चिरकाल से चलती आ रही थी। इसका उद्देश्य छात्रों के प्रति प्रेम बढ़ाना था। राजकुमार सिन्हा ने "राष्ट्रीय आन्दोलन और छात्रों का कर्त्तव्य" नामक एक निबन्ध भी लिखा था। पुलिस ने इस निबन्ध को राजद्रोहात्मक बतलाया।

३० अक्टूबर १९२५ को पुलिस ने इनके कमरे की तलाशी ली। उस समय ये बीमारी के कारण कानपुर में रहते थे। तलाशी में एक विंचेस्टर राइफल, एक शेर उड राइफल तथा एक पुलिस दरोगा का झब्बा और पगड़ी मिली। उससे दूसरे दिन ये गिरफ्तार कर लिए। गिरफ्तारी के बाद श्री राजकुमार कानपुर जेल में रखे गये और इन पर दबाव डाला गया कि सब बातें बता दें किन्तु ये तो अपने निश्चय पर अडिग थे। इनको एक कोठरी में बन्द करके बहुत कष्ट दिया। ५ दिसम्बर को ये मुकद्दमे के लिए लखनऊ जेल में लाये गए। इसके कुछ दिन पश्चात् इनके पिता जी का देहान्त हो गया। इससे इनको बहुत दुःख हुआ, किन्तु इतना होते हुए भी इन्होंने सब कुछ सहन किया। ये गायक बहुत ही अच्छे थे। इनका गाना सुनने के लिए सब उत्सुक रहते थे। हवालात में इन्होंने ३, ४ भाषायें भी सीखीं। ये अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति से बहुत प्यार करते थे। इसी समबन्ध में ये अधिक अध्ययन करते थे। अखबारों को प्रतिदिन पढ़ा करते थे। इसी कारण से इनका चित्त राजनीति की ओर झुका था। बरेली सेन्ट्रल जेल में इन्होंने लगातार ३८ दिन तक अनशन किया था। इस स्थिति में इनका भार ४७ पौंड कम हो गया। हवालात में भी इन्होंने ३१ दिन का अनशन किया था।

श्री राजकुमार आज के युवकों की तरह के नहीं थे उन्हें अपने देश से बहुत प्रेम था। ये जाँति-पांति को कुछ नहीं मानते थे। इस प्रकार इनका सारा जीवन देशसेवा में ही काम आया। ये बहुत ही वीर थे। आपका सारा जीवन कष्टमय संघर्षों से भरा हुआ है।

विजयकुमार सिन्हा

(ब्र० यशपाल)

विजयकुमार का जन्म कानपुर के प्रतिष्ठित घराने में हुआ था। आपके पिता का नाम बाबू मारकण्डेदास सिन्हा था। आप दो भाई थे। आपके बड़े भाई का नाम राजकुमार था। आपका बड़ा भाई जब काकोरी डकैती में गिरफ्तार हो गया, तब आपने भी क्रांतिकारी दल के सदस्यों में नाम लिखा दिया, तब आप काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में बी० ए० सी० में पढ़ते थे। पार्टी का कार्य करते हुए आप पुलिस की दृष्टि से न बच सके। लाहौर षड्यन्त्र में पकड़े गये। कई जेलों में आपको भेजा गया। अण्डमान जेल में आपने अनशन-व्रत आरम्भ कर दिया। ५५ दिन में आपने अनशन समाप्त किया था। आपको आजन्म काले पानी का दण्ड मिला।

पं० गेंदालाल दीक्षित

(ब्र० यशपाल)

आगरा जिले के मई नामक ग्राम में पं० भोलानाथ दीक्षित के घर में ३० सितम्बर १८५८ में पं० गेंदालाल दीक्षित का जन्म हुआ था। आप एन्ट्रेन्सी की परीक्षा उत्तीर्ण करके ओरछे के

डी० ए० वी० स्कूल में अध्यापक हो गये। आपकी इच्छा थी कि मैं आगे भी पढ़ूं, परन्तु घर की परिस्थिति खराब होने के कारण अध्यापक होना पड़ा।

उन्हीं दिनों बंगाल में बंगभंग का और महाराष्ट्र में शिवाजी का जन्मोत्सव का आन्दोलन हो रहा था। आप तिलक जी के भक्त थे इसलिए आपने शिवाजी समिति की नींव डाली। इस समिति का काम नवयुवकों में देशप्रेम उत्पन्न करना था। कुछ दिन तो पुस्तक और अखबारों द्वारा प्रचार होता रहा, परन्तु बंगालियों के मृत्यु से खेलने वाले कार्यों को देखकर आपने उसी नीति का अनुसरण किया। उस नीति का अनुसरण करने के लिए बन्दूक और कारतूसों की सुविधा न होने के कारण इस मार्ग को छोड़ना ही श्रेयस्कर समझा।

आपने फिर निश्चय किया कि पहले युद्ध-विद्या सीखनी चाहिए, इसलिए सेना में भर्ती होना चाहिए। फिर सेना से त्यागपत्र देकर जनता में सैनिक पैदा करने चाहियें। सैनिकों की अच्छी संख्या हो जाने पर देश का काम करना चाहिए। आपने अपना नाम भर्ती अफसरों को नोट करा दिया, किन्तु आपके ताऊ जी ने आपको भर्ती नहीं होने दिया। आपका मन गांव में नहीं लगता था, क्योंकि आप जो कुछ करना चाहते थे, वह गांव में नहीं हो सकता था, अतः आप औरैया आ गये। औरैया में कुछ दिन के बाद लक्ष्मणानन्द नामक एक ब्रह्मचारी से आपकी भेंट हो गई। उनके और आपके विचार एक थे। उनका शरीर भी बहुत हृष्ट पुष्ट था, दोनों की आपस में गाढ़ मैत्री हो गई।

इटावा जिले से ग्वालियर राज्य लगा हुआ है। यमुना के उस पार के खादरों में डाकू सदैव रहते हैं। वहां ठाकुर पञ्चमसिंह उन दिनों में प्रसिद्ध डाकू था। उसके अनेक साथी काम करते थे। उसके पास हथियार और घोड़े भी थे। स्वामी लक्ष्मणानन्द तथा पं० गेंदालाल दीक्षित दोनों उसके दल के अन्दर मिल गये। उनमें बिजकोले के चौबे दर्शनानन्द जी, गुरुकुल के ब्रह्मचारी सत्यानन्द जी, धनुर्विद्या के शिक्षक अघाराघ जी तथा आगरा के पं० रामरत्न जी, श्री कृष्णदत्त जी आदि उस दल में मिले हुए थे। इनमें सत्यानन्द जी नेपाल की ओर लक्ष्मणानन्द जी मध्यभारत की रियासतों में, गेंदालाल जी यू० पी० में भेजे गये। किन्तु मन में एक तरंग आई और बम्बई पहुंच गये। वहां पर जाकर सावरकर के परिवार से मिले। फिर कोटा में जाकर अपने भाई से मिले। वहां आपके भाई शिक्षा विभाग के इन्स्पेक्टर थे। वहाँ जाकर आपने बन्दूक चलानी सीखी। कोटे से आप ग्वालियर आ गये। वहां तब पैसों की बहुत आवश्यकता थी, इसलिए निश्चय हुआ कि इटावा जिले में डकैती डाली जाये। नियत समय में डकैती डाली गई। अस्सी हजार रुपये प्राप्त हुए और कुछ सोना तथा दो घोड़े भी प्राप्त हुए। उस डकैती में एक मनुष्य मारा गया इससे उन्हें बड़ा दुःख हुआ। पं० गेंदालाल जी ने सोचा हत्या से प्राप्त धन देशसेवा में नहीं लगाना चाहिए, क्योंकि पाप से प्राप्त धन कभी सफलता प्राप्त नहीं करा सकता। अतः यह धन अपने दल के लिए रखो। ग्वालियर से लौटकर मैनपुरी के पास एक गांव में अध्यापक का काम करने लगे। बाद में आपके मित्रों के दबाव के कारण और दल के लिए महती आवश्यकता के कारण उसी धनी के डाका डालने का निश्चय किया। उस डाके में रामप्रसाद बिस्मिल शामिल थे।

काकोरी षड्यन्त्र में भी पं० गेंदालाल जी शामिल थे, उस केस के अन्दर इनके साथी पकड़े गये और फांसी के तख्ते पर लटका दिए गए।

मध्य भारत में ठाकुर पञ्चमसिंह तथा मन्नूराज प्रसिद्ध डाकू थे। यू० पी० सरकार इन दोनों को समाप्त करने का विशेष रूप से प्रयत्न कर रही थी। ग्वालियर पुलिस भी इनको पकड़ने में पूरी पूरी सहायता देने लगी। एक दिन ग्वालियर की सरकार ने ठाकुर पञ्चमसिंह को अपने घेरे में ले लिया। उसमें पं० गेंदालाल जी भी सम्मिलित थे। वहां से छिपकर सारा दल भाग गया। आखिर एक दिन दोनों दल पकड़े गये। कारण यह था कि दोनों दल भूखे थे, इन्दुसिंह ठाकुर को सरकार ने लोभ देकर पकड़वाने के लिए नियुक्त कर रखा था। इन्दुसिंह ठाकुर ने इन दोनों दलों को एक वन में ठहरा लिया और भोजन लाकर इन दोनों दलों को खाने के लिए दिया, भोजन में विष मिला रखा था और थोड़ी सी दूर पर पुलिस पकड़ने के लिए रखी हुई थी। भोजन करने के पश्चात् इन्हें पुलिस ने आकर घेर लिया। थोड़ी देर तक तो खूब घमसान युद्ध होता रहा अन्त में अचेत हो गये और सब पकड़े गये। इसमें गेंदालाल जी भी शामिल थे। सबको पकड़ कर ग्वालियर के किले में भेज दिया गया। इनको छुड़ाने के अनेक प्रयत्न किये परन्तु पुलिस का कड़ा पहरा था इस कारण से छूटना कठिन था।

गेंदालाल जी ने यू० पी० सरकार के सामने सारा अपराध अपने ऊपर ले लिया। पुलिस ने कुछ बच्चों को पकड़ रखा था। पं० गेंदालाल जी ने पुलिस के सामने कहा इन बच्चों को क्यों पकड़ रखा है। इन सबका कारण मैं हूं और दो तीनों के नाम असत्य ही बता दिये जिससे पुलिस को निश्चय हो गया कि यह सब के नाम बता देगा तथा सरकारी गवाह बना दिया। उनके पास एक रामनारायण नामक व्यक्ति को देख-भाल के लिए नियुक्त कर दिया। किन्तु उसी रात दोनों हवालात से निकल कर भाग गये।

सारे स्थान ढूंढ मारे परन्तु कहीं पता नहीं चला, दो तीन दिन के पश्चात् अपने घर आए परन्तु घर पर पुलिस का पहरा था। घर पर मिले तथा भोजन आदि किया, माता जी के चरण स्पर्श करके घर से निकल पड़े और कोटा में आकर काम करने लग गये। भूख प्यास के कारण गेंदालाल जी का स्वास्थ्य खराब हो गया था अत: रुग्ण हो गये। चिकित्सा करने पर भी ठीक नहीं हुए। अन्त में दिल्ली के हस्पताल (चिकित्सालय) में गए वहां पर अपनी पत्नी को बुलाया और मिले। २० दिसम्बर १९२० ई० में आप इस संसार से चल बसे। मरते समय में आपने कहा था कि "मैं दूसरा जन्म लेकर नए उत्साह से शत्रुओं का नाश करूंगा"। मरते समय भी पुलिस चिकित्सालय के द्वार पर विद्यमान थी।

अमर शहीद शालिग्राम शुक्ल

(ब्र० वेदपाल)

श्री शालिग्राम को कानपुर की पुलिस हर समय देखती रहती थी। पुलिस ने उन्हें पकड़ने के लिए दिन रात एक कर रखे थे। एक दिन २ दिसम्बर सन् १९३० को पुलिस को पता चला कि श्री शालिग्राम इस समय डी० ए० वी० कालेज में हैं।

कालेज में घूमती हुई पुलिस की आप से भेंट हुई। देखते ही पुलिस इन्स्पेक्टर शम्भूनाथ ने आपको ललकारते हुए पकड़ने का यत्न किया। भागते हुए श्री शुक्ल ने पिस्तौल निकालकर पुलिस

पर तीन गोलियां चलाई जो कि तीन व्यक्तियों को लगीं। अन्त में दोनों ओर से गोलियां चलने लगीं तथा मि० हण्ट की एक गोली श्री शालिग्राम को लगी। इस गोली के लगने से शुक्ल जी का स्वर्गवास हो गया।

महान् क्रांतिकारी राजा महेन्द्रप्रताप

(वेदव्रत सिद्धान्तशिरोमणि)

अपनी शूरवीरता के लिए प्रसिद्ध जाटवंश में मार्गशीर्ष शुक्ला पञ्चमी तदनुसार ६ दिसम्बर १८८६ ई० को ब्रजभूमि मुरसान (मथुरा) में राजा महेन्द्रप्रताप का जन्म हुआ। आप राजा घनश्याम-सिंह जी के तृतीय पुत्र और हाथरस के रईस राजा हरनामसिंह के दत्तक पुत्र हैं। वृन्दावन में राजसी ठाठ में आपका लालन-पालन हुआ। मुहमडन एंग्लो ओरियण्टल कालेज (वर्तमान अलीगढ़ विश्व-विद्यालय) में आपने एफ० ए० उत्तीर्ण की। आपकी गणना होशियार विद्यार्थियों में की जाती थी। जब आप बी० ए० में पढ़ते थे तब १९०७ में नगर की प्रदर्शनी में किसी विद्यार्थी की पुलिस कांस्टेबल से कहासुनी हो गई। अंग्रेज प्रिंसीपल ने विद्यार्थी को ३ मास के लिए कालेज से निकाल दिया। विद्यार्थियों की सभा में प्रिंसिपल और कुछ प्रोफेसरों के अशिष्ट व्यवहार के कारण हड़ताल हुई, आपको उस हड़ताल का नेता माना गया और कालेज से पृथक् कर दिया गया। आगरा में कुछ दिन पढ़े, किन्तु आपकी पढ़ाई यहीं समाप्त हो गई।

विदेश की परिस्थितियों के अध्ययनार्थ आपने १९०७ में यूरोप की यात्रा की। १९११ में आपने 'प्रेम' साप्ताहिक पत्र निकाला। इससे पूर्व १९०८ में आपने प्रेम महाविद्यालय वृन्दावन की स्थापना की थी।

२८ दिसम्बर १९१५ को आपने लन्दन को प्रस्थान किया। आपके साथ स्वामी श्रद्धानन्द जी के पुत्र हरिश्चन्द्र विद्यालङ्कार भी थे। आप विदेशों में भारत को स्वतन्त्र करवाने के लिए ही गये थे। १ जुलाई १९१५ ई० को आपकी जायदाद कुर्क कर ली गई। भारत की स्वाधीनता के लिए आप ३१ वर्ष तक जर्मनी, स्विट्जरलैण्ड, अफगानिस्तान, काबुल, तुर्की, यूरोप, अमेरिका, चीन, जापान, रूस आदि में भटकते फिरे। इस क्रांति के उपासक ने देश के लिए अपना सर्वस्व न्यौछावर कर दिया। आपके सैकड़ों साथी भारत को स्वतन्त्र न देख सके, आपको भी सम्भवतः भारत वापिस लौटने की आशा न रही होगी। किन्तु सौभाग्यवश अगस्त १९४६ में आपको भारत आने की अनुमति मिल गई और आप भारत में लौट आये। यदि कुछ वर्ष पूर्व आप अंग्रेज सरकार के हाथ आ जाते तो गोली से उड़ा दिए जाते। 'बागी' बताकर शूली पर चढ़ा दिए जाते अथवा 'राजद्रोही' घोषित कर आजन्म कालापानी की सजा दे दी जाती। किन्तु आज हमारे बीच में आप विद्यमान हैं। स्वतन्त्र चुनाव लड़कर आप एम० पी० बने हैं। कांग्रेस के राज्य में आपको कोई यथोचित सम्मान और स्थान मिलने की आशा नहीं की जा सकती।

विदेशों से लौटकर भारत में आए तब फरवरी १९४७ ई० में आप गुरुकुल झज्जर के रजत-जयन्ती महोत्सव पर डा० राजेन्द्रप्रसाद जी के साथ पधारे थे।

१९४१ में राजा जी को एक नया विचार सूझा। आपने आर्यन लोग की योजना बनाई इसका उद्देश्य भी आसाम से ईरान तक के आर्य प्रदेश को स्वतन्त्र करना था और इसके लिए आप एक 'आर्य

सेना खड़ी करना चाहते थे किन्तु वह अनेक कारणों से सफल न हो सकी। ७२ वर्ष की आयु में भी आप नवयुवकों की भांति कार्य करते हैं और प्रत्येक कठिनाई का सामना करने के लिए उद्यत रहते हैं। विदेश से लौटने के पश्चात् आप गांधी जी से मिले और कांग्रेस में सम्मिलित हो गए। पदलोलुप कांग्रेसियों ने आपको उचित स्थान न दिया अत: महान् विद्रोही महेन्द्रप्रताप ने कांग्रेस को छोड़ दिया। कांग्रेस सत्ता आपकी परवाह नहीं करती और आप उसकी कुछ परवाह नहीं करते। तीन कार्यों के लिए वे आज अकेले ही जूझ रहे हैं—

१- ईरान से आसाम तक आर्य बनाना।

२- विश्व राज्य की स्थापना का प्रयत्न करना।

३- भारत में ऐसी सरकार बनाना जो प्रेम और धर्म पर आश्रित हो।

आपका तप, त्याग और स्वदेशानुराग प्रत्येक नवयुवक के लिए अनुकरणीय है।

प्रसिद्ध क्रांतिकारी श्री रामचरणलाल शर्मा

(ब्र० वेदपाल)

श्री रामचरणलाल शर्मा का जन्म जिला एटा के गाँव नगलाडीह में हुआ था। एटा में हिन्दी-उर्दू की शिक्षा समाप्त कर आप अलीगढ़ कालेज में पढ़ने लगे। यहीं से आप कलकत्ता आदि स्थानों पर भ्रमण करने गये और क्राँतिकारी दल में सम्मिलित हो गयें। दल में रहकर आपने हृदय से काम किया। सबसे पहले आप १६०८ में गिरफ्तार किये गये। एटा के सेशन जज की अदालत में आपका मुकदमा चला, आप पर अंग्रेजी सरकार के विरुद्ध षड्यन्त्र रचने तथा विद्रोहात्मक भाषण देने का मुकदमा चलाया गया। इन अभियोगों में आपको दस-दस वर्ष के कालापानी की सजा मिली। दोनों सजायें साथ-साथ चलीं और आप दस वर्ष में ही छूट गये। आप युक्त प्रान्त के देशभक्ति के अपराध में इतनी अधिक सजा पाने वाले प्रथम व्यक्ति थे।

जब आप जेल से छूटकर आये उसी समय इलाहाबाद से निकलने वाले 'स्वराज्य' पत्र के सम्पादक बन गये। इस पत्र के सात सम्पादकों को अंग्रेज सरकार सजा दे चुकी थी। आप तीसरे सम्पादक थे। इसके पश्चात् प्रेस भी जब्त कर लिया गया। सजा होने के पश्चात् आपको जेलों में रखा गया। तत्पश्चात् आपको अण्डमान भेज दिया गया।

जेल में आप सानन्द जीवन व्यतीत करते थे तथा देशाभिमान में कठोर से कठोर कष्टों को सहन किया। एक बार आप को ३० बेंत लगाये गये और दूसरी बार ६ मास की सजा दी तथा फिर बढ़ा दी गई।

सन् १६१८ में आप एटा में लाये गये। यहां लाकर आप छोड़ दिए। छूटते ही नागपुर गये। उसी समय व्याख्यानों के अपराध में आपको पंजाब पुलिस ने पकड़ना चाहा। पुलिस जबलपुर पहुँची, आप पाण्डीचेरी चले गये। यहां पर अंग्रेजी पुलिस ने आपका पीछा किया। कुछ दिन तक आप यहाँ रहे। आपके पांव में जूते ने घाव कर दिया। यह घाव बहुत बढ़ गया, यहाँ तक कि डाक्टरों ने भी इलाज करने से निषेध कर दिया। आप मित्रों की अनुमति से मद्रास में इलाज कराने के लिए तैयार हुए। गवर्नर को तार दिया कि इन पर मुकदमा न चलाया जाये। मद्रास के गवर्नर ने

इसे स्वीकार कर लिया, जब आप जाने के लिए पाण्डीचेरी से निकले तभी आप गिरफ्तार कर लिए गये। मद्रास के अस्पताल में आपके पैर का इलाज कराया गया किन्तु सफलता नहीं मिली। अन्त में आपका पैर काटा गया। पैर के कटने से आपका स्वर्गवास हो गया।

धन्य है वीर रामचरणलाल जिनको देश के कार्य के लिए पैर से ही नहीं जीवन से भी हाथ धोना पड़ा। वे देश के लिए प्राणों का बलिदान कर सदा के लिए अमर हो गये।

श्री विष्णुशरण दुबलिस

(ब्र० यशपाल)

श्री विष्णुशरण दुबलिस मेरठ के रहने वाले हैं। असहयोग के समय में इन्होंने बी० ए० से अपना पढ़ना छोड़ दिया। डेढ़ साल के लिए जेल भी गए थे। लखनऊ जेल में इनके साथ विशेष व्यवहार की आज्ञा हुई, परन्तु इन्होंने अपने लिए विशेष व्यवहार के लिए प्रतिषेध कर दिया। १९२३ से पहले ही क्राँतिकारी दल में शामिल होगए। ये प्रान्तीय दल के एक योग्य संगठनकर्त्ता थे। काकोरी केस में हवालात में १६ दिनों तक और फ़ैसले के बाद नैनी जेल में ४४ दिनों तक अनशन किया था। काकोरी केस में ७ वर्ष की सख्त कैद हुई थी। जनवरी १९२७ में नैनी जेल में जो दंगा हो गया था, उसके सम्बन्ध में इन पर दंगा कराने का अभियोग लगाया गया था। इस मामले में इन्हें आजन्म कालापानी की सजा दी गई। उस दिन जब इस दंगे के सम्बन्ध में अन्यों को फांसी की सजा सुनाई गई तब आप दयार्द्र हृदय से रोने लगे और कहने लगे मुझे फाँसी की सजा क्यों नहीं दी गई। आज-कल आप भारतीय लोकसभा के सदस्य हैं।

श्री मुकुन्दीलाल

(ब्र० यशपाल)

श्री मुकुन्दीलाल जी इटावा जिले के औरैया कस्बा के रहने वाले थे। आपके पिता जी एक प्रसिद्ध व्यापारी थे, मरते समय वे काफी धन छोड़ गए थे। गेंदालाल जी ही मुकुन्दीलाल को राज-नीतिक जीवन में लाये। मुकुन्दीलाल जी इनको गुरु मानते थे। काकोरी षड्यन्त्र में आपको कालापानी की सजा हुई थी। सैशन कोर्ट से दस वर्ष की सजा हुई किन्तु अपील करने पर सजा बढ़ गई। साथ ही मैनपुरी षड्यन्त्र में भी छः वर्ष की सजा हुई थी। इसलिए लोग उन्हें "भारत भूषण" भी कहते थे। आपने दोनों सजायें बड़े धैर्यपूर्वक सहीं। जेल में सबके साथ आपका बन्धुत्व का व्यवहार था। ये सब यन्त्रणायें सहने के पश्चात् आपका जीवन सेवा कार्य में ही व्यतीत हुआ।

अज्ञात क्रांतिकारी—

मास्टर रामजीलाल

(विजयपालसिंह वर्मा)

मास्टर रामजीलाल जी का जन्म ६ नवम्बर १९०१ को फजलपुर ग्राम, तहसील सरधना, जिला मेरठ में हुआ था। आपने एक गरीब किसान के यहां जन्म लिया। बचपन ही से उदार सत्यनिष्ठ तथा विचारशील मनुष्य की भांति उनका ध्येय सात्विक और उन्नत जीवन की ओर अग्रसर होना था। प्रारम्भिक शिक्षा-दीक्षा गांव में ही हुई और इसके पश्चात् बड़ौत (मेरठ) से मिडल पास करके, मिशन स्कूल मेरठ में अंग्रेजी शिक्षा का अध्ययन प्रारम्भ किया। जिस समय आप मिशन स्कूल में पढ़ते थे उस समय अंग्रेजी राज्य की तूती बोल रही थी। सभी ओर से ईसाई लोग देशवासियों को प्रलोभन देकर अपनी ओर खींचने का प्रयास करते थे। नौकरी, धन और युवतियों का प्रलोभन देकर इस दीन-हीन भारत की जनता को ईसाई सांचे में ढाला जा रहा था।

मास्टर जी पर भी छात्रवृत्ति का मुलम्मा चढ़ाकर ईसाई बनने पर बाध्य किया गया परन्तु सौभाग्यवश इन्हीं दिनों आर्यसमाज के अथक प्रयत्नों के कारण ईसाई मत के ढोल की पोल को जनता के सामने रखा जा रहा था। फिर भला मास्टर जी जैसा सात्विक और विचारशील मनुष्य इनसे प्रभावित हुए बिना कैसे रह सकता था। आपने असत्य मार्ग पर चलना कभी सीखा ही नहीं था। आपने छात्रवृत्ति को लात मार दी। परन्तु इसका परिणाम मास्टर जी के लिए कष्टप्रद सिद्ध हुआ। अन्ततोगत्वा आपको मिशन स्कूल छोड़ने पर बाध्य किया गया। अपने कर्त्तव्य व चरित्र की रक्षा कर आप वहां से दिल्ली आये और यहीं पर पढ़ना प्रारम्भ किया। हाई स्कूल परीक्षा पास कर आप सरकारी नौकरी पर लग गये। कुछ महीने अच्छी तरह कार्य किया। उसी समय अंग्रेजों का रोलट एक्ट पास हो रहा था, भारतीय जनता का दमन जनरल डायर की खूनी गोलियां कर रही थीं। मास्टर जी जैसा व्यक्ति ऐसे समय में कैसे चुप रह सकता था, सायंकाल को खाना भी मिलेगा या नहीं इसकी परवाह न करते हुए उन्होंने अंग्रेजी नौकरी को लात मार दी।

इसके कुछ दिनों पश्चात् पटवारगिरी सीखी और उसकी परीक्षा में सर्वप्रथम स्थान प्राप्त किया। पटवारी पद के लिए आपको इन्टरव्यू (Interview) का बुलावा आया। उस समय इस पद के लिए मेरठ जिले के प्रार्थी नहीं लिए जाते थे। आपकी ओफीसर तक पहुँच भी थी। आपको कहा गया कि आप अपने को मेरठ का प्रार्थी न कहके किसी और जिले का प्रमाणित कर दीजिए। मास्टर जी के मन में उथल पुथल मच गई। क्या मैं एक छोटी सी नौकरी के लिए असत्य भाषण करूंगा। इण्टरव्यू के लिए बुलाया गया और आपने सत्यता के साथ अपने आपको मेरठ जिले का प्रार्थी ही प्रदर्शित किया। इसी सत्यप्रियता के कारण आपको मिलती हुई नौकरी से हाथ धोना पड़ा। आपको स्मरण था अपने बाबा का वह सदुपदेश, जब वह उन्हें गोदी में लेकर कहा करते थे "बेटा नौकरी वहां करना जहां असत्यता और रिश्वत का नाम तक न हो।"

इसके पश्चात् आपको कानूनगो बनाकर सरकारी नौकरी पर सीतापुर भेज दिया। रोटी की समस्या होते हुए भी उन दिनों की सरकारी नौकरी का जीवन और मास्टर जी के विचार एक दूसरे

से मेल न खा सके। आप यहां भी अधिक समय तक न ठहर सके। अतः आपने उस नौकरी से भी त्याग-पत्र दे दिया। तत्पश्चात् स्वावलम्बन का सहारा पकड़, आगरा जाकर कपड़ा बुनना सीखना प्रारम्भ किया, परन्तु काम अच्छा न चलने के कारण आपको चुप होकर ही बैठना पड़ा। सरकारी नौकरी के जीवन से तो आपका मन उचट ही गया था। आपने यही समुचित समझा कि अध्यापक बनकर आरम्भ से ही देश के बालकों को ऐसे सांचे में ढाला जाए, जिससे वह अपने देश, जाति, समाज का कल्याण कर सकें। अत एव आपने टीचर्स ट्रेनिंग पास करके दिल्ली की प्राइवेट संस्था "रामजस" स्कूल में नौकरी की। बहुत समय तक अध्यापन का कार्य सुचारू रूप से करते रहे।

इसके साथ ही साथ आपका सामाजिक कार्य भी दिन पर दिन बढ़ने लगा। जहां कहीं भी सत्संग, सामाजिक सदुपदेश होते वहां आपको बिना गये चैन न आता। इन्हीं संस्कारों ने एकत्रीभूत होकर आपको एक आर्यसमाज मन्दिर बनवाने की प्रेरणा प्रदान की। आपने अथाह परिश्रम से अपने ग्राम फजलपुर में एक आर्यसमाज मन्दिर की स्थापना की जो कि अब भी विद्यमान है। प्रतिवर्ष उसके वार्षिकोत्सव होते हैं और जो ग्रामीण जनता को सद्उपदेशों से सन्मार्ग पर लाने का, भ्रष्टाचार को दूर करने का एकमात्र साधन है।

अध्यापन के साथ-साथ आपका क्रांतिकारी कार्य भी सदा चलता रहता था। गणित, भूगोल, इतिहास और विज्ञान के अतिरिक्त स्काउटिंग के भी अध्यापक थे। उन्हें बाहर भी जाना पड़ता था। इसी बीच उन्होंने क्रांतिकारियों के लिए क्या-क्या चीज सीखना आवश्यक है, सब सीख लिया। अंग्रेजी राज्य के अत्याचारों को देखकर जनता स्तम्भित थी। स्वराज्य आन्दोलन भी तेज होता जा रहा था। जनता अपनी गई स्वतन्त्रता को किसी भी मूल्य पर वापस लेना चाहती थी। आवेश तथा बदला लेने की भावनायें अपनी जड़ जमा रही थीं। भगतसिंह, बिस्मिल, राजगुरु, सुखदेव सरीखे क्रान्तिकारी तथा अन्य न जाने कितने साथी फांसी के तख्ते को चूम चुके थे।

क्रांति की चिनगारी जोर पकड़ती ही गई और १९४२ में 'भारत छोड़ो' के नारे के साथ-साथ एक प्रचण्ड अग्नि देश में प्रज्वलित हो गई। स्वतन्त्रता की बलिवेदी पर मर मिटने का बिगुल बजा। ज्वाला की लपटें सारे देश में फैल गईं। अंग्रेजी सत्ता के प्रत्येक यन्त्र को उखाड़ फेंका जाने लगा। अपनी आहुति देने के लिए मास्टर जी भी शान्त न रह सके। आपके पीछे गुप्त पुलिस रहने लगी। सरकार की राजधानी दिल्ली के सबसे बड़े पुलिस स्टेशन कोतवाली चाँदनी चौक में भयंकर बम विस्फोट हुआ। केन्द्रीय सरकार की नाक के नीचे इतना सब कुछ हो गया, ये उसके लिए चुनौती थी। मास्टर जी जैसा क्राँतिकारी ही ऐसा कर सकता था। इसके पश्चात् तो पुलिस आपके पीछे हाथ धोकर पड़ गई और अन्त में बम केस के अभियोग में गिरफ्तार कर लिया गया।

कुछ दिन आपको सदर बाजार दिल्ली के पुलिस स्टेशन में रखा गया। इसके पश्चात् दिल्ली सैन्ट्रल जेल में और तत्पश्चात् आपको फिरोजपुर जेल में भेज दिया गया। दिन रात आपको सोने नहीं दिया जाता था और बड़ी-बड़ी यातनायें दी जाती थीं। आपको अपने क्रांतिकारी साथियों के फोटो दिए जाते थे और कहा जाता कि क्या आप इनको जानते हैं। परन्तु पुलिस आप से कोई भी गुप्त रहस्य न जान सकी।

आपके जेल जाने पर आपकी धर्मपत्नी तथा एकमात्र पुत्री को अत्यन्त कष्टों का सामना करना पड़ा, क्योंकि उनके एकमात्र आप ही अवलम्बन थे। १० महीने के कठिन कारावास के पश्चात् आपको केस साबित न होने के कारण छोड़ दिया। जेल से आने के चार वर्ष पश्चात् तक आपके पीछे गुप्त पुलिस (सी० आई० डी०) लगी रही। कारावास से मुक्त होते ही आपने फिर "रामजस" स्कूल में अध्यापन का कार्य प्रारम्भ किया। चार पांच साल बाद आप इस स्कूल से खत्री उपकारक हाई स्कूल में चले गए।

स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् जब कांग्रेस सरकार ने देश की बागडोर सम्भाली और लोगों को जेल का सर्टिफिकेट दिखाकर कांग्रेस सरकार में बड़े-बड़े पद मिल रहे थे, तब मास्टर जी ने घोर निराशा से कांग्रेस के साथ असहयोग करने का निश्चय किया। वह काँग्रेस की भोले असहाय पशु पक्षियों का मांस भक्षण को प्रोत्साहित करने की नीति के कट्टर विरोधी थे। कला का ठीक उद्देश्य न समझकर उसके नाम पर नवयुवतियों के नाच का प्रचार सरकार द्वारा देखकर वे बड़े दु:खी होते थे। देहली की सड़कों पर अनाथ भूखों को देखकर नई दिल्ली की बड़ी-बड़ी अट्टालिकाओं और उनमें रहने वाले ऊँचे वेतन पाने वालों से उन्हें घृणा सी हो गई थी। कभी-कभी तो बड़े दु:ख के साथ कहा करते थे कि "हमारे तो सभी प्रयत्न बेकार में ही गये। गोरे चले गये उनके स्थान पर काले सत्ताधारी बन गये। अन्तर केवल इतना ही है।" चलचित्रों द्वारा भारतीय युवक-युवतियों का चरित्र बिगड़ता देखकर वह कांग्रेसी सरकार पर अपना रोष प्रकट करते थे।

आप प्रातः चार बजे उठते तथा नियमित रूप से व्यायाम करते थे। पन्द्रह-पन्द्रह मील की यात्रा पैदल ही किया करते थे। इसी बीच आपको संस्कृत पढ़ने की अत्यन्त अभिलाषा हुई। धीरे-धीरे कई छोटी छोटी किताबें पढ़ डालीं। मास्टर जी कहा करते थे कि "अध्यापन कार्य से रिटायरमेंट के दिन पास आ रहे हैं। स्कूल से छूटने के पश्चात् आर्यसमाज और संस्कृत के प्रचार कार्य में जीवन व्यतीत करूंगा।" इस बीच आप 'विरजानन्द संस्कृत परिषद्' के सम्पर्क में आये और उनको परिषद् का महामन्त्री नियुक्त किया गया। अभी वह थोड़े ही दिन कार्य कर पाये थे कि देहली के सरकारी कर्मचारियों की लापरवाही से फैली हुई पीलिया की बीमारी, जिसने हजारों नागरिकों को मौत का ग्रास बना दिया, मास्टर जी को अपने चंगुल में दबोच डाला और एक अज्ञात क्रान्तिकारी ५६ वर्ष की आयु में जबकि केवल ४० या ४५ वर्ष के प्रतीत होते थे, सर्वदा के लिए संसार से चल बसे।

@VaidicPustakalay

अमर शहीद श्री देवसुमन

(श्री सत्यव्रत "सत्यार्थी" शास्त्री)

आज हमें स्वतन्त्र हुए दस वर्ष होगये। यह सर्वमान्य सिद्धान्त है कि बिना त्याग और बलिदान के स्वतन्त्रता जैसी अमूल्य वस्तु प्राप्त नहीं हो सकती। जिसका उदाहरण विश्व के भिन्न-भिन्न राष्ट्रों का इतिहास है। भारत को परतन्त्रता के असहनीय एवं घृणित पाश से मुक्त कराने को भारतमाता के असंख्य पुत्रों ने अपने आपको स्वतन्त्रता की बलिवेदी पर चढ़ाया। जिसका कि दिग्दर्शन आप अन्यत्र भी पायेंगे। किन्तु मैं एक ऐसे वीर शहीद का जीवन वृत्त लिखने का सौभाग्य प्राप्त कर रहा हूं जिसने अपनी किशोरावस्था में ही भारत के प्रत्येक नागरिक को स्वतन्त्र देखने का निर्णय कर लिया था और निश्चय किया हमारा पवित्र देश विदेशियों से आक्रान्त है। देश की निर्धन जनता विदेशी क्रूर शासन की चक्की में पिस रही है। इसे छुटकारा दिलाना प्रत्येक भारतीय का परम कर्तव्य है। वे थे श्री देवसुमन।

अमर शहीद श्री देवसुमन का जन्म १५ मई सन् १९१५ ई० को टिहरी गढ़वाल के जैल ग्राम में श्री पंडित हरिराम शर्मा बडोनी के घर हुआ था। श्री पं० हरिराम भी जनसेवी लोकप्रिय वैद्य थे, आपकी मृत्यु भी एक निर्धन हैजे के रोगी की सेवा करते हुए हुई थी। उस समय श्री सुमन की आयु तीन वर्ष की थी। उनकी माता का शुभ नाम श्रीमती तारादेवी था। माता विशुद्ध धार्मिक विचारों की थी। फिर देशसेवा के विचारों का होना स्वाभाविक ही था। एक दिन की घटना है कि जब देवसुमन देश-सेवी हो गये उस समय राज्याधिकारियों ने उनकी माता जी को डराया धमकाया, तो माता ने उत्तर में निर्भीक होकर कहा कि—"पुलिस वालो! तुम मुझे क्यों डराते हो, मुझे जेल से डर नहीं। पकड़ लो मुझे। आगे-आगे मेरा सुमन चलेगा और पीछे पीछे मैं चलूंगी।" धन्य है ऐसी सन्तान, जिसके पिता निर्धन की सेवा में स्वर्गवासी हुए और माता देश पर न्यौछावर होने को तत्पर है तथा सन्तान को देश पर मरने की शिक्षा देती है।

सुमन में बचपन से ही नेतृत्व शक्ति काम करती थी। वे ग्राम के बच्चों में कमाण्डर बनकर उन्हें फौजी खेल सिखलाते थे। यही कारण था कि वे किशोरावस्था में ही अपनी अपूर्व संगठनशक्ति से प्रजामण्डल की स्थापना कर उसका काम तेजी से चला पाये थे। विधाता का विधान ही विचित्र है। साधारण आर्थिक स्थिति की अवस्था में ही श्री पिता जी का बचपन में स्वर्गवास हो जाने से धनाभाव पढ़ाई चालू रखने में बाधक बना। घर से माता जी को विद्या पढ़ने की सान्त्वना देकर निकल पड़े। पञ्जाब विश्वविद्यालय की हिन्दी रत्न-भूषण तथा प्रभाकर और हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग की विशारद व साहित्य रत्न परीक्षायें बड़े अच्छे नम्बरों से उत्तीर्ण कीं।

१५ वर्ष की छोटी ही आयु थी कि सन् १९३० का तूफानी जमाना आया। श्री देवसुमन गांधी जी के नमक सत्याग्रह के समय गैर कानूनी नमक बनाते पकड़ा गया। १४ दिन की जेल में २१ बेंतों की प्रतिदिन की सजा देकर छोड़ दिया गया।

सन् १९३१ में लाहौर ओरियण्टल कालेज में भर्ती हो गये। उन्हीं दिनों देश के राष्ट्रनायक श्री पं० मोतीलाल जी की मृत्यु पर देश भर में व्यापक हड़ताल हुई। सुमन ने भी कालेज के छात्रों में जागृति पैदा कर पूर्ण हड़ताल करा दी। फलस्वरूप आपको कालेज से विद्रोही कहकर निकाल दिया गया। इसके बाद तो सुमन जी देश स्वतन्त्रता के दीवाने बन गये और आगे पढ़ने का विचार त्याग देश सेवा करने का ही प्रोग्राम बना लखनऊ, दिल्ली आदि नगरों में देश के कर्णधार नेताओं से मिलकर टिहरी स्टेट को आजाद कराने का प्रोग्राम बना अपने साथियों में घूम-घूमकर उन्हें आजादी का जाम पिलाने लग गये। वे उन दिनों अपनी धुन में पागल हो गये थे। रात दिन एक कर जहां कहीं जाते वहां यही चर्चा करते कि टिहरी की जनता को दुहरी गुलामी से मुक्त करना है।

सन् ३७ की बात है टिहरी राज्य को पता लगा कि सुमन एक योग्य व्यक्ति है। यदि उसे नौकरी दे दी जाये तो विद्रोह नहीं कर सकेगा। राजा ने उन्हें नरेन्द्रनगर बुलाया, अपने विचार व्यक्त किये, तो सुमन ने उत्तर दिया कि—"महाराज मैं चन्द चांदी के टुकड़ों के लिए अपना विकास नहीं रोक सकता।" उन्हीं दिनों उनका विचार बी० ए०, एम० ए० आदि करने का था। इसलिए वे जामिया मिलिया राष्ट्रीय विद्यालय में भर्ती हुए। स्वतन्त्रता की तो प्रचण्ड अग्नि आपके हृदय में धधक ही रही थी और फिर स्टेट के अत्याचारों का नग्न नृत्य उनके सामने आता तो तत्काल ही विद्याध्ययन का विचार त्याग देते। यहां भी ऐसा ही हुआ।

सन् १९३८ का समय था, चारों ओर स्वतन्त्रता की अग्नि धधक रही थी। श्री पं० जवाहरलाल नेहरू गढ़वाल के राजनैतिक सम्मेलन में श्रीनगर (गढ़वाल) पधारने वाले थे। बस स्वतन्त्रता समर के अमर सेनानी श्री सुमन श्रीनगर पहुंच गये। वहाँ उन्होंने पं० नेहरू को रियासती जनता की अवस्था बताई।

आपकी राजनैतिक विचारधारा तथा तीव्र सूझ-बूझ एवं मधुरभाषिता से पं० नेहरू बहुत ही प्रभावित हुए। परिणाम यह हुआ कि पं० जवाहरलाल नेहरू ने अपने भाषण में उसी दिन गढ़वाल राज्य की जनता के कष्टों का वर्णन किया। तत्पश्चात् देश के नेताओं से परामर्श कर आपने २३ जनवरी सन् १९३१ को देहरादून में "टिहरी राज्य प्रजामण्डल" की स्थापना की। फरवरी में जब लुधियाना में अखिल भारतीय देशी राज्य लोक-परिषद् का अधिवेशन हुआ तो उसमें आपको स्थायी समिति हिमालय प्रान्तीय देशी राज्यों का प्रतिनिधि चुना गया। उस समय सुमन जी की आयु २४ वर्ष की थी। इस अधिवेशन की अध्यक्षता श्री पं० जवाहरलाल नेहरू ने की थी। उसमें आपने एक भाषण दिया था और "राज्यों में उत्तरदायी शासन हो" का प्रस्ताव पास करवाया था।

इन्हीं दिनों दिल्ली में आपने श्री पं० हृदयनाथ कुञ्जरु की अध्यक्षता में "अखिल पर्वतीय सम्मेलन करवाया था। लोक-परिषद् में राजनैतिक प्रतिनिधि की हैसियत में महात्मा गांधी से भी विचार विमर्श हुआ और फिर महात्मा गांधी जी की प्रेरणानुसार टिहरी राज्य के अत्याचारों की जांच के लिए एक कमेटी बनी, जिसके सुमन जी मन्त्री बनाये गये। जब रिपोर्ट निकाली तब दुनियां को पता लगा कि रियासती जनता किस प्रकार राहुओं का शिकार बनी हुई है।

श्री पं० जयनारायण व्यास (जो अ० भा० देशी राज्य लोक-परिषद् के अध्यक्ष थे) से सुमन जी का अटूट सम्बन्ध हो गया था। आप प्रस्तावादि बनाने में भी बड़े पटु थे। क्योंकि आपका कार्यक्षेत्र

घर से बाहर ही था अत एव अपनी प्रिय धर्मपत्नी श्रीमती विनयलक्ष्मी (वर्तमान एम० एल० ए० उ० प्र०) को कन्या गुरुकुल कनखल में प्रविष्ट करा दिया था।

पुनः सन १९४० के लगभग मई मास में आप अपनी प्रिय जन्मभूमि टिहरी राज्य में पहुँच गए। वहां जाकर आपने राज्य के विरुद्ध बगावत करने का खुला चैलेंज दे दिया। यद्यपि आप पर राज्य ने प्रतिबन्ध लगा दिया था। परन्तु श्री नेहरू तथा महात्मा गांधी जी ने आपको पूरे जोर शोर से काम करने का आदेश दिया। फिर क्या था, श्री सुमन जी ने स्टेट में बगावत का झण्डा बुलन्द किया। किन्तु शीघ्र ही आपको गिरफ्तार कर लिया गया। जब दरोगा ने हाथ में हथकड़ियां डालीं तो उस समय सुमन ने एक उर्दू का शेर पढ़ा जिसकी मुझे एक लाइन याद रह सकी कि—"तमन्ना जिसकी थी मुद्दत से वह दिन आज आया है।" उनकी बहादुरी को देखकर सरकारी कर्मचारी भी प्रशंसा करते थे। कुछ दिन कारावास में रखने के पश्चात् आपको स्टैट से निर्वासित कर दिया गया।

फिर आजादी के परवानों को परखने के लिए सन् १९४२ का समय आया। सुमन जी ने स्टेट में विद्रोह की आग सुलगा दी। इधर सारे देश में महात्मा गाँधी जी ने "अंग्रेजो भारत छोड़ो" का नारा लगाया। उधर श्री सुमन ने "राजाओ अंग्रेजों से नाता तोड़ो" का भी नारा बुलन्द किया। आपको गिरफ्तार कर देहरादून जेल भेज दिया। देहरादून से फिर आपको २१ नवम्बर ४२ को आगरा जेल भेज दिया गया। वहाँ आपको काफी यातनायें भुगतनी पड़ीं। १९ नवम्बर सन् १९४३ को रियासती व्यक्ति समझकर आपको रिहा कर दिया गया।

श्री सुमन जी आगरा जेल से छूटते ही टिहरी आये और वहां के राजबन्दियों पर होनेवाले जुल्मों को भयानक कथा सुनकर आप अपने को न सम्भाल सके और उनका मुकाबला करने टिहरी की ओर चल दिए। फिर सुमन जी को ३० नवम्बर सन् ४३ को जेल में डाल दिया गया और राजद्रोह का अभियोग चलाया गया। इसी बीच श्री सुमन ने जेल के अत्याचारों के विरुद्ध महाराजा टिहरी से लिखा पढ़ी कर मिलने की इच्छा प्रकट की। परन्तु मिलने की आज्ञा न मिली। फिर सुमन ने २ मई १९४४ से राजा के अत्याचारों के विरुद्ध यह कहकर कि "मैं अपने शरीर के कण-कण के नष्ट होने तक टिहरी की नागरिक आजादी की रक्षा करूँगा," आमरण अनशन कर दिया। ८४ (चौरासी) दिन की लम्बी भूखहड़ताल में अपने जर्जर शरीर की एक-एक साँस से जिस साहस और धैर्य के साथ अन्याय और क्रूरता से संघर्ष करते हुए २५ जुलाई को हंसते-हंसते सुमन ने भारत माता की पवित्र वेदी पर शरीर को भेंट किया, टिहरी-जेल का प्रत्येक कण इस गौरवमयी गाथा को सुनाता रहेगा।

सुमन को शहादत की खबर तमाम देश में बिजली की भांति फैल गई। देशवासियों ने देखा कि सुमन तो भारतीय भव्य मन्दिर की स्वतन्त्रता देवी के चरणों में भेंट हो गया।

डा० पट्टाभि सीतारमैय्या ने अमर शहीद श्री देवसुमन को श्रद्धाञ्जलि अर्पित करते हुए कहा था कि युवा सुमन उन अमूल्य फूलों में से थे, जो कि बिना देखे मुर्झा जाने के लिए पैदा होते हैं। लेकिन वे अपने पीछे अपनी सुगन्ध छोड़ गये हैं। सुमन ने जो सेवा की वह सदा अमर रहेगी।"

सुमन वास्तव में सुमन (फूल) थे। उन्होंने बचपन से ही आजादी के गीत गाये और अत्याचार का तीव्र विरोध किया। अन्त में भारतीय स्वतन्त्रता की प्रचण्ड अग्नि में अपने आपको स्वाहा कर दिया।

सिंह और दत्त का संयुक्त वक्तव्य

७ मई १९२९ को भगतसिंह और बटुकेश्वर दत्त को न्यायालय में उपस्थित किया गया। असेम्बली में बम फैंकने के अपराध में इन पर पुलिस ने धारा ३०७ (हत्या करने का प्रयास) और विस्फोटक कानून की धारा ३ लगाई। जनता का कोई प्रदर्शन न हो, इस भय से न्यायालय की सभी कार्यवाही देहली जेल में ही हुई। मजिस्ट्रेट थे देहली के एडीशनल मैजिस्ट्रेट मि० एफ० बी० पुलो। पुलिस का सख्त पहरा था। पुलिस इतनी डरी हुई थी कि प्रत्येक वस्तु और प्रत्येक व्यक्ति को शंका की दृष्टि से देखती थी। जब दोनों अभियुक्तों को न्यायालय में उपस्थित किया गया तब उन्होंने बड़े उच्च स्वर से "इन्कलाब जिन्दाबाद", "साम्राज्यवाद का नाश हो" के नारे लगाये। दो दिन तक सबूत के गवाहों के बयान होते रहे, तत्पश्चात् सिंह और दत्त को सफाई का बयान देने को कहा तो उन्होंने निषेध कर दिया और कहा कि हमें जो कुछ कहना है सेशन जज की अदालत में ही कहेंगे। ४ जून १९२९ से देहली जेल में ही सेशन जज की अदालत लगी। सरकारी गवाहों ने पूर्ववत् अपने वक्तव्य दोराह दिये। उनके पश्चात् भगतसिंह और बटुकेश्वर दत्त ने एक संयुक्त वक्तव्य दिया। यह वक्तव्य महत्त्वपूर्ण है क्योंकि क्रांतिकारी समिति ने जब बम फेंकने का निश्चय किया था तब यह भी निश्चय किया था कि जो लोग बम फेंकें वे न्यायालय में ऐसा वक्तव्य दें कि जिस से हमारे आन्दोलन के उद्देश्य का स्पष्टीकरण हो जाये। इसीलिए इस कार्य के लिए वीरशिरोमणि भगतसिंह को चुना गया और भगतसिंह ने भी अपने साथ राजगुरु को बहुत आग्रह करने पर भी न लेकर बटुकेश्वर दत्त को ही लिया। उस समय वक्तव्य अंग्रेजी में दिया गया था। यहाँ हम हिन्दी में उद्धृत करते हैं।

—वेदव्रत सम्पादक

"हम लोग संगीन जुर्मों के अभियुक्तों की हैसियत से उपस्थित हैं और इस मौके पर हम अपने आचरण की सफाई देते हैं। (हमारे आचरण के सम्बन्ध में) निम्नलिखित प्रश्न उपस्थित होते हैं—पहला प्रश्न यह है कि क्या असेम्बली भवन में बम फेंके गये थे? और फेंके गये थे तो क्यों? दूसरा सवाल यह है कि नीचे की अदालत ने हम पर जो फर्द जुर्म लगाया है, क्या यह सत्य है अथवा नहीं? पहले प्रश्न के उत्तर में हमारा जवाब है कि हाँ असेम्बली में बम फेंके गये थे किन्तु अपने आपको चश्मदीद गवाह कहलाने वालों में से कुछ गवाहों ने झूठा बयान दिया है और चूंकि हम अपनी कार्य-तत्परता को उस हद तक जहां तक कि यह जाती है और जिस रूप में कि वह है अस्वीकृत नहीं करते, इसलिए उन गवाहों के बारे में हमारा यह बयान जिस लायक यह है वैसा ही समझा जाये। उदाहरण के तौर पर हम यह कह सकते हैं कि सार्जेन्ट टेरी की यह गवाही कि उसने हम में से एक आदमी के हाथ में से पिस्तौल छीनी सरासर बनाई हुई झूठ है। क्योंकि जिस समय हमने आत्मसमर्पण किया था उस समय हम में से किसी के पास भी पिस्तौल न थी। दूसरे गवाहों ने जिन्होंने हमारे द्वारा बम फेंके जाते देखने का बयान दिया है, सरासर झूठ बोलने में जरा भी संकोच नहीं किया है। जो लोग कानूनी स्वच्छता और निष्पक्ष न्यायदान के लिए प्रयत्नशील हैं उनके लिए यह (गवाहों की गलत बयानी) स्वतः एक नैतिक सबक है। इसी के साथ ही हम सरकारी वकील की निष्पक्षता और अदालत की इस वक्त तक की न्याय परख के मनोभाव को स्वीकृत करते हैं।

बम क्यों फेंके गये

पहले प्रश्न के दूसरे अंश के उत्तर देने में हमें मजबूरन कुछ विस्तार की शरण लेनी पड़ती है और इस प्रकार हमें अपने कार्य के प्रेरकभावों और उन सब परिस्थितियों का पूर्ण और नितान्त स्पष्ट निरूपण करना पड़ता है जिससे धीरे-धीरे यह बम दुर्घटना ऐतिहासिक काण्ड में परिणत हो गई। कुछ पुलिस अफसरों ने हमसे जेल में मुलाकात की थी और उन्होंने हम से कहा था कि लार्ड इरविन ने बड़ी व्यवस्थापिका सभाओं के संयुक्त अधिवेशन में भाषण देते हुए इस घटना को एक ऐसी बात बतलाया था जो किसी व्यक्ति के प्रति नहीं किन्तु एक संस्था के प्रति की गई थी। जब हमने यह सुना तब हमने बहुत शीघ्र ही यह बात मान ली कि इस घटना का सच्चा महत्त्व बहुत ठीक तौर पर समझ लिया गया है। हम मनुष्यता के प्रेम में किसी से भी पीछे नहीं हैं और किसी व्यक्ति के खिलाफ घृणाभाव रखना तो दूर रहा हम मनुष्य जीवन को वास्तविक रूप में पवित्र समझते हैं। हम न तो उस प्रकार के घिनोने कुकृत्य के करने वाले एवं देश के कलंक हैं जैसा कि अधकचरे साम्यवादी दीवान चमनलाल हमें कह चुके हैं, तथा न हम ऐसे पागल ही हैं जैसा कि लाहौरी 'ट्रिब्यून' और कुछ अन्य लोगों ने हमें बतलाया है।

संस्था के खिलाफ आवाज बुलन्दी

हम बहुत नम्रतापूर्वक यह दावा करते हैं कि हम कुछ नहीं हैं। सिवा इसके कि हम इतिहास के गम्भीर विद्यार्थी हैं और अपने मुल्क की हालत को देखने वाले हैं तथा मानवीय आकाँक्षाओं का अनुभव करने वाले हैं और हम पाखण्डी तथा मक्कारी से नफरत करते हैं। हमारा यह व्यावहारिक विरोध-प्रदर्शन एक ऐसी संस्था के खिलाफ था जो अपने जन्मकाल ही से न केवल निकम्मापन प्रकट करती रही है, वल्कि शैतानी कर सकने की अपनी अत्यधिक शक्ति का प्रमाण भी देती रही है। ज्यों ज्यों हमने इस पर गम्भीरतापूर्वक विचार किया त्यों-त्यों हम पर इस विश्वास की गहरी छाप पड़ती गई कि यह संस्था दुनियाँ को भारतवर्ष की बेचारगी और उसकी बेइज्जती दिखलाने के लिए ही कायम है। यह संस्था गैरजिम्मेदार और तानाशाही शासन के विकट प्रभुत्व का प्रतिरूप है। जनता के प्रतिनिधियों ने बार-बार राष्ट्र की मांगें पेश कीं और उन राष्ट्रीय मांगों का अन्तिम स्थान कूड़े की टोकरी ही रहा है। असेम्बली द्वारा पास किये गये पुनीत प्रस्ताव नगण्य समझकर घृणा से पैरों तले कुचले गये हैं और वह भी कहां? यहां इस नामधारी भारतीय पार्लियामेंट के भवन में! दमनकारी और निरंकुश कानूनों को तोड़ने के सम्बन्ध में किये गये प्रस्ताव निहायत नव्वाखाना हिकारत की नजर से देखे गये हैं और सरकार के वे कानून और प्रस्ताव जिन को जनता के चुने हुए मेम्बरों ने अस्वीकरणीय समझ कर ठुकरा दिया था, सिर्फ एक कलम के शोशे से ज्यों के त्यों रहने दिए गये।

थोथा दिखावा

थोड़े में बहुत प्रयत्न करने के बाद भी हम इस संस्था के अस्तित्व की उपादेयता को समझने में नितान्त असमर्थ रहे हैं। बावजूद इस तमाम शान शौकत और तड़क-भड़क के जो कि करोड़ों मेहनतकश लोगों की कष्टप्राप्य दौलत के बल पर कायम रखी जाती है। हम यह समझते हैं कि यह संस्था एक ढोल की पोल का नजारा और शैतानियत से भरा एक बहाना मात्र है। इसके साथ ही हम

यह नहीं समझ पाए हैं कि उन सार्वजनिक नेताओं के मनोभावों को जो जनता का समय और धन भारतवर्ष की निरुपाय गुलामी के इस नाटकीय प्रदर्शन के लिए खर्च करते हैं,हम इन सब बातों पर गौर करते रहे हैं और साथ ही हमने गौर किया है, मजदूर दल के नेताओं की गठरी भर गिरफ्तारी पर। ट्रेड डिस्प्युटस् बिल का प्रारम्भ जिस समय हमें असेम्बली में खींचकर ले आया उस समय हमने उस बिल की प्रगति को देखा और उस पर किये गये वाद-विवाद को भी सुना। यह सब देखने सुनने के पश्चात् हमारा यह विश्वास दृढ़ हो गया है कि यह संस्था तो सब कुछ हड़प जाने वालों की गलाघोटू ताकत का भयत्रस्तकारी स्मारक और निस्सहाय मेहनतकशों की गुलामी का चिह्न है।

जगाने के लिए बम जरूरी है

अन्त में तमाम देश भर के प्रतिनिधियों के आदरणीय मस्तकों पर अमानुषिक और बर्बरतापूर्ण कानून की अपमानजनक गाज गिराई गई और इनका नतीजा यह हुआ कि भूखों मरने वाले और बमुस्किल तमाम अपना पेट पालनेवाले लोग अपनी आर्थिक दशा को सुधारने में प्रारम्भिक स्वत्व और एकमात्र उपाय से वंचित कर दिए गये। कोई भी आदमी जिसने हमारी तरह इन बेजवान मनमानी दिशा में हांक दिए जानेवाले मजदूरों के प्रति तादात्म्यभाव अनुभव किया है, सम्भवतः इस दृश्य को विचलित चित्त से नहीं देख सकता था। कोई भी आदमी जिसके दिल से खून झरता है, उन आदमियों के लिए जिन्होंने लूट खसोट करनेवालों के आर्थिक भवन के निर्माण के लिए अपना जीवन रक्त दे दिया है और लूट खसोट करने वालों की श्रेणी में, इस मुल्क में यह सरकार सबसे बड़ी दोहनकर्त्ता है—अपनी आत्मा और इस निर्दय प्रहार ने हमारे हृदय के भीतर से वेदना का वह आक्रोश जबरदस्ती बाहर खींच लिया, इसलिए एक समय गवर्नर जनरल की कार्यकारिणी के कानून सदस्य स्वर्गीय श्री एस० आर० दास के उन शब्दों को ध्यान में रखकर जो उनके उस प्रसिद्ध पत्र में प्रकाशित हुए थे, जिसे उन्होंने अपने पुत्र को लिखा था और जिन शब्दों की मंशा यह है कि इङ्गलैंड को अपने सुख-स्वप्न से जगाने के लिए बम जरूरी है। इन शब्दों पर विचार करके हमने असेम्बली की फर्श पर बम फेंक दिये और यह सिर्फ इस लिए किया कि हम उन आदमियों की ओर से जिनके पास अपने हृदय को चीरने वाली वेदना को प्रगट करने का कोई साधन नहीं है, घोर विरोध प्रदर्शित कर दें। हमारा एकमात्र उद्देश्य यह था कि "हम लोग बहरों के कान खोल दें और बेपरवाहों, को अन्यमनस्कों को यथासमय चेतावनी दे दें।

सतयुग अहिंसा के काल का अन्त

औरों ने भी इस दशा का इतने ही ज्वलन्तरूप में अनुभव किया है जितना कि हमने। और भारतीय मनुष्यों के महासागर की दिखाऊ अक्षुब्धता के भीतर से एक जबरदस्त तूफान फट पड़ने को है। हमने तो सिर्फ खतरे का सूचक झण्डा टांग दिया है। सिर्फ उन लोगों के देखने के लिए जो भागे जा रहे हैं बिना यह विचार किये कि आगे बड़ा भारी खतरा है। हमने तो सिर्फ यह सूचना-भर दी है कि सतयुगी अहिंसा के दिन लद गये। उठती हुई पीढ़ी अहिंसा के निकम्मेपन का इतनी अच्छी तरह अनुभव कर चुकी है कि अपने उस अनुभव में अब उसे सन्देह की छायामात्र भी नहीं रह गई है। मनुष्यों के प्रति हमारी हार्दिक सद्इच्छा है और प्रेम से प्रेरित होकर हम ने सावधान कर देने का यह तातसीकर इसलिए अख्तियार किया है कि बेशुमार कष्ट और वेदनायें टाली जा सकें।

हमने पहले के पैराग्राफ में 'सतयुगी अहिंसा' शब्द का इस्तेमाल किया है। इस शब्द की व्याख्या करना आवश्यक है। जब बल प्रयोग आक्रान्त करने के लिए किया जाता है, तब 'हिंसा' कहलाता है। और इस कारण उसका नैतिक मण्डन नहीं किया जा सकता। किन्तु जब बल का प्रयोग (न्यायसंगत) कार्य के पोषण के लिए किया जाता है तब उस बल प्रयोग का नैतिक समर्थन किया जा सकता है। तब बल प्रयोग को विलुप्त कर देना एक खामखयाली एक सतयुगी बात है। यह नयी हलचल जो मुल्क में पैदा हो गई है और जिसकी हमने सूचनाभर दी है, उन आदर्शों द्वारा प्रेरित हुई है जिनके द्वारा गुरु गोविन्दसिंह और शिवाजी, मस्तफा कमाल और रजाखां, वाशिंगटन और गेरी बाल्डी, लाफाएत और लेनिन प्रेरित और परिचालित हुए थे। चूंकि विदेशी सरकार और भारतीय जनता के नेताओं ने अपने आंख, कान, इस नये आन्दोलन के अस्तित्व और उसकी ध्वनि की ओर से बन्द कर लिए थे इसलिए हमने एक बार सबको सावधान कर देना चाहा और सो भी ऐसे समय और ऐसे स्थान पर जहां कि हमारी चेतावनी अश्रुत रह ही न सके।

हमारे इरादे का विस्तार

अभी तक हमने इस घटना के प्रेरकभाव का ही दिग्दर्शन कराया है। अब हम अपने इरादों के विस्तार का निदर्शन कर देना आवश्यक समझते हैं। इस बात का विरोध नहीं किया जा सकता कि हमारे अन्दर उन आदमियों में से जिन्हें थोड़ी बहुत चोट आई किसी एक के प्रति भी या व्यवस्थापिका सभा के किसी अन्य व्यक्ति के प्रति भी हमारे अन्दर कोई व्यक्तिगत विद्वेष भावना या नफरत थी। इसके विपरीत हम फिर से यह बात दुहराते हैं कि हम मानव जीवन को अवर्णनीय रूप में पुनीत समझते हैं और हम मनुष्यता की सेवा में अपने प्राणविसर्जन कर देना कहीं उत्तम समझेंगे। किसी को हानि पहुँचाने की तो बात ही नहीं उठती। हम किराये के सिपाही नहीं हैं, भाड़े के सिपाहियों को यह सिखलाया जाता है कि वे बिना ममता के प्राणनाश कर देंगे। हम मनुष्य जीवन के प्रति आदर भाव रखते हैं और जहां तक बन पड़ता है मनुष्य जीवन की रक्षा का प्रयत्न करते रहते हैं और फिर भी यह बात स्वीकार करते हैं कि हमने असेम्बली भवन में जानबूझ कर बम फेंके।

किन्तु वास्तविक बातें स्वयं अपनी कथा आप कह रही हैं और बिना कल्पित या सांकेतिक परिस्थितियों एवं गृहीत मान्यताओं का सहारा लिए ही (हमारे) इरादे के सम्बन्ध में परिणाम केवल हमारे कार्य के नतीजे के ऊपर से ही निकलना चाहिए। गवर्नमेंट विशेषज्ञ की गवाही के होते हुए भी जो बम असेम्बली भवन में फेंके गये थे उनकी वजह से सिर्फ एक खाली मञ्च थोड़ी सी टूट-फूट गई और आधे दर्जन से भी कम आदमियों को थोड़ी थोड़ी खराश सी आ गई। गवर्नमेंट विशेषज्ञ ने इस (हल्की क्षति के) परिणाम को जादूमन्तर कहा है, लेकिन (हल्की क्षति) में एक निश्चित वैज्ञानिक परिणाम सूचकता पाते हैं। पहली बात तो यह है कि दोनों बम खाली जगहों में डेस्कों और लकड़ी चौघरों तथा बेंचों के बीच फूटे थे। दूसरी बात यह है कि वे आदमी भी जो बम फूटने के स्थान से केवल दो फीट के अन्तर पर थे, या तो बिल्कुल बच गये और या बहुत हल्की तड़प से चोटियल हुए। दो फीट के भीतर रहने वालों में मि० पी० आर० राव, मि० शंकर राव और सर जार्ज शुस्टर थे। सरकारी विशेषज्ञ ने इन बमों को जिस शक्ति का बतलाया है, वे यदि ऐसे ही होते तो लकड़ी या चोखटा चकनाचूर हो गया होता और आस-पास कुछ गजों के भीतर के आदमी ठण्डे हो गये होते।

इसके अलावा हम बमों को सरकारी प्रतिनिधियों के बैठने के स्थान पर जहां बहुत से गणमान्य लोग बैठे हुए थे, फेंक सकते थे और अन्त में हम उन सर जान साइमन को भी घेर कर मार सकते थे जिनके अभागे कमीशन को सब लोग घृणा की दृष्टि से देखते हैं। सर जान उस समय प्रेसीडेन्ट महाशय के अतिथियों के स्थान पर बैठे थे। लेकिन यह सब हमारे से बाहर की बात थी। बम ने सिर्फ उतना काम किया जितने के लिये कि वे बनाये गये थे और 'जादू मन्तर' सिर्फ यही है कि हमने जानबूझ कर बमों को निरापद स्थान में फेंका था।

विचार अमर हैं

बाद में हमने जानबूझ कर आत्मसमर्पण कर दिया। हमने जो कुछ किया था, उसका दंड भोगने के लिये हम तैयार थे। साथ ही हम साम्राज्यवादी लूट खसोट करने वालों को यह बतला देना चाहते थे कि व्यक्तियों को कुचल डालने से वे दाहक विचारों को नहीं मार सकेंगे। दो नगण्य इकाइयों (हम दोनों) को कुचलने से राष्ट्र नहीं दबेगा। हम यह ऐतिहासिक सबक फिर से तरो-ताजा करना चाहते थे कि वेस्टाइल (कैदखाने) और अन्धाधुन्ध वारन्ट फ्रांस की क्रान्तिकारिणी हलचल को दबाने में असमर्थ हुए। फ्रांसीसियों और साइबेरिया की खानों की दर्दनाक गुलामी, रूसी विप्लव की चिनगारी नहीं बुझा सकी थी। खूनी तलवारों और खूंखार किराये के सिपाहियों की वजह से आयरिश स्वतन्त्रता की हलचल नहीं मिटाई जा सकी। क्या काला कानून और सेफ्टी बिल भारत में स्वतन्त्रता की लपट को बुझा सकता है? षड्यन्त्र से घड़े गये या ढूँढ़कर निकाले गये मुकद्दमे और उन नौजवानों का कारागारवास, जिन्होंने विशालतर आदर्श की झांकी देख ली है, भारत में क्रान्ति की प्रगति को नहीं रोक सकते। लेकिन समय पर दी गई चेतावनी, यदि उसकी ओर से कान न मूंद लिये जायें तो प्राणों के नाश और सामूहिक वेदना को रोकने में सहायक हो सकती है। हमने अपने ऊपर यह कार्य भार लिया था कि हम चेतावनी दे दें, और हम समझते हैं कि हमारा कार्य सम्पूर्ण हो गया है।

विप्लव क्या है?

भगतसिंह से नीचे की अदालत में पूछा गया था कि तुम्हारा 'क्रान्ति या विप्लव' शब्द से क्या मतलब है? इस प्रश्न के उत्तर में मैं कहूंगा कि क्रान्ति का आवश्यक रूप में यह मतलब नहीं है कि उसमें खून खच्चर ही हो, और न क्रान्ति में व्यक्तिगत प्रतिशोध ही के लिये कोई स्थान है। क्रान्ति बम और पिस्तौल का धर्म नहीं है। क्रान्ति से हमारा मतलब यह है कि वर्तमान वस्तुस्थिति और समाजव्यवस्था जो स्पष्टत: अन्याय के ऊपर स्थित है, परिवर्तित हो। पैदा करने वाले या श्रमजीवी समाज के अत्यन्त आवश्यक अंश हैं। परन्तु वे दोहकों द्वारा नोचे खसोटे जाते हैं। उनकी मेहनत का फल उन्हें नहीं मिलता, दूसरे उसे हड़प जाते हैं और उनके प्रारम्भिक अधिकार उनसे छीन लिये जाते हैं। एक ओर वह किसान, जो सबके लिए अनाज पैदा करता है अपने कुटुम्ब के सहित भूखा मरता है। वह जुलाहा जो दुनियां की मण्डी को बुने हुए कपड़ों से पूर्ण कर देता है अपना और अपने बच्चों का तन ढकने भर को भी नहीं पाता। राज, लोहार और बढ़ई जो बड़े बड़े विशाल भवन खड़े करते हैं गन्दे घरों और अनाथालयों में सड़ते खपते और मरते रहते हैं और दूसरी ओर नोचने और खसोटने वाले पूंजीपति जो समाज के रक्त शोषक हैं अपनी सनकों की सन्तुष्टि के लिए करोड़ों खर्च कर डालते हैं। ये भयानक असमानतायें और सुविधाप्राप्ति की यह बलात् विषमतायें बड़ी भारी

अस्तव्यस्त दुरावस्था की ओर जा रही हैं। इस प्रकार की अवस्था अब अधिक दिनों तक नहीं रह सकती। यह प्रकट है कि समाज का वर्तमान रंग ढंग एक ज्वालामुखी के किनारे बैठा हुआ रंगरेलियां कर रहा है। लूट खसोट करनेवालों के निष्पाप बच्चे और करोड़ों दोहित, पतित और प्रताड़ित लोग एक भयानक ढालू जमीन के किनारे पर चल रहे हैं। इस सभ्यता का सम्पूर्ण विशाल भवन यदि समय पर न बचाया गया तो ढह कर चूर-चूर हो जायेगा।

पूर्ण परिवर्तन की आवश्यकता

इसलिये पूर्ण परिवर्तन की बहुत आवश्यकता है। उन आदमियों का जो इस बात का अनुभव करते हैं, यह कर्त्तव्य है कि वे समाज को साम्यवादी सिद्धान्त की भित्ति पर पुनः संगठित करें। जब तक यह हो नहीं जाता और जब तक मनुष्य द्वारा मनुष्य का दोहन और राष्ट्र द्वारा राष्ट्र का दोहन-जो साम्राज्य के नाम से मटरगस्ती करता संसार में डोल रहा है, खत्म नहीं कर दिया जाता जब तक वह वेदना और संहार क्रीडा जिसकी आशंका से मानवता आज संत्रस्त है रोकी नहीं जा सकती तो युद्ध को खत्म कर देने की तमाम बातें और नवयुग आगमन का ख्याल एक नग्न पाखण्ड मात्र है।

क्रान्ति से हमारा मतलब ऐसी समाज व्यवस्था के संस्थापन से है जिसे इस प्रकार के स्खलन का भी कभी भय न रहे और जिसमें सर्वसाधारण की सत्ता का सर्वस्व स्थापित हो। इसका नतीजा यह होगा कि दुनियां में एक ऐसा संसार संघ स्थापित हो जायेगा जिसके कारण मनुष्यता का उद्धार होगा और संसार पूंजीवाद के बन्धन और साम्राज्यवाद के दारुण दुःख से मुक्त हो जायेगा।

यह हमारा आदर्श ! और अपने प्रेरक भाव की इस विचारधारा से प्रभावित होकर हमने बहुत न्यायपूर्ण और साथ ही बहुत उच्चस्वर से पूण चेतावनी दे दी है यदि हमारी चेतावनी पर ध्यान न दिया गया और यदि वर्तमान शासन-क्रम इसी प्रकार प्राकृतिक शक्तियों के उठते हुए तूफान के बीच बाधक सिद्ध होता रहा तो फिर एक घमाशान एवं घोर युद्ध का होना अवश्यम्भावी है। उस युद्ध में तमाम बाधायें उखाड़ कर फेंक दी जायेंगी और सर्वजनसत्ता की स्थापना होगी और तब क्रान्ति के आदर्श की पूर्ति का मार्ग प्रशस्त होगा।

मानवता का अविच्छेद्य अधिकार

विलप्व-क्रान्ति मनुष्यता का अविच्छेद्य अधिकार है। स्वतन्त्रता सबका अनिर्दिष्ट जन्मसिद्ध अधिकार है। श्रमजीवी ही समाज का सच्चा धुरीण है। श्रमजीवियों की अन्तिम नियति है जनता की सत्ता। इन आदर्शों और इन विश्वासों के लिये हम प्रत्येक वेदना को जो हमें दी जायेगी, आदर से, स्वागतपूर्वक अंगीकार करेंगे। इस विप्लव की बलिवेदी में अर्पित करने के लिये हम अपनी नौजवानी की धूप यह सर्वरस लाये हैं, क्योंकि इतने महान् आदर्श के लिए किसी भी प्रकार का बलि-दान अत्यधिक नहीं कहा जा सकता। हम सन्तुष्ट हैं। हम क्रान्ति के अवतार की प्रतीक्षा कर रहे हैं!!

क्रान्ति युग-युग जीवे !

@VaidicPustakalay

आजादी की वधशाला

(राष्ट्रकवि रामावतार 'विकल')

(१)

द्वार खोलकर ऊँचे स्वर से,
बोला कातिल मतवाला ।
वो ही आये देश धर्म को,
जिसे जलाती हो ज्वाला ।।
सुरा सुराही शीशा सागिर,
सुरबाला का नाम नहीं ।
बिना पिये ही अविकल जग को,
'विकल' बनाती वधशाला ।।

(२)

देख धर्म ही साथ जायेगा,
और न कुछ जाने वाला ।
समझाने पर भी जालिम ने,
काटा जिस्म जला डाला ।।
जिसे समझते हो देहली में,
शीशगंज का गुरुद्वारा ।
'तेगबहादुर' गुरु अर्जुन की,
यहीं बनी थी वधशाला ।।

(३)

पहिले दीवारों में दोनों,
वीरों को चिनवा डाला ।
तान तेग फिर सिर के ऊपर,
बोला कातिल मतवाला ।।
धर्म छोड़ दो बच सकते हो,
बोले फिर भी है मरना ।
वाहे गुरु की फतेह' से एकदम,
गून्ज उठी थी वधशाला ।।

(४)

नाना और तांतिया टोपे
पिया मुबारक ने प्याला ।
हुए नशे में चूर जला दो,
घर-घर में जीवन ज्वाला ।।
बांध पीठ सुत चढ़ घोड़े पर,
झूम-झूम कर मतवाली ।
खोल गई सन् सत्तावन में,
झांसी वाली वधशाला ।।

(५)

धोखे से मारा जाता है,
सत्य बात कहने वाला ।
पिला दूध में कांच लोभवश,
अपना धर्म गवां डाला ।।
'ऋषि दयानन्द' तेरे उर का,
वार पार क्या खाक मिलै ।
बख्शा कातिल को इनाम,
बदनाम नहीं की वधशाला ।।

(६)

हिन्दू मुस्लिम वैमनस्य को,
भड़क उठी एक दम ज्वाला ।
उसे बुझाने हित उसने,
खून पसीना कर डाला ।।
आंक सके न फिर भी कीमत,
मजहब के अन्धे जौहरी ।
'हा ! गणेशशंकर' जैसे की,
बना कानपुर वधशाला ।।

(७)

जा प्रयाग में कुम्भ त्रिवेणी,
न्हाता है क्या मतवाला ।
धर्म-कर्म सब तेरे निष्फल,
क्योंकि तेरा दिल काला ।।
पहले जा अलफ्रेड पार्क में,
होगा तीर्थ तभी सफल ।
खोल गया आजाद दिलजला,
आजादी हित वधशाला ।।

(८)

यहीं रूप रानी के गल में,
डाली मोती ने माला ।
आजादी का यहीं जवाहर,
कमला ने दीपक बाला ।।
जीते जी जल गया देश हित,
घर का घर ही दीवाना ।
आज वही आनन्द भवन है,
नेहरू वंश की वधशाला ।।

(९)

ब्रिटिश कफन की कील बनेगा,
मेरे सीने का छाला ।
आगे बढ़कर झूम गया,
पंजाबकेसरी मतवाला ।।
तू जाये लाहौर तो मस्तक,
झुका चूम लेना भू को ।
माल रोड पर बनी हुई है,
लाला जी की वधशाला ।।

(१०)

डायर ओडायर का हमको,
याद कारनामा काला ।
वही जुल्म की अन्तिम सीमा,
बना तीर्थ जलियां वाला ।।
पिण्डदान करने कुटुम्ब को,
उठो सभी पंजाब चलें ।
नया राष्ट्र निर्माण कर गई,
उन वीरों की वधशाला ।।

(११)

नामुमकिन को मुमकिन कर,
दिखलाता है करने वाला ।
जिसने सिर रख लिया हाथ पर,
उसने सब कुछ कर डाला ।।
कब से था पीछे दीवाना,
दम लेकर ही दम छोड़ा ।
खुले खजाने लन्दन खोली,
'ऊधमसिंह' ने वधशाला ।।

(१२)

दूर फेंक दो तुलसी दल को,
तोड़ो गंगाजल प्याला ।
दुआ फातहा दान पुण्य का,
मरे नाम लेने वाला ।।
मेरे मुंह में अरे डाल दो,
एक उसी सतलुज का घूंट ।
जिसके तट पर बनी हुई है,
'भगतसिंह' की वधशाला ।।

(१३)

'रोशन' सा दिलजला कहां है,
'लहरी' सा विषियर काला ।
दीवाना 'अशफाक' बना दे,
सबको 'बिस्मिल' मतवाला ।।
फाँसी के तख्ते पर कीमत,
आजादी की आंक गये ।
महाकृतघ्नी भूल जाये जो,
उन वीरों की वधशाला ।।

(१४)

गीता गीता कहे न कहता,
त्यागी त्यागी मतवाला ।
लिप्त हुआ माया में भूला,
अपने को भोला भाला ।।
गीता से अमरत्व बरसता,
है फांसी के तख्ते पर ।
खुदी छोड़कर कभी न देखी,
'खुदीराम' की वधशाला ।।

(१५)

रोक सकी कब बूढ़ी माँ के,
अन्तर की जलती ज्वाला ।
रोक सकी कब नवबाला के,
नयनों से बहती हाला ।।

अच्युत पटवधन

टीपू सुलतान

४२ का शहीद रमेश

अवध बिहारी

श्रीमती जगरानी देवी
(शहीद चन्द्रशेखर की माता जी)

श्रीमती मूलमन्त्री देवी
(शहीद रामप्रसाद बिस्मिल की माता जी)
स्वर्गारोहण १३ मार्च १९५६ ई०
चैत्र शुक्ला २ सं० २०१३ वि०
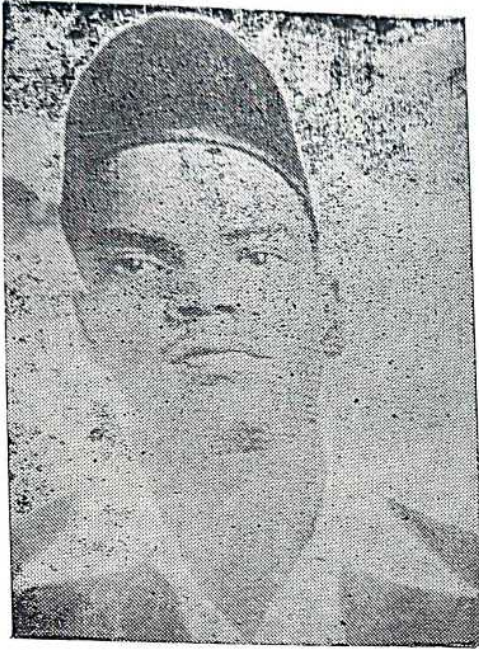
शिवराम राजगुरु
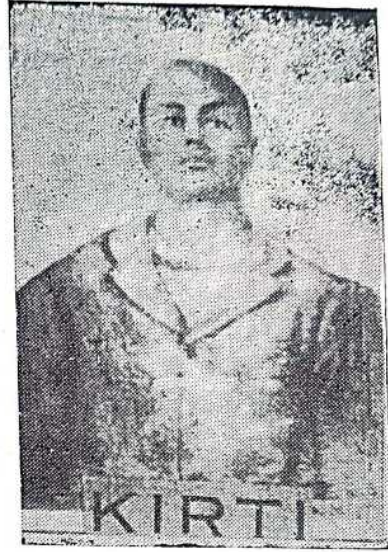
श्री खुशीराम

सत्येन्द्रकुमार वसु
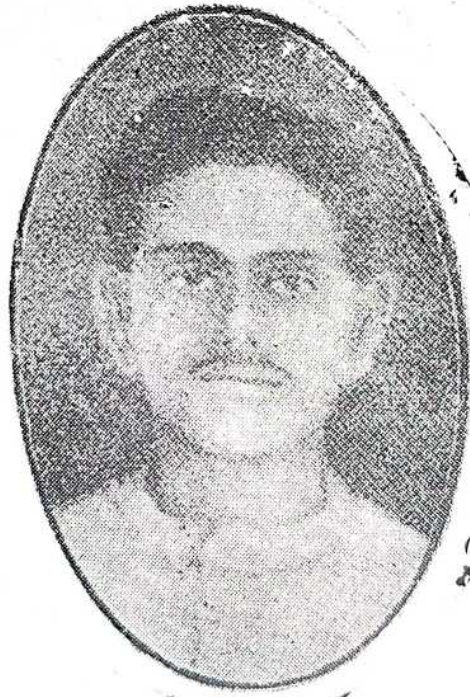
कन्हाईलाल दत्त

मोहनदास कर्मचन्द गान्धी

पं० जवाहरलाल नेहरू

राजर्षि पुरुषोत्तमदास टण्डन

अरुणा आसफअली

चौरासी दिन के अनशन से,
चौरासी बन्धन काटे ।
अमर हिमालय की चोटी पर,
'देवसुमन' की वधशाला ॥

(१६)

'राज नारायण मित्र' वही,
जो खीरी का रहने वाला।
आजादी के लिए गले में,
फाँसी का फन्दा डाला ॥
पत्नी की आंखों में आंसू,
देखे तो मुंह फेर लिया ।
अरी अभागिन हंसते-हंसते,
देख हमारी वधशाला ॥

(१७)

कुछ दिन को तो दुनियां ही से,
इसे अलग था कर डाला ।
अरे जहां 'चित्तू पांडे' का,
रहा खूब शासन आला ॥
कौन भूल जायेगा बोलो,
'वलिया' का बलिदान अमर ।
बम बरसा कर अंग्रेजों ने,
जहां बनाई वधशाला ॥

(१८)

चली फौज आजाद हिन्द,
पीकर आजादी का प्याला ।
जीत लिया 'इम्फाल' जली,
जनरल टोजो के उर ज्वाला ॥
'रसद न भेजी' हाय किया,
विश्वासघात जालिम तूने ।
वही पाप बन गया अन्त,
जापान देश की वधशाला ॥

(१९)

जेरुसिलम यहीं पर समझो,
काबा बुतखाना आला ।
बौद्ध विहार, जैन मन्दिर,
औ गुरुद्वारा नानक वाला ॥
कहां भटते फिरते पगलो,
आओ परिक्रमा कर लें ।
'देसाई' 'कस्तूरबा' की,
बनी जहां पर वधशाला ॥

(२०)

भीष्म पितामह सा ब्रह्मचारी,
था दिलेर वह दिल वाला ।
डाल चुकी आजादी जिसके,
गले में खूब विजय माला ॥
परवाना बनकर दीवाना,
हाँ ! अनन्त की ओर उड़ा ।
अरे दैव ! निर्दयी खोल दी,
क्या सुभाष की वधशाला ॥

(२१)

हटा न मुल्ला और पुजारी,
के दिल से पर्दा काला
कभी न मिलकर पीने देते ।
यह आजादी का प्याला ॥
छुरी कटारी चल पड़ती हैं,
जरा जरा सी बातों पर ।
मन्दिर, मस्जिद आज बने हैं,
भाई भाई की वधशाला ॥

(२२)

मन्दिर तोड़ मुसलमां इक दम,
बोल उठा अल्ला ताला ।
मस्जिद फूंक और हिन्दू का,
बजा शंख घंटा आला ॥
जान पाये ना दोनों पागल,
उसके नाम अनेकों हैं ।
किया धर्म बदनाम खोल,
'रहनाम' 'राम' की वधशाला ॥

(२३)

दाढ़ी चोटी के झगड़े में,
जीवन व्यर्थ गंवा डाला ।
खुराफात में फंस कर भूला,
असली बात को मतवाला ॥

मुसलमान में बोल कमी क्या,
हिन्दू में क्या लाल लगे।
बुरा वही है जिसने खोली,
अगर किसी की वधशाला॥

(२४)

अपने घर में अपने कर से,
अरे लगा रहो ज्वाला।
एक दूसरे से लड़ कर हा !
सर्वनाश ही कर डाला॥
जब तक रहे गुलाम मांगते,
रहे रोज हम आजादी।
अब होकर आजाद खोल दी,
आजादी की वधशाला॥

(२५)

पहिले से ही जालिम ने,
सब सामान जुटा डाला।
किसे खबर थी ऊपर से,
उजला है लेकिन दिल काला॥
नरपिशाच बीसवीं सदी के,
हृदयहीन 'सोहरावर्दी'।
नोआखाली और त्रिपुरा की,
याद रहेगी वधशाला॥

(२६)

सच कह दे आबेहयात,
किस ने तेरे मुंह में डाला।
अन्न खिला कर बड़े चाव से,
है तुम को किस ने पाला॥
जन्मभूमि जननी के तूने,
कर डाले टुकड़े-टुकड़े।
पाकिस्तान बना कर खोली,
भारत मां की वधशाला॥

(२७)

है कोई अपने को सच्चा,
मुसलमान कहने वाला।
दिल पर रख कर हाथ बता दे,
क्या कुरान देखा भाला।
नग्न औरतों के दुनियां में,
कहीं निकाले गये जलूस।
तेरा पाकिस्तान बना,
इस्लाम धर्म की वधशाला॥

(२८)

गर्भवती का गर्भपात कर,
जीवित शिशु भू पर डाला।
टुकड़े करके तला तेल में,
हंसता था हंसने वाला।
उसके माता पिता के मुंह में,
फिर वह तोहफा ठूंस दिया।
बोल जायका कैसा है यह,
पूछ रही थी वधशाला॥

(२९)

जब देखा अब किसी तरह भी,
नहीं धर्म बचने वाला।
स्वाभिमान को लिये इकट्ठी,
हुई सैंकड़ों नव बाला॥
नाम 'पद्मिनी का लेकर वह,
सभी कुयें में कूद पड़ी।
जौहर जालिम देख रहा था,
जय बोल रही थी वधशाला॥

(३०)

नाच गया किसको थापों पर,
जिन्ना होकर मतवाला।
किसके सगे हुए ये गोरे,
रहा हमेशा दिल काला॥
'क्रिप्स' लगाकर आग हिन्द में,
सात समन्दर पार गया।
बजा रहा है 'चर्चिल' बगलें,
देख हमारी वधशाला॥

(३१)

बुरे कर्म करके अच्छा फल,
अरे कहां मिलने वाला।
सोचे समझे बिना अभागे,
यह अनर्थ क्यों कर डाला॥

तू किस मुंह से जन्नत का,
तलबगार बतला काफिर ।
बना दिया दुनियां को दोजख,
हाय ! खोलकर वधशाला ।।

(३२)

कहां फला फूला है कोई,
अरे ! जुल्म करने वाला ।
इसे जलाकर खाक करेगी,
इसके जुल्मों की ज्वाला ।।
भारत रहा अखंड रहेगा,
यह भविष्यवाणी मेरी ।
पाकिस्तान आप खोलेगा,
अपनी एक दिन वधशाला ।।

(३३)

हिन्दू मुस्लिम का फितूर,
भरपूर दूर करने वाला।
चला प्रार्थना प्रभु से करने,
हुआ प्रेम में मतवाला ।।
अनशन से यदि मर जाता तो,
जगसेवा का क्या था ।
विश्व वन्दनीय वापू तेरी,
अमर रहेगी वधशाला ।।

(३४)

वह हिन्दू हिन्दू कैसा जो,
नीच कर्म करने वाला।
अपने ही हाथों से अपना,
कर बैठा जो मुंह काला ।।
हिन्दू कहलाने वाले क्यों,
हिन्दू को बदनाम किया ।
बापू जैसे राष्ट्रपिता की,
अरे खोल कर वधशाला ।।

(३५)

हिंसा से हिंसा वढ़ती है,
पियो प्रेमरस का प्याला।
नफरत से नफरत को बस में,
अरे कौन करनेवाला ।।

बापू के हित अगर तुम्हारी,
आंखों में कुछ आंसू हैं,
बन्द लड़ाई करो न खोलो,
हिन्दू मुस्लिम वधशाला।

(३६)

दान धर्म क्या खाक करेगा,
अब कोई करनेवाला।
'पाप पुण्य' कुछ नहीं वृथा ही,
जग को धोखे में डाला ।।
परमभक्त बापू का जिसको,
'दानवीर' जग कहता है।
उसी बिरला का भवन बना,
फिर क्यों 'बापू' की वधशाला।

(:७)

धर्मरूप श्री भीमराव ने,
'हिन्दूकोड' बना डाला।
यह 'मनु' का अवतार कहां से,
हुआ नियम रचने वाला ।।
अच्छा हो सरकार बुलाये,
एक सभा विद्वानों को।
तब निर्णय करके सब खोलें,
दुष्कर्म की वधशाला ।।

(३८)

बेटी का समभाग पिता की,
सम्पत्ति में जब कर डाला।
हैं जितने हकदार जलेगी,
नित उनके उर में ज्वाला
बहिन भाई के शुद्ध प्रेम का,
होगा महा भयंकर रूप।
'भैया दूज' न होगी होगी,
बहिन भाई की वधशाला ।।

(३९)

कौन मिलेगी पति चरणों पर,
जीवन अर्पण कर डाला ।।
कौन मिलेगा पत्नी को,
जीवन संगी कहने वाला ।।

कभी परस्पर प्रेम न होगा,
बनी रहेगी यह शंका ।
कब 'तलाक' दे हाय न जाने,
कौन खोल दे वधशाला ।।

(४०)

भारतीय नारी का जग में,
हो जायेगा मुंह काला ।
था जिसका जीवन महान,
हा उसे गति में क्यों डाला ।।
'सीता द्रौपदी' की सन्तानें,
रंडी बनकर घूमेंगी ।
जरा जरा सी बातों पर,
दिन रात खुलेगी वधशाला ।।

(४१)

देशप्रेम की जिसके उर में,
कल तक जलती थी ज्वाला ।
आज वही बन गया हाय !
'परमिट' पर मर मिटने वाला ।।
जनता की आंखों में लेकिन,
खटक रहे हैं यह कांटे ।
करै "ब्लैक मनमाना चाहे,
अमन रहे या वधशाला ।

(४२)

आज नुकीली गांधी टोपी,
खद्दर का कुर्ता आला ।
कल था अंग्रेजों का पिट्ठू,
यमुना गया तो यमुनादास ।
इस 'अवसरवादी' की,
अरे खोल दो वधशाला ।।

(४३)

मैं लीडर हूं किसका डर है,
जो चाहा सो कर डाला ।
है अपनी सरकार मुझे फिर,
रहा कोई न कहने वाला ।।
देश धर्म मिलेंगे आग में,
'उल्लू सीधा' करता हूं ।
जो बोला विपरीत उसी की,
खुलवा दूंगा वधशाला ।।

(४४)

घूंसखोर और चोर जहां हो
इन्तजाम करनेवाला ।
फिर कैसा इन्साफ कि जिसका,
दिल पहले ही से काला ।।
कांग्रेस को बस ऐसे ही,
गुण्डों ने बदनाम किया ।
हाय क्यों न 'सरकार' खोलती,
इन कुत्तों की वधशाला ।।

(४५)

नई-नई संस्था खोलकर,
जग को धोखे में डाला ।
बना लिया है धन्धा घूमें,
'चन्दा' चट करनेवाला ।
ध्येय नहीं कुछ भी जीवन का,
बेपेन्दी के लोटे हैं ।
डंड पेलते रहें खोलकर,
"दान धर्म' की वधशाला ।।

(४६)

'मीरा और चैतन्य प्रभु' का,
सब उद्देश्य मिटा डाला ।
नाच कूद गुण्डों के संग में,
करें कीर्तन नव बाला ।।
यहीं गर्भ धारण होते हैं,
यहीं निवारण भी होते ।
लोग कहें 'गोविन्द भवन' है,
मैं कहता हूं वधशाला ।।

(४७)

आज पतन की ओर चला,
इन्सान हुआ क्यों मतवाला ।
सोच रहा है विश्वनाश का,
नित उपाय दिल का काला ।।

बना लिया 'एटम बम' तूने,
अपने लिये बनाया क्या।
अमर न क्यों हो गया देखनो,
तुझे न पड़ती वधशाला ॥

(४८)

दया क्षमा सन्तोष प्रेम है,
यहां सभी का दिल काला।
जीवमात्र का जीवमात्र,
बन गया खून पीने वाला ॥
क्या तेरे हाथों से हे प्रभु,
निकल गई है ये दुनियाँ ॥
नई बना ले और खोल दे,
इस दुनियां की वधशाला ॥

(दयानन्द सन्देश के स्वराज्य विशेषांक से उद्धृत)

देशभक्त के उद्गार

यह कविता पं० रामप्रसाद 'बिस्मिल' ने अपने गांव शाहजहांपुर में 'भारत दुर्दशा' नाटक में गाई थी, तब सभी श्रोताओं की आंखों से पानी बहने लगा था। इस कविता के सुनाने पर पण्डित जी को स्वर्ण पदक और पारितोषिक भी मिला था। कविता आज भी उतनी ही सरस है जितनी पहले थी। इसको गाकर पढ़ते हुए आज भी आंखों में आंसू आ जाते हैं और रोंगटे खड़े हो जाते हैं। इस कविता के पढ़ने से पता लगता है कि पण्डित रामप्रसाद जी में कितनी देशभक्ति थी। वे देश के लिए बड़े से बड़े संकट को सहर्ष स्वीकार करने के लिए उद्यत थे। देश के लिए मरने के लिए दिन रात प्राण हथेली पर रखना और मरकर दूसरे जन्म में भी देश की स्वतन्त्रता के लिए काम करने की भावना कितनी उदात्त है। देश के लिए जीने और देश के लिए ही मरनेवाले देशभक्तों के बलिदान के कारण ही भारत स्वतन्त्र हुआ है।

—वेदव्रत सम्पादक

देश की खातिर मेरी दुनियाँ में यह ताबीर हो, हाथ में हो हथकड़ी पैरों में पड़ी जंजीर हो।
शूली मिले फांसी मिले या कोई भी तदबीर हो, पेट में खंजर दुधारा या जिगर में तीर हो ॥
आँख खातिर तीर हो मिलती गले शमशीर हो, मौत की रक्खी हुई आगे मेरे तस्वीर हो।
मरकर भी मेरी जान पर जहमत बिला ताखीर हो, और गर्दन पर धरी जल्लाद ने शमशीर हो।
खासकर मेरे लिए दोजख नया तामीर हो, अलगरज जो कुछ हो मुमकीन वह मेरी तहकीर हो।
हो भयानक से भयानक भी मेरा आखीर हो, देश की सेवा ही लेकिन एक मेरी तकशीर हो ॥
इससे बढ़कर और दुनियां में अगर ताजीर हो, मंजूर हो! मंजूर हो!! मंजूर हो!!! मंजूर हो!!!
मैं कहूंगा फिर भी अपने देश का शैदा हूं मैं, फिर करूंगा काम दुनियां में अगर पैदा हुआ।

पं० रामप्रसाद 'बिस्मिल' द्वारा रचित कुछ कवितायें

(१)

देखना है किस कदर दम खंजरे कातिल में है, अब भी यह अरमान यह हसरत दिले बिस्मिल में है।
गैर के आगे न पूछो इस में है एक खास राज, फिर बता देंगे तुम्हें जो कुछ हमारे दिल में है।
खींचकर लाई है सबको कत्ल होने की उम्मीद, आशिकों का आज जमघट कूचये कातिल में है।
फिरते हो क्यों हाथ में चारों तरफ खंजर लिए, आज है यह क्या इरादा आज यह क्या दिल में है।

एक से करता नहीं क्यों दूसरा कुछ बातचीत, देखता हूं मैं जिसे वह चुप तेरी महफिल में है।
उन पर आफत आयेगी एक रोज मर ही जांय के, वह तो दुनियां में नहीं जो कूचये कातिल में है।
एक जानिब है मसीहा एक जानिब है कजा, किस कशामश में पड़ी है जान किस मुश्किल में है।
जख्म खाकर भी उसे है जख्म खाने की हवश, हौसिला कितना तड़फने का तेरे 'बिस्मिल में है।

(२)

आओ आओ भाइयो दिल खोलकर मातम करें, हम शहीदाने वतन की बेकसी का गम करें।
साथ वालों ने खुशी से जान दे दी मुल्क पर, रह गये इस फिक्र में बैठे हुए हम क्या करें।
राहे हक में जो मेरे जिन्दा है वह गम उनका क्या ? जीते जी हम मर गये जीने का अपना गम करें।
मानने की जो न हो वह बात क्योंकर मानलें, गैर मुमकिन हम उदू के सामने सर खम करें।
आप ही खिलवत में काटें अपने भाई का गला, आप ही फिर बैठकर अहबाब का मातम करें।
जब यह हालत हो हमारे मुल्क के इफराद की, जुल्म से अगियार के फिर चश्म क्या पुरनम करें।
बहुत रोये अब तो 'बिस्मिल' रोने से होता क्या ? काम इन कैसा करें अब आहोनाला कम करें।

(३)

पूछते क्या हो कि क्या अरमाँ हमारे दिल में है,कुछ वतन की याद में आहें दमें 'बिस्मिल' में हैं।
साकियाने बाग आलम सब रिहाई पा चुके, एक हमी आफत के मारे कैद की मुश्किल में हैं।
देशवालो दामने हिम्मत कभी छोड़ो नहीं, इम्तहाने इश्क की हम पहली ही मञ्जिल में हैं।
आ ही पहुंचेगी किनारे किश्ती ऐ भारत कभी, कोई दम में देखना हम दामने साहिल में हैं।

(४)

मिट गया जब मिटने वाला फिर सलाम आया तो क्या ?
दिल की बरबादी के बाद उनका पयाम आया तो क्या ?
काश अपनी जिन्दगी में हम यह मञ्जर देखते ।
यूं सरे तुरबत कोई महशर खराम आया तो क्या ?
मिट गई सारी उमोदें मिट गये सारे खयाल ।
उस घड़ी गर नामावर लेकर पयाम आया तो क्या ?
ऐ ! दिले नाकाम मिट जा अब तू कूंचे यार मैं ।
फिर मेरी नाकामियों के बाद काम आया तो क्या ?
आखिरी शबदीद से काबिल थी 'बिस्मिल' की तड़प ।
सुबह दम गर कोई बालाये बाम आया तो क्या ?

(५)

गैर हालत है मेरी देखने आये कोई, कौन है किस से यह गम जिसको सुनाये कोई।
रोके हर एक से कहतो है ये भारत माता, मुझको कमजोर समझकर न सताये कोई।
दूध बचपन में सपूतों को पिलाया मैंने, अब जईफी में दवा आके पिलाये कोई।
बाप को बेटे से है भाई को भाई से मलाल, रंज आपस के जो हैं इनको मिटाये कोई।

ख्वाब गफलत में पड़े सोते हैं जो अहले वतन, होश में लाए कोई इनको जगाये कोई।
क्या गिनाने कोई अनफास है तेंतीस करोड़, काम एक मेरी मुसीबत में तो आए कोई।
यह जमाने को है खूबी यह मुकद्दर की है बात, चैन से सोए कोई चैन न पाए कोई।
फिर न बिस्मिल रहे दुनियाँ में कोई ऐ! "बिस्मिल" फिर न आजार जमाने के उठाए कोई।

पं० रामप्रसाद 'बिस्मिल' की प्रिय कवितायें

यहां कुछ ऐसी कविताओं को उद्धृत करते हैं जो पं० रामप्रसाद जी 'बिस्मिल' को बहुत प्रिय थीं और उन्होंने यथासमय कण्ठस्थ की थीं।

(१)

भूखे प्राण तजैं भले, केहरि खरु नहिं खाहिं, चातक प्यासे ही रहें, बिन स्वांती न अघाहिं।
बिन स्वांती न अघाहिं हंस मोती ही खावे, सती नारी पतिव्रता नेक नाह चित्त डिगावे।
तिमि 'प्रताप' नहिं डिगे होहि चहें सब किन रूखे, अरि सन्मुख नहि नवें फिरें चहें बन बन भूखे।

(२)

चाह नहीं सुरबाला के गहनों में गूंथा जाऊं, चाह नहीं है प्यारी के गल पडूँ हार में ललचाऊं।
चाह नहीं है राजाओं के शव पर डाला जाऊं, चाह नहीं है देवों के सिर चढूँ भाग्य पर इतराऊं।
मुझे तोड़कर हे वनमालो उस पथ में तू देना फेंक, मातृभूमि हित शीश चढ़ाने जिस पथ जावें वीर अनेक।

(३)

भारत जननी तेरी जय हो विजय हो।

तू शुद्ध और बुद्ध ज्ञान की आगार, तेरी विजय सूर्य माता उदय हो।
हों ज्ञानसम्पन्न जीवन सफल होवे, सन्तान तेरी अखिल प्रेममय हो।
आयें पुनः कृष्ण देखें दशा तेरी, सरिता सरों में भी बहता प्रणय हो।
सावर के सङ्कल्प पूर्ण करें ईश, विघ्न और बाधा सभी का प्रलय हो।
गांधी रहें और तिलक फिर यहाँ आवैं, अरविन्द लाला महेन्द्र की जय हो।
तेरे लिए जेल हो स्वर्ग का द्वार, बेड़ी की झन झन वीणा की लय हो।
कहता खलल आज हिन्दू-मुसलमान, सब मिल के गाओ जननी तेरी जय हो।

(४)

कोऊ न सुख सोया करके प्रीति।

सुन्दर कली सेमर की देखी, सुअना ने मन मोहा। मारी चोंच मुआ जब देखा, पटक पटक सिर रोया।
सुन्दर कली कमल की देखी भंवरा का मन मोहा। सारी रैन सम्पुट में बीती, तड़प तड़प जी खोया।

(५)

किसी के आँख का नूर हूँ न किसी के दिल का करार हूँ,
जो किसी के काम न आ सकूं वह मैं एक मुश्ते गुबार हूं।
न दवाये दर्दे जिगर हूं मैं, न किसी की मीठी नजर हूं मैं।
न इधर हूं मैं, न उधर हूं मैं, न शकेब हूं न करार हूँ।

मैं नहीं हूं नगमये जां फिजां मेरा सुनके कोई करेगा क्या।
मैं बड़े वियोगी की हूं सदा ओ बड़े दुखी की पुकार हूं ॥
न मैं किसी का हूं दिलरुवा न किसी के दिल में बसा हुआ।
मैं जमीं की पीठ का बोझ हूं औ फलक के दिल का गुवार हूं ॥
मेरा बख्त मुझ से बिछड़ गया मेरा रंग रूप बिगड़ गया।
जो चमन खिजा से उजड़ गया मैं उसी की फसले बहार हूं ॥
पढे फातिहा कोई आये क्यों कोई शामा लाके जलाये क्यों।
कोई चार फूल चढ़ाए क्यों कि मैं बेकसी का मजार हूं ॥
न अख्तर से अपना हबीब हूं न अख्तरों का रकीब हूं।
जो बिगड़ गया वह नसीब हूं जो उजड़ गया वह दयार हूं ॥

(६)

ऐ मादरे हिन्द न हो गमगीन अच्छे दिन आने वाले हैं,
आजादी का पैगाम तुझे हम जल्द सुनाने वाले हैं
मां तुझको जिन जल्लादों ने दी है तकलीफ जईफी में,
मायूस न हो मगरुरों को हम मजा चखाने वाले हैं।
कमजोर हैं और मुफलिस हैं, हम गोकुञ्ज कफस में बेबस हैं,
बेबस हैं लाख मगर माता, हम आफत के परकाले हैं।
हिन्दू और मुसलमां मिल करके चाहे जो कर सकते हैं,
ऐ चर्ख कुहन हुशियार हो तू पुरशोर हमारे नाले हैं।
मेरी रुह को करना कैद कफस इनकाम से बाहर है उनके,
आजाद है अपना दिल शैदा, गो लाख जुबां पर ताले हैं।
मगलूब हैं होंगे गालिब महकूम जो हैं होंगे हाकिम,
सदा एक सा वक्त रहा किसका, कुदरत के तौर निराले हैं।
आजादी के मतवालों ने यह कैसा मन्त्र चलाया है,
लरजा है जिससे अर्श समाँ सरकार की जान के लाले हैं

(७)

मुहब्बाने वतन होंगे हजारों बेवतन पहिले, फलेगा इण्डिया पीछे भरेगा अण्डमान पहिले।
मुसीवत आ कयामत आ यहाँ जंजीरो जिन्दा हैं, यहां तैयार बैठे हैं गरीबाने वतन पहले।
जमीने हिन्द भी फूले फलेगी एक दिन लेकिन, मिलेंगे खाक में लाखों हमारे गुल बदन पहिले।

(८)

सिर्फ शिकवा आशिकी में लब पै लाना है मना, सामने बेदर्द के आंसू बहाना है मना।
कातिले सफफाक का मकतल में हुक्मे आम है, आशिके जाँबाज को सर का हिलाना है मना।
है यह बुलबुल को हिदायत गुल की अजरुये अदब, शाखे गुल पर बैठकर सर का हिलाना है मना।
बदनसीबी देखिये मुझ आशिके नाकाम की, उसके कूचे से गुजर कर मेरा जाना है मना।
जब हंसी आई मुझे तो वह भी फरमाने लगे, आशिकों को इश्क में हंसाना है मना।

@VaidicPustakalay

(९)

देशहित पैदा हुए हैं देश पर मर जायेंगे, मरते मरते देश को जिन्दा मगर कर जायेंगे।
हमको पीसेगा फलक चक्की में अपनी कब तलक, खाक बनकर आंख में उसकी बसर हो जायेंगे।
कर वही बर्गे खिगा को बादे सर सर दूर क्यों, पेशवाये फस्ले गुल है खुद समर कर जायेंगे।
खाक में हमको मिलाने का तमाशा देखना, तुख्मरेजी से नए पैदा शजर कर जायेंगे।
नौ नौ आँसू जो रुलाते हैं हमें उनके लिए, अश्क के सैलाब से बरपा हशर कर जायेंगे।
गर्दिशे गरदाब में डूबे तो परवा नहीं बहरे हस्ती में नई पैदा लहर कर जायेंगे।
क्या कुचलते हैं समझकर वह हमें बर्गे हिना, अपने खूं से हाथ उनके तर बतर कर जायेंगे।
नकशे पा है क्या मिटाता तू हमें पारे फलक, रहबरी का काम देंगे जो गुजर कर जायेंगे।

(१०)

उरियानी न हैरानी न थे पांव में छाले, हम भी थे कभी आह बड़े नाजों के पाले।
जुल खाया मिटे उड़ गई आजादी ओ राहत, अल्ला यह दिन अपने तो दुश्मन पै भी न डाले।
मारा मिटाया है हमें आह उन्हीं ने, कर बैठे थे हम जानो जिगर जिनके हवाले।
हमने तो हमेशा तेरी खुशनुदी ही चाही, खुद बिगड़े मगर काम तेरे सारे सम्भाले।
उसका यह सिला हमको मिला उफरी मुहब्बत, बर्बाद किया डाल दिए जान के लाले।
बेबस हुए हैं जलील हुए मिट तो चुके हम, अब और कयामत भी तो ढाना हो सो ढा ले।
सौगन्ध है तुझको तेरे उस जोरो जफा की, जी भरके हमें जितना सताना हो सता ले।
किस्मत का कभी अपने भी चमकेगा सितारा, हम भी कभी देखेंगे आजादी के उजाले।
बदलेगी लहर तब तेरे सिर चढ़ के कहेगी, था जहर पै कचुल से यह लाचार थे काले।

(११)

यदि देशहित मरना पड़े, मुझको सहस्रों बार भी, तो भी न मैं इस कष्ट को निज ध्यान में लाऊं कभी।
हे ईश ! भारतवर्ष में शतबार मेरा जन्म हो, कारण सदा ही मृत्यु का देशोपकारक कर्म हो।
मरते 'बिस्मिल' 'रोशन' 'लहरी' 'अशफाक' अत्याचार से, होंगे पैदा सैंकड़ों उनके रुधिर की धार से।
उनके प्रबल उद्योग से उद्धार होगा देश का, तब नाश होगा सर्वथा दुःख शोक के लवलेश का।

(१२)

मालिक तेरी रजा रहे और तू ही तू रहे, बाकी न मैं रहूं न मेरी आरजू रहे।
जब तक कि तन में जान, रगों में लहू रहे। तेरा ही जिक्र या, तेरी ही जुस्तजू रहे।

(१३)

उमड़ आये आंखों में प्राण, श्वास में आई अन्तिम वायु।
धूल में मिलने अब चली, फूल सम खिलकर मेरी आयु।
उठा था मन में मेरे भाव, बसूंगा मृत्यु वधू के द्वार।
और निज रक्त रंग से साज, शत्रु को दूँगा उपहार।
वधिक ! धिक अधिक करे मत देर, खींच तख्ते को रस्सी डार।
चलूं इस जीवन के उस पार, चखा दे मृत्यु वधू का प्यार।

श्री अशफाक उल्ला खां के कुछ शेर तथा कवितायें जिनकी आपने फांसी से कुछ समय पूर्व रचना की थी

फना है सबके लिए हम पै कुछ नहीं मौकूफ, बका है एक फकत जाति किब्रिया के लिए ।।१।।
तंग आकर हम भी उनके जुल्म के बेदाद से, चल दिए सूये अदम जिन्दा ने फैजाबाद से ।।२।।
तनहाइए गुरबत से मायूस न हो 'हसरत', कब तक न खबर लेंगे याराने वतन तेरी ।।३।।
ब जुर्मे आरजू पै जिस कदर चाहे सजा दे ले,मुझे खुद ख्वाहिसे ताजार है मुलजिम हूं इकरारी ।।४।।

(कविता १)

अफसोस ! क्यों नहीं है वेह रुह अब वतन, जिसने हिला दिया था दुनियां को एक पल में ।
ऐ पुख्ताकार—उल्फत हुशियार डिग न जाना, मराज आशंका है इस दार और रसन में ।
मौत और जिन्दगी है दुनियां का सब तमाशा, फरमान कृष्ण का था अर्जुन को बीच रण में ।
कुछ आरजू नहीं है, है आरजू तो यह है, रख दे कोई जरा सी खाके वतन कफन में ।
सैयाद जुल्म पेशा आया है जब से 'हसरत', हे बुलबुले कफस में जागोजगन चमन में ।

(२)

बुजदिलों ही को सदा मौत से डरते देखा, गौ कि सौ बार उन्हें रोज ही मरते देखा ।
मौत से वीर को हमने नहीं डरते देखा, तख्तये मौत पै भी खेल ही करते देखा ।
मौत एक बार जब आनी है तो डरना क्या है, हम सदा खेलें ही समझा किये मरना क्या है ।
वतन हमेशा याद रहे काम और आजाद, हमारा क्या है अगर हम रहे, रहे न रहे ।।

(३)

न कोई इङ्गलिश, न कोई जर्मन, न कोई एशियन न कोई तुर्की ।
मिटाने वाले हैं अपने हिन्दी जो आज हमको मिटा रहे हैं ।।
जिसे फना वह समझ रहे हैं वका का है राज इसी में मजमिर ।
नहीं मिटाने से मिट सकेंगे वो लाख हमको मिटा रहे हैं ।।
खामोश हसरत ! खामोश हसरत !! अगर है जवाब वतन का दिल में ।
सजा को पहुँचेंगे अपनी बेशक जो आज हमको सता रहे हैं ।।

(४)

पहिनाने वाले बेड़ियां पहनायेंगे, खुशी से कैद के गोशे को हम बसायेंगे ।
जो सन्तरी वीर जिन्दा के सो भी जायेंगे, वह राग गाके उन्हें नींद से जगायेंगे,
तलब फजूल है कांटे की फूल के बदले, न लें बहिश्त भी हम होमरूल के बदले ।
सन्तरी देखकर इस जोश को शरमायेंगे, राग जंजीर की झंकार में हम गायेंगे ।।

(५)

सितमगर अब यह आलम है तेरे बीमारे फुरकत का,लबों पर दम है दिल में बलबला शौके शहादत का ।
मेरी दीवानगी पर चारागर हैरां न हो इतना, यही अन्जाम होना चाहिए नाकाम उल्फत का ।।

बुताने संग दिल सुनते नहीं फरियाद बेकस की, निराला ढंग है उन खुदपरस्तों की हकूमत का।
मिटाकर जानो दिल अपना किसी जालिम जफाजू पर, तमाशा अपनी आंखों देखता हूं अपनी किस्मत का॥
हविश हूरों की जिसमें दिलाये याद गिल्मां को, जनाबे शेख मैं कायल नहीं ऐसी रियाजत का।
बर आयें हसरतें हासिल सकूने कल्ब मुजतर हो, कहां ऐसा मुकद्दर हाय मुझ बरगश्ता किस्मत का॥
मजा जब है कि वह कह उठें 'अशफाक' उनका क्या कहना, गजल हैं या मुरक्का है तेरे वक्त मुशीबत का।

(६)

बहार आई है शोरिश है जनूने फितना सामां की, इलाही खैर रखना तू मेरे जेबो-गिरेबां की।
सही जजबाते उलफत भी कहीं मिटने से मिटते हैं, अबस हैं धमकिया दारो रसन की और जिन्दा की।
यह गुलशन जो कभी आजाद था गुजरे जमाने में, मैं शाखे खुश्क हूं हां! हां!! इसी उजड़े गुलिस्तां की।
नहीं तुम से शिकायत हम शफीराने चमन मुझको, मेरी तकदीर ही में था कफस और कैद जिन्दा की।
जमीं दुश्मन जमां दुश्मन जो अपने थे पराये हैं, सुनोगे दासतां क्या तुम मेरे हाले परेशां की।
यही लिखा था किस्मत में चमन पैराये आलम ने, कि फस्ले गुल में गुलशन छूटकर है कैद जिन्दा की।
यह झगड़े और बखेड़े मेटकर आपस में मिल जाओ, अबस तफरीक है तुम में यह हिन्दू और मुसलमां की।
सभी समाने हसरत थे मजे से अपनी कटती थीं, वतन के इश्क ने हमको हवा जिन्दा की।
वह मह लिल्लाह चमक उठा सितारा मेरी किस्मत का, कि तकलीदे हकीकी की अता शाहे शहीदां की।
इधर खौफे खिजां है आशियां, का गम उधर दिल को हमें यकसां है तफरीये चमन और कैद जिन्दा की।
करो जब्ते मुहब्बत गर तुम्हें दवाये उलफत हैं, खामोशी साफ बतलाती है यह तस्वीर जाना की।

फांसी पर जाते समय राजेन्द्रनाथ 'लहरी' का गान

हम सरे दार बसर शौक जो घर करते हैं। ऊंचा सर कौम का हो नज़र यह सर करते हैं।
सूख जाये न कहीं पौदा यह आजादी का, खून से अपने इसे इसलिए तर करते हैं।
इस गुलामी में तो कोई न खुशी आई नज़र, खुश रहो अहले वतन हम तो सफर करते हैं।
सर तन से जुदा कर दो ये है हाथ तुम्हारे, पर रुह से जजबाते जुदा कर नहीं सकते।

क्रांतिकारी की उमंग

गजल (१)

मत रो मां तेरे चरणों पर कर दूंगा जीवन बलिहार।
हृदय रक्त जल से धो दूंगा बहती हुई आंसू की धार॥
शीश चढ़ा दूंगा मां तेरे पदकमलों पर पुष्प समान।
पद पखार दूंगा शोणित से किन्तु न होने दूंगा मलीन॥
देखूं कौन देखता है अब जननी तुझको नयन तरेर।
भय के दिन अब बीत गये मां नहीं सुदिन की है अब देर॥
कट जायेंगे तेरे बन्धन पहनेगी तू जय का हार।
मत रो मां अब शेष रहे हैं दुख के दिन बस दो ही चार॥

गजल (२)

सरफरोशी की तमन्ना है तो सर पैदा करो, दुश्मने हिन्दुस्तान के दिल में डर पैदा करो।
फूंक दो बरबाद कर दो आशियां सैय्याद को, शरबाजो अब जरा फिर से शरर पैदा करो॥
झौंक दो दोजख की भट्टी में तुम इङ्गलिस्तान को, जल के हो जायें खाक गोरे वह हशर पैदा करो।
आगे बढ़ करके जरा अब फोर्ड विलियम छीन लो, लार्ड साहब के मिटाने की अकल पैदा करो।
दत्त भगतसिंह की तरह झेलो हजारों सख्तियां, दास जैसा सख्त जनिव फिर बसर पैदा करो।
सन् अठारह सौ सत्तावन का वही आगाज हो, नौजवानाने वतन फिर से गदर पैदा करो।
निर्वासिन कालेपानी से जरा न भय मानूंगा मैं, भूखे बिना अन्न पानी रह गीत बवा गाऊँगा मैं।
फांसी पर दे चढ़ा अरे हंसते-हंसते झूलूंगा मैं, बोटी-बोटी मांस नोच ले आह नहीं बोलूंगा मैं।
आती सन्-सन्-सन् गोली को छाती से ठुकराऊं मैं,
'क्रांति विजय' 'साम्राज्य नाश' यह शब्द नहीं छोड़ूँगा मैं।

युवकों का जयघोष

कुछ सावन कर ले कटती हैं सब कड़ियां तेरी गुलामी की।
यह हम से हो सकता ही नहीं कि सूरत देखें नाकामी की॥
क्या फिक्र तुझे मां! कैसे कटे हम नहें नाहें बेचारों से।
जञ्जीर कढ़ी जो कट सकी इन बूढ़ों के औजारों से॥
हम जती सती हैं ऐ माता! हम तेरा मान बढ़ायेंगे।
जो हम ने तुझ को वचन दिया वह पूरा कर दिखलायेंगे।

अहसासे गम नहीं, हमें परवाहे गम नहीं, हमने समझ लिया है, कि दुनियां में हम नहीं।
बुलबुल को गुल पसन्द है और गुल को बू पसन्द, किसी को कुछ पसन्द हो, पर मुझको तू पसन्द।
मातायें अब करें न ममता देशप्रेम मतवालों की, पिता न मोह करें पुत्रों का बलि दें अपने लालों की।
वीर पत्नियां बनें न बाधक पतियों को वह विदा करें, आजादी ले आओ कहकर फर्ज प्रेम से अदा करें।

क्या था?

(१)

देश दृष्टि में माता के चरणों का मैं अनुरागी था, देशद्रोहियों के विचार से मैं केवल दुर्भागी था।
माता पर मरने वालों की नजरों में मैं त्यागी था, निरंकुशों के लिए अगर मैं कुछ था तो बस बागी था।

(२)

माता के बन्धन तोड़ूंगा, रखता था नित ध्यान यही।
अथवा मातृमान् पर मर जाऊंगा, था मुझको अभिमान यही।
चाह रहा था जीवन में मैं, फांसी का वरदान यही।
जन्मूंगा फिर भी भारत में, होता उर में मान यही॥

(३)

देशप्रेम के मतवाले कब झुकें फांसियों के भय से, कौन शक्तियां हटा सकी हैं उन वीरों को निश्चय से।
हो जाता है शक्तिहीन जब शासन अतिशय अविनय से,
लखता है जब बलिदानों की पूर्ण विजय तब विस्मय से।

(४)

वीर शहीदों के शोणित से, राष्ट्र महल निर्माण हुए, माता के चरणों पर अर्पित निज देश के प्राण हुए।
उत्पीडक वनराज कुलों के भाग्यदीप निर्माण हुए, रहे न पलभर पराधीन फिर प्राप्त उन्हें कल्याण हुए।

अलीपुर बम केस के अभियुक्त श्री ओमप्रकाश जी के उद्गार

(ये अलीपुर बम केस के अभियुक्त श्री ओमप्रकाश जी के काले पानी जाते समय के उद्गार हैं, इनको श्री पं० रामप्रसाद 'बिस्मिल' कालकोठरी के अन्दर मस्ती से गाया करते थे।)

हैफ जिस पै कि हम तैयार थे मर जाने को, यकायक हमसे छुड़ाया उसी काशाने को।
आस्मां क्या यही बाकी था गजब ढाने को, ला के गुर्बत में जो रक्खा हमें तड़फाने को।।
क्या कोई और बहाना न था तरसाने को।।१।।

फिर न गुलशन में हमें लायेगा सय्याद कभी, क्यों सुनेगा तू हमारी कोई फरियाद कभी।
याद आयेगा किसे यह दिले नाशाद कभी, हम भी इस बाग में थे कैद से आजाद कभी।।
अब तो काहे को मिलेगी यह हवा खाने को।।२।।

दिल फिदा करते हैं कुर्बान जिगर करते हैं, पास जो कुछ है वह माता की नजर करते हैं।
खाने वीरान कहां देखिये घर करते हैं, खुश रहो अहले वतन हम तो सफर करते हैं।।
जाके आबाद करेंगे किसी बीराने को।।३।।

देखिये कब यह असीराने मुसीबत छूटें, मादरे हिन्द के अब भाग खुलें या फूटें।
देश सेवक सभी अब जेल में मूंजें कूटें, आप यहां ऐश से दिन रात बहारें लूटें।।
क्यों न तरजीह दें इस जीने से मर जाने को।।४।।

कोई माता की उम्मीदों पै न डाले पानी, जिन्दगी भर को हमें भेज दे कालेपानी।
मुंह में जल्लाद हुए जाते हैं छाले पानी, अबे खंजर का पिला कर के दुआले पानी।
भर न क्यों जायें हम इस उम्र के पैमाने को।।५।।

हम भी आराम उठा सकते थे घर पर रहकर, हमको भी पाला था मां-बाप ने दुःख सहसह कर।
वक्ते रुखसत उन्हें इतना भी न आये कहकर, गोद में आंसू कभी टपके जो रुख से बहकर।।
तिफल उनको ही समझ लेना जी बहलाने को।।६।।

देश सेवा का ही बहता है लहू नस-नस में, अब तो खा बैठे हैं चित्तौड़ के गढ़ की कसमें।
सर फरोशी की अदा होती हैं यों ही रसमें, भाई खंजर से गले मिलते हैं सब आपस में।।
बहनें तैयार चिताओं में हैं जल जाने को।।७।।

नौजवानो जो तबियत में तुम्हारी खटके, याद कर लेना कभी हमको भी भूले भटके।
आपके आज बदन होवें जुदा कट कट के, और सद चाक हो माता का कलेजा फट के।।
पर न माथे पै शिकन आये कसम खाने को।।८।।

अपनी किस्मत में अजल से ही सितम रखा था, रंज रखा था महिन रखा था गम रखा था।
किसको परवाह थी और किस में यह दम रखा था, हमने जब वादिये गुरबत में कदम रखा था।।
दूर तक यादे वतन आई थी समझाने को।।९।।

अपना कुछ गम नहीं लेकिन यह ख्याल आता है, मादरे हिन्द पै कब तक जवाल आता है।
हरदयाल आता है योरुप से न अजीत आता है, कौम अपनी पै रो रो के मलाल आता है ।।
मुन्तजिर रहते हैं हम खाक में मिल जाने को ।।१०।।

मैंकदा किसका है यह जाने सबू किस का है, वार किस का है मेरी जां यह गुलू किस का है।
जो बहे कौम की खातिर वह लहू किस का है, आस्मां साफ बता दे तू उदू किस का है ।।
क्यों नये रंग बदलता है यह तड़फाने को ।।११।।

दर्दमन्दों से मुसीबत की हवालात पूछो, मरने वालों से जरा लुत्फ शहादत पूछो।
चश्मे मुश्ताक से कुछ दीद की हसरत पूछो, सोच कहते हैं किसे पूछो तो परवाने को ।।१२।।
बात तो जब है कि इस बात की जिद्द ठानें, देश के वास्ते कुर्बान करें सब जानें।
लाख समझाये कोई एक न उसकी मानें, कहता है खून से मत अपना गरेबां साने ।।
नासहा आग लगे तेरे इस समझाने को ।।१३।।

न मयस्सर हुआ राहत में कभी मेल हमें, जान पर खेल के भाया न कोई खेल हमें।
एक दिन को भी न मंजूर हुई बेल हमें, याद आयेगा बहुत लखनऊ का जेल हमें ।।
लोग तो भूल ही जायेंगे इस अफसाने को ।।१४।।

अब तो हम डाल चुके अपने गले में झोली, एक होती है फकीरों की हमेशा बोली।
खून से फाग रचायेगी हमारी टोली, जब से बङ्गाल में खेले हैं कन्हैया होली ।।
कोई उस दिन से नहीं पूछता बरसाने को ।।१५।।
नौ जवानो यही मौका है उठो खुल खेलो, खिदमते कौम में जो आवे बला तुम झेलो।
देश के सदक में माता को जवानी दे दो, फिर मिलेगा न ये माता की दुआयें ले लो ।।
देखें कौन आता है इरशाद बजा लाने को ।।१६।।

रोहतक में बम का कारखाना

(यज्ञदेव शास्त्री)

जिस समय क्रान्तिकारी वीरों ने अंग्रेज सरकार की नाक में दम कर रखा था और चारों तरफ गिरफ्तारियों की धूम थी और अंग्रेजों के शिकारी कुत्ते क्रान्तिकारियों को खोज निकालने के लिये सूंघते फिरते थे तो भी क्रान्तिकारी वीर अपना सिर हथेली पर रखे अपने उद्देश्य की सफलता के लिये यह शपथ लेकर कार्य में जुट जाते थे कि "हम देश सेवा में अपना सर्वस्व न्यौछावर कर देंगे। तन, मन, धन हमारा सभी कुछ देश के अर्पण होगा" और अपने घर का मोह त्यागकर सिर धड़ की बाजी लगा रहे थे। उसी समय की एक यह छोटी सी घटना आपके सम्मुख रखता हूं। क्रान्तिकारी वीरों का आत्मत्याग पराकाष्ठा पर था। वह सर्वप्रयत्न से ही यह चाहते थे कि हमारा देश स्वतन्त्र हो। शान्ति की क्रान्ति से काम न चलता देखकर ही उन्होंने अस्त्र-शस्त्रों द्वारा क्रान्ति का रास्ता अपनाया था। जगह-जगह इन वीरों ने बम बनाने के कारखाने बनाये।

क्रान्तिकारी वीर भगवतीप्रसाद ने दिल्ली में बम बनाने की अपेक्षा अन्य छोटे शहर में बम बनाना अधिक अच्छा समझा, क्योंकि वहां से सरकार को शीघ्र पता न चल सकेगा। यह विचार कर आप अपने पुराने परिचित नवयुवक वैद्य लेखराम जी के पास गये जो कि रोहतक में रहते थे। इस कार्य में सहयोग देने के लिए वैद्य जी ने सहर्ष स्वीकृति दे दी। भगवतीप्रसाद को अधिक कार्य रहता था अतः उन्होंने यह कार्य वीर यशपाल को सौंप दिया। दिल्ली से सब आवश्यक सामान लेकर यशपाल जी रोहतक में वैद्य लेखराम जी के पास पहुंच गये। वैद्य जी ने पहले से ही एक टूटा सा मकान इस कार्य के लिए ले लिया था और सर्वत्र यह प्रसिद्ध करा दिया था कि अब हम पारे इत्यादि के योग से रस भस्म इत्यादि कीमती दवाइयां बनाया करेंगे।

यहां आकर यशपाल बिल्कुल ग्रामीण व्यक्तियों की भाँति रहने लगा और अपना नाम भी बदल लिया। यशपाल ने अपना नाम किसना रख लिया। वैद्य जी की दुकान रोहतक के बीच बाजार में थी। यशपाल प्रतिदिन प्रातःकाल दुकान खोलता, उसकी सफाई इत्यादि करता था और टाट बिछाकर खरल लेकर दवाइयां घोटना प्रारम्भ कर देता था और इमामदस्ते में दवाइयां भी कूटता था। इस प्रकार कुछ दिन यही क्रम चलता रहा। गर्मी का समय था, वैद्य जी के पास सब काम करनेवाला यही किसना ही था। रोगियों की सेवा व आतिथ्य भी यही करता। पंखा भी गर्मियों में प्रायः यही चलाता था।

इस प्रकार कार्य करते करते कुछ दिन बाद बम बनाने का कार्य प्रारम्भ कर दिया। बम बनाने के लिए एक तेजाब में शनैः शनैः दूसरी तेजाब मिलाते समय साथ साथ हिलाना भी पड़ता था, इसी प्रकार तीसरी तेजाब मिलानी पड़ती थी। इनके मिलाते समय उनमें से पीले रंग का धुवां निकलता था। बर्तन को छोड़ना भी हानिकर था क्योंकि मिलाते समय चलाना आवश्यक था। तेजाब के धुयें ने यशपाल जी के तमाम वस्त्र ऐसे कर दिए कि जहां से पकड़ो वहीं से फट जाय। यह हालत देख यशपाल लंगोट बांधने लगा और बाहर आने जाने को अन्य पुराने से वस्त्र रखने लगा। कपड़ा न पहनने के कारण अब शरीर पर से तेजाब के प्रभाव से झुर्री उतरने लगी परन्तु कष्ट कोई विशेष नहीं होता था। तेजाब के धुयें के कारण यशपाल को प्रायः खाँसी, सिरदर्द होता ही रहता था किन्तु वह परवाह न करता था। तेजाब के बर्तनादि के साफ करने के कारण यशपाल के हाथ कटते थे और लाल लाल हो जाया करते थे। रबड़ के दस्तानों का प्रयोग करने पर भी हाथों पर असर हो जाता था।

वह प्रतिदिन प्रातः बम बनाने के मसाले का एक घान पकाने के लिए चढ़ाता था। इसके पकाने में चार घण्टे लग जाते थे। पुनः इसे ठण्डा करने के लिए चार घण्टे रखना पड़ता था। इस समय में यशपाल दुकान पर जाकर दवाई कूटता, पंखा चलाता, किसी के आ जाने पर कुयें से ताजा पानी लाता था। एक दिन वैद्य जी के किसी मित्र ने इसके हाथों में लाली देखकर पूछा–यह तेरे हाथ लाल क्यों हैं ? यशपाल ने बड़ी दीनतापूर्वक उत्तर दिया "सरकार जरा मेंहदी लगा ली थी।"

तब लेखराम जी कहने लगे "देखो साले जनखे को, औरतों की भांति मेंहदी लगाता है।"

यशपाल आगन्तुकों के लिए पानी आर्यसमाज के कुएं से लाता था। वहां एक स्वामी जी रहते थे, उनसे भी इसका सम्पर्क हो गया। स्वामी जी भी कभी कभी उससे जलादि मंगाया करते थे। इस प्रकार अनेक कष्ट सहता हुआ भी यह वीर कार्य में दृढ़संकल्प लगा रहता था।

सायंकाल जब लेखराम जी घर जाते तो कुछ सामान कनस्तर ट्रंक या बोरी इत्यादि यशपाल के सिर पर रखकर ले जाया करते थे। एक दिन इसी प्रकार वैद्य जी और यशपाल जा रहे थे तो रास्ते में वैद्य जी के एक मित्र मिल गये जो सोडा लेमन पी रहे थे। उसने वैद्य जी को भी एक शीशी दी। तब वैद्य जी ने यशपाल की ओर घूरकर पूछा क्यों बे किसना तू भी पीयेगा सोडा ? उसने उत्तर दिया पी लूंगा महाराज।

ऐ हैं ? सोडा पीयेगा ? बड़ा शौकीन है ? साले कभी तेरे बाप ने भी पिया है सोडा ? यह कहकर वैद्य जी ने एक शीशी उसे दे दी। वह सड़क पर ही कनस्तर रखकर खड़ा ही खड़ा सोडा पीने लगा। तब वैद्य जी डाटकर बोले ''देखो तो बैल की भांति खड़ा डकार रहा है। बैठकर क्यों नहीं पीता ?'' तब उसे सड़क पर ही बैठ जाना पड़ा।

इतना ही नहीं, उसको यदि कभी अखबार भी देखना होता तो छुपकर एकान्त में पढ़ना पड़ता था। क्योंकि रहस्य को छुपाकर रखना भी जरूरी था। किसी को पता भी न चले कि यह पढ़ना भी जानता है इसलिए एकान्त में पढ़ता था। एक बार वैद्य जी के एक मित्र ने इसे अखबार पढ़ते देख लिया और कहा अरे किसना तू पढ़ना भी जानता है ? तब यशपाल ने कहा ''नहीं सरकार (यों ही मिथ्या किसी की तस्वीर दिखाकर) मैं तो यह महात्मा गाँधी की मूर्ति देख रहा था।'' वैद्य लेखराम यशपाल के खाने पीने इत्यादि का विशेष प्रबन्ध करते रहते थे और उसे सब प्रकार की सुविधायें देने का ध्यान रखते थे।

बम बनाने का काम प्रायः समाप्त हो गया था। एक दिन सायंकाल को शहर की पुलिस शहर में कुछ खोज रही थी तो लक्ष्मणदास जी ने जो उस समय कांग्रेस कमेटी के सैक्रेट्री थे, वैद्य लेखराज जी को बताया की पुलिस शहर में घूम रही है। यह सुनकर वैद्य जी तथा यशपाल जी घबराये। सोचा कहीं हमारा तो पता पुलिस को नहीं लग गया। उसी रात को ग्रामीण वेष धारण करके ये दोनों उस मसाले को गठरी बांधकर देहली चले गये।

इस प्रकार रोहतक में भी इन क्राँतिकारी वीरों ने बम बनाने का स्थान बनाया और बम बनाये। इन्हीं बमों का प्रयोग इन वीरों ने वायसराय को मारने के लिए उसकी स्पेशल रेल के नीचे दबाकर भी किया था।

देश की स्वतन्त्रता के लिए इन वीरों ने कितने कष्ट सहे इसकी हम कल्पना भी नहीं कर पाते। उन्हीं आजादी के परवानों के अमर बलिदान का फल है जो आज हम स्वतन्त्रता के आनन्द में फूले नहीं समाते और स्वराज्य का लाभ प्राप्त कर रहे हैं। उन्हीं वीरों ने इस स्वराज्य रूपी वृक्ष को अपने रक्त रूपी जल से सींचकर बड़ा किया था। इतिहास में उन वीरों का नाम सदा के लिए अमर रहेगा।

@VaidicPustakalay

सहारनपुर में बम का कारखाना

(ब्र० महादेव)

अन्य स्थानों की भांति यहां भी बम बनाने की जगह थी। डा० गयाप्रसाद जी अपने घर पर यह काम कराते थे। आपके पास इस कार्य के लिए शिव वर्मा और जयदेव कपूर जी थे। १२ ता० को अचानक दोपहर को कपूर जी के मन में ही एक हुकहुकी या अनिष्ट की आशंका अनुभव हुई। आपने अपनी बात शिववर्मा जी को बताई। दोनों ने सावधान होकर रात को भी बारी बारी से पहरा देने का निश्चय किया। आप दोनों सारी रात जागते रहे परन्तु कोई नहीं आया। दूसरे दिन रात्रि में जागने के कारण आंगन में चारपाई डालकर सोने लगे। इस मकान में आगे सड़क पर तीन कोर का एक लम्बा कमरा था। इसी कमरे में डा० की बैठक या डिसपेंसरी थी। इस कमरे की बगल में एक दरवाजे से घर के भीतर के आंगन के लिए रास्ता था। आंगन के पास एक और लम्बा कमरा था। इसके दरवाजे दोनों ओर थे। प्रातः सात बजे किसी ने दरवाजा खटखटाया। आवाज जोर की थी अतः शिव की नींद खुल गई और नींद में ही यह जानकर कि डा० साहब आ गये दरवाजा खोल दिया। देखा तो सामने पुलिस खड़ी है। पुलिस ने आपसे पूछा क्या आप डा० साहब हैं। शिव ने उत्तर दिया, नहीं मैं तो उसका सम्बन्धी हूं, बनारस के विश्व-विद्यालय में पढ़ाता हूं। छुट्टियों में मिलने आया हूं। डा० कानपुर गये हैं। पुलिस पर्याप्त मात्रा में सशस्त्र थी, साथ डिप्टी सुपरिण्टेण्डेण्ट मथुरादत्त जोशी भी थे। आपसे बातें करते जोशी साहब बैठक में चले गये। वहां जाकर बैठक में जो अलमारी थी उसकी तलाशी ली। कुछ जब्त साहित्य कहकर पुस्तकें निकाल लीं इतने में अन्दर से आवाज आई हजूर इधर आइए यहां बहुत कुछ है। कोतवाल उसी ओर चल पड़ा। जयदेव कपूर अब तक मस्त नींद में सो रहा था। कोतवाल ने उसे जगाया और तीन पुलिस वालों के घेरे में रख दिया। जोशी जी भी शिवराम वर्मा को लेकर उसी ओर गये। अन्दर के कमरे में एक अलमारी थी उसमें रासायनिक द्रव्य और बम बनाने का सामान था। एक सन्दूक में तैयार बम और छोटी सी बेग में दो पिस्तौल तथा कारतूस थे। जोशी जी शिव वर्मा को इस सामान के विषय में पूछताछ करने लगे। चतुरता से बात कर बचने की अब कोई सम्भावना नहीं थी, न ही पुलिस से घिरे हुए अवस्था में शस्त्र ही उठाया जा सकता था। जोशी जी अलमारी खुलाकर एक-एक चीज को पूछने लगे यह क्या है? यह क्या है? शिव वर्मा ने उत्तर दिया कि मैं क्या जानूं। यह डाक्टर साहब का सामान है। दवाई बनाने का सामान होगा। उस समय शिव व जोशी जी दोनों पैंतरेबाजी से बात कर रहे थे। एक बक्स की ओर संकेत कर जोशी जी ने शिव वर्मा को आज्ञा दी इसे खोलिए। शिव ने अकड़ कर कहा कि सब कुछ मैं ही खोलूं। तलाशी आप ले रहे हैं स्वयं खोलिए। जोशी ने चट से कहा कि आपको अवश्य खोलना होगा। अच्छा कहकर आपने बक्स को उठाकर भीतर हाथ डालकर ललकारा। अब तुम सब मरो यह बम है।

अन्दर से बम निकालकर ऊपर उठा लिया। जोशी ने चिल्लाकर आज्ञा दी कि पकड़ो! भागो!! और सबसे आगे स्वयं भागने लगा। इधर लोगों ने भी पकड़ने के बजाय भागने की ही आज्ञा का पालन किया। इतने में शिव वर्मा द्वितीय अलमारी की ओर लपका। भरा हुआ बम उसके हाथ में आ गया था परन्तु अकस्मात् विस्फोट की घटना से बचने के लिए पिस्तौल उठा रहा था। इतने में कोतवाल ने पीठ अपनी ओर होती हुई देखकर एक दम आपकी पीठ पकड़ ली और फर्श पर दे मारा और आपके दोनों कन्धों को अपने घुटने के नीचे दबोच लिया। कोतवाल राजपूत था अतः आपको पकड़ने में सफल हो गया। यह तमाशा देखकर पुलिस भी वापिस आ गई। इनके आने पर आपकी खूब मरम्मत की और आपके हाथ पीछे की ओर बांधकर जयदेव कपूर को बेड़ी पहना दी। इधर जोशी जी भय के मारे बाहर निकल गये थे तब शत्रु के वश में होने की बात सुनकर पिस्तौल से धमकाते हुए लौटे। पुलिस से घिरे हुए कपूर से कहा,बम को रख दो नहीं तो गोली मारता हूं। जयदेव कपूर उस समय हाँसी करते हुए बोला—होश कीजिए जनाब! मेरे हाथ बंधे हुए नहीं दीखते? देखिये आपके पिस्तौल की नली कहाँ जा रही है? सचमुच जोशी जी का हाथ उस प्रकार डर के मारे हिल रहा था जिस प्रकार हवा में पत्ते हिलते हैं। हिलने के कारण पिस्तौल की नली भूमि की ओर थी।

आप लोगों को वश में कर लेने पर जोशी ने सारा सामान कोतवाली में ले जाने की आज्ञा दे दी और स्वयं इस घटना को डिप्टी कमिश्नर को सुनाने के लिए उसके बंगले पर गया। जोशी के चले जाने पर कोतवाल पराजित शत्रुओं के प्रति राजपूतीय उदारता से बोले "इतने पिस्तौल और कारतूस होते हुए भी आप लोग चाहते तो हमको मारकर भाग सकते थे।" तब जयदेव कपूर और शिव वर्मा ने उत्तर दिया कि "आप लोगों को मारने से हमें क्या मिलता? हिन्दुस्तानियों का राज स्थापित करने के लिए हम लड़ रहे हैं। उन्हीं को मारें यह ठीक नहीं। हां यदि गोरकाय का आ जाता तो उसकी क्या गत बनती? यह जान लेते।" सिपाहियों पर इस बात का बहुत अच्छा प्रभाव पड़ा। और कहने लगे "अरे बाबू हम लोग टुकड़ाखोर कुत्ते हैं, मर ही जाते तो क्या था? यों भी हम जैसे सैकड़ों मरते हैं, आप लोगों का ही जीवन मूल्यवान् है" यह कहकर दो तीनों के आंखों से पानी भी आने लगा। एक ने खिन्न स्वर में कहा 'हम लोग क्या जानते आप लोग कौन हैं हमें तो यह कहा गया था "कोकिन फरोशों को पकड़ने जा रहे हैं"। जब आप जेल में गये तब आपके साथ इन सिपाहियों ने अच्छा व्यवहार किया।

इधर गयाप्रसाद रुपयों की कुछ व्यवस्था कर तीन दिन के बाद घर पर आये। यदि आप समाचार पत्र पढ़ लेते तो शायद आप घर नहीं आते। क्योंकि आप के घर की घटी घटना उस दिन अखबार में छप चुकी थी। आपके पास सारगपुर का किराया था अतः आपने समाचार पत्र नहीं खरीदा। सारगपुर जाकर ही पत्र पढ़ लेंगे। इधर सारगपुर स्टेशन पर पुलिस आपकी बाट में थी परन्तु डाक्टर साहब अपनी कुशलता व चातुरी से घर निरापद पहुंच गये। आपकी प्रतीक्षा में पुलिस के चार आदमी आपके मकान में ठहरा रखे थे। डा० साहब की आवाज सुनकर उनमें से एक ने दरवाजा खोला और झपट कर गयाप्रसाद को कड़े आलिंगन में कस लिया। दोनों ही स्नेह प्रदर्शन की होड़ एक दूसरे से अधिक बढ़ाये जा रहे थे। अन्त में इस प्रेम से ऊबकर आप बोले—बस बस बहुत हो गया यार। अब छोड़ो बात भी सुनो। आप इस आलिंगन करने वाले को काशीराम समझ रहे थे। क्योंकि इसका इस प्रकार का स्वभाव था, परन्तु जब स्थिति का ज्ञान हुआ तो आप अवाक् होगये। आपको पकड़कर हाथों में हथकड़ियां लगा दी गईं और कोतवाली की ओर ले जाने लगे। रास्ते में

आपको अचानक स्मरण आया कि आपकी जेब में कुछ आवश्यक कागज थे जिनमें जोगेश को छुड़ाने की योजना थी। वे सोचने लगे कि यह तलाशी में पुलिस के हाथ लग जायें तो करे कराये कार्य का खेल बिगड़ जायेगा। अतः आप चलते-चलते एकदम थम गये और कहा कि 'हम लघुशंका करना चाहते हैं' सिपाहियों ने विवश होकर हाथ से हथकड़ी निकाल दी और हथकड़ी की रस्सी थामे खड़े हो गये। सड़क के किनारे बैठते ही आपने खुले हाथ से भीतर की जेब से कागज निकाल मुंह में भर जैसे तैसे निगलना चाहा, कागज गले में अड़ गया। आपका दम घुटकर आंखें बाहर निकलने लगीं। मुंह से शब्द निकलना कठिन हो गया। वे सड़क पर बैठ गये और अञ्जली से पानी के लिए संकेत किया। सिपाही डा० के कष्ट कारण का तो न समझ सके पर एक सिपाही पास की दुकान से पानी ले आया। घूंट भर कर डा० ने गला साफ कर लिया। यह घटना आपके स्वभाव और कार्यकुशलता का अच्छा नमूना है।

श्री योगिराज अरविन्द

(ब्र० सोमवीर)

श्री अरविन्द जी का जन्म १५ अगस्त सन् १८७२ ई० में कलकत्ता में हुआ था। इनके पिता का नाम श्री कृष्णघोषधन जी था और इनकी माता का नाम स्वर्णलता देवी था। जब अरविन्द जी ७ वर्ष के हुये थे तो इनके पिता अपने परिवार सहित इनको अंग्रेजी की उच्च शिक्षा दिलाने के लिए इंगलैंड चले गये, वहां पर अरविन्द जी १८ वर्ष की आयु में ही सिविल सर्विस की परीक्षा में बैठे थे, परन्तु घुड़सवारी में उत्तीर्ण नहीं हो सके, अतः इन्होंने परीक्षा में असफल होने के बाद अपने विचारों तथा पथ को बदल दिया और कैम्ब्रिज के विश्वविद्यालय में अंग्रेजी की उच्चशिक्षा ग्रहण करने के विचार से प्रविष्ट हो गए।

आप १८९३ ई० में बड़ौदा नरेश के आग्रह से इङ्गलैंड से भारत आये। अतः २० वर्ष तक विदेश में रहने के कारण जब आप भारत आये तो आपको अपनी मातृ-भाषा दोबारा सीखनी पड़ी और आप बड़ौदा महाराज के निजी सहायक पद पर नियुक्त हो गये। इसके बाद वहां पर आप की काफी उन्नति होने लगी लेकिन आप अपनी बढ़ती हुई उन्नति तथा सांसारिक सुख को त्यागकर फिर बड़ौदा से अपनी जन्मभूमि बङ्गाल में लौट आये और देशसेवा के कर्मक्षेत्र में आ गये।

इस समय बङ्गाल निद्रा से जागृत होकर करवटें बदल रहा था। बङ्गालवासियों के हृदयों में देशसेवा के भाव जागत हो रहे थे। इस समय बङ्गाल लार्ड कर्जन के बङ्गाल विच्छेद का पूर्ण घोर रूप से विरोध कर रहा था, तो अरविन्द बाबू भी इस विपत्ति में आ कूदे और देशसेवा के कार्य में अपने को लगा दिया और कुछ दिन में आप कांग्रेस के सदस्य बन गये। जब सन् १९०६ ई० में कांग्रेस अधिवेशन हुआ। आपने अपने साथियों को साथ लेकर कांग्रेस में यह प्रस्ताव पास करा दिया कि स्वराज्य प्राप्त करना ही कांग्रेस का मुख्य उद्देश्य है। आप वन्देमातरम् पत्र के सम्पादक भी थे। आप

उस में बड़े ओजस्वी लेख लिखते थे । अत: आपको एक दिन बन्दी कर लिया और कारागार में डाल दिया । आपको एक वर्ष का कारावास हो गया, तत्पश्चात् आप कारागार से मुक्त हुये और फिर राजनीति में पूरे जोर से लग गये ।

१६१० ई० में मार्च मास के साप्ताहिक "कर्मयोगिन" में अरविन्द के एक लेख पर राजद्रोह का दोष लगाकर अरविन्द को जेल भेजने की आज्ञा दे दी ।

परन्तु आज्ञा होने से एक माह पूर्व ही किसी अज्ञात स्थान में अपनी साधना के लिए चले गये। इसी समय ही आपने राजनीति के काम से छुट्टी पा ली और अपनी योगसाधना में रहने लगे । आप ७८ वर्ष की आयु में १९५० में ५ दिसम्बर के दिन अपनी जीवन लीला समाप्त कर स्वर्गधाम को सिधार गये !

श्री चित्तरंजनदास जी

(ब्र० धर्मव्रत)

सब से पूर्व अंग्रेजों के विरुद्ध आवाज उठाने वाले बङ्गाली ही थे। बङ्गाल जैसा बलिदान देने वाला अन्य कोई प्रान्त नहीं हुआ । बङ्गाल ने नलिनी वाग्ची, सुभाषचन्द्र बोस, अरविन्द घोष, राजा राममोहनराय, रामकृष्ण, देवेन्द्रनाथ, केशवचन्द्र, विवेकानन्द, सुरेन्द्रनाथ, अवनीन्द्र जैसे वीरों को जन्म दिया है । इनमें एक चित्तरञ्जनदास भी थे ।

चित्तरञ्जनदास का जन्म ५ नवम्बर सन् १८७० ई० को कलकत्ता में एक प्रख्यात ब्राह्मण परिवार में हुआ था । इनके पिता का नाम श्री भुवनमोहनदास था । भुवनमोहनदास कलकत्ता हाईकोर्ट के एक सालिसिटर थे और उस समय इनकी ब्रह्मसमाज के प्रमुख मनुष्यों में गणना थी । भुवनमोहनदास कवि थे एवं पत्रकला से इन्हें जन्म से ही प्यार था । इसी कारण से चित्तरञ्जनदास में भी ये गुण आये । चित्तरञ्जनदास के पिता के बड़े भ्राता श्री दुर्गामोहनदास थे । जो बड़े आजाद और विद्रोही तबीयत के प्रगतिशील सुधारवादी थे । जिन्होंने समाज के रूढ़िवन्धनों की तनिक भी परवाह न कर पिता की मृत्यु के बाद अपनी युवति विधवा विमाता तक का फिर से विवाह कर देने का असाधारण उदाहरण प्रस्तुत किया था । ऐसे स्वाधीन नेता परिवार में जन्म लेकर चित्तरञ्जनदास के स्वभाव में आरम्भ से ही विद्रोह, साहस और स्वातन्त्र्य प्रेम के गहरे संस्कार बीज गये थे । जहां अपने पिता व ताऊ से इन्हें उपरोक्त क्षत्रियोचित विशिष्टताओं की विरासत मिली वहाँ साथ ही साथ अपनी माता से उस असामान्य भावुकता और वैष्णवोचित सहृदयता की भी गहरी संस्कारविधि इन्होंने पाई जो कि आगे चलकर इनके जीवन और काव्य क्षेत्रों में फूट-फूट कर जोरों से उच्छ्वसित होती दिखाई दी । सन् १८८६ ई० में कलकत्ता के "लन्दन मिश्नरी सोसाइटी इंस्टीट्यूट" नामक शिक्षालय से एण्ट्रेन्स की परीक्षा पास कर चित्तरञ्जनदास स्थानीय "प्रेसीडेन्सी कालेज" में प्रविष्ट हुए और चार वर्ष बाद बी० ए० की उपाधि पाकर तत्कालीन शिक्षितों के परम लक्ष्य 'आई. सी. एस.' के लिए ये लन्दन पहुंचे । किन्तु उस समय राष्ट्र पितामह

दादा भाई नौरोजी के पार्लियामेंटरी चुनाव का ऐतिहासिक राजनीतिक संग्राम चल रहा था। चित्तरंजनदास इस समय युवक था, जो कि कलकत्ता के अपने विद्यार्थी जीवन ही में सार्वजनिक हलचलों में विशिष्ट योग्यता दिखाकर देशभक्ति की अपनी जन्मजात लग्न एवं युद्ध प्रवृत्ति का परिचय दे चुका था। भला ऐसे अवसर पर हाथ पर हाथ धरे चुपचाप कैसे बैठ सकता था। फलतः अपने कई मित्रों के साथ अपने उस वृद्ध नेता के पक्ष समर्थन में भाषणों और लेखों आदि की एक झड़ी सी बांध दी और कड़े से कड़े शब्दों में अपने देश के शत्रुओं की आलोचना करना प्रारम्भ किया। जिसका कि शीघ्र ही इसे प्रतिफल मिल गया। अन्ततः जब आई० सी० एस० का परीक्षा फल प्रकट हुआ तो सूची में से उसका नाम एकदम गायब (लुप्त) था। परन्तु इसकी किंचित् भी चिन्ता न कर चित्तरंजनदास ने बदले में बैरिस्टरी ही की सनद ले स्वदेश का रास्ता लिया और लौटकर कलकत्ता हाईकोर्ट में तुरन्त ही वकालत का श्रीगणेश कर दिया। परन्तु दैव की कुटिलता तो देखिये कि जो व्यक्ति आगे चलकर पचास हजार रुपये मासिक वेतन की स्थिति तक उठकर अपने युग का भारत का सबसे अधिक आय वाला वकील होने को था। ये आरम्भ के इन दिनों में वर्षों हाथ पैर पटकते रहने पर भी साधारण भरण पोषण के योग्य पैसे भी इस कार्य से न कमा सके। यहाँ तक कि अपने परिवार के तत्कालीन घोर अर्थ संकट और नित्य-प्रति बढ़ते चले जा रहे ऋण के पहाड़ के दबाव से जो कि केवल इनके पिता की अत्यधिक उदारवृत्ति का ही फल था, किसी भी प्रकार छुटकारे का चारा न देखा तो अन्ततोगत्वा इन्हें पिता सहित दिवाले की घोषणा करने तक को प्रयत्नशील होना पड़ा।

अपने देश के राष्ट्रीय इतिवृत्त में इतना महत्त्वपूर्ण भाग लेकर भी इस जननेता का सक्रिय राजनीतिक जीवन अपने अन्य समकालीन नेताओं की तुलना में बहुत ही अल्पकालिक रहा है। इनके कार्य करने की कुल अवधि मिलाकर ७-८ वर्ष होती है। वैसे तो ये 'मानिकतल्ला केस' में ख्याति पाने से पूर्व, सन् १९०६ के दिसम्बर मास में दादा भाई के सभापतित्व में होनेवाले कांग्रेस के कलकत्ता अधिवेशन में एक प्रतिनिधि के रूप में सम्मिलित हो, राजनीति के क्षेत्र में अपना नाम लिखा चुके थे और श्री अरविन्द द्वारा सम्पादित पूर्वोक्त राष्ट्रीय पत्र 'वन्देमातरम्' तथा उसी के साथ श्री ब्राह्मबान्धव उपाध्याय एवं भूपेन्द्रनाथ दत्त के सम्पादकत्व में निकलने वाले 'सन्ध्या' और 'युगान्तर' नामक इतिहास प्रसिद्ध उग्र पत्रों की स्थापना के कार्य में भी हाथ बंटा तथा उन्हीं दिनों सरकार द्वारा उन पर चलाए गए राजद्रोह के मुकदमों में अपनी पूरी शक्ति के साथ पैरवी कर देशभक्ति की अपनी आन्तरिक लगन की स्पष्ट झलक ये दिखा चुके थे। फिर भी सक्रिय रूप से राजनीतिक नेतृत्व के लिए यथार्थतः ये मैदान में सन् १९१७ में ही आये थे जब कि कलकत्ता में होने वाले उसी वर्ष के बंगाल प्रान्तीय राजनीतिक सम्मेलन के सभापति के आसन पर बिठाकर इनका पहली बार मूर्धाभिषेक किया और राजनीति प्रवेश के अपने इस पहले ही मुहूर्त में महामति चित्तरंजनदास ने अपनी नेतृत्वशक्ति तथा ओजस्विता का उदात्त परिचय अपने देशवासियों को दिया एवं हृदयहारी मन्त्रोच्चारण किया। उससे सहज ही सबकी आंखें इनकी ओर केन्द्रित हो गईं। इन्होंने इस सम्मेलन के अध्यक्ष पद से दिए हुए प्रवचन में देश की वर्तमान अधोगति के साथ-साथ उसके प्राचीनकालीन स्वर्ण युग का एक ज्वलन्त चित्र प्रस्तुत करते हुए पाश्चात्य संस्कारों की बेड़ियां तोड़ त्याग की भित्ति पर प्रस्थापित अपनी जातीय संस्कृति के आदर्श को फिर से अङ्गीकार करने के लिए जोरों से आवाज उठाई और कहा कि हमें केवल उन्हीं तत्त्वों को ग्रहण करना चाहिए जिनका कि हमारी निजी

प्रतिभा एवं प्राणधारा के साथ सामंजस्य हो एवं उन समस्त बातों को एकदम ठुकरा देना चाहिए जो कि हमारी आत्मा के लिए विजातीय हों। इन्होंने स्मरण कराया कि गंगा-यमुना-ब्रह्मपुत्र की उन धाराओं का जो कि अब भी उसी कलकल निनाद सहित इस महादेश के वक्षःस्थलों को सींचते हुए पूर्ववत् अपना प्रवाह जारी किए हुए हैं और उन्नत मस्तक हिमालय का भी स्मरण कराया जो कि स्वर्ग की ओर शीश उठाए गर्व और गौरव के साथ ज्यों का त्यों आज भी अडिग खड़ा है और इन गौरव स्मारकों की याद दिलाते हुए इस बात की ओर विशेष रूप से इन्होंने इंगित किया कि हमारी मातृभूमि का भौतिक कलेवर तो आज भी ज्यों का त्यों हमारे लिए अक्षुण्ण बना हुआ है केवल आवश्यकता उसमें पुनः उस आत्मा को जागृत करने की है जो कि पिछले दिनों की इस गुलामी के कारण मानो जड़वत् हो गई है। इस प्रकार अपनी कवित्वपूर्ण वाणी में एक हृदयहारी जागृति मन्त्र इस देश के निवासियों के कानों में इन्होंने फूंका और सामाजिक तथा राजनीतिक पुनरुत्थान के एक नूतन प्रयास द्वारा राष्ट्र की अन्तरात्मा को जगाकर—"सुजलां सुफलां मलयजशीतलाम्" जैसे दिव्य स्तवनों से वन्दित भारतमाता की प्रतिमा में उसे पुनः प्रतिष्ठापित करने के लिए हृदय से सबका आह्वान किया और इस सम्बन्ध में लगे हाथ दस महत्त्वपूर्ण आदेशों से युक्त एक रचनात्मक योजना का मानचित्र भी अपनी ओर से इन्होंने प्रान्त के निवासियों के पुरतः रख दिया। जिसका सारांश यह था कि हमें इतिहास की शिक्षाओं से शिक्षा लेनी चाहिए। यूरोपीय औद्योगिकता के मार्ग को छोड़ देना चाहिए। गांवों की संख्या को बढ़ती के क्रम को रोकना चाहिए। फिर से देहातों को बसाने, उनकी श्रीवृद्धि करने, उन्हें साफ सुथरे और रोगमुक्त बनाने में हाथ लगाना चाहिए। किसानों को उपयोगी दस्तकारियों की शिक्षा दे प्राचीन व्यावसायिक एवं औद्योगिक उपज की छान-बीन करनी चाहिए। समस्त देश में ऐसी वस्तुओं के उत्पादन के छोटे-छोटे केन्द्र अथवा उद्योग-गृह खोलने चाहियें, जिनके सम्बन्ध में हमारे जनवर्ग को नैसर्गिक कौशल प्राप्त हो। उद्योग धन्धों के लिए प्रत्येक जिले में बैंक खोलना चाहिए। अनिवार्यतः आवश्यक पदार्थों को छोड़कर विदेशी वस्तुओं का मंगाना बन्द कर देना चाहिए। अपनी शिक्षा को वास्तविकतामूलक और राष्ट्र की आत्मा के सानुकूल बनाना चाहिए और उसे प्रान्त की भाषा ही के माध्यम द्वारा देना चाहिए। कैसी राजनीतिक सूझ-बूझ और सांस्कृतिक पुनरुत्थान की भावना में पका हुआ यह कार्यक्रम था और कितने ऊंचे दर्जे की बात थी। ये बातें इस महान् नेता ने ४० वर्ष पूर्व ही जबकि गाँधी जी के प्रख्यात रचनात्मक कार्यक्रम का पाठ अभी हमने पढ़ा भी न था, एक सुझाव के रूप में देश के समक्ष रख दी थीं।

इसके पश्चात् दिन प्रतिदिन शुक्ल पक्ष के चन्द्र की भांति न केवल अपने प्रान्त ही के राजनीतिक गगन में प्रत्युत निखिल भारतीय राष्ट्रीय आकाश में भी चित्तरंजनदास के व्यक्तित्व का तेज निरन्तर बढ़ता चला गया और सन् १९१८ के प्रस्तावित 'मांटेगू चेम्सफोर्ड सुधारों' के सम्बन्ध में लोकमत संग्रह करने के हेतु आनेवाले प्रसिद्ध 'मांटेगू मिशन' के समक्ष गवाही देते समय जब निर्भीक वाणी में देश के राजस्व तथा नौकरशाही पर सम्पूर्ण अधिकार की मांग प्रस्तुत कर इन्होंने मि० मांटेगू जैसे मंजे हुए राजनीतिक खिलाड़ी के भी छक्के छुड़ा दिए, तब देश भर में निर्विवादरूप से इनका लोहा मान लिया गया एवं लोकमान्य तिलक की भांति ये भी एक राष्ट्रवादी नेता माने जाने लगे। इन्हीं दिनों पूर्वी बंगाल के जिलों का एक व्यापक दौरा किया एवं कांग्रेस को फिसड्डी बनाये रखने वाले मांडरेटों पर निर्मम प्रहार करते हुए इन्होंने भारतीय राष्ट्रीयता मंच पर समुत्थित उस नवीन राजनीतिक विचारधारा का जोरों से शंखनाद किया। जिसका सूत्र था—"हर हालत में स्वराज्य की प्राप्ति

@VaidicPustakalay

क्योंकि स्वशासनाधिकार का अभाव और दूसरों का शासन चाहे वह कितना ही सुखदायी और न्याय-पूर्ण क्यों न हो, कदापि श्लाघ्य नहीं हो सकता। वह तो अन्ततोगत्वा आत्महननकारी ही होता है। जिसकी कि छाया के प्रभाव से राष्ट्र की सांस्कृतिक आत्मा जड़ हो जाती है और उसका व्यक्तित्व सदा के लिए मिट जाता है।" निश्चय ही हमारे राजनीतिक आंगन में इस नवीन दृष्टिबिन्दु की स्थापना युगान्तरसूचक थी। यह स्वराज्य की सुस्पष्ट मांग पहली अभिव्यक्ति और विदेशी शासन को उखाड़ फेंकने की प्रथम हुंकारभरी खुली चुनौती थी। यह स्वराज्य क्या वस्तु है और इसका मूर्त क्या होगा, इन बारीकियों की व्याख्या या परिभाषा करने के पचड़े में पड़ना इन्होंने इस समय आवश्यक न समझा। इस समय तो उनके लिए सब से पहली आवश्यकता यही थी कि इसमें निहित मूल सिद्धान्त को स्वीकार कर विदेशी शासन का डेरा-तंबू यहां से उखाड़ फेंका जाए। यदि किसी ने इन पर जोर देकर पूछा तो इन्होंने कहा कि स्वराज्य, स्वराज्य है, यह परिभाषा के बंधन में नहीं बांधा जा सकता। यह तो एक भाव है, जिसमें स्वत: अपना शासन करने के लिये प्रत्येक राष्ट्र के जन्मसिद्ध अधिकार की आध्यात्मिक भावना निहित है।

इसके बाद १९१९ का युग परिवर्तनकारी तूफानी जमाना आया। जबकि हमारे निष्प्रभ जनाकाश में अपनी सम्पूर्ण प्रभा सहित गांधी रूपी सूर्य के एकाएक दमक उठने और उसके प्रचण्ड उत्कर्ष की आंच से संतप्त हो शासन तन्त्र के दमन-शस्त्रागार के भी एक अभूतपूर्व खड़खड़ाहट के साथ झनझना बैठने के साथ ही कोरे मौखिक युद्ध की स्थिति से उठकर इस देश का राष्ट्रीय मंच एक सच्चा रण-आँगन बन गया था एवं 'रोलट बिल' जैसे काले कानून तथा जलियांवाला बाग और पंजाब के अन्य स्थानों में बरस पड़ने वाली सरकारी गोलियों की बौछार ने जब सदा के लिए दबाकर कुचल देने के बदले जन शक्ति के आवेग को उल्टे और भी जोरों के साथ उभार कर सामने लाने का काम किया। इस प्रकार के समय में चित्तरंजनदास जैसे जन्मजात योद्धा के लिए मानो लड़ाई का अखाड़ा खुल गया। इन्होंने कलकत्ता के टाउन हाल में आयोजित एक विराट् सभा में कड़े से कड़े शब्दों में 'रोलट बिल' की निन्दा की और कांग्रेस द्वारा पंजाब के हत्या काण्ड की जांच के लिये जब एक गैर सरकारी समिति नियुक्त की गई तो अपना सारा कार्य छोड़कर उसके एक सदस्य के रूप में लगभग ४ मास इन्होंने जांच करने, गवाहियां लेने तथा रिपोर्ट तैयार करने में व्यतीत किये। इसी कमेटी में इनका सबसे पहले गांधी जी से मेल हुआ था। यहाँ पर यह बात लिखने योग्य है कि—इन्होंने जांच के लिये स्वत: अपने काम के लिए अमृतसर का वह प्रदेश लिया था जहां 'जलियाँवाला बाग' जैसा नरमेध घटित हुआ था। एवं इस काम के सहायतार्थ पं० जवाहरलाल नेहरू थे, जिन्होंने अपनी आत्मकथा में इस महान् जननायक के अधीन उस समय प्राप्त किए गये अपने शिक्षा पाठ का साभार उल्लेख किया।

चित्तरंजनदास ने नागपुर से कलकत्ता आकर अपनी आमदनी की फलती फूलती वकालत को छोड़ दिया एवं सर्वविध व्यसन छोड़ दिये। विदेशी वस्त्रों को फूंककर शुद्ध खद्दर पहनना प्रारम्भ कर दिया। इस प्रकार प्रत्येक दृष्टि से अपनी जीवनधारा को एक राजनैतिक संन्यासी के जीवन में परिणत कर महान् बैरिस्टर चित्तरंजनदास का चोगा उतारकर वे अपने जमाने के सबसे प्रिय नेता बन गये। इसके पश्चात् ये अपने अपराजित युद्धकौशल महान् नेतृत्व बंगाल भर के जन हृदय पर प्रस्थापित अपने एकच्छत्र प्रभुत्व के बल पर देश के स्वातन्त्र्य संग्राम के उस प्रथम मोर्चे को जिस

@VaidicPustakalay

प्रकार सफल बनाने में इन्होंने योग दिया वह किसी भी राष्ट्रीयजन से अज्ञात नहीं है। इनकी एक ही पुकार पर बंगाल भर के विद्यार्थियों ने सरकारी स्कूल कालेज खाली कर दिए, वकील, बैरिस्टर अदालतों मे बाहर आ गए, जगह-जगह राष्ट्रीय विद्यालय उठ खड़े हुए और सैकड़ों हजारों की संख्या में लोग उस 'स्वयं सेवक दल' में भरती होने लगे जिसकी इनके हाथों स्थापना होते ही बंगाल सरकार इस तरह घबरा गई कि तुरन्त ही उस संस्था को गैर कानूनी घोषित कर दिया। सरकार ने सभा आदि न करने का कानून लगा दिया। इस कानून को तोड़कर जगह-जगह सभाएँ होने लगीं। कांग्रेस और इनकी कमेटी ने इनको ही अपने प्रान्त का सर्वोपरि सूत्र संचालक निश्चित किया। फलतः एक के बाद एक कई 'मैनिफेस्टो' निकाल कर दस लाख स्वयंसेवकों की मांग की। अपनी प्रसिद्ध अपील इन्होंने निकाली। इन्हीं दिनों 'प्रिन्स आफ वेल्स' के भारत आगमन के अवसर पर उनके स्वागत के बहिष्कार का देशव्यापी आन्दोलन उठा जिसमें बङ्गाल ने भी बहुत अधिक भाग लिया। फलतः दमन और गिरफ्तारियों का तांता बढ़ता गया। जिसके सिलसिले में ६ दिसम्बर सन् १९२१ को चित्तरंजन दास आदि नेता पकड़ लिए गये और ६ मास की सजा देकर जेल भेज दिए गये।

चित्तरंजनदास ने अपने जेल जीवन में बंगला साहित्य को बहुत कृति भेंट की एवं इन्होंने "राष्ट्रीय उत्थान का इतिहास' तथा 'बंगला भाषा शब्दकोष" आदि पुस्तकों के लिखने का प्रयत्न किया। ये १९२२ में अपनी जेल अवधि पूरी करके ये कारागार से बाहर आये। बीच-बीच में और भी अधिवेशन होते रहे और उनकी पार्टी ने बहुत ही काम किया। अन्त में ये १९२५ में रोगी हो गये। ये अपने को स्वस्थ बनाने के लिये हिमालय पर गये, परन्तु वहां पर भी कुछ नहीं हुआ। अन्ततोगत्वा इन्होंने १६ जून १९२५ को अपना यह शरीर छोड़ दिया। इनका शव रेल द्वारा कलकत्ता शीघ्र लाया गया और इनके शव का अन्तिम संसकार महात्मा गांधी के नेतृत्व में किया गया। उस समय महात्मा गांधी ने गद् गद् स्वर से कहा कि—"मनुष्यों में से एक देवता आज चला गया और बंगभूमि आज मानो विधवा हो गई।"

चित्तरंजनदास का जीवन क्या था मानो एक आँधी थी, एक तूफान था। भारतीय आंगन में इकट्ठे हुए कूड़े करकट को बुहारकर देश की आत्मा को पवित्र करनेवाला भारतमाता का एकमात्र सपूत था। इस महापुरुष की देन क्या थी? इस विषय में केवल रवीन्द्रनाथ द्वारा इनकी प्रशस्ति में लिखित निम्न पंक्तियों को ही उद्धृत कर देना ठीक है। वे लिखते हैं—जो सबसे बड़ी देन है वह अपने देशवासियों के लिए पीछे छोड़ गये। वह कोई विशिष्ट राजनीतिक या सामाजिक कार्यक्रम की देन नहीं प्रत्युत एक महान् साध की वह सर्जनात्मक प्रेरणा शक्ति ही है जिसने कि उस बलिदान के रूप में एक अमर स्वरूप धारण कर लिया, जिसका कि प्रतिनिधित्व इनका जीवन करता है।" ये विद्रोह के पुरोहित व राष्ट्र के सड़े गले कलेवर को मिटाकर एक नवीन स्वस्थ शरीर में उसके सच्चे व्यक्तित्व के उदय और विकास की आकांक्षा रखनेवाले एक महान् स्वप्नद्रष्टा थे। और इसीलिए याचना से पूर्व ध्वंस का फावड़ा कुदाल ले रुद्र वेश में ये हमारे आँगन में अग्रसर हुए थे। किन्तु उनका ध्वंस करना ही मुख्य उद्देश्य नहीं था। इन्होंने स्पष्ट शब्दों में कहा था कि—"यदि मैं विध्वंष करना चाहता हूं तो केवल इसी लिये कि एक सड़ा गला जर्जरित ढांचा उस स्थान पर खड़ा है, जहां कि एक सुन्दर भवन का निर्माण किया जा सकता है। यदि हम अड़ंगा हटाना चाहते हैं इसीलिये कि नूतन निर्माण का अवसर हमारे हाथ लगे।" और यह कहते थे कि—यदि मैं स्वाधीनता प्राप्ति के इस

बङ्गाल के दो वीर सेनापति—

श्री नेता जी सुभाषचन्द्र बोस

श्री रासबिहारी बोस

बङ्गाल के चार क्रान्तिकारी शहीद—

श्री शचीन्द्रनाथ सान्याल

श्री बटुकेश्वर दत्त

श्री कन्हालालई दत्त
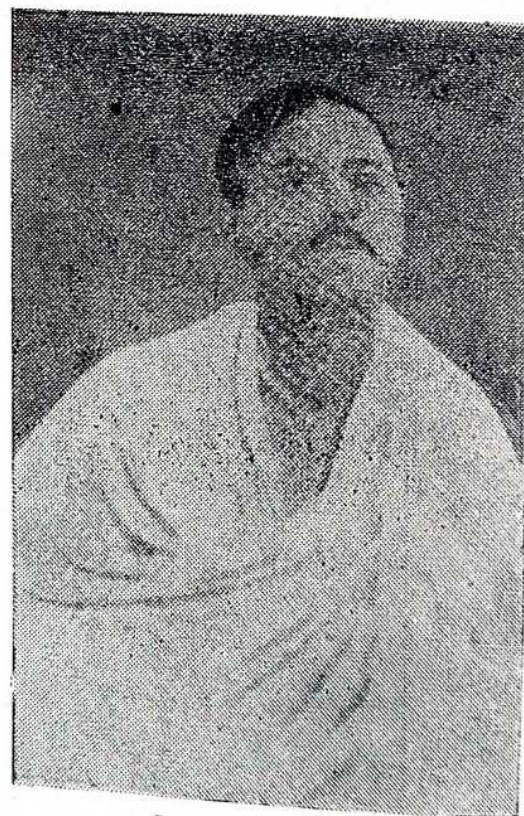
श्री उल्लासकर दत्त

बङ्गाल के चार क्रान्तिकारी नेता —

श्री यतीन्द्रनाथदास

श्री शचीन्द्रनाथ बख्शी

श्री मणीन्द्रनाथ
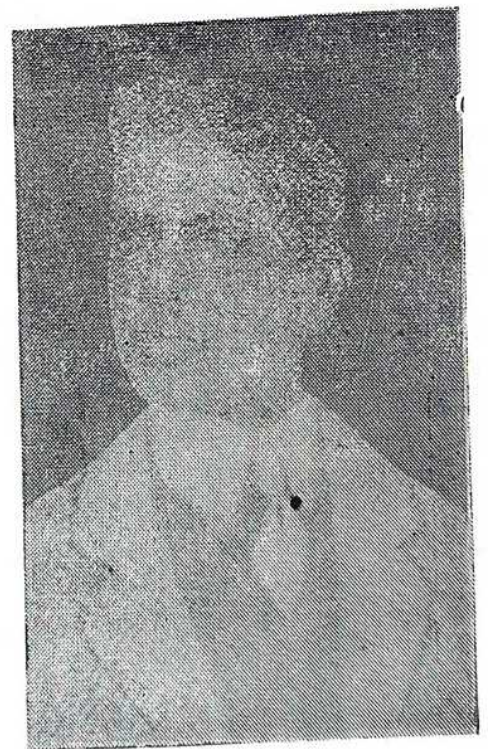
श्री हेमचन्द्र वसु

शालिग्राम शुक्ल

खुदीराम बोस

फुलेना प्रसाद
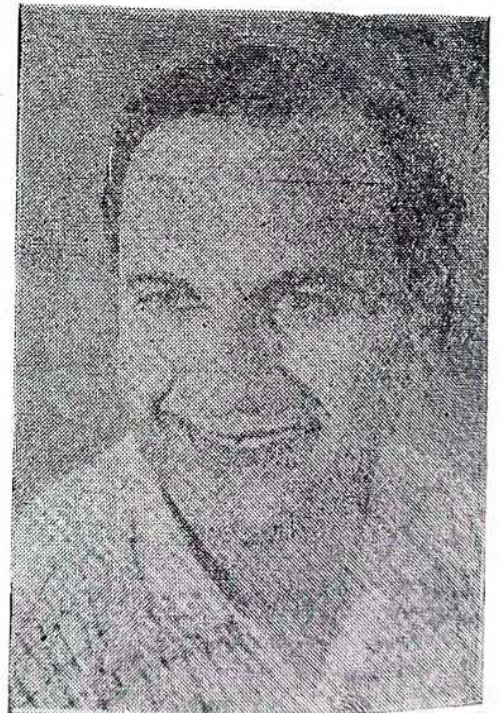
धनवन्तरि

प्रयास के बीच ही मर जाऊँ तब भी पुनः पुनः इसी देश में जन्म लेता रहूंगा। उसी के लिए जीऊंगा, उसी की आशा मन में बसाए रहूंगा और तब तक चैन न लूंगा जब तक कि मेरी आशा और यह स्वप्न पूरा न हो। मातृभूमि के इस अनुपम पुजारी की राष्ट्र-भक्ति की माप शब्दों के पैमाने द्वारा कैसे की जा सकती है ? यह तो देश के लिए ही पैदा हुये थे और इसी के लिए मरे। अतः सभी को इनके जीवन से शिक्षा ग्रहण करनी चाहिये कि किसी भी अत्याचारी राजा की सहायता नहीं करनी चाहिए अपितु उसके विरुद्ध महान् विद्रोह करना चाहिए। चित्तरञ्जनदास ने भी भारतमाता के बन्धन काटने का बहुत प्रयत्न किया और अपने इस मानवीय वपु को महावेदि पर बलि रूप में चढ़ा दिया। इसको पाकर वङ्गाल देश धन्य है।

नेता जी सुभाषचन्द्र वसु

(ब्र० मनुदेव)

भारतीय क्रांतिकारियों में सुभाषचन्द्र वसु का एक प्रमुख स्थान है। इनकी सादगी और इनकी सरलता पर सारा देश अत्यन्त मोहित हो उठा, इसलिए कि उन्होंने अपने त्याग से देश को जगाया। वे देश के बहुत बड़े नेता थे। देशसेवा इनकी रग-रग में समाई हुई थी। देशसेवा के आगे इन्हें कुछ अच्छा ही नहीं लगता था। उन्होंने देशसेवा की वेदि पर अपने जीवन की बलि दे दी। रुपये, पैसे, सम्मान-मर्यादा का तो उन्होंने कभी ख्याल ही नहीं किया। देशसेवा के सामने गौरव से भरा हुआ आई० सी० एस० का पद उन्होंने ठुकरा दिया था। खद्दर की एक साधारण धोती के साथ खद्दर का कुर्ता इनके महान् त्याग का परिचय देता था। उनके मस्तक से एक विशेष प्रकार की ज्योति प्रकट होती थी। देशसेवा की धुन में उन्होंने अपना विवाह भी नहीं किया। भारतवर्ष के गरीबों और किसानों की दुःखभरी आवाज हमेशा उनके हृदय में दुःख पैदा किया करती थी।

ऐसे महान व्यक्ति सुभाषचन्द्र बोस का जन्म १८९७ ई० २३ फरवरी को कटक नामक स्थान में हुआ। इनके पिता का नाम जानकीनाथ था। जानकीनाथ जी का बचपन तथा जवानी दुःखों एवं बाधाओं से भरा हुआ था, किन्तु आपने साहस और परिश्रम से थोड़े ही दिनों में अच्छी उन्नति कर ली। सरकार ने इनके कार्यों से खुश होकर इन्हें राय बहादुर की उपाधि दी थी। जानकीनाथ शिक्षा के बड़े प्रेमी थे। जब ये कटक म्यूनिसिपलिटी के चेयरमैन थे तब उन्होंने शिक्षा के प्रचार के लिए बड़ा यत्न किया था। इनकी सभी सन्तानें अत्यन्त शिक्षित थीं, शरचन्द्र, डा० सुनीलचन्द्र, सुभाषचन्द्र आदि सभी ने शिक्षा प्राप्त करने के लिए विलायत की यात्रा की थी।

सुभाष बाबू की माता भी अधिक धर्मप्रिय एवं बुद्धिमती थी। अपनी सन्तानों को सुयोग्य बनाने में इनकी माता जी का विशेष हाथ था, इनके पिता जानकीनाथ ने कलकत्ता में एलगिन रोड पर एक सुन्दर मकान बनवाया था। सुभाष बाबू १९१३ में इसी मकान में रहे थे।

सुभाष बाबू जब कुछ बड़े हुए तब यह कटक के एक यूरोपीय स्कूल में पढ़ने के लिये भेजे गये। बालकपन से ही इनकी बुद्धि तीव्र एवं प्रखर थी, थोड़े ही समय में स्कूल की पढ़ाई समाप्त कर ली।

स्कूली पढ़ाई समाप्त करने के बाद १९०९ ई० में इन्होंने कटक के कालेजियट स्कूल में नाम लिखाया, कालेज में ये सब विद्यार्थियों से समझदार एवं प्रतिभाशाली थे। जब ये द्वितीय श्रेणी में पढ़ रहे थे, श्री बेनीमाधवदास इनके प्रधानाध्यापक थे। बेनी आदर्श चरित्र एवं त्यागमूर्ति थे। सुभाष बाबू के हृदय पर उनके आदर्श चरित्र का गहरा प्रभाव पड़ा। कुछ दिनों में जब बेनी बाबू स्थानान्तरित हो गए तो सुभाष बाबू को बहुत दुःख हुआ।

इसी समय मे उनके जीवन में गहरा परिवर्तन हुआ। जहां वे पहले रामकृष्ण कथामृत पान करते थे वहां अब ये गरीबों और दुःखियों की सेवा करने लगे। गरीबों और दुःखियों की दुःखभरी वाणी सुनकर उनका हृदय रो उठता था।

गरीबों और दुःखियों की सेवा के साथ ही इनका पढ़ना-लिखना भी चलता रहा। बुद्धि अधिक तेज होने के कारण यह कभी किताबों का कीड़ा न बने। वे जो पढ़ते समझकर पढ़ते, वह इनके हृदय में अङ्कित सा हो जाता। १९१३ में सुभाष बाबू ने प्रवेशिका परीक्षा उत्तीर्ण की। इस परीक्षा में इनका दूसरा स्थान था, किन्तु आपने अंग्रेजी में अपनी ऐसी अच्छी योग्यता दिखाई थी कि परीक्षक को विवश होकर यह कहना पड़ गया था कि ऐसी अंग्रेजी मैं स्वयं नहीं लिख सकता। १९१३ में सुभाष बाबू कलकत्ता चले आये और प्रेसीडेन्सी कालेज में नाम लिखाकर पढ़ने लगे।

इन्हीं दिनों डा० सुरेश मिर्जापुर स्ट्रीट मेडिकल मेटन में एक नये दल की स्थापना कर रहे थे। दल क्या था, एक आश्रम था। सुरेश बाबू इस आश्रम के द्वारा ऐसे नवयुवक कार्यकर्त्ता तैयार कर रहे थे जो जन्मभर अविवाहित रहकर देश की सेवा कर सकें। बङ्गाल के कई युवकों ने इस आश्रम में नाम लिखवाया था। सुभाष बाबू को जब इस आश्रम का पता चला, तब यह भी उस आश्रम में योग देने लगे। इनके साथ ही इनके भाई शरच्चन्द्र वसु भी आश्रम में शामिल हुए थे। उसी समय सुभाष बाबू ने अविवाहित रहकर देशसेवा करने की प्रतिज्ञा की थी।

सुभाष बाबू गरीबों के भक्त बन गए थे। संसार के ठाट-बाट के जीवन से इनके हृदय में घृणा पैदा हो गई, इनके हृदय में तरह-तरह के विचार पैदा हो रहे थे उन्हें सुलझाने वाला इन्हें कोई न मिला। अतः एक दिन मां-बाप से छिपकर गुरु की खोज में निकल पड़े। सुभाष बाबू के अचानक घर से चले जाने से घर में कुहराम मच गया। जब तक सुभाष बाबू घर नहीं आगये, माता-पिता के जीवन के दिन रोते ही व्यतीत होते थे। यात्रा में सुभाष बाबू की कई साधु-संन्यासियों से भेंट हुई। वे दिल्ली, आगरा, मथुरा, गया होते हुए काशी पहुँचे, काशी में रामकृष्ण मिशन के ब्रह्मानन्द स्वामी के पास भी वे कुछ दिनों तक रहे थे। स्वामी जी ने इन्हें सलाह दी कि तुम मां-बाप की आज्ञा लिये बिना ही घर से निकले हो इसलिए उन्हें घर लौट जाने के लिए कहा। काशी से चलकर बोध गया पहुँचे। बोध गया में इन्हें साधु-संन्यासियों की बुरी लीला देखने को मिली इसलिए साधुओं के प्रति घृणा पैदा हो गई, परन्तु अन्त तक उन्हें सच्चा गुरु नहीं मिला। अन्त में निराश होकर घर लौट आये। इन्हें पाकर मां-बाप इस प्रकार प्रसन्न हुये जैसे कोई अपने खोये हुए अमूल्य रत्न को प्राप्त करके प्रसन्न होता है।

घर आकर सुभाष बाबू दिन-रात चिन्तित रहा करते थे। चिन्ता इन्हें ज्ञान की थी। ज्ञान की ही खोज में निकले थे। परन्तु आशा पूरी नहीं हुई, स्वास्थ्य अवश्य खराब हो गया। शनैः शनैः उनके

स्वास्थ्य में सुधार हो गया और उन्होंने १९१५ में एफ० ए० की परीक्षा प्रथम श्रेणी में पास की। प्रेसीडेन्सी कालेज के सभी विद्यार्थी आपको बड़े सम्मान से देखते थे।

सुभाष एक निर्भीक प्रकृति के व्यक्ति थे। वे कालेज में भी सदा विद्यार्थियों का पक्ष लिया करते थे, वे कितने निर्भीक थे यह इस घटना से पता चलता है। एक अंग्रेज प्रोफेसर कक्षा में विद्यार्थियों को बुरी गाली देने से कभी बाज न आता था। उसका नाम सी० एफ० ओटन था। कालेज में पढ़ते समय सुभाष को भी उस प्रोफेसर से पढ़ने का अवसर आया। प्रोफेसर ने एक विद्यार्थी से प्रश्न पूछा, वह उसका समुचित उत्तर न दे सका।

प्रोफेसर तड़ककर बोला—"यू रास्केल" तुम पढ़ लिख नहीं सकता।

विद्यार्थी— मैं आपके प्रश्न को नहीं समझा।

प्रोफेसर—"यू ब्लैक मङ्की (काले बन्दर) तू प्रश्न भी नहीं समझ सकता ? यह सब सुभाष को सह्य नहीं हुआ। सुभाष खड़े होकर बोले, "प्रोफेसर साहब जरा सम्भल कर बोलिए", प्रोफेसर ने कहा "यू ब्लैडी" तुम बैठ जाओ। सुभाष बोले—क्या तूने हमें कुत्ता समझ रखा है। प्रोफेसर—हां तुम लोग कुत्ते हो, सुभाष को ये शब्द तीर की तरह चुभ गये, सुभाष बोले "हमारी आजादी छीनकर गुलाम बनाने वाले" यह कहकर उसकी तरफ चल पड़े। प्रोफेसर—शटअप यू बास्टर यह कहकर प्रोफेसर जाने लगा, सुभाष ने प्रोफेसर को पकड़कर एक तमाचा उसके गाल पर दे दिया। इसी अपराध के कारण सुभाष को कालेज से निकाल दिया। इनके साथ इनके अभिन्न मित्र अनंग मोहन-दास को भी निकाल दिया, किन्तु सर आशुतोष के प्रयत्नों से फिर स्काटिश कालेज में प्रविष्ट होगए और बी० ए० की परीक्षा उत्तीर्ण की।

भारत से उनको कितना प्रेम था, एक बार उन्होंने कहा था, भारतवर्ष में नया जीवन पैदा हो रहा है। मैं धन्य हूं, जो इस समय भारतवर्ष में पैदा हुआ हूं। मैं जब मरकर जन्म धारण करूं तो भारतवर्ष में करूं।

बी० ए० परीक्षा उत्तीर्ण करने के बाद उनके पिता ने आई० सी० एस० करने की आज्ञा दी। सुभाष की इच्छा न होते हुए भी पिता जी की आज्ञा से विवश होकर आई० सी० एस० के उस गुलामी टकसाली मार्ग पर उतर पड़े थे। वे विलायत जाकर केम्ब्रिज यूनिवर्सिटी में प्रविष्ट होगये। सुभाष ने जल्दी ही आई० सी० एस० परीक्षा उत्तीर्ण कर ली। आई० सी० एस० का परीक्षाफल प्रकट होने पर जहां उनके माता-पिता स्वजन बन्धु हर्ष से फूले न समाये वहां स्वयं अपनी यह सफलता एक दुर्भाग्य सी प्रतीत हुई और कुछ महीने बीत पाये होंगे कि अपनी आन्तरिक भावना का मूर्त प्रमाण प्रस्तुत कर दिया, जबकि वापस स्वदेश लौटने से पूर्व ही भारत-मन्त्री के हाथों में गुलामी की उस नौकरी का त्यागपत्र रखकर एक ही झटके में उस मायाजाल से अपने को छुड़ा लिया, जिसकी कि मृगतृष्णा में उन दिनों प्राय: प्रत्येक महत्त्वाकांक्षी शिक्षित युवक उलझा हुआ था।

असहयोग के मैदान में

उस समय जबकि रोलट बिल, पंजाब हत्याकाण्ड, मार्शल ला आदि के रूप में दमन की अप्रत्याशित आतंकजनक विभीषिका के दृश्य समुपस्थित होते ही सारा देश जागृति और आत्मचेतना की एक अपूर्व लहर में विदेशी सत्ता के विरुद्ध सीना तानकर उठ खड़ा हुआ था और गांधी जी के

नेतृत्व में असहयोग की रण-दुन्दुभी बजा स्वतन्त्रता प्राप्ति के लिये सक्रिय रूप से कुछ करने के लिए ताल ठोककर लड़ाई के मैदान में उतर पड़ा था। तब सुभाष आई० सी० एस० के उस मृगजाल से छुटकारा पाकर आजीवन मातृभूमि की सेवा का भीष्म-संकल्प करनेवाले युवक सुभाषचन्द्र को स्वदेश लौटते ही अपने लिये एक मनचाहा कार्यक्षेत्र मानो अगवानी करता हुआ पहले से ही तैयार मिल गया। फिर क्या पूछना था—एक क्षण भी विलम्ब किये बिना तुरन्त ही कमर कसकर वह उस में उतर पड़े और जैसे ही बम्बई में जहाज से इस पवित्र भारतभूमि पर उतरे, वैसे ही पहले तो गांधी जी से असहयोग आन्दोलन के विषय में महत्त्वपूर्ण भेंट की तथा जब उन्हें गांधी जी से यथार्थ सन्तोष न मिल सका तो वहां से सीधे कलकत्ता पहुँच देश के उस दूसरे दिग्गज नेता देशबन्धु चित्तरंजनदास से जाकर वह मिले, जो कि उन्हें अपने विचारों के कहीं अधिक निकटस्थ एवं एक पक्का व्यावहारिक राजनीतिक दिखलाई दिया। श्री देशबन्धु चित्तरंजनदास ने एक नेशनल कालेज की स्थापना की थी, वे देश में क्रांति के विचारों को फैलाने के लिए एक समाचार-पत्र भी निकालते थे। जब सुभाष बाबू इनके पास आगये तो कालेज का तथा समाचार-पत्र निकालने का काम सुभाष को सौंप दिया। बंगाल के असहयोग आन्दोलन के इस पहले मोर्चे में महातेजस्वी सुभाष बाबू ने अन्तराल में छिपी हुई क्रांति की चिंगारियों को ऐसी प्रखरता के साथ चमकाना शुरु किया कि सहज ही सरकार की राह में वह कांटा बन गये। अत: जैसे ही "प्रिन्स आफ वेल्स" के स्वागत बहिष्कार का वह देशव्यापी आन्दोलन उठा, जिसने जलते हुए हवनकुण्ड में मानो घी की आहुति छोड़ दी, साथ ही कांग्रेस के तत्वाधान में राष्ट्रीय स्वयंसेवकों की गैर कानूनी भरती का वह दौर-दौरा प्रारम्भ हुआ, जिससे कि घबराकर सरकार को अपने दमनचक्र की गति को और भी तीव्र कर देना पड़ा। वैसे ही प्रान्तीय स्वयंसेवक दल के प्रधान सेनानी के नाते शीघ्र ही सुभाष बाबू पर नौकरशाही की दृष्टि आ लगी और दिसम्बर १९२१ ई० में छ: मास की कैद की सजा उन्हें पहली बार मिली और कारागार का द्वार अन्त में उन्हें देखना पड़ा। जो कि इसके बाद से मानो उनका दूसरा घर सा बन गया। कहते हैं कि दण्ड सुनाये जाने के समय विद्रोह-मूर्ति सुभाष ने तीक्ष्ण व्यंग्ययुक्त शब्दों में मैजिस्ट्रेट को सम्बोधित करते हुए कहा था केवल छ: मास ! तो क्या मैंने महज एक मुर्गी चुराने का अपराध किया है। ऐसा था वह वीर सुभाष।

स्वर्गीय देशबन्धु चित्तरंजनदास और सुभाष एक ही जेल में रखे गये थे। सुभाष बाबू जेल में देशबन्धु चितरंजनदास जी के लिए अपने हाथों से भोजन बनाया करते थे। देशबन्धु के प्रति सुभाष बाबू के हृदय में इस समय बहुत अधिक भक्ति थी। देशबन्धु जब तक जीवित रहे, सुभाष शिष्य की भाँति उनके चरणों में रहकर देश की सेवा करता रहा।

इस प्रथम जेल यात्रा से पुन: बाहर आने पर सुभाष के अपने प्रान्त बङ्गाल पर बाढ़ की भयंकर आपत्ति के रूप में लोक संकट की एक भीषण विभीषिका मुंह फाड़े सामने प्रस्तुत हुई। अत: आते ही तुरन्त पीड़ितों की सहायता के कठिन कार्य में संलग्न हो गए। तदुपरान्त पंडित मोतीलाल नेहरू ने स्वराज्य दल की स्थापना की। इस दल की स्थापना बहुत कुछ कौंसिल के चुनाव ही के लिए की गई थी। सुभाष बाबू देशबन्धु जी के साथ इस दल में सम्मिलित हो गए। बंगाल में भी इस दल की ओर से कौंसिल के लिए प्रतिनिधि खड़े किए गये। चुनाव में इन पत्रों द्वारा भी बहुत सहायता मिली। सुभाष बाबू की अधिक कोशिशों के कारण ही स्वराज्य दल को बंगाल में सफलता मिली। देशबन्धु जी

सुभाष बाबू को कौंसिल के लिए प्रतिनिधि खड़ा करना चाहते थे परन्तु सुभाष इसके लिए तैयार नहीं हुये। इसी बीच सुभाष ने युवक दल की भी स्थापना की थी, जिसका उद्देश्य कांग्रेस नीति से स्वराज्य प्राप्त करना था। इस दल ने किसानों तथा गरीबों के लिए बहुत कार्य किए।

सुभाष बाबू कलकत्ता निवासियों के बहुत अधिक प्रिय बन गए। इनकी सादगी और सरलता की सारा बङ्गाल खुले कण्ठ से प्रशंसा करता था। बंगाल का युवक समाज उन्हें अपना मानने लगा था। इस लिए १९३३ में जब कलकत्ता कारपोरेशन का चुनाव हुआ, तब सुभाष बाबू उसमें निर्विरोध चुन लिये गए।

सुभाष बाबू कलकत्ता कारपोरेशन के एक्जिक्यूटिव आफिसर बनाये गये थे। इस पद पर सुभाष बाबू ने जो त्याग किया वह बहुत ही सराहनीय है। इससे पहले जो एक्जिक्यूटिव आफिसर होते थे उन्हें कारपोरेशन से तीन हजार रुपये मासिक वेतन मिलता था। किन्तु सुभाष बाबू ने तीन हजार रुपये लेना मंजूर नहीं किया, उन्होंने डेढ़ हजार ही अपने लिए बहुत समझा। सुभाष बाबू थोड़े ही दिनों तक इस पद पर रह सके थे। किन्तु थोड़े ही दिनों में इन्होंने कारपोरेशन को एक अच्छे साँचे में ढाल दिया। नगरनिवासी इनके प्रबन्धों की बहुत दिल खोलकर प्रशंसा करते थे। इस प्रकार की सुधार योजनाओं के करते हुए सुभाष बाबू ने इस बात का जीता जागता प्रमाण विश्व के सामने प्रस्तुत कर दिया कि राष्ट्र-निर्माण के रचनात्मक अंग की पूर्ति करने की भी कैसी अगाध क्षमता उन्हें प्राप्त थी। तो फिर अधिक दिनों तक शासन-सत्ता के लौह-चंगुल से भला क्योंकर बचे रह सकते थे; अत: अभी पूरा एक वर्ष भी इस कार्य को हाथों में लिए उन्हें न हुआ होगा कि गोपीनाथ शाह नामक एक तरुण क्रांतिकारी बंगाली के हाथों मि० डे नामक एक अंग्रेज की हत्या की आड़ में सरकार ने २५ अक्तूबर १९२४ ई० के दिन ८० नवयुवकों सहित सुभाष को पकड़कर "बंगाल आर्डिनेन्स" के अधीन विना मुकद्दमा चलाये ही अनिश्चित काल के लिए पुनः उन्हें अपने कारागार का अतिथि बना लिया। इस अन्याय के प्रति स्वभावतया सारा देश रोष और विक्षोभ की एक भयङ्कर लहर से उद्विग्न हो उठा और स्वयं देशबन्धु के मुख से भी निम्न ओजस्वी वाक्य निकलते सुनाई दिए—यदि मातृभूमि का प्रेम एक अपराध है तो मैं भी अपराधी हूं। अगर सुभाषचन्द्र बोस अपराधी घोषित कर दिया जाता है तब मैं भी उतना ही अपराधी ठहरता हूं। यदि कारपोरेशन का प्रधान एक्जिक्यूटिव आफीसर दोषी ठहरता है तो उसका मेयर उतना ही दोषी माना जाना चाहिए। परन्तु इस प्रतिक्रिया का कोई प्रभाव सरकार पर नहीं हुआ और कुछ दिनों तक अलीपुर सेन्ट्रल जेल में रखने के बाद उस अन्यायी सरकार ने देश के लाड़ले को अन्त में बर्मा की पुरानी राजधानी माण्डले के उस कारागार में ले जाकर नजरबन्द कर दिया जहां कि लोकमान्य और लाजपतराय भी अपनी सजा काट चुके थे।

इस कठोर कारावास का बड़ा चिन्ताजनक कुप्रभाव सभाष वसु के स्वास्थ्य पर पड़ा और कुछ ही दिनों में उनका भार लगभग ४० पौंड कम हो गया। इस बीच जेल में भी दुर्गा-पूजा का पर्व मनाने के प्रश्न पर अपने कुछ साथियों सहित एक लम्बा अनशन भी उन्होंने किया, जिससे उनके शरीर की हालत और भी अधिक चिन्ताजनक हो गई। अन्त में तपेदिक के से लक्षण प्रकट होने लगे और सारा देश उनके स्वास्थ्य की चिन्ता से क्षुब्ध हो उठा, तब कहां जाकर सरकार उन्हें इलाज के लिए स्विट्जरलैंड जाने की अनुमति देने को तैयार हुई—वह भी इस शर्त पर कि बर्मा से जहाज पर

चढ़कर वह सीधे योरुप चले जाय, मार्ग में भारत के किसी बन्दरगाह पर न उतरें। भला ऐसी अपमानजनक शर्त नरकेसरी सुभाष कैसे स्वीकार करते। क्योंकि इससे तो जेल में घुल-घुल मर जाना ही उनकी दृष्टि में श्रेयस्कर था। अन्त में नौकरशाही ही को अपने घुटने टेकने पर विवश होना पड़ा और परिणामस्वरूप मई सन् १९२६ में बिना शर्त के वे मुक्त कर दिए गए और आश्चर्य की बात थी कि एकमात्र अस्थियों का कंकाल लेकर वापिस आने पर भी उनका स्वास्थ्य अल्प काल ही में फिर से अपनी पूर्वस्थिति में आ गया, मानो कारागार की भित्तिकायें ही उसकी एकमात्र बाधक हों।

जेल से छूटते ही सुभाष ने अपने प्रान्त की कांग्रेस-कमेटी की अध्यक्षता का भार अपने हाथों में ले सन् १९२७ ई० का कौंसिल चुनाव उन्होंने लड़ा तथा प्रान्तीय धारा सभा में होने के अतिरिक्त प्रसिद्ध "इण्डिपेण्डेन्स आफ इण्डिया" लीग के संगठन एवं साइमन कमीशन के बहिष्कार के आयोजन में भी हाथ बटाया। साथ ही मद्रास-अधिवेशन में कांग्रेस के संयुक्त प्रधानमन्त्रित्व का भार भी उन्होंने ग्रहण किया था।

सन १९२८ में कलकत्ता कांग्रेस-अधिवेशन में जिस में सुभाषचन्द्र बोस सैनिक वेष में घोड़े पर सवार हो विधिवत् राष्ट्रीय स्वयंसेवक सेना के प्रधान सेनानी के रूप में राष्ट्रपति के भव्य चल समारोह की शान के साथ अगवानी का दृश्य बड़ा ही मनोहर था और कांग्रेस अधिवेशन भी बड़ी शान के साथ आपके त्याग और तप से सफल हुआ।

कलकत्ता कांग्रेस के कुछ दिनों पश्चात् बंगाल के सुप्रसिद्ध देशसेवी यतीन्द्रनाथ का देहावसान हुआ। चारों ओर शोक समुद्र उमड़ पड़ा था। जनता ने सरकार के ऊपर अपनी अप्रसन्नता भी प्रकट की। कलकत्ता में यतीन्द्रनाथ की अर्थी का जो जुलूस निकाला गया था उस में सुभाष बाबू भी सम्मिलित हुए थे। सम्मिलित ही नहीं हुए थे, किन्तु उन्होंने उनकी देशभक्ति पर ओजस्वी भाषण भी दिया था। सरकार सुभाष बाबू से पहिले ही सतर्क थी। वह इनके कामों को बड़ी कठोर दृष्टि से देख रही थी। यतीन्द्रनाथ की देशभक्ति पर सुभाष बाबू ने जो विचार प्रकट किये थे उसे सरकार सहन न कर सकी। इसलिए सुभाष बाबू को गिरफ्तार करके उन पर मुकदमा चला दिया। मुकदमे में सुभाष बाबू अपराधी प्रमाणित किये गये और उन्हें छः मास तक की सजा दी गई। अपनी कारा-वास की अवधि पूरी करके जब बाहर आये उसके अल्प समय के बाद ही २६ जनवरी सन् १९३१ ई० के स्वातन्त्र्य दिवस के उपलक्ष्य में उनकी अध्यक्षता में आयोजित एक बृहत् जलूस पर घुड़सवार पुलिस द्वारा लाठी आक्रमण कराकर न केवल उन्हें बुरी तरह आहत किया बल्कि दूसरे ही दिन एक मुकदमा चलाकर छः मास की सजा देकर फिर जेल भेज दिया। किन्तु गान्धी-इर्विन समझौते के परिणामस्वरूप इस बार समय से पहले ही छूट आये। जेल से छूटकर आप इन्ही दिनों मथुरा में होने वाले नौजवान भारत सभा के वार्षिक अधिवेशन में सभापति बनाये गये। सभा के इस अधिवेशन में बहुत से बड़े-बड़े नेता तथा सहस्रों नवयुवक सम्मिलित हुए थे। सुभाष बाबू ने सभापति के पद से जो भाषण दिया था वह बड़े महत्त्व का था। सुभाष बाबू के इस भाषण का नवयुवकों पर अधिक प्रभाव पड़ा। साथ ही सरकार भी अधिक भयभीत हो उठी। सुभाष बाबू जेल से बाहर हैं, यह भला सरकार कैसे देख सकती थी। इसी भाषण पर नौकरशाही ने सुभाषचन्द्र बोस को फिर गिरफ्तार कर लिया।

सुभाष बाबू वीर और साहसी पुरुष थे। देशभक्ति इनकी नस-नस में भरी हुई थी। इसलिए अब तक जीवन का अधिक भाग जेलों ही में बीता था। इस बार सुभाष बाबू गिरफ्तार करके जेल भेज दिए गए। इन पर न मुकदमा चलाया गया और न ही किसी निश्चित समय की सजा दी गई। पहले ये अलीपुर जेल में रखे गये थे, किन्तु इसके वाद सिवनी भेज दिए गए। लगातार जेलों में रहने के कारण सुभाष बाबू का स्वास्थ्य बहुत खराब हो गया। मांडले में उन्हें जो रोग हुआ था वह फिर पैदा हो गया। फिर इनकी पीठ में दर्द होने लगा और साथ ही ज्वर भी आने लगा। नेताओं ने सुभाष के छुटकारे के लिए यत्न किया किन्तु कोई परिणाम न निकला। सरकार सुभाष को छोड़ना नहीं चाहती थी, किन्तु जब सुभाष बाबू की अवस्था अधिक खराब हो गई तो वे चिकित्सा के लिए लखनऊ लाए गये परन्तु स्वास्थ्य में कोई भेद नहीं पड़ा। वहां से आप भुवाली लाये गये, यहां भी स्वास्थ्य में कोई सुधार नहीं हुआ।

अब सरकार चिन्तित हो उठी, क्योंकि सुभाष बाबू का स्वास्थ्य प्रतिदिन गिरता ही जा रहा था और सरकार इन्हें छोड़ना नहीं चाहती थी। सारे देश में सुभाष बाबू के छुटकारे के लिए यत्न हो रहा था। अन्त में सरकार ने यह निश्चय किया कि यदि सुभाष छूटते ही विदेश चले जायें तो सरकार उन्हें छोड़ सकती है। पहले उस वीर सुभाष बाबू ने यह शर्त स्वीकार नहीं की किन्तु लोगों ने बहुत समझाया तो इस शर्त पर छूटने के लिए तैयार हो गये। सुभाष बाबू जेल से छूटते ही वायु-यान द्वारा स्विट्जरलैंड चले गये। वहां की चिकित्सा से आपको अत्यधिक लाभ हुआ, वहीं से आपने रोम, लन्दन, फ्रांस और जर्मन इत्यादि देशों की भी यात्रा की।

सुभाष बाबू तीन वर्ष विदेश में रहे। ये जब स्वस्थ हो गए, तब भारत लौट आना चाहते थे, किन्तु सरकार इन्हें लौटने देना नहीं चाहती थी। विदेश में रहकर भी सुभाष बाबू अपने देश की सेवा करते रहे।

सुभाष बाबू जिन दिनों विदेश में थे, उन्हीं दिनों इनके पिता बाबू जानकीनाथ अधिक अस्वस्थ हो उठे। इनकी बीमारी का समाचार सुभाष बाबू के पास भेजा गया। बाबू जानकीनाथ मरने से पहले एक बार सुभाष बाबू को देख लेना चाहते थे। पर सुभाष बाबू के वस की बात तो थी नहीं। सुभाष जाबू के छुटकारे के लिए नेता लोग सरकार के ऊपर दबाव डालने लगे। सरकार सुभाष को एक शर्त पर भारतवर्ष आने देने के लिए तैयार हो गई कि सुभाष बाबू अपने पिता से मिलकर शीघ्र ही फिर विदेश लौट जायें।

सुभाष बाबू अपने पिता से मिलना चाहते थे, इसलिए सरकार की शर्तें उन्हें माननी ही पड़ीं, पर दुःख है सुभाष बाबू की अभिलाषा पूरी न हुई। उनके आने से पहले ही उनके पिता का देहा-वसान हो गया। सुभाष बाबू के हृदय को इस से बहुत बड़ी चोट लगी। आपको सरकार की अपमान-जनक पाबंदियां लगाने के कारण शीघ्र ही योरुप लौट जाना पड़ा।

सुभाष बाबू विदेश में रहते रहते ऊब गए थे। उनके प्राण यह नहीं सहन कर सकते थे कि वे अपनी मातृभूमि की गोद से अधिक दिनों तक बाहर रह सकें। अतः उन्होंने निश्चय कर लिया कि चाहे कुछ हो अब मैं विदेश में नहीं रहूंगा। अत: आठ अप्रेल १९३६ ई० को सरकार की बिना अनुमति प्राप्त किये ही एक इटैलियन जहाज पर सवार होकर स्वदेश आगए। भारत आते ही आप गिरफ्तार

@VaidicPustakalay

करके जेल भेज दिए गए। इस अन्याय से स्वभावतः सारा देश तिलमिला उठा। चारों ओर से छुट-कारे के लिए आवाजें आने लगीं। अन्त में जब उनका स्वास्थ्य पहले की तरह बिगड़ने लगा तब कहीं जाकर नौकरशाही का हृदय पसीजा और अन्ततः मार्च १९३७ में बिना शर्त छोड़ दिए गए। सुभाष बाबू अधिक अस्वस्थ हो गये थे। इनका शरीर बहुत ही दुबला-पतला और कमजोर हो गया था। अतः जेल से छूटकर सुभाष बाबू पुरी गये। वहां कुछ दिन रहकर डलहौजी चले गये।

सुभाष बाबू त्रिपुरा कांग्रेस के सभापति चुने गये। गाँधी जी का दल इस बात का बड़ा विरोधी था। इसी विरोध को लेकर कांग्रेस में फूट पड़ गई। फलतः सुभाष ने कांग्रेस को मजबूत बनाने के लिए अग्रगामी दल की स्थापना की और "एडवांस" नामक अंग्रेजी दैनिक पत्र निकाला और दल के प्रचार के लिए सारे देश का भ्रमण किया और दल की शाखायें स्थापित कीं। जिसके परिणाम-स्वरूप सारा देश आपके विचारों से प्रभावित हो गया।

रामगढ़ में कांग्रेस का अधिवेशन हुआ। कांग्रेस वाले जो कौंसिलों में थे, त्यागपत्र देकर लौट आये थे। बात वही हुई जिसे नेता जी बार-बार कह रहे थे। पर "गाँधी दल" नेता जी की बात मानने को तैयार नहीं था। रामगढ़ कांग्रेस में नेता जी के सभापतित्व में एक समझौता विरोधी सम्मेलन हुआ। इस सम्मेलन में नेता जी ने जो व्याख्यान दिए थे वे स्वाधीनताप्रेमियों को सदा प्रेरणा देते रहेंगे।

रामगढ़ कांग्रेस के बाद ही कलकत्ता में हालवेल स्मारक के विरुद्ध आन्दोलन शुरू हुआ। इस आन्दोलन में नेता जी ने पूरी शक्ति से भाग लिया, फलतः सन् १९४० ई० के जुलाई मास में नव निर्मित "भारत रक्षा कानून" के अन्दर फिर नौकरशाही सरकार के कारागार का अतिथि बन जाना पड़ा।

नेता जी को इस तरह जेल में जीवन के अमूल्य समय को नष्ट करना अच्छा नहीं लगा, अतः उस अन्याय मूलक कैद के विरोध में आमरण अनशन प्रारम्भ कर दिया। अन्त में सरकार ने जेल से हटाकर पुलिस के कठोर पहरे में कलकत्ता में अपने ही मकान की चारदिवारी में नजरबन्द कर दिए। इन दिनों नेता जी सुभाष बाबू एकान्त जीवन व्यतीत कर रहे थे, लोगों से बहुत कम मिलते-जुलते थे। अन्तः २६ जनवरी सन् १९४१ में पुलिस की आंखों में धूल झोंककर उसी एल्गिन रोड वाले मकान से निकल पड़े और नजरबन्दी का चक्रव्यूह तोड़कर एक दढ़ियल मौलाना के रूप में उत्तर पश्चिमी सीमाप्रान्त की राजधानी पेशावर पहुंचे। वहां से कुछ मित्रों की सहायता से एक गूंगे पठान के छद्मवेश में अफगानिस्तान की सीमा में प्रवेश किया। जिस किसी भी प्रकार अंग्रेज गुप्तचरों की आंख बचाकर काबुल के जर्मन दूतावास की मदद से अन्त में जर्मन की राजधानी बर्लिन पहुंचे और जाकर हिटलर से हाथ मिलाया। हिटलर नेता जी की योग्यता और व्यक्तित्व से इतना प्रभावित हुआ कि उसने भारत के "डिप्टी फ्युहरर" की उपाधि दी। जर्मनी की सरकार ने आपको एक मजबूत हवाई जहाज और एक रेडियो ट्रांसमीटर भी दिया था जिससे आप समय-समय पर अपने सन्देश प्रसारित किया करते थे।

जर्मनी से सुभाष बाबू पनडुब्बी द्वारा जापान पहुंचे। वहां सरकारी अधिकारियों तथा देश के पुराने निर्वासित क्रांतिकारी श्री रासबिहारी बोस से मिलकर तुरन्त ही उस चिरस्मरणीय "इंडियन इण्डिपेण्डेन्स लीग" की बागडोर अपने हाथों में सुभाष बाबू ने ले ली। जिस सभा ने आजाद हिन्द

सरकार एवं आजाद हिन्द फौज के निर्माण के लिए नींव का काम दिया था। जिस आजाद हिन्द फौज के कारण नेता जी ने ब्रिटेन के विरुद्ध विधिवत् युद्ध घोषणा करके वर्मा की ओर से भारत के पूर्वीय सीमान्त पर धावा बोलकर सारे संसार को चकित कर दिया था। मातृ-भूमि को स्वतन्त्र करने के हेतु विदेश में खड़ा किया हुआ एक जबरदस्त मोर्चा! आजाद हिन्द फौज का अपना स्वतन्त्र इलाका ही नहीं किन्तु २० करोड़ रुपयों से भी अधिक का निजी खजाना, अदालत, थाने, अस्पताल, स्कूल, प्रेस, अखबार भी थे। उसका सुसङ्गठित शासन विभाग, मन्त्रिमण्डल एवं भिन्न-भिन्न कार्यों के लिए आवश्यक पदाधिकारी भी थे। नेता जी फौज के निजी सिक्के और स्टाम्प आदि भी चलाते थे और अपना वह स्वतन्त्र सैनिक संगठन, जिसमें मंजे हुए भारतीय अफसरों के मातहत (जो कि हारी हुई ब्रिटिश सेना में से छूटकर आ मिले थे) लगभग ५० हजार सशस्त्र सैनिकों की कई एक सुसंगठित पल्टनें थीं। यहां तक कि महिलाओं तक की एक सैनिक टुकड़ी तथा छोटे छोटे बच्चों तक का एक "जांबाज" दल उसमें था जिसके कि किशोर सैनिक पीठ पर सुरंगें बांधकर दुश्मन के टेकों की राह में लेटते हुए भी न हिचकते थे।

अन्त में वह दिन भी आ पहुंचा जबकि "दिल्ली चलो" तथा "जय हिन्द" के गगन भेदी निनाद के साथ १९४४ ई० के आरम्भ में बर्मा की ओर से भारत के पूर्वीय सीमान्त पर विधवत् लड़ाई की मशालें भभक उठीं और इम्फाल, कोहिमा, तामू, टिड्डिम आदि चिरस्मरणीय विजय गाथाओं द्वारा नेता जी की इस भीष्म-प्रतिज्ञा को सार्थक बनाने का साकार यज्ञ रचा जाने लगा कि "तुम मुझे रक्त दो और मैं तुम्हें स्वतन्त्रता का उपहार दूंगा।" ये वे दिन थे जबकि महायुद्ध की थपेड़ों से लड़-खड़ाकर ब्रिटिश साम्राज्य की दीवारें तास के घर की तरह बिखर एक के बाद एक धराशायी होने लगी थीं और स्वयं भारत में भी उसके शक्तिदुर्ग की दीवारें सन् ४२ के भीषण आन्दोलन के प्रहार से जड़ से हिल उठीं। अतः जब 'कदम कदम बढ़ाये जा' के राष्ट्रगान के साथ नेता जी के मतवाले योद्धा अपना तिरंगा ध्वज लहराते हुए मातृ-भूमि के बन्धन काटने को क्रमशः आगे बढ़े तो जहां देशभक्तों का हृदय एक नई आशा के भाव से लहलहा उठा वहां देश के शत्रुओं का कलेजा स्वभावतः ही कांप उठा। निश्चय से ही यह थी विदेशी सत्ता के अस्त और हमारे अपने स्वातन्त्र्य प्रभात के पुनरुदय की महान् वेला किन्तु तभी आकाश से टूट पड़ने वाली बिजली की तरह दो वज्रसम घटनायें घटीं और उस पुण्यानुष्ठान का तार बीच में ही अचानक टूट गया, जिससे कि हमारा वह स्वातन्त्र्य प्रभात पुनः अल्पकाल के लिए टल गया। ये दुर्घटनायें थीं पहली तो संसार के विशद रणप्रांगण में, इन्हीं दिनों धुरी-राष्ट्रों की आकस्मिक पराजय के उखड़े हुए कलेवर में पुनः शक्ति का संचार और दूसरे इस संकट की घड़ी ही में सिंगापुर से वायुयान द्वारा जापान जाते समय राह में दुर्घटनावश अगस्त सन् १९४५ ई० में नेता जी सुभाषचन्द्र बोस का वह दुर्भाग्यपूर्ण असामयिक अवसान, जिससे कि वह साहसिक अनुष्ठान जहां का तहां अधूरा रह गया।

@VaidicPustakalay

बंगाली वीर—

श्री रासबिहारी बोस

(महावीर)

पंजाब की भूमि की भांति बंगाल की भूमि ने भी अनेक वीरों को जन्म देकर अपना नाम इतिहास में चमका दिया है। जिन दिनों अन्य प्रान्तों से भारतीय वीर अंग्रेजों की मृत्यु का सन्देश लेकर यम के दूत के रूप में प्रकट होते थे उन्हीं दिनों बंगाल भी ज्वालामुखी पर्वत बना हुआ था जहां से चिंगारियां निकल निकल कर गोरी चमड़ी को भस्मसात् कर रही थीं। उन्हीं चिंगारियों में से श्री रासबिहारी बोस भी एक थे जिन्होंने अपने ताप से अंग्रेज-शलभों को झुलस डाला।

श्री रासबिहारी बोस भारत के वीर सेनानी आजाद हिन्द सेना के सूत्रधार श्री सुभाषचन्द्र बोस के बड़े भाई थे। देश-भक्ति आपको वंश-परम्परा से ही मिली थी। उच्च शिक्षा-दीक्षा के पश्चात् भारतमाता की पराधीनता की बेड़ियां काटने की ज्वाला हृदय में जल उठी और अपना सर्वस्व त्यागकर स्वतन्त्रता देवी की आराधना में लग गये।

सन १९१२ की बात है। देहली में एक विशाल दरबार लग रहा था। उस समय भारत के भूतपूर्व वायसराय लार्ड हार्डिंग भी आये हुए थे। जब वे हाथी की पीठ पर जलूस के साथ जा रहे थे उसी समय श्री रासबिहारी बोस की योजनानुसार उन पर बम फेंका गया। बम से वायसराय तो मरने से बच गया किन्तु उनका एक चौकीदार मारा गया। लार्ड हार्डिंग का भी एक हाथ घायल हो गया। जिसके कारण वह मूर्च्छित हो गए। सारा का सारा जलूस तितर बितर हो गया।

रासबिहारी बोस के वारण्ट जारी हो गए। सरकार ने बड़े-बड़े इनाम उनके पकड़ने के लिए घोषित किए। गुप्तचर विभाग की भी सारी शक्ति उन्हें पकड़ने के लिए लग गई किन्तु वे मरण-पर्यन्त हाथ नहीं आये।

लार्ड हार्डिंग पर बम फिकवाकर इस प्रकार साफ बच जाने पर रासबिहारी के विषय में तात्कालीन 'English Man' नामक पत्र की सम्पादकीय टिप्पणी में लिखा गया था कि "रासबिहारी बोस एक अत्यधिक भीमकाय और बलवान पुरुष था। उसका लम्बा चौड़ा शरीर किसी भी वेश में छिपना कठिन था,तो भी आश्चर्य है कि वह कैसे बचकर निकल गया।

श्री रासबिहारी यहाँ से बचकर घूमते घामते सन १९१४ में बनारस पहुंचे जहाँ पर रहकर अंग्रेजों के विरुद्ध गुप्त षड्यन्त्र की योजना बनाने लगे। सरकार ने उन्हें पकड़ने के लिए ७५०० रु० इनाम घोषित कर दिया और उनका चित्र प्रत्येक पत्र में प्रकाशित कर दिया। श्री रासबिहारी ऐसी अवस्था में केवल रात के ही समय कार्य किया करते थे। रात के समय ही वे अपने मित्रों से मिलकर बातचीत करते और उन्हें बम एवं पिस्तौल चलाना सिखाते थे।

इन्हीं दिनों पिङ्गले जो अमेरिका से आया था, रासबिहारी के क्रांतिकारी दल में सम्मिलित हो गया। पिंगले ने रासबिहारी को बतलाया कि उत्तर भारत में विद्रोह के लिए चार हजार क्रांतिकारी

अमेरिका से आये हैं और क्रांति प्रारम्भ होने पर २० हजार और आयेंगे। रासबिहारी तभी से पंजाब में क्रांति की योजना बनाने लगे।

पंजाब में क्रांति का दिन २१ फरवरी सन् १९१५ निश्चित कर दिया। पञ्जाब में क्रांति का मुख्य अधिकार करतारसिंह को सौंपा गया। विनायकराव कपिल को पंजाब में बम भेजने के लिए नियुक्त किया गया। इस प्रकार पंजाब में क्रांति की योजना पूर्णरूपेण बन गई। ज्यों-ज्यों क्रान्ति का दिन निकट आ रहा था, त्यों-त्यों क्रांति के कार्यकर्त्ताओं में जोश और उत्साह बढ़ता जा रहा था। सब अपना-अपना निश्चित कार्य सुचारू रूप से चला रहे थे।

निश्चित तारीख आने में केवल दो दिन शेष रह गये थे। यह ज्वालामुखी फटने ही वाला था कि इन्हीं के साथी गद्दार कृपालसिंह ने पंजाब सरकार को सारा भेद खोल दिया। एकाएक धरपकड़ प्रारम्भ हो गई। कई क्रांतिकारी पकड़ लिए गये। करतारसिंह, पिंगले और रासबिहारी बोस आदि भाग गए। इस प्रकार एक नीच व्यक्ति के धोखे ने सारी महाक्रांति की योजना को विफल कर डाला। यदि कृपालसिंह गद्दारी न करता तो आज 'भारतमाता' और रासबिहारी बोस एवं उनके साथियों का इतिहास और ही कुछ होता।

पिंगले २३ मार्च को पकड़ा गया। रासबिहारी बोस ने अपनी आत्मकथा में लिखा है कि जब मैंने पिंगले की गिरफ्तारी की खबर सुनी, मेरे पैरों तले की जमीन निकल गई और आंसुओं का समुद्र उमड़ पड़ा।

१९ फरवरी को पुलिस ने इनके भी प्रधान कार्यालय पर छापा मारा, किन्तु ये उनके हाथ नहीं आए। इसके पश्चात् इन्होंने सिंगापुर आदि कई स्थानों पर षड्यन्त्र की शाखायें खोल दीं। सरकार ने उनकी गिरफ्तारी के लिए १२५०० रु० का इनाम बोल दिया और निपुण से निपुण गुप्तचर इन्हें पकड़ने के लिए नियुक्त किया। किन्तु रासबिहारी सब की आंखों में धूल झोंककर साफ बच जाते थे।

सौभाग्यवश स्वर्गीय कवि श्री रवीन्द्रनाथ जी ठाकुर इन्हीं दिनों जापान जा रहे थे। रासबिहारी बोस भी उन्हीं व्यक्तियों में सम्मिलित हो गए जो श्री रवीन्द्रनाथ जी के लिए पासपोर्ट आदि का प्रवन्ध कर रहे थे और अन्त में पी० एन० ठाकुर के नाम से आपने भी अपना पासपोर्ट बनवा लिया। अधिकारियों ने कवि रवीन्द्रनाथ जी का ही कोई सम्बन्धी समझकर आपको अनुमति पत्र दे दिया और आप इस प्रकार जापान जाने में समर्थ हो गये।

वहां पर आप Black Dragon नामक दल के नेता काउन्ट तोयाम के पास रहने लगे, जो कि सच्चे देशभक्तों को आश्रय देते थे। सन् १९३२ में आजाद हिन्द सेना का नेतृत्व आपके हाथों में सौंपा गया। आपने 'एशियाटिक रिवन्यू' नाम की एक पत्रिका भी निकाली थी।

अन्त में सन् १९४५ की २१ जनवरी को देशभक्त रासबिहारी ६४ वर्ष की आयु में भारत की स्वतन्त्रता की अमिट भावना लिए हुए इस संसार से चल बसे। धन्य है भारत भूमि! तूने ऐसे कितने ही लालों को जन्म दिया है जिन्होंने तेरे गौरव को चार चाँद लगा दिये।

———

@VaidicPustakalay

श्री शचीन्द्रनाथ सान्याल

(ब्र० सोमवीर)

लार्ड कर्जन के बंग-भंग से समस्त बंगाल में क्षोभ की एक लहर फैल गई। सभी बंगालियों ने लार्ड कर्जन के इस कृत्य की निन्दा की, परन्तु पराधीन और असहाय लोगों की कौन सुनता है। विरोध होते हुए भी बंग का भंग कर दिया गया, इस काण्ड से बंगाल का बच्चा-बच्चा क्षुब्ध हो उठा और बंगाल के युवकों के हृदय उछलने लगे, परन्तु आजादी के दीवाने बङ्गालियों ने अपने प्राणों की बाजी लगा दी। परन्तु अंग्रेज सरकार अपने निश्चय से बिल्कुल नहीं डिगी और सम्राट् की आज्ञा से १९११ ई० में भारत की राजधानी दिल्ली घोषित कर दी। कलकत्ता का वैभव और सौन्दर्य सब मिट्टी में मिल गया। इस आघात से युवकों के हृदय में विद्रोहरूप ज्वाला जोर से जलने लगी और सारा दोष रासबिहारी बोस के सिर मढ़ा गया और उसको पकड़ने के लिए सरकार ने वारण्ट जारी कर दिये, परन्तु रासबिहारी बोस कब हाथ आने वाले थे, खुफिया पुलिस ने उन्हें पकड़ने का सिर तोड़ परिश्रम किया परन्तु वे हाथ नहीं लगे।

एक दिन एक १८-२० वर्ष की अवस्था के नवयुवक की मुलाकात रासबिहारी बोस से हुई। उस युवक के हृदय में क्रांति की ज्वाला विद्यमान थी और उसी समय से यह उनका विशेष विश्वासपात्र बन गया। वह युवक शचीन्द्रनाथ सान्याल था। रासबिहारी बोस ने अपना भीतर की क्रांति का काम उसे सौंप दिया। शचीन्द्रनाथ जी ने इस काम को ऐसे अच्छे प्रकार से किया कि काफी दिनों तक इस बात का पता नहीं लगा। आखिर एक बार आप पंजाब में दौरे के लिए आये थे ताकि सिक्खों के साथ संगठन बनाकर विदेशी सत्ता का विरोध किया जाये। परन्तु १९१५ ई० में आपको काशी षड्यन्त्र केस में गिरफ्तार कर लिया गया और आपको कालापानी की सजा तथा जायदाद जब्त करने की सजा मिली, परन्तु १९२० ई० में सम्राट् के घोषणा पत्र के कारण आप छोड़ दिए गए। आपका सारा कुटुम्ब ही देश की स्वतन्त्रता के लिए बलिदान हो गया।

देशभक्त बंगाली वीर—

नलिनी वाक्ची

(श्री वेदव्रत)

नलिनी वाक्ची का बलिदान प्रथम असहयोग आन्दोलन की अन्तिम घटना है। रासबिहारी बोस तथा सरदार कर्तारसिंह आदि के द्वारा किये गए पंजाब के विराट् विप्लवायोजन के विफल हो जाने पर क्रांतिकारी वीर निराश होकर नहीं बैठ गये थे, जो लोग उस समय की धर-पकड़ से बच गये थे, उन्होंने पुनः महान् विप्लव यज्ञ का अनुष्ठान प्रारम्भ कर दिया।

नलिनी वाक्चो वीरभूमि का निवासी था, वह पढ़ने-लिखने में अति चतुर था, इसलिए उसको छात्रवृत्ति भी मिलती थी। पंजाब के विप्लव के विफल हो जाने पर नलिनी वाक्चो को सन् १९१६ ई० में विहार प्रान्त में क्राँति के प्रचार के लिए भागलपुर कालेज में पढ़ने के लिए भेजा गया। यहां आकर नलिनो सर्वथा बिहारी बन गया, सिर के लम्बे-लम्बे बाल कटवा कर टोपी पहननी प्रारम्भ कर दी, मोटे वस्त्र का कुर्त्ता और धोती बांधकर दिन व्यतीत करने लगा।

इतना सब कुछ करते हुए भी नलिनी पुलिस की दृष्टि से ओझल न रह सका, पकड़े जाने के भय से पढ़ना छोड़कर फरार हो गया और बिहार के नगर-नगर घूमने लगा। किन्तु "बकरे की मां कब तक खैर मनावे"। साम्राज्यवादी सरकार के पास असंख्य भाड़े के टट्टू विद्यमान थे, उनके द्वारा पुलिस को पुनः उसका पता लग गया। इस बार नलिनी ने बङ्गाल में ही जाना उचित समझा।

यह सन् १९१७ का समय था। उस समय बङ्गाल में ही नहीं सम्पूर्ण भारत में साम्राज्यवादी दमनचक्र बड़े वेग से चल रहा था। चारों ओर धर-पकड़, खानातलाशी, नजरबन्दी, देश निर्वासन, गोलीकाण्ड, प्राणदण्ड, फांसी आदि का वातावरण दिखलाई देता था।

ऐसे संकटकाल में कुछ थोड़े से क्रान्तिकारी स्वाधीनता संग्राम के टिमटिमाते हुए दीपक की साम्राज्यवाद की भीषण आंधी से रक्षा करते हुए आगे बढ़ना चाहते थे। किन्तु मार्ग कण्टकाकीर्ण था, चहुँ ओर घोर विपत्तियों के बादल मंडरा रहे थे, और तो और अपने ही साथी पांव पकड़कर घसीट रहे थे वहां जहाँ कि स्वयं नरक के गर्त्त में गिरे हुए थे। स्वयं आगे बढ़ने वाले शिथिलांग हो गये थे और साथ ही उन साथियों की याद की आग भीतर ही भीतर जला रही थी जो कि फांसी के तख्ते पर चढ़ चुके थे। इतने भयंकर वज्रपातों को सहकर भी कुछ साहसी वीर सेनानी आगे बढ़े जा रहे थे, उन्हीं के साथ नलिनी वाक्ची भी था।

जब बंगाल में रहना कठिन हो गया तब क्रांतिकारियों के दल ने निश्चय किया कि स्वाधीनता संग्राम के विशेष-विशेष वीरों को जब तक परिस्थिति अनुकूल न हो जाये, किसी अज्ञात स्थान में सुरक्षित रखा जाये। इसी निश्चय के अनुसार नलिनी ने अपने कुछ साथी नलिनी घोष, नरेन्द्र बनर्जी आदि को लेकर गोहाटो (आसाम) में जाकर डेरा जमाया। ये सभी सोते समय पिस्तौल भरकर सिराहने रख लेते थे और पर्याय से एक एक व्यक्ति खिड़की में बैठकर पहरा देता था। इनका निश्चय था कि वातावरण अनुकूल हो जाने पर पुनः स्वाधीनता यज्ञ के ऋत्विक् बनेंगे अथवा सम्मुख समराग्नि में प्राणों की आहुति दे देंगे।

गोहाटी में रहते हुए अभी कुछ ही दिन व्यतीत हुये थे, किसी ने सूचना दे दी अमुक स्थान पर कुछ बंगाली नवयुवक रहते हैं। दूसरे दिन प्रातःकाल ही इनके स्थान को पुलिस ने घेर लिया। पुलिस को आता देख जागरूक साथी ने शनैः शनैः सबको जगा दिया। सभी अपनी भरी हुई पिस्तौलें उठाकर, बाहर निकल गए और पुलिस पर गोलियों की वर्षा प्रारम्भ कर दी। पुलिस को इस प्रकार के आक्रमण का किंचिन्मात्र भी ध्यान न था, अत एव वह सुसज्जित भी न थी, फलस्वरूप पुलिस तितर-बितर हो गई और क्रांतिकारी अवसर पाकर पास की पहाड़ी पर जा पहुँचे।

किन्तु तीसरे पहर अपराह्ण में असंख्य सशस्त्र पुलिस ने आकर पहाड़ी का घेरा डाल दिया। दोनों ओर से घमासान युद्ध होने लगा। बन्दूक तथा पिस्तौलों के शब्दों से आकाश गूञ्ज उठा। किन्तु साम्राज्यवाद की इतनी बड़ी सेना के समक्ष गिने-चुने नवयुवक कब तक ठहर सकते थे। बहुत से क्रांतिकारी घायल हो गए और पुलिस के फन्दे में फंस गए। किन्तु नलिनी वाक्ची अपने एक अन्य साथी सहित यहां से भी पुलिस की आंखों में धूल झोंककर भाग गया। सात दिन तक बिना कुछ खाये इधर-उधर पहाड़ियों में चक्कर काटता रहा। भोजन के अभाव में नलिनी वाक्ची के सभी अंग शिथिल पड़ गये थे।

इन्हीं दिनों में नलिनी के शरीर पर एक कीड़ा चिपक गया। इस कीड़े के विष ने उसको पर्याप्त कष्ट दिया। यहाँ से पैदल चलकर नलिनी बिहार पहुँचा, किन्तु वहाँ तो उसकी पहले से ढूंढ़ हो रही थी और बिहार की पुलिस आपको जानती थी। ऐसी परिस्थिति में नलिनी सोच-विचार कर बंगाल चला गया।

बंगाल में हावड़ा स्टेशन पर पहुंचा तो इसको कोई भी साथी न मिला, शरीर नितान्त निर्बल हो चुका था। पहाड़ी विषैला कीड़ा अब भी चिपका हुआ था। उसी के कारण नलिनी को ज्वर भी आने लगा, पास में भरा हुआ पिस्तौल, किराये के लिए पैसा नहीं, शरीर में चलने की शक्ति नहीं, करे तो क्या करे। विवश होकर नलिनी किले के मैदान में एक वृक्ष के नीचे लेट गया। दो दिन इसी भांति व्यतीत हो गये, तीसरे दिन प्रसंगवश उसका एक साथी उधर आ गया। उस समय नलिनी के शरीर पर चेचक (माता) भलीभाँति निकल आई थी, अवस्था अच्छी न थी।

नलिनी की ऐसी अवस्था को देखकर साथी की आँखों में आँसू आ गये। वह उसे उठाकर घर ले गया, किन्तु चिकित्सा कैसे हो? नलिनी को बाहर ले जाना दोनों की मृत्यु को निमन्त्रण देना था। चेचक का इतना प्रकोप हुआ कि मुख तथा आंखें बन्द हो गईं, जिह्वा अचल थी। तीन दिन तक बोलना भी सर्वथा बन्द रहा। साथी उसके शरीर पर हल्दी और तक्र (छाछ) की मालिश करता रहा और पीने के लिए भी छाछ ही दी।

भारत की स्वतन्त्रता के लिए सिर को हथेली पर रखकर लड़ने वाले वीर की कैसी शोचनीय दशा थी। रुग्णावस्था में भिखारी की भाँति मैदान में पड़ा हुआ था, न कोई सेवक था, न ही कहीं चिकित्सा करवा सकता था। यदि मर जाता तो कोई अर्थी उठाने वाला भी न था। किन्तु ईश्वर की कृपा और साथी के सहयोग से नलिनी वाक्ची अच्छा हो गया। जिस दिन दोनों साथियों ने साथ बैठकर भोजन किया तो उसी साथी के शब्दों में "उसके आनन्द की सीमा न रही।"

स्वस्थ होकर दोनों पुनः क्रांति के लिए निकले। घर से बाहर होते ही नलिनी के साथी को पकड़ लिया गया, किन्तु नलिनी पुनः क्रान्ति के उस टिमटिमाते हुए दीपक को, जिसका तैल समाप्त हो गया था, बत्ती भी जल गई था, अपने हाथों में लेकर संगठन के कार्य में लग गया।

तत्पश्चात् ढाका में जाकर तारिणी मजूमदार के साथ एक घर में रहने लगा। १५ जून १९१८ ई० को पुलिस ने पुनः इनको घेर लिया। दोनों ओर से गोलियाँ चलने लगीं, तारिणी मजूमदार कुछ काल युद्ध करने के उपरान्त पुलिस की गोली से शहीद हो गया। नलिनी वाक्ची को भी गोली लग चुकी थी, किन्तु अभी इनकी अभिलाषा पूर्ण न हुई थी। अफसर ने समक्ष आकर कहा—आत्म-समर्पण कर दो। इसके उत्तर में नलिनी के पिस्तौल की गोली से साहब की टोपी नीचे जा गिरी। इसके साथ ही एक और गोली का शब्द हुआ और नलिनी वाक्ची धराशायी हो गया।

पुलिस तत्काल नलिनी को गिरफ्तार कर घोड़ा गाड़ी में बैठाकर अस्पताल में ले गई वहाँ पर चारों ओर पुलिसाधिकारियों की भीड़ खड़ी थी। पूछने लगे—"क्या नाम है? कहाँ के रहने वाले हो? पिता क्या करते हैं? तुम्हें मरने से पूर्व (Dying Declaration) देना होगा।"

नलिनी वाक्ची को जीने की कोई आशा न थी, शरीर कृश हो चुका था, पुलिसाधिकारी बार-बार तंग कर रहे थे, यदि कोई साधारण व्यक्ति होता तो परिचय दे देता, किन्तु जीवनभर साम्राज्य-

वाद के विरुद्ध लड़ने वाला वह वीर सेनानी पुलिस को भेद कैसे दे सकता था, उसको अपने नाम की आवश्यकता न थी। केवल इतना ही उत्तर दिया—"मुझे तंग मत करो शान्ति से मरने दो" (Dont disturb me please, let me die peacefully)। इस प्रकार १५ जून १९१८ को वीर सेनानी नलिनी बाबची ने स्वतन्त्रता के संग्राम में अपने प्राणों की आहुति दी और अमर हो गया।

श्री खुदीराम बोस

(ब्र० सोमवीर)

खुदीराम बोस का जन्म कलकत्ता के पास किसी गांव में एक कायस्थ परिवार में हुआ था, आप की शिक्षा कलकत्ता में हुई थी, जब आप कलकत्ता में पढ़ते थे तो उस समय कलकत्ता के कोर्ट से जज ने विप्लववादियों को बड़ा कड़ा दण्ड दिया और विप्लवादियों को ढूंढ-ढूंढ कर मारने का जार्ज किंग्स फोर्ड ने निश्चय कर लिया था। अतः विप्लवादियों ने जार्ज को मारने का निश्चय किया। उस समय खुदीराम जी भी विप्लवादियों में मिल चुके थे, अतः विप्लववादियों ने इनको किंग्स फोर्ड को मारने के लिए नियुक्त किया जिसमें प्रफुल्लकुमार और दूसरे खुदीराम बोस थे।

परन्तु अब किंग्स फोर्ड कलकत्ता से बदल मुजफ्फरपुर आ गए तो ये दोनों वीर भी मुजफ्फरपुर में आकर एक धर्मशाला में ठहर गये और घूम-घूम कर सब बातों का पता लगाने लगे कि किंग्स फोर्ड के घूमने का समय कौनसा है और वे गाड़ी में बैठकर किस ओर घूमने जाते हैं।

अब दोनों इसी घात में रहने लगे कि हमें उसे मारने का अवसर मिले, लेकिन अन्त में मुराद पूरी होने का दिन भी आया। तीस अप्रैल का दिन था, रात के समय सड़क के बीच जोर का धमाका हुआ। सारे शहर में इसकी खबर बिजली की तरह फैल गयी कि स्थानीय वकील मि० पी० कनेडी पर किसी ने बम फेंक दिया। बात यह थी कि मि० कनेडी और किंग्सफोर्ड की कारों का रंग एक सा था और वे दोनों युवक बम फेंककर नौ दो ग्यारह हो गए। तो उसी समय पुलिस ने सारे शहर को घेर लिया और अभियुक्तों को पकड़ने के लिए वारण्ट जारी कर दिये। परन्तु ये वहाँ ठहरने वाले कब थे। ये मुजफ्फरपुर से पूर्व की ओर बीस-तीस मील भाग निकले और बेनी पहुँच गये और भूख से व्याकुल हो रहे थे तो स्टेशन के पास एक मोदी की दुकान पर चने लेने के लिए गए तो वहां पर दो बाबू आपस में बातें कर रहे थे कि मुजफ्फरपुर में दो मेमों की हत्या हो गई है और अभियुक्तों को पकड़ने के लिए वारण्ट आये हैं। चलो देखें कभी वे गाड़ी में न हों, पास खड़े हुए खुदीराम बोस ने भी यह बात सुन ली और सहसा बोल उठे, क्या किंग्स फोर्ड नहीं मरे, तो उनको इस पर शक हो गया और सिपाही इन्हें पकड़ने के लिए पीछे लग गए और तीन मील पर जाकर इनको पकड़ लिया, और इनको पकड़कर मुजफ्फरपुर ले आये। वहाँ पर इन्हें देखने के लिए बहुत जनता उमड़ आई और ले जाकर इनको जेल में डाल दिया।

इधर इनका साथी प्रफुल्लचन्द्र भी रेल में जा रहा था कि उसी डिब्बे में एक दरोगा भी बैठा था। उसको प्रफुल्ल पर शक हो गया और इसे पकड़ने के लिए अगले स्टेशन पर तार कर दिया,

लेकिन प्रफुल्ल ने उस पर गोली चलायी, फायर खाली गया। अन्त में बचने का कोई उपाय न देखकर पिस्तौल से आत्महत्या कर ली, कुछ ही देर बाद खबर आयी कि प्रफुल्ल को पकड़ने वाले दरोगा जी दिन दहाड़े कलकत्ता में मारे गये।

इधर खुदीराम पर मुकदमा चला और मैजिस्ट्रेट ने पूछा कि तुमने हत्या की है, इन्होंने बड़ी वीरतापूर्वक उत्तर दिया "हां हमने बम फेंका है और मैंने ही हत्या की है" तो इनको फांसी का हुक्म सुना दिया गया।

खुदीराम जी बड़े प्रसन्नचित्त आदमी थे, फांसी के दिन इनको डाक्टर ने आम खाने को दिया, तो इन्होंने आम खाकर छिलके फुलाकर ज्यों का त्यों आम बनाकर रख दिया। डाक्टर ने इनको पूछा कि आम खा लिया। इन्होंने कहा खा लिया, डाक्टर को इनकी बात पर विश्वास नहीं आया और छिलके उठाकर देखने लगा और ये खिलखिला कर हंस पड़े। इतने में ११ अगस्त भी आन पहुंचा और इनको फांसी के तख्ते पर ले जाया गया और इन्होंने अपने आप मृत्युपाश गले में डाला और हंसते-हंसते परलोक सिधार गए और भारत के हृदय के एक उपास्यदेव बन गए।

श्री कन्हाईलाल दत्त

कन्हाईलाल दत्त का जन्म १८८७ ई० में हुआ था। आपके विचार बड़े विचित्र थे, आपकी हर एक बात में बड़ी विचित्रता पाई जाती थी। आपका जन्म एक अच्छे धनी परिवार में हुआ था। आप धनिकों के समान विलासी नहीं थे। आपके हृदय में गरीबों के लिए बहुत भारी स्थान था तथा दु:खियों के लिए बड़ी सहानुभूति थी।

आपकी शिक्षा बंगाल में बी० ए० तक हुई थी। आप एक दिन घर वालों को यह कहकर चले गये कि मैं नौकरी के लिए कलकत्ता जा रहा हूं। परन्तु आपके दिल में बात और ही थी। इस समय बंगाल में स्वदेशभक्तों के हृदय में देशभक्ति की आग सुलग रही थी। बंगाल के युवक अपनी जान हथेली पर रखकर विदेशी सत्ता को देश से उठाने के लिए लगे हुए थे। कन्हाईलाल दत्त जी भी कलकत्ता में आकर स्वदेशभक्ति के कार्यों में भाग लेने लग गये। कुछ ही दिनों में आप दल के प्रमुख कार्यकर्ता बन गए और जिस समय खुदीराम बोस ने बम फेंका था और सरकार लोगों को पकड़ पकड़ कर जेल में डाल रही थी उस समय आप भी जेल में चले गये। वहां सब लोग सभायें करते और भाषण देते थे परन्तु आपकी दिनचर्या सबसे निराली थी। या तो आप आनन्द से पड़े सोते थे या फिर लोगों को तंग करते फिरते थे।

इसी समय लोगों को पता चला कि नरेन्द्र गोस्वामी मुखबर हो गया है, तो सभी साथियों का खून उबलने लगा। कन्हाईलाल भी कब चुप होने वाला था। इसने मन ही मन विश्वासघातक को दण्ड देने का निश्चय कर लिया। तो एक दिन कन्हाईलाल दत्त ने पेट के दर्द का बहाना कर लिया और उसे अस्पताल भेज दिया। उधर सत्येन्द्र भी विश्वासघातक से बदला लेने के लिए बुखार के बहाने अस्पताल में गया हुआ था। एक दिन नरेन्द्र अपने दो रक्षकों के साथ सत्येन्द्र से मिलने के

लिए आया। सत्येन्द्र ने बेहोशी का बहाना बनाकर नरेन्द्र पर फायर कर दिया परन्तु फायर खाली गया तो कन्हाईलाल दत्त ने शिकार को फन्दे से निकलते देखकर उस पर गोली चला दी। इस भयानक दृश्य को देखकर जेल के कर्मचारी भी इधर-उधर छुप गये और इन दोनों ने उसका काम तमाम कर दिया। आखिर कारतूस समाप्त होने के कारण इनको गिरफ्तार होना पड़ा और इन पर हत्याओं के मुकद्मे चलाये गये। आखिर १० नवम्बर सन् १९०८ को इनको फांसी दे दी गई और दोनों साथी एक साथ भारत माता की गोद से विदा ले गए।

श्री यतीन्द्रनाथ दास

(म० फतहसिंह)

जिस समय काकोरी-षड्यन्त्र केस चल रहा था। बल्कि जिस समय उसका मुकद्मा अच्छी तरह चल भी नहीं पाया था, उसी समय ५ नवम्बर सन् १९२५ को यह वीर गिरफ्तार कर लिए गए। कलकत्ता जेल में इनकी शनाख्त के लिए काकोरी केस के मुखबिर लोग गये, और उन्होंने उनकी शनाख्त करने को चेष्टा की, किन्तु वे उन्हें नहीं जानते थे इसलिए उनकी शनाख्त न कर पाए। यतीन्द्रनाथ उसी प्रकार तथा उसी अर्थ में क्रान्तिकारी थे जिस अर्थ में कि भगतसिंह तथा चन्द्रशेखर आजाद थे।

जब यतीन्द्रनाथ दास पर काकोरी का मुकद्मा न चल सका तो इन्हें बंगाल आर्डिनेन्स के केस में वन्दी बना लिया गया। इन्हें कई जेलों में रखा गया तथा इन्हें तरह तरह की कठोर यातनायें दी गईं। एक बार ढाका जेल में तो आपके साथ अधिकारियों का झगड़ा भी हो गया था। फलस्वरूप इस वीर को अत्यधिक यातनाओं का सामना करना पड़ा। इस वीर ने फिर भी साहस न छोड़ा। जेल में इन्होंने अनशन प्रारम्भ कर दिया। जब अधिकारी वर्ग ने इनके शरीर की हालत चिन्ताजनक देखी तो घबराये और क्षमा मांगने लगे। इस वीर ने देश के राजनीतिक कैदियों की अवस्था सुधारने के लिए ही यह सब कुछ किया था। इसी अनशन के कारण उनकी हालत चिन्ताजनक हो गई। यह मरने का कुछ भी भय न करते थे। अन्त में इसी के कारण उनका यह देह छूट गया और सदा के लिए अमर हो गये।

जब यह वीर लाहौर षड्यन्त्र में गिरफ्तार हुए तो उस समय इनकी आयु बहुत छोटी थी। यतीन्द्रनाथ दास में बाल्याकाल से ही साहस व वीरता कूट-कूट कर भरी थी, गिरफ्तार होने पर यह तनिक भी न घबराये। दो तीन बार इन्होंने असहयोग आन्दोलन में पकड़े जाने पर भी जेल की यातनायें सहन की थीं। जेल की यातनाओं को सहन करने के अभ्यस्त हो गये थे। इसीलिए वह जेल से कभी न घबराते थे। इन्होंने अपने पूर्ण प्रयत्न से जान की बाजी लगाकर भी देश के राजनीतिक कैदियों की अवस्था सुधारने का प्रयत्न किया जिसमें इन्हें पर्याप्त सफलता मिली।

बोरस्टल जेल में जब यतीन्द्रनाथ जी बहुत दिनों से अनशन पर थे तो इनका शरीर अत्यन्त कमजोर हो गया। सभी प्रजाजन इनके प्राणों की भिक्षा मांग रहे थे। यह आशंका की जाती थी कि यह वीर अभी कुछ ही घण्टों में शरीर छोड़ने वाला है। किन्तु यह वीर फिर भी ६ दिन तक जीवित रहा और अन्त में १३ सितम्बर १९२९ ई० को यह वीर बोरस्टल जेल में शहीद हो गया।

श्री यतीन्द्रनाथ मुकर्जी

(ब्र० सोमवीर)

श्री यतीन्द्रनाथ मुकर्जी का जन्म बङ्गाल प्रान्त के नदिया जिले के कालाग्राम नामक गांव में हुआ था। पांच वर्ष की ही आयु में इनके पिता का देहावसान हो गया था और ये अपने बचपन से ही पितृस्नेह से वंचित होगये। इनके लालन-पोषण का भार इनकी स्नेहमयी माता पर पड़ गया। इनकी माता इनको बड़े प्यार से रखती थी और इनको किसी प्रकार का कष्ट नहीं होने देती थी। माता की यही हार्दिक अभिलाषा थी कि मेरा पुत्र सुयोग्य बने। वे नहीं चाहती थी कि मेरा पुत्र गुलाम या कायर बने। वे अपने पुत्र को सदा यही उपदेश दिया करती थी।

"हे पुत्र संसार में सदैव निर्भय होकर विचरना, संसार की मोह माया में न फंसना, हमेशा अपने चरित्र बल को बनाये रखना।"

यतीन्द्र बाबू पर उनके उपदेशों का बड़ा भारी प्रभाव पड़ा और अन्तिम समय तक उनके जीवन में माता के उपदेशों का प्रतिबिम्ब झलकता रहा। उन्होंने अपने जीवन का उत्सर्ग तक कर दिया पर माता के उपदेशों का पालन न छोड़ा, देश पर मरनेवाले पुत्र कैसे होते हैं यह प्रत्यक्ष करके दिखला दिया।

इनकी शिक्षा इनके मामा के घर हुई थी। आपने मैट्रिक पास करके एफ० ए० तक की शिक्षा प्राप्त कर ली थी। आप बुद्धि के बड़े चतुर थे। आपका मन पढ़ने-लिखने में इतना नहीं लगता था जितना कि खेलने-कूदने व लड़ाई-झगड़े में लगता था। आप शरीर के बड़े फुर्तिले थे, और आपको घोड़े की सवारी बड़ी प्रिय थी। आपने अपने बाल्यकाल ही में लाठी चलाना, तरह तरह के व्यायाम और कुश्ती लड़नी सीख ली थी। आपके लिए ७०-७५ मील साईकल पर चढ़े जाना एक आसान बात थी।

एक बार यतीन्द्र जी को एक खेल सूझा। वे जंगल में गये। अचानक उनकी एक चीते से भेंट हो गई। वे डरे नहीं, किसी प्रकार से जीवित चीते को पकड़ कर शहर में ले आये, जिसने इनके इस कृत्य को देखा वह अवाक् रह गया। यतीन्द्र बाबू बड़े साहसी वीर थे, वे प्रायः इसी तरह के कामों में लगे रहते थे। उन्होंने पढ़ना-लिखना सर्वथा छोड़ ही दिया था। इनकी इस प्रकार की प्रवृत्ति देखकर इनकी माँ ने इनको कहा कि बेटा! तुमको मैंने बड़े कष्ट से पाला है और अब भी मैं आपके होते हुए कष्ट अनुभव कर रही हूं। अतः मेरे बुढ़ापे की तरफ ध्यान दो। यतीन्द्र जी को माता की यह बात बड़ी अच्छी लगी और इन्होंने सरकारी नौकरी कर ली।

यतीन्द्र बाबू नौकरी तो करते रहे परन्तु उनका हृदय नौकरी के अनुकूल नहीं था। इनके हृदय में तो स्वतन्त्रता की आग सुलग रही थी। इनका वीरोचित गुण राख से आच्छादित अग्नि के समान था और समय पाकर चमकने का अवसर देख रहे थे।

नौकरी करते हुए भी ये इतने बेफिकर थे कि इनको किसी बात की परवाह ही नहीं थी। एक बार वे ट्रेन से जा रहे थे तो ट्रेन में इनका तीन चार अंग्रेजों से झगड़ा हो गया। आपने उन चारों की अच्छी तरह से मरम्मत की, और ये चारों अंग्रेज कोई साधारण नहीं थे, सैनिक थे। यतीन्द्र बाबू पर इस झगड़े का मुकद्दमा भी चला परन्तु उन अंग्रेजों ने बाद में इसमें अपनी हंसी होती हुई देखकर

मुकदमा अदालत से उठा लिया। आपकी निर्भयता, उत्साह और पराक्रम से आपके ऊपर पुलिस की निगाह सदा बनी रहती थी और इस प्रकार की अनेक शिकायतें आपके अफसर के पास भी गईं, जिनके कारण आपको उस नौकरी से हाथ धोना पड़ा। इसके बाद आपने कहीं ठेकेदारी का काम करके काफी रुपया कमा लिया और उस समय देश के नवयुकों में इसी प्रकार की लहर फैली हुई थी कि देश को आजाद कराना ही देश की अच्छी सेवा है और प्यारे देशवासियों को अंग्रेजी शासन से मुक्त करके इन्हें स्वतन्त्र करना ही मुख्य काम है। यतीन्द्र जी भी इसी उद्देश्य से प्रभावित होकर स्वतन्त्रता की ज्वाला में कूद पड़े।

उस समय पूर्वी बंगाल में स्वतन्त्र रूप से कई छोटे-छोटे दल विप्लव प्रचार कर रहे थे, इन दलों को एक सूत्र में बाँधने के लिए काफी प्रयत्न किये जा चुके थे, परन्तु इनको एक सूत्र में कोई भी नहीं बाँध सका था। यतीन्द्र जी ने इस काम को करने का बीड़ा उठाया और अन्त में सबको एक सूत्र में बाँध दिया और विप्लव के काम में लग गये। यतीन्द्र बाबू जी कलकत्ता के पथरिया घाट मौहल्ले में रहा करते थे। एक बार ये अपने कमरे में बैठे हुये थे। साथ में कुछ और क्रांतिकारी बैठे थे, इतने में इनके पास आदमी आया जिस पर इनको गुप्तचर होने का सन्देह था। इनके साथियों ने उस पर गोली चला दी और भाग खड़े हुए। इस गोलीकाण्ड में यतीन्द्र बाबू बिल्कुल नहीं थे। परन्तु मरते समय उस आदमी ने अपने बयान में इनका नाम भी ले लिया कि यतीन्द्र ने मुझे गोली मारी है। तो पुलिस पहले ही यतीन्द्र बाबू पर काफी कड़ी नजर रखती थी और इस बात को सुनकर तो पुलिस और तेज रफ्तार से उनको पकड़ने की कोशिश में रहने लगी। उन्होंने भी अपना स्थान बदल लिया और किसी दूसरे स्थान पर अपने पांच छः साथियों के साथ रहने लगे। एक बार पुलिस को उस स्थान का भेद भी लग गया और उस स्थान को जा घेरा तो उस समय इनके सभी साथी वहां नहीं थे और ये अपने कुछ साथियों के साथ उन्हें लेने के लिए चल दिए और रातों रात घने जङ्गलों और उवड़ खाबड़ जमीन पर बारह कोश चलकर वापिस आना क्या हंसी खेल था? ये अपने काम में जुटे हुए थे, ये रातों-रात चलने के कारण थक गये थे। भूख प्यास से भी बहुत तंग आ गए थे तो इन्हें किसी नदी पर एक मल्लाह मिला। इन्होंने उससे कुछ खाने को मांगा, तो उसको इन पर दया नहीं आयी और इनको खाने के लिए कुछ भी नहीं दिया और ये अपने काम में भूखे प्यासे ही लगे हुए थे। पुलिस भी इनके पीछे लगी हुई थी। आखिर प्रातःकाल होगया और पुलिस के कई सौ सिपाहियों ने इन पाँच छः वीरों को घेर लिया तो इन्होंने भी उन कई सौ सिपाहियों के मुकाबले में मोर्चा जमा लिया। यह दृश्य देखने योग्य तथा भयानक था। जंगल में गोलियों के धुयें से रात्रि सी छायी हुई थी, शब्द भी केवल बन्दूकों के ही सुनाई देते थे, लेकिन इन पाँच छः भूखे प्यासे वीरों ने उन कई सौ सिपाहियों के दांत खट्टे कर दिये। आखिर कब तक ये पाला लेते, इनके एक दो साथी मारे भी गये। आखिर श्रान्त होकर यतीन्द्र जी ने अपने बचे हुए साथियों के साथ आत्म-समर्पण कर दिया। आत्म-समर्पण करते ही यतीन्द्र जी बेहोश हो गये और मुख से केवल पानी शब्द निकलता था, आखिर उनकी इस हालत को देखकर पुलिस अफसर का भी दिल पसीज गया और रोने लग गया। सिपाहियों ने तालाब से अपनी टोपियों में पानी लाकर यतीन्द्र जी के मुख में डाला और इनको कुछ होश आया और इनको गिरफ्तार करके कटक के हस्पताल में रखा गया और वहीं इनकी मृत्यु हो गई और इनके दो साथियों मनोरंजन और धीरेन्द्र को फांसी तथा ज्योतिष को कालापानी की सजा मिली, लेकिन ये भी कब शान्त थे? कुछ दिन में इन्हीं के साथ जा मिले।

अमर शहीद मणीन्द्रनाथ बनर्जी

श्री मणीन्द्रनाथ बनर्जी का जन्म बंगाल में हुआ था। इनके पिता का नाम ताराचन्द बनर्जी था तथा माता का नाम सुनयनी देवी था। इनके पिता जी काशी के प्रसिद्ध डाक्टर थे। इनकी माता जी बड़ी देशभक्त थी। तभी तो इसने इस प्रकार के वीर पुत्रों को जन्म दिया।

जब १९२७ के काकोरी षड्यन्त्र के अभियुक्त बिस्मिल आदि को फांसी दी गई उस समय मणीन्द्र के दिल को बड़ी भारी ठेस पहुंची और इन्होंने मन में सोचा कि अंग्रेजी सरकार ने इनको फांसी देकर भारत के नौजवानों को चुनौती दी है और यह जाहिर किया है कि इस मार्ग को न अपनावें, इस कारण मणीन्द्र ने यह चुनौती स्वीकार कर ली और उन्होंने काशी के मारवाड़ी हस्पताल के आगे अपने तमंचे में केवल दो कारतूस लेकर डी० एस० पी० जितेन्द्र बनर्जी पर हमला कर दिया। वे समझते थे कि यही व्यक्ति फांसियों के लिए जिम्मेदार है। उन्होंने पास से गोली चलाई, जो पेड़ू में घुस गई। तीन दिन तक जितेन्द्र बनर्जी का इतना बुरा हाल रहा कि जीने की कोई आशा नहीं थी। इस बारे में मणीन्द्र जी को दस साल की सजा हुई।

मणीन्द्र जी पर जेल में बहुत अत्याचार किए गए कि वे अपने साथियों के नाम बता दें। पर सब व्यर्थ रहा। यहां तक कि उनको जेल के अधिकारियों के साथ अनेकों लड़ाई अकेले ही लड़नी पड़ीं। आपको जेल में "बी" श्रेणी मिली हुई थी परन्तु "सी" श्रेणी वालों के लिए आमरण अनशन कर दिया। उनका कहना था कि राजनैतिक कैदियों के लिए कोई क्लास (श्रेणी) नहीं होनी चाहिए।

इस आमरण अनशन के फलस्वरूप आपका स्वास्थ्य बिगड़ गया और अन्त में आपकी इसी अनशन से मृत्यु हो गई। कहा जाता है कि मणीन्द्र की मृत्यु के समय श्री मन्मथनाथ गुप्त जी वहीं थे। उन्होंने मरने से दो मिनट पहले अपनी माता जी से मिलने की इच्छा प्रकट की। परन्तु जितनी देर में इनकी माता जी को बुलाया गया इतने में तो वे अंग्रेजी सरकार के बन्धनों से मुक्त होकर न जाने कितनी दूर चले गये थे।

मणीन्द्र जो मरे परन्तु इस प्रकार मरे कि बहुत दिनों तक उनकी मृत्यु देशवासियों से अज्ञात रही।

श्री राजेन्द्रनाथ 'लहरी'

काकोरी षड्यन्त्र के अभियोग में फांसी पाए हुए चार व्यक्तियों में राजेन्द्र बाबू भी एक थे। सम्भवतः सन १९२२ या १९२३ ई० में आप क्रांतिकारी आन्दोलन में सम्मिलित हुए थे।

इनका जन्म सन् १९०१ ई० में पवना जिले के भटेंगा ग्राम में हुआ था। इनके पिता का नाम क्षितिमोहन लाहिड़ी था जो बड़े ही उदार विचार के थे। बंग-भंग के समय उन्होंने उसमें काफी भाग लिया। राजेन्द्र की प्रारम्भिक शिक्षा गांव में हुई। सन् १९०९ में आप बनारस आये और हिन्दू यूनिवर्सिटी की एण्ट्रेन्स परीक्षा पास करके कालिज में पढ़ने लगे और एम० ए० की परीक्षा पास की। इन्हें

अपनी मातृभाषा से भी बड़ा प्रेम था। आपने माता जी की स्मृति में एक पुस्तकालय खोल रखा था। आप एक "अग्रदूत" नामक पत्र के संचालकों में से थे। आपका जीवन एक क्रियाशीलता का जीवन था। बाल्यकाल में ही राजेन्द्र ने अपना जीवन देशसेवा में अर्पित करने की प्रतिज्ञा की थी।

आप कभी भी अपने काम का ढिंढोरा नहीं पीटते थे। आप कुछ दिन बाद क्रान्तिकारी दल की प्रान्तीय कौंसिल के सदस्य बन गए। राजेन्द्र बाबू को हमेशा नेता बनने की धुन सवार रहती थी।

जिस समय काकोरी में डाका पड़ा उसी समय आप दक्षिश्वरणे बम केस के सम्बन्ध में गिरफ्तार किये गए और आपको खुफिया पुलिस ने काकोरी केस में भी शामिल कर लिया। आप से जवाब तलब किये गए। मुकदमा कायम हुआ और अन्त में कालापानी और फांसी की सजा दी गई।

इसके बाद वीर राजेन्द्र लखनऊ से बाराबंकी लाया गया और ११ अक्तूबर सन् १९२७ का दिन फांसी के लिए तय हुआ। कुछ दिन आप बाराबंकी जेल में रखे गए और बाद में फिर गोंडा जेल भेज दिए गए। राजेन्द्रनाथ जी जेल में खूब प्रसन्न रहते हुए गाना गाया करते थे। वे क्षण भर के लिए भी कभी चिन्तित नहीं हुए।

अन्त में १७ दिसम्बर १९२७ ई० को गोंडा जेल में फांसी दे दी गई। राजेन्द्र बाबू का बलिदान अभूतपूर्व था। २६ वर्ष की आयु में वह वीर राजेन्द्रनाथ लाहिड़ी अपनी सुनहरी झलक दिखाकर इस लोक से सदा के लिए चल दिए।

वीरशिरोमणि बटुकेश्वर दत्त

(ब्र० महादेव)

आपका जन्म सन् १९०८ में कानपुर में हुआ था। वैसे आपके कुटुम्बी बंगाली थे। बाल्यकाल से ही आप अच्छे खिलाड़ी भी थे। आप पढ़ लिखकर क्रांतिकारी कार्यों में भाग लेने के लिए रंगमंच पर आये। १९२४ ई० में आपका वीर भगतसिंह से परिचय हुआ। एक बार गङ्गा में बाढ़ आ जाने से जनता को बड़ी हानि हो रही थी, उस समय आपने और भगतसिंह ने पीड़ितजनों की खूब सेवा की। इस प्रकार आप दोनों का सर्वत्र सम्मान होने लगा।

१९२४ में केन्द्रीय विधान सभा में औद्योगिक विवाद का बिल पास हो रहा था। इस बिल से मजदूरों की हानि थी। एच० एस० आर० ए० के सदस्यों ने इसका विरोध करने के लिए एक योजना तैयार की कि जब यह बिल पास हो उस समय इसका विरोध बम फेंककर किया जाये और साथ ही यह भी महत्त्वपूर्ण निश्चय किया कि जो सदस्य इस कार्य के लिए नियुक्त किये जावेंगे, वे यहां से भागेंगे नहीं, बल्कि स्वेच्छा से गिरफ्तार होकर अदालत में बयान द्वारा यह स्पष्ट करेंगे कि यह कार्य किस लक्ष्य को लेकर किया। यह निश्चय कोई साधारण नहीं था। क्योंकि इसका अर्थ यह था कि जान-बूझ कर मृत्यु का आलिंगन। इसमें मनोवैज्ञानिकों का कथन है कि अकस्मात् जोश में आकर प्राणोत्सर्ग करना सरल है किन्तु जान-बूझ कर और विवेक के साथ जो व्यक्ति बलिदान की वेदी पर जाने का साहस करता है सच्चा वीर तो वही है।

इस कार्य को करने के लिए भगतसिंह जी के साथ कभी जयदेव कपूर का, कभी राजगुरु शिवराम जी का नाम आया, परन्तु उनके मित्र विजयकुमार और शिवराम जी ने भगतसिंह के जाने का विरोध कर दिया। इधर श्री बटुकेश्वर दत्त को जब बम फेंकने की सूचना मिली तो समिति को आपने उपालम्भ दिया कि दल के साथ मेरा पुराना सम्बन्ध होते हुए भी मुझे आपने इस प्रकार कार्य करने का सुअवसर नहीं दिया और खिन्न होकर विरोध करते हुए यह कहा कि शीघ्र ही किसी काण्ड में सक्रिय कार्य करने का अवसर नहीं दिया तो हम संगठन से किसी भी प्रकार का कोई सम्बन्ध न रखेंगे। तब समिति ने आपको तथा विजयकुमार सिन्हा को इस कार्य के लिए नियुक्त किया। इस बैठक में श्री सुखदेव जी न आ सके थे। अतः आपको सूचना पुनः दी। तब वह दूसरी बैठक में उपस्थित हुए। श्री सुखदेव जी व भगतसिंह जी का घनिष्ठ सम्बन्ध था। सुखदेव ने भगतसिंह को एकान्त में बुलाकर कहा कि असेम्बली में बम फेंकने के लिए तुम्हें जाना था दूसरे आदमियों को भेजने का निश्चय क्यों किया तब आपने उत्तर दिया कि समिति का निर्णय है कि संगठन के लिए मुझे पीछे रहना आवश्यक है। तब सुखदेव ने कड़ा विरोध किया और कहा कि यह सब बकवास है। तुम्हारे व्यक्तिगत मित्र की स्थिति से मैं देख रहा हूं कि तुम अपने पांव पर कुठाराघात कर रहे हो। तुम सदा इस प्रकार बच नहीं सकते। एक दिन आपको भी अदालत के सम्मुख आना पड़ेगा।

इस प्रकार के वचन सुनकर भगतसिंह ने कहा कि मैं बम फेंकने अवश्य जाऊंगा। इस प्रकार भगतसिंह और बटुकेश्वर दत्त का जाना निश्चित हुआ। ८ अप्रैल सन् १९२९ को बिल पास होने के समय आपने भगतसिंह के बम फेंकते ही दूसरा बम फेंका। समस्त भवन धुयें से भर गया। जहां बम गिरे थे वहां बैंच टूट गए, भगदड़ मच गई, सदस्य और दर्शक सब जान बचाकर भागे। उस स्थान पर केवल तीन चार व्यक्ति उपस्थित थे। १. अध्यक्ष विट्ठलभाई पटेल २. मोतीलाल नेहरू ३. पं० मदनमोहन मालवीय तथा जिन्ना। सर शूटर घोषणा करते समय खड़े थे वह वैसे ही खड़े रह गए। वीर भगतसिंह ने सर शूटर पर गोली चलाई किन्तु वह डैस्क के नीचे छुप गया। इसके बाद सिंह और दत्त ने गगनभेदी नारे लगाये 'इन्कलाब जिन्दाबाद', 'साम्राज्यवाद का नाश हो', 'दुनियाँ के मजदूर एक हों'। साथ ही आप दोनों ने लाल रंग के घोषणा-पत्र भी भवन में फेंक दिये। यह पत्र अंग्रेजी में थे। उनमें प्रथम पंक्ति इस प्रकार थी "बहरों को सुनाने के लिए विस्फोट के समान ऊँचे-ऊंचे शब्दों की आवश्यकता है।" इस समय भी यदि आप भागना चाहते तो भाग सकते थे। परन्तु यह कार्य आप के कार्यक्रम के प्रतिकूल था। लगभग आध घण्टे के बाद उन्हें पुलिस पकड़ने के लिए आई। किन्तु उन्हें भी पकड़ने का साहस न हुआ। इस पर आप दोनों वीरों ने गोली से भरी पिस्तौलें दूर फेंक दी और आत्मसमर्पण कर दिया।

इस समय इन नवयुवकों के मुख पर न कोई उत्तेजना थी न भय था। वह एक स्वाभाविक मुस्कराहट के साथ अपने कार्य को सुचारु रूप से कर लेने का सन्तोष प्रकट कर रहे थे। आप दोनों को बन्दी करके कोतवाली में पृथक्-पृथक् कोठरियों में बन्द किया गया। सी० आई० डी० अधिकारी ने आपसे इस षड्यन्त्र के विषय में कुछ पता लगाना चाहा, किन्तु उनको इसमें कोई सफलता न मिली।

इधर पुलिस वर्ग ने इस काण्ड के पीछे षड्यन्त्र का पता लगाने का सिर तोड़ प्रयत्न किया परन्तु कहीं कोई सूत्र न मिल सका। यहाँ तक कि दिल्ली के सभी धोबियों को बुलाया गया कि इनके कपड़े किस ने साफ किये हैं। जितने भी हाथ के प्रेस थे, उनका भी निरीक्षण किया। क्योंकि जो पर्चे बांटे गये थे उनका ज्ञान पुलिस करना चाहती थी कि कहाँ छपे हैं।

इस घटना ने देश भर को हिला दिया। अंग्रेज सरकार की पुलिस घबरा गई। दिल्ली में कलकत्ता से तत्काल विशेष पुलिस बुलाई गई। उस समय दिल्ली में सभी दूसरे प्रान्तों की राजधानियों तक टेलीफोन और तार सरकारी सन्देशों के लिए रिजर्व कर लिए गए। उस समय दिल्लीस्थ स्टेटस्मैन संवाददाता लाला दुर्गादास जी ने बमकाण्ड का समाचार टेलीफोन या तार द्वारा कलकत्ता भेजना चाहा परन्तु समाचार भेजने के सभी साधन सरकारी काम के लिए थे। उस समय लाला जी ने पत्रकार की विशेष सूझ दिखाई। आपने यह समाचार "स्टेट्स्मैन" के लन्दन कार्यालय को भेजा। वहां से यह समाचार वायरलैस द्वारा कलकत्ता कार्यालय में भेजा गया।

जिस समय "ऐसोसियेटेड प्रेस आफ इण्डिया" द्वारा इस घटना का समाचार कलकत्ता के दूसरे पत्रों को मिला उस समय स्टेट्स्मैन का विशेषांक बाजार में बंट रहा था।

जेल में इन लोगों पर कठोरता का बर्ताव प्रारम्भ हो गया। इन दोनों को एक दूसरे से बहुत दूर बिल्कुल तङ्ग और गन्दी कालकोठरियों में बन्द कर दिया गया था और नित्य अधिकारी वर्ग इनके पास जाकर नेताओं के वक्तव्य दिखाकर उनसे कहते कि समस्त देश तुम्हारे कार्यों की निन्दा करता है। इस प्रकार नैतिक साहस भङ्ग करने की चाल चल रहे थे। यही नहीं, दूसरी चाल यह चली कि उन्होंने समाचार पत्रों में बटुकेश्वर दत्त के सरकारी गवाह हो जाने का समाचार दिया। इससे जनता में बेचैनी फैली, भगतसिंह को भी इससे आघात पहुंचा।

परन्तु भगतसिंह ने साहस में लेशमात्र भी परिवर्तन न आने दिया। थोड़े दिन बाद मिथ्या प्रचार का भण्डा फोड़ हुआ। पकड़े जाने के दो सप्ताह बाद दोनों युवकों की शनाख्त कराई गई। इनकी शनाख्त करनेवाले कुछ भारतीय और कुछ अंग्रेज थे। यह कार्यवाही प्रथम श्रेणी के न्यायालय में जनाब अब्दुल समद के सामने हुई।

न्यायालय की नाट्यशाला में

सरकार ने अपनी पूरी तैयारी के पश्चात् सात मई सन् १९२९ को सिंह और दत्त को अदालत में उपस्थित किया। जनता का कोई प्रदर्शन न हो, इस भय से अदालत की कार्यवाही देहली जेल में हुई। मैजिस्ट्रेट मिस्टर सी० एफ० बी० पुल न्यायकर्ता थे।

इन दिनों जेल के भीतर व बाहर पुलिस का कड़ा पहरा था। जेल में केवल अभियुक्तों के सम्बन्धी, पत्रप्रतिनिधि तथा सफाई वकीलों को ही आने की आज्ञा दी जाती थी। जब इन दोनों वीरों को अदालत में लाया गया तब आते ही दोनों ने बड़े जोरों से 'इन्कलाब जिन्दाबाद' 'साम्राज्यवाद का नाश हो' इत्यादि नारे लगाये। इसके पश्चात् अदालत ने बताया कि पुलिस ने दफा ३०७ (हत्या करने का प्रयत्न) और विस्फोटक कानून की धारा ३ लगाई है। अभियोग के साक्षियों के दो दिन तक बयान चलते रहे। तीसरे दिन मैजिस्ट्रेट ने आप दोनों को अपनी सफाई पेश करने के लिए कहा किन्तु आपने बयान देने से इन्कार किया और कहा कि हमें जो कुछ कहना है वह सेशन जज की अदालत में कहेंगे। इस पर मैजिस्ट्रेट ने सेशन जज के सुपर्द कर दिया।

ता० ४ जून १९२९ को देहली जेल में ही सेशन जज की अदालत लगी। इस समय भी पहरा और देख-रेख उसी प्रकार सख्त थी। नीचे की अदालत में जो बयान सरकारी गवाहों ने दिए थे वे बयान यहां दे दिए। इसके पश्चात् सिंह और दत्त ने संयुक्त वक्तव्य दिया। वह बयान अंग्रेजी में दिया था।

जिस किसी ने यह बयान पढ़ा या सुना उसकी आँखें खुल गईं। उनके विषय में जो झूठी या अज्ञानता-वश अफवाहें फैल गई थीं उनका निराकरण हो गया। (यह बयान पृष्ठ ३७७ पर छपा है) उन्होंने कहा—

मानव का अविच्छेद्य अधिकार

विप्लव-क्रांति मनुष्यता का अविच्छेद्य अधिकार है। स्वतन्त्रता का अनिर्दिष्ट जन्मसिद्ध अधिकार है। श्रमजीवी ही समाज का सच्चा धुरीण है। इन आदर्शों और विश्वासों के लिए हम प्रत्येक वेदना को जो हमें दी जायेगी आदर से स्वागतपूर्वक आलिंगन करेंगे। इस विप्लव की बलिवेदि में अर्पित करने के लिए मैं अपनी नौजवानी देने को उद्यत हूं। क्योंकि इतने महान् आदर्श के लिए किसी भी प्रकार का बलिदान अत्यधिक नहीं कहा जा सकता। हम सन्तुष्ट हैं। हम क्रांति के अवतार की प्रतीक्षा कर रहे हैं। क्रान्ति युग युग जीवे।

आप दोनों ने बम फेंकने के अपराध को तो स्वीकार किया था किन्तु हत्या करने के प्रयत्न का जो आरोप लगाया था इसके लिए सफाई की ओर से कुछ गवाहों की आवश्यकता थी। अतः पं० मदन-मोहन मालवीय आदि सुप्रतिष्ठित महानुभावों ने न्यायालय में आकर साक्षी दी कि अभियुक्तों ने सभा भवन में आकर जो आचरण किया था उससे स्पष्ट प्रतीत होता है कि उनका किसी के प्राण लेने का विचार नहीं था। इसके पश्चात् जज महोदय ने अफसरों की सम्मति पूछी तब प्रथम ने कहा कि दोनों अभियुक्त दोनों धाराओं में निर्दोष हैं। दूसरे ने दोनों को हत्या की चेष्टा करने में निर्दोष और विस्फोट में दोषी बताया। तीसरे ने भगतसिंह को दोनों धाराओं में दोषी और दत्त को हत्या सम्बन्धी धारा में निर्दोषी बताया। सेशन जज ने चौथे अफसर की सम्मति प्रकट करते हुए ता० १२ जून १९२९ को दत्त और सिंह को दोनों धाराओं का अपराधी घोषित करते हुए आजन्म कालापानी की सजा सुनाई।

सजा सुनते ही दोनों वीरों ने क्रांतिकारी गगन भेदी नारों से इसका स्वागत किया। आप दोनों को आजीवन कारावास की सजा देकर भगतसिंह को पञ्जाब की मियांवाली जेल में और बटुकेश्वर दत्त को लाहौर की सैन्ट्रल जेल में भेज दिया। वहां जेलों में आपके साथ बिल्कुल साधारण कैदियों जैसा निकृष्ट व्यवहार किया तब आप दोनों ने इसके विरुद्ध आवाज उठाई। परन्तु इस नौकरशाही जमाने में कौन सुनता। अन्त में कोई चारा न देखकर १५ जून से अनशन प्रारम्भ कर दिया। अब दोनों की हालत दिन प्रतिदिन खराब होने लगी। इधर जनता में खलबली मच गई।

पंजाब एवं बंगाल में आपके प्रति सहानुभूति प्रदर्शित करने के लिए ३० जून को सिंह और दत्त का दिवस मनाया। इधर पंजाब की पुलिस ने साण्डर्स हत्याकाण्ड तथा अन्य अनेक क्रांतिकारी कार्यों के अपराध में अनेक नवयुवकों के साथ आप दोनों को भी फंसाकर षड्यन्त्र केस चलाने की तैयारी कर दी।

कुछ दिन व्यतीत हो जाने पर भगतसिंह और बटुकेश्वर दत्त को लाहौर षड्यन्त्र का अभियुक्त कर दिया। बहुत कड़े पहरे में मियांवाली जेल से भगतसिंह को लाहौर लाया गया। इस समय आप दोनों का अनशन चल रहा था। यहां जो अन्य अभियुक्त थे उन्होंने भी अनशन प्रारम्भ कर दिया। परन्तु सरकार अन्धी व बहरी बनी रही। अदालत में आपको अनशन अवस्था में ही ले जाया जाता। १७ ता० को इस मामले की सुनाई हुई। उस दिन भगतसिंह कुछ बोल पड़ा, इस पर अखबार व

सम्बन्धियों का मिलना बन्द हो गया। इसका स्वागत अभियुक्तों ने राष्ट्रीय नारों से किया। जैसे-जैसे दिन व्यतीत हुए अनशनकारियों की दशा चिंताजनक होती गई। अधिकारी वर्ग तो अनशन तोड़ने का प्रयत्न करते ही थे परन्तु बाहर से गणेशशंकर विद्यार्थी, जवाहरलाल नेहरू ने भी अनशन तुड़वाने का प्रयत्न किया। परन्तु प्रयत्न निष्फल हुआ।

अन्त में यतीन्द्रनाथ की अनशन के कारण मृत्यु हो गई। फिर क्या था दूसरे दिन कमेटी बुलाकर जेल के नियमों में सुधार कर दिया। इन अनशनों में भगतसिंह ने ११५ व बटुकेश्वर दत्त ने ७२ दिन का अनशन किया था।

चन्द्रशेखर आजाद, भगवतीचरण, इन्द्रपाल, यशपाल आदि ने आपको जेल से छुड़ाने का प्रयत्न भी किया। किन्तु वह इसमें सफलता प्राप्त न कर सके।

तरुण शहीद राजनारायण मिश्र

(ब्र० सोमवीर)

कामरेड राजनारायण भगतसिंह की पार्टी में चलने वाला तरुण था। वे जब तक जीये देश के लिए और मरे तो देश की मान मर्यादा की रस्सी को चूमकर।

सन् १९०६ में वसंत पंचमी के दिन पं० बलदेवप्रसाद मिश्र के घर शिशु राजनारायण का जन्म हुआ। इनकी माता तुलसी देवी भी बड़ी निर्भीक और बहादुर तथा स्नेह की प्रतिमा थी। राजनारायण की चार साल तक पढ़ाई गांव में हुई और प्राईमरी में फिर भेजा गया। यह बालक प्रारम्भ से वीर था। इसने ४० वानरों की सेना बचपन में ही तैयार कर ली थी। जब सरदार भगतसिंह को फांसी दी गई, उसने शपथ ली, "जब तक देह में प्राण हैं ब्रिटिश हुकूमत की एक-एक ईंट उखाड़ लूंगा। इस उद्देश्य को लेकर इन्होंने मिडल तक परीक्षा तो पास की पर आर्थिक अवस्था कमजोर होने के कारण आगे की पढ़ाई न चली और इन्होंने मुनीमी का काम १६ साल की आयु में सीख लिया। सन् ३० के आन्दोलन में जिले के पुलिस कप्तान ने बड़ा जुल्म किया था। उसी समय इनका हृदय बदल गया और उस समय एक पिस्तौल भी इनके हाथ लगी। इनकी आर्थिक अवस्था अब कमजोर ही होती जा रही थी। १६ जनवरी को राजनारायण को एक स्पीच देने के कारण एक साल की सजा दी। जब राजनारायण जेल से आए तो देखा कि उनके भाई और पिता का शोक से देहान्त होगया है। अब उनके ऊपर और भी बाधा आ खड़ी हुई।

फिर भी १४ अगस्त को राजनारायण आजादी की लगन में मस्त अपने आठ साथियों सहित घर से निकले। इनके साथियों ने मिलजुल कर रेल की पटरियाँ उखाड़ीं। स्टेशनों पर आग लगाई। तारें काटीं और चारों ओर हलचल मचा दी। पुलिस से इनकी मुठभेड़ होगई और तीन आदमी भी मारे गये।

@VaidicPustakalay

इन्सपेक्टर जनरल ने इस वीर का गांव फुकवाना प्रारम्भ कर दिया और १६ मकान नष्ट कर दिए। राजनारायण को गिरफ्तार करने के लिए चार सौ रुपये की घोषणा कर दी। मार-पीट गाली-गलौच की भरमार थी। औरतों के गर्भ से बच्चे गिराए गए। गांव पर फौजी शासन कायम होगया। स्पेशल कोर्ट ने गाँव के दस आदमियों को अड़तीस-अड़तीस साल की सजा दी। कुछ दिन बाद राजनारायण भागकर कानपुर आगये और वहाँ दफा १२६ में गिरफ्तार होगए। दो मास बाद छूटकर बाहर आए। वहाँ से आने पर इन्होंने सरकार विरोधी हड़ताल और जलूस निकलवाये जिसमें इनको ६ मास की कड़ी सजा मिली। फिर यह बम्बई पहुंचे। वहाँ पर ढङ्ग का वातावरण न मिलने के कारण इनको निराश होकर वापिस लौटना पड़ा और साधु होने की सोची। इसी फिराक में हरद्वार और ऋषिकेश आदि में घूमे और घूमते-घूमते मेरठ पहुँचे। वहां पर इन्होंने एक खद्दरधारी को नौकरी का वायदा देने पर अपना परिचय दे दिया। वह स्थान एक खद्दर भण्डार में बताया गया। एक दिन राजनारायणजी उन्हीं महाशय के साथ एक मित्र के यहां जा रहे थे तो देखा कि तीन खद्दरपोश उनका पीछा कर रहे हैं। इन लोगों ने थोड़ी दूर पीछे चलने के बाद राजनारायण पर हमला करके इनको गिरफ्तार कर लिया।

राजनारायण को जेल ले जाकर तरह-तरह की यातनायें दी गईं। तीन दिन तक सोने न दिया गया। पीठ पर बर्फ की सिल्लियाँ बाँधी गईं। गुदा स्थान में मिर्च ठूंसी गई। मार-पीट तो सहज बात थी। इनको बड़ा ही कष्ट दिया गया परन्तु अधिकारी राजनारायण से कुछ भी पता न कर सके।

२७ जून को राजनारायण को फाँसी की सजा सुना दी गई। फांसी की सजा सुनकर इस वीर ने "इन्कलाब" के नारे लगाये। रोती बिलबिलाती भाभी, बहन और अन्य कुटुम्बियों को छोड़कर राजनारायण फांसी की कोठरी में हंसते हुए चले गये। वहां से राजनारायण का तबादला लखनऊ जेल में हो गया। जहाँ पर इनको दो मास बाद फाँसी पर लटका दिया।

बंगाल—

श्री सत्येन्द्रकुमार वसु

श्री सत्येन्द्रकुमार वसु का जन्म बंगाल प्रान्त में हुआ था। मुजफ्फरपुर के हत्याकाण्ड के मामले में अनेक युवक गिरफ्तार किये गये गए और जेल में डाल दिए गए, उनमें श्री सत्येन्द्रकुमार वसु भी गिरफ्तार कर लिए गये और जेल में डाल दिए गए थे।

एक दिन अचानक इनको मालूम हुआ कि नरेन्द्र गोस्वामी मुखबिर बन गया है और वह समिति का भाण्डा-फोड़ करेगा। इसलिए उस विश्वासघातक को दण्ड देने के लिए आपको यह काम सौंपा गया। आपको जेल में कहीं से पिस्तौल मिला था, अतः आप ज्वर का बहाना बनाकर अस्पताल में चले गये और वहाँ आपसे मिलने के लिए अपने दो रक्षकों के साथ नरेन्द्र आया। आपने उस पर गोली चला दी। समाचार प्राप्त होने पर कन्हाईलाल दत्त भी पेट का बहाना बनाकर वहां पहुंच गया

ग्रौर इन दोनों ने मिलकर नरेन्द्र का काम तमाम कर दिया। अन्त में इन पर हत्या केस का चलाया ग्रौर फाँसी की सजा सुनाई गई।

ग्राप बड़े मस्त थे। फांसो के समय तक मस्ती में ग्रापका काफी भार बढ़ गया था ग्रौर हँसते-हसते आप फाँसी के दिन अपने ग्राप ही फाँसी का फन्दा डालकर झूल गये। सत्येन्द्र और कन्हाईलाल दत्त को एक ही दिन फाँसी हुई।

श्री गोविन्दसिंह जी

श्री गोविन्दसिंह जी का जन्म बिहार प्रान्त में हुआ था। गोविन्दसिंह जी बिहार के उन कर्मचारियों में से हैं जिन्होंने बिहार का मस्तक ऊंचा किया है। जब १९४२ में राज्यक्रांति भारत के समस्त शहरों में फैली हुई थी तो बिहार भी उससे कैसे बच सकता था। गोविन्दसिंह भी राज्यक्राँति की ज्वाला में कूद पड़े और स्वयंसेवकों का दल इकट्ठा करके जङ्गलों में रहने लगे और ग्रनेक यातनाओं को सहन करते हुए भी स्वतन्त्रता संग्राम का प्रबल रूप स्थापित रखा ग्रौर अपने साथियों को सदा महाराणा प्रताप की याद दिलाता रहा कि चाहे जंगलों में घास की रोटियां खाकर जीवन बिताना पड़े, पर भारत की स्वतन्त्रता को तो प्राणों से भी प्राप्त करना ही है।

गोविन्दसिंह ग्रनुशासन का बड़ा हामी था। उसका ग्रादेश था कि यदि कोई साथी अनुशासन भङ्ग करेगा तो उसे मृत्युदण्ड दिया जावेगा। ब्रिटिश साम्राज्य ने उन वीरों को पकड़ने के बाद काफी यातनायें दीं परन्तु यह बराबर अडिग ही रहे। फाँसी की सजा सुनने के बाद तो इस वीर का वजन बहुत बढ़ गया। ज्यों-ज्यों फाँसी के दिन समीप ग्राये त्यों-त्यों गोविन्दसिंह प्रफुल्लित मन से फाँसी के तख्ते की बाट उत्सुकता से देखने लगा। हंसते-हंसते फाँसी पर चढ़कर ग्रपनी मातृभूमि की बलिवेदि पर अपने को उत्सर्ग कर गोविन्दसिंह ने भावी पीढ़ी को देश के लिए मरने का ग्रमर पाठ पढ़ाया।

हिजली काण्ड के शहीद—

श्री सन्तोषकुमार मित्र और तारकेश्वर सेन

हिजली काण्ड ग्रंग्रेजी सरकार के पाशविक तथा पैशाचिक कृत्यों का एक जीता जागता नमूना है।

क्रिमिनल ला एमेण्डमेंट एक्ट में सरकार ने निरपराध मनुष्यों को जेलों में डाल दिया था जिनकी संख्या कई सौ थी।

एक दिन रात का समय था, लगभग दस बजे हिजली जेल में अचानक खतरे की घण्टी बजी, तो दर्जनों सशस्त्र सिपाहियों ने नजरबन्दियों की बारकों को घेर लिया तथा वैसे ही ग्रन्धा-धुन्ध कैदियों पर गोली चलानी आरम्भ कर दी। जिसके कारण ग्रनेक वीर बुरी तरह से घायल होगये और जिसके जिस ग्रङ्ग पर गोली लग जाती थी वही बेकार हो जाता था, नजरबन्दियों को यह घटना बिल्कुल भी समझ में न ग्रा रही थी कि यह हुआ क्या और क्यों हो रहा है? श्री तारकेश्वर सेन जी

ने यह मामला जानने के लिए ज्यों ही बरामदे में पैर रखा त्यों ही उनके माथे में गोली लगी और वीरगति को प्राप्त होगए। आप गांव गौलिया (बारीसाल) के रहने वाले थे।

ठीक इसी प्रकार की गति श्री सन्तोषकुमार मित्र की हुई, इनके पेट में दो गोलियां लगीं जिसके कारण इनका प्राणान्त होगया।

जेल के कर्मचारियों ने सारा दोष निहत्थे कैदियों पर लगा दिया। श्री सुभाषचन्द्र जी ने इस काण्ड की जाँच करने के लिए बहुत प्रयत्न किया, परन्तु उन्हें जेल के अन्दर न जाने दिया। श्री सन्तोषकुमार मित्र कलकत्ता के रहने वाले थे, जब इनका शव इनके घर पहुंचा तो बड़ी भयंकर दशा थी, जिसको देखकर कलेजा काँप उठता था, इनका जलूस लोगों ने बड़ी शान से निकाला जिसमें लाखों नर-नारियों ने भाग लिया। अन्त में इनका अन्तिम संस्कार केवड़ा तला घाट पर कर दिया गया।

कैप्टेन कैमरून के हत्याकाण्ड के शहीद—

निर्मलचन्द्रसेन तथा अपूर्वसेन उर्फ भोला

सन् १९३० में होने वाले चटगांव शस्त्रागार काण्ड ने बङ्गाल की पुलिस को बहुत चौकन्ना कर दिया था, उन्हें जहाँ भी विप्लववादियों का थोड़ा सा भी सुराग मिल जाता था, वहीं पुलिस अपने पूरे दल-बल के साथ पहुंच जाती थी।

१३ जून १९३२ की बात है कि पुलिस को किसी भेदिए द्वारा एक सूचना मिली कि—जलघाट गाँव में नवीन चक्रवर्ती के घर में कुछ केसों के फरार ठहरे हुए हैं तो कैप्टेन कैमरून ने कुछ सिपाहियों को साथ लेकर सायंकाल के समय स्वर्गीय चक्रवर्ती के मकान को घेर लिया। जिसमें उनकी विधवा पत्नी श्रीमती सावित्री देवी, उनका एक पुत्र रामकृष्ण तथा उनकी लड़की स्नेहलता थी।

विप्लवी लोग वास्तव में उस मकान की छत पर थे, तो पुलिस की तीखी नजरों से न बच सके और कैप्टेन कैमरून ने एक हवलदार को सीढ़ी द्वारा ऊपर चढ़ने का आदेश दिया और आप भी साथ ही पीछे-पीछे चढ़ने लगा तो क्राँतिकारियों ने ऊपर से धक्का दे दिया। जिसके कारण वे दोनों नीचे गिर पड़े और विप्लववादियों ने उन पर गोली चला दी। जिससे कैप्टेन कैमरून तत्काल परलोक सिधार गए। फिर इन वीरों ने जान बचाकर भागने का प्रयत्न किया। भागते-भागते ये सिपाहियों की गोलियों के शिकार बन गए और अन्त में वीरगति को प्राप्त हो गए। इनके दो साथी किसी तरह पुलिस की आंखों में धूल झोंकर भाग गये।

इस मामले में चक्रवर्ती जी के परिवार की भी चार-चार साल की सजा हुई।

मिदनापुर मजिस्ट्रेट हत्याकाण्ड के शहीद—

प्रद्योतकुमार भट्टाचार्य

मिदनापुर जिले में डिस्ट्रिक्ट बोर्ड के कागजों की देखभाल करने वाले जिला मजिस्ट्रेट आर० डगलस पर अचानक गोली चलाने वाले दो नवयुवकों को आर० डगलस ने हत्या कर दी। सब डिविजनल आफिसर मि० जे० जार्ज उस समय दोनों का पीछा कर रहे थे, परन्तु जिसमें एक भाग निकला तथा दूसरा किसी झाड़ी में उलझ कर गिर पड़ा तथा गिरफ्तार हो गया। गिरनेवाला

भट्टाचार्य हो था, गिरफ्तार करने पर इनकी तलाशी ली गई तो इनके पास एक रिवाल्वर तथा एक कागज का पर्चा पाया, जिसमें अंग्रेजी सरकार तथा भारतीयों के लिए यह सन्देश लिखा था।

"यह हिजली जेल में होने वाले दमन का बदला है। इन लोगों की मौत से इङ्गलैंड को सम्भल जाना चाहिए तथा हमारे होने वाले बलिदानों से भारत को अपनी बन्द आंखें खोलनी चाहियें"—
वन्दे मातरम्

अन्त में श्री प्रद्योतकुमार को अदालत की तरफ से फांसी की सजा हुई।

ऐसे अमर शहीदों के अमर सन्देशों का प्रभाव हमारे सामने है। इन सब की शहादत व्यर्थ नहीं गई।

पटना सेक्रेटेरियट के छः शहीद

८ अगस्त १९४२ ई० को "अंग्रेजो भारत छोड़ो" के प्रस्ताव का समाचार पाकर ११ अगस्त को पटना में एक बड़ा भारी जलूस निकला जिसने शहर तथा स्कूल, कालिज आदियों को बन्द कराने की कोशिश की थी। इन्कलाब जिन्दाबाद तथा जयघोष के नारों से सारा शहर गूञ्ज उठा। जलूस के साथ स्थान-स्थान पर लाठी चार्ज हो रहा था, परन्तु निहत्थी और अहिंसा के रंग में रंगी हुई २५-३० हजार जनता आजादी की चाह में उमड़ी जा रही थी जिसमें सबसे आगे विद्यार्थी युवक आजादी की सुरा पीये हुए पागलों की तरह आजादी के चाव में चले जा रहे थे। परन्तु ब्रिटिश सरकार ने इस निरपराध जनता के साथ खून की होली खेलने के लिए शहर के बाहर फाटक पर रोक लिया तथा इस आजादी की चाह वाली जनता पर गोलियों की बौछार कर दी तथा अनेकों को मृत्यु के घाट उतार दिया तथा अनेकों को घायल कर दिया।

वाह री पशुओं से भी बदतर, निर्लज्ज, कमीनी, गंदी सरकार तेरी करतूतें।

इस काण्ड में शहीद होने वाले निम्न वीर हैं। जिनकी शहादत के खून से इस कमीनी अंग्रेज सरकार ने अपने हाथ रंगे।

[१] श्री राजेन्द्रप्रसाद जी

आप गर्दनी बाग हाई स्कूल के विद्यार्थी थे, धीराचक्र गांव आपकी जन्मभूमि थी तथा आपके पूज्य पिता जी का नाम शिवनारायणसिंह था।

[२] श्री तारापद चौधरी

यह दस वर्ष की आयु का कोमलाङ्ग नन्हा सा बच्चा था। यह अबोध बालक जिसके कोमल शरीर में एक नन्हीं सी पंखुड़ी भी दुःखदाई हो सकती थी। परन्तु हा कोमलांग भाई तूने आजादी की उपासना में गोली खाई और अपनी छाती को गोलियों की बौछार में खोल दिया तथा अपनी तपस्या पूर्ण की। देश को आपकी इस शहादत पर गर्व है।

[३] श्री सतीश झा

आपका जन्म बटापुर गाँव जिला भागलपुर में एक ब्राह्मण परिवार में हुआ था। आपके पूज्य पिता जी का नाम श्री मथुराप्रसाद जी था, आप पटना कालिज के विद्यार्थी थे। आपके अन्तिम शब्द जो शहादत के समय उद्‌गार बनकर निकले थे वे इस प्रकार थे—

"ब्रिटिश साम्राज्य का अन्त आ गया है तथा स्वतन्त्रता का सूर्योदय हो चुका है।"

[४] उमाकान्तसिंह जी

आप एक राजपूत वंश के १५ वर्षीय उन वीररत्नों में से थे, जिन्होंने आजादी के लिए अपने प्राणों की बलि चढ़ा दी। आप देश-विदेश की पिछली राज्यक्रांतियों के पढ़ने का बहुत शौक रखते थे।

[५] श्री जगतपतिप्रसाद जी

आप बी० एन० कालिज के विद्यार्थी थे। देश की आजादी की लड़ाई में आपका कार्य सराहनीय था। पटना के प्रमुख वकील सतयुगशरण के भाई थे।

[६] श्री रामगोविन्द जी

आप मैट्रिक के विद्यार्थी तथा अपने माता पिता की एकमात्र सन्तान थे और आयु में १६ वर्ष के थे। वाह रे वीर माता के जाये, तेरे ही खून से आज यह भारत माता आजाद है।

[७] श्री रामानन्द जी

आपका जन्म फतहा नामक गाँव में हुआ था और आप मैट्रिक के विद्यार्थी थे। स्वातन्त्र्य आन्दोलन में नया प्राण डालना आपकी एक विशेषता थी। आपकी आयु १८ वर्ष की थी। आपकी मृत्यु का अथाह दुःख न सहन करने के कारण आपकी पत्नी ने भी प्राण त्याग दिए।

बंगाल की वीरांगनाओं के बलिदान

(ब्र० दयानन्द)

(१) श्रीमती लीलावती नाग एम० ए०

श्रीमती लीलावती नाग एम० ए० पेंशनयाफ्ता डेपुटी मैजिस्ट्रेट राय बहादुर श्रीचन्द नाग की लड़की है। छात्र जीवन में हरेक परीक्षा को इन्होंने नामवरों से पास किया था। यह अंग्रेजी साहित्य से एम० ए० हैं। ढाका के कमरून्निसा वालिका विद्यालय की स्थापना इन्होंने की थी। दो वर्ष तक यह यहां की अवैतनिक प्रधानाध्यापिका रही। उस समय इसका नाम दीपाली विद्यालय था। इन्होंने दीपाली संघ नाम से एक नारी-संस्था की स्थापना की, जिसका उद्देश्य नारियों की सब प्रकार की उन्नति करना था। गांव-गाँव घूमकर इन्होंने लड़कियों के विद्यालय भी खोले।

दीपाली विद्यालय से सम्बन्ध टूट जाने पर इन्होने लड़कियों का एक हाई स्कूल स्थापित किया, जिस का नाम नारी शिक्षा मन्दिर रखा। इसी युग में इन्होने "जय श्री" नाम की एक मासिक पत्रिका निकाली। १९३१ ई० के २० दिसम्बर को क्रिमिनल ला अमेण्डमेंट एक्ट के अनुसार गिरफ्तार हुई, लेकिन इस आर्य वीरांगना ने अपनी गिरफ्तारी का कोई दुःख अनुभव नहीं किया। आर्य वीरांगना जो ठहरी। अन्त में सात साल कड़ी जेल-यातना सहन कर १९३८ ई० में जेल से रिहाई हुई (छोड़ी गई)।

(२) श्रीमती रेणुका सेन एम० ए०

श्रीमती लीलावती नाग एम० ए० जिसका जिक्र मैं पहले कर चुका हूं। उन्होंने जब ढाका में कमरून्निसा बालिका-विद्यालय खोला तब श्रीमती रेणुका सेन वहीं छात्रा थी। इन्होंने इसी विद्यालय से बी० ए० की परीक्षा पास की तथा कलकत्ता जाकर वहाँ से अर्थ शास्त्र में एम० ए० पास की। १९३० के १७ सितम्बर को यह डलहौजी स्क्वायर बमकाण्ड के सम्बन्ध में पकड़ी गई। एक महीने तक लाल बाजार (Lock-up) में तथा प्रेसीडेन्सी जेल में रहने के बाद यह छूट गई। इसी कारण यह वीरांगना बेथून कालेज से निकाली गई थी। १९३१ में २० दिसम्बर को यह भी लीलावती नाग एम० ए० के साथ पकड़ी गई और सात साल जेलयात्रा के बाद १९३८ में छोड़ी गई।

(३) श्रीमती लीलावती बी० ए०

जब यह वीर माता आशुतोष कालेज में बी० ए० में पढ़ रही थी उस समय ग्रेंडले बैंक को धोखा देने के सन्देह में गिरफ्तार की गई किन्तु शीघ्र ही छूट गई। यह महाराष्ट्र की रहने वाली हैं।

(४) श्रीमती इन्दुमती सिंह

श्रीमती इन्दुमती सिंह चटगाँव के रहनेवाले श्री गोपालसिंह की लड़की हैं। १९२९ के १४ दिसम्बर को गिरफ्तारी हुई थी और छः साल जेल काटकर १९३५ में छूट गई।

(५) श्रीमती अमिता सेन

श्रीमती अमिता सेन १९३४ ई० में अगस्त के महीने में बंगाल आर्डिनेन्स में पकड़ी गई तथा १९२९ में जेल से निकाल कर नेलीसेन गुप्त के मकान पर नजरबन्द कर दी गई। इसके पश्चात् इस वीरांगना को हिजली भेज दिया गया। अन्त में चार साल की जेल-यात्रा के बाद १९३८ में छूटी।

(६) श्रीमती कल्याणीदेवी एम० ए०

श्रीमती कल्याणीदेवी १९३८ के सत्याग्रह के (आन्दोलन के) सम्बन्ध में ८ महीने तक जेल में रही। १९३३ में उनके बालीगंज वाले मकान से एक तमंचा मिला, जिससे वे अपने होस्टल में ही गिरफ्तार कर ली गई किन्तु प्रमाण न मिलने से छोड़ दी गई फिर तुरन्त ही बङ्गाल आर्डिनेन्स में ले ली गई। प्रेसिडेन्सी, हिजली तथा अन्य जेलों में वर्षों रहने के पश्चात् अभी कुछ दिन पूर्व छूटी हैं। इनके अतिरिक्त अन्य अनेक महिलाओं ने भारत की स्वतन्त्रता की बलिवेदि पर अपना सर्वस्व न्यौछावर किया है किन्तु उनका इतिवृत्त हमें पूर्ण रूप में नहीं मिल सका है।

@VaidicPustakalay

आसाम की देवी—

कनकलता का बलिदान

कनकलतादेवी का जन्म सन् १९२९ ई० में आसाम प्रान्त में हुआ था। यह वीरांगना सन् १९४२ की अगस्त क्रांति में थाने पर झण्डा फहराने के प्रयत्न में शहीद हुई।

आयु केवल तेरह साल की थी किन्तु जलूस का नेतृत्व आप के ही जिम्मे रहा। जलूस में झण्डा हाथ में लेकर आप सब से आगे थीं। जब जलूस गोहपुर थाने पहुंचा तो पुलिस के लोगों ने रोका।

कनकलता ने सहज भाव से कहा "हमें तो झण्डा लगाना है।" पुलिस ने बन्दूकें तानकर डराया। किन्तु बालिका आगे और जन-समूह उसके पीछे-पीछे बढ़ा। इतने में एक गोली आई और कनकलता की छाती में लगी। गोली के लगते ही कनकलतादेवी खून से लथपथ होकर गिर पड़ी। गिरते हुए उसने कहा—भाइयो आगे बढ़ो। मुकन्द नामक युवक ने झण्डा हाथ में ले लिया। उसको भी गोली लगी और गिर पड़ा। पुलिस वाले घबरा गये कि यह तो सब वीर हैं। मर जायेंगे पर पीछे नहीं हटेंगे। यह सोचकर भाग गये और झण्डा फहर जाने दिया।

महारानी जिन्दा का बलिदान

(ब्र० दयानन्द)

भारतीय पराधीनता के रक्तरंजित इतिहास में वीर नारियों की कमी नहीं है। उन्हीं वीर नारियों में से पंजाब के स्वर्गीय महाराजा रणजीतसिंह की रानी जिन्दा भी एक वैसी ही वीरांगना थी जो शासन की पूरी योग्यता और क्षमता रखती थी। पर क्रूर अंग्रेज अधिकारियों की स्वेच्छाचारिता के कारण महारानी जिन्दा को जो-जो कष्ट सहन करने पड़े हैं वह अवर्णनीय हैं।

सन् १८५६ ई० में अंग्रेजों का राज्य विस्तार समग्र भारत में हो गया था। बचा था केवल एक पंजाब और अब इस समृद्धिशाली प्रान्त को हड़पने का षड्यन्त्र अंग्रेज लोग कर रहे थे। एक तरफ रेल और तारों द्वारा एक प्रान्त दूसरे प्रान्त से जोड़े गए। दूसरी ओर ईस्ट इण्डिया कम्पनी द्वारा एक-एक देशी राज्य हड़प किया जा रहा था। लार्ड डलहौजी के शासनकाल में पंजाब, अयोध्या आदि स्वाधीन राज्यों पर भी अंग्रेजों का झण्डा फहराया गया। अंग्रेजों की चतुराई तथा सिख सेनापतियों के विश्वासघात से सगोब्राहन की पहली लड़ाई सिख हार चुके थे। इस लड़ाई के बाद भी सिख राज्यों की स्वाधीनता का नाश नहीं हुआ था। पर महाराजा रणजीतसिंह की मृत्यु के पश्चात् उनके विश्ववासघाती मन्त्री अंग्रेजों से मिल गये। महाराजा रणजीतसिंह की मृत्यु पर खजाने में बारह करोड़ रुपये थे। परन्तु सिख सरदारों की फिजूलखर्ची और नीचता के कारण खजाने में केवल आधा करोड़ रुपये रह गये थे। वह आधा करोड़ भी लार्ड हार्डिंग ने ले लिए और एक करोड़ के बदले काश्मीर

लेना चाहा। किन्तु महाराजा रणजीतसिंह के प्रियपात्र जम्मू के शासनकर्त्ता राजा गुलाबसिंह ने हार्डिंग को एक करोड़ रुपये देकर काश्मीर खरीद लिया। इस प्रकार से महाराजा रणजीतसिंह के राज्य का पतन होना प्रारम्भ हो गया।

महाराजा रणजीतसिंह की मृत्यु के उपरान्त महारानी जिन्दा के हाथ में बागडोर थी। महारानी जिन्दा यद्यपि अबला थी तथापि शासनकला में निपुण थी। लेकिन महारानी को शक था कि वीर-केसरी रणजीतसिंह का राज्य अंग्रेजों के हाथ में जाने वाला ही है। क्योंकि उन्हीं का बेटा दलीपसिंह अंग्रेजों के हाथों में कठपुतली हो रहा था।

अंग्रेजों ने महारानी की तेजस्विता नष्ट करने का निश्चय कर लिया तथा इसी सन्देह के आधार पर अंग्रेजी रेजिमैण्ट ने बिना किसी न्याय और विचार के महारानी को कैद कर लिया। उसी का भाई उसकी कैद का हुक्म लेकर महल में आया। महारानी ने इस अपमानसूचक दण्ड आज्ञा को शिरोधार्य किया। महाराजा रणजीतसिंह की वीरपत्नी १९ अगस्त को मामूली कैदी की तरह शेखपुर ग्राम में कैद की गई। कैद का कारण बताया कि रानी जिन्दा गवर्नमैंट के विरुद्ध षड्यन्त्र रच रही थी तथा साथ ही सर हैनरी को मरवाने का प्रयत्न कर रही थी।

सच तो यह है कि अंग्रेजों की गिद्ध-दृष्टि पंजाब पर लग चुकी थी। इस कार्य की सफलता में वह महारानी जिन्दा को बाधा समझते थे। इसलिए उन्होंने रानी के पुत्र दलीपसिंह को तो पहले अपनी ओर कर लिया था तथा महारानी के देश निकाले पर दलीपसिंह की मोहर लगा दी। जब वह आज्ञा-पत्र महारानी के पास शेखपुर लाया तो पहले उन्होंने दलीपसिंह के हस्ताक्षर पहचाने और आज्ञा-पत्र को आंख माथे पर लगाकर इस वीर रानी को अपनी प्यारी जन्म-भूमि सदा के लिए त्याग देनी पड़ी। पहले वह शेखपुर से फिरोजपुर लाई गई, तत्पश्चात् एक अंग्रेज आफिसर के पहरे में रखी गई। खूंखार शेर की तरह पंजाब ने अपनी महारानी की दुर्दशा देखी पर उससे कुछ भी न बन पाया। बालक दलीपसिंह अपने बचपन के खेलों में लगा। माता के दुःख निवारण में कुछ न कर सका। अंग्रेजों ने रानी को कारावरुद्ध करने में ऐसे क्रूर चक्रों से काम लिया जिनकी ओर ध्यान देने मात्र से भी घृणा होती है।

महारानी जिन्दा के साथ जो अनुचित व्यवहार किया उससे पंजाब की आत्मा अति दुखित हुई। पंजाब का बच्चा-बच्चा अपने को अपमानित समझने लगा। उस समय सिख सेनापति शेरसिंह ने स्पष्ट शब्दों में कह दिया कि "स्वर्गीय महाराजा रणजीतसिंह की विधवा रानी राजमाता जिन्दा के साथ अंग्रेजों ने कैसी बेईमानी और कृतघ्नता का व्यवहार किया। संधि की शर्तों में रानी जिन्दा को कैद करने की कोई बात नहीं। अंग्रेजों ने यह अपमान और अत्याचार किया।" काबुल के अमीर दोस्त मुहम्मद खां को भी अंग्रेजों के द्वारा महारानी जिन्दा को कैद किया जाना बहुत बुरा मालूम हुआ। उन्होंने कहा इस से सिखों में आग भड़क उठेगी।

खैर अंग्रेजों ने किसी टीका-टिप्पणी की जरा भी परवाह न की। नाबालिग बच्चे दलीपसिंह का ट्रस्टी बनकर अंग्रेजों ने पंजाब पर दखल किया। जब पंजाब में दूसरी बार लड़ाई छिड़ी तो बड़े लार्ड डलहौजी ने बेरकपुर में भाषण करते हुये कहा कि मैं शान्ति चाहता हूं, मैं शान्ति का उपासक हूं। पर भारत के शत्रु यदि संग्राम चाहते हैं तो उन्हें वही मिलेगा और भयानक बदले के साथ मिलेगा।

@VaidicPustakalay

पंजाब के ब्रिटिश शासन में आते ही महाराजा दलीपसिंह भी अपने राज्य से बाहर निकाल दिए। फतेहगढ़ में उनके रहने का प्रबन्ध कर दिया गया। उसके कपड़े जो बीसों लाख रुपये के थे ले लिए और दलीपसिंह और उनके रिश्तेदारों के लिए ४-५ लाख वार्षिक पेंशन नियत कर दी। बाद में यह कम होते-होते ८० हजार कर दी गई। गद्दी से उतारने के समय महाराजा दलीपसिंह की आयु ११ वर्ष की थी। गद्दी से उतारने के बाद वे सर जान लाजिन नामक मास्टर के सुपुर्द किये गए। सन् १८५३ में एक ईसाई पादरी ने दलीपसिंह के केश कटवा कर ईसाई बना लिया तथा जबरदस्ती इङ्गलैंड भेज दिया। वे सन् १८५७ में आना चाहते थे पर सरकार ने उन्हें आने न दिया। परन्तु महाराजा दलीपसिंह ने ईसाई धर्म त्यागकर पुन: सिख धर्म अपना लिया था।

महारानी जिन्दा का क्या हुआ जिनके लिए प्रभुभक्त खालसा सेना ने संग्राम किया। लाखों का खून बहा। उसका परिणाम क्या हुआ वे अन्त में अन्धी होकर बेटे को हृदय से लगाने के लिए सात समुद्र पार इङ्गलैंड गई और सन् १८५३ ई० में पंजाब की राजमाता ने एक साधारण स्त्री की तरह अपने प्राणप्रिय पुत्र दलीप की गोद में सिर रखकर असार संसार को त्याग दिया।

पञ्जाबकेसरी महाराजा रणजीतसिंह के परिवार की ऐसी दुर्दशा! हे दैव! तेरी गति अगम्य है।

श्री योगेशचन्द्र चटर्जी

(स्व० रामप्रसाद बिस्मिल)

योगेशचन्द्र चटर्जी पूर्वी बङ्गाल के ढाका जिला के रहने वाले थे। इनके जीवन का प्राय: सभी हिस्सा बंगाल में ही बीता। इस समय इनकी आयु लगभग ३२ साल की है। जिस समय इनकी उम्र सिर्फ १५ वर्ष की थी, तभी से क्रांतिकारी दल के सदस्य हैं। इन्होंने अपने देश की सेवा और सिद्धान्तों की रक्षा के लिए जो कष्ट सहे, जो त्याग किए वे अनोखे हैं। इन्होंने अपने व्यक्तिगत सुख-शौक आदि का कुछ भी ख्याल न करके अपना तन-मन-धन सर्वस्व देश के लिए न्यौछावर कर दिया। अपनी छोटी सी अवस्था में ही इन्होंने प्रशंसनीय मर्दानगी और साहस के साथ जो जो यन्त्रणायें सहीं उन्हें सुनकर रोंगटे खड़े हो जाते हैं और इनके प्रति अनायास ही श्रद्धा उमड़ आती है। १६१६ ई० में पहले पहल ये पुलिस के पंजे में पड़े। उन दिनों बंगाल की अवस्था बड़ी खतरनाक थी। सरकार के छक्के छूट गये थे, आज यहां बम गिरता है तो कल वहां पुलिस का पिस्तौल से सामना किया जाता है। ऐसी भयंकर स्थिति थी कि पुलिस को यह विश्वास हो गया था कि योगेश बाबू भी इस प्रकार के कामों में लिप्त हैं। इसलिए उसने इनसे इस सम्बन्ध में कुछ बातें जानने की चेष्टा की। शुरु में मीठी-मीठी बातों से फिर लालच देकर और फिर धमकी से काम लिया गया। पर इसने साफ-साफ इन्कार कर दिया कि "मैं नही जानता" डर और धमकी का वार फिर हुआ। पर इससे कुछ काम न निकलता देख ब्रिटिश न्याय के नाम पर इनके साथ अनेक अमानुषिक अत्याचार हुए। पुलिस वालों ने इन्हें

मारना तथा हर प्रकार से तंग करना शुरु किया। चांटे मारे, घूंसे और लात मारीं, लिटाकर एक लकड़ी के मोटे डण्डे से पीठ पर मार-मार कर लहूलुहान कर दिया, खाने को एक दो पूरी तथा नाम-मात्र को तरकारी देकर कई दिनों तक उपवास करने को मजबूर किया। स्नान करने तक की मनाही कर दी, पुलिस नैतिक शक्ति को पशु शक्ति के सामने विजित करना चाहती थी। परन्तु योगेश बाबू टस से मस न हुए। सब कुछ सहा पर एक बार मुंह से आह न निकली। न किसी ने उनकी आंख से आंसू ही आते देखा, आखिर तक "मैं कुछ नहीं जानता" वे यही कहते रहे। पुलिस तंग आ गई। मारते-मारते थक गई पर उसे कुछ भी शर्म न मालूम हुई। अन्त में उसने इस वीर नौजवान को गिराने के लिए एक अत्यन्त बीभत्स और अमानुषिक तरीका अख्तियार किया। दो आदमियों से श्री योगेशचन्द्र जी के दोनों हाथ पकड़वा कर उनका वीर्य स्खलन करवाया गया और इसके बाद ही इस अवस्था में उनके सिर पर मैले विष्ठा से भरा हुआ एक बड़ा गमला एक मेहतर के द्वारा पलटवा दिया गया। सिर से लेकर पैर तक उनके बदन का सब हिस्सा मैले से भर गया। शायद उनके होठों के बीच में भी कुछ पहुंच गया। बदबू से हवा तक खराब हो गई। पर इसी अवस्था में उन्हें देर तक रखा गया। बदन धोने के लिए पानी की एक बून्द तक नहीं दिया गया। पुलिस इस प्रकार उनको कमजोर और पतित बनाना चाहती थी। परन्तु योगेश उस वक्त सचमुच योगेश हो गये, पत्थर से अटल रहे और उन्होंने चूं तक नहीं किया। लड़ाई अब खत्म हो गई। एक तरफ बेशुमार आदमी, अपार सम्पत्ति, उचित और अनुचित सभी उपाय और परम शक्तिमान् सरकार थी और दूसरी तरफ एक बिल्कुल अकेला एक निःसहाय नौजवान था, जिसकी मूछों के अभी रेख भी नहीं आये थे। पर इस निमूछिये नौजवान ने अपने नैतिक बल के अमोघ अस्त्र द्वारा परम शक्तिशाली शत्रुओं की पाशविक शक्ति को चारों खाने चित्त कर डाला। कुछ अनहोनी बातें भी हो गईं और सतानेवालों में कइयों ने आकर माफी भी माँगी।

इसके बाद सरकार ने इन्हें १८२८ ई० के तीसरे रेगुलेशन के मुताबिक राज्य-कैदी बनाकर रखा। महायुद्ध की समाप्ति के बाद ये छोड़ दिए गए। इसके बाद भी पुलिस को बराबर यह सन्देह बना रहा कि ये बराबर क्रांति के कामों में भाग लेते हैं। पर वे गिरफ्तार नहीं किये जा सके। इन्हीं दिनों असहयोग आन्दोलन चला और इन्होंने अपने को उसमें डाल दिया और गांव-गांव में रचनात्मक कार्य के लिए काफी दौड़-धूप की। बाद में असहयोग आन्दोलन की शिथिलता के कारण उस आन्दोलन पर से इनका विश्वास उठ गया। दिल्ली की स्पेशल कांग्रेस के समय ये वहीं थे। पुलिस का ख्याल है कि दिल्ली में उस मौके पर विभिन्न प्रान्तों के क्रांतिकारी नेता पधारे थे और उन्होंने एक सभा करके यह तय किया कि क्रांतिकारी आन्दोलन फिर जोरों के साथ चलाया जाये। योगेश बाबू संयुक्त प्रान्त में क्रांतिकारी केन्द्रों की स्थापना के लिए बंगाल की तरफ से नियुक्त किये गये थे और उन्होंने इस प्रान्त में यह आन्दोलन आरम्भ करवाया। १९२४ ई० में युक्त प्रान्त के प्रायः सभी शहरों में 'राय महाशय' के नाम से भ्रमण किया। इधर के लोगों से अपरिचित होने के कारण इस कार्य में इन्हें अनेक कठिनाइयां भी पड़ीं, पर सभी का सामना करते हुए ये अपने कार्य में लगे रहे। शुरु में इन्होंने बनारस और शाहजहांपुर में काम किया। बनारस में उनको कुछ पुराने क्रांतिकारियों से मदद मिली और शाहजहांपुर में श्री रामप्रसाद 'बिस्मिल' से। रामप्रसाद जी सदा इनकी तारीफ करते थे। कुछ दिनों बाद ये सब भार श्री रामप्रसाद जी पर छोड़ बंगाल चले गये। वहाँ बंगाल की

पुलिस बहुत दिनों से उनकी तलाश में हैरान थी। एकाएक एक दिन हावड़ा पुल पर पुलिस के कई उच्च अधिकारियों द्वारा घेरकर गिरफ्तार कर लिए गये। कहते हैं कि उनकी जेब में पाये गये एक पत्र के द्वारा पुलिस को यह पता लगा कि बंगाल से बाहर उत्तर भारत के पचास बड़े-बड़े शहरों में क्रांतिकारी दल काम रहा है। सरकार उस कागज के मिलते ही सम्भवतः घबरा गई और इस घटना के कुछ ही दिनों बाद बंगाल में काला कानून जारी हो गया, जिसके अनुसार बंगाल के पचासों निर्दोष व्यक्ति जेलों में ठूंस दिए गये। श्री योगेशचन्द्र चटर्जी भी आर्डिनेन्स के ही अनुसार नजरबन्द कर लिये गये। बिहार के वर्तमान गवर्नर और बंगाल के तत्कालीन होम मेम्बर ने उक्त पत्र का हवाला बंगाल कौंसिल में दिया था।

शुरू में योगेश बाबू बंगाल के ब्रह्मपुर जेल में रखे गये थे। यहां के काले कानून के कैदियों पर इनका बड़ा प्रभाव देख सरकार ने इन्हें इनके साथी सन्तोषकुमार के साथ हजारी बाग भेज दिया। परिवर्तन के वक्त इन पर जो जुल्म हुए, उसकी निन्दा के लिए बंगाल कौंसिल में बड़ी आंधी उठी और यहां तक कि कौंसिल की कार्यवाही स्थगित करने तक का प्रस्ताव पास हुआ। हजारी बाग से ये नजरबन्द की हालत में काकोरी षड्यन्त्र के मुकद्दमे में लाये गये। सरकारी वकील ने इन्हें इस 'षड्यन्त्र का जनक' बतलाया था। पुलिस इनसे बहुत अधिक इसलिए जलती थी कि इतनी दूर से आकर वह यहां के सीधे-सादे आदमियों को क्यों राजद्रोही बनाता है? सेशन जज ने इन्हें दस साल की सजा दी थी, परन्तु पुलिस ने अपील की और चीफकोर्ट से इन्हें आजन्म कालापानी की सजा दिलवा के ही छोड़ा। इन दिनों ये आगरा सेन्ट्रल जेल में रखे गये।

ये बड़े ही गम्भीर प्रकृति के आदमी हैं। बोलते बहुत कम हैं और प्रायः हां या ना कहकर ही अपनी राय बतला देते हैं। जोर से हंसने की बजाय मन्द मन्द मुस्कराहट से ही वे अपना काम चला लेते हैं। शरीर में दुबले पतले, आंखें बड़ी-बड़ी और चेहरे से बुद्धिमत्ता टपकती है। कोई दोषी व्यक्ति इनकी आंखों से शायद ही अपना दोष छिपा सकता है। बराबर मुसीबतों का सामना करते रहने के कारण इनके चेहरे पर त्याग की एक छाप सी पड़ गई है। ब्रह्मपुर जेल में आर्डिनेन्स के सभी कैदी इनकी बड़ी इज्जत करते थे। उनका उज्ज्वल व्यक्तित्व और त्याग ही इसका मुख्य कारण था। इनमें संगठन शक्ति बहुत जबरदस्त है और अपने सहकारियों को प्रेम से वश में करना खूब जानते हैं। विपत्ति में कभी नहीं घबराते, सब काम नियमपूर्वक करते और जरा भी समय बर्बाद नहीं होने पाता। युक्त प्रान्त में इनके समय के मिनट मिनट का हिसाब रहता था। युक्त प्रान्त के विभिन्न नगरों का इन्होंने कई बार दौरा किया था। कार्य करने की इनकी क्षमता और दक्षता का एक बड़ा सुन्दर उदाहरण 'कुमिल्ला लेकर यूनियन' है। इस कम्पनी में इस समय लोहा आदि का काम होता है। मशीनों के पुर्जे भी काफी तादाद में बनाए जाते हैं। २०० रु० से भी कम पूञ्जी से इन्हीं की देख-रेख में एक टीन के छप्पर के नीचे इसका काम शुरु हुआ था। आजकल इस कम्पनी के व्यवसाय की पूञ्जी लगभग डेढ़ लाख से भी ऊपर तक पहुंच गई है। इस व्यवसाय में जो लाभ होता है उसी में लगा दिया जाता है। सरकारी वकील ने कहा था कि इस कम्पनी का गुप्त उद्देश्य क्रांति के समय राइफल और पिस्तौल बनाना है। योगेश बाबू ने कभी इस कम्पनी से एक पैसा भी नहीं लिया। ये आजन्म ब्रह्म-चारी हैं और आजीवन विवाह नहीं करना चाहते। विचारों में पूरे साम्यवादी हैं। खाने पीने में किसी से किसी प्रकार का परहेज नहीं रखते। कहते हैं मैंने मेहतर के हाथ का खाना तो कितने ही

मर्तबा खाया है। आपके विचार आरम्भ से ही बहुत गर्म हैं। आपने हवालात में १५ रोज और सजा के बाद फतेहगढ़ जेल में ५५ दिनों तक अनशन किया। शरीर से कमजोर होने के कारण ४५ दिनों के अनशन के वक्त मृतप्राय हो गये थे। जेल के कैदी इनकी बड़ी इज्जत करते और इनके लिए हर एक तकलीफ सहने को तैयार रहते। अधिकारियों को यह बहुत खटका, फिर उन्होंने फतेहगढ़ से आगरा सेन्ट्रल जेल में भेज दिया। बड़े अच्छे तैराक होने के साथ ही नाव चलाना भी ये खूब जानते हैं। जेल में हमेशा कबड्डी आदि खेलों में बराबर भाग लेते थे। गाना गाने में ये बड़े निपुण हैं और जिस वक्त मस्त होकर गाना गाने लगते उस समय सुनने वाले विह्वल हो जाते हैं। १९१६ ई० की गिरफ्तारी के वक्त ये कालेज में पढ़ते थे। इन्होंने अन्तर-राष्ट्रीय प्रगति, आयरलैंड का इतिहास, पूर्वी देशों की जागृति आदि का अच्छा अध्ययन किया है।

श्री गोविन्दचरण कर

(स्व० रामप्रसाद बिस्मिल)

गोविन्दचरण कर बङ्गाल प्रान्त के सुदूरपूर्व ढाका जिले के रहने वाले हैं। ये पुराने क्रांतिकारी हैं। सोलह सतरह वर्ष की उम्र में ही पढ़ना छोड़कर ये क्राँतिकारी दल में सम्मिलित होगये। कुछ दिनों बाद पुलिस की दृष्टि इन पर पड़ी और सन् १९१० ई० से ही वह इनके पीछे पड़ गई। ये बड़ी सावधानी से काम करते रहे। अन्त में १९१६ ई० में पुलिस ने इन्हें गिरफ्तार कर ही लिया। पर ये सहज ही गिरफ्तार न हुए। उन दिनों ये पवना में रहते थे, पुलिस ने अचानक इनके मकान को घेर लिया। इन्हें सीधे गिरफ्तार होना पसन्द न आया। प्रश्न जीवन-मरण का था, क्योंकि सामने हथियारबन्द पुलिस खड़ी थी। वह यह खूब समझते थे कि भागने पर गोली से मारे जायेंगे या पकड़े जाने पर फांसी होगी। परन्तु इस बहादुर ने चिन्ता को मार भगाया और अपनी जान हथेली पर लेकर मकान के पीछे के रास्ते से निकल भागा। हाथ में भरा तमंचा था और घोड़े पर अंगुली, मकान के पीछे भी सशस्त्र पुलिस तैनात थी परन्तु पुलिस के दिमाग में यह बात न आई कि जान पर खेलकर कोई ऐसी हिम्मत भी कर सकेगा कि उनकी राइफलों के मुंह के सामने से भाग निकलेगा। इसलिए उनके निकल भागने के कुछ देर बाद तक वह हतबुद्धि सी रह गई। तब तक श्री कर महाशय धान के खेतों से होते कई सौ गज निकल गये। पर शीघ्र ही पुलिस के कई सिपाहियों ने हाथ में बन्दूक लिए उनका पीछा किया। पुलिस ने गोली चलाना भी आरम्भ किया। कर महाशय भी अपने तमंचे से गोलियों से जवाब देने लगे। वे भागते जाते थे, तमंचा बदलते जाते थे, उसमें गोली भरते जाते थे और साथ ही फायर भी करते जाते थे। उनका भागना, पुलिस वालों का पीछा करना और गोलियों का चलना लगातार बहुत देर तक जारी रहा। पुलिस इस आशा पर थी कि इनकी गोलियों के खत्म होते ही गिरफ्तार कर लेंगे, पीछा करती जा रही थी। हुआ भी ऐसा ही। कर बाबू दौड़ते-दौड़ते थक गये। पुलिस की कई गोलियाँ उन को लग चुकी थीं। लगातार खून निकलने से बदन में बहुत कमजोरी आ रही थी और दुर्भाग्यवश वे इस समय ऐसी जगह जा पड़े थे जहां खुला मैदान ज्यादा था फसल

वाला खेत कम। इन सब कारणों से इन्हें विश्वास सा हो गया कि अब और ज्यादा देर तक पुलिस से बचना सम्भव न होगा। इसीलिए वे धान के एक घने खेत में घुसकर बैठ गये और अपनी बची बचाई शारीरिक शक्ति एवं कारतूसों की मदद से अन्त तक लड़ना निश्चित किया। पुलिस ने आड़ में रहकर खेत को घेर लिया, नजदीक जाने की उसकी हिम्मत न पड़ी और अन्दाज से ही उनका लक्ष्य करके वह गोली चलाने लगे। कर बाबू भी गोली चलाते रहे। कई पुलिस वाले घायल भी हुए। आखिर उनकी गोलियां खत्म हो गईं। पुलिस बहुत देर तमञ्चे की आवाज न सुनकर खेत की तरफ बढ़ी और उन्होंने उनको गिरफ्तार कर लिया। उस वक्त वे अर्धमृत और प्रायः बेहोश अवस्था में पाए गए। चलने की शक्ति नहीं थी, बदन से जगह-जगह से खून की धार बह रही थी। पर गिरफ्तारी के वक्त इनके पास हथियार का कोई नामोनिशान भी न था। पूछने पर कि तमञ्चा कहां है, उन्होंने आश्चर्य-चकित होकर कहा—तमञ्चा कैसा? मुझे तो गोली चलाना भी नहीं आता, मैं तो अभी तक आप ही लोगों की गोलियों की बौछार से आच्छादित था। पुलिस वाले ढूंढ़ते-ढूंढ़ते थक गये, पर तमञ्चे का कुछ भी पता न चला! गिरफ्तारी के बाद श्री कर बहुत दिनों तक हिरासत के अस्पताल में रखे गये। अच्छा हो जाने के बाद उन पर 'पवना शूटिंग केस' चला। इस मुकद्दमे में बंगाल में बड़ी खलबली मच गई थी। पुलिस ने इन पर हत्या करने की कोशिश करने की दफा लगवाना चाहा, पर पास में हथियार के न पाये जाने के कारण मुकदमा न जम पाया, इस पर भी इन्हें दस साल काला-पानी की सजा हुई। कालापानी में कई साल रहे। उन दिनों अण्डमान में क्रांतिकारियों की भरमार थी। अधिकारियों के सब अत्याचारों के रहते हुए भी कर महाशय का कहना है कि वहाँ का जीवन बड़ा आदर्श था। वहाँ बड़े-बड़े विद्वान् इकट्ठे थे। सम्पादकों और लेखकों की कोई कमी न थी। देश-पूज्य सावरकर, भाई परमानन्द वगैरह उस वक्त वहीं थे। कहने का मतलब यह कि एक रास्ते पर चलने वाले बहुत से सिद्धान्तवादी मुसीबत के कारण सौभाग्यवश एक स्थान पर एकत्रित हो गये थे। समय की कोई कमी नहीं थी। किताबों के पार्सल बराबर पहुँचते रहते थे। वहाँ एक खासा पुस्तकालय बन गया था। सरकार तो यह समझती थी कि वह अपने शत्रुओं की शक्ति उन्हें वहाँ बन्द करके कुचल रही है। पर वास्तव में ज्यादातर लोग वहाँ अपना भविष्य निर्माण कर रहे थे। कर महाशय ने वहाँ काफी अध्ययन किया। वे अपने जीवन को सदा याद किया करते तथा काकोरी केस के हवालात के समय अण्डमान के राजनैतिक कैदियों के जीवन सम्बन्धी अनेक जानने लायक बातें बड़े ही रोचक ढङ्ग से अपने दूसरे साथियों से कहा करते थे। इनकी इन बातों के सुनने से लोग कभी ऊबते न थे।

अभी पूरा चार साल भी न हो पाया था कि अस्वस्थता के कारण १९२० ई० में ये रिहा कर दिए गये। वहाँ से लौटते ही आपने असहयोग आन्दोलन में भाग लेना शुरू कर दिया। ढाका के गांव-गांव में बहुत प्रचार कार्य किया। ढाका कांग्रेस कमेटी में इनका काफी प्रभाव था। इस जमाने में भी दिन रात सी० आई० डी० इनके पीछे लगी रहती थी। सन् १९१५ ई० में श्री शचीन्द्रनाथ सान्याल और श्री योगेशचन्द्र चटर्जी की गिरफ्तार के बाद संयुक्त-प्रदेश के विप्लव-आन्दोलन को ठीक तरह से चलाये रखने के उद्देश्य से इन्हें बङ्गाल से इधर भेजा गया। संयुक्त प्रान्त के बड़े-बड़े शहरों में घूमकर इन्होंने षड्यन्त्रकारी आन्दोलन का प्रचार भी किया। इस केस में इनकी गिरफ्तारी लखनऊ में हुई। उन दिनों वहां वेष बदलकर अमीनाबाद के पास एक मामूली होटल में रहा करते थे। यहां रहने का पता केवल एक 'देशभक्त' महाशय को मालूम था, जिन्होंने विश्वासघात करके पुलिस को बतला कर

इन्हें गिरफ्तार करवा दिया। यह देशभक्त वही सज्जन हैं जिन्होंने बनारस में श्री कुन्दीलाल को भी गिरफ्तार करवाया था। इनकी गिरफ्तारी के बाद यह भी पता लगा कि उधर बङ्गाल सरकार 'आर्डिनेन्स' के द्वारा इन्हें अपना मेहमान बनाने के लिए अलग परेशान थी। कर जी को सेशन जज ने दस साल की सजा दी थी। परन्तु पुलिस को इससे क्यों सन्तोष होने लगा। उसने औरों के साथ इनकी सजा बढ़ाने के भी अपील की और अपील से इन्हें आजन्म कालापानी की सजा दी गई। काकोरी केस के हवालातियों में श्री कर सबसे अधिक उम्र वाले होते हुए भी अपने को 'लड़ाका' और 'योद्धा' कहने में गौरवान्वित होते थे। पहली बार की गिरफ्तारी के समय पुलिस की गोलियों के तीन-चार चिह्न अब भी इनकी देह में बने हुए हैं।

आप कहते हैं कि यही हमारा तमगा है। आप क्रांति और स्वाधीनता प्राप्ति के विभिन्न पहलुओं पर सदा विचार करते रहते हैं और सदा दूसरे स्वतन्त्र देशों के इतिहास से अपने देश की तुलना कर व्यग्र होते हैं। इन्होंने कितनी रातें इन्हीं बातों के सोचने में बिताई हैं। इनका जीवन लड़कपन से ही त्यागमय और कठोर रहा है। ये अभी तक अविवाहित हैं। इन्होंने पंजाब तथा बम्बई प्रान्त के प्रायः सभी नगरों में भ्रमण किया है। अहमदाबाद के मजदूरों के जीवन का इन्हें अच्छा ज्ञान है। कई प्रकार का उद्योगधन्धा करना भी यह अच्छी प्रकार जानते हैं। मजाकिया तो अव्वल दर्जे के हैं। हवालात में इन लोगों का जमाव होता, ये उसमें बहुत प्रमुख भाग लेते थे। हवालात के समय लखनऊ में १५ दिनों तक और सजा देने के बाद फतेहगढ़ जेल में ४५ दिनों तक इन्होंने अनशन किया था। पहले कुछ दिनों तक ये ढाका हिन्दुसभा के मन्त्री भी रह चुके हैं।

श्री सुरेशचन्द्र भट्टाचार्य

(स्व० श्री रामप्रसाद बिस्मिल)

श्री सुरेशचन्द्र भट्टाचार्य का जन्म बनारस में पहली अगस्त १८९७ ई० को हुआ था। इनके पिता का नाम पं० ईश्वरचन्द्र जी शिरोरत्न था। १६ वर्ष की आयु में इन्होंने बंगाली टोला हाई स्कूल से मैट्रिक पास की और उसके बाद बनारस के सेन्ट्रल हिन्दू कालेज में पढ़ने लगे। इन्हीं दिनों पुलिस वालों की निगाह इन पर पड़ी और १९१४ ई० में पकड़कर ये उरई (जालौन) में चार वर्ष तक नजर-वन्द कर दिए गये।

इस प्रकार इनकी कालेज की पढ़ाई बन्द हो गई। नजरबन्दी से रिहा होने के बाद ये उरई से ही निकलने वाले 'उत्साह' नामक हिन्दी साप्ताहिक पत्र का दो वर्ष तक सम्पादन करते रहे फिर कानपुर के 'वर्तमान' तथा 'प्रताप' के सहकारी सम्पादक रहे। आप जिन दिनों प्रताप में काम कर रहे थे, उन्हीं दिनों काकोरी केस के सम्बन्ध में गिरफ्तार हुए। सेशन जज ने इन्हें सात साल की सख्त कैद की सजा दी थी, पर अपील से यह सजा बढ़ाकर दस वर्ष कर दी गई।

श्री सुरेशचन्द्र भट्टाचार्य बचपन से ही बड़े तेज बहादुर और साहसी रहे हैं। इनका स्वभाव मिलनसार, व्यवहार मधुर तथा आचरण सादा और पवित्र है। यह इनकी सच्चरित्रता और पवित्रता का ही फल है कि इस अवस्था में भी इनका चेहरा दमकता रहता है और इन्हें देखकर एकबार दूसरों के हृदय में भी आनन्द उल्लसित हो उठता है। सदा प्रसन्न रहना और मजाक करना इनका खास गुण है। कोई भी व्यक्ति एकबार इनसे मिलकर इन्हें कभी भूल नहीं सकता। गाने में ये बड़े निपुण हैं और जिस समय मस्त होकर गाने लगते हैं उस समय सुनने वाले गद्-गद् हो उठते हैं। यह बड़े उदार प्रकृति के मनुष्य हैं।

श्री भूपेन्द्रनाथ सान्याल

(स्व० रामप्रसाद बिस्मिल)

श्री भूपेन्द्रनाथ सान्याल श्री शचीन्द्रनाथ सान्याल के सबसे छोटे भाई हैं। इनका जन्म पहली जनवरी सन् १९०६ ई० में कलकत्ता में हुआ। जन्म के इसी ही वर्ष इनके पिता का देहान्त हो गया। इसके बाद इनका बाल्यकाल अपनी माता के साथ बनारस में बीता। बनारस षड्यन्त्र के मुकद्दमे के समय इनकी अवस्था नौ दस साल की थी। खुफिया पुलिस वाले अकसर इन्हें मिठाइयां देकर शचीन्द्रनाथ सान्याल के विषय में पूछताछ करते थे। परन्तु भूपेन्द्र उन्हें कुछ भी उत्तर न देते और सदैव उन्हें निराश होना पड़ता था।

बनारस षड्यन्त्र में इनके तीनों भाइयों को सजा हुई थी। श्री शचीन्द्रनाथ को आजन्म काला-पानी श्री यतीन्द्रनाथ को दो वर्ष की सख्त कैद और श्री रवीन्द्रनाथ (जो आजकल सेंट एण्डरूज कालेज गोरखपुर में प्रोफेसर हैं) नजबन्द कर दिए गए थे।

श्री भूपेन्द्रनाथ पर अपनी माता का बहुत असर पड़ा और सदा इनका जीवन उत्साहमय रहता आया। गोरखपुर से स्कूल लीविंग परीक्षा पास करके ये इलाहाबाद चले आये और यहाँ पर इविंग क्रिश्चियन कालेज से आई० एस० सी० पास कर जब यूनिवर्सिटी कालेज में बी० एस० सी० (चतुर्थ वर्ष) में पढ़ रहे थे, काकोरी षड्यन्त्र के मुकदमे में गिरफ्तार कर लिए गए और इन्हें प्रत्येक धारा के अनुसार पांच-पांच वर्ष की कड़ी कैद की सजा दी गई। यूनिवर्सिटी के वाद विवाद में ये खूब भाग लेते थे। शरीर से अधिक हट्टे कट्टे होते हुए बड़े परिश्रमी उद्यमशील फुर्तीले व्यक्ति हैं। फुटबाल तथा हाकी के अच्छे खिलाड़ी हैं। इनके चेहरे से गम्भीरता, उत्साह, साहस प्रत्यक्ष प्रकट होते हैं। मातृभूमि के उद्धार के लिए इनके हृदय में उत्साह है।

@VaidicPustakalay

श्री शचीन्द्रनाथ बख्शी

श्री शचीन्द्रनाथ बख्शी का जन्म २५ दिसम्बर १९०४ ई० में बनारस में हुआ था। इनके पिता फरीदपुर (बङ्गाल) के कृष्णपुर नामक गांव के प्रतिष्ठित बख्शी खानदान के वंशज हैं। श्री शचीन्द्रनाथ बख्शी बड़े योग्य क्राँतिकारी संगठनकर्त्ता हैं। श्री मन्मथनाथ गुप्त और श्री बख्शी श्री योगेशचन्द्र की दो भुजा थे और बनारस का सुदृढ़ संगठन इन्हीं लोगों के बल पर हुआ था। श्री राजेन्द्र लहरी तो इनके संरक्षक और उत्साहदाता थे। श्री बख्शी के पिता काशी निवासी प्रवासी बंगाली हैं। युवावस्था में कुछ दिनों तक ये जंगल विभाग में मुलाजिम थे। इस कारण श्री बख्शी को बचपन में जङ्गलों में रहना पड़ा। जिसके फलस्वरूप वे बड़े साहसी और निर्भीक होगये, श्री बख्शी ने १९२१ ई० में बनारस के ऐंग्लो बङ्गाली हाई स्कूल से मैट्रिक परीक्षा पास की। इसके बाद वे जिन दिनों बनारस क्वींस कालेज से एफ० ए० में पढ़ रहे थे, तभी पुलिस वालों की दृष्टि इन पर पड़ी, जिसके कारण एफ० ए० की परीक्षा देने से पहले ही इन्होंने पढ़ना छोड़ दिया। इसके बाद व्यायामशालाओं के संस्थापक की हैसियत से इन्होंने सार्वजनिक जीवन में प्रवेश किया। शुरू में इन्होंने 'सेन्ट्रल हेल्थ इम्प्रूविंग' नामक व्यायाम समिति स्थापित की। इनके रहते-रहते उसमें नवयुवक सदस्यों की संख्या ७०-८० तक पहुँच गई और समिति सार्वजनिक जीवन का एक मुख्य केन्द्र समझा जाने लगा। पर बाद में इसमें जी हजूरों का प्रवेश हो गया, जिसके कारण श्री बख्शी ने इससे अलग होकर 'सेन्ट्रल हेल्थ यूनियन' नाम की व्यायाम समिति स्थापित की। यह संस्था इस समय काशी के सार्वजनिक जीवन में एक प्रमुख स्थान रखती है। श्री बख्शी ने इस समिति के द्वारा तैराकी प्रतिद्वन्द्विता का कार्य भी आरम्भ किया था और आज तक प्रतिवर्ष इसी समिति द्वारा ही चुनार से बनारस तक की १३ मील की तैराकी प्रतिद्विन्द्विता हुआ करती है। अब तक समिति के चार सदस्य राजनैतिक कैदी हो चुके हैं। काकोरी केस वालों में श्री बख्शी के अतिरिक्त श्री मन्मथ और श्री राजेन्द्र भी इसके सदस्य थे। चौथे सदस्य श्री केशव चक्रवर्ती थे, जिन्हें गवर्नमेंट ने बङ्गाल के कालेज कानून (आर्डिनेन्स) के अनुसार गिरफ्तार कर रखा था। ये भी काकोरी षड्यन्त्र में फांसे जाने वाले थे, परन्तु इधर प्रमाण न मिला और काले कानून के शिकार बना दिए गए। श्री केशव चक्रवर्ती बड़े ही दक्ष तैराक हैं। बनारस की १३ मील की तैराकी प्रतिद्वन्द्विता में लगातार तीन बार प्रथम आकर सैंकड़ों रुपये के तमगे आदि प्राप्त कर चुके हैं।

दिल्ली की स्पेशल कांग्रेस के कुछ दिन पहिले ही बख्शी से श्री योगेश चटर्जी की भेंट हुई और वे क्रांतिकारी दल में सम्मिलित हो गये। वे तो मानो इसकी प्रतीक्षा ही कर रहे थे। कुछ दिनों तक बनारस में काम करने के बाद ये झांसी गये। वहाँ न तो कोई इनका परिचित था और न पास में इतना रुपया ही था कि सुविधा से अपना कार्य-सञ्चालन कर सकें। परन्तु ऐसे साहसी वीरों को विपत्तियों की कुछ परवाह नहीं होती। वे वहाँ डट गये और काम करने लगे। इन्हें यहाँ एक और बड़ी बाधा थी। झांसी में एक ऐसे महाशय हैं जो क्राँतिकारी न होते हुए भी अपने को क्राँतिकारी बतलाते हैं और इस प्रकार रुपये आदि ठग कर अपना उल्लू सीधा किया करते हैं। पहिले तो

लाला मुकन्दीलाल जैसे पुराने क्रांतिकारी भी इनके चक्कर में आगये थे। पर श्री बख्शी उनके जाल में फंसने वाले जीव न थे। बख्शी जी का झाँसी में रहना खतरनाक था, क्योंकि किसी भी वक्त उनकी पोल खुल जाने की आशंका थी। इसलिए उन्होंने निश्चय कि बख्शी जी को यहाँ से भगाना चाहिए इसके लिए वे कई चाल चले, पर श्री बख्शी के सामने उनकी एक न चली। एक दफा उन्होंने यह भी उड़ा दिया कि बख्शी पुलिस के आदमी हैं। पर श्री बख्शी इससे भी न दबे। इन बाधा विपत्तियों के होते हुए भी श्री बख्शी ने वहाँ बड़ी इज्जत प्राप्त की। वे बहुत दिनों तक वहाँ एक अंग्रेजी पत्र के सम्पादक भी रहे। इस पत्र में उन्होंने श्री शचीन्द्रनाथ सान्याल की गिरफ्तारी पर एक जोरदार लेख लिखा था। इस पर इनसे और प्रकाशक से विरोध हुआ और इन्होंने सिद्धान्त के निमित्त यह त्याग कर दिया। गिरफ्तारी के वक्त वे स्थानीय म्यूनिसिपैलिटी के चुनाव में खड़े होने वाले थे।

श्रीयुत बख्शी के ख्यालात इतने गर्म हैं कि क्राँतिकारियों में भी उन्हें गर्मपन्थी कहना चाहिए। एक वार उन्होंने कुछ क्राँतिकारियों से कहा था "तुम लोग चाहे कुछ समझो मैं तो क्राँतिकारी काम के बिना जी नहीं सकता। मैं यदि कभी देखूंगा कि सभी लोग खिसक गये हैं, कोई भी सहायक नहीं तब मैं अकेला ही अन्याय से लड़ूंगा। एक ऊँचे मकान में एक बन्दूक तथा कुछ कारतूस लेकर बैठ जाऊंगा और कुछ न हो सका तो चिल्लाकर ही ऐलान कर दूंगा कि मैं बागी हूं, मेरे साथ जिसे लड़ना हो लड़ो।" बख्शी जी राजनीतिक क्राँतिकारी होने के अतिरिक्त सामाजिक क्राँतिकारी भी हैं। उनका कहना है "केवल राजनीतिक क्राँति से या देश में साम्यवाद का प्रचार होने से हमारा केवल एक आना काम हो सकेगा। बाकी पन्द्रह आने सामाजिक, धार्मिक तथा नैतिक क्राँति से होंगे। उनकी समझ से समाज की अट्टालिका इस समय कुसंस्कारों तथा अनावश्यक प्राचीन प्रथाओं की भित्ति पर खड़ी है, उसको खोद कर विज्ञान तथा बुद्धि की नींव पर उसे स्थापित करना पड़ेगा। तभी देश का पूरा और वास्तविक कल्याण होगा। उनका कहना है कि गाय को माता कहा जाये और जानवरों के पीछे मुसलमानों की अर्थात् आदमियों की हत्या की जाए। हां आर्थिक बुनियाद पर गोरक्षा बहुत आवश्यक है। श्री बख्शी अपने वासस्थान काशी में पुरोहितों, पुजारियों तथा साधुओं की अपार ढोंग लीला लड़कपन से देखते आये थे। वे जानते हैं कि इनके बड़प्पन की कोई वास्तविक नींव नहीं है। इनका मान मिथ्या कुसंस्कार तथा अनावश्यक लोकाचार पर अवलम्बित है। इस कारण उनको इस श्रेणी से विशेष चिढ़ थी और इस पोप-लीला का अन्त करने का काम नवयुवकों पर निर्भर बतलाते थे।

एक बार काशी के पुरोहितों और ब्राह्मणों ने निश्चय किया कि काशी के ब्राह्मणों की एक सभा कर महात्मा गाँधी के अछूतोद्धार विषयक कार्यों की तीव्र निन्दा की जाये और स्पष्ट शब्दों में यह कह दिया कि किसी सामाजिक या धार्मिक विषय पर महात्मा जी का बोलना उनकी अनधिकार चेष्टा है। काशी के षड्यन्त्रकारी दल में यह समाचार पहुंचा। श्रीयुत बख्शी ने कहा—अव्वल तो हम लोगों को ऐसी सभा होने नहीं देनी चाहिए और यदि हो भी जाए तो किसी भी हालत में उपरोक्त प्रस्ताव पास न होना चाहिए।" उनके इस निश्चयानुसार श्री राजेन्द्र लहरी, श्री बख्शी और श्री मन्मथनाथ गुप्त दल बल के सहित सभा-स्थल पर समय से पूर्व ही पहुँचे। अभी बेचारे पण्डित लोग आ भी न पाए थे कि इन लोगों ने अपनी तरफ से एक सज्जन को सभापति बनाकर

वक्तृतायें शुरू कर दीं और महात्मा गाँधी की जय तथा वन्दे मातरम् ध्वनि से सभास्थल को गुञ्जा दिया। पण्डितों ने आकर जब यह ध्वनि सुनी तो बहुत शोर-गुल किया, पर जनता उनके विरुद्ध थी, विचारे करते तो क्या करते ? बख्शी जी के प्रस्ताव पर सभी ने निर्णय किया कि महात्मा गांधी बहुत उचित काम कर रहे हैं, उसके लिए वे दीर्घजीवी हों। दूसरे प्रस्ताव में यह निर्णय किया गया कि पण्डितों को लघुकौमुदी में लगा रहना चाहिये, महात्मा गांधी के कार्यों की समालोचना करने का उन्हें कोई अधिकार नहीं है। उस दिन से श्रीयुत बख्शी काशी के धर्मव्यवसायियों के लिए एक भयानक शत्रु से हो गये थे। स्त्रियों और किसान तथा मजदूरों की उन्नति के सुधार और शिक्षा के सम्बन्ध में भी उनके विचार बड़े ही उन्नत हैं।

बख्शी जी बड़े ही सच्चरित्र तथा सीधे व्यक्ति हैं। उनको किसी बात का गर्व नहीं, पर आत्माभिमान उनमें कूट-कूट कर भरा है। वे हरेक क्राँतिकारी को अपने भाई से भी बढ़कर प्रेम करते हैं। उनकी बुद्धि बड़ी तीव्र है। एक बार वे लखनऊ की एक धर्मशाला में बन्दूकों की एक पेटी लेकर ठहरे थे। किसी कारण वहाँ के अध्यक्ष को उन पर सन्देह हुआ तथा उसने उनकी तलाशी लेनी चाही। बख्शी जी तलाशी के पूर्व ही उसे अलग ले गये और सब खोलकर कहा कि वे क्रान्तिकारी हैं और इन बन्दूकों का इस्तेमाल देश के निमित्त क्रांतिकारी कामों में होता है। इस पर वह व्यक्ति इतना प्रभावित हुआ कि बिल्कुल शान्त हो गया और कहने लगा 'बाबू जी आपके लिए मेरी जान हाजिर है।' खैर थोड़ी देर बाद वे वहां से खिसक गये। यदि उन्होंने इस प्रकार हाजिर बुद्धिमत्ता न दिखाई होती तो उन्हें अवश्य 'लालघर' जाना पड़ता। इस प्रकार ये कितने ही मर्तबा बचे। क्रांतिकारी बख्शी काम की धुन में खाना भी भूल जाते हैं। वे समयाभाव के कारण दाढ़ी भी न बना पाते और न अखबार ही ठीक से पढ़ पाते। उन्होंने साम्यवादी साहित्य बहुत कम पढ़ा है। पर वे हमेशा यही बात करते और कहते हैं साम्यवादी की दृष्टि सबसे उचित होती है। ये बड़े अच्छे तैराक तथा साइकलिस्ट भी हैं। उन्होंने एक बार क्रान्तिकारी दल की एक आवश्यकता के कारण लगातार झांसी से कानपुर तक विना कहीं रुके साइकिल से सफर किया था। मुंह से खून आने लगा था, पर तो भी वे कहीं न रुके।

काश्मीर की बलि-वेदि का अमर शहीद—

डा० श्यामप्रसाद मुखर्जी

(ब्र० महादेव)

आपका जन्म २७ जुलाई १९०१ में कलकत्ते के भवानीपुर में हुआ था। आपके पिता जी श्री सर आशुतोष मुखर्जी कलकत्ता विश्वविद्यालय के कुलपति थे। आप एम० ए० और बी० एल० करके विलायत चले गये। वहां १९२८ में बैरिस्ट्री पास की, और १९३४ में कलकत्ता विश्वविद्यालय के ३३ वर्ष की आयु में उपकुलपति चुने गये। १९३७ में आपने इस पद से अवकाश ग्रहण किया। उसी समय आपको डाक्टर आफ ला की उपाधि से विभूषित किया।

१९३९ में आप सक्रिय राजनीति क्षेत्र में प्रवेश कर शीघ्र ही बंगाल परिषद् के सदस्य होगये। १९४१ में उस समय बङ्गाल के प्रधानमन्त्री व जिन्ना की आपस में टक्कर होने के कारण फजलुलहक ने आपसे मिलकर हिन्दू मुस्लिम संयुक्त मन्त्रिमण्डल बनाया। परन्तु अंग्रेज सरकार के अन्याय को न सहकर मन्त्रिपद से त्यागपत्र दे दिया। कुछ वर्ष बाद मुस्लिम लीग पाकिस्तान बनाने पर तुली हुई थी। हिन्दुओं पर अत्याचार की चरम सीमा थी। इस प्रकार यवन राज्य में हिन्दुओं के साथ हो रहे अत्याचार व अन्याय को देखकर आपका हृदय कहरा उठा। पाकिस्तान बनने पर आपने अपने अथक परिश्रम से व निरन्तर संघर्ष से आधा बंगाल बचा लिया।

१९४७ के अगस्त में भारत स्वतन्त्र हुआ।। स्वतन्त्र मन्त्रिमण्डल में आपको भी लिया गया। परन्तु कांग्रेस की घातक नीति को देखकर मन्त्रिमण्डल से त्यागपत्र दे दिया। १९५१ में आपने जनसंघ की स्थापना की। आज जो बढ़ चढ़ कर उन्नति शिखर की ओर बढ़ रहा है। राजनीतिज्ञ के रूप में अपनी अग्निपरीक्षा १९५२-५३ में दी। उस समय काश्मीर भारत से पृथक् हो रहा था। आपने अत्यन्त निर्भीकता और साहस से शेख अब्दुल्ला के विरुद्ध आवाज बुलन्द की। ध्यान रहे यह नीच उस समय सबसे बड़ा राष्ट्रवादी और धर्मनिरपेक्षतावादी माना जाता था। आपने भारत की जनता व सरकार को अब्दुल्ला के षड्यन्त्र के विरुद्ध चेतावनी दी। परन्तु इस पर अधिक ध्यान न दिया तो आप स्वयं स्थिति को बचाने के लिए काश्मीर चले गये। वहाँ आपको पकड़ कर जेल में ठूंस दिया गया। शेख अब्दुल्ला की कूटनीति से आपका प्राणान्त हुआ। आपने काश्मीर की वेदि पर प्राण देकर सरकार व जनता को सावधान कर दिया। आज राष्ट्र को आपका अभाव खटक रहा है। आपके जाने से राष्ट्र की क्षति अभी तक पूर्ण नहीं हुई है।

आपका बलिदान आज भी पुकार पुकार कर कह रहा है कि काश्मीर भारत का अविभाज्य अंग है। शेख अब्दुल्ला ने अपने कुटिल षड्यन्त्रों से आपको हम से छीना। आज उसी शेख से काश्मीर भी छीना गया। जो अत्याचार शेख अब्दुल्ला ने आप पर किए उन्हीं अत्याचारों के अभिशाप से वह स्वयं भी न बच सका।

बलिदान

(श्री भीष्म प्रताप शास्त्री)

बलिदान राष्ट्र के लिए क्या चीज है? जिन्होंने बलिदान को अपनाया उन्हें क्या परिणाम मिला? बलिदान के कारण किस देश में क्या हुआ? बलिदान शब्द में महान् शक्ति है। मानवमात्र स्वतन्त्र और स्वयं द्रष्टा है। इसलिये स्वतन्त्रता मनुष्य का जन्मसिद्ध अधिकार है। इसी स्वतन्त्रता की प्राप्ति के लिए उसने बलिदान को अपनाया। यद्यपि उसकी व्याख्या करना हंसी खेल नहीं फिर भी एक नवयुवक की हैसियत से चूंकि भारत की उन्नति अवनति के लिए प्रत्येक युवक बहुत अंश में उत्तरदायी है अतः इसी निमित्त दो लड़खड़ाते हृदय से उद्भूत शब्दों को व्यक्त करने के लिए लेखनी न

रुक सकी और चलती हुई ने अधीरतावश लिख ही दिया। क्या आप भूल गये रोमन साम्राज्य के निर्माण को ? वर्तमान चीन का सिंहावलोकन करिये और सुनिये रूसी नेताओं के मुख से रसियन राष्ट्र की करुण कहानी—रामू की कथा अभी जीती जागती है, प्रकाश डालने की आवश्यकता नहीं क्योंकि यह सब कवियों, लेखकों, इतिहासकारों, समाचारपत्रों तथा वक्ताओं की विभूति बन चुका है। क्या याद नहीं रहा शहीदों का लहू, जो कारागार की कोठरी में, निर्वासन में फांसी के तख्ते पर और लिपा हुआ है अबलाओं के सीने पर। आज की स्वतन्त्रता का अंकुर है तो यही है। पंजाब केसरी के शब्दों को निहारिये—"दुःख के लिए आवाज उठाकर अन्त तक सामना करना चाहिए।" विज्ञ पाठक ! क्या सभी राष्ट्रों का निर्माण खून के नाले बहाने से लोमहर्षक अभिनय करने से हुआ है ? क्या तपोधनी भारत योगीन्द्र, त्यागभूमि, वीरभूमि भारत स्वतन्त्र भारत—शिरोमणि भारत संसार को प्रेम, शान्ति और निराकार का सन्देश देनेवाला भारत, शिवा प्रताप का भारत, तुलसी सूर का सखा भारत, अर्जुन भीम का भक्त भारत, महात्मा गांधी तिलक का उज्ज्वल भारत, भगतसिंह चन्द्रशेखर का अनुपम भारत, सुभाष व रानी झांसी का ओजस्वी भारत, स्वतन्त्रता को आग को कोने कोने में प्रज्ज्वलित कर क्रान्ति का भीषण सन्देह देश की रग रग में पहुंचाने वाले दयानन्द का भारत, विवेकानन्द-रामतीर्थ का भारत, क्या कुछ नहीं कर सका ? सब कुछ किया, लुटा दी अनमोल जानें। फिर भी रक्त का प्यासा हिंस्र वनराज नहीं, भारत अहिंसा का विराट् भारत है, भारत उद्दण्ड और अमानुषिक भारत नहीं, वह शान्ति तथा त्याग से, बलिदान की अग्नि को प्रज्ज्वलित कर अपने अभीष्ट की पूर्ति करने की वृहदाकांक्षावाला आदर्श भारत है। जिसका बच्चा बच्चा त्याग और बलिदान के महत्त्व को समझता है।

राष्ट्र का निर्माण हंसी खेल नहीं, लोहे के चने चबाना है और दिल को डाटना है। प्यारभरे, स्नेहमय गिरते हुए माता-बहन-पत्नी के अजस्र आसुओं में। सच मानिये आजादी देवी का रिझाना सरल नहीं, असिधारा व्रततुल्य है। वह भक्तों की कठोर तपस्या चाहती है और परीक्षा भी बार-बार लेती है। ऐसी देवी को प्रसन्न करने के हेतु किसको क्या नहीं देना पड़ता ? और किसने क्या कुछ नहीं दिया ? सब कुछ दिया। कहना न होगा, कोई राष्ट्र नहीं जिसने अपने पुत्र-पुत्रियों को तलवार के घाट न उतारा हो, जिस पर उसके जिगर के टुकड़े का शोणित न बहा हो। बलिदान के बिना विराट् व्योम में स्वतन्त्र आह्वान रण-रंग की रौद्रमयी चिल्लाहटों से न गुंजाया हो। बलिदान, राष्ट्र की महाविभूति है। यह व्रत रोते रोते नहीं, फीके उतरे, पीले, झुके चेहरों से नहीं, आन्तरिक आवेदन और सच्ची लग्न और तड़फ से हो सकता है। जिसके लिए तप हो, सहनशीलता हो और हो जरूरत दीवानेपन की, देशभक्ति की मस्ती और भभकती हुई प्रेम की ज्वाला की। सच मानिये ! जो इस व्रत को धारण करता है, संसार का लावण्य, संसार का नाता, संसार का कहा जाने वाला कृत्रिम सौम्य जीवन इस कठिन कठोर बलिदान के लिए ठोकर से ठुकराना होगा, महात्मा बुद्ध की तरह और बनाना पड़ता है भीष्म से भयंकर, दधीचि से दृढ़। जिसने इस व्रत को धारा, धरा उसके समक्ष झुकी। संसार ने उसके चरणरज को माथे लगाया, अमर हुआ और तरसती है सफलता उसके पैर चुम्बन को। उसने मानव जीवन के सार को अपनाया और सब कुछ प्राप्त कर लिया।

पाठक ! सच्चा वीर वही है जो मायावी संसार में रहकर पूर्णत: लेता है, उसका असीम सन्ताप अमर आशा, अटूट आदर्श, त्याग, रोम-रोम में देशभक्ति का उन्माद, कर मरने की पिपासा, शोषण की चक्की में पीसे जाने वालों को बचाने की महत्त्वाकांक्षा, अन्याय को मिटाने वाला ही बलिदान के

खप्पर को अपने उष्ण शोणित से परिपूर्ण कर सकता है। भगतसिंह, बिस्मिल, सुभाष इसी कोटि के थे। लीजिए ऐसे ही नर वीर की जीवनी पर विचार करें जिसने दिल्ली के बाजार चांदनी चौक में, जहां अपार जनसमुदाय उमड़ रहा था। किसी के नेत्रों से खून वह रहा था, कोई गद्‌गद् हुआ फिरता था, कोई भूखा था कोई प्यासा था। कोई अपने दिल को जलाये बैठा था और कोई बैठा था सुनहरी मौके की घात में। यह सब क्यों? और किस लिए? क्योंकि आज लार्ड की सवारी निकलने वाली थी इसीलिए तमाम साम्राज्य की ताकत दिल्ली में जमा हो गई। क्या गली और कूचा? और क्या सड़क और मकान? एक एक इंच जमीन पर सख्त पहरा था। यह सब क्यों? केवल लार्ड की रक्षा के लिए व शक्तिप्रदर्शन। दोनों ही बातें आज प्रमाणित हो रही थीं। शक्तिप्रदर्शन इसलिये कि देखो भारतीयो! चाहे तुम मन से मानो या न मानो, परन्तु हम तुम्हारे शासक हैं। शक्ति का अभिप्राय वहां होने वाली फौज और पुलिस से है। अचानक एक शोर हुआ, गाने बजाने का शब्द सुनाई दिया। सवारी का समय था। सवारी निकल रही थी, लार्ड के आगे पीछे बड़ी संख्या में फौज। जयघोषों से आकाश गूंज उठा। आज दिल्ली दुलहन बनी हुई थी। उसके शृंगार में अंगुली उठाने को कमी न थी। अपार जनसमुदाय। धीमी धीमी चाल से धक्के खा रहे थे दर्शक। अहा! कैसा हृदयविदारक दृश्य था, मार्मिक था, कोई कुछ कह न सकता था। मानो भगवान् ने सबको मूक बना दिया हो। बेचारे अपाहिजों की भांति घर के मालिक ढकेले और विदेशी शान अकड़ के साथ जा रहे थे, यही तो हमारी गुलामी का चित्र था। परन्तु नहीं उस जनसमूह में भी एक मस्ताना, स्वाभिमानी, देशभक्त था, जिसने बताया कि शरीर पर अधिकार एक और बात है और हृदय पर और। आज तक तुम बनिये के वेश में थे, अब शासक के रूप में आये हो। इसलिए सावधान! ज्यों ही लार्ड की सवारी दिखाई दी तथा चलती चलती कोतवाली के सामने पहुँची एकाएक जोर का धमाका हुआ। शब्द होते ही क्या है? क्या है? आवाज गूंज उठी, सवारी रुक गई। लार्ड बाल बाल बचे और झनझाई पुलिस और फौज की संगीनें।

यह दृश्य बड़ा करुणाजनक था। दूधमुंहे बालक, स्त्री पुरुष एक बूंद पानी को तरसते थे। इस लिये यहीं शायद इन्हीं में खूनी छिपा हो। आखिर मास्टर साहब को सी० आई० डी० ने गिरफ्तार किया और बांध दिया जंजीरों से। मास्टर साहब निरपराध हैं, यह कह रहा था शहर हृदय से, मुंह से नहीं, क्योंकि राज्य था आतंक अंग्रेज का। मास्टर साहब को फांसी से आलिंगन का बुलावा हुआ, खुशी में चले। चेहरे पर आभा थी कान्ति थी और मुस्कराते हुए कह रहे थे। फांसी जीवन का अन्त नहीं। वह जीवन ज्योति को जगाने वाली दवा है। हमने इससे प्यार किया और प्यार किया दूसरे पराधीन मुल्कों ने। यह स्वतन्त्रता मन्दिर की सीढी है जिसकी पहली पौड़ी पर लिखा है–'बलिदान'! मास्टर जी फांसी पर झूमने लगे। उस दिन मनुष्य पक्षी सब आंसु बहा रहे थे। उन हुतात्माओं के लिए जो संसार में आते हैं और दूसरों को मार्ग दिखा जाते हैं। उन्हीं का यह वृत्तान्त है जोकि रास बिहारी के साथी "मास्टर अमीरचन्द" थे। आओ इनके बलिदान से शिक्षा लें, देश जाति के लिए मर मिटने की।

@VaidicPustakalay

धर्मवीर हकीकतराय

(श्री धर्मदेव विद्यामार्तण्ड)

धन्य धन्य तुम वीर हकीकत धन्य तुम्हारा था बलिदान।
धर्म वेदि पर परम हर्ष से तुमने किया आत्म-बलिदान ॥१॥
दिये प्रलोभन यवनजनों ने कितने तुम्हें गिराने को।
पर न धर्म से पतित हुए तुम रक्खी तुमने अपनी शान ॥२॥
मात पिता तक बने सहायक तुम्हें गिराने मोहाधीन।
पर न डिगे तुम धर्ममार्ग से धन्य धन्य तुम धैर्यनिधान ॥३॥
काट सके जो चीज हकीकत नहिं ऐसी जग में तलवार।
यह कह अडिग रहे तुम गिरिसम धन्य तुम्हारा आत्मज्ञान ॥४॥
आत्मा अजर अमर अविनाशी समझ किया तुमने वह काम।
जिसे न जग में कर सकते हैं बड़े बड़े तार्किक विद्वान् ॥५॥
कहता कौन करे तुम उस दिन किया यह यवन ने मुँह काला।
जिस दिन काट तुम्हारा मस्तक अमर हुए तुम कर बलिदान ॥६॥
श्रद्धापूर्वक स्मरण करें तव, सारे मिल करके प्यारे।
नई स्फूर्ति भरता तव चिन्तन, तुम बालक पर वीर महान् ॥७॥

बलि का गीत

(रणजीतसिंह 'तन्मय')

राग नहीं यह, बलि का गीत।

देश धर्म पर बलि-बलि जाना, वैदिक आर्य जनों की रीत।
चाहे सन्मुख काल खड़ा हो, फिर भी तनिक नहीं भयभीत ॥
जगदीश्वर है उनका मीत। राग नहीं यह बलि का गीत ॥१॥

जब देश धर्म पर भीड़ पड़ी, जब जब भी न्यौता आया है।
ये परवानों से तड़फ गिरे, अरु संकट दूर भगाया है ॥
अपनी धार पुरानी रीत। राग नहीं यह बलि का गीत ॥२॥

सूर्य चन्द्र भी पथ विचलित हों, तारागण चाहे टूट गिरें।
निज मर्यादा छोड़े चाहे, सागर पर न वीर टरे ॥
युग के युग जावें चाहे वीत। राग नहीं यह, बलि का गीत ॥३॥

अधिकार हमारा जन्म सिद्ध इसको जतलाते आये हैं।
अन्यायों अत्याचारों से, ये लड़ते भिड़ते आये हैं ॥
भाग्य इन्हीं के है 'रणजीत'। राग नहीं यह, बलि का गीत ॥४॥

अगस्त १९४२ का महान् विप्लव

(श्री ब्र० मनुदेव)

भारतवर्ष के इतिहास में अगस्त क्रान्ति एक महान् चिरस्मरणीय घटना है। इस क्रान्ति ने ब्रिटिश भारत के इतिहास में ऐसी भयंकर सामूहिक उथल-पुथल पैदा की कि ब्रिटिश सिंहासन भी दोलायमान हो गया था। भारत के कुछ प्रान्त, मसलन बिहार, युक्त प्रान्त, आन्ध्र, सतारा आदि तो पूर्णरूपेण स्वतन्त्र हो गये थे। इन प्रान्तों में उन दिनों अंग्रेजी शासन का नामोनिशान ही नहीं रह गया था। इन प्रान्तों की सर्वोपरि सत्ता जनता के हाथों में थी। समस्त भारत की जनता इस आन्दोलन में कन्धे से कन्धा मिलाकर डट जाती तो समस्त भारत उस समय पराधीन नहीं रहता। परन्तु यह भारतवासियों के भाग्य में नहीं था।

क्रान्तियां एकाएक पैदा नहीं हो जातीं। क्रांतियां घनघोर घटाओं में से एकाएक बिजली की तरह टूट नहीं पड़तीं। क्रांतियां पैदा होती हैं, निरन्तर जनता की भावनाओं के कुचले जाने से जनता की आकाक्षाओं के निरन्तर दमन से ही क्रान्तियां जन्म लेती हैं। शान्ति की बनावटी बातों की धरातल के नीचे ज्वालामुखी की तरह जनता के विरोध की आग धीरे धीरे सुलगती रहती है। जरासी ठेस पहुंचने के साथ ही इस आग में विस्फोट हो जाता है और वह धरातल को फोड़ कर ऊपर आ जाती है और बगावत का रूप धारण कर लेती है। धरातल के नीचे की आग में जितना भी जोर होता है विस्फोट या आन्दोलन उतना ही तीव्र रूप धारण कर लेता है। आन्दोलन के रूप व प्रसार के लिए तत्कालीन देश की स्थिति संस्कृति नेताओं के विचार व उनकी संगठनशक्ति पर ही निर्भर रहना होगा। जैसा उस समय देश के नेताओं का संगठित प्रोग्राम होगा जनता उतने ही प्रमाण में आन्दोलन को उग्र रूप देने में समर्थ होगी।

१९४२ में जनता की कुचली हुई देशव्यापी-भावनाएं अपने चरम पर पहुँच चुकी थीं। जनता की बढ़ी हुई बेचैनी, परेशानी और असंतोष सभी ने एक साथ मिलकर उग्रतम रूप धारण कर लिया था। आर्थिक कठिनाइयाँ बेहद बढ़ रही थीं, चीजों के मूल्य द्रुतगति से सीमोल्लंघन करते जा रहे थे। खाने की चीजों का बिल्कुल ही अभाव हो गया था। प्रचलित सिक्का चांदी का लोप होकर कागजी नोटों का बाहुल्य सामने आ रहा था। हांगकांग से लेकर बर्मा तक की जापानी जीत ने अंग्रेजों के प्रति जनता के दिल में अविश्वास पैदा कर दिया था। जनता के मन में यह बात गहरा असर कर गई थी कि अंग्रेज जब अपनी ही रक्षा करने में असमर्थ हैं तो जनता की क्या रक्षा करेंगे। जनता ताड़ गई थी कि अंग्रेजों की सैनिक शक्ति कमजोर है। इतना ही नहीं बर्मा से भागी हुई जनता की करुण कहानियों ने भारतीय जनता के दिल में उनके प्रति घृणा के भाव भर ही नहीं दिये मजबूत भी कर दिये थे। अंग्रेज सैनिकों के द्वारा रंगून की जनता की सम्पत्ति की निर्लज्जतापूर्ण लूट एवं अग्निकाण्डों ने जनता को बहुत ही उत्तेजित कर दिया था। पूर्वी बंगाल व आसाम के हवाई अड्डों व अन्य फौजी कामों के लिए जनता की जमीन की जब्ती आदि कामों ने जनता के दिल में घृणा उत्पन्न कर दी थी। अंग्रेजों के सत्य, न्याय और मानवता की रक्षा के नाम पर किये गये कुकृत्यों से जनता आतंक भय और बेचैनी से आहें भर रही थी।

जनता में भय ने जोश उत्पन्न कर दिया और जोश से भरकर जनता अपने नेताओं की तरफ देखने लगी थी। निराशा, घृणा, बेचैनी, अविश्वास और असन्तोष दिन प्रतिदिन लोगों के दिलों में बढ़ता ही जा रहा था। इधर सरकार उनकी भावनाओं की रत्ती भर भी परवाह न करके दमन किये ही जा रही थी। वह अपनी बर्मा की हार की झेंप को भारतीय आकांक्षाओं के दमन द्वारा छिपाना चाहती थी।

समय तथा जनता की नब्ज को ठीक पहचानने वाले भारतीय नेताओं के दिल में इसी समय तूफान उठा और उसकी अपार शान्ति क्रांति की हिलोरें लेने लगी। नेताओं ने जनता की आवाज को पहचान लिया था। जनता का नारा था "अंग्रेज निश्चय हारे" नेताओं ने आवाज उठाई कि अंग्रेजो निकल जाओ, जनता और नेताओं के दिल मिल गये। दोनों ने दोनों को पहचान लिया और नेताओं ने आन्दोलन छेड़ दिया। उस समय जनता ने जो कुछ किया वह अगले पृष्ठों में देखिये।

८ अगस्त के साथ ही एक जबरदस्त तूफान आया बहुत वेग से आगे बढ़ा और अन्त में शान्त सा हो गया। लाखों मनुष्य इसके वेग में बह गये, करोड़ों ने किसी न किसी रूप में सहयोग दिया, ५-६ माह तक खूब क्रान्ति हुई, सरकार ने सभी नेताओं व कार्यकर्त्ताओं को जेल में डाल दिया। नेताओं ने सरकार को चुनौती दी कि जनता पर लगाये हुए आरोपों को सिद्ध करे नहीं तो खुली अदालतों में मुकदमे चलाये। इस महान् आन्दोलन का नारा था "अंग्रेज़ो भारत छोड़ो" और कार्य के साधन के लिए नारा था "करो या मरो" इन्हीं नारों से स्पष्ट है कि इस आन्दोलन का ध्येय पूर्ण स्वतन्त्रता प्राप्त करना था और उसके लिए अपना बलिदान तक दे देना था। इस आन्दोलन के नारे वास्तव में समयोचित और उपयोगी थे। इन नारों के पीछे एक महत्त्वपूर्ण कल्पना और भावना छिपी हुई थी जो सदैव भारतवासियों के अन्दर एक स्फूर्ति, जागृति, आशा और तड़फन बनाये रही।

९ अगस्त के बाद देश में क्रांति प्रज्वलित हो गई। यह क्रांति यदि सच कहा जाये तो आकार, विस्तार, त्याग, बलिदान, संगठन शक्ति, उत्साह एवं ध्येय के प्रति अदम्य लगन में पिछली भारतीय क्रांतियों से कहीं बढ़-चढ़ कर थी। इस क्रांति में प्राय: ६-७ हजार मनुष्य मरे, १ लाख से ज्यादा जेलों में गये, पचासों गांव वीरान कर दिए गये। इस क्रांति में प्राय: ४ करोड़ व्यक्तियों ने खुले रूप से भाग लिया। आन्दोलनों का संगठित व सामूहिक रूप दो या तीन महीने रहा। इसके बाद अकथनीय दमन हुआ। नेताओं का अभाव तो आन्दोलन के श्रीगणेश से ही था। इसलिए आन्दोलन ने आगे चलकर भूमिगत रूप धारण कर लिया। क्योंकि १९४२ की क्रांति संगीनों की साया में प्रारम्भ हुई थी। इसमें अनेक जलियांवाले काण्ड हुए। जनता ने सरकारी सत्ताओं पर आधिपत्य करने के लिए खुले प्रयत्न किये। बिहार में तो सरकारी डाकखानों, थानों, सरकारी इमारतों पर कब्जे कर लिए गए। सरकार ने स्वयं अपनी सत्ताओं को शहरों में परिवर्तन कर लिया। इस महान् क्राँति में विद्यार्थियों ने सर्वप्रथम लाखों की संख्या में भाग लिया। नेताओं की गिरफ्तारी के बाद उन्होंने जनता का नेतृत्व किया। मुसलमानों ने भी इस आन्दोलन में बढ़-चढ़ कर भाग लिया।

इस महान क्रांति से देश को अपूर्व लाभ हुआ, जनता सरकारी शक्ति को छीनने में सिद्धहस्त हो गई। गोलियों की वर्षा में जनता ने उठना सीखा। विदेशों में भारत की इज्जत बढ़ी। हमारे अनोखे नारे "भारत छोड़ो" ने दुनियां को विस्मयमुग्ध कर दिया, अन्त में ब्रिटिश सरकार को इस क्रांति के

कारण हार माननी पड़ी, एक के बाद एक नेता को भी सरकार छोड़ने लगी । दमन हिंसा का परित्याग करना पड़ा ।

इस महान् क्रांति में भारतीय वीरांगनाओं ने अपूर्व धैर्य, शौर्य, वीरता, साहस और बलिदान का परिचय दिया । भारतीय महिलायें स्वातन्त्र्य संग्राम में सदा पुरुषों से आगे रहीं । १८५७ के प्रथम स्वातन्त्र्य युद्ध में प्रातः स्मरणीय लक्ष्मीबाई ने जिस अद्‌भुत साहस और वीरता का प्रदर्शन किया था उससे कोई भी भारतीय अनभिज्ञ नहीं । आज भी झांसी की रानी की अमर कथा से भारतीय मस्तक सर्वोन्नत है । सन् १८५७ के विद्रोह के असफल हो जाने पर भी अवध की बेगम ने अंग्रेजों के सम्मुख आत्म-समर्पण कर देने में इन्कार कर दिया और अनेक प्रयत्न करने के पश्चात् भी उस वीर रमणी को बन्दी न बना सके ।

उसी प्रकार १९४२ में महिलाओं ने खूब काम किया । महिलाओं ने विदेशी वस्तुओं के बहिष्कार तक ही अपनी शक्तियों को सीमित नहीं रखा किन्तु क्राँति में उन्होंने सक्रिय भाग लिया । उन्होंने कानून द्वारा रोकी गई सभाओं का सभापतित्व व जलूसों का नेतृत्व किया । भारतीय महिलाओं ने आन्दोलन की नीति का निर्माण एवं प्रदर्शन में पूर्ण रूप से भाग लिया ।

आसाम प्रान्त में ताजपुर गांव की कनकलता बरुआ नाम की एक चौदहवर्षीय लड़की ने जलूस का नेतृत्व किया । उसे सरकारी अधिकारियों ने रोका पर उसने किसी की भी चेतावनी पर ध्यान न दिया । इस पर पुलिस अफसर ने उसे गोली से मार दिया । उस बालिका का नाम भारतीय जनता के हृदय में अंकित हो गया । बम्बई की कुमारी उषा मेहता ने जनता गुप्त रेडियो का जिस कुशलता से संचालन किया था उसकी प्रशंसा सारा भारत करता है ।

अगस्त आन्दोलन में भारतीय स्त्रियों को अनगिनत कष्ट सहने पड़े । आष्ट्री, चिमूर, बलिया तथा दूसरे स्थानों पर भारतीय महिलाओं के साथ सरकारी दानवों ने पशुओं जैसे अत्याचार किये । क्या उन्हें देशवासी कभी भूल सकते हैं ? सभी विपत्तियों के बाद भी भारतीय वीरांगनाओं ने अगस्त आन्दोलन में जिस साहस के साथ वीरता का परिचय दिया है उसे पढ़कर भारत तो क्या, विश्व की महिलायें भी गर्व से मस्तक ऊँचा कर सकती हैं ।

असफलता के कारण

सन् १९४२ की महान् क्राँति एक बड़ी समुद्री लहर की भांति आई थी और चली गई किन्तु अपने पीछे इतिहास के पृष्ठों पर एक जबरदस्त चिह्न अवश्य छोड़ गई । क्या कारण था कि इतनी बड़ी क्रांति होने पर भी असफल क्यों रह गई । इसके बहुत से कारण हैं ।

१. सर्वप्रथम यह कारण था कि हमारे बहुत नेताओं का यह मत था कि हम कितनी ही कोशिश करें परन्तु हम अंग्रेजी सरकार राज्य का पार नहीं पा सकते । इस बात पर विश्वास करने वालों का क्रांति को किसी प्रकार की सहायता न देना ।

२—संगठन की कमजोरियाँ, इतने बड़े आन्दोलन को जिसका इतना बड़ा विस्तृत एवं व्यापक स्वरूप था, अच्छी प्रकार संचालित करने के लिए अनुशासित संगठन न था । इस आन्दोलन का क्या

स्वरूप होगा और हर एक व्यक्ति के सुपर्द क्या काम होगा इसकी रूपरेखा तक नहीं बन पाई थी। असंगठन भी आन्दोलन के असफल होने का कारण बना।

३. आन्तरिक ढीलापन, इस क्राँति में १८५७ के विद्रोह की तरह ही कुछ जिलों गाँवों तथा व्यक्तियों ने भाग लिया। इसका परिणाम भी स्पष्ट ही था कि क्राँति की शक्ति बिखरी रही और अंग्रेजों को क्राँति को दबाने के लिए बहुत अवसर मिल गया। सारे देश की क्राँति को अंग्रेज कभी नहीं दबा सकते थे। इसके अतिरिक्त देश के सभी वर्गों ने इसमें पूरा भाग नहीं लिया। छात्रों,किसानों व महिलाओं ने तो इसमें अपने जीवन तक की बलि दे दी। परन्तु मजदूर वर्ग अपने दर्शकों के फेर में पड़कर प्राय: उदासीन ही रहा।

४. इन कारणों से भी पृथक् सब से महत्त्वपूर्ण गद्दारी हमारे देश के पूञ्जीपतियों ने की। जब सम्पूर्ण देश में विद्रोह की लपटें उठ रही थीं, समाचार पत्रों ने अपना प्रकाशन रोक दिया था, उस समय इन कारखानेदार पूञ्जीपतियों ने अपने लाभ के लिए सरकारी लम्बे-लम्बे ठेकों को पाने के लिए नौकरशाही की खुशामदें कीं।

उस समय इन पूञ्जीपतियों ने एक दिन भी अपने कारखाने बन्द नहीं किये, अपितु आन्दोलन को सहायता देने से भी अपना मुंह मोड़ लिया था। यदि इन लोगों ने एक हफ्ता तो क्या दो दिन भी काम बन्द कर दिया होता तो सरकार नेताओं को मुक्त करने के लिए बाध्य हो जाती।

५. विद्रोहियों में कुशलता का अभाव, यह स्पष्ट है कि यह हमारी स्वयं की ही कमजोरी थी। भारतीयों को क्रांति तो व्यापक करनी थी, ब्रिटिश सत्ता उखाड़ फेंकने के इरादे थे। परन्तु इसके लिये तैयारी न थी। उस समय विद्रोहियों ने कार्यकुशलता से काम नहीं लिया। उन दिनों कई समाचार पत्र लोगों ने स्वयं बन्द कर दिए थे। कुछ सरकार ने बन्द कर दिए। हमारे समाचारों के भेजने, सन्देश पहुँचाने के कार्य बन्द हो गये। भारतीयों ने उस समय इतनी भी कुशलता का परिचय नहीं दिया कि इस कार्य की पूर्ति किस प्रकार की जाये। इन कारणों से यह आन्दोलन असफल रहा। यदि हमारे नेता थोड़ा सा भी सोचकर कदम उठाते तो संसार की कोई ताकत नहीं थी जो इस क्रांति को दबा सकती।

बम्बई प्रान्त में अगस्त सन् १९४२ का विप्लव

९ अगस्त १९४२ के आन्दोलन का बम्बई प्रान्त में खूब असर रहा। ९ अगस्त को ग्वालिया मैदान बम्बई में जब सभा हो रही थी तो पुलिस ने दो बार अश्रु गैस का प्रयोग किया। परन्तु नेताओं के कहने से जनता लेट गई जिसके कारण से जनता पर अश्रुगैस का कोई प्रभाव नहीं हुआ। जब अश्रुगैस का कोई प्रभाव नहीं हुआ तो पुलिस ने लाठियां चलानी शुरू कर दीं और मुख्य-मुख्य नेताओं को गिरफ्तार करके ले गई।

बम्बई के धुलिया जिले के नन्दखर नामक शहर में ९ अगस्त को जब विद्यार्थियों ने सुना कि देश के नेता गिरफ्तार हो चुके हैं तो उन्होंने एक छोटा सा जलूस निकाला। जलूस में ५ वर्ष की उम्र से लेकर १५ वर्ष तक के लड़के व लड़कियां थीं। जलूस जिस समय बाजार में से जा रहा था पुलिस के थानेदार को किसी ने एक ढेला मार दिया। वास्तव में बात यह थी कि थानेदार की किसी व्यक्ति से दुश्मनी थी और उस दुश्मन ने यह वक्त उचित जान भीड़ में घुसकर ढेला मार दिया।

इसमें लड़कों का रत्ती भर भी हाथ नहीं था। लेकिन थानेदार आग बबूला हो गया और शक्ति के नशे में आकर उसने बच्चों पर गोलियाँ छोड़ने की इजाजत दे दी। बच्चे भागने लगे। एक चौदह वर्षीय बच्चे ने ओ३म् पताका हाथ में ले ली। गिरफ्तार करना तो दूर पुलिस ने बच्चे पर गोलियाँ दागीं। भूल से पहली गोली बच्चे के पैर में लगी। बच्चा गिर गया पर पुलिस उस बच्चे पर तब तक गोलियाँ छोड़ती रही जब तक कि बच्चे का शरीर छलनी नहीं हो गया। इस भगदड़ में जहाँ भी जगह मिली, बच्चे भागे। पर सिपाहियों ने भागते हुए बच्चों पर पीछे से वार किये।

इस हत्याकाण्ड में ५ बच्चे मारे गये और बारह बुरी तरह घायल हुये जिनमें एक लड़की थी।

पूना में पुलिस ने घर-घर घुसकर स्त्रियों को बेईज्जत किया। बच्चों और मर्दों पर घर से बाहर निकाल कर गोलियां दागीं।

गुजरात प्रान्त में राक्षसी कृत्य

ज्योंही नेताओं की ९ अगस्त को सुबह गिरफ्तारी हुई त्योंही सरकार ने सभी प्रकार की सभाओं और जलूसों पर प्रतिबन्ध लगा दिया। जनता तो क्रोध में थी ही इन प्रतिबन्धों के कारण आग बबूला हो गई। उसने जहाँ भी सम्भव हुआ सरकार के लगाए हुए प्रतिबन्धों को तोड़ने का निश्चय किया। बदले में सरकार ने लाठीचार्ज, गोलीवर्षा, अश्रु गैस का प्रयोग आरम्भ किया। यहां तक कि गोलियों की बौछार तो जनता के लिए दैनिक कार्य हो गया।

बड़ौदा से आनन्द की ओर एक विद्यार्थी दल प्रचार कार्य करने जा रहा था। यह दल ३४ छात्रों का था। आनन्द में अपना कार्य पूरा करने के बाद वह दल बड़ौदा लौटने के लिए आनन्द स्टेशन पर आना चाहता था। पर रास्ते की एक संकरी गली में रायफलों से लैस ६ कान्स्टेबलों ने दल को रोक लिया और सभी को बैठ जाने की आज्ञा दी। उन लोगों ने पुलिस की आज्ञा मान ली और बैठ गये। उन विद्यार्थियों के मन में यही विचार आ रहे थे कि दूसरी जगहों की घटनाओं की तरह उन पर भी बैठाकर लाठीचार्ज होगा या गिरफ्तार कर लेंगे। पर यहां तो नारकीय कार्य हुए जिसकी समानता हिटलर के कार्यों से भी नहीं की जा सकती। पुलिसवालों ने उन विद्यार्थियों के सीने से रायफलें अड़ाकर गोलियां दाग दीं। पांच छात्र तो वहीं भूमिसात् हो गये, १२ बुरी तरह घायल हुए। घायलों में से एक अस्पताल में जाकर मर गया।

इस तरह ब्रिटिश सरकार ने जनता पर खूब अत्याचार किया जिसकी करुण कहानी इतिहास गा रहा है।

विहार प्रान्त—

बिहार प्रान्त में दमनचक्र

विहार प्रान्त में शायद ही कोई ऐसा गाँव बचा होगा, जहाँ अगस्त आन्दोलन की लपटें न पहुंची हों। उस समय के नेताओं की गिरफ्तारी के बाद जनता में भयङ्कर तूफान सा उठ आया और स्थान-स्थान पर उसका फल दीखने लगा।

इस क्षेत्र में रेलवे तथा तार आदि सब सूचना के साधन एकदम नष्ट भ्रष्ट कर दिए। २५० के लगभग स्टेशन जला दिए गये। सैंकड़ों की संख्या में तारें तोड़ी गई। उस समय इस प्रकार ज्ञात होता

था कि पटनास्थ लोगों का ही राज्य है इसके साथ अन्य किसी का कोई सम्बन्ध नहीं। उधर ब्रिटिश सरकार को यह सह्य नहीं हुआ। इसके दमन करने के लिए पुलिस और फौज को अंकुश रहित करके दिल खोलकर अत्याचार ढाने के लिए छोड़ दिया, बिहार में पुलिस और फौज ने निरपराध जनता की सम्पत्ति लूटी, गाँव के गांव जला दिए। कई पुरुषों को धधकती अग्नि में जीवित ही जला दिया गया। उस समय नौकरशाही पुलिस ने जो अत्याचार किये उनको सुनकर रोंगटे खड़े हो जाते हैं। यही नहीं, हमारी मां बहिनों के साथ पुलिस व फौजियों ने बलात्कार करके यहाँ तक कि एक एक के साथ तीन-तीनों ने यह दुष्कर्म किया। यहां के एक माननीय नेता को पकड़ के उसके मुंह में एक मेहतर द्वारा पेशाब कराया गया। इस समय छात्रवर्ग भी पीछे नहीं रहा, उसने इसमें दिल खोलकर भाग लिया। लगभग सारे प्रान्त के स्कूल व कालेज बन्द थे। एक दिन विद्यार्थी वर्ग जलूस निकाल रहा था। जब जलूस विधान सभा के भवन से कुछ दूर था, तब सामने फौज दीवार के रूप में खड़ी हो गई। यह फौज संगीन व बन्दूकों से सुसज्जित थी। दूसरी ओर कुछ जनता केसरी की भाँति भारत छोड़ो के नारों से गगनभेदी आवाज करती हुई बढ़ी आ रही थी। फौज के अधिकारी मि० आर्चर ने पूछा तुम आखिर क्या चाहते हो। एक छात्र ने सीना तानकर कहा—हम विधान सभा भवन पर पताका लहरायेंगे। मि० आर्चर ने उत्तर दिया ऐसा न होगा तुम लौट जाओ। इस पर दल में से एक छात्र ने उत्तर दिया—हम तो झण्डा फहराकर ही लौट सकेंगे। आर्चर ने कहा, झण्डा फहराने से पहले अपना सीना खोल लो। इतना कहना था वीर अभिमन्यु ने अपना सीना खोल आगे बढ़ा दिया। मि० आर्चर ने गोली चलाने की आज्ञा दे दी। फिर क्या था ग्यारह के ग्यारह वीर भूमिसात् हो गये। इसके बाद पुलिस ने गोलियों की बौछार कर दी। जनता ने बुरी तरह घायल होकर भी पीछे हटने का नाम न लिया।

इतने में गुम्मद पर एक वीर छात्र भारत छोड़ो का नारा लगाता हुआ दिखाई दिया। विशाल जलूस उसी की ओर चल पड़ा और विधान सभा भवन पर राष्ट्रीय पताका लहरा दी और अपने ११ अमर शहीदों को सलामी देकर जनता लौट गई।

११ अगस्त को गणमान्य नागरिक श्री रामसिंह की हत्या नृशंसों ने बड़ी कठोरता से की। जिसके आगे पशुहत्या भी व्यर्थ हो जाती है। लोहे के नोकदार खूंटे पर गुदा द्वार के सहारे बिठाकर तीन टामियों ने उन्हें दबाया, तब तक दबाते गये जब तक कि खूंटा सिर का भेदन करके बाहर न निकल गया।

इस प्रकार के भयंकर अत्याचारों से बिहार प्रान्त की क्रांति का दमन ब्रिटिश सरकार ने अपनी सारी शक्ति लगाकर किया। महान् अत्याचार किये। जिन अत्याचारों को देखकर आज भी खून गर्म हो जाता है। परन्तु फिर भी सरकार क्रांति को न दबा सकी। बिहार प्रान्त के अनेक वीरों ने भारत-भूमि के लिए बलिदान दिए।

उड़ीसा प्रान्त—

उड़ीसा में क्रांति तथा बलिदान

अगस्त क्रांति के यज्ञ में उड़ीसा का बलिदान भी प्रमुख है। ९ अगस्त ४२ के बाद वहां के बालासार जिले में पुलिस द्वारा भीषण गोलीकाण्ड हुए जिसमें ४२ व्यक्ति मृत्यु के घाट उतारे गये

२७० व्यक्ति घायल हुए, कई गाँवों पर सामूहिक जुर्माना भी किया गया। जो गाँव वालों से जबरदस्ती लिया गया, यहां तक कि महिलाओं को अपने आभूषण देने के लिए विवश किया, पुलिस ने खुलकर नृशंसता का नाच किया।

इस प्रान्त में स्त्रियों को तथा बच्चों को नंगा करके वृक्षों पर लटका कर कोड़े से मार की गई। जिन कोड़ों की संख्या ४ से ४६ तक थी। इस प्रकार उड़ीसा में ब्रिटिश सरकार ने खूब अत्याचार किये।

आन्ध्र प्रान्त—

आन्ध्र की क्रांति

आन्ध्र के लोग स्वभाव से स्वतन्त्रताप्रिय और देशभक्त हैं। अगस्त ४२ में आम जनता ने दिल खोलकर भाग लिया। साथ में विद्यार्थी वर्ग भी किसी से पीछे नहीं था। विद्यार्थी वर्ग ने भी अपने सिर को हथेली पर रखकर इस आन्दोलन में भाग लिया। पश्चिमी गोदावरी जिले में इसी सिलसिले में ४५ नजरबन्द, ३१० को कड़ी सजायें और ४० के लगभग बेंत के शिकार बनाए गये। एक पर ४६ तक बेंत लगाये। इनमें से एक हरिजन छात्र बेंतों की मार से इस संसार से चल बसा। ८६५० रुपये व्यक्तिगत ३९४५०० रुपये सामूहिक जुर्माना लिया गया। सारे आन्ध्र प्रान्त में १३० व्यक्ति नजरबन्द, १७०० को कड़ी सजायें, २१ मौत के घाट उतार दिए गये। ८ लाख के ऊपर जुर्माना हुआ, १५ हजार तारें काटी गईं, १८ रेलवे स्टेशन फूंके गये। ७ रेलवे लाइन उखाड़ी गईं। १० जगह डाकखाने तथा थाने जलाये गये। इस प्रकार आन्ध्र ने बलिदान दिया।

महाराष्ट्र प्रान्त—

महाराष्ट्र में क्रांति तथा बलिदान

महाराष्ट्र का भारत के इतिहास में निराला स्थान है। यहाँ के लोग हृष्ट-पुष्ट तथा बलवान् होते हैं। यहाँ जनता दो भागों में बँटी हुई है। एक ब्राह्मण और दूसरे अब्राह्मण। सरकार के सारे बड़े-बड़े पदों पर ब्राह्मण पार्टी का राज था। परन्तु उस समय अब्राह्मण पार्टी में जागृति पाई गई। अतः इसने सबसे अधिक बढ़ चढ़कर भाग लिया। महाराष्ट्र के सभी जिलों ने ४२ की क्राँति में भाग लिया था। सरकार ने अपनी सारी शक्ति उठी हुई इस क्रांति को दबाने में लगा दी। परन्तु वह सब विफल गई, सरकार की धक्केशाही का फल यह हुआ कि शहर वाले अधिक भड़क उठे। हड़ताल पर हड़ताल होने लगी। इन्हीं के साथ स्कूल कालेज भी बन्द होगये। छात्रवर्ग ने भी इसमें सहयोग दिया। पूने में एक बार छात्रों ने जलूस निकाला, इस पर पुलिस ने गोलियों की वर्षा की, इस पर जनता इधर-उधर होने लगी। बची हुई जनता पर लाठीचार्ज किया। घायल आदमियों को डाक्टर ने संभालना चाहा परन्तु पुलिस ने ऐसा नहीं करने दिया, इस कारण हजारों की संख्या में मनुष्य मृत्यु के मुख में चल दिए।

कुछ दिन बाद बम्बकांड में ५ गोरों की हत्या हो गई। समीप के गोली बारूद के गोदाम में आग लग गई। जिसके कारण १ करोड़ रुपये का नुक्शान हुआ। इस केस में २५ आदमी पकड़े गये। इसी प्रकार पश्चिमी और पूर्वी खान देश में भी आन्दोलन उग्र रूप में था। १४-१५ अगस्त को नन्दूरबार में विद्यार्थियों का एक जलूस शान्तिपूर्वक चल रहा था। किन्तु पुलिस ने अकारण ही उन पर बेंत वर्षा आरम्भ कर दी। इस पर छात्रवर्ग तितर बितर होगया। उत्तेजना पाकर थानेदार

छात्रों की ओर लपका, इतने में एक वीर बालक अपनी छाती तानकर आगे खड़ा हुआ और कहा कि गोली मार दो। उस पर उस नीच थानेदार ने गोली मार दी, परन्तु उसका वार बच गया। इस पर उस वीर बालक ने पुनः अभिमानपूर्वक गोली मारने को कहा इस पर सिपाहियों ने उसे घेरकर गोलियों से भून दिया जिससे वह वीरगति को प्राप्त हुआ। इसके साथ चार और मारे गये और १७ घायल हुए। घायलों की डाक्टरी भी न करने दी। उसी समय वकील गाँधी टोपी पहनकर जा रहा था। उसने इस दशा पर सहानुभूति दिखाई तब उस अधिकारी ने उसे ताँगे से उतार कर कोड़ों से पीटा। इस प्रकार की क्राँति नासिक, अहमदनगर आदि में भी हुई, परन्तु इस प्रान्त में यह विशेषता थी कि वहाँ इन्होंने अदालत तक को भी फूंक दिया।

कर्नाटक में एक वीर बालक की कथा बड़ी वीरतापूर्ण है। हुगली में गोलियों की बौछार से नरेन्द्र नामक एक छोटा सा बालक मृत्यु के मुख में था। उससे पूछा गया कि तुम क्या चाहते हो ? तब उस वीर बालक ने अपनी हाथ की मुट्ठी बाँधकर बड़े जोरदार शब्दों में कहा कि "मैं स्वराज्य चाहता हूं और कुछ नहीं" यह कहकर वह संसार से चल बसा। इसकी अर्थी का जलूस १५ हजार के जन समूह ने बड़ी शान से निकाला। सारे महाराष्ट्र प्रान्त में ७४४६ की गिरफ्तारी, ३२० नजरबन्द किये और फरारी क्राँतिकारियों को पकड़ने के लिए लाखों रुपया खर्च किया गया। इस प्रकार महाराष्ट्र नें देश के लिए बलिदान दिए।

बङ्गाल प्रान्त

बंगाल प्रान्त को राष्ट्रियता का पिता तथा क्राँतिकारी षड्यन्त्रों का घर माना जाता है। यहाँ के मनुष्य कुशाग्रबुद्धि तथा भावुक हैं। इस प्रान्त ने अन्य प्रान्तों के समान नररत्न व देशभक्त उत्पन्न किये। वीरसेनानी सुभाषचन्द्र बोस, खुदीराम बोस, शरतचन्द्र, डा० श्यामप्रसाद मुकर्जी आदि महान् आत्माओं को इसी पवित्र भूमि ने जन्म दिया। सन् ४२ में अन्य प्रान्तों की भाँति इस प्रान्त में भी ब्रिटिश सरकार ने काले कृत्य निम्न प्रकार किये।

२२ स्थानों पर २५ बार गोली चलाई। ३४ आदमी मृत्यु के मुख में पहुंचा दिये। १६६ आदमी सख्त घायल हुए, १४२ को साधारण चोटें आईं। ६३ स्त्रियों का नीच पुलिसियों ने बड़ी बेरहमी से सतीत्व लूटा। ३१ स्त्रियों का बलात्कार से जीवन बेकार कर दिया। १५० स्त्रियों को अन्य उपायों से तङ्ग किया गया। १२४ स्त्रियों को पेट्रोल छिड़क कर जला दिया गया। जिससे १३६५०० रु० की सम्पत्ति नष्ट हो गई। १४०० घर लूटे गये। जिसके फलस्वरूप २१०८७१० की हानि हो गई। ६० परिवारों का सामान कुर्क कर लिया गया। १६ संस्थाओं को गैर कानून करार कर दिया। इस प्रान्त में स्त्रियों के साथ जो अत्याचार किये गए उनके दो उदाहरण दिए जाते हैं।

"मैं" (श्रीमती सिन्धु बाला मैतो) अधरचन्द मैती को स्त्री हूं और चूड़ीपुर गाँव मदियादल थाने जिला मिदनापुर की रहने वाली हूं, मेरी आयु १६ वर्ष की है, मैं एक बच्चे की मां हूं, १-६-४३ को ६॥ बजे सुबह नलिनी राहा कुछ फौजी सिपाहियों को लेकर मेरे मकान पर आया, कुछ सिपाही मेरे पति को जबरदस्ती पकड़ कर ले गये। इस प्रकार में अकेली रह गई। नलिनी राहा मेरे पास आया और उसने जबरदस्ती मेरे साथ बलात्कार किया। मैं बेहोश हो गई, यह मेरे साथ दूसरा बलात्कार था।

@VaidicPustakalay

इससे पहले २७-१०-४२ को बलात्कार किया गया था। दूसरे बलात्कार के बाद जो जख्म आये उससे आहत होकर वह ६ दिन बाद मर गई।

इस प्रकार की घटनाओं में औरतों के गाल काटने, उनके कपड़े उतार कर नंगा करने, उनकी छातियां काटना तथा निर्दयता के साथ उनको पीटने तथा घायल अवस्था में उन्हें घसीटने की भी घटनायें शामिल हैं।

पुरुषों को भी हाथी के पैरों से बाँध-बाँध कर घसीटा गया। अमानुषिक अत्याचार किये। इस प्रकार बंगाल क्रांति को दबाने का ब्रिटिश सरकार ने पूर्ण यत्न किया।

आसाम प्रान्त—

आसाम में क्रांति की लहर

सिपाही विद्रोह में ब्रिटिश हकूमत को जड़ से उखाड़ देने की चेष्टा में सहयोग देने वाले और अन्त में उस अपराध के लिए हंसते-हंसते फाँसी की रस्सी को स्वयं अपने गले में डाल लेनेवाले मनीराम दीवान का आसाम भी सन् ४२ की क्राँति में चुपचाप न बैठा रहा। यहाँ के निवासियों ने खूब दिल खोलकर क्राँति की, इस पर सरकार ने इसको कुचलने के लिए भी पुलिस को खुल्लमखुल्ला खेलने का अवसर दिया। वहाँ पुलिस ने निहत्थी जनता पर तरह-तरह के जुल्म ढाये। कनकलता और तुलेश्वरी जैसी नौजवान लड़कियों की हत्या के सिवाय २४ फरवरी को जौहर जेल में जहां राजबन्दी अपने पिंजरे में बन्द थे, लाठी चार्ज किया गया, जिसके फलस्वरूप में १८० जेलबन्दी बुरी तरह घायल हुए।

इस प्रकार अत्याचार और बरबरता की चरम सीमा थी, इसी प्रान्त में मिरी जाति में कमला मिरी का नाम भारतीय स्वातन्त्र्य संग्राम के इतिहास में स्वर्णाक्षरों में लिखा जायेगा। भारत की आजादी और अपने सिद्धान्त के निमित्त अपने प्राण हंसते-हंसते बलिवेदि पर चढ़ा दिए। आसाम प्रान्त में महिलाओं ने जो क्रांति की, वह चिर स्मरणीय है।

बलिया में क्राँति और दमन

इस प्रान्त में अन्य प्रान्तों की तरह क्रान्ति की ज्वालायें भड़क उठी थीं। यहाँ पर नौकरशाही पुलिस ने जो अत्याचर किए उसके उदाहरण अन्य प्रान्तों में नहीं मिलते।

१७ अगस्त को जनता का समूह कोतवाली की ओर राष्ट्रीय पताका फहराने को गया। परन्तु वहां के चालाक अधिकारियों ने गाँधी कैम्प खोलकर उनका स्वागत किया और वहां राष्ट्रीय पताका फहराने के बाद जब जनता ने अपने छिने हुए हथियार माँगे तब अधिकारियों ने कहा कल मिल जायेंगे। जब १८ अगस्त को पच्चीस-तीस हजार का जन-समूह अपने छिने हुए शस्त्र लाने के लिए थाने की ओर गया। परन्तु थानेदार ने पूर्व ही इसका प्रबन्ध कर लिया था,कुछ सशस्त्र सिपाही राजमार्ग के वृक्षों पर चढ़ा दिए, कुछ सशस्त्र पुलिसिए छतों पर लिटा दिए। जब जन-समूह अन्दर आगया तब कम्पाउण्ड का दरवाजा बन्द कर दिया और ऊपर से गोली वर्षा आरम्भ कर दी, जनसमूह वीरता-पूर्वक गोलीवर्षा सहता रहा। किवाड़ों के पास एक नोकदार धन था। उसका बोलना ही एक इशारा था।

इसी मध्य राष्ट्रीय पताका को गिराते हुए देखकर एक जवान लड़का कौशल्याकुमार इस बदमाशी को सहन न करता हुआ झटपट गोली संगीनों की सरसराहट में चतुदर्शीय बालक थाने में प्रवेश कर गया और अपनी छाती के बल से झण्डे को थाम लिया। छाती के मध्य में पताका का बांस था। उसके खुले हुए वक्षस्थल पर गोली लग गई। उसके फलस्वरूप उस वीर बालक के प्राण पखेरू "झण्डा ऊँचा रहे हमारा" कहते हुए उड़ गये। परन्तु आश्चर्य है कि प्राण न रहते हुए भी उस किशोर का मृतक शरीर आध घण्टे तक झण्डे को पकड़े रहा, तब निर्दयी हत्यारों ने उसका शरीर छलनी-छलनी कर डाला। धन्य है उस वीर को जब तक गोली से वह ढेर नहीं होगया तब तक झण्डा थामे रहा।

इसी प्रान्त में निरपराधी मनुष्यों को किस प्रकार पीटा गया, उसका दृश्य इस घटना से पता लगता है। इलाहबाद के मैदान में ५॥ बजे सात बन्दियों को बेंत मारने की आज्ञा दे दी गई। जब बेंतें लगने लगीं उस समय सिविल सर्जन उपस्थित थे। बेंत कपड़ा पहना कर लगाई थीं, मि० पियर्स ने कहा कि ऐसे बेंत नहीं लगा करते, कपड़े उतार कर ७-७ बेंतें फिर से लगाओ, बन्दियों के जनेऊ तक उतार लिए गए। एक-एक लंगोट पहनने को दी गई। फिर जोर-जोर से बेंतें लगने लगीं, सातों बन्दी बुरी तरह छटपटा रहे थे। सारा शरीर लहूलुहान होगया था, सब के सब मूर्च्छित दशा में गिर पड़े।

बाबू शमशेर बहादुरसिंह अपने गाँव से घोड़े पर चढ़कर बलिया की ओर आ रहे थे। पचखोरा के पास उन्हें एक फौजी लारी और एक कार मिली, कार पर मि० पियर्स, मि० एन० डी० कक्कर और डिस्ट्रिक्ट बोर्ड के इन्जीनीयर मि० कृष्णानन्द सिन्हा थे। इन्हें देखकर कार खड़ी कर दी गई और तब मि० एन० डी० कक्कर ने कहा कि इनके भाई बाबा राधागोविन्दसिंह बड़े भारी क्राँतिकारी हैं, उन्होंने ही बाँसडीह तहसील का खजाना लुटवाया है. फिर क्या था उन्हें पकड़कर मोटर में डाला गया और घोड़े को मारकर भगा दिया। डा० शमशेरसिंह को जिले भर के पुलिस अफसरों द्वारा बलिया के अधिकारियों के सामने जूतों, थपेड़ों और बेंतों से खूब पीटा गया। स्वयं मि० मार्श-स्मिथ बूट पहनकर कभी बूट की ठोकर से और कभी घुटने से मारकर सिपाहियों को सिखाते थे कि बागियों को ऐसे मारा जाता है। ठाकुर साहब खरौने के ताल्लुकेदार थे। इससे दो दिन पहले पुलिस के कर्मचारी उन्हें सलामी देते थे। परन्तु आज किसी में हिम्मत न थी कि उन्हें बचावे।

२४ अगस्त को सुखपुरा में फौज आई। इसी गांव के पास ४-५ दिन पहले छीनी जा चुकी थीं। लारी की घरघराहट सुनते ही सब लोग गाँव छोड़कर भाग निकले। घरों में औरतें बच्चे बूढ़े बच गये थे। फौज ने आते ही गोली बरसानी शुरू कर दी, सुखपुरा के महन्त सरकार के अंध भक्त थे। उसने १०००० रु० लड़ाई का चन्दा दिया था। उसका मकान ऊँचा था, फौज वाले उस पर चढ़ गये। बूढ़े महन्त भी प्राणरक्षा के लोभ से पीछे की ओर से ४० फीट नीचे कूद पड़े। बच तो गये परन्तु एक टांग टूट गई। गांव के बाहर क्राँतिकारियों के नेता चंडीप्रसाद जा रहे थे, फौज वालों ने उन्हें रोका। किसी ने बतला दिया कि ये क्रान्तिकारियों के नेता हैं। उन्हें गोली मार दी गई। बा० चंडी-प्रसाद बलिया लाये गये। वहां अस्पताल में मृत्यु को प्राप्त हुए।

बलिया में ब्रिटिश सरकार ने महान् अत्याचार किये, उन अत्याचारों की गिनती करनी बड़ी कठिन है, उनमें से कुछ आंकड़े यहाँ दिए जाते हैं। १००० गिरफ्तारियाँ हुईं, ३० गाँव भस्मसात् कर दिये गये। १७ जगह सरकार ने गोलीकांड करवाये। २१५ घर खण्डशः कर दिये गये। १०० से अधिक घर जला दिए गए। १२००००० रुपया सामूहिक जुर्माना किया। इस प्रकार बलिया में खूब अत्याचार किए।

जहाँ ब्रिटिश सरकार ने अत्याचार करने में कमी नहीं रखी वहाँ जनता भी क्रान्ति करने में पीछे नहीं रही। जनता ने थाने आदि जलाये। रेलवे लाइन तोड़ डालीं। स्टेशन जला दिये। सर्वत्र जनता का राज्य हो गया। बलिया की जनता ने भी अपनी स्वतन्त्र सरकार स्थापित की, बलिया के नाहर श्री वीर चित्त पाण्डेय उस समय के स्वतन्त्र शासक नियुक्त हुए। इस प्रकार संयुक्त प्रान्त में भी खूब क्रांतियाँ हुईं।

सन् ४२ का शहीद रमेश

(ब्र० श्री मनुदेव)

अत्याचार करने वाले से अत्याचार सहने वाला अधिक पापी होता है—महर्षि दयानन्द के इस आदर्श वाक्य को मानकर निर्भीकतापूर्वक अपने पथ पर चलने वाले वीर युवक रामसहाय ने फाल्गुन कृष्णा सप्तमी सं० १९६७ को विजयगढ़ (अलीगढ़) के आर्य परिवार में श्री ला० बैनीराम के घर जन्म लिया। घराना धन सम्पन्न होने के कारण रामसहाय का बाल्यकाल बड़े लाड-प्यार से बीता। रमेश का पूर्व नाम रामसहाय था। ला० बैनीराम के रमेश ही एक पुत्र था। इसलिए शिक्षा प्राप्ति के लिए प्रेमवश रमेश को दूर न भेज सके। इस कस्बे के मिडल स्कूल में मिडल तक ही रमेश ने शिक्षा प्राप्त की। मिडल तक शिक्षा प्राप्त करके घर पर ही अंग्रेजी की शिक्षा प्राप्त करने लगे। अंग्रेजी के साथ पं० गुरुदत्त जी शर्मा से धार्मिक शिक्षा भी लेने लगे। पिता जी के साथ सन्ध्या, हवन भी किया करते। गुरुकुल वृन्दावन आदि के उत्सवों में जाने से उनकी प्रवृत्ति आर्यसमाज की ओर बढ़ती गई।

नगरों में गन्दे छन्दों का प्रचार था। अतः रमेश ने बाल्यकाल में ही कुछ छन्द महर्षि दयानन्द तथा आर्य सिद्धान्तों के सम्बन्ध में रचकर छोटी पुस्तिका में बद्ध कर दिये। यह लगन धीरे-धीरे बढ़ती गई और २१ वर्ष की आयु में युक्त प्रान्त के प्रमुख आर्यसमाज विजयगढ़ के मन्त्री चुने गये। आपने अपने मन्त्रिकाल में जो उत्सव कराये उनका प्रबन्ध अति प्रशंसनीय था।

नमक सत्याग्रह शुरू हो चुका था। रमेश बिना घर पर सूचना दिए दुकान पर एक पत्र रखकर ठा० टोडरसिंह के जत्थे में एक मित्र को और साथ लेकर सम्मिलित होगया। यह जत्था पैदल आगरा को जा रहा था। जब पिता जी को इस बात का पता चला तभी पिताजी ने कार द्वारा पीछा किया और दोनों को पकड़ लिया, साथी बातों में आकर लौटने के लिए तैयार होगया, परन्तु रमेश नहीं माना। अन्ततो गत्वा पिता जी ने रमेश को तैयार किया कि चलो तुम्हें घर से आशीर्वाद के साथ

सत्याग्रह में भेजेंगे। रमेश लौट आया। परन्तु घरवालों की अन्य इच्छा देखकर रात्रि के तीन बजे घर से चुपचाप चल दिया और श्रीकृष्णदत्त पालीवाल के जत्थे में शामिल होगया जो उसी दिन सत्याग्रह करने वाला था। रमेश को छोटा जानकर जत्थे में सम्मिलित नहीं किया, किन्तु अलीगढ़ जिले में प्रचार कार्य करने के लिए उसको रख लिया। रमेश ने यहाँ खूब प्रचार किया।

विदेशी वस्त्र-बायकाट-आन्दोलन में रमेश ने न केवल विजयगढ़ में ही विदेशी वस्त्रों की होली जलाई अपितु अलीगढ़ तथा हाथरस जाकर अनेक दुकानों के आगे लेट-लेटकर विदेशी दुकानों पर सीलें लगवाईं।

सन् १९३१ के आन्दोलन के पश्चात् कांग्रेस और तिरंगा झंडा अवैधानिक घोषित कर दिया गया। जनता को भयभीत करने के लिए पुलिस का सर्वतोमुखी प्रयत्न पूरे जोर पर था। उस समय विजयगढ़ में रमेश ने राष्ट्रीय झण्डा हाथ में लेकर, "विश्व विजयी तिरंगा प्यारा झंडा ऊंचा रहे हमारा" का नाद करते हुए सारे नगर में जलूस निकाला। दूसरे दिन प्रातः ही जबकि सोकर उठे भी नहीं थे कि पुलिस वारंट लेकर रमेश के घर आगई और रमेश को लेकर पुलिस चौकी पहुँच गई। पुलिस चौकी पर इनके मित्र गणपतिचन्द्र केला ने तथा उनके अनुज श्री महेशचन्द्र ने नारों द्वारा स्वागत किया तथा फूलमालायें पहनाईं। पुलिस को यह सब भी अवैधानिक लगा और साथ में इनको भी गिरफ्तार कर लिया गया। अलीगढ़ अदालत में केस चला और महेशचन्द्र को आगाह करके बरी करने के पश्चात् दोनों मित्रों को तीन-तीन मास का कठोर कैद का दण्ड मिला और अलीगढ़ जेल की कालकोठरी में दोनों मित्र बन्द कर दिए गए। कुछ दिनों के पश्चात् इनकी बदली लखनऊ सेंट्रल जेल में हो गई। जेल में इनसे चक्की चलवाई जाती थी। लखनऊ से इनकी बदली फैजाबाद हो गई। फैजाबाद जेल से जब रमेश मुक्त हुआ तब स्वर्ण-समान तपकर चमका।

जेल से छूटकर आर्यसमाज क्षेत्र में इस समय कार्य की आवश्यकता अनुभव कर रमेश विजयगढ़ में आ जमा और समाज का कार्य करने लगा। थोड़े ही दिनों के बाद प्रान्तीय सभा के निरीक्षकों द्वारा समाज का निरीक्षण हुआ और उसने अपने पत्र "आर्य मित्र" में विजयगढ़ समाज को प्रान्त में अग्रणी ठहराया। इन्हीं दिनों छोटी बहन श्री विद्यावती का विवाहोत्सव आगया। रमेश ने सोचा ऐसे अवसर पर आर्यसमाज का भी प्रचार होना चाहिए। अतः विवाहोत्सव के साथ समाज के आर्योत्सव का भी आयोजन हुआ। जिसमें पं० धुरेन्द्र जी शास्त्री, स्वामी ब्रह्मानन्द जी सरस्वती आदि विद्वानों को आमन्त्रित किया गया। विद्वान् महानुभाव रमेश की कार्य-कुशलता एवं लग्न को देखकर प्रभावित हुए।

रमेश अपने जिले में पत्र प्रकाशन की कमी को देखकर पत्रकला की ओर झुका और अपने ताऊ शोरीलाल जी के प्रेम के वशीभूत होकर दिल्ली को चल दिया। सन् १९३४ में दिल्ली में अ०भा० हिन्दी साहित्य सम्मेलन का अधिवेशन हो रहा था। रमेश ने उसके लिए अपनी सेवायें बिना कुछ लिए समर्पित कर दीं और वहां इस योग्यता से कार्य किया कि दिल्ली के अनेक प्रमुख व्यक्ति अनायास ही उसकी ओर आकृष्ट हो गये। कुछ समय पश्चात् ही रमेश "वीर अर्जुन" का सहकारी सम्पादक चुन लिया गया।

दैनिक और साप्ताहिक वीर अर्जुन का कार्य करते हुए भी रमेश केवल उसी में फंसा न रह सका और इस कार्य को सुचारु रूप से चलाते हुए भी सार्वजनिक और राजनीतिक कार्यों में भी भाग लेता

@VaidicPustakalay

रहा। रमेश ने सुभाषचन्द्र बोस अब्दुल कलाम आजाद आदि की जीवनी लिखकर प्रकाशित की। उनकी लेखन शैली का पता केवल इसी से लग जाता है कि सुभाषचन्द्र बोस की जीवनी के दो मास में दो संस्करण निकल गये।

इसी बीच निजाम हैदराबाद में नागरिक स्वतन्त्रता का हनन कर हिन्दुओं पर अत्याचार होने से सारे भारत में हलचल मची। सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा के प्रयत्न करने पर भी जब रियासत में किसी तरह की सुविधायें नहीं मिलीं तब अन्त में सत्याग्रह की घोषणा कर दी गई। सत्याग्रह संग्राम प्रारम्भ होते ही जहां देश के हजारों वीरों ने अपने को सत्याग्रह के लिए प्रस्तुत किया, वहां रमेश भी किसी से पीछे नहीं रहा। सत्याग्रह समिति जहां उपयोगिता समझती वहीं पर रमेश को लगा देती थी। रमेश के आग्रह पर भी उसे सत्याग्रह न करने दिया और उसे प्रचार कार्य के लिए दौरे पर भेज दिया गया। अनेक स्थानों पर कार्य करते हुए रमेश अपने एक मित्र के साथ मनमाड़ सत्याग्रह कैम्प पर पहुँचा, वहां कुछ जिलों और शहरों में सत्याग्रह स्थानों का दृश्य देखकर उसे वास्तविक स्थिति का पता लगा और उसी के अनुसार लौटकर उत्तर भारत में प्रचार कार्य किया। अनेक सत्याग्रहियों और धन से रमेश ने जो सहायता पहुँचाई उसके लिए रक्षा समिति के अधिकारियों ने मुक्तकंठ से प्रशंसा की। रमेश भी जब तक सत्याग्रह चलता रहा चुपचाप न बैठा।

सन् १९३९ में यूरोपीय महायुद्ध का श्रीगणेश हुआ। भारत से बिना पूछे ही उसकी ओर से युद्ध की घोषणा कर दी गई और बलात् जनता से युद्ध सहयोग के नाम से चन्दा प्राप्त किया जाने लगा। भारतीय नेताओं की चेतावनी और वारटैक्स के विरोध का कोई उत्तर न मिला तब इसके विरुद्ध महात्मा गांधी ने सत्याग्रह छेड़ दिया। सत्याग्रह के लिए प्रत्येक को आज्ञा-पत्र लेना पड़ता था। रमेश ने भी सत्याग्रह के लिए प्रार्थना-पत्र भेजा और स्वीकृति मिल गई। २३ फरवरी को विजयगढ़ में सत्याग्रह किया और पुलिस ने वारण्ट दिखाकर गिरफ्तार कर लिया। अलीगढ़ में रमेश का केस चला और अन्यायी सरकार ने १८ मास की सख्त कैद और १०० रु० जुर्माना किया।

फतेहगढ़ सैंट्रल जेल में रहते हुए रमेश ने "बन्दी" नामक हस्तलिखित पाक्षिक पत्र निकाला जिस के प्रकाशन से अधिकारी विक्षुब्ध हो उठे और रमेश की बदली बाराबंकी नाम की जेल में कर दी, वहां पर भोजन की व्यवस्था ठीक न होने से तीन चार दिन तक उपवास करना पड़ा। फिर भी रमेश जेल में धार्मिक प्रचार करते रहे। वहाँ से रमेश लखनऊ कैम्प जेल में भेज दिये गये। वहां पर भी नई जेल होने से भोजन के लिए उबले हुए गेहूं दिये जाते थे। अतः बन्दियों ने भूख हड़ताल कर दी जिसके कारण अधिकारी बौखला उठे। उधर बन्दियों ने नारे लगाने प्रारम्भ कर दिए। परिणामतः लाठीचार्ज हुआ, रमेश को भी कई स्थान पर चोटें लगीं।

इन्हीं दिनों सरकार कुछ झुकी और कांग्रेस से समझौता होगया। फलस्वरूप रमेश भी चौदह मास का कठोर कारावास भुगतकर सभी साथियों के साथ मुक्त कर दिया गया। लौटकर आया तो विजयगढ़ दिल्ली आदि सभी स्थानों पर स्वागत किया गया।

कर्तव्य भी कभी कभी विकट समस्या उत्पन्न कर देता है। विजयगढ़ के टाउन एरिया चुनावों में रमेश जी के सम्मुख एक ऐसा ही प्रश्न आ उपस्थित हुआ। चुनाव में एक ओर उनके गुरु थे दूसरी ओर अनन्य मित्र ? आपस में समझौता कराने के लिए अनेक चेष्टायें कीं किन्तु सब व्यर्थ। अन्त में चुनाव वोटिंग प्रारम्भ हुआ। रमेश जी के गुरु की ओर से सभी परिवार जन आन्दोलन कर रहे थे

और रमेश भी उन्हीं की ओर से पूर्ण उत्साहपूर्वक कर्तव्य पालन में संलग्न थे। वोट जब खुले तो सब के सब यह देखकर आश्चर्यचकित रह गए कि रमेश का वोट अपने मित्र के लिए था। पिता एवं गुरु जी बिगड़े। नाराजगी का पत्र लिखा गया, किन्तु रमेश ने शरीर पर गुरु का और मन पर मित्र का अधिकार बताकर अपना आदर्श उपस्थित किया।

आठ अगस्त १९४२ के "अंग्रेजो भारत छोड़ो" आन्दोलन में भी रमेश ने बढ़-चढ़ कर भाग लिया। सब जगह नेताओं की गिरफ्तारी हो रही थी। आन्दोलन के कार्य में भाग लेने से रमेश के भी वारण्ट होगए। वारण्ट होते ही रमेश पूर्ण रूप से आन्दोलन का कार्य करने के लिए "वीर अर्जुन" के सम्पादक पद से भी त्यागपत्र देकर अपने जिले में कार्य करने चले गये। वहाँ भी पुलिस रमेश की खोज कर रही थी। रमेश को पाकर जिले में नवजीवन की लहर दौड़ गई।

१५ जून ४३ को रमेश विजयगढ़ में थे। बरसात हो रही थी। ऐसे समय में पुलिस इनके घर पर आ धमकी। रमेश उस समय भोजन कर रहा था। वृद्धा माँ बीमार थी। इसी समय फाटक से आवाज लगी। मां ने कहा कि यहां कोई नहीं है, पुलिस फाटक तोड़ने का प्रयास करने लगी। पिता जी ने आकर फाटक खोला तो थानेदार आपे से बाहर होकर गालियां देने लगा। भला कौन सपूत अपने आगे पिता का अपमान सह सकता है। रमेश उछलकर थानेदार की गर्दन पर सवार हो गये और क्षमा मांगने पर छोड़ा।

मकान की तलाशी लेकर रमेश को गिरफ्तार कर लिया। यह समाचार सारे नगर में फैल गया। हजारों की भीड़ में रमेश जी पुलिस के साथ चल दिए। जनता ने शानदार विदाई दी। १५ जून को रमेश थाने में रखे गये। १६ तारीख भी थाने में बीती। १७ जून को कमरे में भेज दिए गये। १७ जून को जेलर ने कमरे में रमेश को बुलाकर कहा कि तुम पर डकैती के केस चलाये जायेंगे। यदि छुटकारा चाहते हो तो मुखबिर बन जाओ। परन्तु रमेश ने अपने को निर्दोष बताकर मुखबिर बनने से इन्कार कर दिया। शाम को दो पुलिस अफसर जेल पहुंचे और रमेश को अलग कमरे में बुलाया।

१९ जून को प्रातः जब पिता जी सर्किल इन्सपेक्टर को पत्र लिख रहे थे तभी जेल का वार्डर उनके पिता के पास आया, पूछने पर कहा कि रमेशचन्द्र का शव ले जाइए। रात कुयें में गिरकर उसने आत्महत्या करली। यह सुनकर लोगों ने कहा ऐसा नहीं हो सकता, उनको मार डाला होगा। तभी सारा बाजार बन्द हो गया। रमेश के पिता अलीगढ़ पहुँचे, वहां पहुंचकर बहुत कोशिश करने पर भी अधिकारियों की बहानेबाजी के कारण रात को शव मिला। वहाँ से १७ मील दूर ताँगे में शव को विजयगढ़ लाए। कुछ प्रतिष्ठित सज्जनों द्वारा शव का परीक्षण किया गया। गले पर छोटे फलकों की माला, दोनों बाहों पर बड़े-बड़े फलक, पैरों पर खींचने के निशान और घाव, सिर पर छोटे बड़े घाव और सूजन इतने अधिक कि जिसके कारण मुंह टेढ़ा हो गया और एक आंख बन्द थी, पोस्टमार्टम की चीर फाड़ से पृथक् यह सब देखकर उसी समय ढाई सौ प्रतिष्ठित सज्जनों ने हस्ताक्षर गवाही के रूप में कर दिए। कुछ सज्जनों ने उनके पिता जी से कहा पुत्र के अन्तिम दर्शन कर लीजिए। उस समय उनके पिता ने कहा कि मेरे हृदय पर तो उसका जाते समय का शेर जैसा चित्र खिंचा हुआ है उसे मैं विकृत नहीं करना चाहता, इसके बाद रमेश का अन्त्येष्टि संस्कार कर दिया गया। इस प्रकार देश जाति का भला करता हुआ रमेश इस लोक से प्रस्थान कर गया।

सन् ४२ का शहीद सूरज

(ब्र० मनुदेव)

भारत के स्वतन्त्रता आन्दोलनों में सन् ४२ का अगस्त आन्दोलन भी अपना कम महत्त्व नहीं रखता है। जहाँ अनेक शहीदों ने अपना बलिदान देकर स्वतन्त्रता की नींव मजबूत बनाई, वहां हम एक १६ वर्षीय सुकोमल बालक को भी नहीं भूल सकते। जिसने ब्रिटिश सरकार को दफनाने में अपने को किसी भी प्रकार पीछे नहीं रखा।

संयुक्त प्रान्त के बलिया कस्बे में 'सूरज' के उदय होने से वहाँ छाया हुआ अन्धेरा फिर दूर हुआ। इस महान् आत्मा का ध्यान बचपन से ही देशसेवा की ओर उतरोत्तर बढ़ता गया। सन् ४० में बलिया में व्यक्तिगत सत्याग्रह चलाया गया। १४ वर्ष की बाल्य अवस्था में इस सत्याग्रह का नेतृत्व भी सूरज को सौंपा गया और इस युवक ने निर्भीकता से इसका संचालन किया। ब्रिटिश सरकार ने इस स्वतन्त्रता के पुजारी को ६ महीने के लिए जेल का मेहमान बना दिया। जब सूरज मजिस्ट्रेट के सामने लाया गया तो मजिस्ट्रेट ने उसकी मोहनी मूर्ति देखकर कहा—"युवक तुम माफी मांगकर इन भयंकर यातनाओं से छुटकारा पा लो।" नौकरशाही के ये शब्द सूरज की क्रोधाग्नि में घी का काम करने लगे।

युवक ने सीना खोलकर कहा—"मुझे अपना अतिथि बना लो" युवक के यह दृढ़ शब्द कोर्ट के इस कोने से उस कोने की टक्कर लेकर ऐसे गूञ्जे कि वहां उपस्थित लोग अवाक् रह गये। ६ महीने का कारावास भुगतकर सूरज अंधेरे से प्रकाश में आया।

सन् ४२ में फिर विद्रोह उठा और बलिया का बच्चा-बच्चा विद्रोही समझा जाने लगा। सूरज पहला व्यक्ति था, जिसने बलिया में दफा १४४ को तोड़ा। सरकार की आंख तो युवक पर पहले से ही थी। फौरन ही चारदिवारी में युवक को बन्द कर दिया गया। इससे जनता में भारी क्षोभ फैल गया। नौकरशाही को जनता की एक साथ उठी हुई आवाज के सामने झुकना पड़ा और सूरज १९ अगस्त को छोड़ दिया गया। यह युवक प्राणों की ममता तो होश सम्भालते-सम्भालते ही छोड़ चुका था। इधर महात्मा गाँधी की गांव संगठन योजना चल रही थी। सूरज भी जेल ले निकल कर सीधा ग्राम-संगठन के लिए चल पड़ा। अभी सूरज को सींकचों के बाहर निकले तीन दिन भी पूरे न होने पाये थे कि न्याय का स्वांग रचने वाली सरकार ने २२ अगस्त को फिर सूरज को अपना मेहमान बनाया और इस निर्दय नौकरशाही ने नग्न कर सरे बाजार में २० बेंत लगाये। लेकिन सूरज ने दु:ख की आह तक नहीं खेंची। तब प्रतिहिंसा के प्यासे नर-पिशाच अधिकारी मार्संस्मिथ ने ४० बेंत फिर लगाये और उसके चूतड़ों को तेज संगीनों से छेदा गया। बाद में फौजी सरकार द्वारा उसे ७ वर्ष की कठोर कारावास की सजा सुनाई गई और सींकचों में बन्द कर दिया।

इधर लोगों का उत्साह सरकार को उलटने में कम नहीं हुआ था। सत्याग्रहियों का एक जत्था सोनवरस के थाने को (जिसमें सूरज बन्द था) कब्जे में करने के लिए थाने में घुस गया। सूरज भी मुक्त होकर जत्थे में मिल गया। संगठित जनसमूह को देखकर पुलिस भी थर्राने लगी और अपने पूरे वेग के

साथ चारों ओर गोलियों ने देश पुजारियों को घास की तरह जमीन पर बिछा दिया। सूरज के भी सीने पर गोली लगी और "वह भारत माता की जय" के नारे लगाता हुआ भारत मां के चरणों में सदा के लिए सो गया।

उसके खून के छींटे भारत की छाती पर पक्के हो गये हैं। उसकी मृत-आत्मा छाया रूप में हमें पुकार पुकार कर कह रही है, मेरे खून को जिन निर्दयी नौकरशाही ने चूसा है उसे भूलना मत।

क्या आज का स्वतन्त्र भारत इन शहीदों के त्याग का मूल्य आंक रहा है?

अमर शहीद तिलक डेका

(ब्र० मनुदेव)

आजादी की लड़ाई में बलिदान होने वाले वीरों में प्रहरी तिलक डेका का स्थान भी बहुत ऊंचा है। आसाम प्रान्त का नौगाँव जिला सन् ४२ के विद्रोह में किसी प्रकार पीछे नहीं रहा। वह वीर इसी जिले में ग्राण्डट्रंक रोड से ३-४ मील दूरी पर बसे हुए बरापुजिया ग्राम का निवासी था, और ग्राम का सारा कार्य प्राचीन प्रथा के अनुसार संगठन तथा सहयोग द्वारा बड़े सुचारु रूप से चल रहा था। गाँव के प्रत्येक नाके पर गाँव के लोगों का क्रमवार पहरा लगा रहता था और पहरेदार का काम केवल इतना था कि वह किसी भी सरकारी कर्मचारी, पुलिस या फौज के आने पर अपने साथ रहने वाली तुरही बजाकर गाँव वालों को सचेत कर दे। गांव की बनाई गई इस शान्ति सेना का सिपाही तिलक डेका भी था, जो अपनी ड्यूटी बड़ी सतर्कता से दिया करता था।

सहसा एक दिन जबकि वीर तिलक डेका गांव के बाहर पहरा दे रहा था, फौजी सिपाहियों की टुकड़ी गांव पर आक्रमण करने के लिए आ पहुँची। उसने तुरन्त ही अपनी तुरही को बजाते हुए जनता को सचेत होने की सूचना दी, किन्तु एक बार बजा चुकने पर जब वह पुनः बजाने की चेष्टा में उसे मुंह के पास लिए जा रहा था कि तुरन्त ही रिवाल्वर की नली उसकी छाती से आ लगी और एक कड़कते हुए स्वर ने कहा "यदि जीवित रहना चाहता है तो तुरही बजाने का ख्याल छोड़ दे।"

विस्मित और भौचक्के हो जाने वाले तिलक डेका ने एक क्षण में अपने कर्त्तव्य पर विचार करते हुए उत्तर दिया—

कर्त्तव्यच्युत होने से मृत्यु अच्छी है। मैं अपनी जिम्मेदारी को अवश्य पूरा करूंगा।

तुरही को बजाना था अस्तु वह बजकर ही रही। उसका गगनभेदी स्वर मीलों तक गून्ज उठा, और साथ ही धाँय करती हुई रिवाल्वर की एक गोली उसके वक्षःस्थल को विदीर्ण करती हुई पार हो गई। कर्त्तव्यपरायण वीर भारत माता की जय कहता हुआ वहीं भारत भूमि की पवित्र गोद में गिर पड़ा और उसकी गुलामी सदैव के लिए छूट गई।

तुरही की आवाज पाकर गाँव के सब आदमी घटना स्थल पर आ पहुंचे और वीरात्मा तिलक डेका की लाश उठाने का प्रयत्न करने लगे, यद्यपि फौज वालों ने लाश देने में बहुत विरोध किया, यहाँ तक कि गोली चला दी। २-३ आदमी और शहीद होगये, लेकिन शान्त और संगठित जनता अन्त में विजयी होकर शहीदों को धूमधाम से उठा लाई।

खूब लड़ी मर्दानी............

सिंहासन हिल उठे राजवंशों नें भृकुटो तानी थी।
बूढ़े भारत में भी आयी फिर से नयी जवानी थी।।
गुमी हुई आजादी की कीमत सब ने पहचानी थी।
दूर फिरंगी को करने की सब नें मन में ठानी थी।।

चमक उठी सन् सत्तावन में वह तलवार पुरानी थी।
बुन्देले हरबोलों के मुख हमनें सुनी कहानी थी।
खूब लड़ी मर्दानी वह तो झांसी वाली रानी थी ।।१।।

अनुनय विनय नहीं सुनती है विकट शासकों की माया।
व्यापारी बन दया चाहता था जब वह भारत आया।
डलहौजी नें पंर पसारे, अब तो पलट गयी काया।
राजाओं, नब्बावों को भी उसने पैरों ठुकराया।

रानी दासो बनी, बनी वह दासी अब महारानो थी।
बुन्देले हरबोलों के मुंह हम ने सुनी कहानी थी।
खूब लड़ी मर्दानी वह तो झांसी वालो रानी थी ।।२।।

छीनी राजधानो देहली की, लखनऊ छीना बातों बात।
कैद पेशवा था बिठूर में, हुआ नागपुर पर भी घात।
उदयपुर, तंजौर, सितारा, कर्नाटक की कौन बिसात।
जब कि सिन्धु, पंजाब, ब्रह्म पर अभी हुआ था वज्रनिपात।

बंगाल, मद्रास आदि की भी तो यही कहानी थी।
बुन्देले हरबोलों के मुंह हमने सुनी कहानी थी।
खूब लड़ी मर्दानी वह तो झांसी वाली रानी थी ।।३।।

रानी रोई रनवासों में बेगम गम से थी बेजार।
उनके गहने बिकते थे कलकत्ते के बाजार।
सरे आम नीलाम छापते, थे अंग्रेजों के अखबार।
नागपुरी ये जेवर ले लो, लखनऊ के लो नौलखहार।

यों परदे की इज्जत परदेशी के हाथ बिकानी थी।
बुन्देले हरबोलों के मुंह हमने सुनी कहानी थी।
खूब लड़ी मर्दानी वह तो झांसी वाली रानी थी ।४।।

कुटियों में थी विषम वेदना, महलों में आहत अपमान।
वीर सैनिकों के मन में था, अपने पुरखों का अभिमान।
नाना, धुन्धूपन्त पेशवा जुटा रहा था सब सामान।
बहिन छबीली ने रणचण्डी का कर दिया प्रकट आह्वान।

हुआ यज्ञ प्रारम्भ उन्हें तो सोई ज्योति जगानी थी।
बुन्देले हरबोलों के मुंह हमने सुनी कहानी थी।
खूब लड़ी मर्दानी वह तो झांसी वाली रानी थी ॥५॥

महलों ने दी आग झोंपड़ी ने ज्वाला सुलगायी थी।
यह स्वतन्त्रता की चिनगारी अन्तरतम से आयी थी।
झांसी चेती दिल्ली चेती, लखनऊ पटले छाई थी।
मेरठ कानपुर पटना ने भारी धूम मचाई थी।

जबलपुर कोल्हापुर में भी हलचल उकसानी थी।
बुन्देले हरबोलों के मुंह हमने सुनी कहानी थी।
खूब लड़ी मर्दानी वह तो झांसी वाली रानी थी।६॥

इस स्वतन्त्रता महायज्ञ में कई वीरवर आये काम।
नाना धुन्धूपन्त, तांतिया, चतुर अजीमुल्ला सरनाम।
अहमदशाह मौलवी, ठाकुर कुंवरसिंह सैनिक अभिराम।
भारत के इतिहास गगन में अमर रहेंगे जिनके नाम।

कैसे भूली जा सकती है उनकी जो कुर्बानी थी।
बुन्देले हरबोलों के मुंह हमने सुनी कहानी थी।
खूब लड़ी मर्दानी वह तो झांसी वाली रानी थी।

इनकी गाथा छोड़ चले हम झांसी के मैदानों में।
जहाँ खड़ी है लक्ष्मी बाई मर्द बनी मर्दानों में।
लेफ्टिनेंट बेकर आ पहुंचा आगे बढ़ा जवानों में।
रानी नें तलवार खींच ली हुआ द्वन्द्व असमानों में।

जख्मी होकर बेकर भागा उसे बड़ी हैरानी थी।
बुन्देले हरबोलों के मुंह हमने सुनी कहानी थी।
खूब लड़ी मर्दानी वह तो झांसी वाली रानी थी।

रानी बढ़ी कालपी आयी, कर सौ मील निरन्तर पार।
घोड़ा गिरा भूमि पर थक कर गया स्वर्ग तत्काल सिधार।
यमुना तट पर अंग्रेजों ने फिर खाई रानी से हार।
विजयी रानी आगे चलदी किया ग्वालियर पर अधिकार।

अंग्रेजों के मित्र सीन्धिया ने छोड़ी राजधानी थी।
बुन्देले हरबोलों के मुंह हमने सुनो कहानी थी।
खूब लड़ी मर्दानी वह तो झांसी वाली रानी थी।

विजय मिली, पर अंग्रेजों की फिर सेना घिर आई थी।
अबके जनरल स्मिथ सम्मुख था, उसने मुंह की खाई थी।
काना और मन्दरा सखियां रानी के संग आई थी।
युद्धक्षेत्र में उन दोनों ने भारी मार मचाई थी।

पर पीछे ह्यूरोज आ गया हाय ! घिरी अब रानी थी।
बुन्देले हरबोलों के मुंह हमने सुनी कहानी थी।
खूब लड़ी मर्दानी वह तो झांसी वाली रानी थी ॥१०॥

तो भी रानी मार काट कर चलती बनी सैन्य के पार।
किन्तु सामने नाला आया, था यह संकट विषम अपार।
घोड़ा अड़ा नया घोड़ा था, इतने में आगये सवार।
रानी एक शत्रु बहुतेरे, होने लगे वार पर वार।

घायल होकर गिरी सिंहनी उसे वीरगति पानी थी।
बुन्देले हरबोलों के मुंह हम ने सुनी कहानी थी।
खूब लड़ी मर्दानी वह तो झांसी वाली रानी थी ॥११॥

रानी गयी सिधार, चिता अब उसकी दिव्य सवारी थी।
मिला तेज से तेज, तेज की वह सच्ची अधिकारी थी।
उम्र अभी तेईस मात्र थी, मनुज नहीं अवतारी थी।
हमको जीवित रखने आई, बन स्वतन्त्रता नारी थी।

दिखा गई पथ, सिखा गई हमको जो सीख सिखानी थी।
बुन्देले हरबोलों के मुंह हमने सुनी कहानी थी।
खूब लड़ी मर्दानी वह तो झांसी वाली रानी थी ॥१२॥

—सुभद्राकुमारी चौहान

—०—

@VaidicPustakalay

१६४७ का नरमेध

(वेदव्रत सिद्धान्त शिरोमणि)

१५ अगस्त १६४७ को भारत स्वतन्त्र हुआ। अखण्ड भारत को भारत और पाकिस्तान दो खण्डों में विभक्त कर दिया, यह अंग्रेजों की चाल थी। वे विवश होकर भारत को छोड़ तो रहे थे किन्तु अपनी जड़ जमाने के लिए उन्होंने भारत के दो खण्ड किये थे। उनकी नीति थी कि भारत और पाकिस्तान दोनों परस्पर लड़ेंगे तो हम फिर भारत को पराधीन बना सकेंगे। गत ११ वर्षों में तो उनका यह मनोरथ सफल नहीं हुआ। किन्तु यह कौन कह सकता है कि भारत और पाकिस्तान के बीच कब युद्ध छिड़ जाये। अब भी अनेक बार पाकिस्तानियों ने भारत के सीमान्त प्रदेशों पर आक्रमण किया है और काश्मीर के मामले में अनेक बार युद्ध की आशंका पैदा भी हो चुकी है।

भारत का जो भाग पंजाब और बंगाल का पाकिस्तान को मिला, उस प्रदेश के निवासी हिन्दुओं पर वे लोमहर्षक अत्याचार यवनों ने किये हैं जिनका वर्णन करना भी हृदयद्रावक है। हिन्दुओं की बहन-बेटियों को नंगा कर लाइनें बना-बनाकर गोलियों से उड़ाया गया। दूध पीते बच्चों को तेल में पकाकर उनकी माताओं के मुख में उनका मांस ठोंस-ठोंस कर पूछा गया कि जायका कैसा है ? हिन्दू महिलाओं को धर्मभ्रष्ट कर उनकी बुरी तरह बेइज्जती की गई। असंख्य नर-नारियों को मौत के घाट उतार दिया गया। हिन्दू महिलाओं को मुसलमानों ने छिपा-छिपा कर बलात् अपने घरों में रख लिया, उनमें से कुछ भारत सरकार को लौटाई गईं। अपने धर्म की रक्षा के लिए हजारों अबलाओं ने कुएँ में पड़कर आत्महत्या की। बहुत थोड़ी संख्या में लोग प्राण बचाकर भारत आ सके। शायद ही कोई परिवार उस संकट में सकुशल भारत पहुँच सका हो। किसी का पुत्र मारा गया किसी की पुत्री। कोई विधवा हो गई, कोई विधुर। किसी के माता पिता मारे गये किसी के भाई-बहन। हजारों असहाय बालक तड़फ-तड़फ कर मर गये और हजारों अनाथ हो गये।

इस हिंसा का प्रतीकार इधर भारत में हिन्दुओं ने भी किया। प्रतिहिंसा की अग्नि धधक उठी, हिन्दुओं ने भी असंख्य मुसलमानों को मौत के घाट उतार दिया। वह समय इतना भयंकर था कि किसी को भी अपने प्राण और धन-सम्पत्ति की रक्षा का विश्वास नहीं रहा था। लाखों नर-नारी रोटी, वस्त्र और मकान के अभाव में दर-दर के भिखारी बन गये। उस समय के उजड़े हुए परिवार अब तक भली-भांति नहीं बस पाए हैं, अनेक परिवारों की स्थिति अब भी डांवाडोल है। उस समय के मूक बलिदानों की करुण कहानी आज तक किसी ने लिखने का कष्ट अथवा साहस नहीं किया है। इन्हीं शब्दों के साथ सन् ४७ के नरमेध का इतिहास लिखने का निवेदन लेखकों से करता हुआ उस नरमेध के ज्ञात-अज्ञात शहीदों को मैं श्रद्धाञ्जलि अर्पित करता हूं।

———

सार्वजनिक जीवन के संस्मरण

(रामनारायण चौधरी मन्त्री भारत सेवक समाज)

क्रांतिकारी जमाना

सन् १९१२ की बात है। मैंने सोलहवें साल के साथ ही इंटरक्लास में कदम रखा। गर्मी की छुट्टियों में कलकत्ते का 'टेलीग्राफ' नामक अंग्रेजी साप्ताहिक देखा। मेरे लिये अखबार के ये पहले दर्शन थे। शुरु में तो मेरी दिलचस्पी अंग्रेजी भाषा की योग्यता बढ़ाने में ज्यादा थी। मगर बाद में समाचार पत्रों का चस्का सदा के लिए लग गया। फिर भी देशप्रेम की दीक्षा नहीं मिली। वह मिली १९१३ के जुलाई मास में। मुझे अपने छोटे भाई युगलकिशोर को स्कूल में भर्ती करवाना था। महाराजा हाईस्कूल में जगह नहीं थी। पं० अर्जुनलाल सेठी का नाम सुनकर उन्हीं की जैन वर्द्धमान पाठशाला में भाई को लेकर पहुंचा। एक पुराने ढंग के नोहरे में सेठी जी से पहली मंजिल के झरोके पर मुलाकात हुई।

पहली ही भेंट का खूब असर पड़ा। हमारे स्कूल व कालेज में पोशाक तो सभी अध्यापकों और अधिकांश विद्यार्थियों की देशी ही थी, मगर शौकीनी में बहुतेरे एक दूसरे से होड़ लगाते थे। यहां आचार्य महोदय एक मोटे झोटे कुर्ते में बैठे थे। प्रकाश नामक एक जोहरी का पांच छः साल का लड़का वहीं लकड़ी के खिलौने से मकान बना रहा था और 'स्वदेशी का बजे डंका' 'स्वदेशी का बजे डंका' गुनगुना रहा था। सेठी जी ने हम दोनों भाइयों को देखा और बालक से पूछा बेटे, क्या बना रहे हो? फौरन जवाब मिला, 'अंग्रेजों को निकालने के लिये किला'। सेठी जी की तेज आंखों ने बालक के शब्दों का असर मेरे चेहरे पर देखा और कहा, आप चाहें तो भाई को मेरे पास छोड़ जाइये। यह पाठशाला में पढ़ेगा और छात्रालय में रहेगा। खर्च की चिन्ता मैं ही कर लूंगा। मेरे लिए यह चुपड़ी और दो दो वाली बात थी। मैं उत्तर भी न देने पाया था कि पाठशाला की घंटी बजी। हम दोनों भाई भी उनके साथ चौक में जा खड़े हुए। प्रार्थना क्या थी पराधीन भारत के हृदय की पीड़ा, स्वतन्त्रता देवी के आवाहन और कर्मण्यता की पुकार का सजीव गान था। मन ने उसी घड़ी ठान लिया कि जीवन भारतमाता की गुलामी की बेड़ियां तोड़ने में ही कुर्बान होगा। ३० वर्ष के इस लम्बे अर्से में बहुत से उतार चढ़ाव आये, मगर उस दिन के निश्चय में कोई फर्क नहीं पड़ा, इतना प्रबल वह मन्त्र था। युगलकिशोर सेठ जी की छत्रछाया में रहने लगा। मैंने देखा कितना जबरदस्त अन्तर है सरकारी तालीम और राष्ट्रीय शिक्षा में। एक महाराजा कालेज था, जहां देशभक्ति की गन्ध भी छू न पाती थी, नैतिक वातावरण गन्दा था। नौकरी ही वहां के पढ़ाने और पढ़ने वालों का एकमात्र ध्येय था, प्रिंसिपल से लगाकर पहले वर्ग के शिक्षक तक छड़ी, जुर्माना और डांट फटकार से काम लेते थे। दूसरी ओर सेठी जी का विद्यालय था, जहां छोटे छोटे बच्चों को 'आप' कहकर पुकारा जाता था, प्रेम स्वातन्त्र्य और कौशल ही अध्यापकों के अस्त्र थे, किंडरगार्टन ढंग से पढ़ाई होती थी, राष्ट्रीयता की सुगन्ध वहां के सारे वायुमण्डल में समाई हुई थी, समाज और देश की सेवा ही विद्यार्थी के जीवन का मकसद बनाया जाता था। शिक्षक खुद आचरण से त्याग का पाठ पढ़ाते थे। मुझे याद है सीनियर इण्टर में जब प्रोफेसर ने एक दिन 'देश प्रेम' पर बहस रखने की सूचना दी तो प्रिंसिपल

साहब को उसमें राजनीति की बू आई और वह विषय नहीं रखने दिया। जैन वर्द्धमान पाठशाला में ऐसी चर्चायें रोज होती थीं। एक समय तो राज्य की भीरुता यहां तक बढ़ी कि बम बनाने के डर से कालेज में कई साल तक साईंस की पढ़ाई बन्द रखी गई।

इधर तो यह हाल था कि जब फुरसत मिलती सेठी जी का ख्याल आता और मैं रोज उनके यहां जाने लगा। उधर उन्होंने भी एक युवक को मुझ से संसर्ग बढ़ाने के लिये मुकर्रर कर दिया। उन्हीं दिनों स्व० छोटेलाल जैन हार्डिंग बमकेस से छूटकर दिल्ली से जयपुर लौट आये थे। वे मेरे सहपाठी थे। उनसे घनिष्टता होने में देर न लगी। सेठी जी के कार्य का हाल बताते और जोशीली पुस्तकें पढ़ने को देते।

श्री सेठी जी के जीवन के हाल चाल ने मुझ पर काफी असर किया। वे जब कालेज के तपस्वी ग्रेजुएट थे। अंग्रेजी के अलावा हिन्दी, संस्कृत, उर्दू, फारसी और पाली भाषा के पण्डित थे। जैन धर्म के गहरे विद्वान् तेज सुधारक और जैन समाज की नई पीढ़ी के नेता थे। उस हैसियत से उनकी धाक भारत भर में थी। वे प्रभावशाली वक्ता थे। देशियों में उस समय जयपुर में विरले ही सेठी जी के सानी थे। वे चाहते तो राज्य के ऊंचे से ऊंचे पद पर पहुंच सकते थे। एक अच्छा ओहदा उन्हें पेश भी किया गया था, मगर वे तो भारतमाता की सेवा का व्रत ले चुके थे। उसी व्रत को पूरा करने में उन्होंने अपनी उम्र का सबसे अच्छा और बहुत बड़ा भाग पूरा किया। सेठी जी के संसर्ग में मुझे पहले पहल गीता, स्वामी रामतीर्थ के व्याख्यान, सावरकर की 'वार आफ इण्डियन इंडिपेंडेंस', अरविन्द का 'कर्मयोगी' व 'युगान्तर', देउस्कर की 'देश की बात', डिब्बी की 'प्रास्पेरस इण्डिया' और बंकिम बाबू का 'आनन्द मठ' वगैरह पुस्तकें पढ़ने को मिलीं। इस साहित्य ने अध्यात्म, इतिहास और राष्ट्रीयता का ज्ञान कराने के साथ साथ अंग्रेजी राज्य के अन्याय और उसे उखाड़ फेंकने के संकल्प को मेरे मानस पटल पर अमिट रूप से अंकित कर दिया।

जयपुर में मैं जिस मकान में रहता था वहां पर पांच विद्यार्थी और भी रहते थे। ज्यादातर उम्र में बड़े मगर पढ़ाई में मुझ से पीछे थे। मैं उन्हें पढ़ने लिखने में सहायता दिया करता था। मैंने उन्हीं में जोशीली बातों और विप्लव साहित्य का प्रचार शुरु कर दिया और एक छोटी सी मण्डली बना दी। इस बीच में सेठी जी की संस्था का विस्तार हो चला था और वे उसे मुख्य दानी की इच्छा पर इन्दौर ले गये। उनकी गैर मौजूदगी में जयपुर के क्रान्तिकारी दल की बागडोर बा० व्रजमोहनलाल जी के हाथों में आगई थी। ये दिल्ली के कायस्थ, जयपुर के स्कूल आफ आर्टस् के वाइस प्रिंसिपल और हार्डिंग बम केस के मुखिया मास्टर अमीरचन्द व लाला हरदयाल के मित्र थे। प्रचारक थे, लेकिन संगठन की शक्ति बहुत नहीं थी। इस समय १९१४ का महायुद्ध छिड़ गया। उससे पहले क्रान्तिकारी दल की राजपूताना शाखा संगठित हो चुकी थी। सेठी जी उसके नेता थे। कोटा के ठाकुर केसरीसिंह जी बारहट, खरवा के राव गोपालसिंह जी और ब्यावर के सेठ दामोदरदास जी राठी इस संगठन के स्तम्भ थे। सेठी जी के जिम्मे युवकों को तैयार करने और शिक्षितों में प्रचार करने का विशेष काम था। जैन समाज उनका मुख्य कार्यक्षेत्र था। उसके साधनों से वे राष्ट्रीयता की साधना करते थे। उन्होंने महाराष्ट्र और काश्मीर जैसे दूर दूर के प्रान्तों से चुन चुनकर नौजवान इकट्ठे किये थे। वे कैसे जीवट के लोग थे, इसके दो दृष्टान्त मुझे याद हैं। श्री मोतीचन्द उस युवक दल के अगुआ थे। एक बार उनका आपरेशन हुआ। डा० दलजंगसिंह की राय में वह इतना गम्भीर था कि क्लोरोफार्म

सुंघाये बिना चीरा लगाने की उनकी हिम्मत न हुई। मोतीचन्द का आग्रह यह था कि होश में ही चीर-फाड़ की जाये। आखिर वैसा ही हुआ और मोतीचन्द ने उफ तक नहीं की। डाक्टर दांतों तले उंगली दबाकर रह गया। आरा के महन्त की हत्या के अभियोग में जब उन्हें फांसी लगी तो कहते हैं बलिदान की खुशी में उनका कई पौण्ड वजन बढ़ा हुआ पाया गया, लेकिन असली अपराधी तो थे जयचन्द जो आखिर तक पुलिस के हाथ न आये। उनके साथ मेरा गहरा सम्बन्ध हो गया था। उनका किस्सा विचित्र था। वे काश्मीर राज्य से पूंछ ठिकाने में किसी छुटभैय्या के लड़के थे। एक दूसरे के साथ अनन्य मित्रता हो गई। प्लेग आया तो दोनों में कौल करार हुआ कि जो बच रहे वह घर से निकल पड़े और उम्र भर अपने साथी के लिये तपस्या करे। जयचन्द बच गये। सीधे हरद्वार पहुँचकर जाड़े में गंगा में और गर्मी में बालु रेत पर तपस्या करने लगे। गाने का शौक था। एक दिन सेठी जी का वहां भाषण था। उसमें संगीत का भी कार्यक्रम था। जयचन्द कोने में बैठे सुन रहे थे। सेठी जी की पारखी दृष्टि ने उन्हें पहिचान लिया कि काम का आदमी है। साथ ले आये। वह निर्भय इतने थे कि कई बार वारंटधारी पुलिस के बीच से निकल गये। चलने में इतने तेज कि एक दिन घुड़सवार पुलिस का पीछा बचाते हुए ७० मील तय करके सायं को मेरे पास पहुँच गये। दो मंजिल से कूद कर भाग जाने का उन्हें इतना पक्का विश्वास था कि हमारे प्रबल आग्रह पर भी वे धीरे बोलने या दूसरी सावधानी रखने को तैयार न होते थे।

बारहट केसरीसिंह जी का कार्यक्षेत्र राजपूताने के रईसों और जागीरदारों में था। उदयपुर, जोधपुर और बीकानेर में उनका काफी प्रभाव था। चारणों में तो उन्होंने कई क्रान्तिकारी तैयार कर दिये थे। कुछ राजा और बड़े उमराव भी सहानुभूति रखते थे। एक दो आदमियों के दिमाग में राठौर साम्राज्य स्थापित करने की कल्पनायें भी घूमने लगीं।

रावसाहब खखा का कार्यक्षेत्र छोटे जागीरदारों और भूमियों में था। अजमेर मेरवाड़ा और मेवाड़ में इनकी प्रवृत्तियों का केन्द्र था। हथियार इकट्ठे करना उनका खास काम था। पथिक जी रावसाहब के दाहिने हाथ थे। उस समय वे भूपसिंह के नाम से रहते थे।

सेठ दामोदरदास जी धनी थे। क्रान्तिकारी आन्दोलन को रुपये की मदद देना इनका खास काम था। जन्म से वैश्य होकर भी गजब के साहसी थे। बा० श्याम जी कृष्ण वर्मा और अरविन्द बाबू को इन्होंने जोखम उठाकर अपने यहां ठहराया था। इन्होंने राजस्थान में स्वदेशी की भावना को मूर्तरूप देने के लिए व्यावर में कपड़े का पहला कारखाना खोला और बा० संचेतन गंगोली जैसे देशभक्त को इसका मैनेजर बनाया।

महायुद्ध छिड़ने पर सेठी जी नजरबन्द करके पहिले जयपुर जेल में रखे गये और बाद में मद्रास प्रांत के बेलोर जेल में भेज दिये गये। उनके कई युवक अनुयायी गिरफ्तार या फरार हो गये। बारहट जी को आरा व जोधपुर के मामलों में लम्बी सजा हो गई। शाहपुरा के 'आर्यनरेश' नाहरसिंह जी ने उनकी जागीर व कोठी जब्त कर ली। उनके छोटे भाई जोरावरसिंह लापता होगये। खखा रावसाहब और पथिक जी टाउगढ़ के किले में नजरबन्द कर दिये गये। बाद में पथिक जी तो चुपके से मेवाड़ में निकल गये। रावसाहब अजमेर जेल में रख दिये गये। सेठ दामोदरदास भी चल बसे। बाकी रहे बारहट जी के बड़े लड़के प्रतापसिंह, छोटेलाल जैन, और जयपुर की हमारी मण्डली। हमारे सलाहकार भले ही बाबू बृजमोहनलाल जी थे, मगर असली सेनानी छोटेलाल जी थे। नौजवानों को बातों

से कुर्बानी और प्रत्यक्ष काम ज्यादा भाता है। छोटेलाल जी थे भी बड़े सख्त आदमी। वे न अपने को छोड़ते और न दूसरों को। जाड़े के दिनों में तड़के ही हमारा द्वार खटखटाते, जोहरी बाजार से सूरजपोल तक दौड़ते और घाटी चढ़ाकर गल्ता के कुण्ड में तैराते। इस तालीम से हमारा जोश ज्यों ज्यों बढ़ता गया त्यों-त्यों कुछ कर गुजरने की चाह भी बढ़ती गई। छोटेलाल जी की राय हुई कि सेठी जी को जयपुर जेल से निकाल ले जाने की योजना बनाई जाये। बाबू जी ने इसे ख्याली पुलाव समझा। इनमें तरह-तरह के जोड़-तोड़ वाले साहस का कोई आदमी भी न था। बाबू जी ने एक होटल खोलकर उसके द्वारा पश्चिम के ढंग पर काम करने की कल्पना दी। छोटेलाल जी को वह पसन्द न आई। गाँधी जी का खुला क्राँतिवाद उन्हें खींच चुका था। वे साबरमती चले गये। हमारी 'व्यञ्जन विलास कम्पनी' खुल गई। रामछिब नामक एक साथी को स्कूल छुड़ाकर मैनेजर बना दिया। जयपुर में उस समय नागरिक स्वतन्त्रता की जैसी दुर्दशा थी, इसका अन्दाज इसी बात से लगाया जा सकता है कि हमें बर्फ सोडा बेचने के लिए ठेठ कौंसिल से मन्जूरी लेनी पड़ी।

उन्हीं दिनों हमारे दल में उमरावल नामक एक जैन वकील शरीक हुए। दुबले पतले और चिररोगी थे, परन्तु गजब की कष्टसहिष्णुता का परिचय दिया। बात यह हुई कि १९१५ में हम लोगों ने जयपुर के रेजीडेन्ट और राज्य के प्रधानमन्त्री के खिलाफ एक पर्चा बांटने का निश्चय किया। उसे मैंने लिखा, उमरावल ने साईक्लोस्टाइल पर छापा और रामछिब ने वितरण किया। मींह-आँधी की रात थी, वह दो बजे उठा, एक कम्बल ओढ़ा और कोट की जेब में पर्चे और एक हाथ में लेई का डिब्बा लेकर चल पड़ा। दिन निकलने से पहले-पहले वह काम करके लौट आया। सुबह होते ही शहर में सनसनी फैल गई। स्कूल, कालेज, कौन्सिल, महलों के दरवाजों, कोतवाली और मुख्य-मुख्य रास्तों के नुक्कड़ पर पर्चा चिपका हुआ था। नई चीज थी। जगह-जगह झुण्ड के झुण्ड पढ रहे थे। पुलिस के आने व पर्चे उखाड़ ले जाने से पहले हमारा काम सफलता के साथ हो चुका था। बड़ी दौड़-धूप हुई। मगर अपराधियों का पता न चला। बहुत अर्से बाद उमरावल के यहाँ साईक्लो-स्टाइल पकड़ा गया। सवा लाख की बस्ती में किसी दूसरी गैर-सरकारी जगह वैसी मशीन नहीं थी। वकील जी को पुलिस ने खूब यातनायें दीं, परन्तु सब कुछ सहकर उन्होंने भेद जाहिर नहीं किया।

जयपुर में यूं तो सभा सोसाइटियों की मुमानियत थी, परन्तु अंग्रेजों के लिए सब छूट थी। मिशन हाई स्कूल के प्रिंसिपल पादरी लो साहब धड़ल्ले से एक डिबेटिंग क्लब चलाते थे, मुख्य उद्देश्य तो था ईसाई धर्म और उसकी आड़ में साम्राज्यवाद का प्रचार करना, लेकिन आदमी होशियार और साधारण व्यवहार में सज्जन और परोपकारी थे। इन दो गुणों के कारण युवक उनकी तरफ खिचते थे। हमारे बाबू जी की तेज बुद्धि ने यह देखकर हमें भी उधर लगा दिया। हम भी क्लब में जाने लगे और थोड़े दिन में वहां की हवा काफी पलट दी।

१९१५ का साल शुरु हुआ ही था कि एक दिन अन्धेरे-अन्धेरे में छोटेलाल जी कम्पनी में एक ऐनकधारी युवक को लेकर आये। छोटी-छोटी आंखें, सांवला रंग और ठिकना कद था, वे प्रतापसिंह थे। इन दिनों हिन्दुस्तानी फौज में गदर की तैयारी की जा रही थी। इसके संयोजक बा० रासबिहारी बोस थे। उनका केन्द्र बनारस से दिल्ली भेजा था। प्रतापसिंह उनके साथ थे। इसी खास काम में एक सन्देश ले जाने वाले की जरूरत थी। छोटेलाल जी की सलाह से प्रताप जी ने मुझे पसन्द किया। दूसरे ही दिन प्रताप जी और मैं दिल्ली के लिए रवाना होगये। शहर के पुराने हिस्से में एक मकान की पहली मंजिल पर पहुंचे तो एक गठीले जवान ने हमारा स्वागत किया। यह शचीन्द्र थे। एक

कोठरी में अखबार बिछे थे। वहीं उनका बिस्तर था। शाम तक मुझे योजना का पता लग गया। वह यह थी कि भारत सरकार के होम मेम्बर सर रेजीनाल्ड क्राडक को गोली का निशाना बनाया जाये, यह काम करे जयचन्द और मैं, उन्हें हरिद्वार से बुला लाऊं, संकेत यह था कि जैसे ही क्राडक साहब वाली घटना के समाचार प्रकाशित हों, मेरठ वगैरह की भारतीय सेना विद्रोह कर दे। जहां तक मुझे याद है इसके लिए २५ फरवरी १९१५ की तारीख मुकर्रर हुई थी। अस्तु मैं रात की गाड़ी से हरद्वार के लिए चल पड़ा। भारत रक्षा कानून का शिकञ्जा इतना कड़ा था कि हर जगह पुलिस किसी नौजवान को देखते ही सन्देह करती और उसे पूछताछ किये बिना आगे न बढ़ने देती। लेकिन मेरी मारवाड़ी वेशभूषा ने अच्छा काम दिया। हरद्वार में उन दिनों कुम्भ का मेला था, परन्तु काली कमली वाले बाबा का स्थान ढूंढने में विशेष अड़चन नहीं हुई। हमारे जयचन्द बाबा के दाहिने हाथ बन बैठे थे। देखते ही लिपट गये। लेकिन मेरे साथ दिल्ली चलने में असमर्थता प्रगट करते हुए बोले "मैंने यहां एक दल तैयार कर लिया है। अभी कल परसों ही एक सफल डाका डाला है। हाथ में लिया हुआ काम छोड़कर जाना ठीक नहीं। हां चाहो तो पांच दस हजार रुपया ले जाओ। डाके का माल भी है और बाबा का माल भी है और बाबा का भण्डार भी भरपूर है। धन लाने की मुझे आज्ञा न थी। मैं खाली हाथ वापिस आगया। शचीन्द्र और प्रताप जी को निराशा हुई। जो काम जयचन्द के सुपर्द होने वाला था वह प्रताप जी को सौंपा गया। मगर संयोग से क्राडक साहब मुकर्रर तारीख को बीमार हो जाने से बाहर नहीं निकले और बच गये। मैं उसी रात जयपुर लौट आया।

इधर हमारी कम्पनी कुछ चली नहीं और न उसके जरिये जो 'ठोस' काम सोचा गया था वही हुआ। हम उसे उठा देने की सोच हो रहे थे कि प्रताप जी पर बनारस सिलसिले के षड्यन्त्र में वारण्ट निकल गए और वे भागकर हैदराबाद सिन्ध में जा छिपे। खुफिया पुलिस तलाश करती हुई जयपुर पहुँची और एक ओसवाल गृहस्थ के पीछे पड़ी। कमजोरी में आकर उन्होंने हैदराबाद तो बता दिया मगर फिर सम्भल कर सिन्ध की बजाय निजाम की राजधानी का पता दे दिया। डिप्टी सुपरिण्टेण्डेण्ट पांगे यह सुराग पाकर दक्षिण की तरफ रवाना हुए। इधर हमारी मण्डली को प्रताप जी को बचाने की फिक्र हुई। इस बार भी मुझ को चुना गया। मैं मारवाड़ी पोशाक में चल पड़ा। मुझे हिदायत दी थी कि मारवाड़ के भीनमाली स्टेशन पर उतर कर चारणों के गाँव पांचेरिया में पहले तलाश कर लूं। शायद प्रताप जी वहाँ हों। हमारे देहाती समाज में अनजान लोगों से पूछताछ होती है। इससे मेरे काम में भी बड़ी बाधा पड़ रही थी। आखिर एक किस्सा घड़ लिया और जो कोई पूछता उसी को सुनाकर पिण्ड छुड़ाता। गांव के निकट पहुंचते-पहुंचते मालूम हो गया कि जिस घर पर प्रताप जी ठहरा करते थे उसे पुलिस ने घेर रखा है। मैं समझ गया कि पंछी अभी पकड़ में नहीं आया है, मैं व्यर्थ में क्यों फंसूं ? मैंने सिन्ध की राह ली। हैदराबाद पहुंचकर दिन भर की खोज के बाद प्रताप जी से भेंट हुई। उन्होंने एक खानगी दवाखाने में कम्पाउण्डर की जगह काम शुरु कर दिया था और फुरसत के समय वाचनालयों में जाने वाले नौजवानों में क्राँतिकारी प्रचार करने लग गये थे। दूसरे ही दिन हम दोनों बीकानेर के लिए चल पड़े। सोचा यह था कि मैं तो राजधानी में कोई नौकरी कर लूंगा, प्रताप जी कहीं देहात में जा बसेंगे और दोनों मिलकर विप्लववादी दल खड़ा करेंगे। थोड़ी सहूलियत भी थी, मेरे एक चाचा बा० शिवगुलाम जी बीकानेर कौंसिल में रेवन्यू सेक्रेटरी थे और गाँवों में प्रताप जी के कुछ सम्बन्धी रहते थे। लेकिन एक गल्ती ने योजना पर पानी

फेर दिया। जोधपुर स्टेशन के पास आया तो प्रताप जी की इच्छा आशानाडा स्टेशन पर उतर कर वहां के स्टेशनमास्टर से मिल लेने की हुई। वह दल का सदस्य था। मगर कुछ दिन पहले उसके यहां बम का पार्सल पकड़ा जा चुका था और वह अपनी खाल बचाने को पुलिस का मुखबिर बन गया था। उसकी हमें किसी को खबर न थी। तय यह हुआ कि मैं जोधपुर उतर कर शहर देख लूं और दूसरे दिन शाम की गाड़ी से बीकानेर के लिए चल पड़ूं। रास्ते में आशानाडा के प्लेटफार्म से प्रताप जी को 'माधो' के नाम से पुकारूं। अगर कोई जवाब न मिले तो समझ लूं कि प्रताप जी फिलहाल देहात में घुस गये हैं और मैं बीकानेर पहुंचकर उनका इन्तजार करूं। लेकिन प्रताप जी तो आशानाडा उतरते ही गिरफ्तार कर लिये गये थे। मेरी आवाज का कोई असर न देखकर मैं बीकानेर पहुंच गया।

चाचा ने बड़े प्रेम से स्वागत किया और कोई जगह दिलवाने का आश्वासन दिया। कोई एक सप्ताह गुजर गया, परन्तु प्रताप जी का कोई समाचार न मिला।

इधर हरद्वार की कारगुजारी के सिलसिले में मुझे प्रताप जी ने बोस बाबू की तरफ से जो घड़ी और शाल भेंट की थी वह चोरी चली गई। ये पुरस्कार मुझे बहुत प्रिय थे। प्रताप जी के वियोग की पीड़ा भी कम न थी। वह आदमी ही ऐसा प्यारा था। जितने विप्लववादी देशभक्तों से मेरा परिचय हुआ उनमें प्रताप की छाप मुझ पर सबसे अच्छी पड़ी थी। वे बड़े कोमल स्वभाव के निहायत शिष्ट और सदा खुश रहने वाले जीव थे। गीता को उन्होंने जिस रूप में समझा था उसी के अनुसार उनकी सारी चेष्टायें होती थीं। धन और स्त्री की इच्छा को उन्होंने खूब जीता था। शरीर इतना सधा हुआ था कि जयपुर में जब वे मेरे पास रहे थे तो एक बार लगातार ७२ घण्टे जागते रहे और बिना खाये पीये बराबर काम करते रहे, और फिर सोये तो तीन दिन तक उठने का नाम न लिया। गलता के कुण्ड में घण्टों तैरते भी उन्हें देखा। सच तो यह है कि महात्मा गांधी को छोड़कर और किसी पर मेरी इतनी श्रद्धा नहीं हुई जितनी प्रताप जी पर। वे देश की खातिर हिंसा के पक्षपाती जरूर थे, लेकिन उनका दूसरा सारा व्यवहार किसी अहिंसावादी से कम न था। वे जहाँ रहते वहीं का वातावरण सरलता प्रेम और पवित्रता से भर देते थे। मेरा विश्वास है कि वे जिन्दा रहते तो गांधी जी के खास साथी होते।

हाँ पुरस्कार और प्रताप जी को खोकर उस दिन रंज ही रंज में मैंने आशानाडा के स्टेशन मास्टर को प्रताप जी की पूछताछ का एक खत लिख डाला। लिखने में सावधानी तो काफी बरती थी, मगर पुलिस के लिए इतना सा धागा काफी था। तीसरे दिन एक बाबा जी मेरे कमरे के चारों तरफ चक्कर काटते हुए दिखाई दिये और चौथे रोज सी०आई०डी० के इंसपैक्टर आ धमके। उनके पास मेरी गिरफ्तारी का सामान था। बनारस षड्यन्त्र के साथ मेरा सम्बन्ध जोड़ा गया। चाचा बहुत घबराये। वे पुराने ढंग के राजभक्त आदमी थे। मगर उतना ही मुझ पर स्नेह रखते थे। अपने द्वार पर मेरा गिरफ्तार होना वे अपने लिए बदनामी की बात समझते थे। इन्सपैटर थे राजस्थान के जाने पहचाने व्यास गगनराज जी। उन्हें मैंने जो किस्सा घड़कर बताया उस पर तो उन्हें क्या विश्वास होगा, परन्तु चाचा के बड़े ओहदे का लिहाज और उन पर अहसान करके बोले—"आपके बयान से मेरी तसल्ली नहीं होती, पर मैं और खोज करूंगा और जरूरत हुई तो फिर मिलेंगे।" मैंने उसी दिन बीकानेर छोड़ दिया। उस थोड़े से कयाम में मैंने देख लिया कि वहां का वातावरण जयपुर से

भी गया बीता है और इसमें क्रांतिवाद का अंकुर जल्दी फूट न सकेगा। लेकिन मैं सीधा जयपुर न जाकर नीम के थाने होकर गया। देशभक्ति के नये रंग में रंगे जाने के बाद पत्नी से मुलाकात नहीं हुई थी। सोचा उसे भी नवजीवन का परिचय देकर आनेवाली घटनाओं के आघात के लिए कुछ तैयार कर दूं। जयपुर में सलाह मश्विरे के बाद तय हुआ कि मैं साम्भर जाकर छिप जाऊं। वहाँ मेरे बड़े भाई मुन्शी छगनलाल जी अदालत में अहलकार थे। आदमी शुरु से ही गम्भीर और साहसी थे। वहीं पिता जी भी आगये। वे उन लोगों में से थे जो सन्तान के लिए सब कुछ करने और सहने को तैयार रहते हैं, दोनों के रुख से मुझे बल मिला। सांभर में श्रीकृष्ण सोढ़ाणी से परिचय हुआ। उन्हें भी कलकत्ता क्रांतिवाद की हवा लग चुकी थी।

उन दिनों की एक घटना याद है। मेरे किसी पत्र से छोटेलाल जी को भ्रम हुआ था या एहतियातन उन्होंने जरूरी समझा यह तो मैं नहीं कह सकता, परन्तु स्व० माधवशुक्ल की ये पंक्तियां उन्होंने लिख भेजीं।

तुम नौकरी इस राक्षसी के, फंद में ऐसे फंसे।
निज शक्ति मन मस्तिष्क, बलयुत जा रहे नीचे धंसे॥
हा स्वैरिणी के हाथ तुमने, रत्न जीवन दे दिया।
वह भूमि रोती रह गई, जिसने तुम्हें पैदा किया॥
यदि दुःख पड़ने पर हृदय का भेद जाहिर कर दिया।
डरपोक बनकर शत्रु पग पर, शीश अपना धर दिया॥
दो रोज के उपवास में ही धीरता जाती रही।
रोने लगे टुक दण्ड से, गम्भीरता तब क्या रही॥
यदि कष्ट सहने के लिए तन मन सभी असमर्थ हैं।
तो देशभक्ति छोड़ दो, आशा तुम्हारी व्यर्थ हैं॥

कहना न होगा कि मौनी छोटेलाल के इस प्राणदायक संदेश ने सरकारी नौकरी न करने और दल के प्रति वफादार रहने के मेरे निश्चय को और भी दृढ़ कर दिया।

१९१५ का नवम्बर मास आगया था। बनारस षड्यन्त्र केस में शचीन दादा और प्रताप जी को लम्बी सजायें हो गई थीं। मैंने समझा मामला खत्म हुआ, जरा घर की भी सुध लेनी चाहिए। दूसरे दिन नीम के थाने पहुंच गया। साथ साथ श्रीमान् गगनराज व्यास जी फुलेरे से उसी गाड़ी में बैठे मगर मुझे पता नहीं चलने दिया। वे मजिस्ट्रेट के पास गये। मजिस्ट्रेट पिता जी के मिलने वाले थे। उनका इशारा पाकर पिता जी ने घर पर सूचना भेज दी, मैं घर से निकलकर गांव के बाहर एक मन्दिर में जा छिपा। लेकिन घरवालों के लिए एक नये ढङ्ग की गम्भीर विपत्ति थी। आखिर मजिस्ट्रेट के बीच-बचाव से यह समझौता हुआ कि व्यास जी मुझे वहां गिरफ्तार न करेंगे और थोड़ी पूछताछ करके चले जायेंगे। व्यास जी ने मिलते ही उलाहना दिया, आपने बीकानेर में तो घिस्सा दिया अब तो सच-सच कह दीजिए। मुझे उस वक्त तक तो इतना अनुभव हो चुका था कि पुलिस की नरमी खाली उदारता नहीं हो सकती, उसका मामला जरूर कमजोर होगा। मैंने व्यास जी पर इसी आशय से एक नजर डाली और इस बार थोड़ा गंगा-जमनी जवाब दे दिया। वे चले तो गये मगर महीने भर बाद ही उनका खत आया कि जयपुर में मिलिये। वचन के अनुसार पिता जी के साथ उनसे जयपुर में मिला।

@VaidicPustakalay

राजपूताने के दल को व्यास जी पर बड़ा रोष था। प्रताप जी की गिरफ्तारी और सजायाबी से हमारा बड़ा नुकशान हुआ था। इसका बदला लेने के लिए व्यास जी को वहीं रख लेने की तजवीज हुई। तय हुआ कि एक किशोर साथी एक पिस्तौल लावे जिसके ससुर एक बड़ी जागीर के दीवान थे, मैं व्यास जी को एडवर्ड मेमोरियल में बातों में रोके रखूं और छोटेलाल जी उन पर वार करें। परन्तु मारने वाले से बचाने वाला बड़ा है। योजना पार न पड़ी। उन दिनों जयपुर शहर के पुलिस सुपरिण्टेण्डेण्ट और मजिस्ट्रेट दीनदयाल तिवाड़ी थे। उनके बड़े लड़के स्व० शिवराज मेरे मित्र थे। उनसे व्यास जी की कार्यवाहियों का हमें रोज पता लगता रहता था। इस कारण वे हमारे दल का बहुत कुछ न बिगाड़ सके। आदमी भी शरीफ थे। मेरे खिलाफ सबूत नहीं मिला, यह कहकर चले गये।

(हमारा राजस्थान से उद्धृत)

सन् १८५७ के स्वतन्त्रता युद्ध में करनाल के वीरों ने अंग्रेजों के दांत खट्टे किये

(श्री बलदेवसिंह बी० ए०)

प्रथम स्वातन्त्र्य समर में देहली से जब स्वतन्त्रता की लहरें उठीं तो इसका पूरा प्रभाव जिला करनाल पर भी पड़ा। देहली और अम्बाला के बीच में जिला करनाल एक प्रसिद्ध ऐतिहासिक नगर है और जिला करनाल को यह अधिकार जगत्प्रसिद्ध महाभारत-युद्ध के काल से ही पितृ-सम्पत्ति की भांति प्राप्त है। जिला करनाल भारत के इतिहास को सदा उज्ज्वल करता रहा है। सन् १८५७ के स्वातन्त्र्य-समर में यह किस प्रकार पीछे रह सकता था? सन् १८५७ के युद्ध नेता श्री नाना साहब की दूरदर्शिता तथा अजीमुल्ला के सहयोग के कारण इलाहबाद झांसी और देहली के लोग स्वातन्त्र्य युद्ध के लिए कटिबद्ध हो गये। १६ अप्रैल १८५७ में नानासाहब और अजीमुल्ला तीर्थयात्रा के मिष (बहाना) से थानेसर पधारे। उस समय अंग्रेज प्रधान सेनापति डानसन का केन्द्र अम्बाला ही था।

नानासाहब की योजना थी कि जब देहली के लोग अंग्रेजों के विरुद्ध युद्ध की घोषणा करें तब अम्बाला से अंग्रेजी सेना और उनका प्रधान सेनापति अंग्रेजों की सहायता न कर सकेगा। इसके लिए थानेसर, करनाल और पानीपत जैसे पुराने ऐतिहासिक नगर जो बड़ी सड़क देहली अम्बाला विभाग पर निवास करते थे, उनको उत्साहित किया। जिससे अंग्रेजी सर्प यदि देहली की ओर बढ़े तो मध्य में ही उसके सिर को कुचल दें। नानासाहब और इनके सहयोगी अजीमुल्ला अंग्रेजों की प्रत्येक कूटनीति को भली प्रकार से जानते थे। थानेसर के पश्चात् नानासाहब करनाल और पानीपत गये। इस नगर के निकटवर्ती देहातों के प्रसिद्ध व्यक्तियों से मिले। योजना तैयार की गई। थानेसर की ब्राह्मण पंचायत ने नानासाहब से प्रतिज्ञा की कि हम आपका यह सन्देश हरयाणा प्रान्त के प्रत्येक ग्राम में पहुंचायेंगे। वास्तव में ऐसा ही हुआ। एतत्पश्चात् कुरुक्षेत्र के पवित्र तीर्थों का 'लाल कंवल' संदेश हरयाणा प्रान्त के प्रत्येक घर पहुँचा।

नानासाहब के चले जाने पर जिला करनाल के नेताओं ने गुप्त सभा करके अम्बाला के स्वतन्त्रता को दबाने वाले प्रत्येक कर्मचारी के घर को फूंकने का प्रस्ताव पास किया। इसके पश्चात् प्रतिदिन कर्मचारियों के घरों में आग लगाने की सूचना प्रधान सेनापति अम्बाला के पास जाने लगी। अपराधियों की खोज के लिए सहस्रों रुपये का पारितोषिक रखा गया परन्तु सफलता प्राप्त न हुई और विवशतावश गवर्नर जनरल को भी लिखना पड़ा।

जब १८ मई सन् १८५७ को करनाल में देहली पर आक्रमण की सूचना मिली तो थानेसर में स्थित सैनिकों ने जनता के साथ मिलकर अंग्रेज कर्मचारियों को मारकर शहर पर अधिकार कर लिया। २० मई तक देहली अम्बाला सड़क सर्वथा बन्द रही और अंग्रेजी सेना देहली में सहायतार्थ जाने से रोकी गई। २१ मई सन् १८५७ को स्वतन्त्रता के शत्रु महाराजा पटियाला की सेना ने अंग्रेजों की सहायता की। स्वतन्त्रताप्रेमियों को कुचल दिया गया। स्वराज्य के दीवाने हिसार के रांघड़ों को जेल में बन्द करके कड़ा पहरा बिठाया गया। परन्तु अंग्रेजों को भय था कि कैथल के राजपूत ३१ मई १८५७ को इनको छुड़ाने के लिए आक्रमण करेंगे। इसलिए स्वतन्त्रता के प्रेमियों को अम्बाला की जेल में भेजना पड़ा।

१९ जून १८५७ को महाराजा पटियाला अपनी सेना सहित अपने राज्य की रक्षा के लिए चला गया। प्रान्त के लोगों ने पुनः थानेसर पर अधिकार कर लिया। देशद्रोही थानेसर के चौहान राजपूतों ने अंग्रेजों की सहायता की।

सन् १८५७ में कैथल में अंग्रेज रेजिडेन्ट मिस्टर मेकब था। जून १८५७ में पाटी के जाटों ने कैथल पर आक्रमण कर उस पर अपना अधिकार कर लिया। अंग्रेजी सेना को तलवार का पानी पिलाया। मिस्टर मेकब अपने परिवार सहित ग्राम मोढ़ी में छुपे। फतेहपुर के कलालों ने मिस्टर मेकब को परिवार सहित मार दिया। जिस समय अंस की आज्ञानुसार प्रधान सेनापति हड़सन फतेहपुर को तोपों से उड़ाने के लिए करनाल से रोहतक जा रहा था तब एक कलाल ने मिस्टर मेकब को मारने का उत्तरदायित्व लिया परन्तु उसे तोप के मुंह पर बांधकर उड़ाया गया। इस वीर के बलिदान ने समस्त ग्राम को बचा लिया, निर्दयी हड़सन ग्रामों में जनता के साधारण लोगों को मारता हुआ रोहतक की ओर चला गया।

कम्पनी सरकार की आज्ञा से महाराजा पटियाला और महाराजा जीन्द ने थानेसर और पानीपत को अधिकृत करके अंग्रेजों को पंजाब की ओर से निश्चिन्त कर दिया। सिख आरम्भ से ही अंग्रेजों के साथ थे। जिला करनाल के जाटों और राजपूतों को बुरी तरह कुचला गया। २५ मई सन् १८५७ को अंस अम्बाला से देहली की ओर जा रहा था परन्तु विसूचिका से मार्ग में ही हत्यारे को जीवन से हाथ धोने पड़े।

अंग्रेजों ने करनाल को मेरठ पर आक्रमण करने का केन्द्र बनाया। जमना पार आक्रमण किया गया, परन्तु असफलता मिली। अम्बाला से देहली के मार्ग में हजारों लोगों को पकड़ कर कोर्ट मार्शल के पश्चात् अत्यन्त बुरे ढंग से मारा जाता था। हजारों हिन्दुस्तानियों को फांसी की रस्सी से लटका दिया गया। इनके सिरों के बाल एक-एक करके उखाड़े गये। इनके शरीरों को संगीनों से नोचा गया। भालों और संगीनों से हिन्दू व देहातियों के मुख में गोमांस डालकर उनका धर्म भ्रष्ट किया गया। इस प्रकार जिला करनाल के असंख्य लोगों ने असंख्य बलिदान इस स्वतन्त्रता युद्ध में दिए।

भारत का प्रथम स्वतन्त्रता युद्ध

(चौ० कबूलसिंह मन्त्री सर्वखाप पंचायत)

सं० १९१४ वि०—१८५७ ई० में भारतीयों ने अंग्रेजी राज्य को भारत से उखाड़ फेंकने के लिए प्रथम यत्न किया। सैनिक विद्रोह भी हुआ। जनता ने भी पूरी शक्ति लगाई। यह यत्न यद्यपि सफल न हो सका परन्तु इससे अंग्रेजों की मनोवृत्ति अवश्य बदली।

विरोधी

अंग्रेजी राज्य के विरोधी और विरोध के कारण नीचे लिखे जाते हैं।

१—अंग्रेजों का प्रथम विरोधी हरयाणा सर्वखाप पंचायत का संगठन था क्योंकि—

क—अंग्रेजों ने गरीब किसानों पर अत्याचार किये। अन्न बलपूर्वक लेते थे। किसानों और गरीबों से बेगार लेते थे। कारीगरों की देशी चीजों को बाहर नहीं जाने देते थे। छोटे मोटे व्यापार धन्धे नष्ट कर डाले।

ख—अदालतें बनाकर पंचायतों के संगठन और शक्ति को नष्ट कर डाला, लोगों के आपसी झगड़े अदालतों में जाने लगे। गरीबों की लुटाई होने लगी। झूठ, मक्कारी, बेईमानी और रिश्वत फैलाई जाने लगी। लोग तंग होगये।

ग—किसानों पर साहूकारों के अत्याचार बढ़ने लगे।

घ—अंग्रेजी माल जबरदस्ती बेचा जाने लगा।

ङ—अच्छे-अच्छे आचार वाले कुलों को दबाया जाने लगा।

च पञ्चायती नेताओं का अपमान किया जाने लगा।

इन कारणों से सर्वखाप पञ्चायत ने सबसे पहले अंग्रेजों के विरोध में झंडा ऊँचा किया। हरयाणा सर्वखाप के दो भाग किये। जमना आर और पार। पंचायत ने दोनों ओर देहली को केन्द्र मानकर मेरठ, मुजफ्फरनगर, सहारनपुर, बुलन्दशहर, बहादुरगढ़, रेवाड़ी, रोहतक और पानीपत में अंग्रेजी सत्ता को उखाड़ फेंका जिसके कारण भारी कष्ट सहन किये। जनता कोल्हू में पेली गई। जायदाद छीन ली गई। खेद है कि यह जायदाद अब तक नहीं लौटाई गई है।

२—दूसरा विरोधी दल मराठों का था क्योंकि मराठों का राज्य छिन गया था।

३—तीसरा दल उन मुसलमानों का था जिनको कि अंग्रेजों ने अपमानित किया था और जागीरें हड़प ली थीं। नवाबों को कंगाल बना दिया था।

४—यह दल पण्डे-पुजारियों और मुल्ला-मौलवियों का था। क्योंकि इनके पास धर्म और मजहब के नाम पर जो जायदाद थी वह छीनी गई।

५—अनेक जागीरदारों की भूमि छीन ली गई और दूसरों को दे दी गई।

६—पुराने कर्मचारी नौकरी से निकाल दिए गये थे।

७—जनता के साथ की गई प्रतिज्ञाओं को तोड़ दिया गया और अंग्रेजों के वचन से विश्वास उठ गया।

८—ईसाई धर्म का प्रचार राज्य के बल पर किया जाने लगा था। इङ्गलैण्ड की पार्लियामेंट में ऐसा करने का भाषण दिया गया था।

९—पण्डारी दल के मार्ग में बाधा डाली गई।

१०—बड़े-बड़े राजनीतिक दल समाप्त किये जा रहे थे।

११—भारतीय सेना में नये कारतूस दिए गए जो कि दांत लगाकर काटने पड़ते थे। इससे हिन्दू और मुसलमान सैनिकों में असन्तोष बढ़ा।

इसी प्रकार भिन्न-भिन्न कारणों से भारतीय जनता, राजा, नवाब और अन्य दलों में असन्तोष हुआ।

बहादुरशाह का पत्र

देहली के बहादुरशाह बादशाह ने ऐसे समय सर्वखाप पंचायत के प्रधान को एक पत्र लिखा जिसका आशय यह है—

"सर्वखाप पंचायत के नेताओ! अपने पहलवानों को लेकर फिरंगी को निकालो। आप में शक्ति है। जनता आपके साथ है। आपके पास योग्य वीर और नेता हैं। शाही कुल में नौजवान लड़के हैं। परन्तु इन्होंने कभी युद्ध में बारूद का धुआँ नहीं देखा। आपके जवानों ने अंग्रेजी सेना की शक्ति की कई बार जांच की है। आजकल यह राजनीतिक बात है कि नेता राजघराने का हो। परन्तु राजा और नवाब गिर चुके हैं। इन्होंने अंग्रेजों की गुलामी स्वीकार कर ली है। आप पर देश को अभिमान और भरोसा है। आप आगे बढें। फिरंगी को देश से निकालें। निकलने पर एक दरबार किया जाये और राजपाट स्वयं पंचायत सम्भाले। मुझे कुछ उजर नहीं होगा।"

इस पत्र को पाकर पंचायत ने अपनी शक्ति का संग्रह करना आरम्भ किया और अन्य शक्तियों से सम्पर्क बढ़ाया।

हरद्वार में नाना साहब और अजीमुल्ला पंचायत नेताओं से मिले।

नेता

आन्दोलन के मुख्य नेता यह थे–नाना साहब, तांत्या टोपे, झाँसी की रानी, कुंवरसिंह, अजीमुल्ला, बख्त खां पठान आदि। पंचायतों के दो नेता चुने गये नाहरसिंह सूबेदार और हरनामसिंह जमादार।

परिणाम

जो कुछ परिणाम हुआ सबको ज्ञात है। आन्दोलन सफल न हो सका।

विफलता के कारण

यद्यपि सब पेशों और सम्प्रदायों के लोग आन्दोलन में थे। परन्तु शीघ्रता करने से शक्ति संग्रह न हो सका। अंग्रेजों ने फाड़ने की नीति से काम लिया और उनकी सेना नए शस्त्रों से सुसज्जित थी। राजा और नवाबों की शक्ति अलग रही। मराठों में आपसी झगड़े थे। यह कारण सबको ज्ञात है। हमने उन बातों पर ही प्रकाश डाला है जो कि इतिहास के पत्रों पर नहीं लिखी गई।

क्रांतिकारी शहीदों को श्रद्धाञ्जलि

(पं० सत्यदेव वासिष्ठ, भिवानी)

वेद-ज्ञान-गवेषणारतधियो लोके प्रभूता जनाः,
दृश्यन्ते धनैषणार्तमनसः कष्टां दशां संगताः ।
किन्तूद्धर्तुमिमां महीं तु विरला पाशेन लुप्तासवः,
साशा यान्ति नरान् प्रणीय सुनये ते खड्गधारव्रताः ॥१॥

वेद ज्ञान की खोज में तत्पर मनुष्य संसार में बहुत हैं तथा धनप्राप्ति की इच्छा से बहुत से व्यक्ति संसार में कष्टमय दशा को प्राप्त होते हुए दिखाई देते हैं। किन्तु इस विश्व का उद्धार करने के लिए पाशरज्जु (फांसी) से लुप्त होगये हैं प्राण जिनके, वे विरक्त ही (सच्चे) मनुष्य हैं क्योंकि वे अन्य मनुष्यों को न्याययुक्त मार्ग में प्रवृत्त करके अपने ध्येय की पूर्ति की आशा साथ लिए मरते हैं अतः उनका व्रत असिधार के तुल्य है।

क्रव्यादग्निशिखां समिन्धितुमितः क्रामन्ति नित्यं मृताः,
त्यक्त्वा यौवनभूषितां नववधूं हृद्यां सुरूपान्विताम् ।
ये देशोपकृतौ रताः सुमनसो हित्वा तमो मोहजं,
धैर्येणाप्य पदं व्रजन्ति सुधियो धन्यास्तु ते नापरे ॥२॥

अपनी यौवनवती सुरूपा, प्रियतमा नववधू को छोड़कर श्मशान की अग्निशिखा को बढ़ाने के लिए यहां से मृत मनुष्य लोगों के कन्धों पर आरूढ़ होकर अन्तिम यात्रा करते हैं। परन्तु जो देशोपकार में रत सज्जन मोह से उत्पन्न अन्धकार को त्यागकर धैर्यपूर्वक प्राप्तव्य पद की प्राप्ति के निमित्त मरते हैं वे सुधीजन धन्य हैं, अन्य नहीं।

समीक्ष्य दीपं ज्वलितं पतंगा, यथा विनाशाय समुत्पतन्ति ।
तथा महान्तो व्रतकाम्यया ये, जहत्यसूंस्ते करवालधाराः ॥३॥

जैसे जलते हुए दीपक को देखकर उसमें जलने के लिए पतंगे उड़ते हैं वैसे ही जो महान् व्यक्ति अपने व्रत की पूर्ति के लिए अपने प्राणों का परित्याग कर देते हैं उनका व्रत असिधारा के समान है।

नित्यं जनाः स्वार्थविषक्तचित्ता, व्रजन्ति मृत्युं किल चात्र चिन्त्यम् ।
विश्वस्य सन्तापहृतौ रतानां, नाशं सदोत्पादयतीह खेदम् ॥४॥

स्वार्थ में आसक्त चित्तवाले मनुष्य नित्य मृत्यु को प्राप्त करते हैं। इसमें चिन्ता की क्या बात है। किन्तु विश्व के सन्ताप को मिटाने में तल्लीन पुरुषों का मरण निरन्तर खेद को उत्पन्न करता है।

मृतिः समाना न हि तत्र भेदः, स्वार्थे परार्थे च रतस्य जन्तोः ।
ये क्रान्तिमुद्भाव्य मृता महान्तस्ते सन्ति धन्या मनुजैश्च मान्याः ॥५॥

स्वार्थ में और परमार्थ में लगे हुए प्राणी की मृत्यु तो समान ही है। उसमें भेद नहीं है। किन्तु जो क्राँति करके मरते हैं वे महापुरुष धन्य हैं और वे ही मनुष्यों में भाग्यवान् हैं।

देशोद्धिधीर्षोरवस्था-वर्णनम् --

ज्ञातिर्द्रुह्यति भिद्यते परिजनो गृह्णाति भूमिं नृपः,
प्राणा नित्यमिहाग्निवास-सदृशं दुःखं सहन्ते सदा।
भैक्ष्यं चापि कदापि भूमिशयनं भ्रान्तिर्वने वा घने,
देशोद्धारणपरायणाः सुकृतिनः किं नो सहन्ते मुदा ॥६॥

देशोद्धारकों की अवस्था का वर्णन करते हुए बतलाया है –

देश का उद्धार करने में तत्पर बुद्धिमान् पुरुष जब देश सेवा में लग जाते हैं तब जाति के व्यक्ति उनसे द्वेष करते हैं, परिवार के लोग अलग हो जाते हैं, राजा जमीन जायदाद छीन लेता है, उसके प्राण मानो नित्य अग्नि में ही निवास करते हैं। इस तरह अनेक कष्ट सहन करते हैं। कभी भीख मांगकर, कभी भूमि पर सोकर, कभी गहन वन में घूमकर वे अपने दिन बिताते हैं। इस प्रकार वे किन-किन कष्टों को प्रसन्नपूर्वक सहन नहीं करते। अपितु सब कष्ट सहन करते हैं।

———

शहीद सुमेरसिंह

टेक—फिरोजपुर की जेल का आंखों देखा अत्याचार।
जबाँ से गाया ना जाता ॥
चौबीस अगस्त को शाम के बजे थे सवाचार।
वह हाल बताया ना जाता ॥१॥
सैंकड़ों सिक्ख आगये एकदम लेकर तरह-तरह के
हथियारों का नाम गिनाया ना जाता ॥२॥
कुछ बैठे कुछ सोतों पर एकदम पड़ी मार,
और वार बचाया ना जाता ॥३॥
बुड्ढे जवान साधु तक मार-मार दिए पसार।
यह सार जताया ना जाता ॥४॥
पखानों में भी जा मारे बह चली थी खून की धार।
वह वक्त भुलाया ना जाता ॥५॥
शिर फूटे, कहीं टूटे हाथ ऐसे होगए लाचार।
भोजन खाया ना जाता ॥६॥
कुछ बचे कुछ जख्मी हो गये रोवें कर रहे हा-हाकार।
धोया नहाया ना जाता ॥७॥
"नित्यानन्द" बाल-बाल बच गये, सुमेरसिंह गये स्वर्ग सिधार,
यह घाव मिटाया ना जाता ॥८॥

———

कर्तारसिंह सराबा

मन्मथनाथ गुप्त

डॉ० राजेन्द्रप्रसाद

लालबहादुर शास्त्री

THE

INDIAN SOCIOLOGIST

AN ORGAN OF FREEDOM, AND OF POLITICAL, SOCIAL, AND RELIGIOUS REFORM.

LONDON, SEPTEMBER, 1908.

NOTICE.

CHANGE OF ADDRESS

THE ETHICS OF DYNAMITE AND BRITISH DESPOTISM IN INDIA.
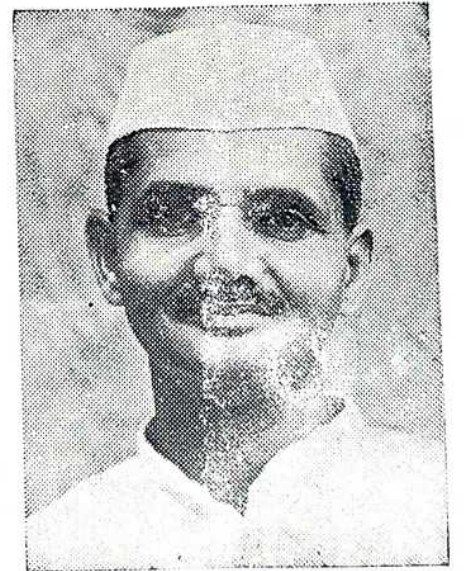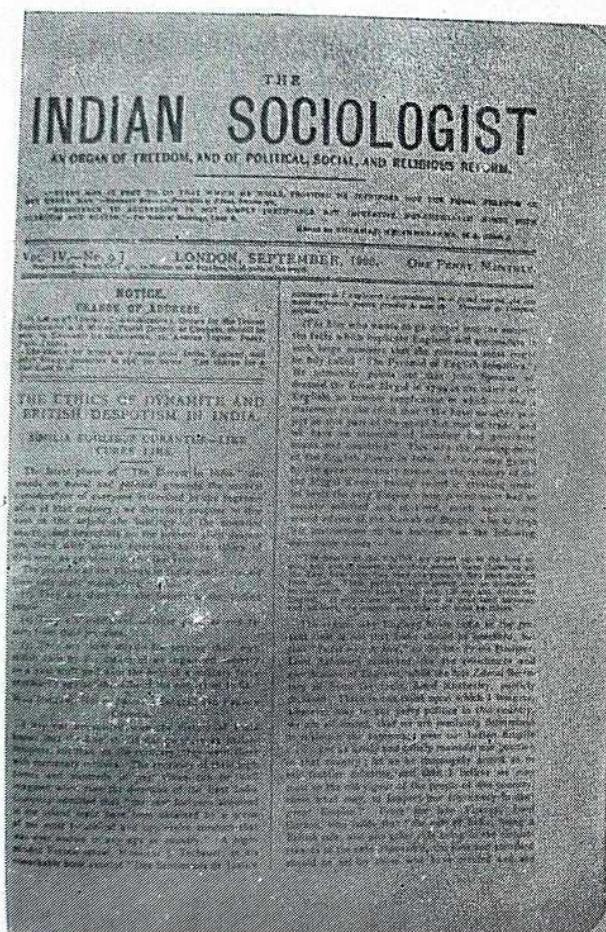
इण्डियन सोसियोलोजिस्ट
पत्रिका का मुख पृष्ठ

गदर पत्रिका का मुख पृष्ठ

महर्षि दयानन्द सरस्वती
(मृत्यु शय्या पर)
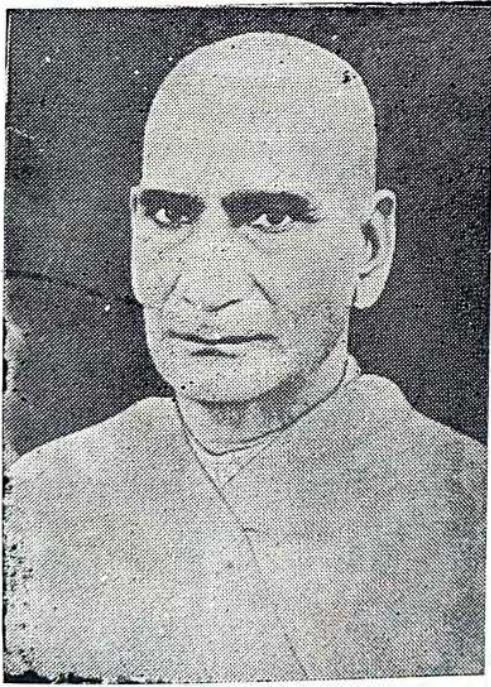
अमर शहीद स्वामी श्रद्धानन्द

महात्मा नारायण स्वामी
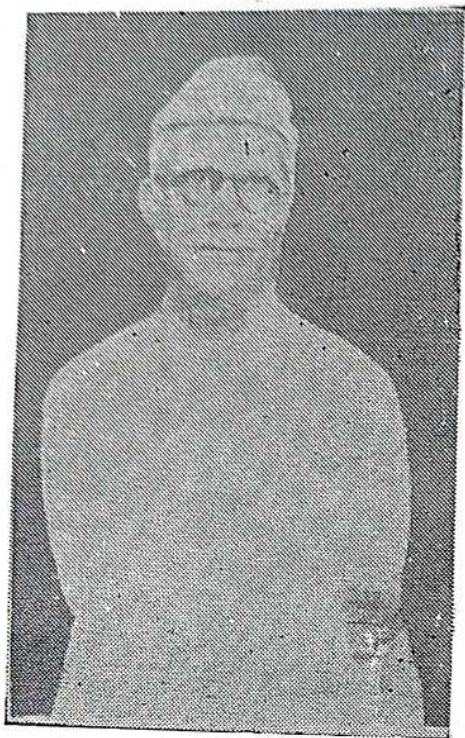
घनश्यामसिंह गुप्त
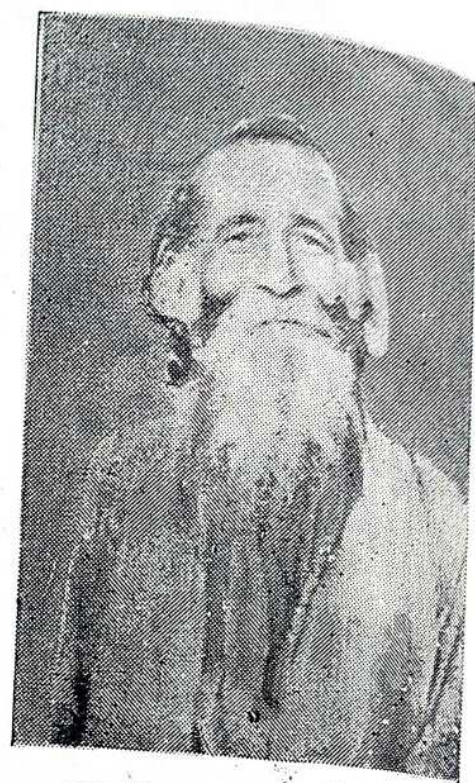
महात्मा आनन्दभिक्षु
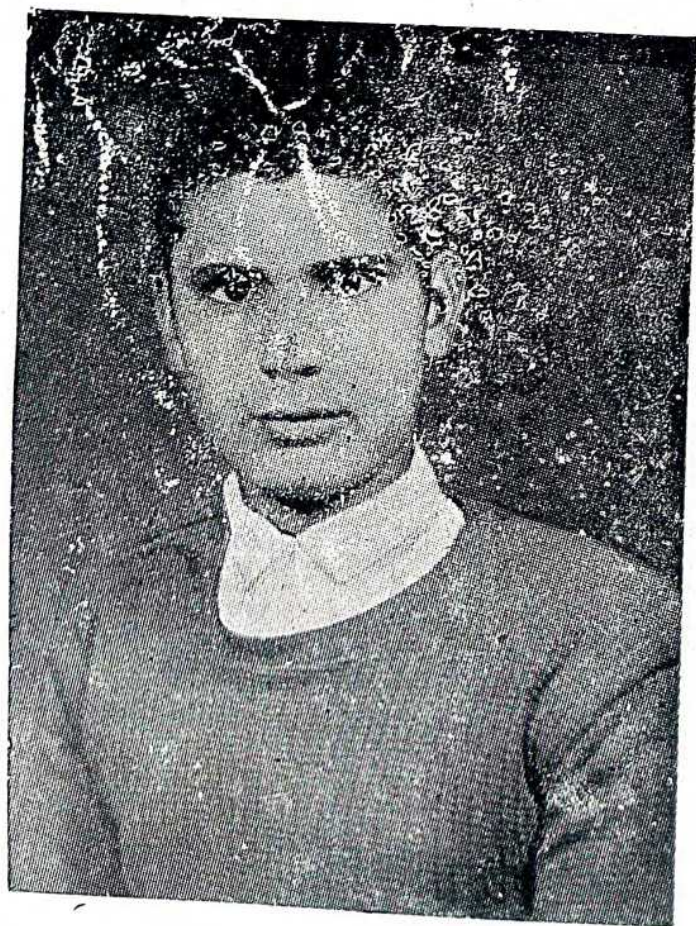
शहीद रामकिशन

शहीद सुमेरसिंह
(हिन्दी रक्षा सत्याग्रह १९५७)

महर्षि दयानन्द का विषपान से ही बलिदान

(ले० श्री स्वामी ओमानन्द सरस्वती, आचार्य गुरुकुल झज्जर)

महर्षि दयानन्द के जीवनकाल में ही उनके भक्तों तथा विरोधियों की पर्याप्त बड़ी संख्या हो गयी थी। सच्चे वैदिक धर्म के पारखी और जिज्ञासु तो उनके उपदेश से सहज में उनके श्रद्धालु भक्त व शिष्य बन जाते थे। जैसे एक रिवाड़ी के राव राजा युधिष्ठिर पाखण्डी स्वार्थी ब्राह्मणों के बहकाने से अपने महल से हथियार बांधकर अपने घोड़े पर यह निश्चय करके सवार हुये थे कि हमारे देवी देवताओं और गंगा-यमुना आदि पवित्र नदियों का तथा तीर्थों का खण्डन वा निन्दा स्वामी दयानन्द ने आज अपने व्याख्यानों में की तो मैं अपनी तलवार से उनका सिर काट दूंगा। व्याख्यान के स्थान पर जब राव राजा युधिष्ठिर पहुंचे उस समय स्वामी दयानन्द का व्याख्यान गोरक्षा पर हो रहा था। अहंकार के वशीभूत अपने घोड़े पर सवार राव राजा युधिष्ठिर दूर से ही उनका व्याख्यान सुनने लगा। जब उसने ६ फुट ९ इंच लम्बे स्वामी दयानन्द की दिव्य मूर्ति के दर्शन किये और स्वामी जी का गोरक्षा पर युक्ति-युक्त प्रभावशाली व्याख्यान सुना तो उसका वज्र हृदय पिघलने लगा और उसमें श्रद्धा के अंकुर अंकुरित होने लगे। वह घोड़े से नीचे उतर कर महर्षि के उपदेशामृत का पान करने लगा। आया था प्राणघातक शत्रु बनकर किन्तु प्रभावित होकर महर्षि का भक्त व शिष्य बन गया। फलस्वरूप अपने साथियों सहित महर्षि दयानन्द के पवित्र कर-कमलों से यज्ञोपवीत धारण करके शिष्य बनने की दीक्षा ली और सर्वप्रथम महर्षि दयानन्द की आज्ञानुसार रिवाड़ी में प्रथम गोशाला की स्थापना की।

महर्षि दयानन्द सत्य और धर्म के सच्चे पुजारी थे। वे प्राचीन सत्य सनातन वैदिक धर्म का प्रचार व उद्धार करने के लिए आये थे। कितने निर्भीक सत्यधर्म के प्रचारक और प्रसारक थे। सत्यार्थप्रकाश में लिखे उनके वचनामृत प्रमाण हैं "मनुष्य उसी को कहना कि मननशील होकर स्वात्मवत् अन्यों के सुख दुःख और हानि लाभ को समझे, अन्यायकारी बलवान् से भी न डरे और धर्मात्मा निर्बल से भी डरता रहे। इतना ही नहीं, किन्तु, अपने सर्वसामर्थ्य से धर्मात्माओं की चाहे वह महाअनाथ, निर्बल और गुणरहित क्यों न हों, उनकी रक्षा उन्नति, प्रियाचरण और अधर्मी चाहे चक्रवर्ती, सनाथ महाबलवान् और गुणवान् भी हों तथापि उनका नाश, अनवति, अप्रियाचरण सदा किया करे। अर्थात् जहाँ तक हो सके वहाँ तक अन्यायकारियों के बल की हानि और न्यायकारियों के बल की उन्नति सर्वथा किया करे। इस काम में चाहे उसको कितना ही दारुण दुःख प्राप्त हो, चाहे प्राण भी भले ही चले जावें परन्तु इस मनुष्यपन रूप धर्म से पृथक् कभी न होवे।" इस दयानन्द वचनामृत को पढ़कर प्रत्येक विचारशील व्यक्ति सहसा कह उठेगा कि इस पांच हजार वर्ष के समय में अर्थात् महर्षि व्यास के पीछे दयानन्द के समान कौन आचार्य सच्चे वैदिक धर्म अर्थात् वेद आर्षज्ञान, वैदिक सिद्धान्तों का प्रचारक हुआ है। क्या दयानन्द के समान दूसरा वेदसर्वस्व वा वेदप्राण मनुष्य दिखाया जा सकता है?

कोई माने या न माने वर्तमान युग में एकमात्र वेदप्राण पुरुष और आर्षज्ञान का अद्वितीय प्रचारक दयानन्द ही हुआ है। उसने इस पवित्र कार्य के लिए अपना सर्वस्व न्यौछावर कर दिया। उनका यह दृढ़ निश्चय था कि "यथा राजा तथा प्रजा" अर्थात् जैसा राजा होता है वैसी ही उसकी प्रजा होती है। यह विचार कर राजाओं के सुधार के लिए उन्होंने राजस्थान की ओर अपना मुख किया था। उनकी धारणा थी कि उदयपुर और जोधपुर आदि प्रदेशों के राजा उनके उपदेश से प्रभावित होकर बदल गये तो उनके सुधरने से वैदिक धर्म के प्रचार का कार्य सरलता से शीघ्र हो जायेगा। वे दुःखी होकर अपने अमर ग्रन्थ सत्यार्थप्रकाश में लिखते हैं 'ऐसे शिरोमणि देश को महाभारत के युद्ध ने ऐसा धक्का दिया कि अब तक भी यह अपनी पूर्व दशा में नहीं आया। क्योंकि जब भाई को भाई मारने लगे तो नाश होने में क्या सन्देह है। जब बड़े बड़े विद्वान् राजा-महाराजा, ऋषि महर्षि लोग महाभारत युद्ध में बहुत से मारे गये और बहुत से मर गये तब विद्या और वेदोक्त धर्म का प्रचार नष्ट हो चला। जो बलवान् हुआ वह देश को दबाकर राजा बन बैठा। वैसे ही सर्व आर्यावर्त देश में खण्डमण्ड राज्य हो गया। पुनः द्वीप द्वीपान्तर के राज्य की व्यवस्था कौन करे" यही विचार करके बचे-खुचे देशी राजाओं के सुधार के लिए जयपुर, शाहपुरा, उदयपुर, जोधपुर आदि राज्यों में प्रचारार्थ गये।

उस समय ये सभी राज्य अंग्रेजों के अधीन तो थे ही। प्रायः सभी राजे महाराजे बुरी तरह भोग विलास में फंसे हुए थे। जोधपुर राज्य को ही ले लीजिए। उस समय के महाराजा यशवन्तसिंह के भाई अपने स्वलिखित जीवन चरित्र में लिखते हैं—मेरे आने से पहले जोधपुर रियासत पर साठ लाख रुपया कर्ज़ था इसमें से बारह लाख रुपया सूद और काट का था। तीस लाख रुपया ब्रिटिश सरकार का था। इस प्रकार जोधपुर राज्य कर्ज़ के नीचे दबा हुआ था। जोधपुर राज्य अजमेर की मशहूर फर्म सेठ सुमेरमल (उमेदमल) से दरबार का लेन-देन किया जाता था। उस पर एक प्रतिशत मासिक सूद देना पड़ता था। इस ऋण वा कर्ज़ का कारण राजाओं का मूर्खतापूर्ण व्यय ही था।

सर प्रतापसिंह अपनी जीवनी में लिखते हैं कि उनकी दो बहिन इन्द्रकंवर बाई जी और केशवकंवर बाई जी का विवाह जयपुर के महाराजा रामसिंह जी के साथ हुआ। इस अवसर पर जयपुर से बहुत धूमधाम के साथ बारात आई। बीस हजार आदमी इस बारात के साथ थे। राजा रामसिंह जी की सवारी पांच सौ सवारों के साथ आगे चली आ रही थी। वे लिखते हैं रात को नाच रंग, शराब भांग के दौर शुरु हुए। इस बारात को जब एक मास होने को आया तो उनके दीवान पं० शिवदीन जी ने प्रार्थना की कि अब अवकाश लेना चाहिए। बीस हजार आदमी हैं उनके खाने पीने पर बहुत व्यय हो रहा है। जोधपुर दरबार की ओर से तो कोई कमी नहीं किन्तु हमें स्वयं विचार करना चाहिए। बीस हजार मनुष्यों के अतिरिक्त हजारों पशु अर्थात् हाथी, घोड़े ऊँट, बैल आदि भी हैं उनके चारे और खुराक का प्रबन्ध भी जोधपुर को ही करना पड़ता है। जयपुर के महाराजा रामसिंह ने जोधपुर के महाराजा तख्तसिंह जी से जब अवकाश चाहा तो उन्होंने हंसकर यह उत्तर दिया कि आना आपके हाथ में था जाना हमारे हाथ में है। पं० शिवदीन के बहुत अनुरोध पर यह निर्णय हुआ कि महाराजा रामसिंह दो हजार आदमियों के साथ अभी कुछ दिन और ठहरें। उधर जयपुर से बार-बार सन्देश आते थे कि रियासत के काम में बाधा हो रही है आप जल्दी पधारें। इस तरह राजे महाराजे धन का बुरी तरह अपव्यय करते थे। अपनी प्रजा के सुख दुःख का उन्हें कोई ध्यान नहीं था।

सर प्रतापसिंह ने सुधार के कार्य किए। वे राजपूतों के विषय में दुःख से कहा करते थे कि उन्हें शराब और वेश्यागमन ने नष्ट कर दिया है। यही दशा मुगलों की थी और यही अवस्था राजपूतों की हो रही है। सर प्रतापसिंह जी स्वामी दयानन्द की शिक्षा से प्रभावित भी हुए। उनके पांच विवाह हुए थे। इसके अतिरिक्त तीन स्त्रियां पास रखते थे। यह शिकार के बड़े शौकीन थे और मांसाहारी थे। ऐसी ही अवस्था इनके बड़े भाई जोधपुर के महाराजा जशवन्तसिंह की थी। इनकी भी बहुत सी रानियां, रखैल और वेश्यायें थीं जिनमें से वेश्या नन्ही भक्तन के षड्यन्त्र से महर्षि दयानन्द को विष दिया गया। कुछ स्वार्थी लोग यह सिद्ध करने का प्रयत्न कर रहे हैं कि महर्षि दयानन्द को जोधपुर में विष नहीं दिया गया, यह रोगी होकर स्वर्ग सिधारे। यह एक योजनाबद्ध कार्य है। जोधपुर का राजघराना भी इसमें मुख्य रूप से भाग ले रहा है। उस समय जोधपुर राज्य के शासक स्वयं भी अपनी लापरवाही के कारण ऋषि की मृत्यु के लिए दोषी थे। अतः उस समय के लोगों ने भी और इस समय का राज परिवार भी इस कलंक से बचने के लिए प्रत्येक सम्भव ढंग से यत्न कर रहा है।

इस समय "सर प्रतापसिंह और उनकी देन" नाम की एक पुस्तक प्रकाशित हुई है। इसके लेखक विक्रमसिंह एम. ए. हैं जो राजघराने के एक स्कूल चोपासनी जोधपुर में अध्यापक हैं। इस पुस्तक में एक अध्याय इसी विषय पर दिया गया कि स्वामी दयानन्द को जोधपुर में विष नहीं दिया गया। क्योंकि लेखक का जीवन-निर्वाह जोधपुर के राजघराने की सहायता या वेतन से ही होता है। वह तो राजघराने को महर्षि दयानन्द की मृत्यु से जो कलंक लगा है उसे धोने का यत्न करता है। ऐसे ही कई लेखक इस योजना में सम्मिलित हैं या किसी स्वार्थ, ईर्ष्या या द्वेष के कारण अन्य भी कई लेखक इस बात पर उतारू हैं कि स्वामी दयानन्द का देहान्त विष देने से नहीं हुआ किन्तु निमोनिया वा दस्तों के लगने से हुआ। ये सब इनकी कपोलकल्पना हैं। जितने भी जीवन चरित्र आरम्भ में तथा आज तक लिखे गए उन सबसे यही सिद्ध होता है कि महाराजा जशवन्तसिंह की रखैल नन्ही भक्तन ने रुष्ट होकर उनके रसोइये के द्वारा दूध में भयंकर विष दिलवाया। जोधपुर निवासी श्री भैरोंसिंह ने अपना सारा ही जीवन इसी शोध कार्य में लगाया है। उनके पास इसके बहुत अधिक प्रमाण हैं। वे तो स्पष्ट और छाती ठोककर कहते हैं कि नन्ही भक्तन और रसोइया ही इस पाप के दोषी नहीं थे किन्तु अंग्रेजी सरकार और जोधपुर का राजघराना भी इस षड्यन्त्र में सम्मिलित था।

मैं अजमेर में जब महर्षि की अर्द्ध निर्वाण शताब्दी हुई उसमें गया था। उस समय तक बहुत से ऐसे व्यक्ति जीवित थे जिन्होंने महर्षि दयानन्द के दर्शन किये थे। उस समय मैंने भी उन सभी के दर्शन किये। उनमें से कुछ व्यक्ति ऐसे थे जिन्होंने महर्षि की अन्तिम दिनों में रुग्ण अवस्था में श्रद्धापूर्वक सेवा की थी। उनके मुख से जिससे भी मैंने पूछ-ताछ की स्पष्ट यही शब्द निकले कि महर्षि दयानन्द को भयंकर विष दिया गया था। जोधपुर के राजघराने के एक आर्य सज्जन अजमेर में रहते हैं। मैं उनसे श्री दत्तात्रेय बाब्ले के साथ मिला। उनके पास महर्षि दयानन्द का एक हाथ का बनाया हुआ चित्र था। मैं उस चित्र को उनके पास से लाया था। मैंने उनसे भी यही प्रश्न पूछा था— क्या महर्षि दयानन्द को जोधपुर में विष नहीं दिया गया तो उन्होंने साफ कहा कि हम जोधपुर राजघराने के लोग महर्षि दयानन्द की मृत्यु के कलंक से बचने के लिए झूठ बोलते हैं। यथार्थ में उनको विष दिया गया था और विष से ही उनकी मृत्यु हुई थी। सभी जीवन चरित्र व इतिहास लेखकों का एक ही मत है कि महर्षि दयानन्द का देहावसान कालकूट विष देने के कारण ही हुआ।

हरयाणा के भजनोपदेशक महर्षि दयानन्द का जीवन गाते हुए यह गाते थे कि जब जगन्नाथ विष को रगड़ रहा था तो उसके हाथ कांप रहे थे। वे पंक्तियां जो गाई जाती थीं इस प्रकार हैं— "रगडूं ना रगड़ा जाय हाथ मेरे कांप रहे" जिस डाक्टर अलीमर्दान खां ने जोधपुर के राजघराने की व्यवस्था से स्वामी दयानन्द को चिकित्सा की थी उस नीच ने औषध के स्थान पर स्वामी दयानन्द को विष ही दिया जिससे प्रतिदिन तीस से भी अधिक दस्त आते रहे।

रोग बढ़ता गया ज्यों-ज्यों दवा की। महर्षि दयानन्द की अवस्था जोधपुर में ही सर्वथा बिगड़ गई थी और वे मरणासन्न हो गये थे। शरीर की सब शक्ति समाप्त हो गई थी। अलीमर्दान खां की चिकित्सा से विकराल काल के गाल में ऋषिवर चले गये थे। इस बार जोधपुर में मैंने पता लगाया कि यह व्यक्ति कहां का था। श्री भैरोंसिह जी ने भी बताया कि उत्तर प्रदेश का था। मैंने उस समय भैरोंसिह जी को एक सच्ची घटना जो रहस्यपूर्ण है इस डाक्टर अलीमर्दान खां के विषय में सुनाई। यह डाक्टर अलीमर्दान खां जो जोधपुर से उत्तर प्रदेश में चला गया। यह हस्तिनापुर के पास रहता था और यह पागल हो गया था। उसी गांव के पास आर्यसमाज के संन्यासी स्वामी शान्तानन्द जी रहते थे। उन्होंने इस डाक्टर अलीमर्दान खां को पागल अवस्था में अनेक बार देखा। वह बार-बार रोता था और उसके मुख से यही शब्द निकलते थे कि मैंने भारी पाप किया। महान् अपराध किया कि एक ऋषि को, एक महात्मा स्वामी दयानन्द को विष दिया। अनेक वर्ष तक ऐसी ही अवस्था में दुःखी होकर वह मर गया।

डा० अलीमर्दान खां उत्तर प्रदेश का ही था और वह भी महर्षि दयानन्द को विष देने के षड्यन्त्र में सम्मिलित था। महर्षि दयानन्द को योजनाबद्ध षड्यन्त्र करके जोधपुर में भयंकर विष दिया गया जिसके कारण उनका अमर बलिदान हुआ। हो सकता है आगे चलकर यह भी सिद्ध हो जाए कि नन्ही भक्तन व रसोइया के अतिरिक्त जोधपुर का राजघराना व अंग्रेज सरकार भी विष देने में सम्मिलित थे।

इस बार जोधपुर में कुछ व्यक्ति ऐसे मिले जिन्होंने नन्हीं भक्तन के विषय में ऐसा बताया— रामलियावास ५० घर का एक छोटा सा ग्राम जिला नागौर में है। इसकी ग्राम पंचायत करड़ाया है। इस नन्ही भक्तन का जन्म तथा ननिहाल इसी ग्राम का था। यह नन्ही भक्तन दूर के कुएं से पानी लेने के लिए आ रही थी। जोधपुर के राजा जशवन्तसिंह इसकी सुन्दरता के कारण इसे जोधपुर ले आये। किसी समय इस नन्ही भक्तन ने महाराजा से यह वचन ले लिया था कि मेरे इस ननिहाल के ग्राम में एक अच्छा कूआं और भगवान् श्रीकृष्ण का मन्दिर बनवा दो। महाराजा ने इस मांग को पूरा किया। श्री कृष्ण जी महाराज का मन्दिर तथा बहुत सुन्दर कुआं वहां पर बनवाया। कुएँ का पानी दो सौ फुट गहराई पर निकला किन्तु जल उसका खारा है। उस मन्दिर में पुजारी नन्ही भक्तन के ननिहाल का ही रहता है उस गांव में यह प्रसिद्ध है की नन्ही भक्तन ने स्वामी दयानन्द को विष दिलवाया था। इसी के कारण स्वामी दयानन्द की मृत्यु हुई। स्वामी दयानन्द को विष दिलवाकर उस नन्ही भक्तन ने महान् पाप किया था। इसी के कारण कुएँ का पानी खारा है। उस ग्राम में धार्मिक व्यक्ति चला जाता है तो उस ग्राम का अन्न व जल ग्रहण नहीं करता ऐसा धार्मिक व्यक्ति ही कहते हैं कि इस पापन भक्तन नन्ही जान ने महानात्मा स्वामी दयानन्द को विष देकर मारा था। इसके कारण इस ग्राम का अन्न व जल ग्रहण नहीं करना चाहिए।

ये सारी बात यही सिद्ध करती है कि महर्षि दयानन्द का बलिदान विष पान से ही हुआ और उनको विष देने के षड्यन्त्र में महाराजा जोधपुर की वेश्या नन्ही भक्तन का पूरा हाथ था। इस नन्ही भक्तन के पास लाखों रुपये की सम्पत्ति थी। इसके नाम का एक विशाल मन्दिर जोधपुर में भी बना हुआ है। इसके प्रभाव से जोधपुर के राजा भी दबे हुए थे। अन्य सभी राज्याधिकारी इससे डरते थे। इसलिए यह भेद इन्हीं कारणों से बहुत दिनों तक जोधपुर में छिपा रहा किन्तु आज जोधपुर के जाने माने लोग सभी यह जानते हैं कि महर्षि दयानन्द की मृत्यु का कारण विषपान ही था और रसोइये के द्वारा विष दिलाने में नन्ही भक्तन का पूरा हाथ था तथा इस षड्यन्त्र में डा० अलीमर्दान खां भी सम्मिलित था। श्री प्रो० राजेन्द्र जी जिज्ञासु ने एक छोटी पुस्तक "महर्षि का विषपान अमर बलिदान" लिखी थी। पाठक अधिक जानना चाहें तो उसे अवश्य पढ़ें।

उपरोक्त सच्चाई का अनुमोदन अथवा पुष्टि शाहपुरा के कुछ आर्य सज्जन भी करते हैं। जगन्नाथ रसोइया को शाहपुर के राजा नाहरसिंह ने महर्षि दयानन्द का भोजन बनाने के लिए भेजा। क्योंकि जो रसोइया उदयपुर से उनके साथ आया था, वह वृद्ध होने से सेवा करने में असमर्थ था इसलिए उसके स्थान पर राजा नाहरसिंह ने अपना पाचक जगन्नाथ स्वामी जी की सेवा में साथ भेज दिया। जगन्नाथ के कई नाम थे। एक नाम धूलिया वा धूरिया भी था। जन्म का ब्राह्मण होने से इसे धौड़ मिश्र भी कहते थे। अधिकतर लेखकों ने यही लिखा है कि महर्षि दयानन्द को विष देने वाला जगन्नाथ रसोइया था। किसी-किसी लेखक ने धौड़ मिश्र भी लिखा है। अब इससे यही सिद्ध होता है कि जगन्नाथ और धौड़ मिश्र एक ही व्यक्ति के नाम थे और वह शाहपुरा का रहने वाला था। इसके प्राण बचाने के लिए महर्षि दयानन्द ने इसको रुपयों की थैली देकर भगा दिया था। यह जोधपुर से भागकर कहां-कहां गया भली प्रकार से विदित नहीं। कुछ लोग कहते हैं कि नेपाल भाग गया था। किन्तु शाहपुरा के आर्य सज्जन यही बताते हैं कि अपने अन्तिम जीवन में बहुत वर्ष तक शाहपुरा में ही रहता रहा और उसके बाल बच्चे भी वहीं रहते रहे। शाहपुरा के राजा नाहरसिंह ने उसको पूरा संरक्षण दे रखा था। शाहपुरा राज्य से उसे पेंशन मिलती थी। शाहपुरा के कुछ आर्य सज्जन तो यह कहते हैं कि महर्षि दयानन्द को विष देने की योजना में शाहपुरा के राजा भी सम्मिलित थे, क्योंकि वे अंग्रेजों के भक्त थे और अंग्रेजों का भी स्वामी दयानन्द को मरवाने में पूरा हाथ था। इस समय तो ईश्वर ही जानता है कि इसमें कितनी सच्चाई है। शाहपुरा में आज भी पूरी प्रसिद्धी है कि महर्षि दयानन्द को जगन्नाथ रसोइये ने ही विष दिया था। उसमें नन्हीं भक्तन और डा० अलिमर्दान खां का तो पूरा हाथ था ही जोधपुर नरेश और शाहपुरा नरेश इन दोनों का कितना हाथ था वा नहीं यह भविष्य की खोज पर निर्भर है। एक बहिन श्रीमती कमलादेवी जी मन्त्राणी आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब ने चम्बा में महिला सम्मेलन में एक कविता पढ़ी वह भी महर्षि दयानन्द के विषपान को पुष्ट करती है।

"विश्व को अमृत पिला, विष आचमन तुमने किया है।
देशहित तप त्याग संयम का चयन तुमने किया है।।
देह की समिधा बनाकर प्राणघृत की आहुति दे,
धन्य ऋषिवर धन्य जीवन का हवन तुमने किया है।।"

महर्षि दयानन्द विष-प्रकरणम्

लेखक:—सोहनलाल शारदा शाहपुरा जिला भीलवाड़ा (राजस्थान)

पूरी एक शताब्दी बीत जाने के बाद श्री ओंकारसिंह ने राजस्थान पत्रिका के ७ फरवरी १६८४ के अङ्क पृष्ठ संख्या ५ पर एक लेख में यह सिद्ध करने की चेष्टा की है कि "स्वामी जी को विष दिये जाने की बात अत्यन्त सन्देहास्पद है और विश्वास करने योग्य नहीं हैं।" इसी वाक्यांश को लेकर श्री भवानीलाल जी भारतीय ने विविध समाचार पत्रों में अपना वक्तव्य प्रकाशित कराया तथा श्री राजेन्द्र जी जिज्ञासु ने भी सार्वदेशिक के ४ मार्च सन् १६८४ के अङ्क में अपने विचार प्रकट किए।

विचारना यह है कि वस्तुस्थिति क्या है। महर्षि के स्वार्गारोहण के पश्चात् ही सम्भवतः आद्य जीवनी लेखक श्री रावगोपाल हरो ने अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ दयानन्द दिग्विजयार्क में जो निम्न श्लोकानुसार ज्येष्ठ शुक्ला प्रतिपदा संवत् १६४४ में पूर्ण होकर प्रकाशित हुआ लिखा है कि:—७ वां मयूख (३ अध्याय)

(युगवेदाङ्कचन्द्रेब्दे ज्येष्ठमासे सिते दले।
एकम् रविवारेऽयम् ग्रन्थो यं पूर्णतां गतः।)

में कि "आश्विन कृष्णा एकादशी गुरुवार के दिन प्रथम कुछ श्लेष्मा अर्थात् जुकाम श्री महाराज को हुआ। उसके चौदहवें दिन अर्थात् चतुर्दशी की रात्री को धूळ मिश्र पाकाध्यक्ष से जोकि शाहपुर का रहने वाला था दूध पीकर सोये। रात्रि भर में तीन वमन हुये।"

इसी धूळ मिश्र को आगे चल कर लेखराम, देवेन्द्र बाबू ने धौल मिश्र न मालूम क्यों लिखा। वास्तव में इसका नाम धूळ मिश्र ही है। बोलचाल की भाषा में इधर यह नाम कई व्यक्तियों के हैं। धूळ नाम रखना इधर आम बात है। धौल नहीं। यह व्यक्ति संभवतः सन् २७ या ३० तक जिन्दा रहा। शाहपुरा में ही रहता था। महर्षि के स्वर्गवास के पश्चात् शाहपुरा आगया था। इसी के कथनानुसार महर्षि के अनन्य भक्त उदयपुराधीश के पश्चात् आजीवन परोपकारिणी सभा के (दिसम्बर १८८३ से) अध्यक्ष शाहपुरा नरेश सर नाहरसिंह के० सी० आई० ने ४२ वर्ष बाद मथुरा शताब्दी में अपना वक्तव्य दिया जो निम्न प्रकार से है। स्मरण रहे यह जन्म शताब्दी फरवरी सन् १६२५ को मनाई गई थी। "स्वामी जी अपने लिये रसोई बनाने वाला आदमी मुझ से ले गये थे। स्वामी जी को विष दिया गया था यह बात गलत है। मैं खयाल भी नहीं कर सकता कि उनको विष दिया गया था। जो लोग उनके पास रोटी बनाने वाले थे वे अभी तक मेरे यहां नौकरी करते हैं। उनका नाम श्रीकृष्ण व कल्लू है।"

इसी वक्तव्य को लेकर जब आर्यजगत् में समाचारपत्रों में चर्चा चली तो पूज्यपाद स्वामी श्रद्धानन्द जी महाराज ने श्री भगवान्स्वरूप जी न्यायभूषण को इस धूळ मिश्र के बयान लेने की कही। उन्होंने इसके बयान लेकर स्वामी जी की सेवा में भेज दिये। जो "अलंकार गुरुकुल कांगड़ी स्नातक मण्डल का मुखपत्र के मई १६२५ के अङ्क पृष्ठ ३७६-३७८ पर प्रकाशित हुआ। इस बयान से प्रथम जो आपत्तिश्रद्धेय भवानीलाल जी भारतीय ने उठाई वह यह है कि अब श्रीकृष्ण व कल्लू नाम के रसोइये थे तब यह धौल मिश्र कौन है कि जिसके बयान लिये जा रहे हैं।

बात ऐसी है कि जब महर्षि के अत्यन्त श्रद्धालु भक्त राजाधिराज शाहपुरा ने महर्षि का जोधपुर पधारना जाना तो उन्होंने अपना विश्वासपात्र रसोइया इसी धूळा जोशी वास्तविक नाम व जात जिसको मिश्र की पदवी थी, दे दिया। इसी धूळा मिश्र का नाम श्री राव गोपाल हरी ने धूळ के बजाय

धूड लिखा सो कभी-कभी वैदिक उच्चारण में भी ळ के बजाय ड का उच्चारण करते हैं। जब यह रसोइया श्री महर्षि की सेवा में राजाधिराज ने देना चाहा तो स्वाभाविक ही है कि महर्षि को यह नाम पसन्द ही न था। कहते हैं कि राजाधिराज को कहा गया कि हमारे साथ धूळा अर्थात् मिट्टी देते हो। तो राजाधिराज ने इसका हो नाम बदलकर श्रीकृष्ण कर दिया। लेकिन यह नाम दोनों तक यानि राजाधिराज व महर्षि तक ही सीमित रहा। आम जनता में इसका नाम धूळा जोशी ही विख्यात रहा। इसी ने ही चतुर्दशी को दूध में संखिया दिया था। जैसाकि पीर इमाम अलीके पास दवा लाने वाले ने कहा था कि महाराज ने कहा है कि मुझे संखिया दिया गया है। कांच की कल्पना सर्वथा सृष्टि नियम के विरुद्ध है। क्योंकि कांच चाहे कितना ही बारीक क्यों न पीसा जाय दूध में घुल ही नहीं सकता। यह लिखना क्षितीश जी वेदालङ्कार का ११ मार्च १९८४ आर्यजगत् में कि कांच राजस्थान में संखिया को कहना आम बात है हास्यास्पद है। क्योंकि प्रत्येक जीवनी लेखक कांच व संख्या को अलग-अलग हो मानते हैं।

अब विचारना यह है कि राजाधिराज ने जन्म शताब्दी के अवसर पर ऐसा भाषण क्यों दिया जो भ्रमोत्पादक है। इस सम्बन्ध में हमारा विचार यही है कि स्वयं राजाधिराज यद्यपि बुद्धिमान् श्रद्धालु सत्सङ्गी होते हुए भी अक्षरज्ञान से निरे शून्य थे। वे हस्ताक्षर भी करना नहीं जानते थे। अपना हस्ताक्षर लिखकर उसकी छाप बनाकर छोड़ी थी जो उनके मंजूरी के पत्रों पर स्वयं लगा देते थे। उस हाथ पर नाहरसींग ऐसा वाक्य है। पत्रों में जो भी विचार प्रकाशित होते यद्यपि सुनाने वाले उन्हें सुनाते लेकिन जीवनी लेखकों ने दयानन्द विषप्रकरण को जीवनचरित्र तक ही सीमित रखा। किसी भी आर्यसमाजी पंडित ने राजाधिराज को यह सुझाव नहीं दिया कि इस विषय की कानूनी जांच कर इसे सजा दिलाई जाय। वह इसीलिए सम्भवतः नहीं कहा गया था कि महर्षि की विचारधारा महान् थी। वे हमेशा ही अपने जहर देने वाले को यह कहकर छुड़वा देते थे कि मैं संसार को कैद से मुक्त कराने आया हूं न कि कैद में डालने को। इसी सिद्धान्त को मानकर किसी ने कुछ भी शिकायत राजाधिराज के पास नहीं की। तब राजाधिराज जिसको कि तत्कालीन रियासतों के सभी अधिकार प्राप्त थे। न्याय का तकाजा यही है कि जब तक कोई दूसरा व्यक्ति उसके खिलाफ कुछ नहीं कहे तो जो वादी कहता है वही सत्य माना जाता है। इसलिए राजाधिराज ने उपर्युक्त वचन जन्मशताब्दी में कहे।

अतः यह निर्विवाद ही है कि महर्षि को जहर दिया गया। वह जहर अन्य कुछ भी न होकर संखिया ही था। उसका देने वाला धूळा जोशी (मिश्र) शाहपुरा का ही था। लेकिन आगे चलकर चिकित्सक डा० अलीमर्दान खां ने जो केलोमाल भिन्न-भिन्न तरीकों से २६ ग्रेन पहुंचा दिया। यही उनकी मृत्यु का मूल कारण है। अतः अब पूरी शताब्दी बाद इस प्रश्न को पुनर्विचार के लिए प्रस्तुत करना कोई औचित्य नहीं है। आज देश काल परिस्थिति को देखते हुए हमें नई पीढ़ी को आर्य बनाने पर ही कुछ करना है। महर्षि ने तो कहा है कि मैंने काम पूरा कर दिया है। सत्यार्थप्रकाश वगैरह सब कुछ जितना लिखना चाहिए लिख दिया है। जोधपुर के ही राजा जवानसिंह के एक प्रश्न के उत्तर में कहा कि मेरा काम आर्यसमाज ही पूरा करेगा। इसी पर ही मेरा पूर्ण विश्वास है। यही महर्षि का अन्तिम सन्देश है। हमें पूर्णतया त्याग तप बलिदानी भावनाओं से ऋषि कार्य पूरा करना है। इसके लिए प्रत्येक आर्यसमाज मन्दिर में महर्षिकृत ग्रन्थों की पढ़ाई चालू होवेगी तभी सुधार हो सकेगा। अन्यथा कुछ भी नहीं होने वाला।

१८५७ राष्ट्रीय स्वाधीनता संग्राम के प्रमुख सहयोगी स्वामी दयानन्द

(निहालसिंह आर्य, अध्यापक)

सन् १७५७ में अंग्रेजों ने प्लासी की लड़ाई जीतने के बाद से भारत को पूर्णतया लूटा दबाया और लार्ड डलहौजी की अपहरण नीति से सतारा, पंजाब, झांसी, नागपुर आदि राज्यों को कम्पनी के राज में मिलाकर तब केवल दश वर्ष में भारत की २१ हजार पुरानी जमींदारियों को जब्त करके हर प्रकार हमारा राजनैतिक, शैक्षिक, आर्थिक, धार्मिक, व्यापारिक, औद्योगिक शोषण किया तो सारे देश में सर्वत्र अत्याचारों के विरुद्ध त्राहि त्राहि मच गई। चारों ओर जनता और राजा नवाबों में विद्रोह की अग्नि जलने लगी जिससे भारत के साधु जन अर्थात् हिन्दू मुस्लिम सन्त फकीर सबसे पहले आन्दोलित हुए क्योंकि "परोपकाराय सतां विभूतय:' परमार्थ के कारणे साधुन धरयो शरीर' तुलसी सन्त सुअम्ब तरु फूल फलहिं परहेत' अर्थात् साधु सन्तों का जोवन परोपकार के लिए ही होता है। राष्ट्रीय विपत्ति में साधु वर्ग सदा आगे रहा है।

१८५७ संग्राम में सन्त फकीरों का प्रेरक संयोजन—

इन विद्रोही संन्यासी सन्त फकीरो की संख्या दो ढाई हजार थी जिनमें अगवा साढे चार सौ साधु थे जिन्होंने सर्व खाप पंचायत के लेखानुसार स्वा० विरजानन्द को फाल्गुन मास की पूर्णमासी सं० १६०७ विक्रमी (सन् १८५० ई०) को मथुरामें 'भारत गुरुदेव' को पदवी दी थी इसीलिए आर्य जगत् में भी केवल इन्हीं के नाम में 'गुरु' पद लगाया जाता है। उक्त संग्राम में इन सन्तों के निर्देशक सवा सौ साधु और इन सबके प्रमुख संयोजक प्रेरक वेद संस्कृत के मर्मज्ञ योगी संन्यासी चार महापुरुष थे जो बाल ब्रह्मचारी थे। प्रथम हिमालय के योगी १६० वर्षीय स्वामी ओमानन्द दूसरे उनके शिष्य कनखल के स्वामी पूर्णानन्द तीसरे उनके शिष्य मुथरा में स्वामी विरजानन्द और चौथे उनके शिष्य ३३ वर्षीय गोल मुख वाले स्वामी दयानन्द सारे भारत में साधुओं और क्रान्तिकारी योद्धा राजा नवाबों के उत्साहवर्द्धक संयोजक थे। कृपया पढ़ें मेरा लेख 'आर्य जगत्' १८ मई १६८० दिल्ली 'मधुर लोक मार्च १६७६, सुधारक गुरुकुल झज्जर जून १६७६ ई०।

क्रान्तिकारी साधु-फकीरों के प्रमाण—

—"एक अंग्रेज लेखक के अनुसार मेरठ छावनी के निकट कोई फकीर ठहरा हुआ क्रान्ति का प्रचार कर रहा था। पता लगने पर वह अपने हाथी पर बैठकर पास के गांव में जाकर अपना काम करता रहा। इन राजनैतिक फकीरों को प्राय: सवारी के लिए हाथी और रक्षा के लिए सशस्त्र सिपाही मिले हुए थे।"

@VaidicPustakalay

"बैरकपुर से पेशावर तक और लखनऊ से सतारा तक हजारों राष्ट्रीय फकीर और संन्यासी घूम घूम कर एक एक ग्राम और एक एक पलटन में स्वाधीनता के युद्ध का प्रचार करने लगे। हजारों मौलवी और हजारों पण्डित क्रान्ति की सफलता के लिए जगह-जगह ईश्वर से प्रार्थनाएं करने लगे।
—('भारत में अंग्रेजी राज' पृ० ८२३-२४)

"इसी समय सारे देश में सैंकड़ों साधु पण्डित, फकीर तथा ज्योतिषी प्रकट हुए। ये लोग सेना में तथा लोगों में पूजा पाठ तथा धर्मोपदेश के बहाने जाते और क्रान्ति का सन्देश प्रसारित करते"
(पुस्तक "नाना साहब पेशवा' पृ० ७०–७१)

इस प्रकार महर्षि दयानन्द का जीवन चरित्र के लेखक स्वामी वेदानन्द वेदवागीश, गुरु विरजानन्द जीवन गाथा लेखक स्वा० वेदानन्द तीर्थ, हमारा राजस्थान के लेखक पृथ्वीसिंह मेहता तथा १८५८ ई० के तत्कालीन उर्दू अखबार संग्राम में साधु-फकीरों का सहयोग मानते हैं। पंचायती लेखों में हिन्दू मुस्लिम अन्य अगुवा साधु हरिगिर गुसाईं, हरियानाथ, धर्मगिरि गुसाईं, (गुरु विरजानन्द के शिष्य) मर्मदूशाह, मदीशाह, हसन अब्बास और फकरूदीन थे। पूर्वोक्त ४ संयोजक साधुओं ने हरद्वार, गढमुक्तेश्वर और मथुरा में ही क्रान्ति प्रचार किया था परन्तु स्वामी दयानन्द ने तो सारे भारत में दिन रात भ्रमण कर इस स्वाधीनता युद्ध की जागृति चेतना देकर संगठन किया था। हरद्वार, गढ गंगा, दिल्ली योग माया का मन्दिर, मेरठ, कानपुर, इलाहबाद त्रिवेणी, सतारा, मथुरा, लखनऊ, झांसी क्रान्ति के प्रमुख केन्द्र थे। कमल पुष्प, चपाती, तीतर, खरबूजा, रेशम ये क्रान्ति के चिह्न थे।

विशेष ज्ञातव्य बातें —

१- १८५४ से ५६ ई० तक मथुरा में गुरु विरजानन्द ने लाखों लोगों को बुलाकर श्री कृष्ण जन्माष्टमी पर स्वाधीनता संग्राम का प्रबल गुप्त प्रचार किया था। जिसमें विशाल हरयाणा की जनता अधिक थी।

२- क्रान्ति प्रारम्भ के लिए ३ मई निश्चित की थी। मथुरा सभाओं में स्वामी दयानन्द, राव तुलाराम और राजा नाहरसिंह भी सम्मिलित थे।

३- गुरु विरजानन्द के आदेश से सर्वत्र अंग्रेज स्त्री बच्चों को सुरक्षित रखा।

४- यह गदर या केवल सैनिक क्रान्ति नहीं थी अपितु दो राष्ट्रों का स्वाधीनता संग्राम था, राज बदलो क्रान्ति युद्ध था।

५- साधुओं फकीरों ने स्थान-स्थान पर अपने कई-कई नाम और वेश रूप बदले थे। गुप्त भाषाओं के गुप्त संकेत भी थे।

६- तीर्थ-स्थानों, पर्वों और मेलों पर ये साधु गुप्त सन्देश देते थे।

७- भारतीय सेनाओं में भी कमल प्रचार और देश प्रेम जागृत था।

८- स्वामी दयानन्द जन सामान्य से जंगलों वनों में गुजराती हरयाणवी मिश्रित सामान्य हिन्दी भी बोलते थे क्योंकि उनके पूर्वज हरयाणा के थे।

९- अंग्रेजों पर भेद खुल जाने और घर वालों द्वारा पकड़ा जाने के कारण ही विशेषतया गुप्त रहते थे। उनका नाम गोल मुख वाला साधु प्रचलित था।

१०- संग्राम प्रचार हाल में स्वामी दयानन्द के बदले नाम मूलशंकरा, रेवानन्द और दलाल जी थे।

इस संग्राम में स्वामी दयानन्द के प्रबल सहयोग—

१- २२ वर्ष की अवस्था में गृह छोड़ते ही स्वामी जी को काठियावाड़ में ही अंग्रेजी दासता कष्टों का ज्ञान हो गया था। तब १८४५-४६ में ही अंग्रेज लाहौर सहित सारे देश को दबा चुके थे। सर्वखाप पंचायत का रिकार्ड, पृथ्वीसिंह मेहता विद्यालंकार, स्वामी वेदान्द वेदवागीश भी इस तथ्य की पुष्टि करते हैं।

२- फिर १८५४ ई० तक योगाभ्यास, विद्याध्ययन के साथ-साथ दक्षिणी भारत और राजस्थान के भ्रमण में, पतित स्वार्थी राजाओं के आलस्य को स्वयं देखा था। इसके पश्चात् देशभक्त राजाओं जमींदारों मुरसान, हाथरस, भरतपुर, इन्दौर, ग्वालियर, नागपुर पेशवाओं के कुल जांचे थे। फिर दिल्ली के चारों ओर खापों पंचायतों में देशप्रेम, वीरता सदाचार और सात्विक भोजन देखा था।

३- गृहत्याग काल से ही स्वामी दयानन्द ज्ञान तथा योग के तीव्र पिपासु थे। वे १८५५ ई० में हरद्वार कुम्भ मेले में स्वामी पूर्णानन्द से व्याकरणसूर्य गुरु विरजानन्द का पता पाकर भी सीधे मथुरा अभी नहीं गए अपितु पूर्णानन्द से प्रेरित क्रान्तियोजनाबद्ध होकर श्री कृष्ण जन्माष्टमी पर मथुरा पंचायत में पहुंचे और ११ अक्तूबर १८५५ में पुनः स्वामी पूर्णानन्द की गुप्त साधु सभा में हरद्वार गए। और इसी वर्ष के अन्त में बिठूर में ५ दिन तक नाना साहब से मिले जो उन्हीं के समवयस्क थे। वहां विशेष योजना बन रही थी। १८५६ तक तीर्थ स्थानों पर नाना साहब से उनकी मुलाकात ११ बार हुई थी और नाना से कहा था कि अंग्रेजों से स्वतन्त्र होने पर पंचायती राज चलाकर सारे भारत को स्वर्ग बनाएंगे।

४ १८५६-५७ में गंगा तट भ्रमण में स्वामी जी से बड़े-बड़े साधु सन्त, फकीर, राजा तथा क्रान्तिकारी मिलकर झुक जाते थे और अपने-अपने कार्यपूर्ति की दुआ मांगते थे। तब बिहार बुन्देल-खण्ड के बड़े क्रान्तिकारियों का देशसेवा का आह्वान किया गया था। प्रयाग त्रिवेणी के संगम पर एक पर्व पर तांतिया टोपे, रानी लक्ष्मीबाई आदि बहादुरों ने अपनी शुभकामना पूर्ति को दुआ मांगी थी, वहीं छुट्टी के दिनों में खान बखतां खां ने मनचाही दुआ मांगी।

१८५७ के मई मास से नवम्बर १८६० तक अज्ञात—

महर्षि दयानन्द के जीवन में ये तीन वर्ष 'अज्ञात वास' कहलाते हैं परन्तु पंचायती रिकार्ड और स्वामी वेदानन्द वेदवागीश के लेखानुसार इन तीन वर्षों में विशेषतया गुप्त रहकर स्वामी जी ने संग्राम की विफलता के कारणों को जानने और अंग्रेजी अत्याचारों से शोषित जनता की जानकारी लेने का सारे देश का गुप्त भ्रमण किया था जिसमें वे श्वेत अश्वारोही भी रहे थे। श्री स्वामी भीष्म आर्य भजनीक, श्री वेदवागीश और मथुरा में गुरु विरजानन्द का लेखक मिर्जा अफजल बेग भी इस घटना की पुष्टि करते हैं। भालौट ग्राम के श्री सत्यमुनि (शेरसिंह) ने अपने दादा की बताई यह घटना मुझे भी २७ मई १६७८ और १६७६ में दो बार नरेला में स्वयं बताई थी। पं० बस्तीराम ने दो में से गोल मुख वाले अश्वारोही का नाम स्वामी दयानन्द बताया था क्योंकि वे सं० १६२४ वि० से ही सं० १६३६ वि० तक कई बार महर्षि जी से मिले थे।

इन तीन वर्षों की अज्ञात यात्रा में भारत के बड़े-बड़े राजविद्रोहियों के क्रान्ति कार्यों की खुफिया जांच करने वाले स्वदेशी विदेशी सरकारी कर्मचारियों से स्वामी दयानन्द की ३१ बार मुठभेड़ हो गई

थी मगर आखिर में उनके तेज से हतप्रभ होकर क्षमा मांग झुककर चले जाते थे। एक बार सन् १८५८ में एक अंग्रेज नामालूम मुकाम पर १५ घुड़सवारों सहित स्वामी जी के पास आ धमका और कुछ प्रश्नोत्तर कर उनको दिव्य तीव्र ज्योति से बेसुध होकर कदमों पर गिर पड़ा और क्षमा सहित मसीहा मानकर उन्हें १२५ रुपये देकर चला गया (उस अंग्रेज के साथ, एक पूर्व लेख में गलती से ३५ सवार छप गए थे) फिर नवम्बर १८६० में स्वामी जी मथुरा में गुरु विरजानन्द से स्पष्टतया मिले और ढाई वर्ष पर्यन्त अष्टाध्यायी, महाभाष्य, दर्शन, उपनिषद्, निरुक्त ग्रन्थ पढ़े। व्याकरण पाठ के समय के अतिरिक्त समय एकान्त में भी इन अपूर्व गुरु शिष्य का समागम होता था।

(स्वा० वेदानन्द द० तीर्थ)

"जब गुरु विरजानन्द क्रान्ति पश्चात् तीन वर्षों के देश भ्रमण की इतिवृत्तता दयानन्द वाग्मी से सुन चुके तब राजनयिक गोष्ठी के लिए दयानन्द को विश्वस्त समझ वे एकान्त में उनसे वार्तालाप करने लगे। सुधारक—(देव पुरुष महर्षि दयानन्द सरस्वती—पृष्ठ ३६)

मथुरा विद्याप्राप्ति पश्चात् स्वामी दयानन्द के आत्मकथन:—

एक बार महर्षि जी सन् १८६८ में छः मास तक सौरों (एटा) में ठहरे थे वहां तब उनके साथ सौरम पंचायत के पूर्व मन्त्री चौ० नानकचन्द भी सेवक के रूप में थे और एक दो विश्वस्त साधु भी थे जिन्होंने तब स्वामी दयानन्द से वहां ढाई दिन तक गुप्त बात करने वाले एक अन्य क्रान्तिकारी साधु की बात को कई वर्ष पीछे चौ० नानकचन्द को इस प्रकार बताया था:—

(गुप्त वार्ता लेख की नकल)

१- "स्वामी दयानन्द धार्मिक नेता ही नहीं थे वे सच्चे राजनैतिक नेता भी थे। एक बार हम उनके साथ जिला एटा में सौरों के मुकाम पर थे। उस वक्त उनसे एक साधु मिलने आया। उसने ढाई दिन रहकर उससे बातचीत करी थी। फिर चला गया था। श्री स्वामी जी से हमने इस साधु के हसब नसब की बात पूछी तब स्वामी जी मौन रहे। हमने ज्यादह इसरार किया और हल्फ लिया के हम आपकी बात को नहीं बताएंगे। हम अपने दीन ईमान से भगवान् को साक्षी करके कहते हैं कि आपकी बात का राज़ नहीं खोलेंगे।"

स्वामी दयानन्द का आत्मकथन:—

इस पर श्री स्वामी जी ने कहा के "इनका पहला नाम गोविन्दराम है और अब इनका नाम गुरु परमहंस है। ये जाति के ब्राह्मण हैं। इनका एक साथी रामसहायदास था जो अब से ८ महीने पहले मर गया है। उसने अपना नाम जगनानन्द धरा था। जो जाति का कायस्थ था। हम सब लोग सन् १८५५ व ५६ में गुरु विरजानन्द से आज्ञा लेकर भारत के साधु समाज के हुक्म से क्रान्ति यज्ञ में आहुति डालते रहे थे। ये रामसहायदास और गोविन्दराम रानी झांसी के यहां रहते थे। रानी के बलिदान होने पर ये (साधु बन गए थे), देश में अंग्रेजी हकूमत का दबदबा होने पर साधु बन गए थे। इस तरह से १२५ हमारे पहले साथी थे। हम १८५७ में कभी घोड़ों पर कभी पैदल चले थे और ऊंटों पर सन् १८५५ ई० से सन् १८५८ के शुरु तक देश में क्रान्ति यज्ञ में आहुति डाली था।" (कथन चौ० नानकचन्द) सम्भवतः यह उपरोक्त गोविन्द-राम नाटोरे को धर्मात्मा रानी भवानी का वंशज राजा था।

(२)—"सन् १८५७ के साल में सुना जाता है कि दंगा फसाद हुआ था उस समय किसी एक योरोपियन ने अमृतराय पेशवा के भारी पुस्तकालय में आग लगा दी थी" पेशवाओं से स्वामी जी का विशेष (पूना व्याख्यान ५ पृ० ४४) सम्पर्क था। यह घटना कहीं अन्यत्र नहीं लिखी मिलती। निर्भीक महर्षि ने स्वयं देखी थी अन्य लोग आतंक से चुप रहे।

(३) इस संग्राम में भारतीयों की आपसी फूट, उत्तम अस्त्राभाव, अनुशासनहीनता तथा कुशल नेतृत्व के अभाव में निश्चित तिथि से पहले ही मेरठ में युद्ध छिड़ जाने से असफलता से महर्षि जी बहुत दुखित हुए और इसीलिए एक बार कहा था कि—"सारे भारत में घूमने पर भी मुझे धनुर्वेद के केवल ढाई पन्ने ही मिले हैं यदि मैं जीवित रहा तो सारा धनुर्वेद प्रकाशित कर दूंगा।" स्वामी जी ने यही बात दोबारा नवम्बर १८७८ ई० अजमेर में कही थी।

(अजमेर और ऋषि दयानन्द पृ० ६१)

(४) सन् १८५८ ई० में मलका विक्टोरिया की घोषणा में भारतीय प्रजा के साथ माता-पिता के समान कृपा न्याय और दया के व्यवहार की बात पर महर्षि जी ने सत्यार्थप्रकाश में इसीलिए लिखा कि 'कोई कितना ही करे परन्तु स्वदेशी राज्य सर्वोपरि उत्तम होता है। ......प्रजा पर माता-पिता के समान कृपा, न्याय और दया के साथ भी विदेशियों का राज्य पूर्ण सुखदायक नहीं होता।"

(५) १८५७ संग्राम में अंग्रेजी तोपों द्वारा महलों के तोड़ने, बाघेरों द्वारा लड़ने को घटना महर्षि ने स्वयं देखी थी इसीलिए ११वें समु० में लिख दिया कि "जब संवत् १९१४ के वर्ष में तोपों के मारे मन्दिर मूर्तियां अंग्रेजों ने उड़ा दी थी तब मूर्ति कहां गई थी। प्रत्युत बाघेर लोगों ने जितनी वीरता की और लड़े, शत्रुओं को मारा परन्तु मूर्ति एक मक्खी की टांग भी न तोड़ सकी। जो श्री कृष्ण के सदृश कोई होता तो इनके धुर्रे उड़ा देता और ये भागते फिरते।" यह घटना उनका प्रत्यक्षदर्शी होना सिद्ध करती है।

प्रमुख आर्य विद्वानों लेखकों की साक्षियां—

१- महर्षि जी के सेवक चौ० नानकचन्द के शिष्य सौरम के इमदान खां की सं० १९४५ विक्रमी कविता के ८ पद्यों में दो इस प्रकार है:—

दिल में शोले उठते हैं देव दयानन्द की याद के, पन्ने पलट कर देखलो उनकी जिन्दगी की दाद के।
१८५७ की आजादी की जंग में सब कुछ ही किया, मगर देश के कपूतों ने दगा करके हरवा दिया

२- महर्षि दयानन्द के कई बार दर्शक, उपदेशश्रोता सूफी इमामबख्श के लम्बे लेख के प्रमाण में १८५७ में अंग्रेजी अत्याचारों के विवरण में लिखा है "कुछ साधु सन्तों का ऐसा भी कहना था के स्वामी दयानन्द जी गदर के क्रान्तिकारियों के साथ भी रहे थे।" कृपया पढ़ें 'सर्वहितकारी रोहतक' २१-१-८१ तथा ७-८-७५ के लेख।

३- पं० जयचन्द्र विद्यालंकार लिखते हैं कि बनारस के उदासी मठ के शास्त्री सत्यस्वरूप (लिखते हैं) का कथन है कि—"साधु सम्प्रदाय में तो बराबर यह अनुश्रुति चली आती है कि दयानन्द ने सन् १८५७ के संघर्ष में महत्त्वपूर्ण भाग लिया था।

(पुस्तक राष्ट्रीय इतिहास का अनुशीलन)

४-श्री पृथ्वीसिंह मेहता लिखते हैं "यह बात तो स्पष्ट हो ही सकती है कि क्रान्ति की तैयारियों आदि से उसे (दयानन्द को निकट परिचय करने का अवसर मिला। यह मान लेना आसान नहीं कि दयानन्द सदृश भावनाप्रवण और चेतनावान् हृदय, मस्तिष्क का युवक उसके प्रभाव से अछूता बचा रहा हो।"
—(हमारा राजस्थान, जागृति के अग्रदूत दयानन्द पृ० २६५)

५-यशस्वी विद्वान् आर्यनेता पं० जगदेवसिंह सिद्धान्ती ने सितम्बर १६७८ ई० को मुझे यह बताया था कि "१९६३-६४ में हलका मेहसाना के सांसद श्री मानसिंह के साथ मैं टंकारा और पोरबन्दर गया था। पोरबन्दर के लोगों ने तब बताया कि स्वामी दयानन्द की एक चिट्ठी १८५७ में नाना साहब (स्वा० दिव्यानन्द) की रक्षार्थ पोरबन्दर में सेठ के नाम आई थी। मानसिंह ने भी बताया था कि सिद्धपुर सौराष्ट्र के राजा ने हरयाणा से हजारों ब्राह्मण घर बुलाकर महर्षि दयानन्द के पूर्वजों सहित अपने राज्य में बसाए थे।" —(कथन, सम्राट् प्रेस पहाड़ी धीरज दिल्ली)

६-पं० श्री कृष्ण शर्मा आर्योपदशक राजकोट लिखते हैं कि "सन् १८५७ से पूर्व भारतीय क्रान्ति के एक सूत्रधार स्व० श्री नाना साहब पेशवा ने बिठूर में महर्षि का सम्पर्क साधा था और स्वतंत्रता संग्राम में विजयी बनने के लिए मार्गदर्शन भी मांगा था पर महर्षि की सलाह के अनुसार कार्यारम्भ करने से पूर्व हो मेरठ और दिल्ली में सशस्त्र क्रान्ति की ज्वाला भड़क उठी थी। क्रान्ति के पश्चात् नाना साहब पुनः महर्षि को मिले थे। सौराष्ट्र में ही उनके गुप्तवास के लिए महर्षि ने प्रबन्ध कर दिया था (एक पत्र से)......वे साधु थे श्री नाना साहब पेशवा और वह पत्र था महर्षि दयानन्द का।......अंग्रेजी पत्रों में स्पष्ट उल्लेख है कि छप्पनियां के दुष्काल में महर्षि दयानन्द का मार्गदर्शन न मिला होता हो लाखों मानव अपनी जान गवाँ बैठते।" वह मूल पत्र खोजनीय है। —('महर्षि दयानन्द सरस्वती का वंश परिचय' पृ० ३१-३२)

७-मैं ३१-५-८२ को आर्यसमाज दीवान दीवान हाल दिल्ली में सार्व० आर्य प्र० सभा के त्रैवार्षिक चुनाव में श्री० पं० सत्यकेतु विद्यालंकार से इसी विषय पर मिला था। वे आर्य महासम्मेलन लन्दन से तथा वहां के पुस्तकालयों में खोज करके आए थे अतः उन्होंने मुझे बताया कि —"मैं इंगलैंड से खोजकर १८५७ संग्राम के प्रचारक साधु फकीरों के नाम भी लाया हूं। फ्रांसीसी लेखक फोनटोम (Fontome) ने फ्रेंच भाषा के अपने उपन्यास 'मरयम' में लिखा है कि १८५७ में पकड़े गए विद्रोही बाबा सोताराम ने बताया कि क्रान्ति के संचालक दशनामी और दयाल जी साधु हैं। एक गोल मुख वाले साधु द्वारा कई साधुओं सहित मेरठ की छावनी में प्रचार और गुप्त बैठक का प्रसंग है। सारांश यह कि मैंने डा० भवानीलाल भारतीय के एक पत्रोत्तर में लिखा है कि मेरे खोजे हुए तथ्यों के आधार पर मेरा ६० प्रतिशत दृढ़ निश्चय है कि गुरु विजरानन्द और स्वामी दयानन्द ने १८५७ के संग्राम में अवश्य सक्रिय भाग लिया था।" मेरा लेख '१८५७ संग्राम के संयोजक चार संन्यासी' भी आपने आर्यसमाज का इतिहास भाग १ के पृ० ६९६ से ६९९ तक प्रकाशित किया है। इस विषय का विशेष विवरण वे किसी अन्य भाग में भी देंगे।

८-भोपाल से श्री आदित्यपाल सिंह आर्य भी अपने पत्र 'वैदिक शिक्षा सन्देश' के कई अङ्कों में '१८५७ में महर्षि का सहयोग' प्रकाशित कर चुके हैं। उन्होंने एक पुस्तिका 'ऋषि दयानन्द ने १८५७ के प्रथम भारतीय स्वातन्त्र्य समर में सक्रिय भाग लिया था।" अलग प्रकाशित की है।

इनके अतिरिक्त 'आर्य जगत्' के सुयोग्य सम्पादक श्री पं० क्षितीश वेदालंकार, श्री जगन्नाथ विद्यालंकार आर्य मित्र में, डा० रामेश्वरदयाल गुप्त सर्वहितकारी १४ फरवरी १९८५ में, वैद्य हकीम राम शंकर गुप्त मधुरलोक जनवरी ८५ में, श्री प्रकाशवीर शास्त्री ने दिल्ली के अपने भाषणों में, श्री बनारसीसिंह एम. ए. भी अपने-अपने ढंग से १८५७ संग्राम में महर्षि जी का सहयोग मानते हैं।

कृपया पाठकगण स्वामी वेदानन्द दयानन्द तीर्थ की लिखित स्वा० विरजानन्द की जीवन गाथा और स्वा० वेदानन्द वेदवागीश गुरुकुल झज्जर की पुस्तक सुधारक विशेषांक 'देव पुरुष महर्षि दयानन्द सरस्वती' अवश्य पढ़ें। इनमें इस विषय के बहुत प्रमाण हैं। इस सुधारक विशेषांक में तो तपोधन स्वा० ओमानन्द जी द्वारा संग्रहीत सर्व खाप पंचायत सौरम के रिकार्ड की ही सामग्री संकलित है। क्योंकि उनके पास तत्सम्बन्धी मूल हस्तलेख हैं।

'१८५७ संग्राम के सहयोगी स्वामी दयानन्द' के मुख्य विरोधी डा० भवानीलाल भारतीय हैं। परन्तु वे इसके विरोध में कोई पुष्ट प्रमाण तर्क न देकर केवल नट के ढोलिए के समान 'न मानूं, तो भी कसर रह गई' वाली बात करते हैं और 'राज बदलो क्रान्ति' 'जंगे आजादी' 'राष्ट्रीय स्वाधीनता संग्राम' को 'सैनिक विद्रोह' मानते हैं और हरद्वार १८५५ में स्वामी पूर्णानन्द (हरयाणा में जन्मे) और स्वामी दयानन्द की भेंट की उपेक्षा करते हैं। भारतीय जी योग्य विचारक चिन्तक और पुरुषार्थी विद्वान् हैं। परन्तु पूर्वाग्रह मण्डित हठी हैं। दूसरे अनेक विद्वानों को व्यंग्यमयी कटाक्षपूर्ण रूखी बात कहते हैं। 'परोपकारी' के तथा कई अन्य जगह इन्होंने मुझे भी 'सुपर गप्पाष्टक, स्वयंभू लेखक, नादान दोस्त' लिखते हुए मानसिक संकीर्णता दिखादी और हजारों वर्ष पुरानी सर्वखाप पंचायत सौरम (निकट मुजफ्फरनगर) जाकर भी सौरम के रिकार्ड को नहीं देखना चाहा जिसमें से पांच विद्वान् डाक्ट्रेट की उपाधि ले चुके हैं। हजारों वर्ष तक यह पंचायती हरयाणा सारे भारत की रक्षा करता रहा है। भारतीय जी ने मेरे भेजे दो लेखों को भी परोपकारी में नहीं छापा जब कि ये आर्यसमाज के सामूहिक पत्र हैं। मेरे ये लेख दर्शों आर्य पत्रों ने छापे हैं। आर्य विद्वानों में शब्द ज्ञान के साथ उदारता, भ्रातृभाव, मैत्री, सहिष्णुता तथा सम्मान भाव भी होना चाहिये।

महर्षि दयानन्द जागरूक वैदिक राजनीतिज्ञ थे—

महर्षि जी ने सक्रिय राजनैतिक विधान का उपदेश ही सत्यार्थप्रकाश के छठे सम्मुलास में किया है। वे वैदिक गणतन्त्रीय राज विधायक थे जो मनुस्मृति आदि राज विधान के मर्मज्ञ महापण्डित थे और राजस्थान के कई राजाओं को राज विधान मनुस्मृति पढ़ाई थी। उन्होंने सकल वेद विद्याओं तथा चक्रवर्ती आर्य राज्य के प्रचार प्रसार की बात अपने ग्रन्थों और आर्याभिविनय में लिखी है। १७-३ ८५ को महर्षि दयानन्द मठ रोहतक में तपस्वी यति स्वामी ओमानन्द जी ने '१८५७ और स्वामी दयानन्द' पर एक लेख शीघ्र लिखने की मुझे प्रबल प्रेरणा दी अतः मैं उनका धन्यवादी कृतज्ञ हूं। मेरा उपरोक्त लेख हरयाणा के पंचायती रिकार्ड और आर्य विद्वानों के आधार पर लिखा संक्षिप्त लेख है।

पता—३१, कविता कालोनी, नांगलोई, दिल्ली-४१
तिथि : २७-३-१९८५ ई०

हरयाणा के वीर सैनिकों के बलिदान

लेखक—स्वामी ओमानन्द सरस्वती

१. अंग्रेजी राज्य में भी अनेक युद्ध हुए जिनमें भारत के वीरों ने खूब बढ़कर भाग लिया और अपनी वीरता के जौहर दिखाये इसी वीरता के कारण हरयाणा के वीर सैनिकों को अंग्रेजों ने अपने वीरता सूचक बड़े पुरस्कार मैडल (तमगे प्रदान किये। उनका सबसे बड़ा मैडल विक्टोरिया क्रास (VICTORIA CROSS) था। उसको प्राप्त करने वाले भी हरयाणा के अनेक वीर थे। रिसलदार बदलूसिंह २३ सितम्बर सन् १९१८ ईस्वी को जौल्डन नदी के पश्चिम किनारे पर शत्रुओं के साथ वीरतापूर्वक युद्ध करते हुए वीरगति को प्राप्त हुए। मरने से पूर्व सबसे बड़ी सन्तोष की बात यह हुई कि अपनी आंखों से उन्होंने अपने शत्रु को पूर्णतया पराजित होते देख लिया। यह सर्वोत्तम प्रकार का शूरवीर योद्धा था। मृत्यु का भय इसको नाममात्र भी नहीं था।

२. होलदार उमरावसिंह तोपखाने का वीर सैनिक था। यह जापानियों के साथ ब्रह्मा में युद्ध करते हुए १५ दिसम्बर १९४४ को वीरगति को प्राप्त हुआ। जापान की दो कम्पनियों का इसने डटकर युद्ध में वीरता से सामना किया और उनको रोके रखा। जब इसका गोला बारूद खत्म होगया तो जापानियों से इसने मुष्टा-मुष्टि (हाथों-हाथ) वीरतापूर्वक युद्ध किया। युद्ध समाप्ति पर यह अपनी मशीनगन के पास अत्यन्त थका हुआ पाया गया। इसके शरीर पर सात बड़े-बड़े जख्म थे और इसके आस-पास दश जापानी सैनिकों के मृतक शरीर पाये गये अर्थात् वे इसी के द्वारा मारे गये। यह वीर हरयाणे के प्रसिद्ध जिला रोहतक की झज्जर तहसील के पलड़ा ग्राम का रहने वाला था।

CHM छैलूराम का जन्म जिला भिवानी में ग्राम दिनोद में १० मई १९०५ में हुआ था। इसके पूज्य पिता का नाम जयराम था। यह अपनी टोमीगन के साथ अपने बड़े अफसर की सहायता के लिए युद्ध में आगे बढ़ा। इसने तीन चार शत्रुओं को समाप्त कर डाला और शत्रु का आगे बढ़ना रोक दिया। अपने कम्पनी कमाण्डर की सहायता करते हुए यह भी बुरी तरह से जख्मी होगया। युद्ध के समय अपने सैनिकों को उत्साहित करने के लिए निरन्तर इसके मुख से बड़ी ऊँची ध्वनि में निरन्तर यही शब्द गुजरते रहे—जाट वीरो आगे बढ़ो, मुसलमान वीरो आगे बढ़ो इस प्रकार युद्ध में लड़ते हुए शत्रुओं को पीछे भगा दिया। शत्रुओं से इनकी हाथों हाथ भी लड़ाइयाँ हुईं। ये ईंट पत्थरों से लड़े और बन्दूकों के बट और बेनोट से भी लड़े CHM छलूराम बुरी तरह जख्मी होगये किन्तु पीछे हटने का नाम नहीं लिया और अपने वीर सैनिकों को लड़ने के लिए उत्साहित करते रहे। जब तक वे बेहोश न हुए। कुछ मिनट के पीछे वे वीरगति को प्राप्त हुए। इनके साथी वीर सैनिक आज भी इनकी वीरता और धैर्य की मुक्तकण्ठ से प्रशंसा करते हैं। फलस्वरूप इनको विक्टोरिया क्रास का पुरस्कार मिला।

४. सूबेदार रामस्वरूप सिंह का जन्म १२ अप्रैल १९१९ को श्री जोरावरसिंह के घर में ग्राम खेड़ी तलवाणा जिला महेन्द्रगढ़ में हुआ। जापानियों के विरुद्ध ब्रह्मा में इन्होंने डटकर युद्ध किया। इन्होंने शत्रु को बुरी तरह हराकर भगा दिया। पुनः जापानियों ने दूसरी बार आक्रमण किया। सूबेदार रामस्वरूप बुरी तरह जख्मी था फिर वह अपने सैनिकों के साथ उन्हें उत्साहित करने के लिए युद्ध क्षेत्र में पहुंच गया। पुनः मशीनगन की गोली से बुरी तरह जख्मी होगया। इसी के कारण वह वीरगति को प्राप्त हुआ। उसके सैनिक भी उसकी वीरता धैर्य और प्रसन्नवदनता की मुक्तकण्ठ से प्रशंसा करते हैं।

५. सूबेदार रिछपालराम। इसका जन्म जिला महेन्द्रगढ़ में बारड़ा ग्राम में हुआ था। इसके पिता का नाम मोहरसिंह था। इसने दो दिन के युद्धों में अर्थात् ६ फरवरी और १२ फरवरी को बड़ी वीरता दिखायी। १२ फरवरी के युद्ध में वीरतापूर्वक लड़ता हुआ वह बुरी तरह घायल होगया किन्तु उसने अपने घावों की कोई चिन्ता नहीं की। वह वीर सैनिकों को आगे बढ़ने के लिए उत्साहित करता रहा। उसके अन्तिम शब्द यहीं थे हम अवश्य ही विजयी होंगे। उसने प्रशंसनीय वीरता और धैर्य का परिचय देते हुए वीरगति प्राप्त की। इसी प्रकार अंग्रेजी सेना में भारत के हजारों वीर सैनिकों ने अपने प्राणों की बलि देकर अपनी वीरभूमि भारत माता का शिर ऊँचा किया। इनके विषय में समय मिलने पर विस्तार से लिखूंगा।

हरयाणा के प्रमुख क्रांतिकारी—

श्री पं० लेखराम

भारतीय स्वाधीनता संग्राम के प्रत्येक दौर में वीरभूमि हरयाणे का सदैव सक्रिय योगदान तो रहा ही है किन्तु यहां के वीर देशभक्तों में अनेक ऐसे शूरवीर भी थे जिन्होंने कई मोर्चों पर सारे राष्ट्र के जन-जीवन को एक प्रकार से भलीभांति झंझोरने वाली भूमिका भी निभाई है। ऐसे वीरों की सूची में सर्वप्रथम वीरशिरोमणि पं० लेखराम जी का गौरव से नाम जाता है। आपने भारत के क्रान्तिकारी इतिहास को चार चांद लगाये। पं० लेखराम जी के पूर्वज राजस्थान के निवासी थे। वे अपने ठाकुरों सहित जोधपुर से चलकर हरयाणे के सिरसा जिले में आकर बस गये। उस समय अंग्रेजों का राज्य था। पं० लेखराम जी के दादा श्री बलदेवराम जोशी अच्छे विद्वान् पण्डित थे। अंग्रेजी सरकार के आफिसर भी इनका बड़ा आदर करते थे। एक अंग्रेजी आफीसर ने प्रसन्न होकर बहुत अधिक भूमि देनी चाही और यह घोषणा करदी कि आप जितनी भी भूमि लेना चाहें मैं आपको सहर्ष देने को तैयार हूँ। मूल्य सौगन्ध खाने के लिए एक बीघे का एक पैसा लेंगे। पं० लेखराम जी के दादा जी ने अस्सी पैसे दिये। अंग्रेज आफिसर ने उनको सहर्ष इसी मूल्य में अस्सी बीघे भूमि दे दी। किन्तु इनके दादा जी के यजमान ने जो राजपूत ठाकुर थे चालाकी से चालीस बीघे भूमि अपने नाम करवा ली। इससे सभी ग्रामनिवासी ठाकुर साहब से सदा नाराज रहे और उससे सदा घृणा करते थे। उस बेईमान के घर का अन्न व जल भी ग्रहण नहीं करते थे।

@VaidicPustakalay

पं० लेखराम जी के दादा जिला हिसार की तहसील फतेहाबाद के ग्राम ढींगसरा में बस गये। किन्तु पं० लेखराम जी के जीवन का प्रारम्भ का समय सिरसा नगर में ही बीता है। इसीलिए पं. लेखराम जी की गणना सिरसा जिले के स्वतन्त्रता सेनानियों में की जाती है।

वंश परिचय तथा शिक्षा —

आपका जन्म ३ मार्च सन् १८०२ में गांव ढींगसरा के ब्राह्मण परिवार श्री कन्होराम सुपुत्र श्री बलदेवराम के घर माता भागवती देवी की कोख से हुआ। आपका पालन-पोषण बड़े लाड प्यार से हुआ। प्राथमिक शिक्षा गांव के स्कूल में ही प्राप्त करके मिडल तक की शिक्षा राजकीय स्कूल सिरसा में प्राप्त की। उसके बाद मैट्रिक तक की शिक्षा सी० ए० वी० हाई स्कूल हिसार से प्राप्त की। दसवीं तक की शिक्षा प्राप्ति के बाद आपका विवाह सिरसा के एक साधारण ब्राह्मण परिवार में हुआ।

राजनीति क्षेत्र में—

सन् १९२०-२१ में जब 'भारतीय स्वाधीनता' संग्राम का उषःकाल आरम्भ हुआ, तभी आप हरयाणा के महान् देशभक्त पं० नेकीराम शर्मा के सम्पर्क में आकर राजनैतिक क्षेत्र में आए। उन दिनों राष्ट्रपिता महात्मा गांधी नें देशवासियों का आह्वान किया कि वे स्कूल, कालिज, वकालत, सरकारी नौकरियां छोड़ दें और विदेशी वस्त्रों का बहिष्कार करें। तभी आपने कांग्रेस के सक्रिय कार्यकर्त्ता के रूप में कार्य शुरू कर दिया।

पहला कारावास—

सन् १९२३ में आपको ब्रिटिश सरकार विरोधी गतिविधियों के आरोप में सिरसा नगर में गिरफ्तार किया गया और हिसार को एक अदालत से दो वर्ष सख्त कैद को सजा हुई। यह कारावास आपने हिसार और मियांवाली जेलों में काटा। सन् १९२४ के अन्तिम दिनों में जेल से रिहा होकर सींधे लाहौर चले गये और वहां डी० ए० वी० कालिज में आयुर्वेदिक की शिक्षा प्राप्त करने लगे। उन्हीं दिनों आपका सम्पर्क भारत के प्रसिद्ध क्रांतिकारी श्री धन्वंतरि तथा श्री भगवतीचरण से हुआ। अब आप क्रांतिकारी दल के बाकायदा सदस्य के रूप में कार्य करने लगे।

रोहतक में निवास –

श्री पं० लेखराम को अपने सेवा कार्य के लिए विशाल कार्यक्षेत्र की आवश्यकता थी। इसलिए अपने,कांतिकारी मित्रों से परामर्श करके रोहतक को अपना क्रान्तिकारी केन्द्र बना लिया क्योंकि रोहतक दिल्ली के अधिक समीप था अत: यहां पर क्रान्ति का अच्छा उपयोगी केन्द्र बन सकता था। पं० लेखराम जी आरम्भ से ही आर्यसमाजी विचार धारा के थे। अथवा यूं समझिए की वे आर्यसमाज के रंग में खूब रंगे हुए थे। अत: रोहतक में आर्यसमाज बाबरा के सदस्य बन गये। वहां के प्रसिद्ध आर्यसमाजी महाशय मामचन्द जी के साथ इन्होंने अपना तालमेल बैठा लिया। अपनी सेवा के कारण कुछ काल के पश्चात् आप आर्यसमाज के मन्त्री बन गये। वे रोहतक में दिखावे के लिए एक वैद्य के रूप में सेवा करते थे और अपनी दुकान चलाते थे। उनकी दुकान अच्छी चलने लगी और लोगों में पं० लेखराम जो का पर्याप्त मान सम्मान भी बढ़ने लगा। उनके पास चिकित्सा के लिए बहुत से सरकारी कर्मचारी तथा पुलिस वाले भी आते थे। किन्तु किसी को आभास नहीं होने दिया कि वैद्य लेखराम जो कोई राजनैतिक नेता वा क्रान्तिकारी हैं। प्रसिद्ध क्रान्तिकारी श्री धन्वन्तरि जी और श्री भगवतीचरण आदि छद्मवेश में वैद्य जी के पास आते जाते रहते थे। तथाकथित कपटवेशी क्रान्तिकारी यशपाल भी इनके पास आता जाता

था। वैद्य लेखराम जी ने एक बहुत अच्छा सुरक्षित स्थान बना रखा था जिसमें छोटे-बड़े बम बनाने का कार्य बहुत तेजी से आरम्भ कर दिया था।

केन्द्रीय असेम्बली में बम—

पं० लेखराम जी ने स्वयं बताया कि शहीद यतीन्द्रनाथ दास के ६४ दिन भूख हड़ताल बलिदान से क्रान्तिकारियों में बहुत रोष था और वे किसी शस्त्रक्रान्ति के लिए यत्नशील थे। तभी श्री भगवती चरण शहीद यतीन्द्र की अर्थी कलकत्ता पहुंचाकर केन्द्रीय असेम्बली में भगतसिंह आदि के बम फैंकने से एक दिन पूर्व मेरे पास आया और बम फैंकने की सारी योजना मुझे बताई। मैंने उन्हें समझाया कि इस काण्ड से लाभ कम होगा और हानि ज्यादा। परन्तु वह नहीं माने और अगले ही रोज दिल्ली की केन्द्रीय असेम्बली में बम फैंक दिया गया। बम फेंककर दूसरे दिन भगवतीचरण मेरे पास आया और रात भर रहा। अगले ही दिन लाहौर में झंग रोड स्थित भगवतीचरण के अड्डे पर पुलिस का छापा पड़ा और वहां से १७ व्यक्ति पकड़े गये। उनमें से कई वायदामाफ गवाह बन गए और सारा रहस्य बता दिया।

वायसराय की रेलगाड़ी उड़ाने का प्रयास—

जो बम रोहतक में पर्याप्त समय से बनाये जा रहे थे उनका उपयोग करने का सुअवसर ढूंढ़ रहे थे। किन्तु विश्वासघाती झूठे क्रान्तिकारियों की कृपा से अभी विशेष कार्य करने से पहले सदैव भय लगा रहता था कि कभी कोई घर का भेदी लंका ढ़ाहने वाली लोकोक्ति को सच्चा न सिद्ध कर दे। इसलिए फूक-फूक कर कदम रखना पड़ता था। कई अपने साथी क्रान्तिकारियों के साथ मिलकर लार्ड इरविन की रेलगाड़ी को बम से उड़ाकर उनकी हत्या करने की गुप्त योजना बनाई। यह कार्य २३ दिसम्बर १९२९ को दिल्ली के पुराने किले के पास होना था। यह गुप्त योजना असफल ही रही परन्तु इस घटना से पूरा ब्रतानवी साम्राज्य हिल उठा और क्रान्तिकारियों के इस महान् साहसिक कार्य की गूंज विश्व भर में गूंज उठी तथा भारत में संचालित स्वाधीनता संग्राम को ओर दुनियां भर के समाचार पत्रों का ध्यान भी गया। पं० लेखराम जी के द्वारा पता चला २२ दिसम्बर को कई दिन के परिश्रम के पश्चात् अपने साथियों के साथ वे इस कार्य में सफल हो गये कि बहुत दूर तक जमींदोज तारें बिछाकर एक बड़ा बम रेलवे लाइन के साथ गहरा दबाकर उससे जोड़ दिया। घटना के दिन २३ दिसम्बर को इतनी भारी धुन्ध थी कि हमें दूर से ट्रेन के इंजन की लाइट नजर नहीं आई की कितनी दूर है ? परन्तु ज्यों ही ट्रेन की धड़धड़ की आवाज हमें महसूस हुई, लगभग एक किलोमीटर दूर से स्विच दबा दिया गया, तो एक भयंकर धमाका हुआ। उस समय तो धुन्ध तथा चारों ओर धूएं से कुछ पता न लगा कि क्या हुआ। परन्तु बाद में पता चला कि वायसराय का डिब्बा निकलने पर ट्रेन के पिछले दो डिब्बे उड़ गये। इस घटना पर देश भर में क्रान्तिकारियों की जोरदार घर पकड़ हुई, परन्तु हमारी तरफ किसी का भी कोई ध्यान नहीं गया।

भूमिगत हो गये

कुछ समय बाद पं० लेखराम जी नें स्वयं ही देखा कि रोहतक में भी पुलिस सावधानी की सरगर्मियां बढ़ रही हैं। तो ३० सितम्बर १९३० को अचानक रोहतक की दुकान छोड़कर पं० लेखराम जी भूमिगत होकर बम्बई चले गये। बाद में पुलिस को उनकी सारी गतिविधियों का पता चला, परन्तु वे कौन थे यह सारा रहस्य वह न जान पाई। सरकार द्वारा आपकी गिरफ्तारी

के लिए तरह-तरह के इनामों की घोषणा की गयी और लगातार १६ वर्ष तक पुलिस आपको देशभर में ढूंढती रही। परन्तु आप उसके हाथ नहीं आये। हां इस लम्बे अर्से में पुलिस ने आपके घर वालों और सगे सम्बन्धियों को आपका अता पता जानने के लिए तरह-तरह से तंग तथा बहुत परेशान किया।

प्रश्न इस प्रकार उठता है कि आप १६ वर्ष तक भूमिगत काल में कहां-कहां और किस हाल में रहे? पं० लेखराम जी ने स्वयं बताया कि "मैं तो बहुत मजे में रहा। आपने पहले बम्बई तथा बाद में कराची शहर में अपना नाम साईं गोपालदास देवकीनन्दन रखकर ठेकेदारी, घी का व्यापार तथा भट्ठे वगैरा लगाने का व्यवसाय करके अच्छा पैसा कमाया और आनन्द से जीवन बिताया। सन् १९४६ में प्रकट होकर पहले लाहौर तथा फिर हिसार आगया। तब आपके गिरफ्तारी वारण्ट मंसूख हो चुके थे।

आपको भारत सरकार ने स्वतंत्रता सेनानी सम्मान पेंशन, भूमि तथा ताम्र-पत्र प्रदान करके सम्मानित किया है। आपके कोई सन्तान नहीं थी और आपकी धर्मपत्नी भी काफी समय हुआ स्वर्गवास हो गयी है। आजकल पं० लेखराम जी सन्ध्याकाल का ही जीवन एक वीतरागी के रूप में अपने एकमात्र दत्तक पुत्र के निवास स्थान पर हिसार में बीता रहे हैं। यह वही मकान है जिसको प्रतापसिंह कैरो ने ६ हजार रुपये पं० लेखराम जी को पुरस्कार रूप में देकर बनवाया था। उनके पुत्र श्री सन्तकुमार जोशी एच० सी० एच०, आजकल हरयाणा रोडवेज, सिरसा डिपो के जनरल मैनेजर हैं। इन दिनों पं० लेखराम जी अपने मकान में एकान्त में रहते हुए धार्मिक ग्रन्थों का स्वाध्याय करते हैं और अपना समय ईश्वर उपासना में भी लगाते हैं। इस समय उनकी आयु ८० वर्ष से अधिक है। अभी कुछ समय बीता जब मैंने उनके दर्शन उनके मकान में ही किये। उनके पैर पर चोट लगी हुई थी। उन दिनों उठने बैठने चलने में वे असमर्थ से प्रतीत होते थे। बड़ी कठिनाई से अन्दर से उठकर अपने भतीजे का सहारा लेकर बाहर आये थे। जब मैं उनसे विदा लेकर चलने लगा तो वे सहारा लेकर उठे और बार-बार मना करने पर भी द्वार पर्यन्त (द्वारान्तं पान्थमनुव्रजेत्) के अनुसार मुझे छोड़ने आये। इन दिनों उपनिषदों और विदुरनीति का स्वाध्याय पं० लेखराम जी कर रहे थे। वंश परम्परानुगत इनका परिवार आर्ष ग्रन्थों के पठन पाठन में श्रद्धा रखता है। जब पं० लेखराम जी आठ वर्ष के ही थे तभी इनके पिता जी ने इनको मूल अष्टाध्यायी कण्ठस्थ करा दी थी। इन्हीं संस्कारों के वशीभूत होकर पं० जी ने काशिका और महाभाष्यादि पठन-पाठन बड़ी श्रद्धा से किया है। इतना ही नहीं अपनी सगी भतीजी को स्वयं व्याकरण साहित्यादि पढ़ाकर संस्कृत एम० ए० की परीक्षा दिलवायी जिससे वह अच्छे अंक लेकर उत्तीर्ण हुई। इन्हीं आर्ष ग्रन्थों के प्रति पं० लेखराम जी की श्रद्धा होने से ये मुझ लेखक से सच्चा हार्दिक प्रेम करते हैं। जब कभी भी मुझे मिलते हैं श्रद्धा से आदरपूर्वक झुककर अभिवादन (नमस्ते) करते हैं। मेरा और उनका सगे भाइयों व सच्चे मित्रों के समान परस्पर प्रेम है। इसलिए मैं भी सदैव उनसे मिलने का यत्न करता हूं। इस बार हिसार के बीड़ मन्दिर में गया उनका चीकनवास बीड़ में मुरब्बा है। वहां मैं उनकी कुटिया पर स्वयं मिलने गया किन्तु वहां पता चला कि वे तो हिसार में हैं। बीड़ से ही मैंने एक बालक को साथ लिया और हिसार आकर मैं स्वयं उनके मकान पर मिलने के लिए पहुंचा। मुझे देखकर वे भी हर्ष से प्रफुल्लित हो उठे। जब कभी मुझे वे मिले सदैव आर्ष ग्रन्थों के पठन-पाठन की ही बातें करते रहे। जब कभी मैंने उनके क्रान्तिकारी जीवन के विषय में जानना

चाहा और यह पूछा कि १६ वर्ष आप भूमिगत कहां-कहां रहे तो थोड़ा बहुत बताकर इस विषय को सदा टालते ही रहे किन्तु इस बार मिलने पर उनके जीवन व विचारधारा में परिवर्तन मिला। मैंने जो कुछ उनसे पूछा बताने की कृपा की। टाल मटोल नहीं किया। एक विशेष कृपा उन्होंने यह की कि अन्दर से अमर गाथा नाम की पुस्तक लाकर मुझे भेंट की। साथ ही अपना एक फोटो चित्र भी प्रदान करके मुझे अनुगृहीत किया।

बड़े सौभाग्य की बात एक यह है कि जिस समय यह रोहतक का अपना औषधियों का भरा हुआ औषधालय छोड़कर भूमिगत हो गये और १५-१६ वर्ष तक इनका कुछ पता ही नहीं चला कि वे कहां हैं उस समय इनके मित्रों ने इनकी औषधियां उठाकर इधर-उधर सुरक्षित रख दी। उनमें से कुछ भस्में इनके घनिष्ठ मित्र सेठ शेरसिंह जी के पास रखी थीं। सेठ शेरसिंह जी के साथ मेरा स्नेह था। उन्होंने वे भस्में मेरे पास गुरुकुल झज्जर में भिजवा दीं। धर्मार्थ औषधालय के द्वारा उनका बड़ा अच्छा सदुपयोग हुआ। वैद्य लेखराम जी के साथी लाला शेरसिंह जी धार्मिक व क्रान्तिकारी विचारधारा रखनेवाले थे। धार्मिक कामों में वे सदैव श्रद्धा से सहयोग देते रहे। उनकी एक विशेष बात यह थी उन्होंने क्रान्तिकारियों के प्रिय अस्त्र माऊजर पिस्टल का लाइसेन्स बनवा रखा था। और माऊजर पिस्टल भी अपने सदैव साथ रखते थे। क्रान्तिकारियों का इतिहास पढ़ने वाले भली-भांति जानते हैं कि माऊजर पिस्टल, पिस्टल ही नहीं यह राईफल का भी काम देता है। क्योंकि जो बीटा वा दस्ता पिस्टल का होता है उसको लम्बा करने पर यही माऊजर पिस्टल राईफल बन जाती है और इसकी गोली राईफल की तरह दूर तक मार करती है। मेरा भी रिवालवर का लाइसन्स था इसलिए मैं बहुत बार सोचता था कि मैं अपने छोटे रिवालवर को किसी मित्र को दे दूं और यह माऊजर पिस्टल खरीदकर अपने लाइसेन्स पर चढवा लूं। किन्तु इच्छा होते हुए भी यह बात न बन सकी। पं० लेखराम जी ने प्रसङ्गवश अपने मित्र को एक घटना श्री यशपाल के विषय में बताई जो उनका भ्रम ही है। क्योंकि पं० जी धार्मिक वृत्ति के अपने मित्रों पर विश्वास करने वाले हैं। इन्होंने बताया जब इनके साथी क्रान्तिकारी अनेक पुस्तकों के लेखक श्री यशपाल जी मृत्यु के समय के अन्तिम सांस ले रहे थे तो उनके किसी साथी ने पूछा कि इस समय आप क्या और कैसा सोच रहे हैं। तब उन्होंने बताया कि मुझे मेरे परम मित्र श्री लेखराम याद आ रहे हैं।

टिप्पणी—श्री वैद्य लेखराम जी को सम्भव है अब तक यह पता नही चला कि यह यशपाल नाम का व्यक्ति अत्यन्त झूठा छली कपटी क्रान्तिकारियों की पीठ में छुरा घोपनेवाला था। यह सारी आयु अंग्रेजों की खुफिया पुलिस से मिला रहा और उनसे मासिक वेतन लेकर क्रान्तिकारियों के गुप्त रहस्यों की सूचना सरकार को देता रहा और इसी के निमित्त रूप से वेतन पाता रहा। चन्द्रशेखर आजाद को मरवाने वाला यही धूर्त पापी था। अपनी लेखनी से इसने अनेक पुस्तकें सिंहाव-लोकनादि लिख डाली और इसने जिन्दा शहीद बनने का यत्न किया। किन्तु स्वतन्त्रता मिलने पर एक देशभक्त जो पहले अंग्रेजों के गुप्तचर विभाग में नौकरी करता था, जिनके द्वारा इसको भी तनखाह मिलती थी। उसने इसका हस्ताक्षरयुक्त पत्र छाप के इसके ढ़ाल की पोल खोल डाली। इसकी पुस्तक पृथक् छपी हुई मिलती है, जिसमें इसकी देश भक्ति क्रान्तिकारी जीवन के पाखण्ड की पोल खोल दी और चन्द्रशेखर आजाद को किसने मरवाया यह अब तक रहस्य बना हुआ था। उस रहस्य का उद्घाटन खुले पृष्ठों में आगया और इस पापी का नंगा रूप दिखाकर यथार्थता के दर्शन करा दिये। इस विषय में कभी विस्तार से लिखूंगा।

अन्तिम सन्देश

कवि—कुँवर जोरावरसिंह आर्य वरसाना (मथुरा)

सैनिक एक वीर भारत का वीरसिंह था नाम।
लड़ता हुआ युद्ध में आया मातृभूमि के काम॥

अन्तिम सांसें लेता था जब वह बलिदानी वीर।
घायल हुआ गोलियों से था उसका सकल शरीर॥

गहरी और अन्तिम निद्रा की थी उसकी तैयारी।
उससे पहले जागी उसकी सुप्त चेतना सारी॥

घूम गया आंखों के आगे उसका प्यारा गाम।
था मथुरा के पास कहीं जो और वीरपुर नाम॥

अपनी माता अपनी पत्नी अपने तीनों भाई।
अपना एक पुत्र नन्हा सा याद सभी की आई॥

तभी भटकता वहां एक भारत का सैनिक आया।
वीरसिंह नें उसे इशारा देकर पास बुलाया॥

धीरे से बोला भाई तुम और निकट आ जाओ।
नहीं जोर से बोल सकूंगा कान पास में लाओ॥

तुम यदि जीवित बच जाओ तो ग्राम वीरपुर जाना।
घरवालों को मेरा अन्तिम सन्देशा पहुंचाना॥

यमुना तट पर बसा हुआ है मेरा प्यारा ग्राम।
शूरवीरता में है जिसका दूर-दूर तक नाम॥

बीचों बीच ग्राम में है इक ऊंची सी चौपाल।
एक नीम का पेड़ लगा है जिस पर सघन विशाल॥

प्रातः सायंकाल नित्य प्रति लोग वहां पर आते हैं।
लाभ हानि की बातें करते मन में मोद मनाते हैं॥

तुम्हें मोर्चे पर से आया जब सब सुन पायेंगे।
काम छोड़ सब पास तुम्हारे दौड़ तुरन्त आयेंगे॥

बड़े प्रेम के साथ खाट के ऊपर तुम्हें बिठाकर।
समाचार पूछेंगे मेरा इस प्रकार से आकर॥

वीरसिंह का समाचार हे भाई हमें सुनाओ।
है वह कहां क्यों नहीं आया अब तक यह बतलाओ॥

उनकी प्रेमभरी बातें सुन उदास मत हो जाना।
बड़े प्रेम से बड़े गर्व से मेरा हाल सुनाना।।
कहना भारत मां के मुकुट हिमालय गिरि के उच्च शिखर पर।
वीरसिंह ने किये शान से अपने प्राण निछावर।।

प्रथम सैकड़ों दुष्ट शत्रुओं को जब उसने मारा।
अन्तिम क्षण तक लड़ते-लड़ते है वह स्वर्ग सिधारा।।
अपने देश ग्राम अपने को बट्टा नहीं लगाया।
अपने नाम वंश अपने को गौरवपूर्ण बनाया।।

क्षत्रिय पड़ बीमार खाट के ऊपर कभी न मरते।
युद्ध क्षेत्र में लड़ते-लड़ते प्राण विसर्जन करते।।
वीरसिंह ने बड़ी शान से वही वीरगति पाई।
जीवन देकर स्वर्गलोक में अपनी जगह बनाई।

कहना यह सन्देश दे गया है अन्तिम वह सब को।
रखना अपने कुल व ग्राम की परम्परा गौरव को।।
मेरा रिक्त स्थान पूर्ण करनें को तुम सब आना।
सेना में भरती होना दुश्मन को मार भगाना।।

अपनी प्यारी मातृभूमि का करने को उद्धार।
होड़ लगाकर देना अपना तन, मन, धन सब वार।।
इतना कहकर वीरसिंह खामोश रहा कुछ काल।
फिर यों रुक-रुक करके बोला अपना होश संभाल।।

वहीं पास में एक कुआं है ऊंचे पनघट वाला।
जल भरने को आतीं जिस पर सभी ग्राम की बाला।।
एक नवोढा वहां मिलेगी लाल डुपट्टे वाली।
शरीर जिसका गोरा-गोरा आंखें काली-काली।।

भरी हुई लज्जा से होगी चाल मन्द मतवाली।
नाम "सुशीला" होगा उसका वह मेरी घरवाली।।
क्या बतलाऊं ? कितना करती है वह मुझको प्यार।
रह-रह करके याद आरहा उसका वह व्यवहार।।

युद्ध क्षेत्र में जाने की जब आई मेरी बारी।
प्रसन्नता से की उसने तब मेरी सब तैयारी।।
अपने हाथों से मेरी वर्दी मुझको पहनाई।
फिर हँसते-हँसते मेरी बन्दूक मुझे पकड़ाई।

भुजा पूज मस्तक पर मेरे लगा तिलक की रोली।
बड़ प्रेम से हँसते-हँसते धीरे-धीरे बोली।।
विदा प्रेम से करती प्रियतम युद्ध क्षेत्र में जाओ।
दिखा वीरता रणकौशल गौरवमय मुझे बनाओ।।

अगर समय आजावे तो हँस-हँसकर प्राण गंवाना।
किन्तु कभी भी पीठ शत्रु को अपनी नहीं दिखाना॥
विजय प्राप्त कर आये तो गाऊंगी गौरव गान।
पीठ शत्रु को दिखा न करना तुम मेरा अपमान॥

बिठा हृदय में मूर्ति तुम्हारी निश दिन ध्यान धरूंगी।
मंगल सदा तुम्हारा हो यह प्रभु से विनय करूंगी॥
इस प्रकार उत्साहित कर दी उसने मुझे विदाई।
अपने मुखड़े के ऊपर बिल्कुल न उदासी लाई॥

प्रसन्नता के साथ किया घर से मैंनें प्रस्थान।
कुछ आगे बढ़ फिर पीछे मुड़ देखा देकर ध्यान॥
तो देखा उसकी दोनों ही आंखें थीं भर आई।
बोल उठा मैं प्यारी! किस आशंका से घबड़ाई॥

तुम हो वीरांगना न शोभा देती कायरता।
क्या तुम में होगई उदय यह नारी की निर्बलता॥
वह बोली स्वामी ये आंसू नहीं दुःख या भय के।
ये हैं एक वीर नारी के गौरवपूर्ण हृदय के॥

भाग्यशालिनी हूं मैं कितनी जब यह दिल में आता।
मातृभूमि की रक्षा के हित मेरा प्रियतम जाता॥
इस प्रसन्नता गौरव से मेरी आंखें भर आई।
जाओ जल्द करो मत देरी मैं दे चुकी विदाई॥

प्यारे साथी तुम उसको जाकर विश्वास दिलाना।
भारत मां की सौगन्धें खा-खाकर के समझाना॥
वीरसिंह ने मातृभूमि पर निज बलिदान चढ़ाया।
आगे रहा सदा रण में पग पीछे नहीं हटाया॥

घाव एक भी नहीं पीठ पर सब सीने पर खाये।
थे जो भी अरमान तुम्हारे पूरे कर दिखलाये॥
उसकी एक निशानी है गोदी में तेरा बालक।
इसे बनाना ऐसा जो यह बने देश का रक्षक॥

आज वीरपत्नी होनें का गौरव तूने पाया।
सकल देश के अन्दर यश तेरा जाता है गाया॥
तो वीरपुत्र की मां बननें का गौरव भी तू लेना।
इस छोटे से वीरसिंह को ऐसी शिक्षा देना॥

मेरी मां से भी यह कहना जा मेरे घर भाई।
माता तेरे वीरपुत्र ने आज वीरगति पाई॥
तेरे वीरसिंह ने अपने वे जौहर दिखलाये।
रणकौशल से शत्रु सैकड़ों पथ में मार गिराये॥

मां तेरे दूध देश के पानी को बट्टा न लगाया।
मातृभूमि और माता दोनों का ही कर्ज चुकाया॥

मां तू मेरे लिए न रोना और न आहें भरना।
तीन पुत्र हैं और शेष सन्तोष उन्हीं पर करना॥

युद्धक्षेत्र में उन्हें भेजना तू बारी-बारी से।
मातृभूमि जब तलक मुक्त न हो अत्याचारी से॥

ब्यौरेवार भाइयों को भी हाल सकल बतलाना।
मेरा शौर्य पराक्रम विक्रम सारे उन्हें सुनाना॥

कहना जो तुम तीनों हो उस वीरसिंह के भाई।
जिसने दुष्ट चीनियों द्वारा आज वीरगति पाई॥

तुम दुष्ट चीनियों से बदला लेना भाई का।
नाम मिटा देना भूतल से दुष्ट चाऊ एन लाई का॥

सकल विश्व में गूंजे भारत मां का जय-जयकार।
भाग जायें चीनी हिमगिरि के तिब्बत के उस पार॥

ल्हासा पर हो पुनः दलाई लामा का अधिकार।
बुद्धं धम्मं संघं शरणम् का गूंजे गुंजार॥

कहना वीरसिंह की आत्मा हिमगिरि पर मंडलाती।
आत्मीयता के नाते से है तुमको वहां बुलाती॥

इससे आगे वीरसिंह कुछ अधिक नहीं कह पाया।
टूट गया दम और छागई करुण मौत की छाया॥

वन्दन हो सौ बार हमारा तुमको हे बलिदानी।
व्यर्थ जायेगी नहीं तुम्हारी यह अनुपम कुरबानी॥

आज तुम्हारे पदचिन्हों पर सारा देश चलेगा।
नष्ट पराजित दुष्ट शत्रुओं को करके दम लेगा॥

@VaidicPustakalay

हैदराबाद में आर्य सत्याग्रह

(पं० नरेन्द्र)

सत्याग्रह की दिशा में

निरन्तर आग्रह और अनुरोध करने पर भी निज़ाम-सरकार ने जब आर्यसमाज की गतिविधियों व धार्मिक कार्यों में हस्तक्षेप करना बन्द नहीं किया और समाज की किसी भी माँग को मानने से सर्वथा उपेक्षा की तो विवश होकर आर्यसमाज को सत्याग्रह का मार्ग अपनाना पड़ा। सत्याग्रह आरम्भ करने से पूर्व सरकार के सम्मुख निम्नांकित माँगें प्रस्तुत की गईं :

(१) गश्ती संख्या (५३) जिसका उद्देश्य जनसभाओं पर प्रतिबन्ध लगाना है, इसे समाप्त कर दिया जाय।

(२) धार्मिक त्यौहारों पर जो प्रतिबन्ध है उसे वापस लिया जाय।

(३) अखाड़ों की स्थापना पर जो नियम लागू किये गये हैं उनको हटा दिया जाय।

(४) निजी पाठशालाओं के बारे में रोक लगानेवाले आदेश को समाप्त कर दिया जाय।

(५) साम्प्रदायिक दंगों से सम्बन्धित अभियोग एक निष्पक्ष न्यायालय को सौंप दिये जायँ।

(६) राज्य के बाहर से आनेवाले धार्मिक कार्यकर्त्ताओं पर से प्रतिबन्ध हटा दिये जायँ।

(७) पुस्तकों पर बिना जाँच के रोक न लगाई जाय।

(८) आर्यसमाजी समाचारपत्रों के प्रकाशन पर रोक न लगाई जाय।

(९) जब हिन्दुओं तथा आर्यों के धार्मिक पर्व मुसलमानों के धार्मिक त्यौहारों के अवसर पर आयें तो उन्हें मनाने की पूरी स्वतन्त्रता होनी चाहिए।

(१०) इस आदेश को समाप्त कर दिया जाय जिसके कारण हवनकुण्डों के बनाने के लिये पहले से अनुमति प्राप्त करनी आवश्यक समझी गई है।

(११) हिन्दू बन्दियों को जेलों में मुसलमान बनाने का प्रयत्न न किया जाय तथा आर्यों को अवसर दिया जाय कि वे उन्हें धार्मिक शिक्षा दें।

(१२) राजकीय सेवा में काम करनेवाले आर्यसमाजियों को न सताया जाय।

(१३) आर्यसमाजियों को इस बात की पूरी स्वतन्त्रता दी जाय कि वे अपने घरों तथा समाज के भवनों पर 'ओ३म्' के झण्डे फहरा सकें।

(१४) जिन व्यक्तियों के विरुद्ध कुछ स्थानों पर केस आरम्भ हो चुके हैं, निष्पक्ष ट्रिब्युनल को सौंपे जायँ।

उपर्युक्त इन माँगों का सम्बन्ध आर्यसमाजियों की ऐसी सामाजिक स्वतन्त्रताओं से था जो प्रत्येक नागरिक का जन्मसिद्ध अधिकार है, किन्तु निज़ाम-शासन को इसकी कहाँ परवाह थी कि

वह उनको पूरा करने की ओर ध्यान देता ? आर्यसमाजियों तथा हिन्दुओं के विचारों व गतिविधियों पर सरकार ने अपने अत्याचारों की मानो बाड़ सी लगा दी। राज्य के बहुसंख्यकों को जंजीरों से जकड़ दिया गया था जिससे वे हलचल न कर सकें, किन्तु जब आर्यसमाज आन्दोलन-शक्ति प्राप्त करने लगा तो हिन्दुओं में एक विशेष प्रकार की जागृति उत्पन्न हो गई और उन्होंने अनुचित वैधानिक लौह-बन्धनों से मुक्त होने से लिए कमर कस ली।

स्टेट कांग्रेस का सत्याग्रह

'हैदराबाद स्टेट कांग्रेस' ने सामाजिक स्वतन्त्रता प्राप्त करने के लिये २४ अक्तूबर सन् १९३८ से सत्याग्रह आरम्भ किया, क्योंकि इसे निज़ाम सरकार ने अवैध घोषित कर दिया था। उसे ऐसी सभाएँ करने तथा जनता में अपने सिद्धान्तों के प्रचार की स्वतन्त्रता नहीं थी। राज्य में सत्याग्रह पहली बार हो रहा था। इसमें जनता ने बड़ी रुचि दिखलाई। २४ अक्तूबर सन् १९३८ को स्टेट कांग्रेस के प्रधान श्री गोविन्दराव जी नानल वकील परभणी अपने चार माननीय साथियों—सर्वश्री जनार्दनराव देसाई, रामकृष्ण जी धूत, श्री रविनारायण रेड्डी तथा श्रीनिवासराव बोरिकर के साथ सत्याग्रह करते हुए पकड़ लिए गए। श्री दिगम्बरराव जी बिन्दु (जो बाद में गृहमन्त्री बने) को भी सत्याग्रह के आरोप में जेल जाना पड़ा। इस प्रकार स्टेट कांग्रेस के कई नेता और कर्मठ कार्यकर्त्ता सत्याग्रह में पकड़े गये। इस प्रकार उनकी कुल संख्या लगभग चार सौ तक पहुंच गई। कुछ महीनों के पश्चात् जब श्री काशीनाथराव जी वैद्य (भूतपूर्व स्पीकर, हैदराबाद राज्य विधान सभा) सत्याग्रह बन्द करने की घोषणा करने लगे तो उन्हें भी उनके कुछ साथियों के साथ 'दीवान देवड़ी' के निकट पुलिस ने पकड़ लिया। इस गिरफ़्तारी के साथ ही कांग्रेस का सत्याग्रह महात्मा गांधी के आदेशानुसार बन्द कर दिया गया।

हिन्दू महासभा का सत्याग्रह

हैदराबाद-कांग्रेस के बाद राज्य में दूसरा सत्याग्रह 'हिन्दू महासभा' की ओर से किया गया ताकि निज़ाम-सरकार को सामाजिक स्वतन्त्रताओं पर से प्रतिबन्ध हटाने के लिए बाध्य किया जा सके। इस सत्याग्रह में 'हिन्दू महासभा' के कई नेता व कार्यकर्त्ता पकड़े गए।

श्री यशवन्तराव जोशी, श्री वी० एस० केसकर जी एडवोकेट, श्री अम्बादास जी एडवोकेट, डॉक्टर मुंजे, सेनापति पांडुरंग महादेव बापट, अण्णासाहेब भोपटकर (पूना) तथा अन्य अनेक सुप्रसिद्ध हिन्दू नेता व कार्यकर्त्ता इस सत्याग्रह में पकड़े गये। जेलों में इन्हें जिस प्रकार की यातनाएं व कष्टों का सामना करना पड़ा, उसका वर्णन करते वाणी भी मूक हो जाती है।

पुलिस के साथ धर्मस्व-विभाग का गठजोड़

हैदराबाद राज्य की स्थिति को बिगाड़ने तथा आर्यसमाजियों व हिन्दुओं को निरन्तर संकट में डालने और उनपर अत्याचार करने में धर्मस्व-विभाग ने यथेष्ट प्रयत्न किया। इस विभाग का कर्त्तव्य तो यह था कि वह राज्य के विभिन्न धार्मिक सम्प्रदायों के प्रार्थना-स्थानों आदि को देखभाल व उनकी व्यवस्था करे, किन्तु वास्तव में यह इस्लामी प्रचार की एक संस्था थी जो मुसलमानों की यथासम्भव सहायता करती और हिन्दुओं को निरुत्साहित करती थी। राज्य में नए मन्दिरों का तो निर्माण असम्भव था, परन्तु मस्जिदों में निरन्तर वृद्धि होती जा रही थी। जिलों, तालुकों और

देहातों में काज़ी लोग दूसरे सम्प्रदाय के लोगों को मुसलमान बनाते थे और उनका यह कार्य विभाग की दृष्टि में अच्छी सेवा समझा जाता था। स्थानीय तथा बाहर की प्रचारक संस्थाओं को लाखों रुपयों की वार्षिक सहायता दी जाती थी। सरकारी पाठशालाओं में मुसलमानों तथा नवमुस्लिमों की धार्मिक शिक्षाओं के लिये विशेष प्रबन्ध किये जाते थे। जेलों में भी आर्यसमाजियों और हिन्दुओं को इस बात पर उभारा जाता था कि वे अपना धर्म त्यागकर मुसलमान बनें और उपलब्ध सुविधाओं से लाभ उठाएँ। जेलों में कई हिन्दू-बन्दियों को मुसलमान बनाया गया और जब आर्यसमाजियों की ओर से विरोध प्रकट किया गया तो वस्तुस्थिति इस रूप में प्रस्तुत की गई कि यह सब उनकी इच्छा से किया जा रहा है एवं सरकार का ऐसी घटनाओं से कोई सम्बन्ध नहीं है।

पुलिस का कोप

स्टेट की राजधानी में पुलिस की बर्बरता बढ़ती जा रही थी। ज़िलों, तालुकों और गाँवों में इनके अत्याचार प्रबल होते जा रहे थे, विशेषतया आर्यसमाजियों के लिए तो जीवन-मरण का प्रश्न ही बन गया था।

मुहर्रम के अवसर पर सरकार की ओर से यह प्रतिबन्ध था कि कोई सभा न की जाय। इस आदेश के कारण हिन्दू लोग विवाह तक नहीं कर सकते थे। 'विजयदशमी' के जुलूसों पर प्रतिबन्ध लगा दिया जाता था। कोई निजी पाठशाला स्थापित करने का प्रयत्न किया जाता तो पुलिस के सब-इन्स्पेक्टरों के पत्र आते कि उनपर केस कर दिया जायगा। किसी स्थान पर आर्यसमाजी जाते तो वहाँ के हिन्दुओं से पूछताछ की जाती कि वे क्यों आए हैं और किसलिए आए हैं। उदगीर तथा हल्लीखेड़ के हिन्दू 'लिंगायत' एवं आर्यसमाज के नेता श्री भाई श्यामलाल जी तथा श्री बंसीलाल जी 'हिन्दू महासभा, पूना' के अधिवेशन में भाग लेकर वापस आये तो उन्हें चेतावनी दी गई कि यह कार्य सरकार की नीति के विरुद्ध है, इसलिए भविष्य में ऐसा नहीं होना चाहिए।

नान्देड़-विद्रोह केस

तालुका कन्धार (जिला नान्देड़) में निज़ाम के जन्म-दिवस के अवसर पर उन हरिजनों को, जिन्हें बहादुरयारजंग ने मुसलमान बना लिया था, पुनः हिन्दू धर्म में प्रवेश कराके उन्हें उपदेश दिया जा रहा था तो श्री यादवराव शंकरराव टेकरीकर, श्री माधवराव घोंसीकर, श्री पं० प्रह्लाद जी और उनके साथियों पर धारा ८२ के अन्तर्गत विद्रोह का आरोप लगाकर अभियोग चलाया गया। मुलतान के प्रसिद्ध एडवोकेट श्री रामचन्द्र खन्ना तथा आर्य-नेता पंडित दत्तात्रेयप्रसाद जी ने इस केस में पैरवी की। श्री माधवराव घोंसीकर और शंकरराव टेकरीकर को पन्द्रह मास का और दूसरों को एक-एक वर्ष का दण्ड दिया गया। इस कार्यवाही के विरुद्ध जब अपील की गई तो तथाकथित अपराधियों को न्यायालय ने छोड़ दिया।

अपील के सिलसिले में पंडित काशीनाथराव जी वैद्य, श्री वी० रामकृष्णराव जी एडवोकेट, पंडित विनायकराव जी विद्यालंकार बैरिस्टर तथा पंडित दत्तात्रेयप्रसाद जी ने बड़ी योग्यता के साथ सहयोग दिया।

माणिकनगर में हिन्दू का विवाह

माणिकनगर में एक हिन्दू ने मुहर्रम की दस तारीख को विवाह किया था। दूसरे दिन हुमनाबाद के सब-इन्स्पेक्टर का एक पत्र अपने अधीनस्थ पदाधिकारी के पास पहुंचा कि तुम्हारे क्षेत्र में १० मुहर्रम के दिन किसी हिन्दू का विवाह हुआ है जो सरकार के आदेश के विरुद्ध है इसको शीघ्र जाँच की जाय जिससे उसपर केस किया जा सके। इस सन्दर्भ में उक्त हिन्दू युवक को चेतावनी दे दी गई। इसी प्रकार १८ जून १९३७ को सब-इन्स्पेक्टर औसा ने नागरसोगा-निवासी श्री घनश्यामप्रसाद को लिखा कि तुम आर्यसमाज की ओर से मुहर्रम के दिनों में हवनकुण्ड स्थापित नहीं कर सकते। यदि ऐसा किया गया तो तुम्हारे विरुद्ध कठोर कार्यवाही की जायेगी।

प्रतिबंधों का जाल

आर्यसमाजी प्रचारकों की सभाओं तथा जुलूसों, हवनकुण्डों, नगरकीर्तनों, भाषणों, लेखों, धार्मिक कार्यक्रमों तथा प्रार्थनाओं पर प्रतिबन्धों का जाल बिछा हुआ था। इसका वर्णन करना सहज नहीं है। निज़ाम सरकार की साम्प्रदायिक मनोवृत्ति तथा अत्याचार व शोषण से आर्य-समाजियों को बड़ी मानसिक यातना सहन करनी पड़ रही थी और अकारण कोर्ट में केस करके उन्हें जेलों में ठोंस दिया जा रहा था। इस अत्याचार व हिंसा के विरुद्ध 'आर्य प्रतिनिधि सभा, हैदराबाद', इसके विभिन्न संगठनों एवं 'सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा' की ओर से कई बार सरकार के पास शिकायत को गई। समाज के प्रसिद्ध नेता उच्च अधिकारियों से मिले। उनके सम्मुख वास्तविक स्थिति स्पष्ट की गई तथा इस बात की भी प्रार्थना की गई कि सरकार इन अन्यायों तथा अत्याचारों को बन्द कर दे, किन्तु जब ये सारे प्रयत्न निष्फल हो गए तो आर्य-समाजियों को वैदिक धर्म और हिन्दुओं की रक्षा के लिए एक संयुक्त मोर्चे पर एकत्रित होकर शान्तिपूर्ण संघर्ष के लिये तैयार हो जाना पड़ा।

'आर्य प्रतिनिधि सभा, हैदराबाद' ने सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा' के परामर्श से 'आर्य रक्षा-समिति की स्थापना की जिससे हैदराबाद में आन्दोलन आरम्भ किया जा सके। निज़ाम-सरकार ने सत्याग्रह-समिति के सदस्य होने के आरोप में श्री बलदेव जी पतंगे तथा श्री शंकर रेड्डी जी को एक-एक वर्ष के कारावास का दण्ड दे दिया, श्री चन्द्रपाल जी, श्री वेंकटेश गुरुनाथ जी और प्रतापनारायण जी को हाईकोर्ट में 'मुस्लिम लीग मुर्दाबाद' के नारे लगाने के अपराध में धारा ८३ के अन्तर्गत केस चलाकर छः-छः मास का कारावास और ५०० रुपये जुर्माना किया गया। यह सब शासन द्वारा बनाई गई योजना के अनुसार ही किया जा रहा था। १३ अक्तूबर १९३८ को मुझे भी पकड़ लिया गया। सरकार ने मेरे विरुद्ध कोई अपराध घोषित नहीं किया और न किसी कोर्ट में केस चलाने की आवश्यकता ही समझी। मुझे सीधे 'मनानूर' को तीन वर्ष के लिये पहुंचा दिया गया, जो उस समय 'काले पानी' के नाम से प्रसिद्ध था। मुझे मनानूर भेजे जाने पर समस्त हैदराबाद राज्य में शासन-विरोधी सभाएं हुईं और नगर में आम हड़ताल की गई तथा सरकार के इस कार्य के विरुद्ध जुलूस निकाले गए। जुलूस पर लाठी चलाई गई जिसमें कई व्यक्ति घायल हुए। इस धर-पकड़ के विरुद्ध पुनः विरोध प्रकट किया गया और सत्याग्रह के लिए वातावरण अनुकूल बनने लगा।

स्थानीय सत्याग्रह का श्रीगणेश

हैदराबाद में स्थानीय सत्याग्रह २९ अक्तूबर १९३८ को आरम्भ हुआ। 'आर्य रक्षा-समिति' द्वारा सत्याग्रह आरम्भ किया गया। प्रथम सत्याग्रही जत्थे के नेता श्री पंडित देवीलाल जी थे। उनके नेतृत्व में मुन्नालाल जी मिश्र, श्री मदनमोहन जी, श्री एन० देवैया जी, श्री सदाशिवराव जी एवं श्री राजंया जी ने सत्याग्रह किया। इनको पकड़कर जेल भेज दिया गया। इस सत्याग्रह के सिलसिले में जो अन्य सर्वाधिकारी चुने गये, उनमें आर्यनेता श्री निवृत्ति रेड्डी जी वकील (अहमदपुर), पंडित दत्तात्रेयप्रसाद जी एडवोकेट, श्री शेषराव जी बाघमारे एडवोकेट, श्री दिगम्बर-राव जी लाठकर एडवोकेट, श्री दिगम्बरराव जी शिवनीकर (लातूर), श्री शंकरराव जी पटेल (आन्धोरी) तथा गणपतराव जी कथले (कलम) उल्लेखनीय हैं।

आर्य-सत्याग्रह को गति प्रदान करने के लिए 'आर्य रक्षा-समिति' ने एक गुप्त समिति का गठन किया। इसका काम स्थान-स्थान पर घूमकर जनता से सत्याग्रह के प्रति सहानुभूति तथा सहयोग प्राप्त कर उनमें नवीन चेतना व उत्साह की भावना उत्पन्न करना था। इस समिति में श्री ए० बालरेड्डी जी, श्री कृष्णदत्त जी, श्री राजपाल जी, श्री गंगाराम जी एडवोकेट, श्री हरिश्चन्द्र जी (जालना) तथा श्री बी० वेंकटस्वामी जी सम्मिलित थे। आप लोगों ने जान हथेली पर लेकर लगन व निष्ठापूर्वक आर्य-सत्याग्रह को बल प्रदान किया। श्री हरिश्चन्द्र जी (जालना) को इसी प्रयत्न में पुलिस ने बन्दी बना लिया था।

आप लोगों ने उत्साह एवं कार्य-प्रणाली के फलस्वरूप जनता आर्य सत्याग्रह के महत्त्व को समझ सकी और रक्षा-समिति को पूरा सहयोग देने के लिये कटिबद्ध हो गई। इससे एक लाभ यह भी हुआ कि सत्याग्रह के लिए नवयुवक बढ़-चढ़कर आने लगे।

मुदखेड़ में भी सत्याग्रह किया गया और कुल मिलाकर सात सौ आर्य राज्यभर में सत्याग्रह कर कारागार को अपना आवास बना चुके थे कि इसी बीच 'सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा, दिल्ली' के प्रधान तथा पूज्य महात्मा नारायण स्वामी जी ने जनता से इस बारे में मत लेने के लिए 'शोलापुर आर्य-सम्मेलन' की घोषणा कर दी। इस सत्याग्रह समिति के अध्यक्ष रूप में महात्मा नारायण स्वामी जी को हैदराबाद के बारे में समस्त अधिकार सौंप दिये गये। श्री घनश्यामसिंह जी गुप्त को, जो उस समय 'सार्वदेशिक सभा' के प्रधान तथा 'मध्यप्रदेश विधान सभा' के स्पीकर थे, सत्याग्रह-संचालन का प्रधान नियुक्त किया गया था। स्वामी जी ने अखिल भारतीय आर्य महासम्मेलन, शोलापुर में जो २३ दिसम्बर १९३८ को हुआ, उसके द्वारा जनमत जानने का प्रयत्न किया। 'आर्य महासम्मेलन, शोलापुर' की अध्यक्षता महाराष्ट्र के सुप्रसिद्ध नेता श्री एम० एस० अणे ने की। आपने अपने अध्यक्षीय भाषण में उन सभी आरोपों की पुष्टि की जो हैदराबाद के शासन के विरुद्ध लगाए जाते रहे। इस आर्य-महासम्मेलन के पण्डित दत्तात्रेयप्रसाद जी स्वागताध्यक्ष थे। शोलापुर-सम्मेलन के आयोजन तथा उसकी सफलता व 'सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा' को इसमें योग देने के लिये बाध्य करने का एकमात्र श्रेय स्वर्गीय भाई बंसीलाल जी को है। आपके प्रयासों के फलस्वरूप सम्मेलन ने स्पष्ट रूप में सत्याग्रह की घोषणा करते हुए निम्नांकित प्रस्ताव प्रस्तुत किये :

आर्य महासम्मेलन शोलापुर के प्रस्ताव

२७ दिसम्बर को इस सम्मेलन ने जो प्रस्ताव पास किये उनमें से कुछ यहां उद्धृत किये जाते हैं।

"भारत तथा भारत के बाहर के आर्यसमाजियों की हैदराबाद राज्य के सामाजिक, धार्मिक तथा सांस्कृतिक स्वतन्त्रता के प्रति अत्यधिक रुचि रही है। हिन्दू और विशेषकर आर्यसमाजी इन स्वतन्त्रताओं से वंचित रहे हैं। इसलिए यह सम्मेलन हैदराबाद राज्य में अपने सहधर्मी भाइयों की ओर से निम्नलिखित मांगों की स्पष्ट शब्दों में घोषणा करता है।

१. धार्मिक कार्य तथा त्यौहारों को करने की पूरी स्वतन्त्रता प्राप्त होनी चाहिए।

२. धार्मिक प्रचार, कथाओं, उपदेशों, भाषणों, नगरकीर्तनों, जुलूसों, आर्यसमाज-मन्दिरों और यज्ञशालाओं के निर्माण, हवनकुण्डों के बनाने, ओ३म् के झण्डे लहराने, नये आर्यसमाजों की स्थापना तथा ऐसे साहित्य के प्रकाशन को स्वतन्त्रता होनी चाहिए जो वैदिक धर्म एवं भारतीय संस्कृति से सम्बन्धित हों।

३. राज्य को मुस्लिम तबलीग (प्रचार) में भाग नहीं लेना चाहिए और न ही उसे प्रोत्साहन देना चाहिए। राज्य-कर्मचारियों को उस आन्दोलन में भाग लेने से रोकना चाहिए तथा स्कूलों में हिन्दुओं को मुसलमान बनाने की अनुमति नहीं होनी चाहिए। हिन्दू अनाथ बच्चों को मुसलमानों के हवाले नहीं करना चाहिए।

४. राज्य का धर्मस्व-विभाग समाप्त कर दिया जाय या कम-से-कम हिन्दुओं तथा आर्यसमाजियों के मन्दिरों एवं उनके धार्मिक आयोजनों पर उसके नियन्त्रण को समाप्त कर देना चाहिए।

५. मुस्लिम पत्र-पत्रिकाओं तथा हिन्दू पत्र-पत्रिकाओं के प्रकाशन में कोई भेदभाव न रखा जाय।

६. आर्यमिशनरियों के राज्य में प्रवेश पर से प्रतिबन्ध हटा लिया जाय और इस समय जिन मिशनरियों पर प्रतिबन्ध है, उठा लिया जाय।

७. आर्यों तथा हिन्दुओं के साथ मुसलमानों के मुकाबिले में पुलिस और अन्य पदाधिकारी, जो अन्याय तथा अनुचित व्यवहार करते हैं, उसे रोका जाय।

८. हिन्दुओं एवं आर्यों के पुत्र-पुत्रियों को प्रारम्भिक तथा माध्यमिक पाठशालाओं में अनिवार्य रूप से उर्दू में शिक्षा न दी जाय, अपितु उनकी मातृभाषा में ही शिक्षा दी जाये।

९. हिन्दुओं तथा आर्यसमाजियों की ओर से स्थापित होने वाले अखाड़ों, शिक्षण-संस्थाओं एवं पुस्तकालयों पर प्रतिबन्धन न लगाया जाय।'

"सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा, दिल्ली' तथा 'आर्य प्रतिनिधि सभा, हैदराबाद स्टेट' ने पिछले ६ वर्षों में कई बार इस बात का प्रतिनिधित्व किया है कि आर्यसमाजियों की शिकायतें दूर हों और उनकी माँगे स्वीकार कर ली जायें, किन्तु वह अपनी उद्देश्य-पूर्ति में असफल रही है। यही कारण है कि भारत व हैदराबाद के सभी आर्यसमाजी एवं हिन्दू इस सम्बन्ध में उग्र विचार रखते हैं। अत: सम्मेलन की राय में वर्तमान शिकायतों को दूर करने का यही एक मार्ग है कि अहिंसात्मक सत्याग्रह के रूप में आन्दोलन कर दिया जाये।

(क) यह आर्य-सम्मेलन महात्मा नारायण स्वामी की महाराज को इस बात का अधिकार देता है कि वे एक सत्याग्रह-समिति स्थापित करें और स्वयं इसके पहले डिक्टेटर बनें जिससे सत्याग्रह की तैयारी की जा सके। यह सम्मेलन भारत के सभी आर्यों तथा हिन्दुओं से अपेक्षा करता है कि वे इस प्रस्ताव का हार्दिक समर्थन करें।

(ख) सम्मेलन इन मांगों की पूर्ति के लिए समिति को आदेश देता है कि वह इन विषयों पर अपना संघर्ष जारी रखें।

१. वैदिक धर्म तथा संस्कृति के प्रचार के लिए पूर्ण स्वतन्त्रता और उसके साथ अन्य धर्मावलम्बियों की भावनाओं का आदर करें।

२. धर्मस्व-विभाग या राज्य के किसी अन्य विभाग से कोई स्वीकृति प्राप्त किये बिना नये आर्यसमाजों की स्थापना, समाज-मन्दिरों, यज्ञ-शालाओं के निर्माण और हवनकुण्डों को बनाने व पुराने हवनकुण्डों को बनाने की पूर्ण स्वतन्त्रता रहे।'

आर्य-सम्मेलन में इन दो प्रस्तावों के पश्चात् जो प्रस्ताव प्रस्तुत किये गये, उनमें सत्याग्रह की पद्धति तथा आन्दोलन की रूपरेखा भी स्पष्ट कर दी गई जिससे कि विरोधियों को शरारत-भरा प्रचार करने का अवसर न मिल सके। एक अन्य प्रस्ताव (६) में सम्मेलन ने कहा, 'हमारी कार्य-प्रणाली के विरुद्ध जो शरारत-भरा प्रचार जारी है, उसको ध्यान में रखते हुए स्पष्ट शब्दों में यह घोषणा की जाती है कि हमारे ध्येय की पवित्रता इस बात से सिद्ध है कि सत्याग्रह सत्य व अहिंसा पर आधारित है। इसकी सफलता के लिए कार्यकर्त्ताओं से अनुरोध है कि वे संघर्ष के बीच उस समय भी, जबकि उन्हें कष्टों का सामना करना पड़े, फिर भी मनसा, वाचा, कर्मणा, अहिंसा तथा सत्य के सिद्धान्त का ही पालन करें।'

'यदि किसी क्षेत्र में भ्रम उत्पन्न करनेवाली बातें व्याप्त हों तो उनको दूर करने के लिए सम्मेलन इस बात की घोषणा करता है कि हैदराबाद में आर्यसमाज की वर्तमान लड़ाई न तो राजनैतिक है और न साम्प्रदायिक, अपितु वह केवल नागरिकों की धार्मिक तथा साँस्कृतिक स्वतन्त्रता की प्राप्ति तक ही सीमित है, जैसाकि हमारी मांगों से स्पष्ट होता है।'

आर्य-सम्मेलन के इस निर्णय के साथ समस्त भारत के कोने-कोने से हैदराबाद को सत्याग्रहियों के जत्थे भेजने की तैयारियां आरम्भ होने लगीं और प्रत्येक दिशा में उत्साह की लहरें उमड़ने लगीं। 'आर्यसमाज अमर रहे' और 'वैदिक धर्म की जय' के गगनभेदी नारों से आकाश गूंजता तो हैदराबाद के मुसलमानों के हृदय कांप उठते। आर्यसमाज के इस आन्दोलन को हैदराबाद व भारत के करोड़ों हिन्दुओं का नैतिक समर्थन प्राप्त था।

निज़ाम-सरकार के सामने 'सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा' ने आर्यसमाज की ओर से उचित माँगे रखीं जो साधारणत: धार्मिक, सामाजिक तथा नागरिक स्वतन्त्रताओं से सम्बन्ध रखती थीं। निज़ाम सरकार के लिए यह एक स्वर्णिम अवसर था कि वह आर्यसमाज की शिकायतों पर विचार करके अपनी बदलती हुई नीति की घोषणा कर स्थिति को नियन्त्रण में ला सकती थी, किन्तु यह दुर्भाग्य तथा खेद की बात है कि इस अन्तिम अवसर को भी सरकार ने अपने घमण्ड तथा हठधर्मिता के कारण खो दिया और आर्यसमाज की मांगों को अस्वीकार किया। अन्ततोगत्वा, विवश होकर

'सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा' को अपने निर्णयानुसार बड़े स्तर पर सत्याग्रह का संकल्प लेना पड़ा।

व्यापक सत्याग्रह—

आर्यसमाज का संघर्ष जो धार्मिक एवं मूलभूत नागरिक तथा सामाजिक अधिकार प्राप्त करने के लिए बहुत समय से चल रहा था, अंततः एक व्यापक सत्याग्रह के रूप में प्रकट हुआ। यह सत्याग्रह सुदृढ़ नैतिकता पर आधारित था। भारत के हिन्दू, सिख और मुस्लिम नेताओं को यह बात माननी पड़ी कि हैदराबाद में आर्यसमाज का संघर्ष धार्मिक प्रतिबन्धों के कारण आरम्भ हुआ है। 'सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा' के उपमन्त्री श्री शिवचन्द्र जी ने विश्वकवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर को सत्याग्रह से अवगत कराया तो विश्वकवि ने इस आन्दोलन से सहानुभूति प्रकट करते हुए कहा, "आर्यसमाज की मांगें वास्तविकता पर आधारित हैं। मैं हैदराबाद राज्य की सरकार से आशा करता हूं कि वह इन मांगों को स्वीकार करके सत्याग्रह को समाप्त करने की दिशा में पग उठायेगी।"

महात्मा गांधी ने इस सत्याग्रह के बारे में कहा, 'हैदराबाद में आर्यसमाज का संघर्ष केवल धार्मिक रूप रखता है और इसका ध्येय यह है कि धर्म से सम्बन्धित शिकायतें दूर हो जायें।'

पंडित जवाहरलाल नेहरू ने अपनी सम्मति दी, 'मुझे ऐसा लगता है कि हैदराबाद में आर्यसमाज के धार्मिक पर्वों पर कुछ अनुचित पाबन्दियां लगा दी गई हैं और हम भी इसका निर्णय कर चुके हैं कि प्रत्येक व्यक्ति को धार्मिक स्वतन्त्रता होनी चाहिए। जब मैं वहाँ जाता हूं, मुझे ऐसा लगता है कि मेरा गला घुट रहा है।'

हिन्दूराष्ट्र-स्वप्नद्रष्टा स्वातन्त्र्यवीर सावरकर ने कहा, 'आर्यसमाज का सत्याग्रह वास्तविकता पर आधारित है। इसमें न केवल आर्यसमाजी अपितु अन्य हिन्दुओं को भी भाग लेकर निज़ाम से टक्कर लेनी चाहिए।"

अकालियों के नेता मास्टर तारासिंह ने आर्यसमाज को बधाई दी, "वह धार्मिक स्वतन्त्रता के लिए लड़ रहा है।"

मौलाना अब्वुलकलाम आजाद का विचार था, "यद्यपि हैदराबाद में सत्याग्रह एक संस्था की ओर से आरम्भ हुआ है, किन्तु इसकी हैसियत धार्मिक है। मैं उन लोगों से सहानुभूति रखता हूँ जो अपने अधिकार की प्राप्ति के लिए कष्ट सहन कर रहे हैं।"

आचार्य कृपलानी ने कहा, "प्रत्येक कांग्रेसी का यह विश्वास है कि हैदराबाद राज्य में आर्यसमाज पर जो प्रतिबन्ध लगाए गए हैं, वे अनुचित हैं। उनका मुकाबिला करना चाहिए।"

श्रीमती कमलादेवी चट्टोपाध्याय ने इस सत्याग्रह का समर्थन करते हुए कहा, "मैं व्यक्तिगत रूप से हैदराबाद-सत्याग्रह के समर्थन में हूं।

उपर्युक्त भारतीय नेताओं के अमूल्य विचारों से सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है कि हैदराबाद की जनता की 'तानाशाही निज़ामी हुकूमत' में कैसी दशा थी।

इस प्रकार आर्यसमाज के सत्याग्रह को सारे भारत का नैतिक समर्थन प्राप्त था और 'सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा' की घोषणा के अनुसार देश के कोने-कोने से आर्य-सत्याग्रही हजारों

की संख्या में हैदराबाद में सत्याग्रह करने की तैयारियां कर रहे थे। चारों ओर उत्साह का वातावरण व्याप्त था। महात्मा नारायण स्वामी ने, जो सत्याग्रह के प्रथम डिक्टेटर थे, २२ जनवरी १९३९ को देशभर में सत्याग्रह-दिवस मनाने की घोषणा की और यह आदेश भी दिया कि जब तक सत्याग्रह चलता रहेगा तब तक प्रति मास २२ तारीख को सत्याग्रह-दिवस मनाया जाय।

सत्याग्रह के प्रथम अधिनायक का आगमन

महात्मा नारायण स्वामी महाराज के साथ सत्याग्रह के पहले जत्थे में 'गुरुकुल कांगड़ी' के ब्रह्मचारी थे। गुरुकुल के ३५ ब्रह्मचारियों ने प्रेम व श्रद्धा के साथ अपने-आपको स्वामी जी को अर्पण कर दिया। उनमें से केवल १५ को हैदराबाद जाने की अनुमति दी गई। सत्याग्रह के प्रथम अधिनायक होने के नाते महात्मा नारायण स्वामी जी ने सत्याग्रह की सूचना निज़ाम-महोदय, माननीय रेज़ीडेण्ट एवं भारत सरकार के पोलिटिकल विभाग को दे दी। सत्याग्रह के लिये ३१ जनवरी का दिन निश्चित हुआ। महात्मा नारायण स्वामी जी वायुयान से हैदराबाद पहुँचने का विचार कर रहे थे, किन्तु ९ फ़रवरी से पहले यान में स्थान का मिलना कठिन था, अतः आप ३० जनवरी को ट्रेन से हैदराबाद के लिए रवाना हुए। सरकार और पुलिस के क्षेत्रों में परेशानी फैली हुई थी। वाड़ी और गुलबर्गा के स्टेशन पर पुलिस के गुप्तचरों ने सारे डिब्बे छान मारे, परन्तु नारायण स्वामी का पता तक न चल सका और वे किसी तरह हैदराबाद पहुँचकर 'सुलतान बाज़ार' के 'आर्यसमाज-मन्दिर तक पहुंच गए। उस समय समाज मन्दिर बन्द था। महात्मा नारायण स्वामी को बाहर ही प्रतीक्षा करनी पड़ी। पुलिस छानबीन में लगी हुई थी, उसके एक दो आदमी यहाँ भी पहुँच गए। स्वामी जी से उनका नाम पूछा गया तो उन्होंने अपना नाम बता दिया। चारों ओर खलबली मच गई और स्वामी जी के दर्शनों के लिये हज़ारों हिन्दुओं की भीड़ इकट्ठी हो गई। आपसे सुपरिण्टेण्डेण्ट-पुलिस ने कहा कि तुरन्त हैदराबाद से चले जायँ। जब स्वामी जी ने जाने से इन्कार कर दिया तो उन्हें मोटर में बिठाकर नगर से १२० मील दूर सस्तापुर के बँगले में ठहराया गया और फिर वहाँ से आपको शोलापुर के सत्याग्रह-कैम्प में पहुंचा दिया गया।

महात्मा नारायण स्वामी जी ने गुलबर्गा के सूबेदार को सूचना दी कि "मैं ४ फ़रवरी को गुलबर्गा में सत्याग्रह करूँगा।" उस समय आपके साथ २० सत्याग्रही थे। स्टेशन पर पुलिस प्रतीक्षा में थी। इस व्यापक संघर्ष के प्रथम अधिनायक और उनके साथियों को शीघ्र ही पकड़ लिया गया और इन सबको दूसरे दिन एक-एक वर्ष का कठोर कारावास का दण्ड दे दिया गया।

'गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय' के १५ सत्याग्रहियों का जत्था वर्धा से सिकन्दराबाद पहुँचा और दो-दो की टुकड़ियों में विभक्त होकर किसी प्रकार बस द्वारा 'सुलतान बाज़ार' पहुँच गया। दूसरे दिन इन लोगों ने यहाँ सत्याग्रह किया। ८ फ़रवरी के दिन इनको छः-छः महीने का कठोर कारावास का दण्ड दिया गया।

दूसरे अधिनायक

राजस्थान के आर्यसमाजी नेता श्री कुंवर चाँदकिरण जी शारदा इस सत्याग्रह के दूसरे सर्वाधिकारी नियुक्त हुए। आपने इस संघर्ष के लिए जनता से अधिकाधिक समर्थन प्राप्त करने

के लिये भारत के कई स्थानों का भ्रमण किया। आपके साथ हैदराबाद के दो सत्याग्रही थे। श्री चाँदकिरण जी शारदा को १३ महीने का कठोर कारावास का दण्ड दिया गया।

तीसरे अधिनायक

सत्याग्रह के तीसरे अधिनायक पंजाब प्रादेशिक सभा के प्रधान महाशय खुशहालचन्द खुरसंद (पूज्य महात्मा आनन्द स्वामी जी) थे। आपको १५४ सत्याग्रहियों सहित पकड़ लिया गया और एक वर्ष का कठोर कारावास दिया गया।

चौथे अधिनायक

चौथे अधिनायक 'आर्य प्रतिनिधि सभा, उत्तर प्रदेश' के प्रधान श्री राजगुरु धुरेन्द्र जी शास्त्री थे। २२ एप्रिल को आपने एक स्पेशल ट्रेन द्वारा अपने ५३१ साथियों के साथ गुलबर्गा पहुंचकर सत्याग्रह करने की घोषणा की। उसी दिन आपको पकड़ लिया गया और इन सब को दो वर्ष का कठोर कारावास का दण्ड सुनाया गया।

जन-समर्थन

सत्याग्रह-संघर्ष जिस सुदृढ़ आधार पर आरम्भ हुआ था और जिसे भारतीय जनता का नैतिक समर्थन प्राप्त था, उसे समझने में निज़ाम-शासन को अधिक देर नहीं लगी। सत्याग्रह के चौथे अधिनायक की गिरफ्तारी के साथ ही निज़ाम-सरकार की ओर से समझौते की बात-आरम्भ हो गई, क्योंकि निज़ाम के मन्त्रिमण्डल के कुछ सदस्य यह समझ रहे थे कि यदि इस समय भी समझौता नहीं किया गया और सत्याग्रह-समिति की मांगों की पूर्ति की घोषणा नहीं हुई तो स्थिति बहुत गम्भीर हो जायेगी जिसके फलस्वरूप सरकार की प्रतिष्ठा को भारी धक्का पहुँचेगा।

राज्य की ओर से समझौते का प्रयत्न

२७ एप्रिल को निज़ाम की पुलिस तथा जेलों के डायरेक्टर-जनरल श्री एस० टी० हालेन्स, सूबेदार गुलबर्गा, कलेक्टर श्री रिज़वी और जेल के सुपरिण्टेण्डेण्ट ने महात्मा नारायण स्वामी जी से जेल में भेंट की और यह बात स्पष्ट की कि सरकार आर्यसमाज को सन्तुष्ट करने के लिए तैयार हो चुकी है। निज़ाम-सरकार के इन पदाधिकारियों ने आर्यसमाजी नेताओं को सूचित किया कि सरकार को 'ओ३म्' का झण्डा लहराने, हवनकुण्डों तथा यज्ञशालाओं के बनाने पर कोई आपत्ति नहीं होगी और न इसके लिए अनुमति लेनी आवश्यक होगी। इसके अतिरिक्त इस समय जितने आर्यसमाजी मन्दिर हैं और जो बिना अनुमति के बनाये गये हैं, वे बने रहेंगे, परन्तु नये मन्दिरों के निर्माण की अनुमति केवल १५ दिन के भीतर दे दी जायेगी। श्री हालेन्स तथा उनके साथी पदाधिकारियों ने इस बात का भी आश्वासन दिया कि आर्यसमाज को अपने धर्म के प्रचार के लिए भी अन्य धर्मवालों के विचारों के समान ध्यान में रखते हुए पूरी स्वतन्त्रता दे दी जायगी।

समझौते की इन बातों पर महात्मा नारायण स्वामी जी तथा उनके तीनों साथी बातचीत करने से मौन हो गये, क्योंकि वे 'सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा' की कार्यकारिणी में इस प्रश्न को रखे बिना कोई निर्णय नहीं ले सकते थे। श्री हालेन्स की इच्छा थी कि इन तीनों नेताओं और निज़ाम-सरकार के उच्च-अधिकारी तथा 'सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा' के नेताओं का एक मिला-जुला सम्मेलन होना चाहिए। इस सम्बन्ध में सम्मेलन के आयोजन का भार श्री हालेन्स ने अपने ऊपर लिया।

@VaidicPustakalay

६ एप्रिल को 'सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा, दिल्ली की कार्यकारिणी शोलापुर में बुलाई गई ताकि समझौते के प्रश्न पर विचार किया जा सके। ४ एप्रिल को सुपरिण्टेण्डेण्ट जेल गुलबर्गा का एक पत्र 'सभा' को मिला कि सभा के ज़िम्मेदार नेता ८ एप्रिल को हैदराबाद पहुंचने से पूर्व गुलबर्गा आकर कुछ पदाधिकारियों तथा जेल में बन्द नेताओं से भेंट कर लें।' समझौते की बातचीत का समाचार चारों ओर फैल चुका था, किन्तु हैदराबाद के समाचारपत्रों ने यह सूचना स्पष्ट शब्दों में छाप दी कि निज़ाम-सरकार तथा आर्यसमाज के बीच समझौते के समाचार बिलकुल निराधार हैं। इसी दिन श्री अणे शोलापुर से हैदराबाद को आ रहे थे। वे भी इन समाचारों को सुनकर आश्चर्यचकित हुए।

समझौते की बात से सरकार मुकर गई

हैदराबाद के अधिकतर मुस्लिम समाचारपत्र आर्यसमाज के कट्टर विरोधी तथा शत्रु थे। उन्हें यह बात कदापि नहीं भा सकती थी कि राज्य में 'आर्य प्रतिनिधि सभा' को अन्य धार्मिक एवं सामाजिक संस्थाओं की तरह स्वतन्त्रता के साथ अपना कार्य करने का अवसर मिले। उन्होंने बड़ी खुशी के साथ यह समाचार प्रकाशित किया था कि मिज़ामशासन की ओर से समझौता करने की सूचना निराधार है। इसके विपरीत, यह बात बिलकुल सत्य थी और श्री हालेन्स को इसका दुःख था कि वे गुलबर्गा जेल में आर्यसमाजी नेताओं के पास समझौते का जो प्रस्ताव लेकर गये थे, उसे निज़ाम-सरकार ने अचानक वापस ले लिया है। वास्तबिकता यह है कि आर्यसमाज से बातचीत और समझौते के प्रयत्न मन्त्रिमण्डल के कुछ सदस्यों के आग्रह पर आरम्भ हुए थे और अभी बातचीत आगे बढ़ने भी न पाई थी कि मन्त्रिमण्डल के विरोधी सदस्यों तथा 'इत्तेहादुल मुसलमीन' के नेताओं के षड्यन्त्र आरम्भ हो गए और समझौते के प्रस्ताव को निज़ाम-सरकार ने वापस ले लिया।

शोलापुर में 'सार्वदेशिक सभा' की कार्यकारिणी की जो बैठक हुई, उसमें महान् क्रान्तिकारी नेता वीर सावरकर भी सम्मिलित हुए थे। आर्यसमाजी नेताओं में श्री घनश्यामसिंह गुप्त, प्रोफ़ेसर सुधाकर एम० ए० तथा लाला देशबुन्धु गुप्त ने गुलबर्गा आकर श्री हालेन्स डायरेक्टर जनरल पुलिस तथा जेल से भेंट की। इस भेंट से स्पष्ट हुआ कि निज़ाम-सरकार समझौते की बातचीत से मुकर गई है।

सत्याग्रह की धूम

निज़ाम-शासन के इस व्यवहार से चारों ओर खेद प्रकट किया गया, किन्तु सत्याग्रह को इससे एक लाभ अवश्य पहुंचा और वह यह कि आर्यों के उत्साह में दुगुनी वृद्धि हो गई और उनके इस आन्दोलन को असाधारण शक्ति प्राप्त हो गई। 'सार्वदेशिक सभा' की ओर से घोषणा की गई कि अब सत्याग्रह को पूरे बल एवं शक्ति के साथ जारी रखा जायगा।

पाँचवें अधिनायक

राजगुरु श्री धुरेन्द्र शास्त्री जी के अनन्तर सत्याग्रह के पांचवें अधिनायक के रूप में 'आर्य प्रतिनिधि सभा, बिहार' के प्रधान श्री वेदव्रत जी को नियुक्त किया गया। आपके साथ ५३४ व्यक्तियों ने सत्याग्रह में भाग लिया। इस सत्याग्रह में शाहपुर राज्य के सैयद फ़ैज़अली और पाँच सिख सज्जन भी सम्मिलित थे। श्री वेदव्रत जी तथा उनके साथियों को निज़ाम-सरकार ने दो

वर्ष के कठोर कारावास का दण्ड दिया। श्री वेदव्रत जी वही हैं जो बाद में स्वामी अभेदानन्द जी के नाम से विख्यात हुए

छठे अधिनायक

'प्रताप' दैनिक के संचालक महाशय कृष्ण जी छठे अधिनायक के रूप में स्पेशल ट्रेन से औरंगाबाद पहुंचे। आपके साथ अहमदनगर के ६० विजयवाड़ा के ५, चाँदा के ६१, हैदराबाद के २५, शोलापुर के २५ तथा यू० पी० के ६२८ सत्याग्रही सम्मिलित थे। महाशय जी ६ जून १६३६ को औरंगाबाद में सत्याग्रह करते हुए अपने साथियों के साथ पकड़ लिये गये और उन्हें कारावास का दण्ड दिया गया।

सातवें अधिनायक

२३ जून को सत्याग्रह के सातवें अधिनायक पंडित ज्ञानेन्द्र की (गुजरात) ने गुलबर्गा में अपने १७० साथियों के साथ सत्याग्रह किया और उन्हें ६ महीने का दण्ड मिला।

आठवें अधिनायक

'आर्य प्रतिनिधि सभा' के अध्यक्ष तथा सत्याग्रह के आठवें अधिनायक पंडित विनायकराव जी विद्यालंकार बैरिस्टर, २ जुलाई को उत्तर-भारत के एक तूफ़ानी दौरे पर पं० कृष्णदत्त जी एम० ए० के साथ गये ताकि उत्तर प्रदेश और उसके आसपास की जनता को आर्यसमाज के सत्याग्रह का महत्त्व तथा उसके परिणामों से सचेत करके सत्याग्रह को आवश्यक सुविधाएँ प्राप्त करा सकें। आप दोनों ने इस सम्बन्ध में २२५० मील की यात्रा करके कई स्थानों पर लगभग ४० व्याख्यान दिए तथा जनता ने आपकी सेवा में २६०,५०० रुपयों की थैली भेंट की। सत्याग्रह के आठवें अधिनायक पंडित विनायकराव जी विद्यालंकार, पंजाब, यू० पी०, बंगाल, बिहार, राजस्थान, सी० पी० और हैदराबाद के २१०० सत्याग्रहियों के साथ २१ जुलाई को सत्याग्रह करने वाले ही थे कि निज़ाम-सरकार ने एक वक्तव्य द्वारा नये सुधारों को शीघ्र लागू करने की घोषणा कर दी।

सुधारों की घोषणा

निज़ाम-सरकार की ओर से जब राज्य में राजनैतिक, धार्मिक, सामाजिक तथा शैक्षणिक सुधारों की घोषणा १६ जुलाई को की गई तो 'सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा' ने शीघ्र इस बात का आदेश दिया कि सत्याग्रही जत्थे जिन-जिन स्थानों पर हों वहीं ठहर जाएँ; यदि आवश्यकता हुई तो पुन: उन्हें सत्याग्रह के लिए आदेश दिया जाएगा।

आर्यसमाज की ओर से आयोजित इस व्यापक सत्याग्रह को सफल बनाने में मध्य भारत के स्पीकर और 'सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा दिल्ली' के प्रधान श्री घनश्यामसिंह जी गुप्त का महत्त्वपूर्ण योग रहा है। उन्होंने समस्त भारत में भ्रमण कर लोगों को हैदराबाद राज्य की हिन्दू तथा आर्य जनता पर हो रहे निज़ामी शासन के शोषण तथा अत्याचारों से अवगत कराया। इसी प्रकार हैदराबाद तथा भारत के विभिन्न स्थानों में श्री भाई बंसीलाल जी वकील ने भ्रमण करके जनजागृति उत्पन्न की तथा लोगों को साहस व उत्साह के साथ संगठित किया। फलत: नवयुवक आगे आये और सत्याग्रह में भाग लेकर जेल गए।

'सत्याग्रह रक्षा-समिति' के संचालक लौहपुरुष पूज्य स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी महाराज थे।

आपने समस्त भारत का भ्रमण कर जनता एवं कांग्रेसी नेताओं को भी आर्यसमाज के सत्याग्रह से परिचित कराया। आपके कुशल नेतृत्व से आर्य-सत्याग्रह नियन्त्रण में अग्रसर हो सका। आपकी योग्यता और निष्ठा के परिणामस्वरूप सत्याग्रह सफलता को प्राप्त कर सका।

बारह हज़ार सत्याग्रही जेल में

हैदराबाद राज्य में नये सुधारों का मुसलमानों तथा उनके राजनैतिक संगठन 'मजलिसे इत्तेहादुल मुसलमीन' की ओर से पूरा विरोध किया गया और इन सुधारों को मुसलमानों के लिए अपर्याप्त, सीमित अपितु हानिकारक सिद्ध करने के लिए विभिन्न प्रदर्शन किये गये। आर्यसमाज के सत्याग्रह से शासन अत्यन्त घबराया हुआ था। पिछले पच्चीस-तीस वर्ष के मध्य राज्य के पुलिस तथा धर्मस्व-विभाग ने हैदराबाद में आर्यसमाजियों पर अत्याचार करके इन्हें मिटा देने का असफल प्रयत्न किया था। जब स्थिति गम्भीर हो गई तो आर्यसमाज ने अन्ततः विवश होकर सत्याग्रह के अहिंसात्मक शस्त्र से शासन को पराजित करने का संकल्प कर लिया। इस समय तक, जबकि सुधारों की घोषणा हुई, बारह हज़ार सत्याग्रहियों से निज़ाम के जेलखाने भर चुके थे। इसके अतिरिक्त दो हज़ार सत्याग्रही श्री पंडित विनायकराव विद्यालंकार के नेतृत्व में सत्याग्रह करने की प्रतीक्षा में थे।

ब्रिटिश संसद् में

ब्रिटिश संसद् में 'हैदराबाद आर्य सत्याग्रह' से सम्बन्धित प्रश्न किये गए और लन्दन में 'सिविल लिबर्टीज़ कमेटी' स्थापित की गई, जिसके अध्यक्ष श्री सुब्बाराव तथा मन्त्री श्री पी० डी० थामनकर थे। यह कमेटी हैदराबाद की नागरिक स्वतन्त्रताओं के लिए संघर्ष करती रही और प्रसिद्ध समाचारपत्र 'मानचेस्टर गार्जियन' ने भी आर्य-सत्याग्रह के प्रति रुचि व्यक्त की। कर्नल वेजुडबेन ने संसद् में यह प्रश्न उठाया कि हैदराबाद राज्य में सामाजिक स्वतन्त्रताओं पर क्या प्रतिबन्ध है तथा कितने सत्याग्रहियों को अब तक पकड़ा गया है? २६ जून को भारत मन्त्री ने इन प्रश्नों का उत्तर दिया जो एकदम मिथ्यापूर्ण था। इस सम्बन्ध में 'सार्वदेशिक सभा' ने भारत-मन्त्री लॉर्ड जेटलैण्ड तथा कर्नल वेजुडबेन को समुद्री तार द्वारा आर्य-सत्याग्रह तथा निज़ाम-सरकार की पाबन्दियों से सम्बन्धित सारी वस्तुस्थिति से अवगत कराया। ११ जुलाई १९३९ को श्री डी० आर० ग्रेनफ़ोल ने संसद् में सरकार से इस बात की माँग की कि हैदराबाद की स्थिति की खुली जाँच कराई जाय। किन्तु, भारत-मन्त्री ने ऐसी कोई कार्यवाही करने की माँग को अस्वीकार कर दिया। हैदराबाद के आर्य-सत्याग्रह से सम्बन्धित बहुत सी बातें यूरोप तक पहुंच गईं। भारत की विभिन्न जातियों के कुछ नेतागण एवं कई राष्ट्रवादी समाचारपत्रों ने निज़ाम के शासन के पक्षपात तथा उसकी साम्प्रदायिकता का उल्लेख करते हुए इस बात पर बल दिया कि वर्तमान उन्नति के युग में धार्मिक तथा सामाजिक स्वतन्त्रताओं पर किसी प्रकार का प्रतिबन्ध नहीं लगाया जा सकता तथा इन स्वतन्त्रताओं को प्राप्त करने के लिए आर्यसमाज सत्याग्रह का जो आन्दोलन चला रहा है, वह सर्वथा उचित है।

सत्याग्रह का प्रभाव 'मजलिस' पर

आर्यसमाज के सत्याग्रह से जहां निज़ाम-सरकार को चिन्तित होना पड़ा, वहाँ 'मजलिसे

@VaidicPustakalay

इत्तेहादुल मुसलमीन' पर भी इसका गहरा प्रभाव पड़ा। सुधारों को लागू करने का विरोध इसलिए किया गया जिससे कि 'मजलिस' को पहले की तरह आर्यसमाज को पीछे करके इस्लामी तबलीग़ (प्रचार) का अवसर प्राप्त हो सके। उन्हें इस बात का भय था कि धार्मिक, सामाजिक तथा राजनैतिक स्वतन्त्रताओं के साथ हिन्दुओं को अपने उचित अधिकारों तथा ध्येय की सुरक्षा के लिये सुविधाएँ प्राप्त हो जायेंगी। इन सुधारों के विरोध में 'मजलिस' तथा मुस्लिम पत्रों ने एड़ी-चोटी का ज़ोर लगाया और उनका निरन्तर प्रयत्न यही रहा कि आर्यसमाज को उसके मूलभूत अधिकार प्राप्त न हो सकें, निज़ाम-सरकार स्वयं यह नहीं चाहती थी कि आर्यसमाज को आगे बढ़ने का अवसर मिले, पर सत्याग्रह की शक्ति व प्रभाव से वह विवश हो चुकी थी और उसके लिए अब कोई चारा नहीं रह गया था। इसलिए उसे 'मजलिस' तथा मुसलमानों के विरोध को रद्द कर देना पड़ा। सत्याग्रह के बारे में पहले-पहल निज़ाम सरकार तथा 'मजलिसे इत्तेहादुल मुसलमीन' का यह विचार था कि इसे शक्ति तथा दबाव से विफल बनाया जा सकता है। इसलिये पुलिस की ओर से सत्याग्रह के बीच सत्याग्रहियों को भड़काने तथा उन्हें हिंसा पर उभारने का प्रयत्न किया जाता रहा जिससे कि अहिंसा की इस लड़ाई पर एक ज़बरदस्त चोट लगाई जाय; किन्तु 'सार्वदेशिक सभा' ने सत्याग्रहियों को मनसा-वाचा-कर्मणा अहिंसा तथा सत्य को अपनाने का जो आदेश दिया था, उसका सत्याग्रहियों ने बहुत अच्छे ढंग से पालन किया।

यहाँ एक विशेष बात उल्लेखनीय है कि श्रीमती सुचेता जी ने महात्मा गांधी से कहा कि आर्यसमाज का जो सत्याग्रह चल रहा है, वह पूर्ण शान्तिमय नहीं है, उसमें हिंसा की मात्रा भी है। महात्मा गांधी जी से जब श्री घनश्यामसिंह जी गुप्त मिलने गये तो उनसे गांधी जी ने उक्त बात की चर्चा की। गुप्त जी ने महात्मा जी से कुछ इस प्रकार कहा, "महात्मा जी, मैं कांग्रेस का कार्यकर्त्ता हूँ और आर्यसमाज का भी। कांग्रेसी होते हुए और कांग्रेस-सम्बन्धी सत्याग्रह करते हुए मैंने यह स्पष्ट अनुभव किया है कि आर्यसमाज का यह सत्याग्रह कांग्रेस के उन सत्याग्रहों से कई गुणा शान्तिमय है।...मैंने कुछ ऐसे उदाहरण भी प्रस्तुत किये जिससे मेरा कथन महात्मा जी को ठीक लगने लगा। मेरे कथन से महात्मा जी को पूर्ण सन्तोष हो गया और उन्होंने हमारे सत्याग्रह को अपना आशीर्वाद दिया।"

सत्याग्रहियों का बलिदान

सत्याग्रही बन्दियों के साथ जेलों में अच्छा व्यवहार नहीं किया गया और उसका परिणाम यह निकला कि सत्याग्रह की समाप्ति तक अनेक सत्याग्रही जेल के अत्याचारों से शहीद हो गये जिनमें से निम्नांकित नाम उल्लेखनीय हैं—

(१) पंडित श्यामलाल जी, (२) श्री स्वामी सत्यानन्द जी, (३) श्री परमानन्द जी, (४) श्री विष्णुभगवन्त निन्दलीकर, (५) श्री छोटेलाल जी, (६) श्री नाथूमल जी, (७) श्री माधवराव जी, (८) श्री पांडुरंग जी, (९) श्री सुनहरासिंह जी, (१०) महाशय फ़कीरचन्द जी, (११) श्री मलखान-सिंह जी, (१२) स्वामी कल्याणानन्द जी, (१३) श्री शांतिप्रकाश जी, (१४) श्री बदनसिंह जी, (१५) श्री ताराचन्द्र जी, (१६) श्री अशर्फ़ीप्रसाद जी, (१७) ब्रह्मचारी रामनाथ जी, (१८) श्री सदाशिव फाटक जी, (१९) श्री गोविन्दराव जी, (२०) श्रीमान् राम जी, (२१) श्री रतीराम जी, (२२) श्री रोड़ामल जी, (२३) श्री पुरुषोत्तम जी ज्ञानी, श्री वेंकटराव जी।

'सार्वदेशिक सभा' की कार्यकारिणी की बैठक

'सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा' की कार्यकारिणी की बैठक २४-२५ जुलाई १९३९ को नागपुर में हुई जिसमें हैदराबाद राज्य में किये गए सुधारों तथा उससे सम्बन्धित आर्यसमाज की जिन माँगों की पूर्ति हो रही थी, उन पर विचार-विनिमय किया गया। निज़ाम-शासन ने जिन सुधारों द्वारा धार्मिक, सामाजिक, शैक्षणिक नागरिक स्वतन्त्रताओं की घोषणा की थी, वह आर्यसमाज की दृष्टि में कुछ दोषपूर्ण थी।

जब 'सार्वदेशिक सभा' के नेताओं ने सर अकबर हैदरी से तार द्वारा लिखा-पढ़ी की तो उन्होंने राष्ट्रपिता महात्मा गांधी से परामर्श करना भी ज़रूरी समझा, जो आर्य-सत्याग्रह की पवित्रता को मान चुके थे। महात्मा जी इस समय उत्तर-पश्चिमी सीमावर्ती प्रान्त की यात्रा पर थे, इसलिए 'आर्य प्रतिनिधि सभा' के प्रधान श्री घनश्यामसिंह गुप्त तथा लाला देशबन्धु जी गुप्त को पश्चिमी-सीमाप्रान्त जाना पड़ा। महात्मा गांधी आर्यसमाज संघर्ष की सफलता पर प्रसन्न थे। जब उनके सम्मुख यह समस्या रखी गई कि निज़ाम-सरकार कुछ बातों को विस्तारपूर्वक व्यक्त करने में आनाकानी कर रही है तो आपने कहा कि सम्बन्धित बातें पूरी तरह स्पष्ट हो जानी चाहिएँ जिससे की जिन लोगों ने सत्याग्रह कर आन्दोलन को चलाया है, उन्हें समाधान व सन्तोष हो जाय। महात्मा जी ने सभा की इस माँग का समर्थन करते हुए सर अकबर हैदरी के नाम एक तार भेजा। आर्यसमाज की ओर से जिन माँगों की ओर निज़ाम का ध्यान आकर्षित किया गया, वे निम्नांकित हैं:

१ आर्यसमाज के मन्दिरों, हवनकुण्डों तथा यज्ञशालाओं का निर्माण-कार्य राज्य-सरकार की स्वीकृति के आधीन न रहे।

२. राज्य के बाहर के आर्यसमाजी प्रचारकों को राज्य में प्रवेश करने तथा धर्म-प्रचार करने से रोका न जाय।

३. आर्यसमाज के धार्मिक तथा सांस्कृतिक भाषणों पर कोई प्रतिबन्ध न रहे।

४. जिन आर्यसमाजियों पर केस चल रहे हैं, उन्हें उठा लिया जाय और जो बन्दी हैं उन्हें छोड़ दिया जाय।

५. आर्यसमाज के साहित्य को ज़ब्त न किया जाय।

६. आर्यसमाजी विद्वानों तथा प्रचारकों पर जो प्रतिबन्ध हैं, उठा लिये जायँ।

७. आर्यसमाज के सभी जलसों तथा जुलूसों के लिए पूरी स्वतन्त्रता रहे।

८. धर्मस्व-विभाग को या तो समाप्त कर दिया जाय या वह फिर आर्यसमाजियों से सम्बन्धित न रहे।

९. आर्यसमाजी शैक्षणिक तथा सांस्कृतिक संस्थाओं को अपने ढंग से काम करने की पूरी स्वतन्त्रता मिलनी चाहिए।

१०. आर्यसमाज की ओर से हिन्दी तथा संस्कृत के प्रचार पर प्रतिबन्ध न लगाया जाय।

शासन को झुकना पड़ा

हैदराबाद-सत्याग्रह में आर्यजनता का लगभग दस लाख रुपया व्यय हुआ। इस पूरी राशि

को श्री घनश्यामसिंह जी गुप्त हैदराबाद-शासन से वसूल करना चाहते थे। वे सर अकबर हैदरी, जो तत्कालीन निज़ाम-शासन के मुख्यमन्त्री थे, उनसे स्वयं इस विषय में बात नहीं करना चाहते थे। शासन ने कुछ भी रक़म देना अस्वीकार कर दिया था।

श्री गुप्त जी दिनांक २४, २५ और २६-६-३६ को महात्मा गांधी से मिले और उन्हें सारी बातें बतलाईं, जिससे गांधी जी पूर्णतः सन्तुष्ट हुए। महात्मा जी ने एक पत्र पर सर अकबर हैदरी को दिया अथवा टेलीफ़ोन पर कहा कि दस-पन्द्रह लाख रुपये देने में हैदराबाद के हिज़ एक्सीलेंसी हाईनेस (निज़ाम) कुछ ग़रीब नहीं हो जायेंगे, जबकि आर्यसमाज के पास इतनी बड़ी रक़म ख़र्च करने की शक्ति नहीं है। महात्मा जी ने पर्याप्त कड़े शब्दों में यह बात कही थी। परिणामतः, हैदराबाद-शासन को झुकना पड़ा और उसने लगभग पन्द्रह लाख रुपया आर्यसमाज को दिया। इस राशि से न केवल सत्याग्रहियों के आने-जाने का ख़र्च ही पूरा हुआ, अपितु उनके व्यवसाय में जो हानि हुई उसका भी उन्हें आंशिक हर्जाना मिला।

सर अकबर हैदरी से बातचीत

भारत के प्रसिद्ध राजनैतिक नेता श्री देशबन्धु गुप्त हैदराबाद राज्य-सरकार से बातचीत करने के लिए हैदराबाद आये क्योंकि 'सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा' का आग्रह था कि हैदराबाद के आर्यसमाजियों की माँगों को सुधारों द्वारा पूर्ण करने के जो प्रयत्न किये जा रहे हैं, इस क्रम में कुछ बातों का विस्तारपूर्वक स्पष्टीकरण होना चाहिए। श्री देशबन्धु जी ने प्रधानमन्त्री सर अकबर हैदरी से विस्तारपूर्वक बातचीत की। इस अवसर पर राजनैतिक विभाग के मन्त्री नवाब मेंहदी-यारजंग, पुलिस-विभाग के मन्त्री श्री टासकर, गृहमन्त्रालय के सचिव नवाब अलीयावरजंग तथा डायरेक्टर-जनरल पुलिस श्री क्राफ़्टन भी उपस्थित थे। इस समझौते की बातचीत के फलस्वरूप सारी बातों पर प्रकाश डाला गया तथा निज़ाम-सरकार इस बात पर तैयार हो गई कि वह सभी सत्याग्रहियों तथा दूसरे आर्यबन्दियों को मुक्त कर देगी; उनके जुर्माने मुआफ़ कर दिये जायेंगे; ज़ब्त की हुई सम्पत्ति लौटा दी जायेगी; जिन्हें नौकरियों से विलग कर दिया गया है, पुनः उन्हें सेवाकार्य में ले लिया जायेगा।

एक नई रुकावट

मुझे 'मनानूर' में बन्द रखे रहने पर निज़ाम-सरकार का विशेष आग्रह था और मेरी मुक्ति का प्रश्न इस समझौते में बाधा उपस्थित करने का एक कारण बन गया। श्री देशबन्धु जी गुप्त ने श्री घनश्यामसिंह जी गुप्त को इस रुकावट की सूचना दी और 'सार्वदेशिक सभा' ने सोच-विचार के बाद श्री देशबन्धु जी गुप्त को सूचित किया कि "यदि पंडित नरेन्द्र जी को नहीं छोड़ा जा सकता तो फिर निज़ाम-सरकार से कोई समझौता नहीं होगा। पंडित जी की रिहाई हमारे लिए महत्त्व रखती है, अन्यथा सत्याग्रह पुनः आरम्भ कर दिया जायेगा।" निज़ाम-सरकार ने अन्ततः इस बात का विश्वास दिलाया कि नरेन्द्र जी को तीन महीने के भीतर छोड़ दिया जायेगा।

श्री देशबन्धु गुप्त जब आर्यसमाज के प्रतिनिधि बनकर नागपुर से यहाँ चल रहे विशाल सत्याग्रह के बारे में समझौता कराने हैदराबाद आये तो कुछ बातों पर सरकार से मतभेद उत्पन्न हो गया। मुझे छोड़ने के प्रश्न पर निज़ाम-सरकार के राज़ी न होने के कारण बातचीत इतनी

लम्बी चली कि वापसी पर ट्रेन को दो घण्टे तक रोके रखा गया। इसी ट्रेन से गुप्त जी को नागपुर में हो रही 'ऐक्शन कमेटी' में समझौते के अंतिम निर्णय के लिए सम्मिलित होना जरूरी था। इस कमेटी की बैठक श्री एम० एस० अणे जी की अध्यक्षता में हुई। रेल का इस प्रकार का रुका रहना हैदराबाद के इतिहास में अपने ढंग की एक अनोखी घटना है।

शासन के लिए

आर्यसमाज की जब सभी माँगें पूरी हो गईं तो सत्याग्रह का विशाल आन्दोलन अपनी अपूर्व सफलता के साथ सम्पन्न हो गया।

सत्याग्रह की सफलता निज़ाम जैसे फ़ासिस्ट शासन के लिए एक मुँहतोड़ उत्तर से कम न था। कोई शासन, चाहे वह कितना भी शक्तिशाली क्यों न हो, अपनी हिंसा व बल के आधार पर जनता के उचित अधिकारों व हितों को रौंद नहीं सकता, क्योंकि जब जन-चेतना जाग उठती है और उसमें अपने अधिकारों की सुरक्षा की शक्ति उत्पन्न हो जाती है तो आत्याचारी-से-अत्याचारी शासन को उसके आगे अपना मस्तक झुका देना पड़ता है। इस सत्याग्रह से निज़ाम-सरकार को यह शिक्षा अवश्य मिली थी, किन्तु खेद है कि उसने आगे चलकर पुन: पूर्ववत् अपनी भूल की पुनरावृत्ति की।

मनानूर से मुक्ति

श्री देशबन्धु जी गुप्त को निज़ाम-सरकार ने यह विश्वास दिलाया था कि वह तीन महीने के भीतर मुझे छोड़ देगी, किन्तु जब यह समय भी बीत गया और प्रश्न खटाई में पड़ता दिखाई दिया तो श्री घनश्यामसिंह जी गुप्त ने पुन: इस दिशा में प्रयत्न आरम्भ कर दिया और 'गुरुकुल कांगड़ी' के आचार्य श्री अभयदेव जी शर्मा विद्यालंकार को, जो योगिराज अरविन्द घोष से पर्याप्त प्रभावित थे, हैदराबाद भेजा गया। उन्होंने सर अकबर हैदरी से बातचीत की। आपने महात्मा गांधी का पत्र भी सर अक़बर को दिया। श्री अभयदेव जी शर्मा तथा श्री घनश्यामसिंह जी गुप्त के प्रयत्नों का ही परिणाम था कि अन्ततः निज़ाम को एक फ़रमान (शाही आदेश) प्रकाशित करके मुझे मनानूर के वन्दीगृह से छोड़ने की घोषणा करनी पड़ी और मैं एक वर्ष चार महीने के बाद मनानूर से मुक्त होकर हैदराबाद लौट सका। १६३६ का विशाल सत्याग्रह केवल इसी कारण समाप्त किया गया था कि निज़ाम-सरकार ने आर्यसमाज की माँगें स्वीकार कर ली हैं और राज्य की जनता के लिए धार्मिक, सामाजिक, राजनैतिक एवं शैक्षणिक सुधारों की भी घोषणा कर दी गई है।

निज़ाम-सरकार ने आर्यसमाज के साथ जो समझौता किया था, उससे भारत के सभी आर्य तथा हिन्दू क्षेत्रों में एक तरह से प्रफुल्लता का वातावरण उत्पन्न हो गया था। जनता का यह विश्वास था कि अब हैदराबाद राज्य में स्थिति सामान्य हो जायेगी और आर्यसमाजियों तथा हिन्दुओं को अपने धार्मिक व सांस्कृतिक अधिकारों की पूर्ण स्वतन्त्रता प्राप्त रहेगी, किन्तु यह एक दुःखद घटना है कि निज़ाम सरकार ने एक घटिया श्रेणी के खिलाड़ी की तरह सबको धोखा देने का प्रयत्न किया तथा समझौते की सारी नैतिक भावनाओं को रद्द करते हुए कुछ समय पश्चात् पुन: अत्याचार व हिंसा का क्रम आरम्भ कर दिया।

❀❀❀
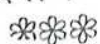
विशेष ज्ञान के लिए "आर्यसमाज के बलिदान" पुस्तक पढ़ें।

मि० ए० ओ० ह्यूम और भारतीय राष्ट्रीयता

(जन्म २२ अगस्त, १८२६, मृत्यु १९१२)

—लेखक डा० देवेन्द्र कुमार सत्यार्थी, पटना

भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के संस्थापक श्री एलेन आक्टाविमन ह्यूम इंगलैंड में जन्मे थे। भारत में अनेक पदों पर कार्य करते हुए १८८२ में कार्यमुक्त हुए। आप ब्रिटिश शासन के परम शुभचिन्तक थे। राज्यभक्त होने के कारण ब्रिटिश शासन ने इन्हें सलाहकार समिति में रख लिया।

१८५७ की क्रान्ति में

जिस समय देश में प्रथम स्वतंत्रता संग्राम की लपट बड़ी तेजी से फैल रही थी मि० ए० ओ० ह्यूम इटावा में कलक्टर के पद पर नियुक्त थे। जब इटावा में क्रांतिकारियों का दल पहुंचा इटावा के कलक्टर मि० ए० ओ० ह्यूम ने पुलिस और जनता से मदद चाही! किन्तु इन दोनों ने खुलेआम क्रांतिकारियों का साथ दिया। असिस्टेंट मजिस्ट्रेट डेनियल लड़ाई में मारा गया। २३ मई को हिन्दुस्तानी सिपाहियों ने खजाना पर कब्जा कर लिया, जेलखाने को तोड़ दिया। अंग्रेजों को अपने वच्चों और स्त्रियों समेत भाग जाने का मौका दिया। लिखा है कि ह्यूम साहब एक भारतीय स्त्री का रूप धर कर इटावा से भाग निकले [दी रेड पम्पलेट भा-२ पृष्ठ ७०]। कालान्तर में दूसरे पदों पर काम करते हुए भी ह्यूम साहब को भारतीय आक्रोश का भय लगा रहता था। अत: समय-समय पर वे ब्रिटिश हुकूमत को सावधान करते रहते थे। १८७२ में मि० ह्यूम ने नार्थब्रुक को स्थिति की गम्भीरता के सम्बन्ध में चेतावनी देते हुए लिखा—"हमारे और विनाश के बीच सिवाये संगीनों के और कुछ नहीं है" .... "साम्राज्य का भाग्य अधर में है।" उन्होंने गवर्नर जेनरल को सलाह दी—"मैं हुजूरे आला से यह प्रार्थना करता हूं कि आप इस विषय पर विचार करें कि क्या यह संभव नहीं है कि हमारे प्रशासन में हमारी प्रजा की विचार और इच्छाओं में अधिक ध्यान दिया जायें।" [नार्थब्रुक के कागजात, नार्थब्रुक के नाम ए० ओ० ह्यूम, १ अगस्त, १८७२ सचिव का पुस्तकालय।]

भयंकर खतरे की सूचना

१८७० की दशाब्दी में बहुत कष्ट और असंतोष रहा और सरकार के सचिव के रूप में ह्यूम को यह सूचना मिली जिससे यह विचार बना कि स्थिति बहुत भयंकर है। वे कहते हैं—"उस समय लार्ड लिटन के जाने के १५ महीने पहले जो प्रमाण मुझे मिले, उनसे मैं इस नतीजे पर पहुंचा कि एक भयानक उथल-पुथल होने वाली है। मुझे सात बड़ी जिल्दें दिखाई गयीं जिनमें बहुत से इन्दराज थे और वे सब के सब यह दिखा रहे थे कि सबसे निम्न वर्ग के गरीब आदमी इस राय पर पहुँच चुके थे कि स्थिति सुधर नहीं सकती और वे समझते थे कि वे लोग भूखे मर जायेंगे। इसलिए वे कुछ कर गुजरने को तैयार थे और कुछ करने का मतलब हिंसा से था।"

[डब्लू वेडरवर्न लिखित ए० ओ० ह्यूम पृष्ठ ८०-८१] दक्षिण के दंगे इस चेतावनी के प्रमाण थे।

शासन को चेतावनी

१८७२ में मि० ह्यूम ने नार्थब्रुक को यह चेतावनी दी थी कि ब्रिटिश साम्राज्य को एक लकवा सा मार रहा है। उन्होंने लिखा—"हुजूर शायद ही समझ पायें कि हमारा शासन कितना अस्थिर है। ...... मैं बहुत दृढ़ता के साथ यह कहता हूं कि हमारे साम्राज्य का भाग्य डावाँडोल है और किसी भी समय छोटे से बादल का कोई टुकड़ा जिसकी तरफ किसी का ध्यान नहीं जा रहा है, बढ़कर सारे देश पर छा सकता है और अराजकता और बिनाश की वर्षा कर सकता है।" [१ अगस्त, १८७२ को ए० ओ० ह्यूम द्वारा नार्थब्रुक को लिखे गये पत्र से—"नार्थब्रुक कलेक्शन," इंडिया आँफिस लाइब्रेरी, लंदन।]

कांग्रेस की स्थापना का उद्देश्य

काँग्रेस की स्थापना के समय ह्यूम महोदय ने अपने एक मित्र सर आँक्लैंड काँलविन को बताया था कि उन्होंने यह योजना अपने ही कर्मों के फलस्वरूप उत्पन्न हुई एक प्रबल बढ़ती हुई शक्ति के निष्कासन के लिए एक सेफ्टी बल्व के उद्देश्य से बनायी थी [डब्लू वेडरवर्न लिखित ए० ओ० ह्यू म पृष्ठ-७१]।

यह एक ऐतिहासिक सच्चाई है कि काँग्रेस रूपी सेफ्टी बल्व का निर्माण ब्रिटिश हुकूमत की सुरक्षा के लिए की गयी थी न कि स्वतन्त्रता प्राप्त करने के लिए। यही कारण है कि कांग्रेस की प्रत्येक सभा की शुरुआत "गॉड सेव द किंग" की प्रार्थना से होती थी तथा सभा के अन्त में "ब्रिटिश राष्ट्र दुनियां में ईमानदार राष्ट्र है" के नारे लगाये जाते थे।

राष्ट्रीयता का उद्भव कैसे हुआ

कुछ भारतीय इतिहासकार राजा राममोहनराय के द्वारा भारतीय राष्ट्रीयता का प्रारम्भ मानते हैं परन्तु यह एक तथ्य है कि राजा राममोहनराय ब्रिटिश शासन को भारत के लिए एक ईश्वरीय वरदान मानते थे। अपने विभिन्न सामाजिक सुधार के कार्यों को करते हुए भी उन्होंने कभी स्वराज की बात नहीं की क्योंकि उनके विचार से ब्रिटिश शासन के अन्तर्गत भारतीयों का उन्नति करने का मार्ग सुरक्षित था। ठीक इसके विपरीत भारत के एक महान् संन्यासी महर्षि दयानन्द देश में घूम-घूम कर प्रबल राष्ट्रीयता का प्रचार कर रहे थे।

× × × ×

देशभक्ति का प्रचार करते हुए भारत की प्राचीन महिमा का वर्णन करते समय महर्षि दयानन्द ने लिखा "यह आर्यावर्त देश ऐसा है कि इसके सदृश्य भूगोल में दूसरा कोई देश नहीं है इसलिए इस भूमि का नाम स्वर्णभूमि है क्योंकि यही स्वर्ण आदि रत्नों को उत्पन्न करती है— जितने भूगोल में देश हैं सब इसी देश की प्रशंसा करते और आशा रखते हैं कि पारसमणी पत्थर सुना जाता, यह बात तो झूठी है परन्तु आर्यावर्त देश ही सच्चा पारसमणी है जिसको लोहे रूप विदेशी छूने के साथ स्वर्ण अर्थात् धनाढ्य हो जाते हैं।

दो विचारधाराओं की टक्कर

जिस समय मि० ह्यूम प्रबल जन आक्रोश से ब्रिटिश राज्य की रक्षा करने में संलग्न थे ठीक उसी समय महर्षि दयानन्द पंजाब, महाराष्ट्र और बंगाल में घूम-घूमकर भारतीयों के मस्तिष्क में उनके प्राचीन गरिमामय इतिहास डालकर उन्हें स्वाधीनता के पथ पर उन्मुख कर रहे थे। आज इतिहासकार भारतीय राष्ट्रीयता के सूत्रधार के रूप में जिन महापुरुषों का उल्लेख करते हैं, उन सबों के हृदय में देश प्रेम की आग महर्षि दयानन्द ने सुलगायी थी। मि० ह्यूम ने महर्षि दयानन्द के इस कार्य को बड़ी गम्भीरता से देखा था। महर्षि की योजनाओं को विफल करने के लिए मि० ह्यूम में "भारत मित्र" पत्रिका में उनके सिद्धान्तों का भयंकर खण्डन करते हुए कुछ लेख लिखने शुरु किये परन्तु महर्षि दयानन्द के प्रबल तर्क एवं अपूर्व पांडित्य के आगे उनकी धज्जियां उड़ गयीं। जब ऋषि ने वेदों में विमान विद्या का वर्णन किया तब ह्यूम ने उसका,उपहास करते हुए कहा था "यह सरासर पागलपन है। भला कहीं मनुष्य पक्षियों की तरह आकाश में उड़ सकता है ?" कारण यह कि तब तक पश्चिम में विमान का आविष्कार नहीं हुआ था और आकाश में उड़ने की कल्पना को साकार रूप देने वाले राइट बंधु सन् १८९२ के बाद ही प्रकाश में आये थे।

प्रबल राष्ट्रवादी संस्था की स्थापना

१८७५ में महर्षि दयानन्द ने बम्बई में इतिहास प्रसिद्ध संस्था आर्यसमाज की स्थापना की। महर्षि ने इस समाज का मुख्य उद्देश्य बताते हुए लिखा "संसार का उपकार करना इस समाज का मुख्य उद्देश्य है अर्थात् शारीरिक, आत्मिक और सामाजिक उन्नति करना" इस तरह महर्षि ने तीन बातों को ओर लोगों का ध्यान खींचा:—

१- शारीरिक उन्नति—कसरत व्यायाम एवं ब्रह्मचर्य द्वारा शरीर को बलवान् बनाना।

२- आत्मिक उन्नति—सुन्दर चरित्र अपनाकर शरीर की नश्वरता का एवं आत्मा की अमरता का ज्ञान प्राप्त करना, समय पड़ने पर राष्ट्र के लिए नश्वर शरीर की आहुति देने के लिए तत्पर रहना।

३- सामाजिक उन्नति—उपरोक्त दोनों तरह की उन्नति सार्वजनिक रूप में करके स्वतन्त्रता की प्राप्ति करना। यही कारण है कि जब लन्दन टाईम्स ने क्रान्ति पर्यवेक्षण के लिये सर वेलन्टाईल शिरोल को भारत भेजा तो उन्होंने लिखा—"जहाँ-जहाँ आर्यसमाज है, वहाँ-वहाँ प्रबल राजद्रोह है।"[1] आर्यसमाज द्वारा प्रबल राष्ट्रवादी विचारों का प्रसार देखकर मि० ह्यूम ने नयी योजना अपनायी।

इंडियन नेशनल कांग्रेस की स्थापना

महर्षि दयानन्द द्वारा प्रबल राष्ट्रवादी विचारों से प्रबुद्ध जन मानस को बचाने के लिए मि० ह्यूम ने सन् १८८५ में बम्बई नगर में कांग्रेस की स्थापना की। जिस समय कांग्रेस की सभाओं का प्रारम्भ "गॉड सेव द किंग" से तथा अन्त ब्रिटिश राष्ट्र दुनियां में ईमानदार राष्ट्र है" के नारे से होता था उसी समय महर्षि दयानन्द के द्वारा भेजे गये उनके परम शिष्य पंडित श्याम जी कृष्ण वर्मा लन्दन स्थित इण्डिया हाउस में अपने शिष्यों की बैठक की शुरुआत मराठी

१. इन्डियन अनरेस्ट (सर वेलेन्टाईल शिरोल लिखित)

गीत—"राजे घरात शिरला चोर तमामी मनियला अर्थात् घर में घुसे हुए चोर को हम राजा मानते हैं", से करते थे और बैठक का अन्त—"ब्रिटिश हुकूमत संसार में सब से बेईमान और दगाबाज़ हुकूमत है" से करते थे।

डा० मजूमदार ने लिखा है—"आर्यसमाज आरम्भ से ही उग्रवादी सम्प्रदाय था, उसका मुख्य स्रोत तीव्र राष्ट्रीयता था।"

इतिहासकारों के मत में बाल गंगाधर तिलक, लाला लाजपतराय और गोपालकृष्ण गोखले, जिन्होंने हमारे राष्ट्रीय आन्दोलनों का नेतृत्व किया, आर्यसमाज से प्रभावित थे।.........कांग्रेस में उग्रवादी भावना के आरम्भ होने का एक कारण हिन्दू धर्म की भावना थी और इसमें सन्देह नहीं कि आर्यसमाज ने उग्र भावना के निर्माण में सहयोग प्रदान किया था।

(आधुनिक भारत एल० पी० शर्मा)

❀❀❀

लन्दन में क्रान्तिकारियों का गुरुकुल

—स्वामी ओमानन्द सरस्वती

महर्षि दयानन्द के प्रियतम शिष्य श्री श्याम जी कृष्ण वर्मा काठियावाड़ राज्य के थे। ये संस्कृत भाषा के धुरन्धर विद्वान् थे। महर्षि दयानन्द जी से अष्टाध्यायी संस्कृत व्याकरण को पढ़ा था। महर्षि दयानन्द ने विदेशों में वैदिक धर्म के प्रचारार्थ ही लन्दन भेजा था। महर्षि दयानन्द के साथ इनका पत्रव्यवहार भी था। यह सुशिक्षित तो था ही इसने अपने पुरुषार्थ से पर्याप्त धन भी इकट्ठा कर लिया था। इसने बम्बई से विलायत (इङ्गलैंड) में जाकर १९०५ की जनवरी में भारत स्वराज्य सभा (India Home Rule Society) स्थापित की और उसके प्रधान भी स्वयं अपने आप श्री श्याम जी कृष्णवर्मा बने और सभा की मुख्य पत्रिका 'इण्डियन सोशियोलोजिस्ट' निकाली जिसका मूल्य एक आना मासिक रक्खा। इसका उद्देश्य "भारत के लिये स्वराज्य प्राप्त करना और यथासम्भव हर प्रकार से विलायत में वास्तविक प्रचार करना" था।

घोषणा

दिसम्बर सन् १९०५ में कृष्ण वर्मा ने घोषणा की कि उसकी इच्छा है कि एक-एक हजार के छः वजीफे योग्य भारतीयों को विदेश भ्रमण के लिये देवें जिससे लेखक सम्पादक आदि अमरीका और योरुप देखकर इस योग्य हो जायें कि भारत में स्वतन्त्र और राष्ट्रीय एकता के विचार फैला सकें। उसने एक पत्र और प्रकाशित किया जिसका लेखक पैरिस का एक भारतीय आर० एस० राना था। उसने दो-दो हजार की तीन छात्रवृत्तियां विदेश भ्रमण के लिए महाराणा प्रताप, शिवाजी और तीसरी किसी एक बड़े मुसलमान राजा के नाम पर रखकर देने का वचन दिया।

लन्दन में भारतीय भवन (गुरुकुल)

कृष्ण वर्मा ने उपरिलिखित कार्यपूर्त्ति के लिए भारतीय भवन की स्थापना की और इसमें

@VaidicPustakalay

प्रशिक्षण के लिये कृष्ण वर्मा ने कुछ विद्यार्थी (रंगरूट) भरती किये जिन में से एक विनायक दामोदर सावरकर था। यह महात्मा तिलक का पत्र कृष्ण वर्मा के नाम लेकर गया था। पहली छात्रवृत्ति वर्मा जी की वीर सावरकर को मिली और वर्मा जी के क्रान्तिकारी गुरुकुल का प्रथम छात्र बना। वीर सावरकर की आयु उस समय केवल २२ वर्ष की थी। यह चित्तपावन ब्राह्मण बी० ए० पास करके पूना से आया था। इसकी जन्मभूमि नासिक थी। उन दिनों महाराष्ट्र में एक महात्मा अगम्य गुरु परमहंस (संन्यासी) थे जो भारतवर्ष में घूमकर अंग्रेज सरकार के विरुद्ध बेधड़क व्याख्यान दिया करते थे और अपने श्रोताओं से कहते थे कि सरकार से मत डरो। इनकी प्रेरणा से पूना में विद्यार्थियों ने एक सभा बनाई जिसका मुखिया वीर सावरकर को उन्होंने चुना। इसी महात्मा जी के परामर्श से कार्य करने के लिए ९ व्यक्तियों की समिति बनाई। इस प्रकार वीर सावरकर देशभक्ति के रंग में रंगे हुए थे और अंग्रेजी राज्य के कट्टर विरोधी बन चुके थे। इसी कारण महात्मा तिलक जी ने उन्हें श्याम जी कृष्ण वर्मा के पास लन्दन भेज दिया।

कृष्ण वर्मा का खोला हुआ भारतीय भवन सन् १९०६ और १९०७ में राजद्रोह का नामी केन्द्र बन चुका था, और जुलाई १९०७ में इसके विषय में पार्लियामेंट में एक प्रश्न भी हुआ और पूछा गया कि सरकार का कृष्ण वर्मा के विषय में क्या इरादा है? कुछ दिनों पश्चात् सम्भव है इसी पूछताछ के कारण वर्मा जी लन्दन छोड़कर पैरिस चले गये और वहीं रहने लगे। पैरिस में राजद्रोह का कार्य वे अधिक खुलकर करने लगे किन्तु अपने पत्र 'इण्डियन सोशियालोजिस्ट' को अब भी इङ्गलैंड में ही छपवाते रहे। प्रकाशक पर १९०९ में मुकदमा चलाया गया और उसे सजा हुई। छपाई का भार फिर दूसरे व्यक्ति ने अपने ऊपर लिया। उसका भी १९०९ में वही हाल हुआ। उसे एक वर्ष का कारावास हुआ। फिर पत्र पैरिस में छपने लगा। कृष्ण वर्मा अपने मित्र एस० आर० राना द्वारा भारतीय भवन लन्दन से सम्बन्ध रखता रहा और उसके कार्यक्रम को चलाता रहा। राना इस कार्य के लिये निरन्तर लन्दन आता जाता रहा। इसी कृष्ण वर्मा के गुरुकुल में ही लाला हरदयाल, भाई परमानन्द, लाला लाजपतराय, मदनलाल धींगड़ा देशभक्त युवक भारत से आकर (भारतीय भवन) लन्दन में रहकर क्रान्ति का प्रशिक्षण लेते रहे। यह सब एक प्रकार से कृष्ण वर्मा के क्रान्तिकारी शिष्यों की मण्डली थी जिन्होंने इङ्गलैंड अमरीका आदि देशों में भारत की स्वतंत्रता के अनेक प्रकार के वीरतापूर्ण कार्य किये। श्री श्याम जी कृष्ण वर्मा इस प्रकार का प्रचार करते थे। दिसम्बर सन् १९०७ के उनके इण्डियन सोशियालोजिस्ट में निम्नलिखित लेख प्रकाशित हुआ—

"ऐसा प्रतीत होता है कि भारतवर्ष में आन्दोलन खुल्लमखुल्ला नहीं करना चाहिये—अंग्रेजी सरकार को होश में लाने के लिए जोर-शोर से रूसी नीति को काम में लाना चाहिये। यहाँ तक कि अंग्रेजी अत्याचार ढीला हो जाये और वे देश से भाग निकलें। अभी कोई नहीं कह सकता कि किन किन नियमों पर चलना पड़ेगा और किसी विशेष साध्य के लिये हमारी कार्यप्रणाली क्या होगी, यह सब देश और काल के अनुसार ठीक करना पड़ेगा—हाँ सम्भवत: साधारण नियम यह होगा, कि रूसी नीति पहले अंग्रेजी अफसरों के लिए नहीं, बल्कि देशी अफसरों के लिये काम में लाई जाएगी।"

भारतीय भवन की कार्यवाही

सन् १९०८ की मई में 'भारतीय भवन' में गदर अर्थात् सिपाही युद्ध का स्मृति दिवस मनाया गया। निमन्त्रण-पत्र भेजे गये और लगभग १०० हिन्दुस्तानी विद्यार्थी, जो कि ब्रिटिश द्वीपों के भिन्न-भिन्न भागों से सफ़र करके आये थे, शामिल हुए। इसके थोड़े ही दिनों बाद 'ऐ शहीदो !' शीर्षक एक पर्चा आया, जो उनकी याद में था, जो कि सन् १८५७ में मारे गये थे। मतलब यह कि इस प्रकार पहली बार भारतीय स्वतन्त्रता के युद्ध का स्मारक मनाया गया। पर्चा फ्रांसीसी टाइप में छपा था और इसमें सन्देह नहीं कि कृष्ण वर्मा की जानकारी में यह सब काम हुआ था। कुछ प्रतियां, जो कि मद्रास के एक कालेज में पाई गईं। लन्दन के दैनिक पत्र "डेली न्यूज़" में लिपटी हुई थीं, अत एव यह स्पष्ट है कि पर्चे लन्दन से ही बाँटे गये थे। भारतीय भवन में आने वालों को इस पर्चे की और 'घोर चेतावनी' नामक एक और पुस्तिका की प्रतियाँ, यह कह कर मुफ्त दी जाती थीं, कि वह अपने मित्रों के पास भारतवर्ष भेज दें। इस वर्ष भी मार-काट की नीति का प्रचार भारतीय भवन की सभाओं में बराबर होता रहा।

जून सन् १९०८ में एक हिन्दू ने, जो कि लन्दन विश्वविद्यालय में पढ़ा करता था। 'भारतीय भवन' में "बम" पर व्याख्यान दिया। उसने व्याख्यान में बम का प्रयोग करना उचित बताया और यह भी बताया कि बम किन-किन चीजों से बनाया जाता है। उसने कहा कि "जब श्रोताओं में से कोई अपने जीवन की भी परवाह न करके इसे प्रयोग करने के लिये उद्यत हो जाय तो वह मेरे पास आवे, मैं उसे पूरा नुस्खा बता दूँगा।'

सर कर्ज़न वाइली का खून

सन् १९०९ में विनायक सावरकर 'भारतीय भवन' का नेता माना जाने लगा और वहाँ यह प्रथा सी चल गई कि साप्ताहिक सभाओं में उसकी पुस्तक "सन् १८५७ का भारतीय स्वतन्त्रता का युद्ध—लेखक एक भारतीय राष्ट्रवादी" का पाठ हुआ करे। इस वर्ष 'भारतीय भवन' के सभासद् लन्दन में एक पहाड़ी पर बन्दूक चलाने का अभ्यास करने लगे और पहली जुलाई सन् १९०९ को 'भारतीय भवन' के सभासद् मदनलाल धींगरा नामक युवक ने साम्राज्य विद्यालय की एक सभा में भारत सचिव कार्यालय में राजनैतिक एडिकाँग सर कर्ज़न वाइली का खून कर दिया। इसी प्रकार अंग्रेजी राज्य की जड़ उखाड़ने का कार्य कृष्ण वर्मा की संस्था ने किया।

—:※:—

@VaidicPustakalay

चार वेदज्ञ योगी संन्यासी
१८५७ स्वतन्त्रता संग्राम के संयोजक

(सर्वखाप पंचायत कार्यालय शोरम जिला मुजफ्फरनगर के अभिलेख से प्राप्त)

१८५७ ई० का भारतीय स्वाधीनता संग्राम अंग्रेज़ों के विरुद्ध दस मई से मेरठ से प्रारम्भ हुआ था। कुटिल अंग्रेजों से इसे गदर का नाम दिया था। इस स्वतन्त्रता संग्राम के प्रमुख संयोजक चार वेदज्ञ योगी आर्य संन्यासी थे। सर्वप्रथम हिमालय के योगी स्वामी ओमानन्द थे। दूसरे इनके शिष्य कनखल हरद्वार के स्वामी पूर्णानन्द थे। तीसरे पूर्णानन्द के शिष्य स्वा० विरजानन्द थे और चौथे गुरु विरजानन्द के शिष्य महर्षि दयानन्द सरस्वती थे। इस संग्राम के समय म० दयानन्द ३३ वर्ष के थे। गु० विरजानन्द ७९ वर्ष के, स्वा० पूर्णानन्द ११० वर्ष के और उनके योगी गुरु स्वा० ओमानन्द सन् १८५५ में १६० वर्ष के थे। उस समय इन चारों ही महापुरुषों ने देश सुधार स्वतन्त्रता प्राप्ति की अपनी शिक्षा से अनुमान दो हजार साधु सन्त प्रचार के लिए तैयार किये थे। जो स्वदेशी सैनिकों की छावनियों में, क्रान्तिकारियों में और गंगा, हरद्वार, गढ़ मुक्तेश्वर, मथुरा आदि के मेले-तीर्थों पर जनता में भी अंग्रेजों के दमन का प्रचार करते थे। इनमें हिन्दू और मुसलमान दोनों प्रकार के सन्त थे। ये सारे साधु सन्त सन् १८५२ से ही सैनिक छावनियों में स्वतन्त्रता योजना का प्रचार करने लग गये थे। ये गुप्तचर का कार्य भी करते थे जो अंग्रेजों की गतिविधियों का ब्यौरा अपने प्रमुख साधुसमाज को देते रहते थे। वास्तव में ये साधु अंग्रेजों के खुफिया जासूसी दफ्तरों में छोड़ रखे थे, जो खुशामदी रूप से उनकी गुप्त बातों को जान लेते थे।

इस संग्राम के सर्वप्रथम प्रेरक १६० वर्षीय स्वा० ओमानन्द जी थे। ये सबको अपना नाम नहीं बताते थे। इनके इस नाम और आयु का प्रमाण इस पंचायत के तत्कालीन लेखक मौ० जहीर अहमद के लेखों में मिला है। मैंने उस लेखक के ग्यारह पन्ने खोज लिये हैं। प्रथम तीन लेखों में स्वा० ओमानन्द और स्वा० पूर्णानन्द की तीन सभाओं का विवरण है। शेष लेखों में जून, जुलाई १८५७ ई० में दिल्ली में अंग्रेजों के विरुद्ध सर्वखाप पंचायत के प्रशिक्षित मल्लों सहित बहादुर शाह जफ़र की सेना की वीरतापूर्ण लड़ाई का सुन्दर वर्णन है। २५ जुलाई तक पंचायत के मल्लों ने अंग्रेजी सेनाओं को दिल्ली से नौ-दस मील दूर तक भगाये रखा, और नित्य उनकी बन्दूकें, तलवारें और घोड़े आदि छीनते रहे। इनका सेनापति बखता खां पठान था, जो अपने स्वदेशभक्त साथियों सहित मेरठ की अंग्रेजी सेना में से अपनी सेना में मिल गया था। पहले यह तोपची था। हरयाणा की सर्वखाप पंचायत ने अंग्रेजों के विरुद्ध इस लड़ाई में अपनी सेना की तन मन धन से सहायता की थी और दिल्ली के चारों ओर १२५ कोस के घेरे से आकर सैनिकों को हलवा, खीर, रोटी, परामठे, दूध, घी, दही, फल-मेवे आदि भोजन खिलाते रहे।

सन् १८५७ की सभा में स्वा० ओमानन्द के विचार

उस समय स्वा० ओमानन्द ने स्वा० पूर्णानन्द और अन्य साधुओं से मिलकर इस तहरीक में

फौज के लिए कमल के पूल और चपाती का निशान बनाया था। १. कि जैसे कमल का फूल तालाब में रहते हुए पानी से ऊपर अलग रहता है, ऐसे ही तहरीक और इसलाह यानी प्रचार का काम दुनियां से अलग रहकर करो। २. रोटी पहले औरों को खिलाकर फिर आप खाओ। ३. मुसीबत के समय रोटी बाँटकर खाओ। ४. अपना ईमान दुरुस्त रखो। ५. खुदा पर भरोसा करो। ६. मादरे वतन हिन्द की सब मखलूक को भाई-भाई समझकर रहो। ७. और जंगे आजादी के वास्ते तैयार हो जाओ। .... यह सभा हरद्वार में हुई थी। इस सभा का खर्चा टिहरी गढ़वाल के राजा ने दिया था। इस सभा में बहादुरशाह जफ़र का पुत्र फिरोजशाह, राय साहब मराठा, बाला साहब मराठा, रंगू बाबू, मौ० अजीमुल्लाखां और रमजान बेग भी थे। हिन्दुओं ने यज्ञ पर नियम किए थे और मुसलमानों ने कुरान पर। इस मजलिस में पन्द्रह सौ (१५००) लोग थे। पचास वर्ष से ऊपर की हर जातिवार पन्द्रह देवियां भी थीं, जिनमें प्रथम इन्द्रकौर जाटनी, सत्यवीरी राजपूतनी, नीमादेवी बामणी, रघबीरी गूजरी, सौभाग्यवती कायस्थ, मुन्नो रवे की, जगबीरी जाटनी आदि थीं। नाना साहब पेशवा ने और शहजादे फिरोजशाह ने साधु समाज को पांच हजार रुपए के रत्न दिये थे।

दूसरी सभा गढ़ गंगा में

५ अक्तूबर, १८५५ ई० को स्वा० पूर्णानन्द ने गढ़ गंगा में मेले से दूर एक सभा की थी, यही इसके प्रधान थे और १०८ वर्ष के थे। इस सभा के उपप्रधान साईं फ़खरुद्दीन थे जो प्रायः हरद्वार और रुड़की के बीच में पीरान कलियर के स्थान में रहते थे। वे मांस नहीं खाते थे। हिन्दू सन्तों से मिले जुले रहते थे। देश के हर भाग का उन्हें पता था। दिल्ली दरबार के शाही खानदान में इनका अच्छा सम्मान था। इस सभा में ढाई हजार लोग उपस्थित थे। इसमें अंग्रेजों के विरुद्ध धार्मिक और राजनैतिक बहुत भाषण हुए थे। स्वा० पूर्णानन्द के भाषण का सार यह था .... "मुल्क को फिरंगी के भरोसे मत छोड़ो, ये बेदीन हैं। इनका कोई क़ौल फेल नहीं है। ये राजा नहीं, बल्कि तिजारती लुटेरे और ज़रपरस्त हैं। ये हमारे मुल्क की तमाम मखलूक के हर इन्सान की ज़िन्दगी के दुश्मन हैं और ये तुम्हारा खून और गोश्त खा जायेंगे। इनसे बचो, ये तुम्हारी नस्लों को नेस्तनाबूद कर देंगे, और मुल्क में खुद आबाद होकर रहेंगे। इन्हें अपने मुल्क से निकालो।" मौ० जहीर ने यह भाषण सार उसी दिन सभा में लिख लिया था।

तीसरी सभा हरद्वार के पहाड़ में

यह सभा छः दिन पश्चात् ११-१०-१८५५ को स्वा० पूर्णानन्द ने हरद्वार के पहाड़ में की थी। इस सभा में पांच सौ पैंसठ (५६५) साधु थे। जिनमें १६५ मुसलमान साधु थे। बाकी हिन्दू धर्म के हर फिरके के सन्त थे। जिनमें अन्धे साधु विरजानन्द, अखिलानन्द, गोल मुख वाले नौजवान दयानन्द थे। भोलानन्द, मीरानन्द, लज्जानन्द, श्यामगिरि गोसाईं, रामगिरि गोसाईं, पूर्णदास उदासी, गौरीनाथ, समुन्दरनाथ, महन्त उदमी सिख, भगवानदास वैरागी और चार नागे बाबा प्रमुख थे। मुसलमान साधुओं में असफाकउल्ला, मौ० नसरतअली, मौ० साईं साबीरशाह, मीरहसन जलाली फकीर और गुलाम दीन फकीर थे। हरयाणे की पंचायत के प्रधान सेनापति शौराम जाट, उप-सेनापति भगवत गुर्जर, मन्त्री मोहनलाल जाट और पंडित शोभाराम उपस्थित थे। पंचायत का कासिद मीर बख्श मिरासी भी था। इस सभा में साईं फखरूदीन में भी अपने और स्वा०

पूर्णानन्द के विचार प्रकट किये थे। उस समय स्वा० पूर्णानन्द सारे भारत में विख्यात वेदों के ऊँचे विद्वान थे। इन्हें पूर्णदास सन्त भी कहते थे। ये कनखल में लोगों को धर्म उपदेश देते थे। भक्त जनों की लाई हुई मिठाई वहीं लोगों में बाँटकर कहते थे कि प्रसाद खाकर जन्मभूमि की सेवा तुमने अवश्य करनी है। इनका आदेश था कि मांसाहारी, मादक द्रव्यों का सेवन करने वाला, बिना स्नान किया हुआ और स्त्री प्रसंग करके आया हुआ मनुष्य मेरे पास कभी नहीं आये।

स्वा० पूर्णानन्द के मन में धर्मप्रचार के साथ स्वदेश उत्थान की भी प्रबल लगन थी। सन् १८५५ में कुम्भ के मेले में जब स्वा० दयानन्द ने इनसे मिलकर विद्या पढ़ने की इच्छा प्रकट की तो इन्होंने अपने शिष्य मथुरा में विरजानन्द दण्डी का नाम लिया था, परन्तु विद्या पढ़ने से पहले स्वतन्त्रता प्राप्ति के देश सुधार कार्य में जुटने की प्रबल प्रेरणा दी थी। फिर स्वा० दयानन्द मथुरा में उसी समय गुरु विरजानन्द से जा मिले, और उनकी कुटिया पर एक गुप्त मन्त्रणा में भी शामिल हुए। उस गुप्त मन्त्रणा में स्वा० दयानन्द के साथ श्यामली के चौ० घासीराम के सुपुत्र ४० वर्षीय चौ० मोहरसिंह, बिजरौल के ४२ वर्षीय दादा सहाय मल्ल, ढिकोली के चौ० श्यामसिंह, दिल्ली नरेश बहादुरशाह जफ़र, नाना साहब, तांतिया तोपे, कुँवरसिंह, लखनऊ के नवाब की बेगम हजरत महल, मौ० अजीमुल्ला, बंगाली रंगूबाबू कायस्थ, राणी लक्ष्मीबाई ये सब भी उपस्थित थे। मेरे पास इन नेताओं का अन्य संक्षिप्त परिचय भी है। उपरोक्त दादा सहाय मल्ल १८५७ संग्राम में अंग्रेजों के विरुद्ध ३०० आमदियों के जत्थे सहित लड़कर बड़ौत के पास बड़का ग्राम के जोहड़ पर शहीद हुए थे। चौ० मोहरसिंह श्यामली और बणत के बीच में इसी प्रकार लड़ते हुए बलिदान हुए थे। जिनका स्मारक श्यामली किसान धर्मशाला में ४ अप्रैल, १९७६ ई० को बनाया है। इस गुप्त मन्त्रणा के पश्चात् मास भादो बदी कृष्ण जन्माष्टमी पर गुरु विरजानन्द ने एक सभा की थी। इस सभा में भी स्वा० दयानन्द और ये उपरोक्त सारे क्रान्तिकारी नेता सम्मिलित थे। फिर इसके पश्चात् ११ अक्तूबर सन् १८५५ को हरद्वार पहाड़ की उपरोक्त सभा में स्वा० दयानन्द, गुरु विरजानन्द और ये क्रान्तिकारी नेता गुरु पूर्णानन्द की अध्यक्षता में पांच सौ पैंसठ साधुओं में सम्मिलित हुए थे। यह पहले कहा जा चुका है।

गुरु विरजानन्द का पूर्व नाम व्रजलाल था। इनके पिता उन दिनों लाहौर की कचहरी में काम करते थे। उनके लिए पंजाब के राजा रणजीतसिंह ने भी ३० रुपये मासिक वज़ीफा बाँध रखा था। स्वा० विरजानन्द चौदह वर्ष की आयु में घर छोड़कर ऋषिकेश चले गये थे। वहां गंगा जल में खड़े रहकर आठ-आठ पहर निरन्तर गायत्री का जाप और २१ वर्ष तक वहाँ तप किया था। ये ३५ वर्ष की अवस्था में कनखल में स्वा० पूर्णानन्द के पास आए थे। एक पंडित गौरीशंकर से भी पढ़े थे। कुल मिलाकर ग्यारह वर्ष तक पढ़े थे। फिर २४ वर्ष तक काशी, अयोध्या, शोरों और गया जी आदि भारत के प्रमुख स्थानों का भ्रमण किया था। अध्यापन समाप्ति पर स्वा० पूर्णानन्द ने इनसे वेद प्रचार और स्वदेश सुधार की प्रतिज्ञा कराई थी। ये सं० १९०१ वि० में अलवर गये थे। वहां राजा विनयसिंह को संस्कृत पढ़ाते थे। वहाँ इन्होंने अपने पास आये हुए अंग्रेजी रेजीडेन्टों से स्वदेश उत्थान की बात कही थी। वहाँ उनका रूक्ष व्यवहार देखकर ही स्वा० विरजानन्द ने अंग्रेजी राज के बहिष्कार की योजना का प्रबल निश्चय किया था। इस प्रचार के लिये उन्होंने मथुरा को अपना केन्द्र स्थान चुना था। क्योंकि यह हिन्दुओं का प्रसिद्ध तीर्थ स्थान

था। दिल्ली, मेरठ, लखनऊ, आगरा, फतहपुर सिकरी और अजमेर जाने वाले मुस्लिम यात्री भी मथुरा होकर ही जाते थे। अतः गुरु विरजानन्द के दर्शन करने और देश सुधार के उनके महान् विचार सुनने का सब देशभक्तों के लिए यह उपयुक्त स्थान था। अतः वे अलवर ४ वर्ष ७ मास रहकर सं० १९०५ वि० में मथुरा आगये थे। यहाँ उनके दर्शन और विचारों से प्रभावित होकर बहुत अधिक हिन्दू-मुसलमान उनके शिष्य बन गये थे। फाल्गुन शुदी पूर्णमासी सं० १९०७ वि० में ४५० प्रमुख साधुओं और नेताओं ने गुरु विरजानन्द को "भारत गुरुदेव" की उपाधि दी थी।

उस समय इनकी ख्याति सारे भारत वर्ष में फ़ैल चुकी थी। गुरु विरजानन्द नें सं० १९११ से १९१३ वि० तक तीन वर्ष लगातार इस प्रचार की एक सुन्दर योजना बनाई थी जो बड़ी व्यापक परन्तु गुप्त थी। उनके शिष्य साधु सन्तों ने सारे भारत में ऐसे पत्र बांटे कि, "इन तीन वर्षों में जो मथुरा की यात्रा और तीर्थ-स्नान करेगा उसके कुल के सब पाप नष्ट हो जायेंगे। भगवान गिरि गोसाई जी के सपने में भगवान् श्री कृष्ण और बलदेव जो आये हैं। उन्होंने कहा है कि इस वर्ष हमारे जन्मस्थान मथुरा में आकर जो तीर्थ-स्नान करेगा उसकी सात कुली पार हो जायेगी" मुसलमान फकीरों ने ये फतवे दिये थे कि "जो शुरु भादों से आठ रोज तक मथुरा की मस्जिद में नमाज पढ़ेगा, उसको बड़ा सवाब होगा कि जिन्दगी भर मजे से रहेगा। भगवान् श्री कृष्ण महाराज और हजरत मुहम्मद साहब का एक-एक रूहानी इशारा है कि हिन्दू-मुस्लमान एक साथ मिलकर साधु फकीरों की बात सुनेंगे, तो दुनियावी दुखों से निजात हो जायेगी और इस मौके पर दोनों पैगम्बरों की रूहानी ताकत बराबर तीन साल तक मथुरा में रहेगी। जो मुसलमान इन तीन वर्षों तक मथुरा की जियारत करेगा उसे खुदा की तरफ से बड़ी बरकत मिलेगी और मुल्क हिन्द में अमन रहेगा।" .... अतः इन तीन वर्षों में हिन्दू मुस्लमानों का बड़ा भारी दल मथुरा में जाता रहा। दो हजार साधु फकीर देश प्रेम प्रचार में लगे हुए थे। और हर वर्ष दो तकरीर गुरु विरजानन्द की भी होती थी। यह फकीरी जमायत कभी हाथी पर, कभी पालकी में, कभी घोड़ों की बग्गी में इनका जलूस निकालती थी। ये साधु लोगों को उन्हें अपना गुरु, वली, दुर्वेश और मुरसिद बताते थे। सर्वखाप पंचायत के लेखक चौ० खुशीराम मौलवी पदवी प्राप्त और पंडित थानाराम ने तीन वर्ष तक मथुरा में यह वाका अपनी आंखों से देखा था।

गुरु विरजानन्द ने इस योजना को राज बदलो क्रान्ति या जंगे आजादी का नाम दिया था। और उपरोक्त कमल और रोटी के अतिरिक्ति रेशम, खरबूजे और तीतर का निशान प्रचलित किया था। कि देश को रेशम के समान मजबूत बनाओ और खरबूजे के समान ऊपर से धारी अलग और अन्दर से हिन्दू-मुस्लमान एक रहो। और तीतर के समान शत्रु को अपनी सीमा देश से बाहर निकालो। यह संकेत मुस्लमानों के लिए था। मुसलमान फकीरों की एक भारी मण्डली का स्थान मथुरा की जामे मस्जिद थी। इनके सवारी के घोड़े ऊंट एक सराय में रुकते थे। बहादुरशाह बादशाह का एक विश्वासपात्र नौकर स्वा० विरजानन्द के पत्रों की लिखा पढ़ी करता था। उसने उनके भाषण का यह सार दिया है।

"मैं आर्य धर्म का मानने वाला हूँ। हम रियाजे तनासुख को मानते हैं। हमारा वेद पर पूरा-पूरा विश्वास है। मेरी जिन्दगी की कुर्बानी हो जाये, मगर मेरा देश गुलामी से राहत पा

जावे तो मेरी रुह को बड़ी खुशी होगी। आजादी स्वर्ग है और गुलामी नरक है। अब नहीं तो दूसरे जन्म में आकर देश के कल्याण हेतु काम करूंगा।

रोहतक नगर के पास भालौठ ग्राम के चौ० नान्हेराम उन दिनों अपने व्यापार कार्य के लिए बैलगाड़ी में सामान ले जाते थे। इस १८५७ संग्राम के समय उन्हें अंग्रेजों ने घेर लिया और अपनी लूट का माल उनकी गाड़ी में लादकर बम्बई की ओर ले जा रहे थे। उन्हें सफेद घोड़ों पर दो बलवान् साधु मिले। एक बांके जवान गोल मुख वाले साधु ने कहा कि तुम गाड़ी को छोड़कर भाग जाओ। नहीं तो अंग्रेज तुम्हें और बेलों को मार कर खा जायेंगे। इन दो सफेद घोड़े वाले साधुओं के विषय में अफजल बेग ने लिखा है कि ये दोनों गुरु विरजानन्द के पास भी रात को मिलने आते थे। गोल मुख वाले स्वामी दयानन्द थे, परन्तु गुरु विरजानन्द के लिखारी मिरजा अफजल बेग ने अपने लेख में उनका नाम मूल शंकरा लिखा है। उनके साथ दूसरा बलवान् साधु एक अखाड़े का महन्त धर्मगिरि गोसाईं था। उन दिनों के पंचायत के बहुत लेखों में स्वा० दयानन्द का नाम गोल मुख वाला तगड़ा बाँका नौजवान दयानन्द लिखा है। उन दिनों स्वा० दयानन्द ने सन् १८५८ में ही गुरु विरजानन्द के स्वतन्त्रता आन्दोलन में भाग लेने और क्रान्तिकारियों के संयोजन की बात को अंग्रेज़ों की कुटिल नीति और अपने परिवार के मोहपाश से बचने के लिये इन बातों को यथासंभव प्रकट नहीं होने दिया था। सन् १८५५-५६ में गुरु विरजानन्द से हरयाणा पंचायत के बहुत से भाट, और लेखक प्रमुख नेता और अन्य बहुत से लोग मिले थे, तो उन्होंने उन लोगों से यह भी कहा था कि हरयाणा के वीरो तुमने पहले भी देश की बहुत रक्षा की है। पंचायत के भाट तुम्हारा इतिहास लिखते आरहे हैं। जब कोई अंग्रेज हरयाणा के जंगलों में मोर और हिरण को मार देता था तो हरयाणा के किसान उसे लठों से जान से ही मार देते थे। अब तुम इन अंग्रेजों को आजादी की लड़ाई में मारो और देश से निकालो। इनकी स्त्रियों और बच्चों को मत सताना। उन्हें आजादी के पीछे इंग्लैंड वालों को सुरक्षित भेज देना। १८५७ के संग्राम में बहादुरशाह बादशाह के झण्डे का रंग हरा और सुनहरा था। जो लाल किले पर था। सारे भारत के क्रान्तिकारियों का भी झण्डा इसी रंग का था। १८५५-५६ में गुरु विरजानन्द और स्वा० दयानन्द के उपदेशों से सब हिन्दू-मुसलमान एक हो गये थे। उस समय स्वा० दयानन्द क्रान्तिकारियों से २०-२५ बार मिले थे। अकेले नाना साहब से ग्यारह बार मिले थे। कई अंग्रेज अधिकारी इन्हें पकड़ने भी आये थे, परन्तु पैर छूकर चले गये। एक अधिकारी पैंतीस सैनिक लेकर इन्हें पकड़ने आया था। परन्तु सामने आते ही सुध-बुध भूल गया और पैरों में गिर पड़ा। उसने स्वामी जी से दुआ माँगी, और १२५ रुपये देकर चला गया। स्वा० दयानन्द ने यह भी कहा था कि विदेशी राज से स्वदेशी राज हजार दर्जे अच्छा है। मैंने भी हरयाणा के अनेक लोगों को अंग्रेज़ों को भगाने की प्रेरणा दी है।

गुरु विरजानन्द के दो प्रमुख शिष्यों रामगिरि गोसाईं और मुद्दीशाह ने मेरठ की छावनी के फौजियों को आज़ादी की लड़ाई के लिए तैयार किया था। रामगिरि गोसाईं के पास हाथी रहता था, जो मेरठ में भैंसा वाली जोहड़ी के पास ओघड़नाथ के शिव मन्दिर में रहता था। उसी समय चर्बी के कारतूस और चमड़े की टोपी दोनों में गाय और सुअर का चमड़ा और चरबी की चर्चा थी, जो उस वक्त झगड़े का कारण बनी थी। इसलिए निश्चित दिन से पूर्व ही दस मई

को मेरठ से स्वतन्त्रता संग्राम आरम्भ हो गया। इस कारण से और आपस की फूट और दुर्भाग्य से ही इस संग्राम में विफलता हुई। पंचायत के रिकार्ड में लिखा हुआ है कि उस समय नेपाल, आसाम, बंगाल, हैदराबाद के नवाब, नाभा, पटियाला, कपूरथला और जीन्द वालों ने अङ्गरेज़ों का साथ दिया था। इस लड़ाई के पश्चात् गुरु विरजानन्द ने कहा था कि मेरठ जंगे आजादी के तीर्थ के नाम से याद किया जाएगा और रोहतक की वीर भूमि अन्याय को सहन नहीं कर सकती। स्वामी दयानन्द ने कहा था कि मुझे कोई शिवाजी जैसा वीर नहीं मिला जिसे मैं महाभारत काल के अस्त्र-शस्त्रों की विद्या सिखाता। इस लड़ाई में भारतीयों में फूट डालने की नीति बहादुरशाह जफ़र के रिश्तेदार देशद्रोही मिरजा करम इलाही बेग ने भी बताई थी। ये सभी तथ्य मैंने पंचायत के रिकार्ड से दिये हैं।

लेखक--निहालसिंह आर्य अध्यापक, ए-४८ ऋषिनगर
शकूर बस्ती दिल्ली-३४

रोहतक जिले में आर्यसमाज राजद्रोही ?

—ब्र० रामवीर व्याकरणाचार्य योगशिक्षक (कन्साला)

हरयाणा प्रान्त में एकमात्र रोहतक जिला ऐसा है जिसके निवासी अधिकांश आर्य हैं। उनमें भी
अधिक संख्या क्षत्रियों (जाटों) की है। जिनमें आर्यसमाज बहुत ही लोकप्रिय है, जिले के निवासी
लगभग सभी अपने को वैदिक धर्मी मानते हैं। क्षात्र धर्म यहां की रग-रग में है। आज भी यहां के
प्रत्येक गांव में सैनिकों की संख्या अधिक होती है। कुछ गांव तो ऐसे भी हैं जिनमें प्रत्येक घर में एक
यह प्राचीन परम्परा आज तक अक्षुण्ण बनी हुई है।
सैनिक अवश्य होता है। यह प्राचीन परम्परा आज तक अक्षुण्ण बनी हुई है। इस जिले से ब्रिटिश सेना में जाट बड़ी संख्या में भर्ती होगये।

बात ७ जून १९१० ई० की है, इस जिले से ब्रिटिश सेना में जाट बड़ी संख्या में भर्ती होगये। कुछ अधिकारी यह नहीं चाहते थे कि सेना
आर्यसमाज पर राजद्रोह का संदेह करने वाली सरकार के कुछ अधिकारी यह नहीं चाहते थे कि सेना
में भी आर्यसमाज का प्रभाव बढे, इसलिए रोहतक में प्राचीन परम्परा के अनुसार ढोल पीटकर यह
घोषणा कर दी गई कि आर्यसमाज से सम्बन्ध रखनेवाली सभी पुस्तकें सरकार द्वारा जब्त कर ली
गई हैं। इस पर रोहतक आर्यसमाज के प्रधान श्री न्यादरसिंह जी आर्य ने १३ जून को रोहतक के
जिलाधीश (ई० ए० ए० जोसेफ) को पत्र लिखकर निवेदन किया, मुझे ऐसा ज्ञात हुआ है कि पंजाब
सरकार ने कुछ पत्र-पत्रिकाओं पर प्रतिबन्ध लगाया है। उसकी भ्रान्तिपूर्ण व्याख्या करते हुए आर्य-
समाज को बदनाम करने, हानि पहुंचाने के उद्देश्य से कुछ स्वार्थी लम्पट विरोधियों ने इस प्रकार की
भ्रान्तिपूर्ण घोषणा करवाई है। ऐसी घोषणा से आर्यसमाज बदनाम होगा और सामान्य जनता यह
समझने लगेगी कि यह संस्था राजद्रोही है, वह अपना सम्बन्ध विच्छेद करेगी जिससे आर्यसमाज को
बड़ी कठिनाई का सामना करना पड़ेगा। यदि वास्तव में सरकार ने इस प्रकार का कोई आदेश
निकाला हो तो उसका निर्देश हमें दिया जावे कि आर्यसमाज के पुस्तकालय में स्थित पुस्तकों का

क्या किया जाये ? यदि सरकार ने ऐसा कोई आदेश नहीं निकाला हो तो पहले की गई घोषणा का खण्डन किया जाये और गांवों में ढिंढोरा पिटवाकर इसका समाधान किया जाये, जिससे कि पहले की गई घोषणा का निराकरण ठीक से हो सके और इस गलत घोषणा कराने वाले व्यक्ति का पता लगाया जाये तथा उसे उचित दण्ड दिया जाये। इससे आर्यसमाज का प्रचार करनेवालों को बहुत सहायता मिलेगी।

रोहतक के जिलाधीश की ओर से उसी दिन १३ जून को ही उपर्युक्त पत्र का अतीव संक्षिप्त उतर देते हुए आर्यसमाज रोहतक के प्रधान को सूचित किया गया कि आर्यसमाज की पुस्तकों को जब्त करने वाले किसी सरकारी आदेश का उन्हें ज्ञान नहीं है और न ही मैंने सरकारी घोषणा करने का आदेश दिया है।

इस घटना पर उस समय के अनेक पत्र-पत्रिकाओं ने टिप्पणी की, जिनमें से कुछ के उदाहरण दिए जाते हैं। उस समय का अंग्रेजी का मुख्य पत्र वैदिक मैगजीन लिखता है । इस पत्र का सहानुभूति शून्य लहजा विशेष रूप से उल्लेखनीय है । इसमें शरारतपूर्ण और झूठी घोषणा करने वाले व्यक्ति को दण्ड देने का कोई आश्वासन नहीं है। आर्यों को इससे जो मानसिक पीड़ा हुई है, उसके लिए भी कोई चिन्ता व्यक्त नहीं की गई। इसमें सरकार की धार्मिक तटस्थता और लाभ-दायक नीति बनाये रखने के सरकारी उद्देश्य की कोई चर्चा नहीं है, ऐसा लगता है कि इस पत्र को लिखने वाले अनुभवी सरकारी अधिकारी को विवश होकर इस पत्र का उत्तर ऐसा लिखना पड़ा। यदि इस का खण्डन करने की बजाए मण्डन (पुष्टि) करनी होती तो उससे अत्यधिक प्रसन्नता होती।

उस समय के भारत मन्त्री लार्ड मार्ले भारतीयों के साथ जो सहानुभूति रखने का दावा करते थे उनका कितना बढ़िया प्रदर्शन है । ये नौकर शाही की तथाकथित मानवीयता को भी सूचित करती है। यदि ब्रिटिश सम्राट्, उनके उदात्तमना भारत मन्त्री, वायसराय तथा पंजाब के गवर्नर सर लुईस डेन जैसे महानुभावों के सहानुभूति पूर्ण इरादे पूरे किये जाते हैं तो नौकर शाही के शासन तन्त्र को सहानुभूति और मानवीयता के तत्त्वों से उदार बनाया जाना चाहिए।''

लाहौर से प्रकाशित होने वाले सुप्रसिद्ध पत्र पंजाबी ने रोहतक में एक झूठी घोषणा के कारणों का विस्तृत विश्लेषण करते हुए लिखा था कि पहले दो वर्षों में रोहतक जिले में आर्यसमाज का प्रचार बड़ी तेजी से हुआ है । इसके परिणामस्वरूप हजारों कट्टर पौराणिक हिन्दू आर्य बने हैं। इस जिले में समाज की अनेक शाखायें हैं। आर्यसमाज प्रचारकों के प्रायः पौराणिक पण्डितों के साथ मूर्ति पूजा, श्राद्ध, जन्म-मूलक जाति प्रथा आदि विभिन्न विषयों पर शास्त्रार्थ होते रहते हैं किन्तु इनसे कभी शान्ति भंग नहीं हुई। इसका कारण यह है कि शास्त्रार्थ करनेवालों ने कभी पुलिस की सहायता नहीं मांगी है । मुसलमान अवश्य आर्य उपदेशकों से नाराज हैं । किन्तु आर्यसमाज ने उन पर आक्षेप करने में कभी पहल नहीं की है । मुस्लिम प्रचारकों ने जब-जब हिन्दू धर्म पर हमले किये हैं, हिन्दुओं को मुसलमान बनाने का प्रयास किया है तभी आर्यसमाज ने इन आक्रमणों का प्रतिरोध अपने पूरे सामर्थ्य के साथ किया है। मुसलमानों को अब ब्रिटिश शासन का संरक्षण प्राप्त है। वे अपना राजनैतिक महत्त्व समझने लगे हैं। उन्हें यह विश्वास है

कि वे अंग्रेजों के मित्र हैं। वे आर्यों से बदला लेने के लिये जिलाधीश के पास जाने और आर्य-समाजियों के विरुद्ध कान भरने एवं उन्हें राजद्रोही सिद्ध करने की पूरी कोशिश करते हैं।

मनुस्मृति के दो-एक श्लोकों की प्रकरण विरुद्ध और असंगत व्याख्या करके अंग्रेज अधिकारियों को यह विश्वास दिलाने का प्रयास करते हैं कि आर्यसमाज एक प्रतिक्रियावादी ऐसा धार्मिक आन्दोलन है जिसमें बड़ी कट्टरता है। तनिक भी सहिष्णुता नहीं है। यह विदेशी शासन का उन्मूलन करने के लिए कटिबद्ध हैं। ब्रिटिश अधिकारी उनके बहकावे में आ जाते हैं और यह भूल जाते हैं कि मनुस्मृति स्वामी दयानन्द या उनके किसी अनुयायी की रचना नहीं है। अपितु लाखों वर्ष पुराना ग्रन्थ है यह ब्रिटिश न्यायालयों में हिन्दुओं का प्रामाणिक ग्रन्थ माना जाता है। हमें विश्वास है कि रोहतक में आर्यसमाज विरोधियों ने ऐसा प्रचार करके अधिकारियों के कान भर दिये हैं।

रोहतक जिले में यद्यपि आर्यों तथा मुसलमानों में कोई तीव्र धार्मिक संघर्ष नहीं है। फिर भी यहां ऐसे मौलवी इस्लाम का प्रबल प्रचार कर रहे हैं जो आर्यों को अपना प्रबल शत्रु समझते हैं। इस विषय में हम कोई निश्चित सम्मति नहीं प्रकट करना चाहते हैं। हमने केवल अब तक अज्ञात तथ्य प्रस्तुत किये हैं। क्योंकि जब तक वर्त्तमान परिस्थति की सभी बातों पर विचार न किया जाये तब तक हम जिले में की हुई उपर्युक्त घोषणा के कारणों को पूरी तरह नहीं समझ सकते।

इस विषय में पंजाबी पत्र का यह विचार था कि यह कार्यवाही मुसलमानों ने जिला अधिकारियों में आर्यसमाज के विरुद्ध विषवमन करके तथा झूठी शिकायतें करके करवाई है। सम्भवतः किसी अविवेकी अधिकारी ने आर्यसमाज से प्रतिशोध लेने के लिए झूठ मूठ ऐसी घोषणा करवादी है। किन्तु जब आर्यसमाज ने इसके बारे में जिलाधीश से सरकारी आदेश बताने के लिए कहा तो उन्हें विवश होकर सच्ची स्थिति स्वीकार करनी पड़ी।

उपर्युक्त प्रमाणों से यह सिद्ध होता है कि निश्चय ही कुछ सरकारी अधिकारियों का हाथ इस षड्यन्त्र में था। विवश होकर उसकी सफाई देनी पड़ी। यहां के लोगों की क्षात्र प्रवृत्ति को भी ध्यान में रखा गया। सरकार से दोषी को पकड़ने की मांग की थी लेकिन गलती मनवाकर उसका सुधार करवालेना रोहतक के आर्यसमाजियों की बहुत बड़ी विजय थी।

❀❀❀

@VaidicPustakalay

गुरु विरजानन्द जी महाराज के सम्बन्ध में मीर मुशताक मिरासी के असली पत्र का ब्लाक तथा देवनागरी लिपि में परिवर्तन

(۱)

بسم اللہ الرحمٰن الرحیم

سن ۱۸۵۶ اسطابق سمبت ۱۹۱۳ کو ایک پنچایت متھرا
کے تیرتھ گاہ پر منعقد ہوئی اس میں ہندو مسلمان اور دوسرے
مذہب کے لوگوں نے شرکت کی تھی اس پنچایت میں ایک نابینہ
ہندو درویش کو لایا گیا تھا ایک پالکی میں بٹھا کر ان کے آتے
پر سب لوگوں نے ان کا ادب کیا جب یہ ایک چوکی پر بیٹھ لیا تب
ہندو مسلمان فقیروں نے ان کی قدم بوسی کی اس کے بعد سب
حاضرین پنچایت کے لوگوں نے ان کا ادب کیا سب نے ادب کے
بعد نانا صاحب پیشوا مولوی اجیم اللہ خان رنگو بالو اور شہنشاہ
بہادر شاہ کا شہزادہ ان سب نے ان کے ادب میں کچھ سونے کی
اشرفیاں پیش کی اس کے بعد ایک ہندو ایک مسلمان فقیر نے
یہ کہا کہ ہمارے آقا صاحبان کی زبان مبارک سے جو تقریر ہوگی
اسے تسلی کے ساتھ سب صاحبان سنے اور وہ اس ملک کے لیے بہت
مفید ثابت ہوگی اور یہ ولی اللہ شاستروں بہت زبانوں کا عالم اور
ہمارے اور ہمارے ملک کا بزرگ ہیں خدا کی مہربانی سے ایسے بزرگ
ہم ملے یہ خدا کا ہم پر بڑا احسان ہیں

درویش کی تقریر کا آغاز

سب سے پہلے ایشور خدا کی ستائش کی اور پھر اردو میں اس کا ترجمہ
کیا اس بزرگ نے یہ کہا تھا کہ آزادی جنت ہے اور غلامی دوزخ
ہے اپنے ملک کی حکومت غیر ملک کی حکومت کے مقابلے میں ہزار درجہ
بہتر ہے دوسروں کی غلامی ہمیشہ بےعزتی اور بےشرمی کا باعث ہے
ہمیں کسی قوم سے اور کسی ملک سے کوئی نفرت نہیں ہے ہم لوگ ملکے
خدا کی بندوں سے ایسے خدا سے در زدری مانگتے ہے مگر ظلم دار قوم
خاص کر فرنگی جس ملک میں حکومت کرتے ہیں اس ملک کے باشندے

(۳)

بسم اللہ الرحمٰن الرحیم

سمبت ۱۹۷۳ وکرمی میں یہ پنچایت دور دراز
جنگل میں کی گئی تھی اور شروع بھادوں کا ماہ تھا یہ پنچایت
چار روز تک متواتر ہوتی رہی پہلے دن آئے واپس تب
مہمانوں کی ایک دوسرے سے ملاقات کرائی گئی تھی دوسرے
دن حضرت آدم سے لے کر حضرت محمد رسول اللہ صلی اللہ علیہ
وسلم تک سماتن دھرمی سنائی گئی۔ تیسرے دن رام کرشن
اور مہاتما بدھ اور شنکراچاریہ مہابیر سوامی انیک
[illegible] ولیوں [illegible] سنتوں
رشیوں اور منیوں اوتار [illegible] اور
پردوشی ڈالی گئی اور غیر ملکی وطن پرستوں کی اور
خدا پرستوں کی یاد دلائی گئی۔ اور چوتھے دن نابینا سنیاسی
مہاتما ورجانند جی اور مسلمان سائیں صاحب محمود شاہ
سے شروع میں برجانند جی کی تقریر ہوئی پہلے شریعت کی
آج کے دن کی تقریر میں خاص خاص لوگوں کی ہی جماعت
تھی اور نہ تھا سرکاری آدمی اس میں کہیں بھی نابینا
مہاتما کی تقریر بہت ہی پر زور تھی اور بہت سے شریعی
علم سے واقف [illegible] تھی اور زیادہ گھنٹے تک

(۴۹)

بسم اللہ الرحمن الرحیم ۔

تقریر ہوتی رہی میں نے ان کی تقریر میں سے خاص خاص
الفاظ تحریر کئے ہیں باقی انہوں نے ہر پہلو پر روشنی
ڈالی تھی جب مہاتما برجانند کو پالکی میں بٹھا کر لایا گیا
اس وقت ہندو مسلمان فقیروں نے ان کی خوشی میں
سنکھ بھونپو ناگ پھنی نقارہ قرنی اور نرسنگے بجائے
تھے انہوں خدا پرستی اور بت پرستی کے گیت گائے تھے
یہ نابینا سادھو ہمارے علم کے سمجھنے کی طاقت
رکھتا تھا اور ... اسکے جلال اس کی زبان سے
ظاہر ہوتا تھا میں بھی اپنی روح کے تقاضے کے مطابق
۵ پھول ان کے سامنے پیش کئے اور ان کی قدم بوسی کی
اور خواہش دعا مانگی کہ خدا ایسی ہستیاں دونوں کو
خلقت کی بھلائی کے لئے ہمیشہ پیدا کیجئے

تصنیف کردہ میر مشتاق میراسی

गुरु विरजानन्द के सम्बन्ध में मीर मुशताक मिरासी के असली पत्र का

देवनागरी लिपि में परिवर्तन

(१) बिस्मिल्लाह उर्रहमानुर्रहीम

सन् १८५६ बमुताबिक सम्वत १९१३ को एक पंचायत मथुरा के तीर्थगाह पर मुवैकिद हुई उसमें हिन्दू मुसलमान और दूसरे मजहब के लोगों ने शरकत की थी इस पंचायत में एक नाबीना हिन्दू दरवेश को लाया गया था एक पालकी में बिठाकर उनके आने पर सब लोगों ने उनका अदब किया जब यह चौकी पर बैठ गया तब हिन्दू मुसलमान फकीरों ने इनकी कदम बोसी की इसके बाद सब हाजरीन पंचायत के लोगों नें उनका अदब किया सब के अदब के बाद नाना साहब पेशवा मौलवी अजीमुल्ला खान रंगू बाबू और शहंशाह बहादुरशाह का शहजादा इन सब ने इनके अदब में कुछ सोने की अशरफियां पेश कीं। इस के बाद एक हिन्दू एक मुसलमान फकीर ने यह कहा कि हमारे उस्ताद साहिबान को जबान मुबारिक से जो तकरीर होगी उसे तसल्ली के साथ सब साहबान सुनें और वह मुल्क के लिये बहुत मुफीद साबित होगी और वह वली अल्लाह साधु बहुत जबानों का आलिम और हमारा और हमारे मुल्क का बुजुर्ग है खुदा की मेहरबानी से ऐसे हमें मिले यह खुदा का हम पर बड़ा अहसान है।

दरवेश की तकरीर का आगाज

सब से पहले उन्होंने खुदा की तारीफ की और फिर उर्दू में उसका तरजुमा किया इस बुजुर्ग ने यह कहा था कि आजादी जन्नत है और गुलामी दोजख है अपने मुल्क की हकूमत गैर मुल्क की हकूमत के मुकाबले में हजार दर्जे बेहतर है दूसरों की गुलामी हमेशा बेइज्जती और बेशरमी का बायस है हमें किसी कौम से और किसी मुल्क से कोई नफरत नहीं है हम तो खलके खुदा की बहबूदी के लिये खुदा से रोज दुआ मांगते हैं मगर हुकमराह कौम खास कर फिरंगी जिस मुल्क में हकूमत करते हैं उस मुल्क के बाशन्दों के

(२) बिस्मिल्लाह उर्रहमानुर्रहीम

साथ इन्सानियत का बरताव नहीं करते और कितनी ही भी अच्छाई की तारीफ करें मगर उस मुल्क के बाशंदों के साथ मवेशियों से गिरा हुआ बर्ताव करते हैं खुदा की खलकत में सब इन्सान भाई-भाई हैं मगर गैर मुल्की हुकमराह कौम इन्हें भाई न समझ कर गुलाम समझती है किसी भी मजहब की किताब में ऐसा हुक्म नहीं है कि अशरफुलमखलूकात के साथ दगा की जावे और अल्लाह के हुक्म के खिलाफ वरजी की जावे इस वास्ते मातहत लोगों का न को ईमान है न कोई उन की शान है फिरंगियों में बहुत सी अच्छी भी बात हैं मगर सियासी मसले में आकर व अपने कौल फेल को न समझकर फौरन बदल जाते हैं और हमारी अच्छाई और नेक सल्लाह को फौरन ठुकरा देते हैं इस असिल वजूहात यह है कि हमारे मुल्क का बच्चा-बच्चा उनकी खैर खवाही का दम भरे फिर भी अपने वतन के कुत्ते को हमारे इन्सानों से अच्छा समझते हैं यह सब कर्मों का बायस

है इन्हें अपने ही वतन से मुहब्बत है इसलिये मैं सब बाशिन्दगान हिन्द से इलतजा करता हूँ कि जितना वह अपने मजहब से मुहब्बत करते हैं उतना ही इस मुल्क के हर बाशिन्दे को भाई-भाई जैसी मुहब्बत करे तब तुम्हारे दिलों के अन्दर वतन परस्ती आ जायगी तो इस मुल्क की गुलामी यहां से खुद ब खुद जुदा हो जायगी हिन्द में रहने वाले सब आपस में हिन्दी भाई हैं और बहादुरशाह हमारा शहंशाह है।

तसनीफ करदह मीर मुश्ताक मिरासी-कासिद् सर्व खाप पंचायत

नोट:—महात्मा संन्यासी का नाम मालूम किया तो इनका नाम स्वामी विरजानन्द था और बहुत अरसे से मथुरा में रहते हैं और संस्कृत की तालीम देते हैं और अल्लाह ताला के मौतकिद हैं।

(३) बिस्मिल्लाह उर्रहमानुर्रहीम

सम्वत् १९१३ विक्रमी में यह पंचायत दूर दराज जंगल में की गई थी और शुरु भादू का माह था यह पंचायत चार रोज तक मतवातर होती रही पहले दिन आने वाले सब महमानों की एक दूसरे से मुलाकात कराई गई थी दूसरे दिन हजरत आदम से लेकर हजरत मुहम्मद रसूल सले अल्लाह अलेह व सलम तक सवाने अमरी सुनाई गई तीसरे दिन रामकिरशन और महात्मा बुद्ध और शङ्कराचार्य महावीर स्वामी श्रतेन ऋषि और मुनि और राजा महाराजाओं के जिन्दगी के दास्तानों पर रोशनी डाली गई और गैरमुल्की वतनपरस्तों और खुदा परस्तों की याद दिलाई गई और चौथे दिन नाबीना संन्यासी महात्मा विरजानन्द जी और मुसलमान साईं मियां महसूदन शाह ने शुरु में विरजानन्द जी की तकरीर से पहले शुरुआत की आज के दिन तकरीर में खास-खास लोगों की ही जमायत थी और खुफिया सरकारी आदमी इसमें नहीं था। नाबीना महात्मा की तकरीर इसमें बहुत ही पुरजोर थी और हर मजहबी इल्म से ताल्लुक रखती थी और डेढ़ घण्टे तक।

(४) बिस्मिल्लाह उर्रहमानुर्रहीम

तकरीर होती रही मैंने इनकी तकरीर के खास-खास इलफाज तहरीर किये हैं बाकी उन्होंने हर पहलों हर रोशनी डाली थी जब महात्मा बिरजानन्द को पालकी में बिठाकर लाया गया उस वक्त हिन्दू मुसलमान फकीरों ने उनकी खुशी में शंख वड़नावल नागफणी निकाडा तुरही और नरसिंघे बजाये थे और खुदा परस्ती और वतन परस्ती के गीत गाये थे यह नाबीना साधु हर इल्म के समझने की ताकत रखता था और खुदा का जलवे जुलाल इसकी जबान से जाहिर होता था मैं ने भी अपनी रूह के तकाजे के मुताबिक ५ फूल इनके सामने पेश किये और उनकी कदमबोसी की और खुदा से दुआ मांगी कि खुदा ऐसी नेक रूहों को खलकत की भलाई के लिये हमेशा पैदह कीजिये।

@VaidicPustakalay

परिशिष्ट--

नाना राव उनके परिवार और

नाम	जाति और वर्ण	आयु	रंग	कद और शारीरिक बनावट	चेहरे का आकार	नेत्रों का आकार	दाँत
आभा धनुकधारी (बख्शी)	दक्षिणी ब्राह्मण	६०	गोरा	छोटा एवं स्थूल	गोल और भारी	भूरी एवं छोटी	लगभग सब गिर गये
नारायण मराठा (मुसाहब)	वही	४२	—	छोटा	गोल	भूरी एवं विशाल	सम
तात्या टोपे (कप्तान)	वही	४२	सांवला	मझोला कद एवं मोटा	फूला हुआ	विशाल	—
झुमरीसिंह (जमादार)	कन्नौज का ब्राह्मण कानपुर से कुछ दूरी पर	६०	—	छोटा एवं चौड़ा	गोल	छोटी	—
गंगाधर तात्या	वही	२३	गोरा	छोटा और सुडौल	वही	भूरी	छोटे एवं सुन्दर
रामू तात्या बाबा भट्ट का पुत्र	वही	२५	पीत	मझोला कद एवं कृश	—	काली	सम
अजीमुल्ला	मुसलमान	—	वही	लम्बा एवं सुडौल	—	—	—

स्रोत--नार्थ वेस्टर्न प्रांविन्सज़ प्रोसीडिंग्स पोलिटिकल डिपार्टमेन्ट जनवरी से जून १८६४ नं० ७२, दिनांक जुलाई, १८६३, उत्तरप्रदेश के सचिवालय अभिलेख-कक्ष में सुरक्षित।

२ (क्रमशः)

सेवकों के शारीरिक विवरण हुलिये)

वक्षस्थल पर चिन्ह	चेहरे पर चिन्ह	केशों का रंग	नासिका का आकार	कानों में बालियों के चिन्ह	अन्य विवरण
—	—	बहुत कम रह गए हैं	चपटी	हाँ	गलमुच्छे नहीं हैं।
—	—	काला	सीधी	वही	दायीं आंख पर तलवार के घाव के चिन्ह हैं और देखने में सुन्दर व्यक्ति हैं।
कुछ काले बाल	चेचक के दाग	—	चपटी	—	कानपुर में क्रान्ति का प्रणेता।
कुछ नहीं	वही	श्वेत	भारी	—	"नाना" साहब का पुराना सेवक। बिठूर का थानेदार नियुक्त किया गया था। वह उस समय इटावा से १० मील एक मलहाउज ग्राम के निकट अपने पुत्र के श्वसुर के घर में छिपा है।
कोई नहीं	कोई नहीं	काले	लम्बी व चपटी	हां	बापू आप्ते का पुत्र है। उसका वक्षस्थल नारियों की भांति है।
—	—	वही	सीधी	नहीं	क्रान्ति में अपने पिता के साथ भाग लिया है।
—	—	—	चपटी	—	बनावटी स्वरों में बोलता है।

इंडेक्स नं० १७, प्रोसीडिंग तक, जनवरी १८६४ भाग १, पोलिटिकल डिपार्टमेन्ट—ए. पृ० १९

4836
1908

BANDE MATARAM.

TO COMMEMORATE

THE BIRTH ANNIVERSARY OF

SHRI

CURU GOVIND SINGH,

The Great Nation Builder of India.)

A MEETING OF INDIANS

WILL BE HELD AT

Caxton Hall, Westminster, S.W.,

ON

TEESDAY the 29th day of DECEMBER, 1908,

AT 3 P.M. PRECISELY

UNDER THE PRESIDENCY OF

Deshbandhoo Bipan Chandra Pal.

YOUR PRESENCE IS EARNESTLY SOLICITED.

SAT-SHRI AKAL !!

गुरु गोविंदसिंहांच्या जन्मोत्सवाचे छापील आमंत्रण पत्रक
व खालती सावरकरांचे पत्र व नावाची आद्याक्षरे

You are specially requested to come at any cost. Without you we will not think the meeting a success. It is your duty alone to honour Shri Guru-sahib. Yours V. D. S.

ओ३म्

वैदिक पुस्तकालय सीतापुर

पुस्तक को डिजिटल करने का उद्देश्य बस इतना ही की हम दुर्लभ ग्रन्थों को बचा सके, पुस्तकों को प्रकाशन से अवश्य क्रय करें।

वैदिक साहित्य हार्ड कॉपी में प्राप्त करने के लिए व्हाट्सएप 8081048010 पर सम्पर्क।

पता - ग्राम कुल्ताजपुर पो०नवीनगर लहरपुर जिला सीतापुर उत्तर प्रदेश (261135)

लेखक परिचय

नाम : स्वामी ओमानन्द सरस्वती ।

जन्म : नरेला (दिल्ली) में चैत्र कृष्णा अष्टमी १९६७ विक्रम सम्वत् ।

शिक्षा : सैंटस्टीफंस कालेज दिल्ली, गुरुकुल वृन्दावन, गुरुकुल चित्तौड़ गढ़, गुरुकुल पोठोहार (रावल पिंडी), दयानन्द वेद विद्यालय दिल्ली, गुरुकुल वृन्दावन आदि में वेद वेदांग आदि सम्पूर्ण संस्कृत वाङ्मय का अध्ययन तथा सम्प्रति १९४२ ई० से गुरुकुल झज्जर के आचार्य पद पर आसीन ।

लेखन : ब्रह्मचर्य, समाज सुधार, कुरीति निवारण, औषधोपचार, जड़ी बूटी तथा ऐतिहासिक शोध सम्बन्धी ६० ग्रन्थों के प्रणेता तथा वैदिक वाङ्मय एवं भारतीय संस्कृति सम्बन्धी १५० प्रकार के विभिन्न ग्रन्थों के प्रकाशक ।

देशोपकारक कार्य : भारतीय स्वतन्त्रता संग्राम में सक्रिय भाग लेना, भारत छोड़ो आन्दोलन के समय जेल यात्रा, हैदराबाद सत्याग्रह, हिन्दी रक्षा सत्याग्रह, गोरक्षा सत्याग्रह, चण्डीगढ़ आन्दोलन आदि में प्रमुख रूप से भाग लेकर नेतृत्व करना ।

विदेश यात्रा : रूस, जापान, ताइवान, फार्मूसा, इंगलैंड, अमेरिका, आस्ट्रेलिया, सिंगापुर, थाईलैंड, बाली आदि २५ देशों में भारतीय ऐतिहासिक और सांस्कृतिक सम्मेलनों में भारत का प्रतिनिधित्व करना ।

पुरस्कार : भारत के राष्ट्रपति द्वारा १९६९ ई० में राष्ट्रिय पण्डित की उपाधि द्वारा पुरस्कृत किया जाना और हरयाणा सरकार द्वारा संस्कृत पण्डित के रूप में पुरस्कृत करना ।

पुरातत्त्व संग्रहालयों की स्थापना : भारत के विभिन्न भू-भागों में दबे पड़े पुरातन ऐतिहासिक खण्डहरों से इतिहास की महत्वपूर्ण और दुर्लभ सामग्री के द्वारा गुरुकुल झज्जर और कन्या गुरुकुल नरेला में दो पुरातत्त्व संग्रहालयों की स्थापना करना तथा उनसे सम्बद्ध शोध पूर्ण ग्रन्थों का प्रकाशन करना ।

अन्य : कन्या गुरुकुल नरेला के लिए अपनी २५० बीघे पैतृक भूमि तथा आवास आदि का पूर्णतः दान करना और आर्यसमाज तथा आर्य शिक्षा के प्रचार प्रसार हेतु सतत प्रयत्न पूर्वक उत्साह से लगे रहना ।